दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शकर।
हर हर शकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शकर॥
हर राम हर राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हर कृष्ण कृष्ण कृष्ण हर हर॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गोरीशकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(सस्करण २,३०,०००)

शान्तिका शाश्वत मार्ग

अग्निर्यथैको भुवन प्रविष्टो रूप रूप प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूप रूप प्रतिरूपो बहिश्च॥
वायुर्यथैको भुवन प्रविष्टो रूप रूप प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूप रूप प्रतिरूपो बहिश्च॥
एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एक रूप बहुधा य करोति।
तमात्मस्थ येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषा सुख शाश्वत नेतरेषाम्॥
नित्यो नित्याना चेतनश्चेतनानामेको बहूना यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थ येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषा शान्ति शाश्वती नेतरेषाम्॥

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डमे प्रविष्ट एक (ही) अग्नि नाना रूपाम उनक समान रूपवाला-सा हो रहा है, वैसे (ही) सब पाणियोका अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपोम उन्हींके-जैसे रूपवाला (हो रहा है) और उनके बाहर भी है। जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डमे प्रविष्ट एक (ही) वायु नाना रूपाम उनक समान रूपवाला-सा हो रहा है, वैसे (ही) सब प्राणियाका अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपोम उन्हींके-जैसे रूपवाला (हो रहा है) ओर उनके बाहर भी है। जो सब प्राणियाका अन्तर्यामी अद्वितीय एव सबको वशमे रखनेवाला (परमात्मा) (अपने) एक ही रूपको बहुत प्रकारसे बना लेता है उस अपने अन्दर रहनेवाले (परमात्मा)-को जो ज्ञानी पुरुष निरन्तर दखत रहत हैं उन्हींको सदा अटल रहनेवाला परमानन्दस्वरूप वास्तविक सुख (मिलता है) दूसराको नहीं। जो नित्योका (भी) नित्य (है) चेतनोका (भी) चेतन है (और) अकेला ही इन अनेक (जीवो)-के कर्मफलभोगाका विधान करता है उस अपने अन्दर रहनेवाले (पुरुषोत्तम)-को जो ज्ञानी निरन्तर दखते रहते हैं उन्हींको सदा अटल रहनेवाली शान्ति (प्राप्त होती है) दूसराको नहीं। (कठोपनिषद्)

इस अङ्कका मूल्य १३० रु० (सजिल्द १५० रु०)

वार्षिक शुल्क*		पञ्चवर्षीय शुल्क*
भारतमे १३० रु०	जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥	भारतमे ६५० रु०
सजिल्द १५० रु०	जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥	सजिल्द ७५० रु०
विदेशमे—सजिल्द US$25 (Air Mail) US$13 (Sea Mail)	जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥	

* कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखे।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित
website www.gitapress.org | e mail booksales@gitapress.org | © (0551) 2334721
शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजे।

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ८१व वर्ष—सन् २००७ का यह विशेषाङ्क 'अवतार-कथाङ्क' आपलोगाकी सेवामे प्रस्तुत है। इसमे ४७२ पृष्ठोमे पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठामे विषय-सूची आदि है। कई बहुरगे एव रेखाचित्र भी दिये गये है। डाकसे सभी ग्राहकोको विशेषाङ्क-प्रेषणमे लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एव प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये। जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारम सहयोगी भी हो सकेगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-सख्या एव पता छपा है, उसे कृपया जाँच ल तथा अपनी सदस्य-सख्या सावधानीसे नोट कर ले। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारम सदस्य-सख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते है। डाकद्वारा अङ्कोके सुरक्षित वितरणम सही पता एव पिन-कोड आवश्यक है। अत अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एव *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अत पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)
६	श्रीकृष्णाङ्क	१००	३४	सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	१३०	५६	वामनपुराण	७५
७	ईश्वराङ्क	९०	३५	सं० योगवासिष्ठ	९०	५९	श्रीमत्स्यमहापुराण	१५०
८	शिवाङ्क	१००	३६	सं० शिवपुराण (बडा टाइप)	११०	६६	सं० भविष्यपुराण	९०
९	शक्ति-अङ्क	१२०	३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२०	६९	गो-सेवा-अङ्क	७५
१०	योगाङ्क	९०	३९	श्रीभगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	९०	७१	कूर्मपुराण	८०
१५	साधनाङ्क	१२०	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	८०	७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
१९	सं० पद्मपुराण	१४०				७३	वेदकथाङ्क	८०
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	५५				७४	सं० गरुडपुराण	९०
२१	सं० ब्रह्मपुराण	७०	४४-४५	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी अनुवाद)	१२०	७५	आरोग्य-अङ्क (संवर्धित सं०)	१२०
२२	नारी-अङ्क	१००				७६	नीतिसार-अङ्क	८०
२६	भक्त-चरिताङ्क	१२०	४५	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	६०	७७	भगवत्प्रेम-अङ्क (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१००
२७	बालक-अङ्क	११०	४८	श्रीगणेश-अङ्क	७५			
२८	सं० नारदपुराण	१००	४९	श्रीहनुमान-अङ्क	७५	७८	व्रतपर्वोत्सव-अङ्क	१००
२९	संतवाणी-अङ्क	११०	५१	सं० श्रीवराहपुराण	६०	७९	देवीपुराण [महाभागवत] शक्तिपीठाङ्क	८०
३०	सत्कथा-अङ्क	१००	५३	सूर्याङ्क	६०			

सभी अङ्कोपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-विक्री-विभागसे प्राप्य है।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

॥ श्रीहरि ॥

'अवतार-कथाङ्क' की विषय-सूची

भगवान्‌के विविध अवतार और उनकी कथाएँ

विषय	पृष्ठ-सख्या

अवतारतत्त्व-मीमासा

अवतारविभूति-दर्शन ओर उनके आख्यान

चित्र-सूची

(रगीन-चित्र)

विषय	पृष्ठ-सख्या	विषय	पृष्ठ-सख्या

(सादे-चित्र)

श्रुतिका माङ्गलिक स्तवन

नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्ष तत्त्वमसि। त्वमेव केवल कर्तासि। त्वमेव केवल धर्तासि। त्वमेव केवल हर्तासि। त्वमेव सर्व खल्विद ब्रह्मासि। त्व साक्षादात्मासि नित्यम्॥

गणपतिको नमस्कार है, तुम्हीं प्रत्यक्ष तत्त्व हो, तुम्हीं केवल कर्ता, तुम्हीं केवल धारणकर्ता और तुम्हीं केवल सहारकर्ता हो, तुम्हीं केवल समस्त विश्वरूप ब्रह्म हो ओर तुम्हीं साक्षात् नित्य आत्मा हो। (श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष)

नमो व्रातपतये नमो गणपतये नम प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायेकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नम ॥

व्रातपतिको नमस्कार, गणपतिको नमस्कार, प्रमथपतिको नमस्कार, लम्बोदर, एकदन्त, विघ्ननाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्तिको नमस्कार है। (श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष)

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्र तन्न आ सुव॥

समस्त ससारको उत्पन्न करनेवाले—सृष्टि-पालन-सहार करनेवाले किवा विश्वमे सर्वाधिक देदीप्यमान एव जगत्को शुभकर्मोंमे प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सविता देव! आप हमारे सम्पूर्ण—आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—दुरिता (बुराइयो—पापो)-को हमसे दूर—बहुत दूर ले जायँ, दूर कर, कितु जो भद्र (भला) है, कल्याण है, श्रय ह, मङ्गल ह, उसे हमार लिये—विश्वक हम सभी प्राणियाक लिये—चारा ओरस (भलीभाँति) ल आय, दे। (ऋग्वेद ५।८२।५)

इद विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाऽसुरे स्वाहा॥

सर्वव्यापी परमात्मा विष्णुने इस जगत्को धारण किया है और वे ही पहले भूमि, दूसरे अन्तरिक्ष और तीसरे द्युलोकम तीन पदोको स्थापित करते हैं अर्थात् सर्वत्र व्याप्त हैं। इन विष्णुदेवमे ही समस्त विश्व व्याप्त है। हम उनके निमित्त हवि प्रदान करते हैं। (यजुर्वेद ५। १५)

नम शम्भवाय च मयोभवाय च नम शङ्कराय च मयस्कराय च नम शिवाय च शिवतराय च॥

कल्याण एव सुखके मूल स्रोत भगवान् शिवको नमस्कार ह। कल्याणके विस्तार करनेवाले तथा सुखके विस्तार करनेवाले भगवान् शिवका नमस्कार हे। मङ्गलस्वरूप आर मङ्गलमयताकी सीमा भगवान् शिवको नमस्कार है। (यजुर्वेद १६। ४१)

हृत्पुण्डरीकमध्यस्था प्रात सूर्यसमप्रभाम्। पाशाङ्कुशधरा सोम्या वरदाभयहस्तकाम्।
त्रिनेत्रा रक्तवसना भक्तकामदुघा भजे॥

नमामि त्वा महादेवीं महाभयविनाशिनीम्। महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्॥

हृत्कमलके मध्य रहनेवाली, प्रात कालीन सूर्यके समान प्रभावाली, पाश और अकुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपधारिणो वर और अभयमुद्रा धारण किय हुए हाथावाली, तीन नेत्रास युक्त, रक्तवस्त्र परिधान करनेवाली और कामधेनुक समान भक्ताके मनारथ पूर्ण करनवाली दवीको मैं भजता हूँ। महाभयका नाश करनेवाली, महासकटको शान्त करनेवाली और महान् करुणाकी साक्षात् मूर्ति तुम महादवीको मैं नमस्कार करता हूँ। (श्रीदेव्यथर्वशीर्ष)

~~~०~~~
~~~

'नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने'

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविमर्दनाय॥
नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमो नम पापविदारणाय।
नमो नमो दुर्जननाशकाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय॥
नमो नम कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥
नम पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमो नम पुण्यगतागताय॥
नमो नमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय॥
नमो नम कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय।
नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोरमाय॥
नमो नमस्तेऽद्भुतकारणाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने।
श्रितार्तिनाशिने तुभ्य भूयो भूयो नमो नम ॥

'सबके कारणरूप आप भगवान्‌को नमस्कार है, नमस्कार है। सबका पालन करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। समस्त देवताओके स्वामी आपको नमस्कार है, नमस्कार है। दैत्योका सहार करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जो भक्तजनोके प्रियतम, पापोके नाशक तथा दुष्टोके सहारक हैं, उन जगदीश्वरको बार-बार नमस्कार है। जिन्होने किसी विशेष हेतुसे वामनरूप धारण किया, जो नारस्वरूप जलमे निवास करनेके कारण 'नारायण' कहलाते हैं, जिनके विक्रमकी कोई सीमा नहीं है तथा जो शार्ङ्गधनुष, चक्र, खड्ग और गदा धारण करते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको बार-बार नमस्कार है। क्षीरसिन्धुमे निवास करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। अविनाशी लक्ष्मीपतिको नमस्कार है। जिनके अनन्त तेजकी सूर्य आदिसे भी तुलना नहीं हो सकती, उन भगवान्‌को नमस्कार है तथा जो पुण्यकर्मपरायण पुरुषोको स्वत प्राप्त होते हैं, उन कृपालु श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोका फल देनेवाले हैं, यज्ञाङ्गोसे जिनकी शोभा होती है तथा जो साधु पुरुषोके परम प्रिय हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको बार-बार नमस्कार है। जो कारणके भी कारण, शब्दादि विषयोसे रहित, अभीष्ट सुख देनेवाले तथा भक्तोके हृदयमे रमण करनेवाले हैं, उन भक्तवत्सल भगवान्‌को नमस्कार है। अद्भुत कारणरूप आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मन्दराचल पर्वत धारण करनेवाले कच्छपरूपधारी आपको नमस्कार है। यज्ञवराहरूपमे प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है। हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामनरूपधारी आपको नमस्कार है। क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाले परशुरामरूपमे आपको नमस्कार है। रावणका मर्दन करनेवाले श्रीरामरूपधारी आपको नमस्कार है तथा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके बडे भाई बलरामरूपमे आपको नमस्कार है। कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। सबको सुख देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप शरणागतोकी पीडाका नाश करनेवाले हैं। आपको बारबार नमस्कार है।' (स्कन्दपुराण)

भगवत्स्तुति

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः॥
भूस्तोयमग्निः पवनं खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः॥
यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि। तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः॥
नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च। हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे॥
अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे। क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये॥
नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह। वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च॥
नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे। नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च॥
नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने। म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे॥
नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च। हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो॥

[श्रीअक्रूरजी बोले—] प्रभो! आप प्रकृति आदि समस्त कारणोंके परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं तथा आपके ही नाभिकमलसे उन ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत्‌की सृष्टि की है। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय और उनके अधिष्ठातृदेवता—यही सब चराचर जगत् तथा उसके व्यवहारके कारण हैं और ये सब-के-सब आपके ही अङ्गस्वरूप हैं। प्रभो! आप क्रीडा करनेके लिये पृथ्वीपर जो-जो रूप धारण करते हैं, वे सब अवतार लोगोंके शोक-मोहको धो-बहा देते हैं और फिर सब लोग बड़े आनन्दसे आपके निर्मल यशका गान करते हैं। प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यव्रत आदिकी रक्षा-दीक्षाके लिये मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नामक असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ। आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचलको धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरा बार-बार नमस्कार। प्रह्लाद-जैसे साधुजनोंका भय मिटानेवाले प्रभो! आपके उस अलौकिक नृसिंहरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंके वनका छेदन कर देनेके लिये आपने भृगुपति परशुरामरूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें भगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वैष्णवजनों तथा यदुवंशियोंका पालन-पोषण करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुद्ध अहिंसा-मार्गके प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ और पृथ्वीके क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायँगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। (*श्रीमद्भागवत*)

अवतारहेतु आर्त-निवेदन

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता । गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई । जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा । अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा । निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा । सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा । मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना । जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा । मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥

जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह ।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह ॥
जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा । लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥

[ब्रह्माजी बोले—] हे देवताओंके स्वामी, सेवकोंको सुख देनेवाले, शरणागतकी रक्षा करनेवाले भगवान्! आपकी जय हो! जय हो!! हे गो-ब्राह्मणोंका हित करनेवाले, असुरोंका विनाश करनेवाले, समुद्रकी कन्या (श्रीलक्ष्मीजी)-के प्रिय स्वामी! आपकी जय हो। हे देवता और पृथ्वीका पालन करनेवाले! आपकी लीला अद्भुत है, उसका भेद कोई नहीं जानता। ऐसे जो स्वभावसे ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही हमपर कृपा करें। हे अविनाशी, सबके हृदयमें निवास करनेवाले (अन्तर्यामी), सर्वव्यापक, परम आनन्दस्वरूप, अज्ञेय, इन्द्रियोंसे परे, पवित्रचरित्र, मायासे रहित मुकुन्द (मोक्षदाता)! आपकी जय हो! जय हो!! [इस लोक और परलोकके सब भोगोंसे] विरक्त तथा मोहसे सर्वथा छूटे हुए (ज्ञानी) मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बनकर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणोंके समूहका गान करते हैं, उन सच्चिदानन्दकी जय हो। जिन्होंने बिना किसी दूसरे संगी अथवा सहायकके अकेले ही [या स्वयं अपनेको त्रिगुणरूप— ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप—बनाकर अथवा बिना किसी उपादान-कारणके अर्थात् स्वयं ही सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनकर] तीन प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न की, वे पापोंका नाश करनेवाले भगवान् हमारी सुधि लें। हम न भक्ति जानते हैं न पूजा। जो संसारके (जन्म-मृत्युके) भयका नाश करनेवाले, मुनियोंके मनको आनन्द देनेवाले और विपत्तियोंके समूहको नष्ट करनेवाले हैं, हम सब देवताओंके समूह मन, वचन और कर्मसे चतुराई करनेकी बान छोड़कर उन (भगवान्)-की शरण [आये] हैं। सरस्वती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकारकर कहते हैं, वे ही श्रीभगवान् हमपर दया करें। हे संसाररूपी समुद्रके [मथनेके] लिये मन्दराचलरूप, सब प्रकारसे सुन्दर, गुणोंके धाम और सुखोंकी राशि नाथ! आपके चरणकमलोंमें मुनि, सिद्ध और सारे देवता भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं।

देवता और पृथ्वीको भयभीत जानकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और सन्देहका हरनेवाली गम्भीर आकाशवाणी हुई—हे मुनि, सिद्ध और देवताओंके स्वामियो! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्यका रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंशमें अंशोंसहित मनुष्यका अवतार लूँगा। [श्रीरामचरितमानस]

परमात्मप्रभुके अवतारकी कथा

परमात्मप्रभु नित्य हैं, शाश्वत हैं। इस दृश्य जगत्‌मे अपने इच्छानुसार प्रकट होते हैं और फिर स्वधाम पधार जाते हैं। उनके वे धाम मायातीत और चिन्मय हैं। उनमे प्रभु विभिन्न रूपोमे उन-उन रूपोके अनुरूप पार्षदो, परिकरोके साथ विराजते और नाना क्रीडा करते हैं। उन अनन्तके अनन्त धाम हैं। शास्त्रोमे प्रमुख धामोका वर्णन है। वे अनेक होकर भी एक हैं, अभिन्न हैं।

प्रभुका स्वरूप सत्-चित्-आनन्दरूप है। 'सत्' का तात्पर्य—*जिसका अभाव कभी नहीं है*—'*नाभावो विद्यते सत*'। सत्‌का अभाव नहीं होता, वह त्रिकालाबाधित है अर्थात् वह निरन्तर रहता है, अत भगवान् सद्रूप हैं। 'चित्' का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान) अर्थात् जो अनन्त प्रकाशसे प्रकाशित हैं—ज्ञानस्वरूप हैं तथा जो आनन्दके सागर हैं अर्थात् वे पूर्णानन्द हैं। उनके आनन्दका एक कण पूरे ससारको आह्लादित करता है। इस प्रकार वे सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। इसी स्वरूपमे वे निराकार और साकार दोनो हैं।

कुछ लोग यह शका करते हैं कि जो परम तत्त्व निरजन है, निर्विकार है, निर्गुण और निराकार है, वह सगुण-साकार कैसे हो सकता है और क्यो होगा? इसका उत्तर यह है कि भगवान् सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वसमर्थ हैं। इस ससारका सृजन वे ही करते हैं। यह जगत् उन्हींका लीला-विलास है। जो ससारकी सृष्टि कर सकता है, क्या वह स्वय शरीर धारण नहीं कर सकता? अत निर्गुण निराकारका सगुण-साकार होना कोई अस्वाभाविक नहीं है। इसीलिये हमारे शास्त्र और ऋषि-महर्षि कहते हैं कि निर्विकार निराकार, निरजन, शुद्ध चैतन्य ब्रह्म जगत्‌के कल्याण और हित-साधनके लिये स्वेच्छासे सगुण-साकार रूपमे इस धरापर अवतीर्ण होता है।

वैसे तो सम्पूर्ण सृष्टि ही परमात्मप्रभुका रूप है अर्थात् स्वय परमात्मा ही ससारके रूपमे व्यक्त हैं। परब्रह्म परमात्मा पूर्ण चैतन्यस्वरूप हैं जो सोलह कलाओसे परिपूर्ण हैं। सृष्टिमे प्रकृतिके गुणोका वैषम्य होनेके कारण जड और चेतन—दोनोकी तारतम्यता दिखायी पडती है। ससारके प्राणियोमें जो चेतना है वह भगवान्‌की कलाओसे व्यक्त होती है जैसे राम और कृष्ण पूर्ण कलाओसे युक्त होनेके कारण प्रभुके पूर्णावतार हैं। सृष्टिके सभी प्राणी ईश्वरके अश हैं—'*ईस्वर अस जीव अबिनासी।*' परतु ईश्वरकी कलाके कम-ज्यादा होनेके कारण इन जीवोकी शक्ति और प्रभावमे अन्तर होता है।

जगत्‌में उद्भिज्ज स्वेदज अण्डज पिण्डज और जरायुज—ये पाँच प्रकारके जीव हैं जिनकी चेतनताका तारतम्य परमात्मप्रभुकी कलाओसे व्यक्त होता है। तृणसे तरुपर्यन्त उद्भिज्ज (जमीनसे उत्पन्न होनेवाली वृक्षादि वनस्पति) पदार्थोंमें भी आहार-ग्रहण निद्रा तथा स्नेह-द्वेषके प्रभावको ग्रहण करनेकी क्षमता होती है। यहाँ केवल अन्नमय कोशका विकास है। वे उद्भिज्ज एक कलासे युक्त हैं। स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्न जूँ-लीख आदि) जीव, जिनमे प्राणमय *कोशका भी विकास है अर्थात् ये सक्रिय जीव हैं* जो दो कलासे युक्त हैं। इसी प्रकार अण्डज (अण्डसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी-सर्प आदि) प्राणी तीन कलासे युक्त हैं, जिनमें मनोमय कोशका भी विकास है। ये अण्डज प्राणी सकल्प-विकल्प भी करते हैं। पिण्डजोमे विज्ञानमय कोश भी प्रकट होता है। ये प्राणी बुद्धिका उपयोग करते देखे जाते हैं, अत इनमे चार कलाका विकास कहा जाता है।

जरायुज प्राणी केवल मनुष्य है, जिसमे आनन्दमय कोश भी विकसित है। केवल मनुष्य ही अपना आनन्द हास्यादिके द्वारा व्यक्त कर सकता है और बिना दैहिक चेष्टाके आनन्दका अनुभव कर सकता है। अन्य प्राणियोमें यह क्षमता नहीं होती है, वे या तो शान्त रहेगे या दैहिक चेष्टासे अपना आनन्द व्यक्त करगे।

मानवयोनि कर्मयोनि है, इसी योनिमे जीव अपने शुभ-अशुभ कर्मोंके अनुसार पाप-पुण्यका भागी बनता है। उसे अपने कर्तृत्वका अभिमान रहता है। अन्य जितनी भी योनियाँ हैं, वे सब भोगयोनियाँ हैं। इन योनियोमे जीव केवल भोग भोगता है। बुद्धि भावना और प्रतिभाका तारतम्य मनुष्यमे ही रहता है, इसलिये मानवमे पाँचसे आठ कलातक चेतनकी अभिव्यक्ति हो सकती है।

सामान्य मनुष्योमे जो निम्न कोटिके हैं तथा वन्य मानवोमे चेतना पाँच कलासे विकसित रहती है। सामान्यत सुसस्कृत मानव-समाजमे चेतना छ कलाओसे युक्त होती है। सर्वसामान्यकी अपेक्षा समाजमे जो विशिष्ट पुरुष हैं तथा विशेष प्रतिभासे सम्पन्न हैं, ऐसे मनुष्य प्रभुकी सात कलासे युक्त होते हैं। लोकोत्तर महापुरुष जो यदा-कदा धरापर दीखते हैं, वे आठ कलासे युक्त होते हैं। पार्थिव देह आठ कलासे अधिकका प्राकट्य सह नहीं सकती। वैसे आठ कलाके प्राकट्यसे ही पार्थिव देहमे दिव्यता आ जाती है।

कारक पुरुषोमे नौ कलाका विकास होता है। आकस्मिक अवसरोपर जो अवतार होते हैं वे दस या ग्यारह कलाओसे

युक्त होते हैं। ऐसे अवतार सहसा प्रकट हो जाते हैं और जिस कार्यके लिये प्रकट हुए, उसको सम्पन्न करके तिरोहित हो जाते हैं। मत्स्य, कूर्म वराह, नृसिह आदि तथा भक्तोको दर्शन देनेके लिये जो अवतार हाते हैं वे इसी प्रकारके अवतार होते हैं।

नौ कलाका विकास दिव्य देहमे ही हो पाता है और दस या ग्यारह कला जहाँ प्रकट हो, वहाँ तो पञ्चभूतका लेश भी नहीं रह पाता। वहाँ स्थूल-सूक्ष्म देहका भेद नहीं होता। वह चिन्मय-वपु होता है। अत उसका आकार चाहे जब जैसा बदल सकता है। जैसे भगवान् वामन विराट् हो गये। इन दिव्य देहोमे वस्त्राभरण-आयुध आदि भी दिव्य होते हैं। ग्यारह कलासे ऊपर होनेपर प्रभु पूर्णावतारके रूपमे प्रकट होते हैं। श्रीराम और श्रीकृष्ण परिपूर्णावतार हैं। इन्होने मानवरूपम प्रकट होकर इस धराको अपनी पूर्ण लीलासे आप्लावित किया।

अवताराकी कई काटि है, जैसे अशाशावतार, अशावतार आवेशावतार, कलावतार नित्यावतार, युगावतार आदि।

मरीचि आदि ऋषि अशाशावतार हैं, ब्रह्मा नारदादि अशावतार हैं, परशुराम, पृथु आदि आवशावतार तथा कपिल, वामन और वराहप्रभृति कलावतार हैं। इनम कुछ नित्यावतार हैं, प्रत्येक युगम और कल्पम वे हाते ही हैं जैसे ब्रह्माजी सृष्टि जब हागी तब प्रारम्भमे प्रकट हागे और सृष्टिपर्यन्त रहेग। कुछ युगावतार हैं जा निश्चित युगाम होते ही हैं।

वास्तवम सृष्टिके सम्पूर्ण जीव परमात्माके ही अशरूपमे अवतरित हैं। प्रभुकी कलाके आधारपर इनकी शक्ति, प्रभाव और क्षमतामे अन्तर होता है। अल्पकलासे युक्त जीव सामान्य होत हैं स्वय प्रभुका अवतरण विशेष कलाआसे युक्त होता है।

अब एक प्रश्न उठता है कि भगवान्के अवतारका प्रधान प्रयोजन क्या है ? भगवान् स्वय कहते हैं—

परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थात् साधुपुरुषाका उद्धार करनेके लिये पापकर्म करनेवालाका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेक लिय में युग-युगम प्रकट हुआ करता हूँ।

परतु यह बात ऐसी है जैस मच्छरको मारनेके लिये तोप लगायी जाय। भला जा भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, जिनके सकल्पमात्रसे सारी सृष्टिका सृजन हाता है, उन्हे क्या इस तुच्छकार्यके लिये अवतार लेनेकी आवश्यकता है ? अत इसका तो कोई ऐसा कारण होना चाहिये, जहाँ भगवान्की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता कुठित हो जाती हो और जिसके लिये उन्हे दिव्य मगल विग्रह धारण करना अनिवार्य हो जाता हो।

हमे इसका उत्तर महारानी कुन्तीके इन दिव्य शब्दोसे मिलता है—

तथा परमहसाना मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थ कथ पश्येम हि स्त्रिय ॥

(श्रीमद्भा० १।८।२०)

कुन्ती कहती हैं—भगवन्! जो अमलात्मा परमहस मुनि हैं, उनके हृदयमे भक्तियोगका विधान करनेके लिये आपका अवतार हाता है, हम स्त्रियाँ इस रहस्यको कैसे समझ सकती हैं ?

यहाँ भगवान्के अवतारका प्रयोजन अमलात्मा मुनियोके लिये भक्तियोग प्रदान करना बतलाया गया है। वास्तवम भजनीयके बिना भक्ति नहीं हो सकती। प्रेमलक्षणा भक्तिका आलम्बन काई अत्यन्त चित्ताकर्षक और परम अभिलषित तत्त्व ही हो सकता है। जो महामुनीश्वर अमलात्मा प्राकृत प्रपञ्चोसे दूर रहकर परम तत्त्वम परिनिष्ठित हैं उनके मनका आकर्षण भगवान्के सिवा और कौन हो सकता है ? अत इस बातकी आवश्यकता होती है कि उनके परम आराध्य भगवान् ही अचिन्त्य एव अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमयी मगलमूर्तिम अवतीर्ण होकर उन्हे भजनीय रूपमे अपना स्वरूप समर्पण कर भक्तियोग प्रदान करे, क्योकि जो कार्य पूर्ण परब्रह्म परमात्माके अवतीर्ण हुए बिना सम्पन्न न हो सकता हो जिसके सम्पादनम उनकी सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता कुठित हो जाय उसीके लिये उनका अवतीर्ण हाना सार्थक है।

ब्रह्मदर्शी तत्त्वज्ञगण जिस निर्विशेष शुद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार करते हैं, उसकी अपेक्षा भगवान्का सगुण दिव्य मगलमय विग्रह अधिक आकर्षक क्या है—इस विषयम भावुकोका ऐसा कथन है कि जिस प्रकार पत्थरमे समानता हानपर भी पाषाण आदिकी अपेक्षा हीरा अधिक मूल्यवान् होता है तथा कपासकी अपेक्षा उससे बना हुआ वस्त्र बहुमूल्य होता है, उसी प्रकार शुद्ध परब्रह्मकी अपक्षा उसीसे विकसित भगवान्की दिव्य मगलमयी मूर्ति कहीं अधिक माधुर्यसम्पन्न होती है। इक्षुदण्ड (ईख) स्वभावसे ही मधुर है, किंतु यदि उसम कोई फल लग जाय तो उसकी मिठासका क्या कहना। मलयागिरि चन्दनके वृक्षमे यदि कोई पुष्प आ जाय ता वह कितना सुगन्धित होगा। इसी प्रकार भगवान्की सगुण-साकार मूर्तिके

सम्बन्धमे समझना चाहिये।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान्‌के निर्गुण निर्विशेष स्वरूपमें वह परमानन्द है ही नहीं जो उनके सगुण रूपमें है, कारण—इक्षुदण्डकी मधुरिमा, पाषाण आदिका मूल्य, चन्दन आदिकी सुगन्धि—ये सब सातिशय हैं, इनमें कम-अधिक हो सकता है, परंतु भगवान्‌में जो सौन्दर्य, माधुर्य एवं आनन्दादि हैं—वे निरतिशय हैं अर्थात् अनन्तानन्त हैं।

इन सबसे यही निश्चय होता है कि भगवान्‌के अवतारका प्रधान प्रयोजन अमलात्मा परमहंसोंके लिये भक्तियोगको प्रदान करना है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये वे अपनी लीलाशक्तिसे दिव्य मंगलमय सगुण-साकारस्वरूप धारण करते हैं। यह लीलाशक्ति भगवान्‌की परम अन्तरंगा है।

इसके साथ ही भगवान्‌की इस उक्ति—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—के अनुसार भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन सर्वसाधारणके कल्याणोपयुक्त धर्मकी स्थापना ही बताया गया है। यद्यपि उनके प्रादुर्भावका प्रधान प्रयोजन अमलात्माओंके भक्तियोगका विधान करना ही है तथापि अवान्तर प्रयोजन सन्मार्गपर चलनेवाले साधुओंकी रक्षा, दुष्कृतियोंका विनाश और वैदिक-स्मार्तादि कर्मोंकी स्थापना भी है ही।

विभिन्न युगोंमें भगवान्‌के सगुण-साकार रूपमें विभिन्न अवतारोंका दिव्य दर्शन हमें प्राप्त होता है। भगवान् नारायण (विष्णु), श्रीगङ्गाधर (शिव), महाशक्ति (भगवती दुर्गा), गणनाथ (गणेश) और भुवनभास्कर (सूर्यदेव)—ये पञ्चदेव एक ही तत्त्वके पाँच स्वरूप हैं, वैसे दिव्य धामोंमें इनके पृथक्-पृथक् नित्य धाम हैं, किंतु साकार विग्रह पृथक्-पृथक् होते हुए भी ये एक ही परम तत्त्वके अनेक रूप हैं। अतः इनमें न सामर्थ्यका कोई अन्तर है और न अनुग्रहका। एक अनन्त सच्चिदानन्द चाहे जिस रूपमें हो, उनमें कोई अंतर सम्भव नहीं है। अवतार इन पाँच देवोंमेंसे ही किसीका होता है अथवा इनके माध्यमसे ही होता है।

सृष्टिके पालनका दायित्व भगवान् विष्णुका—ब्रह्माण्डाधीश क्षीराब्धिशायीका है, अतः अधिकांश अवतार इनके ही अंश माने जाते हैं। इसलिये भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारोंकी कथा पुराणोंमें प्राप्त है। भगवान्‌के दस अवतार प्रमुख हैं जिनकी कथाएँ विशेष रूपसे प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार भगवान् सदाशिव विश्वनाथके विभिन्न अवतारोंका वर्णन, पराम्बा भगवती त्रिपुरसुन्दरीके अवतारोंका विवेचन, गजानन भगवान् गणेश और भुवनभास्कर भगवान् सूर्यनारायणके अवतारोंका वर्णन भी मिलता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ हैं—उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग) अर्थात् सामर्थ्यके अंशसे उत्पन्न हुआ समझो।*

उपर्युक्त भगवद्वचनोंसे यह सिद्ध है कि भगवान् जब जैसी आवश्यकता होती है—कभी स्वयं पूर्णरूपसे, कभी अंशरूपसे और कभी अपने तेज, शक्ति, बुद्धि, बल आदिको किसी विशेष पुरुषमें प्रतिष्ठितकर उसे लोककल्याणके लिये जगत्‌में उपस्थित करा देते हैं, यह भी ठाकुरजीकी लीला ही है। कब, किसे, कहाँ निमित्त बनाकर जगत्‌का कार्य करवाना है, यह वे ही जान सकते हैं। भगवत्प्राप्तिका माध्यम होनेसे भगवद्विभूतिसे प्रतिष्ठित संत-महापुरुष भी लोकहितका कार्य करते हैं और भगवान्‌के निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण करते हैं। ऐसा समझना चाहिये कि विभूतिरूपसे ये भी भगवद्रूप ही हैं।

संत-महात्मा, योगी, भक्त, आचार्य, सद्‌गुरु आदिमें परमात्माकी ही मर्यादा स्थित रहती है, ऐसे ही जगत्‌के भौतिक प्रतीत होनेवाले कुछ पदार्थोंमें भी विशिष्ट देवत्व स्थित रहता है। विभूतिके रूपमें भगवान्‌की विशिष्ट अवतरण-लीलाओंका निदर्शन भी समय-समयपर प्राप्त होता रहता है। पुराणादि ग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याणविग्रह प्रभुके मुख्य अवतारोंका सविशेष वर्णन है, पर उनमें भी क्रमभेद है।

जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे असंख्य छोटे-छोटे जलप्रवाह निकलकर चारों ओर धावित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंकी उत्पत्ति होती है—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(श्रीमद्भा० १।३।२६)

दयाधामके इन अद्भुत एवं मंगलमय अवतारोंका चरित साधक एवं भक्तजनोंके लिये स्वाभाविक रूपसे कल्याणकारी है।

—**राधेश्याम खेमका**

---

* यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽंशसम्भवम्॥ (गीता १०।४१)

'हिरण्यगर्भ. समवर्तताग्रे'

[भगवान् ब्रह्माजीका अवतरण]

अचिन्त्य परमेश्वरकी अतर्क्य लीलासे त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें जब सृष्टि-प्रवाह होता है, उस समय रजोगुणसे प्रेरित व ही परब्रह्म सगुण होकर सर्वप्रथम प्रजापति हिरण्यगर्भके रूपम प्रकट होते हैं और वे ही अखिल प्राणि-समुदायक स्वामी हैं—

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत्।

(यजुर्वेद २३।१)

वेदाम सृष्टिकर्ताके लिय विश्वकर्मन्, ब्रह्मणस्पति, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा तथा प्रजापति आदि नाम आये हैं। प्रत्येक कल्पकी सृष्टि-प्रक्रियाम सर्वप्रथम आविर्भाव ब्रह्माजीका ही होता है। औपनिषदश्रुतिम बताया गया है कि हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीका प्राकट्य सर्वप्रथम हुआ और वे ही इस विश्वके रचयिता तथा इसकी रक्षा करनेवाले हैं—

ब्रह्मा देवाना प्रथम सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।

(मुण्डक० १।१।१)

ब्रह्माजीका अवतरण किससे, कैस और कब हुआ—इस सम्बन्धम पुराणाम एक रोचक कथा प्राप्त होती है, जिसमे बताया गया है कि महाप्रलयके बाद कालात्मिका शक्तिको अपने शरीरम निविष्ट कर भगवान् नारायण दीर्घकालतक योगनिद्राम निमग्न रहे। महाप्रलयकी अवधि समाप्त होनेपर उनके नेत्र उन्मीलित हुए और सभी गुणाका आश्रय लेकर वे प्रबुद्ध हुए। उसी समय उनकी नाभिस एक दिव्य कमल प्रकट हुआ जिसकी कर्णिकाआके ऊपर स्वयम्भू ब्रह्मा जो सम्पूर्ण ज्ञानमय और वेदरूप कहे गये हैं, प्रकट होकर दिखायी पडे। उन्होने शून्यम अपने चारो ओर नेत्राको घुमा-घुमाकर देखना प्रारम्भ किया। इसी उत्सुकताम देखनेकी चेष्टा करनेसे चारो दिशाआम उनके चार मुख प्रकट हो गये—

परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र-
श्चत्वारि लेभेऽनुदिश मुखानि॥

(श्रीमद्भा० ३।८।१६)

किंतु उन्हे कुछ भी दिखलायी नहीं पडा और उन्हे यह चिन्ता हुई कि इस नाभिकमलम बैठा हुआ मैं कौन हूँ और कहाँसे आया हूँ तथा यह कमल भी कहाँसे निकला है। बहुत चिन्तन करनेपर और दीर्घकालतक तप करनेके बाद उन्होने उन परम पुरुषके दर्शन किये, जिन्हे पहले कभी नहीं देखा था और जो मृणालगौर शेषशय्यापर सो रहे थे तथा जिनके शरीरसे महानीलमणिको लज्जित करनेवाली तीव्र प्रकाशमयी छटा दसो दिशाआको प्रकाशित कर रही थी। ब्रह्माजीको इससे बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होने उन भगवान् विष्णुको सम्पूर्ण विश्वका तथा अपना भी मूल समझकर उनकी दिव्य स्तुति की। भगवान्ने अपनी प्रसन्नता व्यक्तकर उनसे कहा कि अब आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, आप तप शक्तिसे सम्पन्न हो गये हैं और आपको मेरा अनुग्रह भी प्राप्त है। अब आप सृष्टि करनेका प्रयत्न कीजिये। आपको अबाधित सफलता प्राप्त होगी।

भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे सरस्वती देवीने ब्रह्माजीके हृदयमें प्रविष्ट होकर उनके चारो मुखोसे उपवेद और अङ्गोंसहित चारो वेदोका उन्हे ज्ञान कराया। पुन उन्होंने सृष्टि-विस्तारके लिये सनकादि चार मानस-पुत्रोंके बाद मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अगिरा, भृगु, वसिष्ठ तथा दक्ष आदि मानस-पुत्रोको उत्पन्न किया और आगे स्वायम्भुवादि मनु आदिसे सभी प्रकारकी सृष्टि होती गयी।

इस कथानकसे स्पष्ट है कि सृष्टिके प्रारम्भम भगवान् नारायणके नाभिकमलसे सर्वप्रथम ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ।

इसीसे ये पद्मयोनि भी कहलाते हैं। नारायणकी इच्छाशक्तिकी प्रेरणासे स्वय उत्पन्न होनेके कारण ये 'स्वयम्भू' भी कहलाते हैं।

मानवसृष्टिके मूलहेतु स्वायम्भुव मनु भी उन्हींके पुत्र थे और उन्हींके दक्षिण भागसे उत्पन्न हुए थे। स्वयम्भू (ब्रह्मा)-के पुत्र होनेसे ये स्वायम्भुव मनु कहलाते हैं। ब्रह्माजीके ही वामभागस महारानी शतरूपाकी उत्पत्ति हुइ। स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपासे ही मैथुनी-सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। सभी देवता ब्रह्माजीके पौत्र माने गये हैं, अत वे पितामह नामसे प्रसिद्ध हैं। ब्रह्माजी यूँ ता देवता, दानव तथा सभी जीवाके पितामह हैं, किंतु सृष्टि-रचनाके कारण वे धर्म एव सदाचारके ही पक्षपाती हैं, अत जब कभी पृथ्वीपर अधर्म बढता है, अनीति बढती है तथा पृथ्वीमाता दुराचारियोके भारसे पीडित होती हैं तब कोई उपाय न देखकर गोरूप धारण कर वे देवताओसहित ब्रह्माजीके पास ही जाती हैं। इसी प्रकार जब कभी देवासुर-सग्रामोम देवगण पराजित होकर अपना अधिकार खो बैठते हैं तो वे भी प्राय ब्रह्माजीके पास ही जाते हैं और ब्रह्माजी भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर उन्ह अवतार ग्रहण करनेको प्रेरित करत हैं। अत विष्णुक प्राय सभी अवतारोमे ये ही निमित्त बनते हैं। दुर्गा आदिक अवतारोमे भी ये ही प्रार्थना करके उन्हे विभिन्न रूपाम अवतरित होनेकी प्रेरणा देते हैं और पुन धर्मकी स्थापना करनेके पश्चात् देवताओको यथायोग्य भागका अधिकारी बनाते हैं।

इस प्रकार ब्रह्माजीका समस्त जगत् तथा देवोपर महान् अनुग्रह है। अपने अवतरणके मुख्य कार्य सृष्टि-विस्तारको भलीभाँति सम्पन्न कर वे अपने कार्यो तथा विविध अवतारामे प्रेरक बनकर जीव-निकायका महान् कल्याण करते हैं। ब्रह्माजीके अवतरणका दूसरा मुख्य उद्देश्य था शास्त्रकी उद्भावना तथा उसका सरक्षण। पुराणोमे यह वर्णन आता है कि जब विष्णुजीके नाभिकमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए तो भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे ही देवी सरस्वतीने प्रकट होकर उनके चारा मुखासे वेदाका उच्चारण कर समस्त ज्ञानराशिका विस्तार किया—

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वताजस्य सतीं स्मृति हृदि।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यत
स मे ऋषीणामृषभ प्रसीदताम्॥

(श्रीमद्भा० २।४।२२)

ब्रह्माजीके चारो मुखासे चार वेद, उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, स्थापत्यवेद), न्यायशास्त्र, होता उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा आदि ऋत्विज् प्रकट हुए। इनक पूव मुखसे ऋग्वेद, दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, पश्चिम मुखसे सामवेद तथा उत्तर मुखसे अथर्ववेदका आविर्भाव हुआ। इतिहास-पुराणरूप पञ्चम वेद भी उनके मुखसे आविर्भूत हुआ। साथ ही षोडशी, उक्थ्य, अग्निष्टोम, आप्तार्याम, वाजपेय आदि यज्ञ तथा विद्या दान, तप और सत्य—ये धर्मके चार पाद भी प्रकट हुए।

यज्ञकार्यमे सर्वाधिक प्रयुक्त होनेवाली पवित्र समिधा और पलाश-वृक्ष ब्रह्माजीका ही स्वरूप माना जाता है। अथर्ववेद तो ब्रह्माजीके नामसे ही 'ब्रह्मवेद' कहलाता है। पाँचा वेदोके ज्ञाता और यज्ञके मुख्य निरीक्षक ऋत्विज्को 'ब्रह्मा'के नामसे ही कहा जाता है, जो प्राय यज्ञकुण्डकी दक्षिण दिशाम स्थित हाकर यज्ञ-रक्षा और निरीक्षणका कार्य करते हैं।

भगवान् ब्रह्मा वेदज्ञानराशिमय शान्त, प्रसन्न और सृष्टिके रचयिता हैं। सृष्टिका निर्माण कर य धर्म सदाचार, ज्ञान तप, वैराग्य तथा भगवद्भक्तिकी प्रेरणा देते हुए सदा सौम्य स्वरूपम स्थित रहते हैं। साररूपम ये कल्याणक मूल कारण हैं और समस्त पुरुषार्थोके सम्पादनपूर्वक अपनी सभी प्रजा-सततियाका सब प्रकारसे अभ्युदय करते हैं। सावित्री और सरस्वती देवीके अधिष्ठाता होनेसे सद्बुद्धिके प्रेरक भी ये ही हैं।

मत्स्यपुराण (अ० २६०)-म बताया गया है कि ब्रह्माजी चतुर्मुख, चतुर्भुज एव हसपर आरूढ रहते हैं, यथारुचि वे कमलपर भी आसीन रहते हैं। उनके वामभागम देवी सावित्री तथा दक्षिण भागम देवी सरस्वती विराजमान रहती हैं। ब्रह्मलोकम ब्रह्मसभामे भगवान् ब्रह्माजी विराजमान रहते हैं, इनकी सभाको 'सुसुखा' कहा गया है। इसे ब्रह्माजीने स्वय अपने सङ्कल्पसे उत्पन्न किया था। यह सभीके लिये सुखद है। यहाँ सूर्य चन्द्रमा या अग्निक

प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है। यह अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। सभी वेद, शास्त्र, ऋषि, मुनि तथा देवता यहाँ मूर्तरूप होकर नित्य उनकी उपासना करते रहते हैं। समस्त कालचक्र भी मूर्तिमान् होकर यहाँ उपस्थित रहता है।

ब्रह्माजीका दिन ही दैनन्दिन सृष्टि-चक्रका समय होता है। उनका दिन ही कल्प कहलाता है (एक कल्पमे चौदह मन्वन्तरका समय होता है), इतनी ही वडी उनकी रात्रि होती है। ब्रह्माके दिनके उदयके साथ ही त्रैलोक्यकी सृष्टि होती है और उनकी रात्रि ही प्रलयरूप है। ब्रह्माजीकी परमायु ब्राह्मवर्षके मानसे एक सौ वर्ष है, इसे 'पर' कहते हैं। पुराणो तथा धर्मशास्त्राके अनुसार इस समय ब्रह्माजी अपनी आयुका आधा भाग अर्थात् एक परार्ध—५० ब्राह्म दिव्य वर्ष बिताकर दूसरे परार्धमे चल रहे हैं अर्थात् यह उनके ५१वे वर्षका प्रथम दिन या कल्प है। उनके दिव्य सौ वर्षोंकी आयुमे अनेक बार सृष्टि और प्रलयका क्रम चलता रहता है। इस प्रकार ब्रह्माजी सृष्टि-सृष्ट्यन्तरमे चराचर जगत्के साक्षी बनकर स्वय भी अवतरित होते हैं और अवतारोके प्रेरक भी बनते हैं। उनकी करुणा सबपर है। अपनी प्रजाको उद्देश्यकर उन्होने अनेक उपदेश उन्हें प्रदान किये हैं और सदा धर्माचरण करनेका ही परामर्श दिया है।

ब्रह्माजीने हसरूपमे प्रकट होकर साध्यगणाको जो

उपदेश दिया, वह बडे ही महत्त्वका है, बडा ही कल्याणकारी है। हसरूपी ब्रह्माजी कहते हैं कि वेदाध्ययनका सार है सत्यभाषण, सत्यभाषणका सार है इन्द्रियसयम और इन्द्रियसयमका फल है मोक्ष—यही सम्पूर्ण शास्त्रोका उपदेश है—

वेदस्योपनिषत् सत्य सत्यस्योपनिषद् दम ।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्॥

(महा० शान्ति० २९९।१३)

सगके अमोघ प्रभावको बताते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि जैसे वस्त्र जिस रगमे रगा जाय, वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरका साथ करता है तो वह भी उन्हीं-जैसा हो जाता है अर्थात् उसपर उन्हींका रग चढ जाता है—

यदि सन्त सेवति यद्यसन्त
तपस्विन यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रगवश प्रयाति
तथा स तेषा वशमभ्युपैति॥

(महा०शान्ति० २९९।३३)

इसलिये कल्याणकामी जनोंको चाहिये कि वे सज्जनोंका ही साथ करे।

सर्वदेवमयी गौ सुरभी भी ब्रह्माजीके वरसे ही महनीय पदको प्राप्त कर सकी हैं। महाभारतमे इस बातको देवराज इन्द्रसे बताते हुए ब्रह्माजीने कहा कि हे शचीपते!

जब मैंने सुरभी देवीसे कहा—मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ,

वर माँगो, तब सुरभीने कहा—लोकपितामह! आपकी प्रसन्नता ही मेरे लिये सबसे बडा वर है—

'एष एव वरो मेऽद्य यत्प्रीतोऽसि ममानघ॥'

(महा०अनु० ८३।३४)

सुरभीकी बात सुनकर उसकी निष्काम तपस्यासे अभिभूत हो ब्रह्माजीने उसे अमरत्वका वर दिया और उससे कहा—तुम मेरी कृपासे तीनों लोकोंके ऊपर निवास करोगी

और तुम्हारा वह धाम 'गोलोक' नामसे विख्यात होगा। महाभाग! तुम्हारी सभी शुभ संतानें मानवलोकमें कल्याणकारी कर्म करते हुए निवास करेंगी। ब्रह्माजीके वरसे ही लोकमें भी गौएँ पूज्य हुईं।

भगवान् ब्रह्माजी तपस्याके मूर्तरूप हैं। प्रलयकालके जलार्णवमें जब सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था, इन्हें अव्यक्त देववाणीद्वारा 'तप करो-तप करो' का आदेश प्राप्त हुआ। उसी दैवीवाक्का अनुसरण कर ब्रह्माजी दीर्घकालतक तपस्यामें प्रवृत्त हो गये तब प्रसन्न हो नारायणने इन्हें दर्शन दिये और इन्हें जो उपदेश दिया वह चतुःश्लोकी भागवतके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। यह नारायणका इनपर विशेष अनुग्रह था। वे चार श्लोक इस प्रकार हैं—

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥
अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥

(श्रीमद्भा० २।९।३१—३४)

मेरा जितना विस्तार है, मेरा जो लक्षण है, मेरे जितने और जैसे रूप, गुण और लीलाएँ हैं—मेरी कृपासे तुम उनका तत्त्व ठीक-ठीक वैसा ही अनुभव करो।

सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं-ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं ही हूँ और जो कुछ बच रहेगा वह भी मैं ही हूँ।

वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझनी चाहिये।

जैसे प्राणियोंके पञ्चभूतरचित छोटे-बडे शरीरोंमें आकाशादि पञ्चमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ।

यह उपदेश कर नारायणने अपना रूप छिपा लिया तब सर्वभूतस्वरूप ब्रह्माजीने अञ्जलि बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और पहले कल्पमें जैसी सृष्टि थी, उसी रूपमें इस विश्वकी रचना की—

'सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत्॥'

(श्रीमद्भा० २।९।३८)

भगवान् ब्रह्माकी पूजा-उपासना

अमूर्त उपासनामें ब्रह्माजीकी सर्वत्र पूजा होती है और सभी प्रकारके सर्वतोभद्र लिङ्गतोभद्र तथा वास्तु

आदि चक्राम उनकी पूजा मुख्य स्थानमे होती है, किंतु मन्दिराके रूपमे इनकी पूजा मुख्यतया पुष्कर-क्षेत्र तथा ब्रह्मावर्त-क्षेत्र (बिठूर)-मे देखी जाती है, वैसे इनके भित्तिचित्र और प्रतिमाचित्र तो सर्वत्र मिलते हैं। मध्वसम्प्रदाय जिसके भेदाभेद, स्वतन्त्रास्वतन्त्र तथा द्वैतवाद आदि अनेक नाम हैं, के आदिप्रवर्तक आचार्य भगवान् ब्रह्मा ही माने गये हैं, इसलिये उडुपी आदि मुख्य मध्वपीठामें भी इनकी बडे आदरसे पूजा-आराधनाकी परम्परा है।

प्रतिमाके रूपमे ब्रह्माजीकी व्यापक पूजा ग्राम-ग्राम और नगर-नगरमे शिव, विष्णु, दुर्गा, राम, कृष्ण हनुमान् आदिके समान नहीं देखी जाती। यद्यपि इसके कारण और आख्यान भी अनक प्राप्त होते हैं तथापि मुख्य कथा पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमे आती है। उसीमे यह भी बात आती है कि पुष्करक महायज्ञमे जब सभी देवता उपस्थित हो गये और सभीकी पूजा आदिक पश्चात् हवनकी तैयारी हाने लगी, सभी देवपत्नियाँ भी उपस्थित हो चुकी थीं, किंतु ब्रह्माजीकी पत्नी सरस्वतीजी देवियाक बुलाये जानेपर भी विलम्ब करती गयीं, तब अपत्नीक यज्ञका विधान न हानेस यज्ञारम्भमे अति विलम्ब दखकर इन्द्रादि देवताआने कुछ समयके लिये सावित्री नामकी कन्याको जो सभी सुलक्षणासे सम्पन्न थी, ब्रह्माजीके वामभागमे बैठा दिया। थोडी देरके पश्चात् सरस्वतीजी जब पहुँचीं तो यह सब देखकर क्रुद्ध हो गयीं और उन्होने देवताओको बिना विचार किये काम करनेके कारण सतानरहित होनेका शाप दे दिया और ब्रह्माजीको भी पुष्कर आदि कुछ क्षेत्रोको छोडकर अन्यत्र मन्दिर आदिमे प्रतिमा-रूपमे पूजित न होनेका शाप दे दिया। अत उनकी प्रस्तर आदिकी प्रतिमाएँ प्राय अन्यत्र नहीं देखी जाती हैं, किंतु मन्त्र, ध्यान और यज्ञादिमे उनका सादर आवाहन-पूजनके पश्चात् उन्हे आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, स्तुति-पूजा भी होती है और सर्वतोभद्रादि चक्रोम सर्वाधिक प्रतिष्ठित-रूपसे वे उपास्य माने गये हैं। सर्वताभद्रचक्रके मध्यमे अष्टदल कमलकी कर्णिकामे इनका आवाहन-पूजन किया जाता है—**'मध्ये कर्णिकाया ब्रह्माणम्'**। **'ब्रह्म जज्ञानम्०'** यह उनका मुख्य मन्त्र है। **'ॐ ब्रह्मणे नम '** इस नाम-मन्त्रसे भी पूजन होता है। वरुणकलशम भी 'कुशब्रह्मा' की स्थापना होती है। देवता तथा असुरोकी तपस्याम प्राय सबसे अधिक आराधना ब्रह्माजीकी ही होती हे। विप्रचित्ति, तारक, हिरण्यकशिपु, रावण, गजासुर तथा त्रिपुर आदि असुरोको इन्होन वरदान देकर प्राय अवध्य कर डाला था और देवता, ऋषि, मुनि गन्धर्व, किन्नर तथा विद्याधरगण तो इनकी आराधनाम निरत रहते ही हे।

~~०~~

सप्तर्षियोंका अवतरण

'नम परमऋषिभ्यो नम परमऋषिभ्य ॥'

(मुण्डकोपनिषद् ३।२।११)

परम ऋषियोको नमस्कार है, परम ऋषियाका नमस्कार है।

सप्तर्षियाका प्रादुर्भाव श्रीब्रह्माजीके मानससङ्कल्पसे हुआ है। सृष्टिके विस्तारके लिये ब्रह्माजीने अपने ही समान दस मानस-पुत्रोको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—मरीचि, अत्रि अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष तथा नारद—

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्य पुलह क्रतु ।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारद ॥*

(श्रीमद्भा० ३।१२।२२)

ये ऋषि गुणोम श्रीब्रह्माजीक समान ही हैं, अत पुराणोम य नौ ब्रह्मा भी कहे गये हैं—**'नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चय गता ॥'** (विष्णुपु० १।७।६) यही आदि ऋषि-सर्ग है। ये ही ऋषि भिन्न-भिन्न मन्वन्तरोमे सप्तर्षियोंके

* विष्णुपुराण (१।७।५)-मे श्रीनारदजीका नाम पृथकुसे लिया गया है और नौकी गणना हुई है—
भृगु पुलस्त्य पुलह क्रतुमङ्गिरस तथा। मरीचि दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान्॥

रूपमे अवतरित होते रहते हैं।

श्रीमद्भागवतम श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियास कहते हैं कि ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी शक्तिशाली हैं, वे सब-के-सब भगवान् श्रीहरिके ही अशावतार अथवा कलावतार हैं—

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजस ।
कला सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥

(श्रीमद्भा० १।३।२७)

इस प्रकार ब्रह्माजीके मानस पुत्र सप्तर्षिगण भी भगवान्‌के ही अवतार हैं। सप्तर्षियोंका परिगणन भगवद्विभूतियामें हुआ है।* इन ऋषियाका प्रादुर्भाव ब्रह्माजीके मानसिक सङ्कल्पसे उनके अनेक अङ्गास हुआ है, अत यह ऋषिसृष्टि मानससृष्टि या आगिक सृष्टि अथवा साङ्कल्पिक सृष्टि भी कहलाती है।

इनमे नारदजी प्रजापति ब्रह्माकी गोदसे, दक्ष अँगूठेसे, वसिष्ठ प्राणसे, भृगु त्वचासे, क्रतु हाथसे, पुलह नाभिसे, पुलस्त्य कानोसे, अङ्गिरा मुखसे, अत्रि नेत्रासे और मरीचि मनसे उत्पन्न हुए—

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयम्भुव ।
प्राणाद्वसिष्ठ सञ्जातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतु ॥
पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्य कर्णयोर्ऋषि ।
अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत्॥

(श्रीमद्भा० ३।१२।२३-२४)

ब्रह्माजीसे प्रादुर्भूत ऋषियोकी इस सृष्टिको पुराणोमे ऋषिसर्ग कहा गया है। प्रकारान्तरसे ये ऋषि ब्रह्माजीके ही आत्मरूप—अशरूप हैं और उन्हींके अवतार हैं। सृष्टिके विस्तार तथा उसके रक्षणमे इन ऋषियोका महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रत्येक मन्वन्तरमे नामभेदसे ये ही ऋषि सप्तर्षि होकर महाप्रलयमे चराचरके सूक्ष्मतम स्वरूप और वनस्पतिया तथा औषधियाको बीजरूपम धारणकर विद्यमान रहत हैं प्रलयमे भी ये बने रहते हैं और पुन नयी सृष्टिमे उसका विस्तार करते हैं। इस प्रकारसे सप्तर्षिगण जीवोपर महान् कृपा करते हैं। कदाचित् ये स्थूल सृष्टिके सत्त्वाश और चैतन्याशको धारणकर प्रलयकालम सुरक्षित न रखते तो नवीन सृष्टि पुन होना कठिन हाती। य ऋषि भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं और उन्हींके कृपाप्रसादस समर्थ हाकर जीवाका कल्याण करते रहत हैं। ये एक रूपसे नक्षत्रलोकम सप्तर्षिमण्डलम स्थित रहते हैं और दूसरे रूपम तीना लोकाम विशेष रूपसे भूलाकम स्थित रहकर लागाको धर्माचरण तथा सदाचारकी शिक्षा देते हैं तथा ज्ञान भक्ति, वैराग्य तप भगवत्प्रेम, सत्य, परोपकार, क्षमा, अहिसा आदि सात्त्विक भावाकी प्रतिष्ठा करत हैं।

प्रति चार युग (सत्य त्रेता, द्वापर तथा कलि) बीतनेपर वेदविप्लव होता है। इसीलिये सप्तर्षिगण भूतलपर अवतीर्ण हाकर वदका उद्धार करते हैं। सप्तर्षिमण्डल आकाशम सुप्रसिद्ध ज्योतिर्मण्डलाम है। इसके अधिष्ठाता ऋषिगण लाकम ज्ञान-परम्पराको सुरक्षित रखते हैं। अधिकारी जिज्ञासुको प्रत्यक्ष या परोक्ष जैसा वह अधिकारी हो तत्त्वज्ञानकी आर उन्मुख करके मुक्तिपथम लगाते हैं। ये सभी ऋषि कल्पान्तचिरजीवी, त्रिकालदर्शी, मुक्तात्मा और दिव्य देहधारी होते हैं। ये स्थितप्रज्ञ तथा अतीन्द्रियद्रष्टा हैं। पुराणामे इन्हे ब्रह्मवादी और गृहमेधी कहा गया है (वायुपुराण)। गृहस्थ होते हुए भी ये मुनिवृत्तिसे रहते हैं। ये सत्य धर्म, ज्ञान, शौच, सतोष, तप, स्वाध्याय, सदाचार एव अपरिग्रहके मूर्तिमान् स्वरूप और ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होते हैं। यज्ञाद्वारा देवताआका आप्यायन और नित्य स्वाध्याय इनकी मुख्य चर्या रहती है।

मन्वन्तर और सप्तर्षि

अलग-अलग मन्वन्तरामे सप्तर्षि बदल जाते हैं। मनुकाल ही मन्वन्तर कहलाता है। ब्रह्माजीके एक दिन (कल्प)-म चौदह मनु होते हैं। चौदहो मनु तथा मनुपुत्र एक-एक कर समस्त पृथ्वीके राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं। मनुओके नामानुसार ही चौदह मन्वन्तरोके चौदह भिन्न-भिन्न नाम पडे हैं। इन चौदह मनुआम प्रथम मनुका नाम है स्वायम्भुव मनु।

भगवान् विष्णुके नाभिपद्मसे चतुर्मुख ब्रह्माजीने आविर्भूत होकर मैथुनी सृष्टिके सङ्कल्पको लेकर अपने ही शरीरसे स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपाको प्रकट किया। ये आदि मनु ही प्रथम मनु हैं जिनके नामसे स्वायम्भुव

* यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोऽशसम्भवम्॥ (गीता १०।४१)

मन्वन्तर पड़ा। द्वितीय मनुका नाम स्वारोचिष है। इसी प्रकार क्रमश औत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष—य छ मनु हुए। वर्तमानम सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तरके बाद सात मनु और होगे जिनके नाम हैं—सूर्यसावर्णि, दक्षसावर्णि ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि रुद्रसावर्णि, रौच्य तथा भौत्य (मार्कण्डेयपुराण)। कल्पभेदस मन्वन्तरोके नामोंमें भी अन्तर मिलता है।

प्रत्येक मन्वन्तरमें सप्तर्षि भिन्न-भिन्न नामरूपोंस अवतरित होते हैं। पुराणोम इस बातका विस्तारसे वर्णन है। यहाँ विष्णुपुराणके अनुसार चौदह मन्वन्तरोंके सप्तर्षियोंका पृथक्-पृथक् नाम दिया जा रहा है—

प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तरम—मरीचि, अत्रि अङ्गिरा, पुलस्त्य पुलह, क्रतु और वसिष्ठ।

द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तरम—ऊर्ज्ज स्तम्भ वात, प्राण पृषभ निरय और परीवान्।

तृतीय उत्तम मन्वन्तरमे—महर्षि वसिष्ठक सातो पुत्र।

चतुर्थ तामस मन्वन्तरमे—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर।

पञ्चम रैवत मन्वन्तरम—हिरण्यरोमा वेदश्री ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा पर्जन्य और महामुनि।

षष्ठ चाक्षुष मन्वन्तरम—सुमधा विरजा हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु।

वर्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरम—काश्यप अत्रि वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम जमदग्नि और भरद्वाज।

अष्टम सावर्णिक मन्वन्तरमे—गालव, दीप्तिमान्, राम, अश्वत्थामा, कृप ऋष्यशृङ्ग और व्यास।

नवम दक्षसावर्णि मन्वन्तरम—मेधातिथि वसु, सत्य ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सवन और भव्य।

दशम ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरम—तपोमूर्ति हविष्मान्, सुकृत सत्य नाभाग, अप्रतिमोजा आर सत्यकेतु।

एकादश धर्मसावर्णि मन्वन्तरमे—वपुष्मान्, घृणि आरुणि, नि स्वर हविष्मान्, अनघ और अग्नितेजा।

द्वादश रुद्रसावर्णि मन्वन्तरम—तपोद्युति तपस्वी सुतपा, तपोमूर्ति, तपोधन, तपोरति और तपोधृति।

त्रयोदश देवसावर्णि मन्वन्तरम—धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और निष्प्रकम्प।

चतुर्दश इन्द्रसावर्णि मन्वन्तरमे—अग्निध्र, अग्निबाहु, शुचि, युक्त, मागध, शुक्र और जित।

इस प्रकार चौदह मन्वन्तरोम सप्तर्षियोका परिगणन पृथक्-पृथक् नाम-रूपोम हुआ है। इन ऋषियोकी अपार महिमा है, ये सभी तपोधन हैं।

ऋषियोने वेदमन्त्रोका दर्शन किया है, इसीलिये **'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार'** कहा गया है। ऋषि कौन हैं ? इसकी व्याख्याम बताया गया है कि ऋषि वेदमन्त्रोके द्रष्टा और स्मर्ता हैं। इसीलिये वेदोको अपौरुषेय कहा गया है।

'ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्श' (निरुक्त नैगमकाण्ड २।११) आदि कहा गया है। यह भी वैदिक सिद्धान्त है कि वेदका अध्ययन ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगके अधिष्ठानके साथ करना चाहिये। आचार्य शौनक कहते हैं—

'एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयाम भवति ।'

(अनुक्रमणी १।१)

अर्थात् जो मनुष्य ऋषि छन्द, देवता और विनियोगको जाने विना वेदका अध्ययन, अध्यापन, जप हवन, यजन, याजन आदि करते हैं उनका वेदाध्ययन निष्फल तथा दोषयुक्त होता है।

इस प्रकार ऋषियोके स्मरणकी विशेष महिमा है। प्रात काल जगनेके अनन्तर ऋषियोके नाम-स्मरणपूर्वक उनसे मङ्गलकी कामना की जाती है—

भृगुर्वसिष्ठ क्रतुरङ्गिराश्च
मनु पुलस्त्य पुलहश्च गौतम ।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्ष
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपुराण)

वेदोम तो सप्तर्षियोकी महिमाका बार-बार प्रख्यापन हुआ है। वहाँ सात सख्याका परिगणन ऋषियोके एक विशेष

वर्गके लिये हुआ है। ब्रह्मर्षि देवर्षि, महर्षि, परमर्षि, काण्डर्षि, श्रुतर्षि तथा राजर्षि—इन सात रूपोमे भी ऋषियाका विभाजन है। जैसे ४९ मरुद् देवताओका सात-सातका वर्ग है, वैसे ही ऋषियोम भी सात ऋषियोके वर्ग हैं, जो सप्तर्षि कहलाते हैं। सातकी सख्याकी विशेष महिमा है। इस ब्रह्माण्डमे सात लोक ऊपर और सात लोक नीचे हैं, सात ही सागर हैं, वेदके गायत्री, उष्णिक् आदि सात छन्द ही मुख्य हैं, भगवान् सूर्य सप्ताश्ववाहन कहे जाते हैं। यजुर्वेदके एक मन्त्रमे सातकी सख्याका विशेष परिज्ञान कराया गया है—

सप्त ते अग्ने समिध सप्त जिह्वा सप्त ऋषय सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्रा सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा॥ (यजु० १७।७९)

उपनिषद्के एक मन्त्रमे भी सातकी सख्याका अवबोधन कराया गया है—

सप्त प्राणा प्रभवन्ति तस्मात्
सप्तार्चिष समिध सप्त होमा।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिता सप्त सप्त॥
(मुण्डकोपनिषद् २।१।८)

यज्ञमे छन्दोमय सात परिधियाँ तथा सात-सातकी सख्यामे समिधाएँ बतायी गयी हैं। '**सप्तास्यासन् परिधयस्त्रि सप्त समिध कृता**' (यजु० ३१।१५)। सप्तशती तथा सप्ताह आदिमे भी सप्त पद निहित है।

प्रात स्मरणके एक माङ्गलिक श्लोकम सप्तर्षियो तथा सात-सातकी सख्यावाले पदार्थोसे प्रभातको सुप्रभात बनानेकी प्रार्थना की गयी है—

सप्त स्वरा सप्त रसातलानि
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सप्तार्णवा सप्त कुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
(वामनपुराण)

अर्थात् पड्ज ऋषभ, गान्धार मध्यम पञ्चम धैवत तथा निपाद—ये सप्त स्वर अतल वितल सुतल तलातल महातल रसातल तथा पाताल—य सात अधालोक सभी मेरे प्रात कालको मङ्गलमय कर। साता समुद्र, साता कुलपर्वत, सप्तर्षिगण, साता वन तथा सातो द्वीप, भूर्लोक, भुवर्लोक आदि सातो लोक— सभी मेरे प्रात कालको मङ्गलमय करे।

इसी आशयसे ऋषियाकी सातकी सख्याका लेकर एक विशेष वर्ग है, जो सप्तर्षि कहलाता है।

सप्तर्षियोकी आराधना—वेदके अनेक मन्त्राम सप्तर्षियोकी प्रार्थना की गयी है। तर्पणम नित्य ऋषितर्पण होता है तथा श्रावणीके दिन ऋषियाका तर्पण तथा विशेष पूजन होता है। वेदमें प्राप्त सप्तर्षियोकी प्रार्थनाके मुख्य मन्त्रका भाव यह है कि सप्तर्षिगण सूक्ष्मरूपसे इस देहमे भी विद्यमान रहकर देवरूप होकर इसका सचालन करते हैं। ये सात ऋषि प्राण, त्वचा चक्षु, श्रवण, रसना, घ्राण तथा मन-रूपसे देहम स्थित रहते हैं और सुषुप्तिकालमे देहमे व्याप्त रहते हुए भी हृदयाकाशस्थित विज्ञानात्मक ब्रह्ममे प्रविष्ट हो जाते हैं—

सप्त ऋषय प्रतिहिता शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्ताप स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
(यजु० ३४।५५)

इसके साथ ही यजुर्वेद (१३।५४—५८)-म सप्तर्षियोके पूजनके मन्त्र आये हैं। भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी ऋषिपञ्चमीके नामसे विख्यात है, इस दिन इनकी विशेष पूजा-आराधना की जाती है तथा सातो ऋषियाकी पृथक्-पृथक् यथाशक्ति स्वर्णादिकी प्रतिमा बनाकर प्रतिष्ठाकर उनकी पूजा की जाती है।

'**अरुन्धतीसहितसप्तर्षिभ्यो नम**' इस नाममन्त्रसे भी एक साथ पूजन किया जा सकता है। इनके ध्यानम बताया गया है कि ये ऋषिश्रेष्ठ ब्रह्मतेज और करोडो सूर्योकी आभासे सम्पन्न हैं—

कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतम।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च अरुन्धत्या सहाष्टका॥
मूर्ति ब्रह्मण्यदेवर्येर्ब्रह्मण्य तेज उत्तमम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशमृषिवृन्द विचिन्तयेत्॥
(वर्षकृत्यदीपक)

कश्यप अत्रि भरद्वाज विश्वामित्र, गौतम जमदग्नि

तथा वसिष्ठ—ये वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं। महर्षि वसिष्ठजीके साथ उनकी धर्मप्राणा देवी अरुन्धती भी साथम ही सप्तर्षिमण्डलमे स्थित रहती हैं। महाभागा अरुन्धतीके पातिव्रत्यकी अपार महिमा है, इसी बलपर ये सदा वसिष्ठजीके साथ रहती हैं। सप्तर्षियोके साथ देवी अरुन्धतीजीका भी पूजन होता है। अखण्ड सौभाग्य तथा श्रेष्ठ दाम्पत्यके लिये इनकी आराधना होती है।

आकाशम सप्तर्षिमण्डल कहाँ स्थित है—इस विषयमे श्रीमद्भागवत (५। २२। १७)-मे बताया गया है कि नवग्रहकि लोकासे ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर कश्यप आदि सप्तर्षि दिखायी देते हैं। ये सब लोकाकी मङ्गलकामना करते हुए भगवान् विष्णुके परम पद ध्रुवलोककी प्रदक्षिणा किया करते हैं—'**तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकाना शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परम पद प्रदक्षिण प्रक्रमन्ति॥**'

आकाशम सप्तर्षिमण्डलके उत्तरमे ध्रुवलोक स्थित है। इस प्रकार सप्तर्षिमण्डलमे स्थित रहकर ये सप्तर्षिगण जीवोके शुभाशुभ कर्मोके साक्षी बनते हैं और भगवान्की अवतरणलीलामे सहयोगी बनते हैं। भगवान् श्रीराम आदिकी लीलामे महर्षि वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम तथा अत्रि आदि ऋषि सहयागी रहे हैं। ऐसे ही अन्य अवतारोमे भी ऋषिगण भगवान्की भक्ति करते हैं और उन्हींके कृपाप्रसादसे जगत्के कल्याणकार्यमे सतत चेष्टारत रहते हैं। भगवान्के लीलासवरणके अनन्तर भी ये उनके द्वारा प्रतिपादित धर्मकी मर्यादाको सुरक्षित रखनेके लिये कल्पपर्यन्त बने रहते हैं और पुन अवतरित होते हैं।

~~~o~~~

भगवती संध्याका माता अरुन्धतीके रूपमें अवतरण

सध्या ब्रह्माजीकी मानस पुत्री थी। वह तपस्या करनेके लिये चन्द्रभाग पर्वतके बृहल्लोहित नामक सरोवरके पास घूम रही थी और इस बातके लिये बडी उत्सुक थी कि कोई सत सद्गुरु प्राप्त हो एव मुझे तपस्याका मार्ग बतावे। भगवान्के प्यारे भक्त सर्वदा लोगोके हितसाधनमे तत्पर रहते हुए इस बातकी प्रतीक्षा किया करते हैं कि कोई सच्चा जिज्ञासु मिले और उसे कल्याणकी ओर अग्रसर कर। सध्याकी जिज्ञासा देखकर महर्षि वसिष्ठ वहीं प्रकट हुए और सध्यासे पूछा—'कल्याणी! तुम इस घोर जङ्गलमे कैसे विचर रही हो, तुम किसकी कन्या हो और क्या करना चाहती हो? यदि कोई गोपनीय बात न हो तो यह भी बताओ कि तुम्हारा यह सुन्दर मुखमण्डल उदास क्या हो रहा है?' सध्या उनके चरणोमे नमस्कार करके उन मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य महर्षि वसिष्ठसे बडी नम्रताके साथ कहने लगी—'भगवन्! मैं तपस्या करनेके लिये इस सूने जङ्गलम आयी हूँ। अबतक मैं बहुत उद्विग्न हो रही थी कि कैसे तपस्या करूँ, मुझे तपस्याका मार्ग मालूम नहीं है परतु अब आपको देखकर मुझे बडी शान्ति मिली है और मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी।' सर्वज्ञ वसिष्ठने उसकी बात सुनकर उसके मनके सारे भाव जान लिये और कुछ नहीं पूछा। फिर जैसे एक कारुणिक गुरु अपने शिष्यको उपदेश करता है, वैसे ही बडे स्नेहसे बोले—'कल्याणी! तुम एकमात्र परम ज्योतिस्वरूप, धर्म, अर्थ, काम एव मोक्षके दाता भगवान् विष्णुकी आराधना करके ही अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकती हो। सूर्यमण्डलमे शख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज वनमाली भगवान् विष्णुका ध्यान करके '**ॐ नमो वासुदेवाय ॐ**' इस मन्त्रका जप करो और मौन रहकर तपस्या करो। स्नान, पूजा और सब कुछ मौन होकर ही करो। पहले छ दिनतक कुछ भी भोजन मत करना, केवल तीसरे दिन रात्रिमे एव छठे दिन रात्रिमे कुछ पत्ते खाकर जल पी लेना। उसके पश्चात् तीन दिनतक निर्जल उपवास करना और फिर रात्रिम भी पानी मत पीना। इस तरह तपस्या समाप्त होनेपर हर तीसरे दिन रात्रिमे कुछ भोजन कर सकती हो। वृक्षोका वल्कल पहनना और जमीनपर सोना। इस प्रकार तपस्या करती हुई भगवान्का चिन्तन करो। भगवान् तुमपर प्रसन्न होगे और शीघ्र ही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेगे।' इस प्रकार उपदेश करके महर्षि
~~~

[illegible] अनुष्ठान हो गये और वह भी तपस्याकी पद्धति जानकर बड़े आनन्दके साथ भगवान्‌की पूजा करने लगी। इस प्रकार बराबर चार युगतक उसकी तपस्या चलती रही। उसके व्रतको देखकर सभी आश्चर्यचकित और विस्मित थे।

अब भगवान् विष्णु भी उसकी भावनाके अनुसार

[illegible] प्रकट हुए। गरुड़पर [illegible]

[illegible]

तथा तीसरा यह कि मेरे भगवत्स्वरूप पतिके अतिरिक्त और कहीं भी मेरी सकाम दृष्टि न हो। जो पुरुष मुझे सकाम दृष्टिसे देखे, वह पुरुषत्वहीन अर्थात् नपुंसक हो जाय।' भगवान्‌ने कहा—चार अवस्थाएँ होती हैं—बाल्य कौमार यौवन और बुढ़ापा। इनमें तीसरी अवस्था अथवा दूसरी अवस्थाके अन्तमें लोगोंमें काम उत्पन्न होगा। तुम्हारी तपस्याके प्रभावसे आज मैंने यह मर्यादा बना दी कि पैदा होते ही कोई प्राणी कामयुक्त नहीं होगा। त्रिलोकीमें तुम्हारे सतीत्वकी ख्याति होगी और तुम्हारे पतिके अतिरिक्त जो भी तुम्हें सकाम दृष्टिसे देखेगा वह तुरंत नपुंसक हो जायगा। तुम्हारे पति बड़े भाग्यवान्, तपस्वी सुन्दर और तुम्हारे साथ ही सात कल्पतक जीवित रहनेवाले होंगे। तुमने मुझसे जो वर माँगे थे, वे दे दिये। अब जो तुम्हारे मनमें बात है वह बताता हूँ। तुमने पहले आगमें जलकर शरीर त्याग करनेकी प्रतिज्ञा की थी सो यहीं चन्द्रभागा नदीके किनारे महर्षि मेधातिथि बारह वर्षका यज्ञ कर रहे हैं, उसमें जाकर शीघ्र ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। वहाँ ऐसे वेशमें जाओ कि मुनिलोग तुम्हें देख न सकें। मेरी कृपासे तुम अग्निदेवकी पुत्री हो जाओगी। जिसे तुम पति बनाना चाहती हो मनमें उसका चिन्तन करते-करते अपना शरीर त्याग करो।' यह कहकर भगवान्‌ने अपने करकमलोंसे संध्याके शरीरका स्पर्श किया और तुरंत ही उसका शरीर पुरोडाश ([illegible]) बन गया। उन महामुनिके [illegible] निर्विघ्नताके यज्ञमें अग्नि मांसभोजी न हो जायँ इसलिये प्रभुने ऐसा किया। इसके बाद संध्या भी अदृश्य होकर उस [illegible] गया। भगवान्‌की कृपासे उस समय [illegible] मनमें मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य और [illegible] [illegible] [illegible]

कर लिया। उसके शरीरका ऊपरी भाग जो दिनका प्रारम्भ यानी प्रात काल है, उसका नाम 'प्रात सध्या' और शेषभाग दिनका अन्त 'सायसध्या' हुआ। भगवान्‌ने उसके प्राणको दिव्य शरीर और अन्त करणको शरीरी बनाकर मेधातिथिके यज्ञीय अग्निमे स्थापित कर दिया। इसके पश्चात् मेधातिथिने यज्ञके अन्तमे उस स्वर्णके

समान सुन्दरी सध्याको पुत्रीके रूपम प्राप्त किया। उस समय यज्ञीय अर्घ्यजलमें स्नान कराकर वात्सल्य स्नेहस परिपूर्ण और आनन्दित होकर उसे गोदमे उठा लिया और उसका नाम अरुन्धती रखा। किसी भी कारणसे वह धर्मका रोध नहीं करती थी इसीसे उसका 'अरुन्धती' नाम सार्थक हुआ। यज्ञ समाप्त होनेके बाद कृतकृत्य होकर मेधातिथि अपने शिष्योके साथ अपने आश्रमपर रहते हुए आनन्दित होकर अपनी कन्या अरुन्धतीका लालन-पालन करने लगे।

अब कुमारी अरुन्धती मेधातिथिके चन्द्रभागानदीक तटपर स्थित तापसारण्य नामक आश्रमम शुक्लपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति दिनोदिन बढने लगी। पाँचवे वर्षम पदार्पण करनेपर ही उसके सद्गुणोसे सम्पूर्ण तापसारण्य पवित्र हो गया। आज भी लोग उस अरुन्धतीके क्रीडाक्षेत्र तापसारण्य और चन्द्रभागाके जलमे जा-जाकर स्नान करते हैं और विष्णुपदलाभ करते हें, उनकी सासारिक अभिलाषाएँ भी पूर्ण होती हैं।

एक दिन जब अरुन्धती चन्द्रभागाके जलम स्नान करके अपने पिता मेधातिथिके पास ही खेल रही थी, स्वय ब्रह्माजी पधारे और उसके पितासे कहा, 'अब अरुन्धतीको शिक्षा देनेका समय आ गया है, इसलिये इसे अब सती-साध्वी स्त्रियोके पास रखकर शिक्षा दिलवानी चाहिये, क्योकि कन्याकी शिक्षा पुरुषोद्वारा नहीं होनी चाहिये। स्त्री ही स्त्रियाको शिक्षा दे सकती है, किंतु तुम्हारे पास तो कोई स्त्री नहीं है, अतएव तुम अपनी कन्याको बहुला ओर सावित्रीके पास रख दो। तुम्हारी कन्या उनके पास रहकर शीघ्र ही महागुणवती हो जायगी।' मेधातिथिने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और उनके जानेपर वे अरुन्धतीको लेकर सूर्यलोकमे गये। वहाँ उन्हाने सूर्यमण्डलमे स्थित पद्मासनासीन सावित्री देवीका दर्शन किया। उस समय बहुला मानस-पर्वतपर जा रही थीं, इसलिये सावित्री देवी भी सूर्यमण्डलसे निकलकर वहींके लिये चल पड़ीं। बात यह थी कि प्रतिदिन वहाँ सावित्री, गायत्री, बहुला, सरस्वती एव द्रुपदा एकत्रित होकर धर्मचर्चा करती थीं और लोक-कल्याणकी कामना किया करती थीं। महर्षि मेधातिथिने उन माताओको पृथक्-पृथक् प्रणाम किया और सबको सम्बोधन करके कहा कि 'यह मेरी यशस्विनी कन्या है। यही इसके उपदेशका समय है। इसीसे मैं इसे लेकर यहाँ आया हूँ। ब्रह्माने ऐसी ही आज्ञा की है। अब यह आपके पास ही रहेगी। माता सावित्री ओर बहुला आप दोनो इसे ऐसी शिक्षा द कि यह सच्चरित्र हो।' उन दोनोने कहा—'महर्षे। भगवान् विष्णुकी कृपासे तुम्हारी कन्या पहलेसे ही सच्चरित्र हो चुकी है, किंतु ब्रह्माकी आज्ञाके कारण हम इसे अपने पास रख लेती हैं। यह शिक्षा प्राप्त करे। यह पूर्वजन्ममे ब्रह्माकी कन्या थी। तुम्हारे तपोबलस और भगवान्‌की कृपासे यह तुम्हारी पुत्री हुई है। यह सती न केवल तुम्हारा या तुम्हारे कुलका बल्कि सारे ससारका कल्याण करेगी।'

मधातिथि वहाँसे विदा हुए और अरुन्धती उनकी सेवा करने लगी। उन जगन्माताआकी सेवाम रहकर अरुन्धतीका ममय बडे आनन्दसे बीतने लगा। अरुन्धती कभी सावित्रीक साथ सूर्यके घर जाती ता कभी बहुलाके साथ इन्द्रक घर जाती। इस प्रकार सात वर्ष ओर वीत गय और स्त्रीधर्मकी शिक्षा प्राप्त करके वह अपनी शिक्षिका सावित्री और बहुलासे भी श्रेष्ठ हो गयी। एक दिन मानसपर्वतपर विचरण करते-करते अरुन्धतीने मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य महर्षि वसिष्ठको देखा। इन्ह देखते ही उसका मन क्षुब्ध हो गया और वह कामके विकारसे काँप उठी। किसी प्रकार धैर्य धारण करके पश्चात्ताप करती हुई वह बहुला ओर सावित्रीके निकट उपस्थित हुई। अरुन्धतीको उदास देखकर सावित्रीने ध्यानयोगसे सारी वात जान ली और उसके मस्तकपर हाथ रखकर वात्सल्यपूर्ण शब्दाम पूछा। उनका प्रश्न सुनकर अरुन्धती सकोचके मारे जमीनम गड गयी, उससे बोला नहीं गया। अन्तत सावित्रीने स्वय सारी बात कहकर समझाया कि 'वे परम तेजस्वी ऋषि काई दूसरे नहीं हैं, वे तुम्हार भावी पति हैं और यह पहलेसे ही निश्चित हो चुका है। उनके दर्शनके कारण क्षोभ होनमे तुम्हारा सतीत्व नष्ट नहीं हुआ। तुमने उन्ह पतिके रूपम पूर्वजन्ममे ही वरण कर लिया है और वे भी तुमसे प्रम करते हैं तुम्ह हृदयसे चाहते हैं।'

इसक बाद सावित्रीने अरुन्धतीको उसक पूर्वजन्मकी कथा कह सुनायी जिससे अरुन्धतीको बडा सन्तोष मिला और उसे पूर्वजन्मकी बातें याद आ गयीं। इसके बाद सावित्री ब्रह्माके पास गयीं और उनसे सब बात कहकर अरुन्धतीके विवाहके लिये यही उपयुक्त समय बतलाया। ब्रह्मा भी निश्चय करक मानसपर्वतपर आ गय और शकर तथा विष्णुको भी वहाँ प्रार्थना करक बुलाया। मेधातिथिको बुलानेके लिय नारदका भेजा और नारदजी जाकर उनका बुला लाय। ब्रह्मा आदिक कहनपर मेधातिथिने उनके साथ ही अपना कन्याका लेकर मानसपर्वतके लिए प्रस्थान किया और जाकर देखा कि महर्षि वसिष्ठ मानसपर्वतकी कन्दरामे समाधि लगाये बैठ हैं और उनके मुखमण्डलसे सूर्यकी भाँति प्रकाशकी किरण निकल रही हे। उनकी समाधि टूटनेपर अपनी कन्याको आगे करके मेधातिथिने निवेदन किया— 'भगवन्! यह मेरी ब्रह्मचारिणी पुत्री है, आप इसे ब्राह्म विधिसे स्वीकार करे। आप जहाँ-जहाँ चाहे जिस रूपम रहगे यह आपकी सेवा करेगी और छायाकी भाँति पीछे-पीछे चलेगी।' मधातिथिकी प्रार्थना सुनकर तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंको आये हुए देखकर और तपस्याके वलस भावी बातको जानकर महर्षि वसिष्ठने स्वीकार कर लिया। अरुन्धतीकी आँखे उनके चरणाम लग गयीं। अब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एव इन्द्रादि देवताआने विवाहोत्सव सम्पन्न किया। उनक वल्कल आदिके वस्त्र मृगचर्म और जटाको खोलकर बड सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनाये। विधिपूर्वक स्वर्णकलशके जलसे अभिषेक-स्नान कराया, वैदिक मन्त्रोका पाठ हुआ। ब्रह्माने सूर्यके समान प्रकाशमान्, त्रिलोकीमे बिना रुकावटके उडनेवाला बडा सुन्दर विमान दिया। विष्णुने सबसे ऊँचा स्थान दिया और रुद्रने सात कल्पतककी आयु दी। अदितिने ब्रह्माके बनाये हुए अपने दोना कानोके कुण्डल उतारकर द दिये। सावित्रीने पातिव्रत्य, बहुलाने बहुपुत्रत्व, देवेन्द्रने बहुत-से रत्न और कुबेरने समता दी। इसी प्रकार सभी ऋषि-मुनियाने अपनी ओरसे उपहार दिये।

विवाहके अवसरपर ब्रह्मा, विष्णु आदिके द्वारा स्नान कराते समय जो जलधाराएँ गिरी थीं वे ही गोमती सरयू, शिप्रा महानदी आदि सात नदियोंके रूपमे हो गयीं, जिनके दर्शन, स्पर्श स्नान और पानस सार ससारका कल्याण हाता है। विवाहके पश्चात् वसिष्ठजी महाराज अपनी धर्मपत्नीक साथ विमानपर सवार हाकर देवताओंके बतलाय हुए स्थानपर चल गये। वे जब-जहाँ-जिस रूपम रहकर तपस्या करते हुए ससारके कल्याणम सलग्न रहते हैं तब-वहाँ-उन्हींके अनुरूप वेशम रहकर अरुन्धती उनकी सवा किया करती हैं। आज भी सप्तर्षिमण्डलम स्थित वसिष्ठक पास ही व दीखती हैं।

विष्णुके अंशावतार श्रीभरतजी

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

श्रीभरतजी श्रीरामके ही स्वरूप हैं। वे व्यूहावतार माने जाते हैं और उनका वर्ण ऐसा है कि—

भरतु रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥

विश्वका भरण-पोषण करनेवाले होनेसे ही उनका नाम 'भरत' पड़ा। धर्मके आधारपर ही सृष्टि है। धर्म ही धराको धारण करता है। धर्म है, इसलिये संसार चल रहा है। संसारकी तो बात जाने दीजिये, यदि एक गाँवमेंसे पूरा-पूरा धर्म चला जाय, वहाँ कोई धर्मात्मा किसी रूपमें न रहे तो उस गाँवका तत्काल नाश हो जायगा। भरतजीने धर्मके उसी धुरे—आदर्शको धारण किया।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

जन्मसे ही भरतलाल श्रीरामके प्रेमकी मूर्ति थे। वे सदा श्रीरामके सुख और उनकी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न रहते थे। मैं-पनका भान उनमें कभी आया ही नहीं। उन्होंने स्वयं कहा है—

महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन॥

बड़ा ही संकोची स्वभाव था भरतलालका। अपने बड़े भाईके सामने वे संकोचकी ही मूर्ति बने रहते थे। ऐसे संकोची, ऐसे अनुरागी, ऐसे भ्रातृभक्त भावमयको जब पता लगा कि माता कैकेयीने उन्हें राज्य देनेके लिये श्रीरामको वनवास दिया है, तब उनकी व्यथाका पार नहीं रहा। कैकेयीको उन्होंने बड़े कठोर वचन कहे, परंतु ऐसी अवस्थामें भी वे दयानिधि किसीका कष्ट नहीं सह पाते थे। जिस मन्थराने यह सब उत्पात किया था, उसीको जब शत्रुघ्नलाल दण्ड देने लगे, तब भरतजीने छुड़ा दिया। धैर्यके साथ पिताका और्ध्वदैहिक कृत्य करके भरतजी श्रीरामको वनसे लौटानेके लिये चले। उन्होंने राज्यकी रक्षाका प्रबन्ध कर दिया था। अयोध्याका जो साम्राज्य देवताओंको भी लुभाता था, उस राज्यको, उस सम्पत्तिको भरतने तृणसे भी तुच्छ मानकर छोड़ दिया। वे बार-बार यह सोचते थे—'श्रीराम, माता जानकी और लक्ष्मण अपने सुकुमार चरणोंसे वनके कठोर मार्गमें भटकते होंगे।' यही व्यथा उन्हें व्याकुल किये थी। वे भरद्वाजसे कहते हैं—

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥
अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥
एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥

वे स्वयं मार्गमें उपवास करते, कंद-मूल खाते और भूमिपर शयन करते थे। साथमें रथ, अश्व, गज चल रहे थे, किंतु भरतलाल पैदल चलते थे। उनके लाल-लाल कोमल चरणोंमें फफोले पड़ गये थे, किंतु उन्होंने सवारी अस्वीकार कर दी। उन्होंने सेवकोंसे कह दिया—

रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥

भरतका प्रेम, भरतका भाव भरतकी विह्वलताका वर्णन तो श्रीरामचरितमानसके अयोध्याकाण्डमें ही देखने योग्य है। ऐसा अलौकिक अनुराग कि जिसे देखकर पत्थरतक पिघलने लगे। कोई 'श्रीराम' कह दे कहीं श्रीरामके स्मृति-चिह्न मिले, किसीसे सुन पड़े श्रीरामका समाचार, वहीं, उसीसे भरत विह्वल होकर लिपट पड़ते हैं। सबसे उन्हें अविचल रामचरणानुराग ही माँगना है। चित्रकूट पहुँचकर वे अपने प्रभुके जब चरणचिह्न देखते हैं, तो—

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥

महर्षि भरद्वाजने ठीक ही कहा था—

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥

चित्रकूटमे श्रीरामजी मिलते हैं। अयोध्याके समाजके पीछे ही महाराज जनक भी वहाँ पहुँच जाते हैं। महर्षि वसिष्ठ तथा विश्वामित्रजी और महाराज जनकतक कुछ कह नहीं पाते। सब लोग परिस्थितिकी विषमता देखकर थकित हो जाते हैं। सारी मन्त्रणाएँ होती हैं और अनिर्णीत रह जाती हैं। केवल जनकजी ठीक स्थिति जानते हैं। वे भरतको पहचानते हैं। एकान्तमे रानी सुनयनासे उन्होने कहा—

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।

श्रीराम क्या आज्ञा द? वे भक्तवत्सल हैं। भरतपर उनका असीम स्नेह है। वे भरतके लिये सब कुछ त्याग सकते हैं। उन्होने स्पष्ट कह दिया—

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौ सोइ आजु।

परतु धन्य हैं भरतलाल! धन्य है उनका अनुराग! आराध्यको जो प्रिय हो, जिसमे श्रीरामकी प्रसन्नता हो, जो करनेसे श्रीरघुनाथको सकोच न हो, वही उन्हे प्रिय है। उन्हे चाहे जितना कष्ट सहना पडे, किंतु श्रीरामको तनिक भी सकोच नहीं होना चाहिये। उनका अविचल निश्चय है—

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥

अतएव श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये उनकी चरणपादुका लेकर भरत अयोध्या लौट आये। राजसिहासनपर पादुकाएँ पधरायी गयीं। राम वनमे रहे और भरत राजसदनके सुख भोग—यह सम्भव नहीं था। अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममे भूमिम गड्ढा खोदकर कुशका आसन बिछाया उन्हाने। चौदह वर्षतक वे महातापस विना लेटे, बैठे रह। गोमूत्रयावक-व्रत ले रखा था उन्होने। गायको जौ खिला देनेपर वह जौ गोबरमे निकलता है, उसीको गोमूत्रम पकाकर वे ग्रहण करते थे। चौदह वर्ष उनकी अवस्था कैसी रही, यह गोस्वामी तुलसीदासजी बतलाते हैं—

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥

भरतजीने इसी प्रकार अवधिके वे वर्ष बिताये। उनका दृढ निश्चय था—

बीते अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

श्रीराम भी इसे भलीभाँति जानते थे। उन्होने भी विभीषणसे कहा—

बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।

इसीलिये श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌जीको पहले ही भरतके पास भेज दिया था। जब पुष्पकसे श्रीराघवेन्द्र आये, उन्होने तपस्यासे कृश हुए, जटा बढाये अपने भाईको देखा। उन्होने देखा कि भरतजी उनकी चरणपादुकाएँ मस्तकपर रखे चले आ रहे हैं। प्रेमविह्वल रामने भाईको हृदयसे लिपटा लिया।

तत्त्वत भरत और श्रीराम नित्य अभिन्न हैं। अयोध्यामे या नित्यसाकेतम भरतलाल सदा श्रीरामकी सेवामे सलग्न उनके समीप ही रहते हैं।

~~~o~~~

शेषावतार श्रीलक्ष्मणजी

बदउँ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दड समान भयउ जस जाका॥

श्रीरामके चतुर्व्यूह स्वरूपमेसे ही एक रूप लक्ष्मणजी हैं। वाल्मीकिजीने उन्ह *'सहससीसु अहीसु महिधरु'* कहकर भगवान् शेषका अवतार बताया है। श्रीरामकी सेवा करना ही उनके जीवनका एकमात्र व्रत है। जब वे बहुत छोटे थे पलनेम रहते थ तभीसे श्रीराघवके अनुयायी थे।

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥

जब विश्वामित्रजीकी यज्ञ-रक्षा करने ये रामजीके साथ गये तब बडे भाईकी सम्पूण सेवा स्वय ही करते थे। रात्रिमे जब दोनो भाई मुनि विश्वामित्रके चरण दबाकर उनकी आज्ञासे विश्राम करने आते, तब लक्ष्मणजी बडे भाईके चरण दबाने लगते और बार-बार बहुत कहनेपर, तब कहीं सोनेके लिये जाते। प्रात काल भी वे श्रीरामसे पहले ही जग जाते थे।

लक्ष्मणजी बडे ही स्नेहमय तथा कोमल स्वभावके थे। उनके इस स्वभावका अनेक बार लोगोको पता लगा, किंतु कोई श्रीरामका किसी भी प्रकार अपमान या अनिष्ट करता जान पडे, यह इन्हे सहन नहीं होता था। फिर ये अत्यन्त उग्र हो उठते थे और तब किसीको कुछ भी नहीं
~~~

गिनते थे। जब जनकपुरमे राजाओके द्वारा धनुष न उठनेपर जनकजीने कहा—'मैंने समझ लिया कि अब पृथ्वीमे कोई वीर नहीं रहा, तब कुमार लक्ष्मणको लगा कि इससे तो श्रीरामके बलका भी तिरस्कार होता है। वे यह सोचते ही उग्र हो उठे। उन्होने जनकजीको चुनौती देकर अपना शौर्य प्रकट किया। इसी प्रकार जब परशुरामजी बिगडते-डाँटते आये, तब भी लक्ष्मणजीसे उनका दर्प सहा नहीं गया। ये श्रीरामको अपना स्वामी मानते थे। सेवकके रहते स्वामीका तिरस्कार हो एसे सेवकको धिक्कार है। परशुरामजीको इन्होने उत्तर ही नहीं दिया, उनकी युद्धकी चुनौती तकका उपहास कर दिया। ऐसे परम भक्त लक्ष्मणने जब सुना कि पिताने माता कैकेयीके कहनेसे रामको वनवास देना निश्चित किया है, तब कैकेयी और राजापर इन्हे बडा क्रोध आया। परतु श्रीरामकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी करना इन्हे अभीष्ट नहीं था। 'यदि रामजी वनको जाते हैं तो लक्ष्मण कहाँ अयोध्यामे रहनेवाले हैं।' यह बात सभी जानते थे। जब प्रभुने राजधर्म, पिता-माताकी सेवाका कर्तव्य समझाकर इन्हे रहनेको कहा, तब इनका मुख सूख गया। व्याकुल होकर बडे भाईके चरण पकड लिये इन्होने और रोते-रोते प्रार्थना करने लगे—

गुर पितु मातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबधु उर अतरजामी॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिधु परिहरिअ कि सोई॥

अयोध्याका राजसदन, माता-पिताका प्यार और राज्यके सुखभोग छोडकर घोर वनमे भटकना स्वीकार किया लक्ष्मणने। श्रीरामने उन्हे साथ चलनेकी आज्ञा दी तो उन्हे यह 'वरदान' प्रतीत हुआ। वल्कल वस्त्र धारण करके अयोध्यासे इन्होंने श्रीरामका अनुगमन किया। माता सुमित्राने अपने इस पुत्रको आदेश दिया था—

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

जिसने अपना चित्त श्रीरामके चरणोमे लगा दिया है, उसमे राग-द्वेष, रोष ईर्ष्या, मद-मोह आदि विकार आ ही कैसे सकते हैं। लक्ष्मणजीने तो वनमे सेवाव्रत लेकर भूख-प्यास, निद्रा-थकावट आदि सबपर विजय प्राप्त कर ली। वे सदा सावधान रहते थे। मार्गमे चलते समय भी—

सीय राम पद अक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥

कहीं प्रभुके चरण-चिह्नोपर अपने पैर न पड जायँ, इसके लिये वे सतत सावधान रहते थे। जल, फल, कद, पुष्प, समिधा आदि लाना, अनुकूल स्थानपर कुटिया बनाना, रात्रिमे जागते हुए पहरा देना प्रभृति सब छोटी-बडी

सेवाएँ लक्ष्मणजी बडे उत्साहसे वनमे करते रहे। जैसे अज्ञानी पुरुष बडे यत्नसे अपने शरीरकी सेवामे लगा रहता है, वैसे ही लक्ष्मणजी यत्नपूर्वक श्रीरामकी सेवामे लग रहते थे। शृङ्गवेरपुरमे जब श्रीरामको पृथ्वीपर सोते देख निषादराज दुखी हो गये, तब लक्ष्मणजीने उन्हे तत्त्वज्ञान तथा रामजीके स्वरूपका उपदेश किया। वनवासके समय भगवान् स्वय लक्ष्मणजीको अनेक बार ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदिके उपदेश करते रहे।

श्रीलक्ष्मणजीका सयम ब्रह्मचर्य-व्रत आश्चर्यजनक है। अपने चौदह वर्षके अखण्ड ब्रह्मचर्यके बलपर ही ये मेघनादको युद्धमे जीत सके थे। जब सुग्रीवने ऋष्यमूक पहुँचनेपर सीताजीके द्वारा गिराये आभूषण दिये, तब

श्रीरघुनाथजी उन्हें लक्ष्मणको दिखाकर पूछने लगे—'देखो ये जानकीके ही आभूषण हैं न ?' उस समय लक्ष्मणजीने उत्तर दिया—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।

(वा०रा० ४।६।२२-२३)

'प्रभो! मैं केयूरों तथा कुण्डलोंको नहीं पहचानता। मैं तो केवल नूपुरोंको नित्य चरणवन्दनके समय देखते रहनेसे पहचानता हूँ।' इस निष्ठा और संयमकी कोई क्या महिमा वर्णन करेगा! लगभग चौदह वर्ष बराबर साथ रहे, अनेक बार श्रीरामके वनमें जानेपर अकेले रक्षक बने रहे, सब प्रकारकी छोटी-बड़ी सेवा करते रहे, किंतु कभी जानकीजीके चरणोंसे ऊपर दृष्टि गयी ही नहीं! धन्य मर्यादा! मारीचके छलसे जब श्रीरामजी उसके पीछे धनुषपर बाण चढ़ाकर दौड़ गये और उस राक्षसकी कपटभरी पुकार सुनकर सीताजीने भगवान्‌की लीला सम्पन्न करनेके लिये लक्ष्मणजीकी नीयतपर ही संदेह-नाट्य किया, तब भगवान्‌की आज्ञा न होनेपर भी एकाकिनी श्रीजानकीजीको छोड़कर श्रीरामके पास चले गये। जहाँ किसी प्रकारकी आशङ्का हो, वहाँ किसी भी सत्पुरुषको रहना नहीं चाहिये।

जब श्रीराम समुद्रके पास मार्ग देनेकी प्रार्थना करनेके विचारसे कुश बिछाकर बैठे, तब यह बात लक्ष्मणजीको नहीं रुची। ये पुरुषार्थ-प्रिय हैं। इन्होंने कहा 'दैवके भरोसे तो कादरलोग बैठे रहते हैं।' असलमें तो इन्हें यह सह्य नहीं था कि उनके सर्वसमर्थ स्वामी समुद्रसे प्रार्थना करें।

श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मण कठोर-से-कठोर कार्य भी करनेको उद्यत रहते थे। सीताजीको वनमें छोड़ आनेका काम भरत और शत्रुघ्नजीने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। लक्ष्मणजीके लिये यह हृदयपर पत्थर रखकर करनेका काम था, किंतु वे श्रीरामकी आज्ञा किसी प्रकार टाल नहीं सकते थे। यह कार्य भी उन्होंने स्वीकार किया। उनका आत्मत्याग महान् है। श्रीराम एकान्तमें कालके साथ बात कर रहे थे। उन्होंने यह निश्चय किया था कि इस समय यदि कोई यहाँ आ जायगा तो उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। लक्ष्मणजीको द्वारपर नियुक्त किया गया था। उसी समय वहाँ दुर्वासाजी आये और तुरंत श्रीरामसे मिलनेका आग्रह करने लगे। विलम्ब होनेपर शाप देकर पूरे राजकुलको नष्ट कर देनेकी धमकी दी उन्होंने। लक्ष्मणजीने भगवान्‌को जाकर संवाद सुनाया। श्रीरामने दुर्वासाजीका सत्कार किया। ऋषिके चले जानेपर श्रीरघुनाथजी बहुत दुःखी हुए। प्रतिज्ञाके अनुसार लक्ष्मणजीको उस समय भीतर जानेके लिये प्राणदण्ड होना चाहिये था। स्वामीको दुःख न हो, उनकी प्रतिज्ञा रक्षित रहे, इसलिये उन्होंने स्वयं माँगकर निर्वासन स्वीकार कर लिया, क्योंकि प्रियजनका निर्वासन प्राणदण्डके ही समान है। इस प्रकार आजन्म श्रीरामकी सेवा करके, श्रीरामके लिये उनका वियोग भी लक्ष्मणजीने स्वीकार किया।

~~ ० ~~

ब्रह्माजीके अंशावतार ऋक्षराज जाम्बवान्

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥

भगवान् ब्रह्माने देखा कि सृष्टिकार्यमें लगे रहते पूरा समय भगवान्‌की सेवामें नहीं दिया जा सकता। अतः वे अपने एक रूपसे ऋक्षराज जाम्बवान् होकर पृथ्वीपर आ गये। भगवान्‌की सेवा, भगवान्‌के नित्यमङ्गलमय रूपका ध्यान, भगवान्‌की लीलाओंका चिन्तन—यही जाम्बवान्‌जीकी दिनचर्या थी। सत्ययुगमें जब भगवान् वामनने विराट्‌रूप धारण करके बलिको बाँध लिया, उस समय उस विराट्‌रूप प्रभुको देखकर ऋक्षराज जाम्बवन्तजीको बड़ा ही आनन्द हुआ। वे भेरी लेकर विराट् भगवान्‌का जयघोष करते हुए दिशाओंमें सर्वत्र महोत्सवकी घोषणा कर आये और दो घड़ीमें ही दौड़ते हुए उन्होंने सात प्रदक्षिणाएँ विराट् भगवान्‌की कर लीं।

त्रेतामें जाम्बवन्तजी सुग्रीवके मन्त्री हो गये। आयु, बुद्धि, बल एवं नीतिमें सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण वे ही सबको उचित सम्मति देते थे। वानर जब सीतान्वेषणको निकले और समुद्रके तटपर हताश होकर बैठ गये, तब जाम्बवन्तजीने ही हनुमान्‌जीको उनके बलका स्मरण

दिलाकर लङ्का जानेके लिये प्रेरित किया। भगवान् श्रीरामके युद्धकालमे तो जैसे ये प्रधान सचिव ही थे। सभी कार्योंमे भगवान् इनकी सम्मति लेते और उसका आदर करते थे। लङ्का-युद्धमे मेघनादने अपनी मायासे सभीको व्याकुल कर दिया था, पर जाम्बवन्तजीको वह माया स्पर्शतक नहीं कर सकी। मेघनाद और रावण भी इनके मुष्टि-प्रहारसे मूर्च्छित हो जाते थे। जब भगवान् अयोध्या लौट आये और राज्याभिषेकके अनन्तर सबको विदा करने लगे, तब जाम्बवन्तजीने अयोध्यासे जाना तभी स्वीकार किया जब प्रभुने उन्हे द्वापरमे फिर दर्शन देनेका वचन दिया।

जाम्बवन्तजीकी इच्छा थी कि कोई मुझे द्वन्द्वयुद्धमे सतुष्ट करे। लङ्काके युद्धमे रावण भी उनके सम्मुख टिक नहीं सका था। भगवान् तो भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं। अपने भक्तकी इच्छा पूर्ण करना ही उनका व्रत है। द्वापरमे श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार हुआ। द्वारका आनेपर यादवश्रेष्ठ सत्राजित्ने सूर्यकी आराधना करके स्यमन्तक मणि प्राप्त की। एक दिन श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्से कहा कि 'वह मणि महाराज उग्रसेनको दे दो।' किंतु लोभवश सत्राजित्ने यह बात स्वीकार नहीं की। सयोगवश उस मणिको गलेमे बाँधकर सत्राजित्का भाई प्रसेनजित् आखेटके लिये वनमे गया और वहाँ उसे सिहने मार डाला। सिह मणि लेकर गुफामे गया तो जाम्बवन्तजीने सिहको मारकर मणि ले ली और गुफाके भीतर अपने बच्चेको खेलनेके लिये दे दी।

द्वारकामे जब प्रसेन नहीं लौटा, तब सत्राजित्को शङ्का हुई कि 'श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे भाईको मारकर मणि छीन ली है।' धीरे-धीरे यह बात फैलने लगी। इस अपयशको दूर करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र मणिका पता लगाने निकले। वे मरे घोडेको, फिर मृत सिहको देखते हुए जाम्बवन्तकी गुफामे पहुँचे। एक अपरिचित पुरुषको देख बच्चेकी धाय चिल्ला उठी। जाम्बवन्त इस चिल्लाहटको सुन क्रोधमे भरे दौडे। केशवके साथ उनका द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। सत्ताईस दिन-रात बिना विश्राम किये दोनो एक-दूसरेपर वज्रके समान आघात करते रहे। अन्तमे जाम्बवान्का शरीर मधुसूदनके प्रहारोंसे शिथिल होने लगा। जाम्बवन्तजीने सोचा—'मुझे पराजित कर सके ऐसा कोई देवता या राक्षस तो हो नहीं सकता। अवश्य ये मेरे स्वामी श्रीराम ही हैं।' वे यह सोचकर रुक गये। भगवान्ने उसी समय उन्हे अपने धनुषधारी रामरूपका दर्शन दिया। जाम्बवन्तजी प्रभुके चरणोंपर गिर पडे। श्रीकृष्णचन्द्रने अपना हाथ उनके शरीरपर फेरकर समस्त पीडा, श्रान्ति तथा क्लेशको दूर कर दिया। ऋक्षराजने अपनी कन्या जाम्बवतीको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमे समर्पित

किया और वह मणि भी दे दी। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवनको भगवान्के चरणोंमे अर्पित कर दिया।

~~~ o ~~~
~~~

धरादेवीका माता यशोदाके रूपमें अवतरण

नेम विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसाद लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात्॥
(श्रीमद्भा० १०।९।२०)

'मुक्तिदाता भगवान्‌से जो कृपाप्रसाद नन्दरानी यशोदा मैयाको मिला, वैसा न ब्रह्माजीको न शकरको, न अर्धांगिनी लक्ष्मीजीको भी कभी प्राप्त हुआ।'

अष्ट वसुआमे श्रेष्ठ द्रोणने पद्मयोनि ब्रह्मासे यह प्रार्थना की—'देव! जव मैं पृथ्वीपर जन्म धारण करूँ, तब विश्वेश्वर स्वय भगवान् श्रीहरि श्रीकृष्णचन्द्रम मेरी परमा भक्ति हो।' इस प्रार्थनाके समय द्रोणपत्नी धरा भी वहीं खडी थीं। धराने मुखसे कुछ नहीं कहा, पर उनके अणु-अणुमे भी यही अभिलाषा थी मन-ही-मन धरा भी पद्मयोनिसे यही माँग रही थीं। पद्मयोनिने कहा—'तथास्तु—ऐसा ही होगा।' इसी वरके प्रतापस धरान व्रजमण्डलके एक सुमुख नामक गोप* एव उनकी पत्नी पाटलाकी कन्याके रूपमे भारतवर्षमे जन्म धारण किया—उस समय जब कि स्वय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अवतरणका समय हो चला था, श्वेतवाराहकल्पकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरका अन्त हो रहा था। पाटलाने अपनी कन्याका नाम यशोदा रखा। यशोदाका विवाह व्रजराज नन्दसे हुआ। ये नन्द पूर्वजन्मम वही द्रोण नामक वसु थे, जिन्हं ब्रह्माने वर दिया था।

भगवान्‌की नित्यलीलामे भी एक यशोदा हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी नित्यमाता हैं। वात्सल्यरसकी घनीभूत मूर्ति ये यशोदारानी भगवान्‌को सदा वात्सल्यरसका आस्वादन कराया करती हैं। जब भगवान्‌के अवतरणका समय हुआ तब इन चिदानन्दमयी, वात्सल्यरसमयी यशोदाका भी इन यशोदा (पूर्वजन्मकी धरा)-म ही आवेश हो गया। पाटलापुत्री यशोदा नित्ययशोदासे मिलकर एकमेक हो गयीं तथा इन्हीं यशोदाके पुत्रके रूपमे आनन्दकन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए।

जब भगवान् अवतीर्ण हुए थे, उस समय यशोदाकी आयु ढल चुकी थी। इससे पूर्व अपन पति नन्दके साथ यशादान न जाने कितनी चेष्टा की थी कि पुत्र हा, पर पुत्र हुआ नहीं। अत जव पुत्र हुआ, तत्र फिर आनन्दका कहना ही क्या है—

सूखत धानन कौं ज्यौं पान्यो, यौं पायौ या पनमें।

—यशोदाको पुत्र हुआ है, इस आनन्दम सारा व्रजपुर निमग्न हो गया।

× × ×

छठे दिन यशोदाने अपने पुत्रकी छठी पूजी। इसके दूसर दिनसे ही मानो यशोदा-वात्सल्य-सिन्धुका मन्थन आरम्भ हो गया, मानो स्वय जगदीश्वर अपनी जननीका हृदय मथते हुए राशि-राशि भावरत्न निकाल-निकालकर बिखरने लगे वतलाने लगे घोषणा करने लगे—'जगत्‌की देवियो! दखो, यदि तुममसे कोई मुझ परब्रह्म पुरुषोत्तमको अपना पुत्र बनाना चाहो तो मैं पुत्र भी बन सकता हूँ, पर पुत्र बनाकर मुझे कैसा प्यार किया जाता है, वात्सल्यभावसे मेरा भजन कैसे होता है—इसकी तुम्हे शिक्षा लेनी पडेगी। इसीलिये इन सर्वथा अनमोल रत्नाको निकालकर मैं जगत्‌म छोड दे रहा हूँ, ये ही तुम्हारे आदर्श होगे इन्हे पिरोकर अपने हृदयका हार बना लेना। हृदय आलोकित हो जायगा, उस आलोकमे आगे बढकर पुत्ररूपसे मुझे पा लोगी, अनन्तकालके लिये सुखी हो जाओगी।' अस्तु,

कसप्रेरित पूतना यशोदानन्दनको मारने आयी। उसने अपना विषपूरित स्तन यशोदानन्दनके श्रीमुखम दे दिया। किंतु यशोदानन्दन विषमय दूधके साथ ही पूतनाके प्राणोको भी पी गये। शरीर छोडते समय श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर ही पूतना मधुपुरीकी ओर दौडी। आह! उस क्षण यशोदाके प्राण भी मानो पूतनाके पीछे-पीछे दौड चले। यशोदाके प्राण तभी लौटे, तभी उनमे जीवनका सञ्चार हुआ जब पुत्रको लाकर गोपसुन्दरियोने उनके वक्ष स्थलपर रखा। यशोदाने स्नेहवश उस समय परमात्मा श्रीकृष्णपर

* सुमुखका एक नाम महोत्साह भी था।

गोपुच्छ फिराकर उनकी मङ्गल कामना की।

× × ×
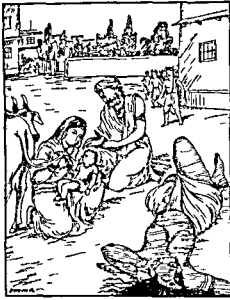
क्रमश यशोदानन्दन बढ रहे थे एव उसी क्रमसे मैयाका आनन्द भी प्रतिक्षण बढ रहा था। यशोदा मैया पुत्रको देख-देखकर फूली नहीं समाती थीं—

जसुमति फूली फूली डोलति।
अति आनद रहत सगरे दिन हसि हसि सब सो बोलति॥
मगल गाय उठति अति रस सो अपने मनका भायौ।
विकसित कहति देख व्रजसुंदरि कैसो लगत सुहायौ॥

कभी पालनेपर पुत्रको सुलाकर वे आनन्दम निमग्न होती रहतीं—

पलना स्याम झुलावति जननी।
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित मगन होति नँद घरनी॥
उमँगि उमगि प्रभु भुजा पसारत, हरपि जसोमति अंकम भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पूरन भई पुरातन करनी॥

इस प्रकार जननीका प्यार पाकर श्रीकृष्णचन्द्र तो आज इक्यासी दिनके हो गये, पर जननीको ऐसा लगता था मानो कुछ दर पहले ही मैंने अपने पुत्रका वह सलोना मुख देखा है। आज वे अपने पुत्रको एक विशाल शकटके नीचे पलनेपर सुला आयी थीं। इसी समय कसप्रेरित उत्कच नामक दैत्य आया और उस गाडीमे प्रविष्ट हो गया शकटको यशोदानन्दनपर गिराकर वह उनको पीस डालना चाहता था। पर इससे पूर्व ही यशोदानन्दनने अपने पैरसे शकटको उलट दिया और शकटासुरके ससरणका अन्त कर दिया। इधर जब जननीने शकट-पतनका भयकर शब्द सुना, तब ये सोच बैठीं कि मेरा लाल तो अब जीवित रहा नहीं। बस, ढाढ मारकर एक बार चीत्कार कर उठीं और फिर सर्वथा प्राणशून्य-सी होकर गिर पडीं। बडी कठिनतासे गापसुन्दरियाँ उनकी मूर्च्छा तोडनेमे सफल हुईं। उन्हाने आँखे खोलकर अपने पुत्रको देखा, देखकर रोती हुई ही अपनेको धिक्कारने लगीं—

'हाय रे हाय! मेरा यह नीलमणि नवनीतसे भी अधिक सुकोमल है, केवल तीन महीनेका है और इसके निकट शकट हठात् भूमिपर गिरकर टूट गया। यह बात सुनकर भी मेरे प्राण न निकले, मैं उन्हीं प्राणाको लेकर अभीतक जीवित हूँ, तो यही सत्य है कि मैं वज्रसे भी अधिक कठोर हूँ। मैं कहलानेमात्रको माता हूँ, मेरे ऐसे मातृत्वको, मातृवत्सलताको धिक्कार है।'

× × ×

यशोदारानी कभी तो प्रार्थना करतीं—हे विधाता! मेरा वह दिन कब आयेगा, जब मैं अपने लालको बकैयाँ चलते देखूँगी, दूधकी दँतुलियाँ देखकर मेरे नेत्र शीतल हागे, इसकी तोतली बोली सुनकर कानामे अमृत बहेगा—

नद घरनि आनँदभरी, सुत स्याम खिलावै।
कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहि बिधिहि मनावै॥
कबहिं दँतुलि द्वै दूध की देखौ इन नैननि?
कबहिं कमल मुख बोलिहैं, सुनिहौं उन बैननि॥
चूमति कर पग अधर भ्रू, लटकति लट चूमति।
कहा बरनि सूरज कहै, कहँ पावै सो मति॥

कभी श्रीकृष्णचन्द्रसे ही निहोरा करने जातीं—

नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ौ किन होहि।
इहिं मुख मधुर बचन हँसि कैधौं जननि कहै कब मोहि॥

जननीका मनोरथ पूर्ण करते हुए क्रमश श्रीकृष्णचन्द्र बोलने भी लगे, बकैयाँ भी चलने लगे और फिर खडे होकर चलने भी लगे। इतनेम वर्ष पूरा हो गया यशोदारानीने अपने पुत्रकी प्रथम वर्षगाँठ मनायी। इसी समय कसने तृणावर्त दैत्यको भेजा। वह आया और यशोदाके नीलमणिको उडाकर आकाशमे चला गया। यशादा मृतवत्सा गौकी भाँति पृथ्वीपर गिर पडीं। इस बार जननीके जीवनकी आशा किसीको न थी। पर जब श्रीकृष्णचन्द्र तृणावर्तको चूर्ण-

विचूर्ण कर लौटे, गोपियाँ उन्हे दैत्यके छिन्न-भिन्न शरीरपरसे उठा लायीं, तब तत्क्षण यशोदाके प्राण भी लौट आये—

शिशुमुपसद्य यशोदा दनुजहृत द्राक् चिचेत लीनापि।
वर्षाजलमुपलभ्य प्राणिति जातिर्यथेन्द्रगोपाणाम्॥

'दैत्यके द्वारा अपहृत शिशुको पाकर महाप्रयाण (मृत्यु)-मे लीन होनेपर भी यशोदा उसी क्षण वैसे ही चैतन्य हो गयीं, जैसे वर्षाका जल पाकर इन्द्रगोप (बीरबहूटी) कीटकी जाति जीवित हो जाती है।'

× × ×

यशोदा एव श्रीकृष्णचन्द्रमे होड लगी रहती थी। यशोदाका वात्सल्य उमडता, उसे देखकर उससे सौगुने परिमाणमे श्रीकृष्णचन्द्रका लीलामाधुर्य प्रकाशित होता, फिर इस लीलामाधुरीको देखकर सहस्रगुनी मात्रामे यशोदाका भावसिन्धु तरङ्गित हो उठता, इन भावलहरियोसे धुलकर पुन श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाकिरणे निखर उठतीं, क्षणभर पूर्व जो थीं उससे लक्षगुणित परिमाणमे चमक उठतीं—इस क्रमसे बढकर यशोदाका वात्सल्य अनन्त असीम, अपार बन गया था। उसमे डूबी हुई यशोदा और सब कुछ भूल गयी थीं, केवल नीलमणि ही उनके नेत्रोमे नाचते रहते थे। कब दिन हुआ, कब रात्रि आयी—यशोदाको यह भी किसीके बतानेपर ही भान होता था। उनको क्षणभरके लिये भावसमाधिसे जगानेके लिये ही मानो यशोदानन्दनने मृत्तिका-भक्षणकी लीला की। 'श्रीकृष्णने मिट्टी खायी है', यह सुनकर यशोदा उनका मुख खुलवाकर मिट्टी ढूँढने लगीं और उनके मुखमे सारा विश्व अवस्थित देखा, देखकर एक बार तो वे काँप उठीं, किंतु इतनेमे ही श्रीकृष्णचन्द्रकी वैष्णवी मायाका विस्तार हुआ। यशोदा-वात्सल्यसागरमे एक लहर उठी, वह यशोदाके इस विश्वदर्शनके स्मृतितकको बहा ले गयी, नीलमणिको गोदमे लेकर यशोदा प्यारसे उन्हे स्तनपान कराने लगीं—

अंक मे लगाइ नंद नंद को अनंद माइ।
ग्यान गूढ भूलि गौ, भये सुपुत्र प्रेम आइ॥
देखि बाल लाल कौ फँसी सु मोह फाँस आइ।
सीस सूँघि चूमि चारु दूध दै हिये अघाइ॥

× × ×

यशोदा भूली रहती थीं, पर दिन तो पूरे होते ही थे। यशोदाके अनजानमे ही उनके पुत्रकी दूसरी वर्षगाँठ भी आ पहुँची। फिर देखते-देखते ही उनके नीलमणि दो वर्ष दो महीनेके हो गये। पर अब नीलमणि ऐसे, इतने चञ्चल हो गये थे कि यशोदाको एक क्षण भी चैन नहीं। गोपियाके घर जाकर तो न जाने कितने दहीके भाँड फोड आया करते थे, एक दिन मैयाका वह दहीभाँड भी फोड दिया, जो उनके कुलमे वर्षोंसे सुरक्षित चला आ रहा था। जननीने डरानेके उद्देश्यसे श्रीकृष्णचन्द्रको ऊखलमे बाँधा। सारा विश्व अनन्त कालतक यशोदाकी इस चेष्टापर बलिहार जायगा—

जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥

इस बन्धनको निमित्त बनाकर यशोदाके नीलमणिने दो अर्जुनवृक्षोको जडसे उखाड दिया। फिर तो व्रजवासी यशोदानन्दनकी रक्षाके लिये अतिशय व्याकुल हो गये। पूतनासे शकटसे, तृणावर्तसे—इतनी बार तो नारायणने नीलमणिको बचा लिया, अब आगे यहाँ इस गोकुलमे तो एक क्षण भी नहीं रहना चाहिये। गोपोने परामर्श करके निश्चय कर लिया—बस इसी क्षण वृन्दावन चले जाना है। यही हुआ, यशोदा अपने नीलमणिको लेकर वृन्दावन चली आयीं।

× × ×

वृन्दावन आनेके पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रकी अनेक भुवनमोहिनी लीलाओका प्रकाश हुआ। उन्हे गोपबालकोके मुखसे सुन-सुनकर तथा कुलको अपनी आँखो देखकर

यशोदा कभी तो आनन्दमे निमग्न हो जातीं और कभी पुत्रकी रक्षाके लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठते।

श्रीकृष्णचन्द्रका तीसरा वर्ष अभी पूरा नहीं हुआ था, फिर भी वे बछडा चराने वनमे जाने लगे। वनमे वत्सासुर-बकासुर आदिको मारा। जब इन घटनाओका विवरण जननी सुनती थीं, तब पुत्रके अनिष्टकी आशकासे उनके प्राण छटपटाने लगते। पाँचवे वर्षकी शुक्लाष्टमीसे श्रीकृष्णचन्द्रका गोचारण आरम्भ हुआ तथा इसी वर्ष ग्रीष्मके समय उनकी कालियदमन-लीला हुई। कालियके बन्धनमे पुत्रको बँधा देखकर यशोदाकी जो दशा हुई थी, उसे चित्रित करनेकी क्षमता किसीम नहीं। छठे वर्षम जैसी-जैसी विविध मनोहारिणी गोष्ठक्रीडा श्रीकृष्णचन्द्रने की, उसे सुन-सुन यशोदाको कितना सुख हुआ था, इसे भी वर्णन करनेकी शक्ति किसीमे नहीं। सातवे वर्ष धेनुक-उद्धारकी लीला हुई, आठवे वर्ष गोवर्धनधारणकी लीला हुई, नवे वर्षमे सुदर्शनका उद्धार हुआ, दसवे वर्ष अनेक आनन्दमयी बालक्रीडाएँ हुईं ग्यारहव वर्ष अरिष्ट-उद्धार हुआ, बारहव वर्षके फाल्गुनमासकी द्वादशीको केशी दैत्यका उद्धार हुआ। इन-इन अवसरोपर यशोदाके हृदयमे हर्ष अथवा दु खकी जो धाराएँ फूट निकलती थीं, उनम यशोदा स्वय तो डूब ही जातीं, सारे व्रजको भी निमग्न कर देती थीं।

इस प्रकार ग्यारह वर्ष, छ महीने यशोदारानीके भवनको श्रीकृष्णचन्द्र आलोकित करते रहे, किंतु अब यह आलोक मधुपुरी जानेवाला था। श्रीकृष्णचन्द्रको मधुपुरी ले जानेके लिये अक्रूर आ ही गये। वही फाल्गुन द्वादशीकी सन्ध्या थी, अक्रूरने आकर यशोदाके हृदयपर मानो अतिक्रूर वज्र गिरा दिया। सारी रात व्रजेश्वर व्रजरानी यशोदाको समझाते रहे, पर यशोदा किसी प्रकार भी सहमत नहीं हो रही थीं, किसी हालतमे पुत्रको कसकी रगशाला देख आनेकी अनुमति नहीं देती थीं। आखिर योगमायाने मायाका विस्तार किया, यशोदा भ्रान्त हो गयीं। अनुमति तो उन्होने फिर भी नहीं दी, पर अबतक जो विरोध कर रही थीं, वह न करके आँसू ढालने लगीं। विदा होते समय यशोदारानीकी जो करुण दशा थी उसे देखकर कौन नहीं रो पडा। आह!

यात्रामङ्गलसम्पद न कुरुते व्यग्रा तदात्वोचिता
वात्सल्यौपयिकं च नोपनयते पाथेयमुद्भ्रान्तधी ।
धूलीजालमसौ विलोचनजलैर्जम्बालयन्ती पर
गोविन्द परिरभ्य नन्दगृहिणी नीरन्ध्रमाक्रन्दति॥

व्यग्र हुई यशोदा यात्राके समय करने योग्य मङ्गलकार्य भी नहीं कर रही हैं। इतनी भ्रान्तचित्त हो गयी हैं कि अपने वात्सल्यके उपयुक्त पुत्रको कोई पाथेय (राहखर्च)-तक नहीं दे रही हैं, देना भूल गयी हैं। श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर निरन्तर रो रही हैं, उनके अजस्र अश्रुप्रवाहसे भूमि पङ्किल हो रही है।

रथ श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर चल पडा। रथचक्रो (पहियो)-के चिह्न भूमिपर अङ्कित होने लगे, मानो धरारूपिणी यशादाके छिदे हुए हृदयको पृथ्वीदेवी व्यक्त कर रही थीं।

× × ×

श्रीकृष्णचन्द्रके विरहम जननी यशोदाकी क्या दशा हुई, इसे यथार्थमे वर्णन करनेकी सामर्थ्य सरस्वतीमे भी नहीं। यशोदा मैया वास्तवमे विक्षिप्त-सी हो गयीं। जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र रथपर बैठे थे, वहाँ प्रतिदिन चली आतीं। उन्ह दीखता—अभी-अभी मेरे नीलमणिको अक्रूर लिये जा रहे हैं। वे चीत्कार कर उठतीं—'अरे! क्या व्रजमे कोई नहीं, जो मेरे जाते हुए नीलमणिको रोक ले, पकड ले। वह देखो, रथ बढा जा रहा है, मेरे प्राण लिये जा रहा है, मैं दौड नहीं पा रही हूँ, कोई दौडकर मेरे नीलमणिको पकड लो भैया!'

कभी जड-चेतन, पशु-पक्षी, मनुष्य—जो कोई भी दृष्टिके सामने आ जाता, उसीसे वसुदेवपत्नी देवकीको अनेक सदेश भेजतीं—

सँदेसो देवकी सो कहियो
हौ तो धाय तुम्हारे सुत की, मया करत नित रहियो॥
जदपि टेव तुम जानत उनकी, तऊ मोहि कहि आवे।
प्रातहि उठत तुम्हारे सुत कौ माखन रोटी भावै॥
तेल उबटनौ अरु तातौ जल देखत ही भजि जावै।
जोइ जोइ माँगत, सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि करि न्हावै॥
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन बढ्यौ रहत उर सोच।
मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन ह्वैहै करत सकोच॥

किसी पथिकने यशोदाका यह सदेश श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर

कह भी दिया। सान्त्वना देनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवको भेजा। उद्धव आये, पर जननीके आँसू पोछ नहीं सके।

× × ×

यशोदारानीका हृदय तो तब शीतल हुआ जब वे कुरुक्षेत्रमे श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं। राम-श्यामको हृदयसे लगाकर, गोदमे बैठाकर उन्होने नव-जीवन पाया।

कुरुक्षेत्रसे जब यशोदारानी लौटीं, तब उनकी जानमे उनके नीलमणि उनके साथ ही वृन्दावन लौट आये। यशोदाका उजडा हुआ ससार फिरसे बस गया।

× × ×

श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीला समेटनेवाले थे। इसीलिये अपनी जननी यशोदाको भी पहलेसे भेज दिया। जब भानुनन्दिनी, गोलोकविहारिणी श्रीराधाकिशोरीको वे विदा करने लगे, तब गोलोकके उसी दिव्यातिदिव्य विमानपर जननीको भी बिठाया तथा राधाकिशोरीके साथ ही यशोदा अन्तर्धान हो गयीं, गोलोकमे पधार गयीं।

भगवान् वेदव्यास-प्रतिपादित अवतार-लीलाएँ

'व्यासो नारायण साक्षात्' (शङ्करदिग्विजय)— इस वचनके अनुसार वेदव्यासजी साक्षात् नारायणस्वरूप हैं और नारायणके अंशावतार भी हैं। श्रीमद्भागवतम बतलाया गया है कि समयके फेरसे लोगोकी समझ कम हो जाती है आयु भी कम होने लगती है। उस समय जब भगवान् देखते हैं कि अब ये लोग मेरे तत्त्वको बतलानेवाली वेदवाणीको समझनेमे असमर्थ होते जा रहे हैं तब प्रत्येक कल्पमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमे प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्षका विभिन्न शाखाओंके रूपमे विभाजन कर देते हैं—

> कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां
> स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः।
> आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां
> वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म॥*
>
> (श्रीमद्भा० २।७।३६)

इस प्रकार श्रीनारायण हरि ही व्यासजीके रूपमें अवतीर्ण होकर शास्त्र-रक्षाका महान् कार्य करते हैं। व्यासजी सम्पूर्ण ससारके गुरु हैं, प्राणियोको परमार्थका मार्ग दिखानेके लिये ही उनका अवतार है। गुरुरूपमे उनकी विशेष आराधना आषाढ-पूर्णिमाको होती है, जिसे गुरुपूर्णिमा भी कहते हैं। अवतरित होकर व्यासजीने न केवल वेदसहिताका ऋक्-यजु -भेदसे विभाजन किया, अपितु अष्टादश महापुराणो तथा उपपुराणोकी भी रचना की। 'यन्न भारते तन्न भारते' के रूपमे प्रसिद्ध लक्षश्लोकात्मक 'महाभारत' ग्रन्थ हमे वेदव्यासजीकी कृपासे ही प्राप्त है। बादरायण-शास्त्रके नामसे जाना जानेवाला ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) भगवान् वेदव्यासकी दिव्य प्रतिभासे ही प्रातिभज्ञानके रूपमे हमे प्राप्त है। सारा ज्ञान-विज्ञान वेदोमे सूत्ररूपमे तथा पुराणेतिहास-ग्रन्थोमे उपबृंहणके रूपमें निरूपित है, जिनके द्रष्टा-स्रष्टा वेदव्यासजी हैं, इसीलिये

---

* यही बात निम्न श्लोकोंमें भी बतायी गयी है—

(क) ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्। चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥ (श्रीमद्भा० १।३।२१)

(ख) द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने। वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितम्॥ (विष्णुपु० ३।३।५)

हे महामुने! प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् विष्णु व्यासरूपमें अवतीर्ण होते हैं और संसारके कल्याणके लिये एक वेदके अनेक भेद कर देते हैं।

वे 'वाङ्मयावतार' भी कहलाते हैं। सब कुछ ज्ञान-विज्ञान हमे वेदव्यासजीकी कृपासे प्राप्त हुआ है, इसीलिये वे 'कृपावतार' भी कहे जाते हैं। समस्त जगत्पर उनका महान् अनुग्रह है। उनकी एक स्तुतिम उन्हे नमन करते हुए कहा गया है कि महर्षि पराशरके पुत्र, परमपुरुष सम्पूर्ण वैदिक शाखाओकी उत्पत्तिके स्थान सम्पूर्ण विद्याओके आधार, निर्मल मनवाले, वेद-वदान्ताके द्वारा परिज्ञेय सदा शान्त रागशून्य विशाल-विशुद्धबुद्धि तथा निर्मल यशवाले महात्मा वेदव्यासजीको मैं नमस्कार करता हूँ—

पाराशर्यं परमपुरुष विश्ववेदैकयानि
विद्याधार विमलमनस वेदवेदान्तवेद्यम्।
शश्वच्छान्त शमितविषय शुद्धबुद्धि विशाल
वेदव्यास विमलयशस सर्वदाह नमामि॥

(पद्म०उ०ख० २१९।४२)

वेदव्यासजीने अवतरित होकर वाङ्मयके रूपमे जो हमे विद्याका दान दिया सो तो है ही, उसके साथ ही उन्होने कृपासिन्धु भगवान्के सभी अवताराकी लीला-कथाका जो प्रतिपादन किया है, वह एक अद्भुत बात है। वेदव्यासजीने ही हमे बताया कि भगवान्का अवतार होता है और इस आर्यधरापर अवतरित होकर भगवान् माङ्गलिक लीलाएँ करक लोकको आह्लादित करते हैं तथा जीवाका कल्याण करते हैं। जितने विस्तारसे पुराणोमे भगवान्क अवताराका लीलाचरित्र वर्णित है, वह हमे वेदव्यासजीकी कृपासे ही प्राप्त है, वह चाहे श्रीमद्भागवतपुराण हो, विष्णुपुराण हो, शिवपुराण हो, गणेशपुराण हो या देवीभागवतपुराण हो। सभी पुराणाम अवतारोका निरूपण हुआ है। कई पुराण तो अवतारोके नामपर ही व्यासजीद्वारा रचित हैं, जैसे—मत्स्यपुराण कूर्मपुराण, वाराहपुराण, वामनपुराण तथा नारदपुराण। श्रीमद्भागवतपुराणका सम्पूर्ण दशम स्कन्ध तथा एकादश स्कन्ध भगवान् श्रीकृष्णके अवतरणसे लकर उनके परमधामगमनतकके वर्णनसे गुम्फित है। श्रीमद्भागवतके प्रारम्भम ही भगवान्की लीलाकथा तथा भक्तिके माहात्म्यको बताते हुए व्यासजी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णमे भक्ति होते ही—अनन्य प्रेमसे उनम चित्त जोडते ही निष्काम ज्ञान और वैराग्यका आविर्भाव हो जाता है। धर्मका ठीक-ठीक अनुष्ठान करनेपर भी यदि मनुष्यके हृदयम भगवान्की लीला-कथाआके प्रति अनुरागका उदय न हो तो वह निरा श्रम-ही-श्रम है—

वासुदेवे भगवति भक्तियोग प्रयोजित ।
जनयत्याशु वैराग्य ज्ञान च यदहैतुकम्॥
धर्म स्वनुष्ठित पुसा विष्वक्सेनकथासु य ।
नोत्पादयेद्यदि रति श्रम एव हि केवलम्॥

(श्रीमद्भा० १।२।७-८)

वेदव्यासजीने यह बताया हे कि भगवान् ही सम्पूर्ण लोकोकी रचना करते हैं और देवता पशु-पक्षी मनुष्य आदि योनियोमे लीलावतार ग्रहण करके सत्त्वगुणके द्वारा जीवाका पालन-पोषण करते हैं—

भावयत्येष सत्त्वन लोकान् वै लोकभावन ।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥

(श्रीमद्भा० १।२।३४)

पुन व्यासजीने भगवान्क अवताराका वर्णन करते हुए बताया है कि सृष्टिक आदिम भगवान्ने पुरुषावतार धारण किया—**'जगृहे पौरुष रूपम्।'** भगवान् नारायणका यही पुरुषरूप अनेक अवताराका अक्षय-कोष है, इसीसे सार अवतार प्रकट होते हैं—**'एतन्नानावताराणा निधान बीजमव्ययम्'** (श्रीमद्भा० १।३।५)। तदनन्तर व्यासजीने सनकादि, वाराह, नर-नारायण कपिल दत्तात्रेय, यज्ञ ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नरसिह, वामन परशुराम, व्यास, श्रीराम, बलराम, कृष्ण बुद्ध तथा कल्कि आदि अवतारोका परिगणन करके फिर सभी अवतारोकी मङ्गलमयी कथाएँ प्रतिपादित की हैं।

भगवान्के अवतारोकी इयत्ता न होनेकी बात कहते हुए व्यासजी बताते हैं कि जैसे अगाध सरोवरसे हजारो छोटे-छोटे नाले निकलते हैं, वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरिके असख्य अवतार हुआ करते हैं। ऋषि मनु, देवता प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली पुरुष हैं सब-के-सब भगवान्के ही अश हैं। ये सब अवतार तो भगवान्के अशावतार अथवा कलावतार हैं, परतु श्रीकृष्ण तो स्वय भगवान् (अवतारी) हैं—

'एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।'

(श्रीमद्भा० १।३।२८)

व्यासजी बताते हैं कि जो लोग भगवान्के लीलावतारकी

कथाओंका श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण और कथन करते हैं, उनके हृदयमें थोड़े ही समयमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं—

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि॥

(श्रीमद्भा० २।८।४)

आगे फिर व्यासजीने भगवान्‌के विविध अवतारोंका विस्तारसे वर्णन किया है। भागवतके तृतीय स्कन्धमें वाराहावतार तथा कपिलावतारका वर्णन है। चतुर्थ स्कन्धमें ध्रुवके लिये भगवान्‌का 'श्रीहरि' नाम-रूपसे अवतार-धारण तथा पृथु-अवतारका वर्णन है, फिर पञ्चम स्कन्धमें ऋषभदेवजीका चरित्र है, सप्तम स्कन्धमें प्रह्लादचरित्र तथा भगवान् नृसिंहके प्रादुर्भावकी कथा है, अष्टम स्कन्धमें गजेन्द्रोद्धारक श्रीहरिकी कथा है यहीं मोहिनी-अवतार तथा वामन-अवतारकी मंगलमयी कथा वर्णित है। नवम स्कन्धमें भगवान् श्रीरामके आविर्भाव तथा लीलाओंका वर्णन है। वहाँ व्यासजीने एक श्लोकमें उनसे सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाकी प्रार्थना की है—

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।४)

व्यासजी कहते हैं—भगवान् श्रीरामने अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षाके लिये राजपाट छोड़ दिया और वे वन-वनमें फिरते रहे। उनके चरणकमल इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकीजीके करकमलोंका स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वनमें चलते-चलते थक जाते, तब हनुमान् और लक्ष्मण उन्हें दबा-दबाकर उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखाके नाक-कान काटकर विरूप कर देनेके कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजीका वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोगके कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्रतक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्रपर पुल बाँधा और लंकामें जाकर दुष्ट राक्षसोंके जंगलको दावाग्निके समान दग्ध कर दिया। वे कोसलनरेश हमारी रक्षा करें।

इसी क्रममें आगे विस्तारसे रामावतारका मङ्गलम चरित्र वर्णित है। इसी नवम स्कन्धमें आगे भगव परशुरामजीके अवतारधारण तथा उनके पराक्रमका विस्ता प्रतिपादन किया गया है। दशम स्कन्धमें कृष्णावतारका त उसकी समस्त लीलाकथाओंका वर्णन है। आगे पु व्यासजीने एकादश स्कन्धके चौथे अध्यायमें संक्षेपमें अने अवतारोंका वर्णन किया है। भगवान्‌के लीलावतारो वर्णनमें वेदव्यासजी कहते हैं कि इस भागवतपुराणमें प्रत्येक कथा-प्रसंगमें पद-पदपर सर्वस्वरूप भगवान्‌का वर्णन हुआ है—

इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः
परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसङ्गैः॥

(श्रीमद्भा० १२।१२।६५

यह तो हुई भगवान् विष्णुके पूर्णावतार तथा अंशावतारक बात। ऐसे ही व्यासजीने भगवान् श्रीसाम्बसदाशिवक लीलाचरित्र बतानेके लिये शिवपुराणकी रचना कर डाली उन्होंने शिवपुराणमें भगवान् शिवके नन्दीश्वर, भैरव, यक्ष दुर्वासा हनुमान्, पिप्पलाद द्विजेश्वर यतिनाथ, हंस तथ अर्धनारीश्वर आदि अवतारोंका वर्णन सुन्दर लीला-प्रसंगोंमें किया है। भगवान् सदाशिवके सद्योजात वामदेव, तत्पुरुष अघोर तथा ईशान आदि विशिष्ट अवतारों एकादश रुद्रोंके रूपमें भगवान् शिवके अवतरण, द्वादश ज्योतिर्लिंगों तथ अन्य लिंगोंके रूपमें स्वरूपधारणका विस्तारसे वर्णन किय गया है। ऐसे ही उनकी क्षिति जल, तेज, वायु आदि मूर्तियोंका भी प्रतिपादन हुआ है।

देवीभागवतमें व्यासजीने भगवान्‌की लीलाशक्ति श्रीमहाकाली तथा दुर्गा आदिके अवतारोंका वर्णन किया है। मार्कण्डेयपुराण जो भगवती दुर्गाके विविध चरित्रोंमें ही पर्यवसित है, के अन्तर्गत श्रीदुर्गासप्तशती निर्दिष्ट है, जिसमें भगवतीके महाकाली महालक्ष्मी तथा महासरस्वती आदि विविध स्वरूपों जयन्ती आदि नौ दुर्गाओंका वर्णन है। ऐसे ही भगवती गायत्री, गौरी आदि मातृकाओं और दस महाविद्याओंके लीलाचरितोंका भी व्यासजीने विस्तारसे वर्णन किया है।

व्यासजीने आदिपूज्य भगवान् गणेशकी अवतार-लीलाओंका वर्णन करनेके लिये तो गणेशपुराण तथा मुद्गलपुराण नामसे दो पुराणोंकी स्वतन्त्र रचना की है।

इनमे महोत्कट, मयूरेश्वर, गजानन, वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज तथा धूम्रवर्ण आदि नामासे भगवान् गणेशके अवताराका वर्णन है। ऐसे ही अष्टविनायकका आदिकी भी कथाएँ उन्हाने हम बतायी हैं।

प्रत्यक्ष अवतार भगवान् सूर्यकी महिमा तो प्राय सभी पुराणाम व्यासजीने बतायी है, उनम भी भविष्यपुराण तथा सौरपुराण और भागवत आदिम द्वादश आदित्याकी सुन्दर कथाएँ आयी हैं।

भगवान् अपन अवतरणके साथ ही अपनी क्रियाशक्ति अथवा लीलाशक्ति, पार्षदा तथा परिकराके साथ ही जगत्मे आकर लीला करते हैं और भक्तोको आनन्दित करते हैं। यह बात भी श्रीव्यासजीने ही हमे बतायी है। व्यासजीने एक स्थलपर तो यहाँतक कहा है कि भगवान् अपने लीलाचरित्राके माध्यमसे लोगाका शिक्षा देनेके लिये, अपने भक्तोकी बात रखनेके लिये तथा उनके विश्वासकी रक्षा करनेक लिये ही अवतरित होते हैं—

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।'

(श्रीमद्भा० ५।१९।५)

तथा

'मत्य विधातु निजभृत्यभाषितम्।'

(श्रीमद्भा० ७।८।१८)

ऐसे ही महाभारत आदि ग्रन्थाम भी व्यासजीने भगवान्‌की अवतार-कथाओका वर्णन किया है। अपने वेदान्त-दर्शनमे उन्होने अवतारवादकी सिद्धि तथा भगवान्‌के द्वारा अवतार धारणकर लीला करनेकी बात सिद्ध की है जो **'ईक्षतेर्नाशब्दम्'** (१।१।५), **'विरोध कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्'** (१।३।२७) तथा **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** (२।१।३३) आदि सूत्रोद्वारा इगित है।

इस प्रकार भगवान् वेदव्यासजीके कृपाप्रसादसे ही लोकमे भगवान्‌की लीलाकथाआका ज्ञान हुआ। वेदादि ग्रन्थामे तो सूत्ररूपमे अवतारोका निरूपण है, उसका वेदव्यासजीने इतिहास (महाभारत) तथा पुराणोकी रचना करके कथाओके माध्यमसे उपबृहण (विस्तार) किया— **'इतिहासपुराणाभ्या वेदार्थं समुपबृहयेत्।'** व्यासजीकी इस रूपम जगत्पर कितनी कृपा है, यह विचार करनेकी बात है। इतना ही नहीं, वे प्रत्येक कल्पके द्वापरयुगमे विभिन्न नाम-रूपामे अवतरित होकर अपने वाङ्मयद्वारा लोगाको भगवान्‌की लीलाकथाओका ज्ञान कराते हैं। लोग उनके मुखकमलसे नि सृत वाङ्मयरूपी सुधाधाराका पान करते हैं—

'यस्यास्यकमलगलित वाङ्मयममृत जगत् पिबति।'

(वायुपुराण १।१।२)

कदाचित् भगवान् व्यासजी ऐसी कृपा न करते तो लोक भगवत्कथाज्ञानसे शून्य ही रहता। ऐसे कृपावतार तथा विशुद्ध विशाल बुद्धि-वैभवसे सम्पन्न वेदव्यासजीको नमस्कार है—**'नमाऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे'** (ब्रह्म० २४५।११)।

~~~०~~~

देवताओके अशसे पाण्डवोंका अवतरण

यदुवशम शूरसेन नामक एक श्रेष्ठ राजा हुए, जो वसुदवजीके पिता थे। शूरसेनका एक कन्याकी प्राप्ति हुई, जिसका नाम पृथा रखा गया। शूरसेनके फुफेरे भाई कुन्तिभोज सन्तानहीन थे। शूरसेनने कुन्तिभोजसे पहले ही प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मैं तुम्हे अपनी पहली सन्तान भेट कर दूँगा। प्रतिज्ञाके अनुसार शूरसेनन अपनी पहली सन्तान जा एक कन्या थी कुन्तिभोजको दे दी। कुन्तिभोजकी धर्मकन्या होनेसे पृथाका नाम कुन्ती हो गया। कुन्तीको घरपर देवताआके पूजन तथा अतिथियाके सत्कारका कार्य सौंपा गया। एक समय वहाँ महर्षि दुर्वासाजी आये। महान् क्रोधी दुर्वासाजीको कुन्तीने अपने सेवाभावसे सतुष्ट कर दिया। आशीर्वादस्वरूप महर्षि दुर्वासाने उन्हे एक वशीकरण मन्त्र दिया एव उसके प्रयोगकी विधि भी बता दी और कहा—'शुभे। तुम इस मन्त्रद्वारा जिस-जिस देवताका आवाहन करोगी, उसी-उसीके अनुग्रहसे तुम्हे पुत्र प्राप्त होगा'—

य य देव त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि।
तस्य तस्य प्रसादेन पुत्रस्तव भविष्यति॥

(महा० आदि० ११०।७)

यूँ ही समय बीतता गया। कुन्ती विवाहयोग्य हो
~~~

गयी। राजा कुन्तिभोजने स्वयवरका आयोजन किया और स्वयवरमें कुन्तीने भरतवशशिरामणि नृपश्रेष्ठ पाण्डुका वरण किया। कुन्ती महाराज पाण्डुके साथ हस्तिनापुर आ गयी। महाराज पाण्डुका दूसरा विवाह मद्रदेशके अधिपति शल्यकी बहन माद्रीके साथ हुआ। एक समयकी बात है, राजा पाण्डु विशाल वनम विचरण कर रहे थे, वहाँ एक मृग-मृगीके युगलको उन्हाने बींध डाला वास्तवम व ऋषिदम्पति थे। फलस्वरूप उन्हे ऋषिद्वारा शाप प्राप्त हुआ कि वे भी कदाचित् स्त्रीप्रसगम प्रवृत्त होगे तो उन्हे मृत्युका वरण करना पडेगा। ऋषिका यह दारुण शाप सुनकर राजा अत्यन्त दु खी तथा भयभीत हो गये और फिर वानप्रस्थधर्मका आश्रय लेकर शतशृग पर्वतपर दोना रानियाके साथ वे तपस्यामे प्रवृत्त हो गय, किंतु सतानहीनताका कष्ट उन्ह सताता रहा। एक दिन उन्हाने कुन्तीके सामने अपनी चिन्ता प्रकट की और पुत्रप्राप्तिके लिये कोई अन्य प्रयत्न करनेकी आज्ञा दी। तब कुन्तीने हाथ जोडकर बाल्यावस्थाम महर्षि दुर्वासासे प्राप्त वरदानकी बात उन्हे बतलायी और कहा—'आप आज्ञा दे मैं किस देवताका आवाहन करूँ।' कुन्तीकी बात सुनकर पाण्डुको बडी प्रसन्नता हुई और उन्हाने कहा—'प्रिये। मैं धन्य हूँ, तुमने मुझपर महान्

अनुग्रह किया। तुम्हीं मरे कुलका धारण करनेवाली हो। उन महर्षिको नमस्कार है, जिन्हाने तुम्ह वैसा वर दिया। धर्मज्ञे। अधर्मसे प्रजाका पालन नहीं हो सकता। इसलिये वरारोहे। तुम आज ही विधिपूर्वक प्रयत्न करो। शुभे। सबसे पहले धर्मका आवाहन करो, क्योकि वे ही सम्पूर्ण लाकाम धर्मात्मा हैं। धर्मके द्वारा दिया हुआ जा पुत्र हागा, उसका मन अधर्मम नहीं लगेगा'—

धर्ममावाहय शुभे स हि लोकेषु पुण्यभाक्॥
धर्मेण चापि दत्तस्य नाधर्मे रस्यते मन ॥
(महा० आदि० १२१। १७ १९)

पतिकी आज्ञा प्राप्तकर कुन्तीने उनकी परिक्रमा की और अच्युतस्वरूप भगवान् धर्मका आवाहन किया। ऋषियोंका वरदान अमोघ होता है। कुन्तीके आवाहन करते ही साक्षात् धर्मदेवता सूर्यके समान तेजस्वी विमानम बैठकर उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ देवी कुन्ती जप कर रही थीं। देवी कुन्तीका आशय समझकर धर्मदेवताने उन्ह पुत्रप्राप्तिका योग प्राप्त कराया और यथासमय कुन्तीने साक्षात् धर्मावतार एक पुत्रको जन्म दिया। वे ही धर्मराज युधिष्ठिरके नामसे विख्यात हुए। पुत्रके जन्म लेते ही अद्भुत आकाशवाणी हुई, जो इस प्रकार है—

एष धर्मभृता श्रेष्ठो भविष्यति नरोत्तम ।
विक्रान्त सत्यवाक् त्वेव राजा पृथ्व्या भविष्यति॥
युधिष्ठिर इति ख्यात पाण्डो प्रथमज सुत ।
भविता प्रथितो राजा त्रिषु लोकेषु विश्रुत ॥
यशसा तेजसा चैव वृत्तेन च समन्वित ।
(महा० आदि० १२२।८—१०)

अर्थात् यह श्रेष्ठ पुरुष धर्मात्माआम अग्रगण्य होगा और इस पृथ्वीपर पराक्रमी एव सत्यवादी राजा होगा। पाण्डुका यह प्रथम पुत्र 'युधिष्ठिर' नामसे विख्यात हो तीनो लोकोम प्रसिद्धि एव ख्याति प्राप्त करेगा, यह यशस्वी, तेजस्वी तथा सदाचारी होगा।

धर्मके अशावतार धर्मराज युधिष्ठिरको पुत्ररूपमें प्राप्तकर पाण्डुको महान् प्रसन्नता हुई। वे पुन कुन्तीसे बोले—प्रिये। क्षत्रियका बलसे ही बडा कहा गया है, अत एक ऐसे पुत्रका वरण करो जो बलमे सबसे श्रेष्ठ हो। चूँकि वायुदेवता बल-पराक्रमम सबसे बढ-चढकर हैं अत तुम इस बार वायुदेवका आवाहन करो। पतिकी आज्ञासे कुन्तीने वायुदेवका ध्यान कर उनका आवाहन किया। उसी समय

मृगपर आरूढ हो वायुदेव वहाँ उपस्थित हुए और देवी कुन्तीका आशय समझकर उसे पुत्रप्राप्तिका वर दिया। फलस्वरूप महाबाहु भीमका प्राकट्य हुआ।

भीमसेनको पुत्ररूपमे प्राप्तकर दैववश पाण्डुके मनमे एक ऐसे पुत्रकी अभिलाषा जगी, जो सब प्रकारसे श्रेष्ठ तथा सभी सुलक्षणोसे सम्पन्न हो। तब उन्होने विचार किया कि देवताओम इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं, अत पुत्रप्राप्तिके लिय मुझे भी उनकी आराधना करनी चाहिये। यह निश्चय कर वे एक पैरपर खडे होकर उग्र तपम प्रवृत्त हो गये। उनके तपसे प्रसन्न हो इन्द्र उपस्थित हुए और कहा—'राजन्! मैं तुम्हे ऐसा पुत्र दूँगा, जो तीना लोकोमे विख्यात होगा'—

'पुत्र तव प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥'

(महा० आदि० १२२।२८)

तदुपरान्त पाण्डुने देवी कुन्तीसे कहा—'कल्याणि! देवताओंके स्वामी इन्द्र हमपर प्रसन्न हैं और तुम्हारे सङ्कल्पके अनुसार तुम्हे पुत्र देना चाहते हैं, अत ऐश्वर्यशाली पुत्रकी प्राप्तिके लिये तुम देवराज इन्द्रका आवाहन करो।' तदनन्तर देवी कुन्तीने देवराज इन्द्रका स्मरण कर उनका आवाहन किया। वज्रधर देवराज इन्द्र उपस्थित हो गये और

उन्होने कुन्तीके माध्यमसे अर्जुनको जन्म दिया। फाल्गुन मास और फाल्गुनी नक्षत्रम जन्म लेनेके कारण उनका नाम फाल्गुन हुआ। उसी समय इस प्रकार आकाशवाणी हुई—

कार्तवीर्यसम कुन्ति शिवतुल्यपराक्रम।
एष शक्र इवाजय्यो यशस्ते प्रथयिष्यति॥
अदित्या विष्णुना प्रीतिर्यथाभूदभिवर्धिता।
तथा विष्णुसम प्रीति वर्धयिष्यति तेऽर्जुन॥

(महा० आदि० १२२।३८-३९)

'कुन्तिभोजकुमारी! यह बालक कार्तवीर्यार्जुनके समान तेजस्वी, भगवान् शिवके समान पराक्रमी और देवराज इन्द्रके समान अजेय होकर तुम्हारे यशका विस्तार करेगा। जैसे भगवान् विष्णुने वामनरूपमे प्रकट होकर देवमाता अदितिके हर्षको बढाया था, उसी प्रकार यह अर्जुन तुम्हारी प्रसन्नताको बढायेगा।'

इसी आकाशवाणीके साथ आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी और देव-दुन्दुभियोका तुमुलनाद बडे जोरसे गूँज उठा। देवता वहाँ उपस्थित होकर अर्जुनकी प्रशसा करने लगे।

इधर, देवी माद्रीके मनमे भी सतान-सुखकी लालसा जगी। उन्होने महाराज पाण्डुसे प्रार्थना की कि आप कुन्तीसे पुत्रविषयक मेरी अभिलाषा बतानेकी कृपा करे। तव पाण्डुने एकान्तमे कुन्तीसे माद्रीके मनकी बात कही। पाण्डुके ऐसा कहनेपर कुन्तीने माद्रीसे कहा—

तुम एक बार किसी देवताका चिन्तन करो, उससे तुम्हे योग्य सतानकी प्राप्ति होगी, इसम सशय नहीं है—

एवमुक्त्वाब्रवीन्माद्रीं सकृच्चिन्तय दैवतम्।
तस्मात् ते भवितापत्यमनुरूपमसशयम्॥

(महा० आदि० १२३।१५)

तब माद्रीने बहुत सोच-विचारकर दोनों अश्विनीकुमारोंका स्मरण किया और उन दोनाने उपस्थित होकर दा युगल पुत्र माद्रीको प्राप्त कराये। उनमसे एकका नाम था नकुल और दूसरेका सहदव। उसी समय आकाशवाणी हुई—

सत्त्वरूपगुणोपेतौ भवतोऽत्यश्विनाविति।
भासतस्तेजसात्यर्थं रूपद्रविणसम्पदा॥

(महा० आदि० १२३।१८)

अर्थात् ये दाना बालक अश्विनीकुमारासे भी बढकर बुद्धि रूप और गुणास सम्पन्न हाग। अपने तेज तथा बढी-चढी रूप-सम्पत्तिके द्वारा ये दोनो सदा प्रकाशित रहगे।

इस प्रकार पाँचो पाण्डव देवताआके अशावतारके रूपमे प्रकट हुए और उन्हाने धर्मकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न किया। ये पाँचो भगवान्‌के अनन्य भक्त थे। इनकी महिमाम कहा गया है कि महाराज धर्मराज युधिष्ठिरका नाममात्र लेनेसे धर्मकी वृद्धि होती है। वायुदेवके अवतार वृकोदर भीमका कीर्तन करनेसे पाप नष्ट हो जाता है, देवराज इन्द्रक अवतार धनजय अजुनका नाम लनस शत्रुका विनाश हो जाता है और अश्विनीकुमाराके अवतार देवी माद्रीके पुत्रा नकुल-सहदेवका नाम लेनेसे कोई रोग नहीं होते—

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन
पाप प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन।
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन
माद्रीसुतौ कथयता न भवन्ति रोगा ॥

अर्जुनको तो साक्षात् नरका अवतार कहा गया है। *साक्षात् हरि ही जब भक्तोपर कृपा करनेके लिये नाना* अवतार धारण करते हैं तो वे ही नर-नारायण—इन दो रूपाम अवतार धारण कर बदरिकाश्रममे लोकमगलके लिये तप करते हैं और वे ही पुन श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुनके रूपम द्वापरके अन्तम पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। इसी तथ्यको महाभारतम बताते हुए कहा गया है कि एक ही सत् तत्त्व नर-नारायणके रूपम द्विधा व्यक्त है, नारायणको कृष्ण तथा फाल्गुन (अर्जुन)-को नर कहा गया है—

एष नारायण कृष्ण फाल्गुनश्च नर स्मृत ।
नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेक द्विधा कृतम्॥
(महा० उद्यो० ४९।२०)

देवाशसे प्रकट हुए पाण्डवोके दिव्य चरित्रम ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्हाने भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय ग्रहण किया था। धर्मराज श्रीकृष्णचन्द्रको ही अपना सर्वस्व मानते थे। वे श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार ही चलते थे। भगवान्‌मे भक्ति होना, भगवान्‌के प्रति सम्पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण कर देना ही धर्मका लक्ष्य है। *यही बात यही आत्मनिवेदन पाण्डवोमे था और इसीसे* श्यामसुन्दर सदा उन्हींके पक्षमें रहते थे। पाण्डवाकी विजय इसी धर्म तथा भक्तिके कारण हुई।

~~~o~~~

भगवान् अवतार क्यो लेते हैं ?

[परम ब्रह्मनिष्ठ सत श्रीउडियाबाबाजी महाराजके उपदेश]

एक बार श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौरागदेवजी महाराज बैठे हुए थे। उनके किसी शिष्यने पूछा कि महाराज परमात्मा निराकारसे साकार कैसे हो गये? यह सुनकर श्रीमहाप्रभुजी रोने लगे और कहा कि इस धर्मप्राण भारतभूमिपर ऐसा कौन है जो ऐसा बेतुका प्रश्न करता है? अरे! जब परमात्मामे सारी शक्तियाँ हैं, तब क्या वे निराकारसे साकार नहीं हो सकते? यदि भक्त विपत्तिमे है सकटमे है तो क्या भगवान् साकार होकर उसकी रक्षा—सहायताको नहीं आ सकते? भगवान् या तो धर्मकी पुन स्थापनाके लिये या धर्मपर आघात करनेवालोके मूलोच्छेदके लिये अवतार लेते हैं अथवा भक्तकी भक्तिसे अभिभूत होकर दर्शन दकर उसका कल्याण करनेके लिये अवतरित होते हैं।

× × ×

एक वयोवृद्ध ब्रह्मनिष्ठ महात्मा भगवान्‌की परम कृपा की अनुभूति कर कहा करते थे कि जिस ईश्वरसे हम बातचीत नहीं कर सकते, जिस ईश्वरसे हम सुख-दु ख भी नहीं कह सकते, जिस ईश्वरसे हम मिल-जुल नहीं सकते हमे ऐसे निराकार ईश्वरसे क्या करना है? हम तो ईश्वरके साथ कृष्णके बालसखा बनकर खेलेगे।

× × ×

भगवान् भक्ताक प्रेमक वशीभूत हाकर निराकारसे साकार हो जाते हैं। वे साकार होते हुए भी निराकार होते हैं। दो प्रकारके अवतार हमारे यहाँ होते हैं—१-निमित्त और २-नैमित्तिक। श्रीराम और श्रीकृष्ण साक्षात् अवतार थे।

ब्रह्मा वसिष्ठ महर्षि वाल्मीकि आदि जिसे ध्यानमे
~~~

न पा सके, उसी भगवान् श्रीकृष्णकी पीठपर ग्वाल-बाल सवारी करते फिर—यह श्रीकृष्णावतारके प्रेमकी पराकाष्ठा ही तो है।

पूर्णावतार, अशावतार, विशेषावतार, अविशेषावतार और नित्यावतार—ये पाँच प्रकारके अवतार होत हैं। इनके प्रकट होनेके अलग-अलग कारण होते हैं। हमारे धर्मशास्त्रोम विस्तारसे इन अवतारोका परिचय दिया गया है।

अवतार किसी एक जीवके कल्याणके लिये नहीं होता अपितु समस्त जीवोके कल्याणके लिये होता है। इस प्रकार समस्त जीवाका कल्याण अवताररूपम प्रकट श्रीभगवान्की शक्तिद्वारा उपर्युक्त पाँच प्रकारोसे होता है।

× × ×

अहकारी और शकालु व्यक्ति अवतारको कभी नहीं पहचान सकता। भगवान् श्रीकृष्णको उनके समयम केवल भीष्म-जैसी विभूति ही पहचान पायी थी। भगवान्ने स्वय कहा है—

अव्यक्त व्यक्तिमापन्न मन्यन्ते मामबुद्धय ।
पर भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्॥

अज्ञानी लोग मुझ अव्यक्तको शरीरधारी व्यक्ति मानते हैं। वे मेरे परस्वरूपको, जो अव्यय और सर्वोत्तम है, नहीं जानते।

× × ×

कुछ शकालु लोग कहते हैं कि भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण अवतार नहीं, महापुरुष हैं। श्रीकृष्ण अवतार नहीं केवल योगिराज हैं। ऐसे शकालु लोगाके कुसग या कथनपर ध्यान न देकर शास्त्रसिद्ध अवतारामे पूर्ण निष्ठा रखते हुए उनका भजन करते रहना चाहिये। भगवान्के भजन तथा मानवोचित सत्कर्म करते रहनेमे ही हमारा कल्याण है। तर्क-वितर्कसे ता बुद्धिभ्रम ही पैदा होता है। अत दृढ विश्वास, दृढ निष्ठा ही कल्याणका मार्ग प्रशस्त करते हैं। [भक्त श्रीरामशरणदासजी]

वामन-लीलाका रहस्य

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

भगवान्का अनेक मङ्गलमयी लीलाएँ हैं। अनेक ढगके भगवान्के भक्त हुए और भगवान्का अनेक रूपाम आविर्भाव हुआ।

कहते हैं, बलि पूर्वजन्मका कोई जुआरी था। एक दिन उसे जुएमे कहीं कुछ पैसे मिले। उन पैसोकी उसने एक बडी सुन्दर माला खरीदी, भगवान्के लिये नहीं, अपनी किसी प्रियतमा वेश्याके लिये। माला हाथम लिये वह कामान्ध जल्दी-जल्दी अपनी प्रियतमाका रूप-चिन्तन करते हुए जा रहा था कि किसी पाषाणसे ठोकर खाकर गिर पडा और मूर्च्छित हो गया। कुछ देरमें होश आया तो उसने अनुभव किया कि 'अब मैं मर जाऊँगा।' फिर सोचा—'ठीक है, मर तो जाऊँगा लेकिन मेरी इस मालाका क्या होगा? मेरी यह सुन्दर माला मेरी प्रियतमातक तो पहुँची नहीं। हाँ ठीक है, मैंने कभी किसी महात्मासे सुना था कि कोई भी वस्तु 'शिवार्पण' कर देनेसे बहुत लाभ होता है। 'शिवार्पण' कर देनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा और यदि न होगा तो भी मर तो रहा ही हूँ, माला बेकार तो जा ही रही है।' इस दृष्टिसे जुआरीने माला शिवजीको अर्पण कर दी।

जुआरी माला 'शिवार्पण' करके मर गया। यमराजके दूत पकडकर ले गये। यमराजके सामने खडा किया। उन्होने चित्रगुप्तसे कहा—'देखो, इसका बहीखाता।'

चित्रगुप्तने कहा—'यह तो जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर कल्प-कल्पान्तरका पापी है।'

यमराजने कहा—'इसके पुण्य भी तो देखो।'

चित्रगुप्तने देखकर कहा—'पुण्य तो कोई है नहीं।'

यमराजने कहा—'फिर देखो।'

चित्रगुप्तने पुन ध्यानपूर्वक देखा और कहा—'बस, अभी-अभी थोडी देर पहले जुएमे पैसा पाकर इसने माला खरीदी थी वेश्याके लिये। ठोकर खाकर रास्तेम गिर पडा। इसने देखा कि माला अब निरर्थक हो रही है तो

'शिवार्पण' कर दिया। यह कोई भगवान्को माला अर्पण करनेवाला तो था नहीं, पर देखा जब मर ही रह हैं तो 'शिवार्पण' कर दे, इसी भावनासे इसने माला 'शिवार्पण' कर दी। बस यही एक इसका पुण्य है।'

यमराजने कहा—'भाई, इसका है तो कुछ पुण्य', फिर उन्होने जुआरीसे पूछा—'भाई, तुम पहले पुण्यका फल भोगोगे या पापका?'

जुआरीने कहा—'सुन रहा हूँ—पाप तो जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरके हैं, उनको भोगने लगूँगा तो उनके अन्तका कुछ पता नहीं कि कब अन्त हा। इसलिय पहल पुण्यका फल भोगना चाहूँगा।'

यमराजने कहा—'तुम दो घडीके लिये इन्द्रलाकक मालिक बने।' जुआरी दो घडीके लिये इन्द्रलोकका मालिक बना। इन्द्रासनपर विराजमान हुआ। अप्सराएँ गुणगान करने आयीं, गन्धर्व गुणगान करने लगे। उन गन्धर्वोमे नारद भी थे। नारदको हँसी आ गयी।

जुआरीने कहा—'इन्द्रके दरबारमे बे-अदबी, हँसते हो?'

नारदजीने कहा—'नहीं, नहीं, कुछ नहीं।'

जुआरीने कहा—'बताआ, क्या हँसते हो?'

नारदजीने कहा—'हमको एक श्लोक याद आता है, इसको पूर्वमीमासक भी मानते हैं और नैयायिक भी मानते हैं—

सदिग्धे परलोकेऽपि कर्तव्य पुण्यसचय।
नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हत ॥

अर्थात् परलोकमे सशय हो तो भी पुण्यका सचय करते चलो। अगर परलोक नहीं है तो आस्तिकको कोई नुकसान नहीं है कहीं परलोक सत्य हुआ तो नास्तिक मारा जायगा।

जुआरी, तू जीवनपर्यन्त जुआ खेलता रहा। जुआम कोई निश्चित आमदनी तो होती नहीं—'लग गया तो तीर नहीं ता तुक्का।' तूने यही साचा कि 'शिवापण' करनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा न होगा तो मर ता रह ही हैं माला ता बेकार जा ही रही है, शिवको अर्पण कर द।' इस दृष्टिसे तूने शिवार्पण किया और उसका परिणाम यह हुआ कि दो घडीके लिये तुम इन्द्रलोकके स्वामी बन गये। इसलिये मुझे हँसी आ रही है। जुआरी सिहासनसे उतरा और नारदजीसे कहा—'गुरुदेव। अब हम सारे इन्द्रासनपर तुलसी रख देते हैं।' इतना कहनेके बाद उसने किसी ब्राह्मणको बुलाया और चिन्तामणिका दान कर दिया किसी ब्राह्मणको नन्दनवन, किसीको ऐरावत और किसीको अमृतके कुण्ड-

के-कुण्ड दान कर दिये। इस प्रकार उस जुआरीने सम्पूर्ण इन्द्रलोकका ही दान कर दिया। इतनेमे दो घडी बीत गयी।
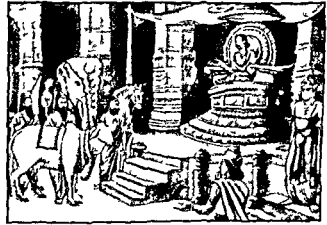
इन्द्र आये और बोले—'हमारा ऐरावत हाथी कहाँ है?'

उत्तर मिला—'जुआरी दान कर गया।'

इन्द्र बोले—'कामधेनु आदि कहा हैं?'

'सब कुछ जुआरीने दान दे डाला' उत्तर मिला। बडे बिगडे इन्द्र। यमराजके पास आय। यमराज भी जुआरीका डाँटने लगे।

जुआरीने कहा—'भैया हमे जो करना था हमने कर लिया, अब आपका जा करना हा कर लो।'

यमराजकी जब आँखे खुलीं, तब उन्हाने कहा कि अब यह नरक नहीं जायगा अब तो यह इन्द्र ही होगा। जब नाजायज उद्देश्यसे खरीदी हुई नाजायज पैसेकी मालाको सशय रहनपर भी 'शिवार्पण' कर दिया, उसक फलस्वरूप दो घडीके लिये इन्द्र बना, फिर इस समय तो इसने विधिवत् इन्द्रलोकका ही दान कर दिया है। इसलिये

यह इन्द्र ही होगा। वही जाकर राजा बलि बना।

राजा बलि बडा त्यागी था। अपना सर्वस्व भगवान् वामनको उसने शुक्राचार्यके मना करते रहनेपर भी सौंप दिया।

भगवान् वामनको 'उपेन्द्र' भी कहते हैं। गौआने उन्ह अभिषिक्त करके 'गोविन्द' और 'उपेन्द्र' नामसे प्रसिद्ध किया है।

देवमाता अदिति अपने पुत्रोके पराभवसे अत्यन्त खिन्न थीं। राजा बलि पहले तो सग्राममे इन्द्रके वज्रसे क्षत-विक्षत हो गया, परतु शुक्राचार्य महाराजकी सजीवनी-विद्यासे उसका उज्जीवन हुआ। उसके बाद शुक्राचार्यने विधिवत् उससे यज्ञ करवाया और उसे दिव्य अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित किया दिव्य तजसे उपबृहित किया, फिर राजा बलि विविध लोक-लोकान्तराको जीतकर राजा इन्द्र हो गया। सौ अश्वमेध करनवाले ही इन्द्र हाते हैं परतु राजा बलि पहले इन्द्र हो गया, फिर सौ अश्वमेधकी उसने तैयारी की।

देवमाता अदितिने पयोव्रत किया। पयोव्रतसे भगवान् सर्वान्तरात्मा सर्वेश्वर विष्णु प्रसन्न हो गये और आये। बोल—'वरदान माँगा।'

अदितिने कहा—'आप जानत ही हैं।'

भगवान्ने कहा—'हाँ! ये तुम्हारी बहुएँ जैसे रा रही हैं वैसे ही दानवा-दैत्याकी बहुएँ राये यही चाहती हो। लेकिन इस समय असम्भव है। राजा बलि बडा प्रतापी है, ब्राह्मणनिष्ठ है। ब्राह्मणोका उसपर विशेष अनुग्रह है। भृगुवशियाने उसको सबल बना रखा है अनन्त तेजसे युक्त कर रखा है। परतु हम तुम्हारा अभिप्राय पूरा करेग, भिक्षा माँगेगे।'

भगवान् वामनका प्रादुर्भाव हुआ। उन्ह ब्रह्मचर्यव्रतमे दीक्षित किया गया। भगवती राजराजेश्वरी उमाने उनको भिक्षा प्रदान की। वनस्पतियाने भी दण्ड-कौपीन आदि देकर भिन्न-भिन्न ढगसे उनका सम्मान किया।

अब भगवान् वामन चले उद्देश्य पूर्ण करनेक लिये। वे राजा बलिके यज्ञम पहुँचे। सभी उनके तेजसे पराभूत हो गये। राजा बलिने बडा सम्मान-सत्कार-स्वागत किया और पूजन करनेके बाद कहा—'ब्रह्मन्! विप्रदेव! आज्ञा कीजिये। आपकी क्या सेवा करूँ? आप जो भी कहेग, वही होगा।'

भगवान्ने बडी प्रशसा की—'राजन्! आपके कुलकी बडी महिमा है। यह कुल सदैव उदारहृदय, दीनदार, सदाचारी और सच्चरित्र रहा है। राजा विरोचनके पास देवताआने आकर आयु माँगी। विराचनने यह जानते हुए भी कि ये हमारे शत्रु हैं उन्हे आयु दे दी। आपके पूर्वज हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपुका क्या कहना? इस प्रकार उन्हाने अनेकविध प्रशसाओका पुल बाँध दिया। राजा बलि प्रसन्न हुआ और बोला—'महाराज, आप जा कुछ कह रह हैं, सब ठीक है, परतु अब आप आज्ञा तो दीजिये।'

भगवान् वामनने कहा—'कुछ नहीं, सिर्फ तीन पग धरती चाहिये।'

राजा बलिने कहा—'आप बडे बुद्धिमान् हैं, पर स्वार्थके प्रति अबुध भी। प्रशसाके पुल बाँध दिये, फिर भी मुझसे माँगा भी तो केवल तीन पग भूमि? अर हमसे द्वीप माँग लेते तीनों लोक माँग लते।'

उन्हाने पुन कहा—'ब्राह्मणकुमार! आपकी बात तो वृद्धा-जैसी हैं, परतु बुद्धि अभी बच्चोकी-सी ही है। अभी तो आप बालक-जैस ही हैं न, इसीसे अपना हानि-लाभ नहीं समझ पा रहे हैं? मैं तीना लोकोका एकमात्र अधिपति हूँ। अत द्वीप-का-द्वीप दे सकता हूँ। फिर जो मुझ अपनी वाणीसे प्रसन्न कर ले और मुझसे केवल तीन पग भूमि माँगे—वह भी क्या बुद्धिमान् कहा जा सकता है? ब्रह्मचारीजी जो एक बार कुछ माँगनेके लिये मेरे पास आ गया उसे फिर कभी किसीसे कुछ माँगनेकी आवश्यकता नहीं पडनी चाहिये, अत अपनी जीविका चलानेके लिये आपको जितनी भूमि आवश्यक हो, उतनी मुझसे माँग लीजिये।' (श्रीमद्भागवत ८। १९। १८—२०)

भगवान् वामनने कहा—'राजन्! जिस ब्राह्मणमे सतोष नहीं है, वह नष्ट हो जाता है। सतुष्ट महीपति निन्दनीय है और असतुष्ट ब्राह्मण! अगर हम तीन पग धरतीसे सतुष्ट नहीं हागे, तो अनन्त धन-धान्यसे पूर्ण त्रैलोक्य प्राप्तकर भी सतुष्ट नहीं हो सकेगे। इसीलिये चाणक्यनीति (८। १८)-मे कहा भी गया है—

'असतुष्टा द्विजा नष्टा सतुष्टाश्च महीभुज ।'

शुक्राचार्य महाराज सब सुन रह थ। साच रह थे यह क्या तमाशा है? तबतक यज्ञके पूर्वद्वारपर ऋग्वेदी ब्राह्मण बोल पडा—

'इद विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पासुरे॥' (ऋग्वेद १।२२।१७)

शुक्राचार्यजीका माथा ठनका। वे सोचने लगे—'कहत हैं कि ज्ञान अपन-आपको बार-बार दाहराया करता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि तीन पग माँगनेवाला यह वामन वटुक विष्णु ही हो?' उन्होने कहा—'बेटा बलि! तीन पग न देना, और जो चाहे देना। तीन पग देना खतरेसे खाली नहीं। ये विष्णु हैं, त्रैलोक्याधिपति हैं, हो सकता है तीन पग माँगकर तेरा चराचर विश्व—सर्वस्व हरण कर ले।'

शुक्राचार्यजी महाराज ज्ञान-विज्ञानके निधान हैं। सर्वदर्शी हैं, ब्रह्मविद्वरिष्ठ हैं। सजीवनी-विद्याके महान् आचार्य हैं। वे जो कुछ भी कह रहे थे, ठीक ही कह रहे थे।

आचार्य शुक्राचार्य पुन बलिको सम्बोधित करते हुए बोले—'स्वय भगवान् ही अपनी योगमायासे ब्रह्मचारी बनकर बैठे हुए हैं। ये तुम्हारा राज्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और विश्वविख्यात कीर्ति—सब कुछ छीनकर इन्द्रको दे देगे। ये विश्वरूप हैं। तीन पगम तो सारे लोकोको नाप लेगे। मूर्ख! तुम अपना सर्वस्व हा विष्णुका द डालाग ता तुम्हारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा? ये विश्वव्यापक भगवान् एक पगमे पृथ्वी और दूसरे पगमे स्वर्गको माप लेगे। इनके विशाल शरीरसे आकाश भर जायगा। तब इनका तीसरा पग कहाँ जायगा? तुम उसे पूरा न कर सकोग। ऐसी दशाम मैं समझता हूँ कि प्रतिज्ञा करके पूरा न कर पानेके कारण तुम्ह नरकमे ही जाना पडेगा क्याकि तुम अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेम सर्वथा असमर्थ हो जाओग।' (श्रीमद्भा० ८।१९।३२—३५)

राजा बलिने कहा—'गुरुदेव, ठीक है। पर आपका शिष्य होकर झूठ बोलूँ, अस्वीकार कर दूँ? यदि ये ब्राह्मणदेव साक्षात् विष्णु हैं, तब तो हम जीतकर भी सब कुछ ले लेगे। इन्हाने हिरण्याक्षको मारा कि नहीं? यह तो हमारा सौभाग्य है, जो स्वय माँगने आये हैं। इनका हाथ नीच होगा और मेरा हाथ ऊपर होगा।'

इस प्रकार राजा बलिने दृढतापूर्वक सत्यका पालन करना ही उचित समझा। श्रीशुक्राचार्यके बहुत समझानेपर भी सत्यका त्याग नहीं किया। शुक्राचार्य महाराज नाराज हो गये, शाप दे दिया, परतु बलिने दान कर दिया। फिर क्या बात थी। भगवान्ने दो पगम सब कुछ ले लिया, तृतीय पगका दान बाकी रहा।

भगवान् बोले—'तुमने तीन पग भूमि दान करनेकी प्रतिज्ञा की थी न? परतु मैंने दो पगमे ही तेरा सब कुछ ले लिया, अभी एक पग तो बाकी ही रहा।'

भगवान्के पार्षदाने राजा बलिको बाँध दिया। राजा
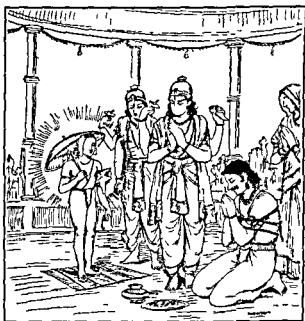
बलिके भक्तसेवक युद्ध करनेको उद्यत हुए। विष्णुके महान् पार्षदाने सबको खदेडकर भगा दिया। बलिने उन्ह समझाया—'भाई! इस समय युद्धका समय नहीं है। काल भगवान् हमारे प्रतिकूल हैं। इस समय युद्ध मत करो। जो लोग कभी सामने खडे नहीं होते थे वे ही आज सामने हैं, जोरोसे निनाद कर रहे हैं। कोई बात नहीं।'

यह सब प्रपञ्च चलता रहा। ब्रह्माजी आये, बालना चाहते थे। इतनेमे विन्ध्यावली, जो बलिकी पत्नी थी वह बोल पडी—'भगवन्! आपने अनन्त ब्रह्माण्डात्मक आधि-भौतिक और आध्यात्मिक प्रपञ्च अपनी क्रीडाके लिये

बनाया है, खेल खेलनेके लिये खिलौना बनाया है। दुर्बुद्धियुक्त लोग ही आपके बनाये खिलौनेको अपना मान लेते हैं। यह स्वर्गलोक हमारा, यह धरती हमारी, यह नन्दनवन हमारा—ऐसा मानकर गडबड करते हैं। प्रभो! कर्तृत्व भी आपके अनुग्रहसे ही होता है। अधिष्ठान बिना कर्ता कहाँसे आया? कर्तृत्वका आरोप किसी अधिष्ठानमे ही होगा।' (श्रीमद्भा० ८।२२।२०)

ब्रह्माजीने कहा—'आप समस्त प्राणियोके जीवनदाता हैं, स्वामी हैं, जगत्‌के रूपमे भी आप ही अभिव्यक्त हैं, देवोके देव आप ही तो हैं। इसे छोड दीजिये। आपने इसका सर्वस्व ले लिया है, अत अब यह दण्डका पात्र नहीं है। इसने अपना सम्पूर्ण भूलोक आपको समर्पित कर दिया है। इसने पुण्य कर्मोंसे उपार्जित स्वर्गादि लोक—अपना सर्वस्व और आत्मातक आपको समर्पित कर दिया है। साथ ही ऐसा करते समय यह धैर्यसे च्युत बिलकुल नहीं हुआ है। प्रभो! जो मनुष्य सच्चे हृदयसे कृपणताको छोडकर आपके चरणोमे जलका अर्घ्य देता है और केवल दूर्वादलोसे भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। फिर बलिने तो बडी प्रसन्नतासे, धैर्य और स्थिरतापूर्वक आपको त्रिलोकीका दान कर दिया है, तब यह दु खका भागी कैसे हो सकता है?' (श्रीमद्भा० ८।२२।२१—२३)

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मान भक्तेभ्यो भक्तवत्सल ॥

(गौतमीय तन्त्र)

भगवान् ऐसे दयालु हैं कि वे भक्तिसे दिये हुए एक चुल्लू जल तथा एक तुलसीपत्रद्वारा ही अपनी आत्माको भक्तोके लिये दे देते हैं।

यह सब क्रम चल रहा था।

भगवान्‌ने बलिसे कहा—'हमारा तीन पग पूरा नहीं हुआ।'

बलिने कहा—'पूछ लूँ एक बात।'

भगवान्‌ने कहा—'पूछ लो।'

बलिने कहा—'महाराज! कोई खरीददार कपडा खरीदनेके लिये बाजारकी एक दूकानपर गया। कहने लगा—'हम अपने हाथसे सौ रुपयेका एक हाथ रेशम खरीदेगे। सौदा तय हो गया। मापने लगा तो हाथ लम्बा बढा दिया। क्या यह ठीक था?'

भगवान् वामनने कहा—'जिस रूपमे उसने सौदा तय किया, उसी रूपमे उसे सौदा लेना भी था। कपडा लेते समय उसे हाथ बढाना नहीं चाहिये था।'

बलिने कहा—'जिस रूपमे आपने दान लिया, उसी रूपसे मापते। कमी पडती तो आप हमसे और भी माँग लेते। आपने दान तो लिया छोटे रूपसे तथा मापना आरम्भ किया विराट्-रूपसे। जरा सोचिये, यह कोई न्याय है? अच्छा, छोडिये इस बातको और इस प्रश्नका उत्तर दीजिये—धन बडा होता है या धनवान् बडा होता है?'

बलिके प्रश्नके उत्तरम भगवान्‌को कहना पडा—'राजन्! धन बडा नहीं होता, धनवान् बडा होता है।'

बलि—'भगवन्! 'धनवान् बडा होता है धनसे' आपको यह मान्य है न?'

भगवान्—'हाँ, हाँ मान्य है।'

बलि—'तो मैं धनवान् हूँ न? मैं अपन-आपको ही अर्पित कर रहा हूँ, तीसरा पग पूरा करनेके लिये। तीसरा पग मेरे सिरपर रखिये और बस, मेरा दान पूरा हो जायगा। अत दानपूर्ति और साग्तता-सिद्धिके लिये मुझ धनवान्‌के सिरपर ही आपके श्रीचरण प्रतिष्ठित हो।'

भगवान्‌के पास कोई उत्तर नहीं था। इतनेमे प्रह्लादजी आ गये। प्रह्लादने भगवान्‌की बडी स्तुति की।

भगवान्‌ने ब्रह्माजीसे कहा—'हमने इस (बलि)-का यश दिग्दिगन्तमे विकीर्ण—विस्तीर्ण करनेक लिये यह सब गडबड किया है, परतु इसने कोई गडबड नहीं किया। इसका ढग बहुत सौम्य है।'

भागवतमे तो नहीं है, परतु दूसरी जगह यह कथा है कि भगवान् बाले—'भाई? तुम्ह क्या द।'

बलि बोले—'महाराज! हमारी जिधर भी दृष्टि जाय, उधर हम आपका ही दर्शन करे।'

कहते हैं राजा बलिकी बैठकके बावन दरवाज हैं। भगवान्‌ने सोचा, न जाने किस दरवाजेपर बलिकी

चली जाय? यही सोचकर बावनो दरवाजोपर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए सर्वान्तरात्मा, ब्रह्माण्डनायक भगवान् पहरेदारके रूपमे विराजमान हो गये।

भगवान्‌की इस कृपालुताके कारण ही भक्तराज प्रह्लादने कहा—महाराज! लोग कहते हैं कि आप देवताआके पक्षपाती हैं, परतु हमको तो लगता है कि आप हम असुरोके पक्षपाती हैं। इन्द्र, कुबेरादि किसी देवताके पहरेदार—द्वारपाल तो आप कभी नहीं बने! परतु हम असुरोके आप द्वारपाल बन रहे हैं। इसलिय सदा-सर्वदा आप हमारे ही पास रह।

लीलाका रहस्य—असली बात क्या थी। उस जुआरीने माला भगवान्‌को अर्पण कर दी थी। पत्र-पुष्प-फल-जल जो कुछ भी भगवान्‌के लिये अर्पित कर दिया जाय, वह अनन्तगुणित होकर प्रतिफलित होता है। साथ-ही-साथ यह बडी ऊँची बात है कि जो अनात्मविद् है, वह अनात्माके प्रलोभनमे फँसकर आत्माको नरकमें भेजनेम जरा भी हिचकता नहीं, अर्थात् अनात्मविद् धन-वैभवके लिये आत्माको नरकमे भी भेज सकता है। इसके विपरीत जो आत्मविद् हैं, वे जानते हैं कि आत्माके लिये अनात्मा है, अनात्माके लिये आत्मा नहीं है। इसलिये किसी भी शर्तपर वे आत्माको नरकम भेजना नहीं चाहते। अर्थात् किसी भी विषय-विलासमे फँसकर, किसी भा ऐश्वर्य-वैभवके प्रलोभनम आकर आत्माको नरकमे भेजनेका उद्योग नहीं करते। आत्मविद् था राजा बलि। उसने झूठ बोलकर अपने-आपको पतित नहीं बनाया, बल्कि धनका और स्वयको भी भगवान्‌के प्रति समर्पित कर दिया। हर हालतमे आत्माके अभ्युदय और मोक्षको चाहनेवाले राजा बलि उत्कृष्ट कोटिके भक्त हुए।

(प्रेषक—(प्रो०) श्रीबिहारीलालजी टाटिया)

~~~ o ~~~

अवतारतत्त्व-साधना

(श्रीमज्जगद्गुरु श्रीरामानुज-सम्प्रदायाचार्य आचार्यपीठाधिपति श्रीराघवाचार्य स्वामीजी महाराज)

कर्मठको कर्मयोग ज्ञानीको ज्ञानयोग तथा भक्तको भक्तियोगका उपदेश देनेके साथ ही गीताचार्य श्रीकृष्णने अवतारतत्त्व-साधनाका भी उपदेश दिया है। साधनाकी यह पद्धति अर्जुनने जाननी नहीं चाही थी, किंतु करुणा-वरुणालयने दयाकी राह इसका उपदेश दे डाला। पार्थने सीधी तरहसे यह पूछा था कि—'श्रीकृष्ण! आप तो वसुदेवके पुत्र हैं। आप बताते हैं कि आपने पहले विवस्वान्‌को उपदेश दिया था। भला आप तब कहाँ थे?' इस प्रश्नके उत्तरम दयामयने अपने स्वरूपका परिचय दे ही डाला। वे अपने-आपको छिपा न सके। अपना स्वभाव भी उनको बताना ही पडा। यह प्रकरण आता है गीताके चतुर्थ अध्यायके आरम्भमे। केवल पाँच श्लोक हैं इस प्रकरणमे। श्लाक ५ से ९ तक। प्रकरण अधूरा नहीं, पूर्ण है। भगवान्‌ने अपना हृदय खोलकर अपने प्रिय सखा और भक्तके सामने रख दिया। इतना ही नहीं उन्होने ससारके लिये परम पुरुषार्थका अत्यन्त सुलभ द्वार भी खोल दिया।

बात कोई नयी नहीं है। पुरानी और बहुत पुरानी है। अनन्त अपौरुषेय वेदने '**अजायमानो बहुधा वि जायते**' कहकर इस साधनाका उपदेश दिया था, किंतु इस उपदेशने एक ऐसी उलझन उपस्थित कर दी थी जिसको सुलझानेमे ही बहुत-से लोग उलझ गये। श्रुतिका सीधा-सा अर्थ है—'अजन्मा बहुत प्रकारसे जन्म लेता है।' अजन्मा जन्म ग्रहण करे सामान्य बुद्धिसे यह बात समझमे नहीं आ सकती। आनी भी नहीं चाहिये परतु बात है सोलहो आने सत्य। यह श्रुतिवाक्य है। साधारण पौरुषेय वाक्य नहीं जिसम भ्रम-प्रमाद आदि दोष सम्भव हो। श्रुतिवाक्यम जो कुछ कहा गया है वह किसी सामान्य व्यक्तिके सम्बन्धमे नहीं, साक्षात् परब्रह्म परमात्माके सम्बन्धमे। श्रुतिवाक्यकी यह घोषणा है कि वह सर्वेश्वर अजन्मा रहते हुए भी अनेको बार जन्म ग्रहण करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने यही बात अपने शब्दोमे दुहरा दी। भगवान्‌के ये शब्द स्पष्ट हैं, इनम उलझन नहीं है। उन्होने कहा—

'**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि ।**'

अर्थात् 'मेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं।' और कोई होता तो श्रीकृष्णसे पूछता कि आपने कौन-कौनसे जन्म ग्रहण किये। शायद अर्जुन भी पूछ लेता, किंतु भगवान्‌ने
~~~

इसके लिये अवसर ही कहाँ दिया? वे तो कहते चले जा रहे थे—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

'अज, अव्यय, समस्त भूतोंका ईश्वर अर्थात् सर्वेश्वर होते हुए भी मैं प्रकट होता हूँ।' वही उलझन पुन आ पडी और विशेषता भी लिये हुए। श्रुतिवाक्यमे तो केवल अजन्माके जन्मग्रहण करनेकी बात थी। यहाँपर अजन्माको अव्यय ओर सर्वेश्वर कह दिया गया, परतु इसे उलझन कैसे कहा जाय। भगवान् श्रीकृष्ण सामने जो खडे हुए थे। यदि वे सामने न होते और यह न कहते होते कि मैं अज, अव्यय, सर्वेश्वर होते हुए भी प्रकट होता हूँ तो सदेहके लिये स्थान था, किंतु जब अजन्मा, अव्यय, सर्वेश्वर सामने उपस्थित हो तो फिर अजन्माके प्रकट होनेमे सदेहके लिये अवकाश ही कहाँ रहा। चाहे अजन्माका जन्म सम्भव न हो, किंतु अज, अव्यय, सर्वेश्वरका श्रीकृष्णके रूपमे प्रकट होना सत्य है। अर्जुन इसे सत्य समझता था। गीता आज भी पुकार-पुकारकर इस सत्यकी घोषणा कर रही है।

उपनिषदोमे बताया गया है कि परमात्मा प्रवचनासे नहीं मिलते हैं, न बहुत बुद्धि दौडानेसे मिलते हैं और न बहुत सुननेसे ही मिलते हैं। जिस योग्य अधिकारीका दया करके प्रभु वरण कर लेते हैं, उसीको अपना रूप दिखला देते हैं। इस प्रकार जो स्वय देख लेता है, उसे सदेह कैसे हो सकता है। अर्जुनके मनमे भी सदेहकी सम्भावना नहीं की जा सकती, किंतु यह जाननेकी इच्छा अवश्य रही होगी कि यह असम्भव सम्भव होता किस प्रकार है? भगवान्‌के उपर्युक्त शब्दोमे इसका समाधान मौजूद था। श्लोकके उत्तरार्धमे भगवान्‌ने कहा कि 'मैं अपने स्वभावका अधिष्ठानकर अपने सङ्कल्पसे प्रकट होता हूँ। तात्पर्य यह निकलता है कि इस प्रकार प्रकट होना भगवान्‌का स्वभाव है और यह उनका अपना सङ्कल्प है जिसके कारण वे प्रकट होते हैं। जो व्यक्ति अपनी बुद्धिके भरोसे भगवान्‌को नहीं जान पाता, वह बुद्धिकी कसौटीपर भगवान्‌के सङ्कल्पको परखना चाहे तो यह कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। सर्वशक्तिमान् प्रभुके सङ्कल्पकी थाह नहीं मिल सकती।

भगवान् प्रकट होते हैं। अर्जुनके सामने भगवा[न्] प्रकटरूपमे थे। उसने समझ लिया कि भगवान् प्रकट हो[ते] हैं और वे मेरे सामने उपस्थित हैं। परतु यह आवश्य[क] प्रश्न था कि इस प्रकार वे कब किस समय प्रकट होते हैं इस प्रश्नका उत्तर भगवान्‌ने या दिया—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात् 'जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका अभ्युत्था[न] होता है तब-तब मैं प्रकट होता हूँ।' इसका अर्थ य[ह] निकला कि भगवान्‌के प्रकट होनेका कोई निश्चित सम[य] नहीं है। जब-जब धर्मके आदर्शसे समाज विचलित होक[र] अधर्मकी ओर बढने लगता है, भगवान् प्रकट होते हैं। प्रश्[न] होता है कि उनके प्राकट्यका प्रयोजन क्या है? भगवान् इस प्रश्नका भी उत्तर दे दिया—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थात् 'साधुओंके परित्राण, दुष्टोके उद्धार औ[र] धर्मकी सस्थापनाके लिये मैं युग-युगमे प्रकट होता हूँ।

भगवान् प्रकट होते हैं साधुओंके परित्राणके लिये साधु कौन? जो धर्मनिष्ठ हो वे साधु। जब धर्मक[ी] सस्थापनाके लिये भगवान् प्रकट होते हैं तो साधुपुरु[ष] धर्मका अनुष्ठान किये बिना साधुपुरुषोकी कोटिमे गिने ज[ा] सकेगे, ऐसा सम्भव नहीं। धर्मनिष्ठ साधुपुरुषोंके परित्राणके लिये भगवान् प्रकट होते हैं। अनिष्टकी निवृत्[ति] और इष्टकी प्राप्तिका नाम ही 'परित्राण' है। धर्मनि[ष्ठ] साधुपुरुष भगवत्प्राप्तिको अपना इष्ट और भगवान्‌क[ी] अप्राप्तिको अपना अनिष्ट समझता है। ऐसे भक्त भगवान्‌के दर्शनके लिये व्यग्र हो उठते हैं। क्षण-क्षणका वियोग भ[ी] उनके लिये असह्य हो जाता है। ऐसे भक्तोको दर्श[न] देनेके लिये भगवान् प्रकट होते हैं। इस प्रकार अपन[ा] साक्षात्कार कराना ही वास्तविक परित्राण है। वैसे सामान्यतया परित्राणका अर्थ होता है रक्षा। भगवान् साधुपुरुषोकी रक्षाके लिये प्रकट होते हैं। इस कार्यकी पूर्तिके लिये दुष्टोका विनाश भी आवश्यक हो जाता है भगवान् इसके लिये भी पकट होते हैं, किंतु यह कार्य

तो भगवान् अपनी इच्छामात्रसे कर सकते हैं। इसके लिये प्रकट होनेकी क्या आवश्यकता? विचार करनेपर इस आवश्यकतामे भी भगवान्‌की दयाकी झाँकी मिलती है। भगवान् सबके मित्र हैं। वे शत्रुओके प्रति भी वात्सल्यका व्यवहार करते हैं। इस प्रकार उनके द्वारा किये जानेवाले विनाशमे वास्तविक उद्धार विद्यमान रहता है। उनके हाथोसे मारे गये लोग भी विष्णुपुर पहुँचते हैं। तात्पर्य यह निकला कि भगवान् दुष्टाका उद्धार कर उनकी वास्तविक रक्षा करते हैं।

उपर्युक्त दो प्रयोजनोके अतिरिक्त भगवान्‌के प्रकट होनेका तीसरा प्रयोजन है—'धर्मकी सस्थापना।' धर्म है समस्त पदार्थोंका धारक, पोपक एव सरक्षक और भगवान् हैं धर्मके सस्थापक। कहना न होगा कि यह धर्मका सस्थापनकार्य ही तो है जिसके लिये भगवान्‌को साधु पुरुपाका परित्राण और दुष्टपुरुपाका उद्धार करना पडता है। तथापि यह न भूल जाना चाहिये कि जब दर्शन देकर भगवान् साधुपुरुषोका परित्राण करते हैं और दर्शन देकर दुष्टाका उद्धार करते हैं, तब दर्शन देकर ही वे धर्मकी सस्थापना भी कर देते हैं। परम धर्म है भगवान्‌की *आराधना। इसके लिये भगवान्‌का दर्शन अपेक्षित होता है।* दर्शन देकर आराधनकार्यकी इस आवश्यकताकी पूर्ति भगवान् करते हैं।

इस प्रकार भगवान्‌ने अपना स्वरूप, अपना स्वभाव, अपने प्रकट होनेका सकल्प समय और प्रयोजन बता दिया। उनके स्वरूपम कर्मका बन्धन या प्रकृतिका ससर्ग सम्भव ही नहीं हो सकता। उनके स्वभावमे सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता प्रतिष्ठित है। फिर भला उनके सकल्पम सत्यता क्या न हो। सत्यसकल्प प्रभुके प्राकट्यका समय और प्रयोजन भी ऐसा है जिसमे और जिसके लिये उनका अवतार अनिवार्य हो जाता है। भगवान्‌ने यह भी कह दिया—

'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'

अर्थात् 'मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं।' सासारिक पुरुपाके जन्म और कर्ममे तथा भगवान्‌के जन्म और कर्मम अन्तर है। सासारिक पुरुपोके जन्म और कर्म सासारिक होते हैं। उनमे शरीरकी दृष्टिसे अवगति और आत्माका दृष्टिसे प्रगतिका भाव रहता है। भगवान्‌के जन्म और कर्ममें दिव्यता रहती है। इसी दिव्यताम अवतारतत्त्व निहित है।

इस अवतारतत्त्वकी साधनाके लिये आवश्यक है इसका ठीक-ठीक ज्ञान। जो इस प्रकार भगवान्‌क अवतारतत्त्वको समझ लेता है, उसके लिये साधनाकी लम्बी चढाई नहीं चढनी पडती। प्रकरणका उपसहार करते हुए भगवान्‌ने कह दिया—

एव यो वेत्ति तत्त्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

अर्थात् 'इस प्रकार जो पुरुप तत्त्वसे जान लेता है वह इस शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता। वह मुझे ही प्राप्त होता है।' आशय यह कि उसे इसी जन्मके पश्चात् परम नि श्रेयसकी प्राप्ति हो जाती है।

इस प्रकार प्रकृतप्रकरणका अनुशीलन करनेपर यही सिद्ध होता है कि अवतारतत्त्वका चिन्तन भगवत्प्राप्तिका विशिष्ट साधन है। गीताचार्य श्रीकृष्णभगवान्‌ने कर्मयोगके प्रसङ्गमे **'मत्पर '** (२।६१), **'मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्य'** (३।३०), **'ज्ञात्वा मा शान्तिमृच्छति'** (५।२९), ज्ञानयोगके प्रकरणमे **'सर्वभूतस्थित यो मा भजति'** (६।३१), **'मद्गतेनान्तरात्मना'** (६।४७) तथा भक्तियोगके प्रकरणमे **'मय्यावेश्य मनो ये मा नित्ययुक्ता उपासते'** (१२।२) इत्यादि वचनोद्वारा अपने-आपका समावेश कर इसी अवतारतत्त्वकी ओर सकेत किया है। उत्तम पुरुप (मैं)-के रूपम भगवत्तत्त्वका सम्बोधन इसी तत्त्वके प्रकाशनके लिये ही है। और अन्तमे जब भगवान्‌ने शरणागतियोग उपस्थित किया है तो वहाँ भी **'मामेक शरण व्रज'** कहकर इसी अवताररूपम शरणागति करनेका आदेश दिया है। ऐसी स्थितिमे अवतारतत्त्वकी साधनाकी महनीयताको समझकर इससे लाभ उठाया जा सकता है। इस साधनामे धर्मनिष्ठा अपेक्षित होनेके कारण न अभ्युदयमें बाधा पडती है और न भगवत्प्राप्तिमे कठिनता आती है। भगवान्‌की दयापर आश्रित रहनेके कारण यह साधना सारी बाधाओका निवारण कर साधकको श्रेयतक पहुँचा देती है।

भगवदवतार और उसका प्रयोजन

(ब्रह्मलीन पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)

सगुण-साकार माननेपर ही भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान्—'भगवान् सर्वज्ञ हैं अर्थात् सब कुछ जानते हैं। सर्वशक्तिमान् हैं अर्थात् सब प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न हैं।' भगवान्की सत्ता माननेवाले जितने भी वादी हैं, सभी ऐसा मानते हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसका ज्ञान भगवान्को न हो और ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो भगवान्में न हो। ऐसा क्यों? इसलिये कि अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् तो जीव भी है, पर वह सर्वस्रष्टा, सर्वपालक और सर्वसंहर्ता नहीं। भगवान्को हम निर्गुण-निराकार ही मानें, सगुण-साकार न मानें तब तो भगवान् न सर्वज्ञ कहला सकते हैं और न सर्वशक्तिमान् ही। ऐसा स्वीकार करनेपर तो भगवान्की भगवत्ताका ही लोप हो जाय? क्योंकि ऐसा माननेपर यह सिद्ध होगा कि भगवान् निराकारसे साकार बनना नहीं जानते, निराकारसे साकार नहीं बन सकते। निर्गुणसे सगुण नहीं बन सकते। जब इस तरह निराकार और निर्गुणसे सगुण बनना भगवान् नहीं जानते तब सर्वज्ञ कैसे? फिर सर्वशक्तिमान् कैसे? ऐसा माननेपर भगवान्में ज्ञान और शक्तिकी कमी सिद्ध होगी। सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ताके असिद्ध होते ही भगवान्की भगवत्ता ही असिद्ध हो जायगी। भगवत्ताके बिना भगवान् ही असिद्ध हो जायँगे। ऐसी स्थितिमें 'भगवान् जहाँ निर्गुण-निराकार, परात्पर-परब्रह्म, प्रभु, भूतनाथ विश्वनाथ, दुःखप्रमाप शंकरके रूपमें अवतरित होते हैं, वहीं चतुर्भुज श्रीविष्णुके रूपमें प्रकट होते हैं, वहीं मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, बुद्ध और कल्किके रूपमें अवतरित होते हैं। निर्गुण-निराकार परात्पर परब्रह्म प्रभु ही मर्यादापुरुषोत्तम दशरथनन्दन कौशल्यानन्दन राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र और यदुनन्दन व्रजेन्द्रनन्दन परमानन्दकन्द मदनमोहन लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रके रूपमें अवतरित होते हैं।'

भगवान् निर्गुण-निराकार होते हुए भी सगुण-साकार वैसे ही हो जाते हैं, जैसे 'माचिस'-लाइटरमें रहनेवाली निर्गुण-निराकार अग्नि सगुण-साकार बनकर दीख जाती है। निर्गुण-निराकार आग दाहक-प्रकाशक हो सगुण-साकार आग बनकर आती है। निर्गुण-निराकार आकाश सर्वत्र है पर उसमें आप जल नहीं भर सकते, सो नहीं सकते, उड़ान नहीं भर सकते, किंतु जब वही घटके योगसे सगुण निराकार घटाकाश बन जाता है, तब आप उसमें जल भर सकते हैं। जब वही मठके योगसे सगुण निराकार मठाकाश बन जाता है, तब आप उसमें सो सकते हैं और हेलिकाप्टर, वायुयान तथा राकेटके योगसे जब वह सगुण-साकार हो जाता है, तब आप उसमें उड़ान भर सकते हैं।

जिस प्रकार निर्गुण-निराकार बिजली उपाधियोगसे सगुण-निराकार और सगुण-साकार हो जाती है, उसी प्रकार निर्गुण-निराकार भगवान् उपाधियोगसे सगुण-निराकार और सगुण-साकार हो जाते हैं। श्रुतियाँ भगवान्को निर्गुण, निष्क्रिय, सूक्ष्म कहती हैं। हमारे शैवाचार्य-वैष्णवाचार्य आदि ऐसा मानते हैं कि भगवान् प्राकृत गुणगणहीन होनेके कारण और अचिन्त्य अनन्त दिव्य कल्याण गुणनिलय होनेके कारण सगुण हैं। भगवान् निर्गुण हैं। स्वामी दयानन्द ऐसा मानते हैं कि हीन या बुरे गुणोंसे रहित होनेके कारण भगवान् निर्गुण हैं, लेकिन बुरे या हीन भावोंको गुण क्यों कहें, वे तो दोष ही हैं। ऐसी स्थितिमें भगवान् निर्गुण कहाँ हुए? यहाँ भी यही समझना चाहिये कि जैसे भगवान्में सगुण होनेका ज्ञान और सामर्थ्य नहीं, तो भगवान् सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् नहीं, सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् नहीं, तो भगवान् 'भगवान्' ही नहीं वैसे ही यदि भगवान्में दिव्य या उत्तमोत्तम गुण हैं ही तो भगवान् निर्गुण नहीं। जैसे एक भी घट (घड़ा) रहे तो पृथ्वी निर्घट (घटरहित) नहीं, वैसे ही एक भी गुण भगवान्में रहे तो भगवान् निर्गुण नहीं। 'अमुक-अमुक गुण भगवान्में नहीं हैं, इसलिये भगवान् निर्गुण बन जायँगे, यह बात दार्शनिक-दृष्टिसे सङ्गत नहीं। साथ ही गुणके बिना भगवान् निर्गुण भी कैसे सिद्ध होंगे? गुण जिससे निकल गये या जो गुणोंसे निकल गया, वह निर्गुण है—ऐसा माननेपर भगवान् सगुण सिद्ध होते हैं। कोई मकानमें था तब उससे निकल गया, यदि मकानमें था ही नहीं, तब निकला कैसे? भगवान्में गुण था तब निकला

था, था ही नहीं तो निकला कैसे ? ऐसी स्थितिमे भगवान्को सगुण मानना आवश्यक है।'

व्यावहारिक सत्ता गुणोकी मान लेनेपर और वास्तविक सत्ता भगवान्की मान लेनेपर दोनो मतोका समन्वय हो जाता है। गुणगणोके परम आश्रय तथा अधिष्ठान होनेके कारण सगुण होते हुए भी भगवान् वस्तुत निर्गुण हैं।

गुणगण शेष हैं और भगवान् शेषी। शेषके बिना भी शेषी रह सकता है, पर शेषीके बिना शेष नहीं। भगवान् स्वय कहते हैं—मैं समस्त गुणोसे रहित हूँ और किसीकी अपेक्षा नहीं रखता। फिर भी साम्य, असङ्गता आदि सभी गुण मेरा ही सेवन करते हैं, क्योकि मैं सबका हितैषी सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हूँ—

मा भजन्ति गुणा सर्वे निर्गुण निरपेक्षकम्।
सुहृद प्रियमात्मान साम्यासङ्गादयोऽगुणा ॥
(श्रीमद्भा० ११।१३।४०)

यही स्थिति आकारकी भी है। आकार जिससे निकल गया या जो आकारसे निकल गया, वह निराकार—ऐसा माननेपर आकारका अस्तित्व सिद्ध होता है और उस आकारके योगसे भगवान् साकार सिद्ध होते हैं। साथ ही जबतक एक भी आकार है, तबतक भगवान् निराकार कैसे ? ऐसी स्थितिमे लीलापूर्वक भगवान् दिव्यातिदिव्य गुणगणोको स्वीकार करते हैं, स्वत निर्गुण हैं, ऐसा माननेपर दोनो मतोका समन्वय हो जाता है।

अवतार-रहस्य

कितनी सरस बात है कि निर्गुण ब्रह्मको गुण भजते हैं। दिव्यातिदिव्य गुणगणोने तपस्या की, मुकुट-कुण्डल-किरीट आदि आभूषणोने तपस्या की। जन्म-जन्मान्तर युग-युगान्तर कल्प-कल्पान्तरतक तप करनेपर प्रभु प्रसन्न हो गये। बोले—वरदान माँगो।

गुणोंने आभूषणोने कहा—'प्रभो! हमको आप अङ्गीकार कर लें, हमे धारण कर ले। यदि आप हमे स्वीकार नहीं करेगे तो हम 'गुण' कहनेलायक ही कहाँ रह जायँगे ? हम तो 'दोष' ही बने रहेगे।' यदि आप हम स्वीकार नहीं करेगे तो हम आभूषण कहने लायक कहाँ रहेगे ? भूषण नहीं दूषण ही बने रहेगे। भगवान्ने गुणगणोको आभूषणोको स्वीकार किया।

सच्चिदानन्द परात्पर-परब्रह्म-श्रीकृष्णचन्द्र-परमानन्द-कन्दके रूपमे प्रकट हुए। वे दिव्य शब्द, स्पर्श रूप, रस गन्धके रूपमे प्रकट होकर भक्तोकी इन्द्रियोंको आह्लादित कर रहे हैं। इन्द्रियाँ भगवान्का अनुभव कर रही हैं—

'मयैव वृन्दावनगोचरेण।'
(श्रीमद्भा० ११।१२।११)

'वृन्दावने गा इन्द्रियाणि चारयति।' प्रभु इतने सुन्दर हैं, इतने सुन्दर हैं कि भूषण (गहने) उनकी सुन्दरताको ढकते हैं। अन्यत्र तो भूषण अङ्गको अलङ्कृत—सुशोभित करते हैं, पर यहाँ तो भगवान्के मङ्गलमय अङ्ग ही अलङ्कारोको अलङ्कृत—सुशोभित करते हैं। भगवान् श्रीराघवेन्द्र रामभद्र और श्यामसुन्दर परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रह ही उन्हें भूषित करते हैं—

'पर पद भूषणभूषणाङ्गम्॥'
(श्रीमद्भा० ३।२।१२)

'भूषणानां भूषणानि अङ्गानि यस्य स।'

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय भगवान्के गलेका चिन्तन करे, जो मानो कौस्तुभमणिको भी सुशोभित करनेके लिये ही उसे धारण करता है—

'कण्ठ च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थम्'
(३।२८।२६)

इस तरह भगवान्को किसीकी अपेक्षा नहीं, किंतु भगवान् गुण-भूषणादिकी तपस्यापर रीझकर उन्हे स्वीकार कर उन्हे धन्य-धन्य करते हैं। हमलोग गहने, कपडे क्यो पहने हैं ? हमारा शरीर सुन्दर लगे, हमारे शरीरमे सुन्दरता आ जाय, हमारा शरीर अलङ्कृत—विभूषित हो जाय। लेकिन अनन्तकोटि कन्दर्प—कामदेवको लजानेवाली सुन्दरता भगवान्के शरीरमे पहलेसे है। ऐसी स्थितिमे भूषणोको भी भूषित करनेवाले भगवान्का आश्रय लेकर गुण भी गुण बन जाते हैं।

इन सब दृष्टियोसे न तो ऐसा ही आग्रह करना चाहिये कि भगवान् दीखते नहीं तो उन्हे माने ही क्यो ? आपको

भूख लगती है, 'भूखके मार आज मरे पेटमे चूहे कूदते हैं', ऐसा आप ही कहते हैं, पर क्या उस निराकार भूखको, आखोसे देखकर आप मानते हैं? आपको प्यास लगती है, 'प्यासके मारे जान निकली जा रही है' ऐसा आप कहते हैं, पर क्या प्यासको आँखासे देखकर आप मानते हैं? साथ ही, क्या निर्गुण-निराकार अन्नसे आप भूख मिटाते हैं या निर्गुण-निराकार जलसे आप प्यास बुझाते हैं?

इस तरह भगवान् जहाँ निर्गुण-निराकार हैं, वहीं सगुण-निराकार और सगुण-साकार भी। ससारम पृथ्वी, जल तथा तेज—ये सब वस्तुएँ निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार—तीना प्रकारकी हैं। ऐसे ही भगवान् भी निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार—तीना प्रकारके हैं।

अवतार-प्रयोजन

अब प्रश्न उठता है कि जीव जब जन्म लता है, तब वह सगुण-साकार माना जाता है। यदि भगवान् भी स्वयको सगुण-साकार करनके लिये जन्म ल तो जीवम और भगवान्म अन्तर ही क्या रह जायगा? इसका उत्तर स्वय भगवान् श्रीकृष्ण गीता (४।५-६)-म अर्जुनको देते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यह वेद सर्वाणि न त्व वेत्थ परन्तप॥
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

हे परन्तप अर्जुन! मरे अनेक जन्म हुए और तेरे भी अनेक जन्म हुए। तुझम और मुझम यही अन्तर है कि तू जीव है—नर है और मैं नारायण हूँ, इसलिये मैं अपने सम्पूर्ण जन्माको जानता हूँ। तू अपने जन्माको नहीं जानता तू अल्पज्ञ है और मैं सर्वज्ञ हूँ। यदि कहो कि महाराज! कैसे मान ल कि आपके भी बहुत जन्म हुए? मेरे जन्म हो सकते हैं, क्योकि मैं जीव हूँ, लेकिन आप ता अनादि-अनन्त, साक्षात् परब्रह्म, परमात्मा हैं, आपका जन्म कैसा? ता सुनो—मैं अज हूँ, मेरा जन्म वास्तवमे नहीं होता। मैं अव्यय हूँ, न तो मरा कभी नाश ही होता है अर्थात् न तो मैं पैदा ही होता हूँ और न मरता ही हूँ। जीवोका जन्म और मरण भी वस्तुत औपाधिक है, वास्तविक नहीं। मेरी जो सत्त्व-रज-तमोगुणात्मिका प्रकृति भास्वती माया है, उसको अपने वशम करके उसीको अधिष्ठान—आश्रय (निमित्त) बनाकर मैं अपनी मायास अवतरित होता हूँ। प्रकृतिपरवश होकर जीवाकी तरह किसी अन्यकी मायासे नियन्त्रित होकर पैदा नहीं होता।

श्रीभगवान्का जैसा रूप है, वैसा रूप ससारमे किसीका नहीं। जनकनन्दिनी भगवती जानकी रामचन्द्र राघवेन्द्र भगवान् और लखन (लक्ष्मण) लालके साथ जा रही थीं। चित्रकूटके आस-पासकी ग्राम-वधूटियाँ इकट्ठी हो गयीं। उन्हाने प्रश्न किया—

राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह ते लही दुति मरकत सोने॥
स्यामल गौर किसोर बर सुदर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥
कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
(रा०च०मा० २।११६।८ २।११६ २।११७।१)

करोडा कामदेवोके रूपका भी लजानेवाला भगवान्का रूप है। ऐसा रूप कहाँसे आया? आपका हमारा समस्त ससारका ऐसा रूप क्यो नहीं? इसलिये नहीं है कि आपका, हमारा जो रूप है वह सामान्य पञ्चभूतोसे पञ्चतन्मात्राओसे पैदा होता है, लेकिन भगवान्के शरीरका जो रूप है, वह पञ्चभूतो या पञ्चतन्मात्राओसे पैदा नहीं होता। भगवान् अपने शरीरको धारण करनके लिये विशुद्ध-सत्त्वात्मिका-लीलाशक्तिसे दिव्यातिदिव्य तन्मात्राओको उत्पन्न करते हैं। उन्हींसे भगवान् अपने दिव्यातिदिव्य श्रीविग्रहको व्यक्त करते हैं। उसम इतना आकर्षण होता है कि ज्ञानीका मन भी उसकी ओर खिच जाता हे, ससारके सब रूपाकी ओरसे वह अलग हो जाता है—बच जाता है।

अब चाहे उर्वशी, तिलोत्तमा रम्भा और मेनका ही दिव्यातिदिव्य वस्त्राभूषणा और अलङ्कारासे सुसज्जित—अलङ्कृत होकर कितने ही सुगन्धित द्रव्याको अपने शरीरमे अनुलिप्त कर सामने क्यो न आय, लेकिन ज्ञानी उनकी ओर पीठ दे दगा तनिक भी आकृष्ट नहीं होगा। भगवान्का सौन्दर्य-माधुर्य जैसा है, वैसा सौन्दर्य-माधुर्य अन्यत्र कहीं देखनको मिलता भी नहीं। तभी तो जनक-

जैसे ज्ञानी जिनका मन असम्प्रज्ञात समाधिमें निर्गुण ब्रह्ममें चौबीसों घंटे लगा रहता है, कौशल्यानन्दन दशरथ-नन्दन श्रीराम-लक्ष्मणको देखते ही सहज विरागरूप उनका मन भी अति अनुरागी बन जाता है, बरबस समाधिसुखका परित्याग कर उनकी रूप-माधुरीमें निमग्न हो जाता है। वे कहते हैं कि ब्रह्मके सिवाय मेरे मनमें संसारका कोई पदार्थ प्रवेश नहीं कर सकता, लेकिन क्या करूँ? इनके रूपका अवलोकन कर निर्गुण ब्रह्मका बरबस त्याग कर इनकी मधुर-मनोहर कोटि-मनोज-लजावनिहारी मूर्तिमें मन जाकर रम गया। इन्हें देखते ही मनमें इनके प्रति सामान्य राग नहीं अति अनुराग उत्पन्न हो गया—

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
(रा०च०मा० १।२१६।३—५)

श्रीरामजीका रूप सभीको आकृष्ट करता है—

रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥
(रा०च०मा० १।३२१)

निश्चय यह है कि स्त्रियाँ स्त्रियोंके रूपपर मोहित नहीं होतीं—

मोह न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
(रा०च०मा० ७।११६।२)

पर भगवान् रामके रूपको देखकर नर-नारी—सभी मुग्ध हुए हैं—

[illegible] जब [illegible] धनु [illegible]। देखि रूप मोहे नर नारी॥
[illegible] छबि [illegible]। [illegible]॥
(रा०च०मा० १।[illegible])

[illegible]

[illegible]॥
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥
([illegible])

'यदि छविरूप अमृतका समुद्र हो, परम रूपमय कच्छप हो, शोभारूप रस्सी हो, शृङ्गाररस मन्दराचल हो और उस छविके समुद्रको स्वयं कामदेव ही अपने कर-कमलोंसे मथे। इस प्रकारका सौन्दर्य होनेसे जब सुन्दरता और सुखकी मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो तो भी कवि लोग उसे बहुत ही संकोचके साथ सीताजीके समान कहेंगे।'

जब द्रौपदीने राजा विराटकी पत्नी सुदेष्णाके पूछनेपर मैं सैरन्ध्री (दासी)-का काम करना चाहती हूँ और इसलिये यहाँ आयी हूँ—ऐसा कहा तब राजरानी सुदेष्णाने उससे कहा—

नैवरूपा भवन्त्येव यथा वदसि भामिनि।
प्रेषयन्तीव वै दासीर्दासांश्च विविधान् बहून्॥
स्त्रियो राजकुले याश्च याश्चेमा मम वेश्मनि।
प्रसक्तास्त्वां निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहये॥
वृक्षांश्चावस्थितान् पश्य य इमे मम वेश्मनि।
तेऽपि त्वां संनमन्तीव पुमांसं कं न मोहये॥
(महा० विराटपर्व ९।१९ २३-२४)

'भामिनि! तुम जैसा कह रही हो, उसपर विश्वास नहीं [illegible] तुम्हारे-जैसी रूपवती स्त्रियाँ सैरन्ध्री (दासी) नहीं हुआ करतीं। तुम तो बहुत सी दासियों और दास [illegible] -जैसी जान पड़ती हो। मेरे राजकुलमें जितनी स्त्रियाँ हैं [illegible]

महलमे भी जो ये सुन्दरियाँ हैं, वे सब एकटक तुम्हारी ओर निहार रही हैं, फिर पुरुष कौन ऐसा होगा, जिसे तुम मोहित न कर सको? देखो, मेरे भवनमे ये जो वृक्ष खडे हैं, वे भी तुम्हे देखनेके लिये मानो झुके-से पडते हैं, फिर पुरुष कौन ऐसा होगा, जिसे तुम मोहित न कर लो?

द्रौपदीने कहा—'आप चिन्ता न करे।' किसी महान् शक्तिशाली गन्धर्वराजके पाँच (जय, जयन्त विजय जयत्सेन और जयद्बल) शक्तिशाली तरुण पुत्र मेरे पति हैं। अपने जनोको कह देना मैं किसी पुरुषसे सम्भाषण नहीं करूँगी। मेरे ऊपर जिस दिन किसीने बुरी नजर डाली कि उसी रात वह नष्ट हो जायगा। मेरे पाँचो पति सदा मेरी रक्षा करते हैं। मैं किसीकी जूठन नहीं खाऊँगी और न किसीका पाँव ही दबाऊँगी।

इसी तरह महाभारतमे भीमके सौन्दर्यका भी वर्णन आता है। एक वनमे हिडिम्ब नामक राक्षस बडा ही क्रूर और मनुष्योको कच्चा चबा जानेवाला था। जब उसने दूरसे कुन्तीसहित पाण्डवोको सोते देखा तो अपनी बहन हिडिम्बाको उन्हे मारकर ले आनेकी आज्ञा दी। वहाँ पहुँचकर उसने कुन्ती और चार पाण्डवोको सोते और भीमसेनको जागते देखा। भीमसेनके अप्रतिम रूपको देखकर वह मुग्ध हो गयी। उसने मन-ही-मन उन्हे अपना पति मान लिया और वह अत्यन्त सुन्दरी मानवी बनकर अपने क्रूर स्वभावको छोडकर भीमसेनके पास पहुँची—

राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि॥
अयं श्यामो महाबाहु सिंहस्कन्धो महाद्युति ।
कम्बुग्रीव पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम॥

(महा० आदि० १५१।१७-१८)

वह राक्षसी (मुग्ध हो) उन्हे चाहने लगी। इस पृथ्वीपर वे अनुपम रूपवान् थे। (उसने मन-ही-मन सोचा—) 'इन श्यामसुन्दर तरुण वीरकी भुजाएँ बडी-बडी हैं, कन्धे सिंहके-से हैं, ये महान् तेजस्वी हैं, इनकी ग्रीवा शङ्खके समान सुन्दर और नेत्र कमलदलके सदृश विशाल हैं। ये मेरे लिये उपयुक्त पति हो सकते हैं।'

जो राक्षसी मनुष्योको कच्चा चबा जाय, वह मनौती मनाने लग गयी और धर्मराज युधिष्ठिरसे कहने लगी—यदि तुम्हारे भाईके साथ ब्याह न हुआ तो मैं मर जाऊँगी।

संसारमे किसी स्त्री-पुरुषका ऐसा रूप है ही नहीं, जैसा रूप भगवान्का है। जब ज्ञानी भगवान्के रूपमे आसक्त होगा, तब उसका मन किसी भी रूपको देखने जायगा तो उसके सामने भगवान्का रूप आ जायगा, इसलिये वह कहीं फँसेगा ही नहीं।

काम-क्रोध-मोह जीवके शत्रु हैं, लेकिन ये सब मित्र बन सकते हैं। संसारके विषयोसे हटा करके भगवान्के प्रति कामादि विकारोको अर्पित करे तो चौबीसो घटे भगवान्का ही चिन्तन होगा। कल्याण हो जायगा। वैसे तो काम-क्रोधादि जीवके भयङ्कर शत्रु हैं, पर इनके विषय यदि भगवान् बन जायँ तो उद्धार हो जाय। ऐसा क्यो? विषयकी महिमाके कारण या प्रमेयबलकी मुख्यताके कारण—

'भगवति प्रमेयबलमेव मुख्यं न प्रमाणबलम्।'

(सुबोधिनी १०।८४।२)

गोप्य कामाद् भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपा ।
सम्बन्धाद् वृष्णय स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो॥

(श्रीमद्भा० ७।१।३०)

[नारदजीने युधिष्ठिरसे कहा—] महाराज! गोपियोने भगवान्से मिलनके तीव्र काम अर्थात् प्रेमसे, कंसने भयसे, शिशुपाल-दन्तवक्त्र आदि राजाओंने द्वेषसे, यदुवंशियोने परिवारके सम्बन्धसे, तुमलोगोने स्नेहसे और हमलोगोने भक्तिसे अपने मनको भगवान्मे लगाया है।

अरे संसारी पुरुषो! जन्म-मरणके बन्धनसे छूटना चाहते हो तो भगवान्के दिव्यातिदिव्य जन्म और कर्मका चिन्तन करो, इससे जन्म-कर्मके बन्धनसे छूट जाओगे। क्यो? इसलिये कि भगवान्के जन्म और कर्म अनादि और अनन्त हैं, इस वास्ते उनका चिन्तन करते-करते तुम भी अनादि और अनन्त, साक्षात् भगवत्स्वरूप बन जाओगे।

हमारे आपके जन्म-कर्म बन्धनके कारण हैं, भगवान्के जन्म-कर्म बन्धनके कारण नहीं। तभी तो कहा—काम क्रोध भय, स्नेह, ऐक्य, सख्य—किसी भी भावसे सही, भगवान्मे मनको लगाकर प्राणी संसारसे छूटकर भगवत्स्वरूप हो जाता है। निर्गुण, निराकार, अव्यय, अप्रमेय भगवान् प्राणियोके कल्याणके लिये ही श्रीकृष्ण आदि रूपमे अवतरित होते हैं। उनके मङ्गलमय श्रीअङ्गकी सुन्दरता, सरसता मधुरता हठात् प्राणियोके मनको खींच लेती है।

पाषाण तथा वज्रके तुल्य कठोर हृदयको भी पिघलाकर नवनीतके समान कोमल एव सरस बना देती है।

सौन्दर्य-माधुर्य सौरस्य-सौगन्ध-सुधाजलनिधि श्रीअङ्गमे इन्द्रिया और मनकी ऐसी स्वाभाविक आसक्ति हो जाती है कि वे लौटना तो भूल ही जाते हैं। जो मन विषयासे एक क्षणके लिये भी अलग नहीं हो सकता, वही भगवान्‌मे आसक्त होकर विषयाको भूल जाता है। ऐसे परम-मधुर मनोहर भगवान्‌मे प्रीतिका होना स्वाभाविक ही है। कुन्ती देवी कहती हैं—हे प्रभो! आप अमलात्मा, परमहस मुनीन्द्रोको भक्तियोग देकर उन्हे श्रीपरमहस बनानेके लिये अवतरित होते हैं, फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं—

तथा परमहसाना मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थ कथ पश्येम हि स्त्रिय ॥

(श्रीमद्भा० १।८।२०)

परमहस शुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहते हैं—'राजन्! भगवान् निर्गुण अप्रमेय होते हुए भी अचिन्त्य अनन्त दिव्यातिदिव्य गुणाके एकमात्र आश्रय हैं। उनका अवतार प्राणियाके परम कल्याणके लिये होता है'—

नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मन ॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।१४)

भगवान्‌के अवतारका यही मुख्य प्रयोजन है रावणादिका वध मुख्य प्रयोजन नहीं है। सारे ससारका सङ्कल्पमात्रसे पैदा करने और सहार करनेवाले भगवान् हिरण्यकशिपु, रावणादिको बिना अवतार लिये भी सङ्कल्पमात्रसे ही मार सकते हैं।

भगवान्‌के ऐसे स्वरूपमे मन लग जाय तो समस्त बन्धनोसे छूटकर शाश्वत शान्ति, शाश्वत सुख प्राप्त कर ले। जब भगवान् निर्गुण-निराकार ही रहेंगे तो उनके चरणारविन्दकी शरणागति भी कैसे होगी? जब भगवान् सगुण-साकार होगे तभी तो उनके चरणारविन्दाका दर्शन सुलभ होगा और शरणागति सुलभ होगी।

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

[प्रेषक—प० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय 'किशनमहाराज']
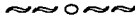
भगवान्‌का अवतार

[ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजी महाराजके अमृतोपदेश]

एक बारकी बात है, भक्तिरसमय श्रीवृन्दावनधाममे यमुनानदीके तटपर मञ्चासीन ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबाका अमृतोपदेश चल रहा था। उस समय उन्होने बताया—

भगवान्‌की कृपा कब-किस व्यक्तिपर-किस रूपमे होती है, यह बताना कठिन अवश्य है। परम कृपालु एव दयालु भगवान् करुणाकी वृष्टि करनेके लिये ही अवतार ग्रहण करते हैं। अवतारका अर्थ अव्यक्त रूपसे व्यक्तरूपमे प्रकट होना है। पूज्य श्रीबाबाने अव्यक्त तथा व्यक्तको स्पष्ट करते हुए बताया कि साँभर झीलके पानीमे नमक वर्तमान रहता है, लेकिन उसे तुम देख नहीं पाते हो। उसीको छानकर जब नमक तैयार किया जाता है तो वह आकार ग्रहण कर व्यक्त बन जाता है। फिर उसी घनीभूत नमकको जलमे मिला देते हो तो वह अव्यक्त बन जाता है। इस प्रकार अव्यक्त तथा व्यक्तमे तत्त्वत कुछ भी भेद नहीं है। अवतारका मर्म तो अवतारी ही समझ सकता है। इसीलिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने स्पष्ट ही कहा है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई॥

(रा०च०मा० १।१२१।२)

भगवान्‌का अवतार क्यो होता है, यह जाननेकी वस्तु नहीं है। अवतार भक्ताकी उपासनाका आधार है। भक्तोको उपासनाकी सुविधा प्रदान करनेके लिये भगवान् कृपापूर्वक अवतार लेते हैं। समस्त प्राणियाकी आत्मा और भगवान्‌के अवतारमे कोई भी भेद नहीं है। अत निर्गुण और सगुण भक्तिमे भेद नहीं मानना चाहिये। इसी दृष्टिसे श्रीमद्भागवतमे कहा गया है—

सर्वभूतेषु य पश्येद् भगवद्भावमात्मन ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तम ॥

(श्रीमद्भा० ११।२।४५)

अर्थात् आत्मरूप भगवान् समस्त प्राणियोमे आत्मारूपसे रहते हैं—ऐसी दिव्य दृष्टि जिन्हे प्राप्त हो जाती है, वे भगवान्‌के सर्वश्रेष्ठ भक्त माने जाते हैं।

भगवान् लोकलीलाकी तरह अवतारमे दिव्य लीला करते हैं, लेकिन इस रहस्यको कोई शीघ्र नहीं समझ पाता है। श्रीतुलसीदासजीने स्पष्ट ही कहा है—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

(रा०च०मा० ७।७३ (ख))

भगवान् सर्वदा सब रूपोमे रहते हैं और अवतारके रूपमे भी जब वे आते हैं, तो उन्हे कोई नहीं पहचानता है, यह मनुष्यकी मूढता ही है। भगवान्‌ने इसी बातको गीता (७।२५)-मे भी कहा है—

नाह प्रकाश सर्वस्य योगमायासमावृत ।
मूढोऽय नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

पूज्य बाबाने बताया कि आत्मभाव ही भगवान्‌का भाव है और देहभाव ससारका भाव है। आत्मभाववाले देव-मानव हैं और शरीरके अभिमानी प्राणी असुर-मानव हैं। देव-मानवको भक्त तथा महात्मा भी कहा जाता है। भगवान्‌ने गीता (९।१३)-मे स्पष्ट ही कहा है—

महात्मानस्तु मा पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिता ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

जो ससारमे लगे रहते हैं और भगवान्‌का भजन नहीं करते हैं, वे ही मनुष्य असुर-मानव कहे जाते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

न मा दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमा ।
माययापहृतज्ञाना आसुर भावमाश्रिता ॥

(गीता ७।१५)

भगवत्प्रेममे भगवान्‌की भावना प्रधान है। भगवान्‌के भजनरूपी सस्कारसे भक्तिकी प्राप्ति होती है। भजनद्वारा आत्मज्ञान तथा वैराग्यके दिव्य गुण स्वत ही प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिये श्रीमद्भागवतमे ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तिकी महिमा प्रधान रूपसे निरूपित है।

मोह, भ्रम और सशयके कारण ही मनुष्यको अपने अन्त करणमे परमात्माका अनुभव नहीं होता है। मृगके पास ही कस्तूरी होती है, लेकिन अज्ञानताके कारण ही वह जीवनभर भटकता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य अज्ञानताके कारण स्वान्त स्थ ईश्वरका दर्शन नहीं कर पाता।

पूज्य श्रीबाबाने मानवदेहकी सार्थकता बताते हुए कहा—'देखो! बुद्धिमान् व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर इस शरीरमे ही ईश्वरका साक्षात् अनुभव कर सकते हैं। ऐसा परम मङ्गलमय मानव शरीर पाकर भी यदि मनुष्य इसका दुरुपयोग विषयोमे करता है, तो उसका दुर्भाग्य ही है।' गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है—

काँच किरिच बदले ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं॥

(रा०च०मा० ७।१२१।१२)

इस शरीरको करुणामय प्रभुके चरणोमे लगाकर प्रभुका दर्शन कर लो। यही जीवनकी सार्थकता है।

भगवान्‌के अवतारवादकी चर्चा करते हुए पूज्य श्रीबाबाने बताया—

जिस प्रकार श्रीराम और श्रीकृष्ण भगवान्‌के अवतार हैं, उसी प्रकार उनके सारे नाम अवतार ही हैं। भक्तिजगत्मे नामावतारकी विशेष उपयोगिता है। भगवन्नाम-कीर्तनकी अद्भुत महिमा सर्वत्र दीखती है। पूज्य श्रीबाबाने उदाहरण देते हुए कहा—

नामसङ्कीर्तन यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दु खशमनस्त नमामि हरि परम्॥

(श्रीमद्भा० १२।१३।२३)

अर्थात् जिन भगवान्‌के नामोका सङ्कीर्तन सारे पापोको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणोमे आत्मसमर्पण तथा उनके चरणोमे प्रणति सर्वदाके लिये सब प्रकारके दु खोको शान्त कर देती है, उन परमात्मस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

नाह वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न वै।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड ९४।२३)

भगवान् नारदजीसे कहते हैं—हे नारद! मैं न तो वैकुण्ठमे निवास करता हूँ और न योगियोके हृदयमे, मैं तो वहीं रहता हूँ, जहाँ मेरे भक्त मेरा नामसङ्कीर्तन करते हैं।

अत हम सभीको भगवन्नाममे अटूट श्रद्धा और विश्वास रखते हुए निरन्तर नाम-स्मरण करना चाहिये।

[प्रेषक—श्रीरामानन्दप्रसादजी]

~~~०~~~
~~~

भगवान् कपिलदेवका अवतार

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तब्रह्मचारीजी महाराज)

देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः ।
सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद् गुरुम्॥
तस्यां बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः ।
कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि॥

(श्रीमद्भा० ३।२४।५-६)

[मैत्रेयजी कहते हैं—] हे विदुरजी! देवहूतिने बड़े गौरव और श्रद्धासहित प्रजापति कर्दम भगवान्की आज्ञाको स्वीकार किया। वह कूटस्थ जगद्गुरु भगवान् परम पुरुषकी आराधना करने लगी। इसके अनन्तर बहुत काल बीत जानेपर मधुसूदन भगवान् कर्दम मुनिके वीर्यका आश्रय लेकर मुनिपत्नीके गर्भसे उसी प्रकार प्रकट हुए, जिस प्रकार ईंधनका आश्रय लेकर अग्नि प्रकट होती है।

छप्पय

आई घर की यादि कमण्डलु पुनि धरि दीन्हा।
मुनि दयार्द्र ह्वै गये दूरि दयिता दुख कीन्हो॥
बोले—
भामिनि दुःख शोक चिन्ता तजि डारो।
गर्भ माहिं तव प्रकट होहिं हरि शुभ व्रत धारो॥
हर्षित ह्वै तप व्रत करहिं, हरि प्रसन्न अतिशय भये।
उपजे अरणीते अनल, त्यों प्रभु परगट ह्वै गये॥

रज-वीर्यसे शरीर बनता है। संस्कारोंसे अन्तःकरण बनता है। गर्भाधानके समय माता-पिताके जैसे संस्कार होंगे, संतानमें भी बीजरूपसे वैसे ही संस्कार होंगे। वे ही संस्कार जातकर्म, नामकरण आदि संस्कारोंके द्वारा परिपुष्ट और दृढ़ बनाये जाते हैं। इसलिये वर्णाश्रमधर्ममें संस्कार तथा रज-वीर्यकी शुद्धिपर अत्यधिक बल दिया गया है। ऐसी कन्याके साथ विवाह करो, जिसका शुद्ध कुल हो, उस कुलमें दुराचार न हो, अपना भी कुल शुद्ध हो। शुद्ध संस्कारोंके द्वारा वेद-मन्त्रोंसे गर्भाधान करो, अमुक-अमुक तिथियोंमें अमुक कालमें मत करो—इन विधि-निषेधोंका एकमात्र उद्देश्य है भावी संतानके संस्कार शुद्ध बनाना। जो पापकी संतानें हैं, जिनका गर्भाधान अवैध रीतिसे हुआ है, वे प्रायः पापप्रवृत्तिवाली ही होंगी, क्योंकि माता-पिता दोनोंके संस्कार पापपूर्ण थे। ऐसे बालकोंकी परमार्थ कार्योंमें रुचि न होगी, विषय-सुखोंको ही सर्वस्व समझकर धर्मसे, अधर्मसे उन्हें पानेके लिये वे जीवनपर्यन्त प्रयत्नशील होंगे। इसीलिये तो कलियुगमें वेद, सच्छास्त्र, परमार्थपथ प्रायः लुप्त हो जाते हैं, क्योंकि सबकी प्रवृत्ति अधर्ममें हो जानेसे रज-वीर्यकी शुद्धिपर ध्यान नहीं दिया जाता, गम्यागम्यका विचार नहीं किया जाता, संस्कारोंमें पवित्रता नहीं रहती और विषयभोगोंका प्राबल्य होनेसे स्वेच्छाचार बढ़ जाता है। यह सब ध्यान देनेकी बात है।

भगवान् जिस दम्पतिको निमित्त बनाकर अवतीर्ण होना चाहते हैं, वे साधारण दम्पति तो होते नहीं। जन्म-जन्मान्तरोंके असंख्यों पुण्योंसे, शुभ कर्मोंसे, विविध धर्मोंके आचरणोंसे ऐसा सौभाग्य उन्हें प्राप्त होता है। यद्यपि श्रीहरि कर्मोंके अधीन नहीं हैं, न तो कर्मभोगोंको भोगनेके लिये अवतीर्ण होते हैं और न उन्हें कोई पुण्यकर्म प्राप्त ही करा सकता है। उनकी प्राप्तिका एकमात्र कारण तो उनकी कृपा ही है। किसपर वे कृपा कर दें, कहाँ अवतीर्ण हों, किसे दर्शन दें—इन बातोंको उनके अतिरिक्त कोई जान ही नहीं सकता। फिर भी सिंहिनीका दूध सुवर्णके ही पात्रमें टिकता है। भगवान् भी तपःपूत, धर्माचरणमें निरत, परम पुण्यात्मा महान् संस्कारी, श्रेष्ठ सदाचारयुक्त दम्पतिके यहाँ ही अवतरित होते हैं, जो उनकी कृपाके भाजन बन चुके हैं। जिस पति-पत्नीको वे अपने जन्मका निमित्त बनाते हैं, उनकी वैसे तो आरम्भसे ही धर्ममें प्रवृत्ति होती है, किंतु अवतरणके समय तो उनका मन सदा श्रीहरिके चरणोंमें ही लगा रहता है।

मुनि मैत्रेय कहते हैं—विदुरजी! जब भगवती देवहूतिने अपने पतिसे यह बात सुनी कि उसके यहाँ साक्षात् श्रीहरि अवतीर्ण होंगे, तो वे बड़े ही संयम, नियमसे रहने लगीं। जन्म-कर्मसे रहित, निरंजन, निर्विकार, जगद्गुरु, परात्पर पुरुषोत्तम मुझे दर्शन देंगे, मेरे गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न होंगे— यह स्मरण आते ही उनके रोम-रोम खिल गये और वे सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते उन्हीं अचिन्त्य-शक्तिसम्पन्न सर्वेश्वरका ध्यान करने लगीं। इस प्रकार श्रद्धा-संयमसे रहते हुए निरन्तर पुराण-पुरुषका ध्यान करते

हुए उन्हे बहुत समय व्यतीत हो गया।

अब भगवान्के प्राकट्यका काल उपस्थित हुआ। प्रथम भगवान्ने सकल्परूपसे प्रजापति कर्दमके वीर्यम प्रवेश किया। फिर जिस प्रकार अधरारणि-उत्तरारणिके सघर्षसे अग्निदेव उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार भगवती देवहूतिके गर्भसे साक्षात् श्रीहरि कपिलरूपसे अवतीर्ण हुए। भगवान्के जन्मके समय सर्वत्र आनन्द छा गया, चराचर जीव सुखी हो गये, विशेषकर मुमुक्षु और ज्ञानियाको परम आनन्द हुआ, क्योकि यह 'ज्ञानावतार' ही था। लुप्त हुए साख्य-ज्ञानके प्रचारके निमित्त ही भगवान्ने यह कपिल रूप धारण किया था। उस समय देवताओने उनके ऊपर पुष्पवृष्टि की, आकाशमे गन्धर्व गाने लगे, दवता दुन्दुभी बजाने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, मेघ अपनी गडगडाहटसे प्रसन्नता प्रकट करने लगे, मुमुक्षुआके मनम स्वाभाविक प्रसन्नता छा गयी, प्रसनताके कारण समुद्राका जल उमडने लगा, अग्निहोत्रकी अग्नियाँ स्वत ही प्रज्वलित हो उठीं, दसो दिशाआम आनन्द छा गया और प्राणिमात्रका हृदय आनन्दसे भर गया।

पुत्रसे बढकर पौत्रकी उत्पत्तिपर प्रसन्नता होती है। ब्रह्माजीने जब देखा कि कर्दमजीके साधारण पुत्र ही नहीं हुआ है, स्वय साक्षात् श्रीमन्नारायण ही पुत्ररूपमे उनकी पुत्रवधू (देवहूति—मनु-शतरूपाकी कन्या)-के गर्भसे अवतीर्ण हुए हैं तो वे बहुत शीघ्रतापूर्वक ब्रह्मलोकसे कर्दम मुनिके आश्रमकी ओर चले। वे अपने चारो सिरापर चमचमाते हुए चार दिव्य मुकुट धारण किये हुए थे। हाथमे कमण्डलु और पुस्तक लिये हुए वे हसको शीघ्रतासे चलनेका निर्देश कर रहे थे। उन्ह इस प्रकार व्यग्रतासे जाते देखकर उनके जो मरीचि आदि नौ मानसपुत्र थे, वे बडी उत्सुकतासे बोले—प्रभो! आप इतनी शीघ्रतासे कहाँ जा रहे हैं?

भगवान् ब्रह्मा विस्मयका भाव प्रकट करते हुए बोले—अरे! तुमलोगोको कुछ पता ही नहीं। मेरी छायासे उत्पन्न मेरे समान पुत्र प्रजापति कर्दमके यहाँ स्वय साक्षात् श्रीहरि 'कपिल' नामसे प्रकट हुए हैं। वे सबकी मनोवाञ्छाको पूर्ण करनेवाले हैं। उनके सम्मुख बिना छल-कपट या निर्मल और निष्कपट होकर जो जिस भावनासे जायगा, उसकी वह भावना तत्क्षण पूरी होगी।

भगवान्की प्रेरणासे इन सब मुनियोका मन प्रवृत्तिधर्म स्वीकार करनेमे, विवाह करनेमे लगा था। घट-घटकी जाननेवाले भगवान् ब्रह्माजी उनकी भावनाको समझ करके शीघ्रतासे बोले—हाँ, हाँ, तुमलोग भी मेरे साथ चलो, मङ्गलमूर्ति मधुसूदन तुमलोगोकी मनोकामना पूर्ण करेगे। इतना सुनते ही व नौ महर्षि भी ब्रह्माजीके साथ चल दिये।

भगवती सरस्वतीसे घिरे हुए बिन्दुसरोवरके समीप महामुनि कर्दमका दिव्य आश्रम था। भगवान्के प्रेमाश्रुओसे निर्मित वह तीर्थ प्राणियोके समस्त अशुभाका नाश करनेवाला था। महामुनि कर्दम भगवान्के जन्मोत्सवकी तैयारियाँ कर रहे थे कि इतनेम ही उन्हे आकाशसे उतरते हुए महर्षियोके सहित ब्रह्माजी दिखायी दिये। यह देखकर वे बडी ही प्रसन्नताके साथ उठकर खडे हो गये। उन्होने लोकपितामह चतुराननके चरणोम विनयपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदनन्तर अन्य ऋषि-महर्षियाका भी यथायोग्य स्वागत-सत्कार किया। कर्दमजीकी की हुई पूजाको मुनियासहित यथावत् स्वीकार करक हँसते हुए ब्रह्माजी बोले—वत्स कर्दम! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने ही यथार्थमे मेरी सच्ची सेवा की। इस बाह्य पूजनकी अपेक्षा मैं आज्ञापालनरूपी आन्तरिक पूजनको सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ।

वत्स! माता-पिता, गुरु जो भी आज्ञा दे, उसे श्रद्धासहित स्वीकार कर उसका पालन करना ही सबसे श्रेष्ठ सेवा है। तुमने मेरी आज्ञाका निष्कपटभावस पालन किया है। मुझे सृष्टिरचनामे सहयोग प्रदान किया है, यह तुम्हारी सर्वोत्तम सेवा है।

ब्रह्माजी यह कह ही रहे थे कि महामुनि कर्दमकी नवो पुत्रियोने आकर लोकपितामहको प्रणाम किया। अत्यन्त स्नेहके साथ उनके सिरपर प्यारसे हाथ फेरते हुए ब्रह्माजी बोले—ये तुम्हारी कन्याएँ बडी सुशीला हैं, बहुत सरल स्वभावकी हैं। इनके विवाहके विषयमे तुम चिन्तित न होओ। तुमने इतने दिन भगवान्की आराधना की है। उनका साक्षात्कार किया है, उनसे दुर्लभ वर भी प्राप्त किया है, फिर भी तुम चिन्ता करते हो। जो देव विश्वम्भर हैं जिन्ह चींटीसे लेकर मेरे कार्यतककी चिन्ता है, जो सबका समयपर योगक्षेम चलाते हैं, वे क्या तुम्हारे कार्योंको भूल जायँगे? भगवान् अपने भक्तोका कार्य स्वय करते हैं। बेटा! अब तुम इन मरीचि आदि मुनिवराको इनके स्वभाव एव रुचिके अनुसार अपनी कन्याएँ समर्पित करो और ससारमे अपना यश फैलाओ।

छप्पय

प्रकट प्रभु परमेश! पितामहँ सुनि तहँ आये।
अत्रि-अङ्गिरा-पुलह-आदि नव ऋषि सँग आये॥
कर्दम निरख पिता यथाविधि स्वागत कीन्हा।
ऋषि सँग पूजा करी सबनिकूँ आसन दीन्हों॥
कराहु ब्याह तनयानिके, विधि बोले इन ऋषिनितें।
कपिल रूप धरि पुत्र बनि, हरि आये निज बरनितें॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजी महामुनि कर्दमजीके साथ देवहूतिके भवनमें गये और बोले—अरी बेटी! जो मेरे तथा सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं, वे ही जब आकर तेरे पुत्र बन गये तब तू जगन्माता बन गयी। देखो ये किसीके पुत्र नहीं हैं साक्षात् वैकुण्ठाधिपति श्रीहरि हैं। तू देखती नहीं, इनके केश कैसे नील वर्णके हैं! कमलके समान खिले हुए सुन्दर विशाल नेत्र वज्र-अङ्कुश-ध्वजादि चिह्नोंसे चिह्नित छोटे-छोटे नवीन पापलके पत्तेके समान कोमल चरण — ये सब भगवान्के चिह्न हैं। ये शास्त्र-ज्ञान और अनुभव-ज्ञानके द्वारा सभीके संशयोंका मूलोच्छेद करेंगे।

बेटी! सर्वप्रथम ये तुमको ही उपदेश देकर संसार-सागरसे पार करेंगे ये सिद्धगणोंके अधीश्वर और सांख्याचार्योंके स्वामी होंगे। तेरी कीर्तिको ये अमर बनायेंगे। तुम दोनोंने तपस्या और वैराग्यके द्वारा इन्हें प्रकट किया है अतः ये स्वेच्छा-विहारीके रूपमें विचरेंगे।

इनके अनन्त नाम हैं। असंख्य नामोंसे ये पुकारे जाते हैं फिर भी संसारमें ये 'कपिल'—इस नामसे प्रसिद्ध होंगे और तेरे यशको संसारमें विख्यात करेंगे।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार [illegible] भगवान् ब्रह्मा दोनों पति-पत्नीको समझाकर भलीभाँति आश्वासन देकर अपने हंसपर आरूढ़ हो ब्रह्मलोकको चले गये। [illegible]

आनन्दपूर्वक अपने-अपने आश्रमोंको चले गये।

इधर महामुनि कर्दमने भगवान् कपिलकी स्तुति की और उनसे सन्यासधर्मकी आज्ञा प्राप्तकर वे वनकी ओर चले गये और प्रभुके शरणागत हो गये। इस प्रकार भगवद्भक्तिसे सम्पन्न हो श्रीकर्दमजीने भगवान्का परमपद प्राप्त कर लिया। माताका प्रिय करनेके लिये भगवान् कपिलने विस्तारसे सांख्ययोगका तत्त्वोपदेश किया और भक्तिमार्गकी महिमा बतलायी तथा उपदेशके साररूपमें बतलाया कि संसारमें मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाय—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम्॥
(श्रीमद्भा० ३।२५।४४)

भगवान्में मन कैसे लगे—ऐसा माता देवहूतिके प्रश्न करनेपर भगवान् कपिलजीने बहुत ही सुन्दर बात बतायी जो

यह हो मनुष्य और कामका नाश है। भगवान् बोले— निष्कामभावसे श्रद्धापूर्वक अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका [illegible]

करनेवाले भक्त पुरुषका चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणोके श्रवणमात्रसे अनायास ही मुझमे लग जाता है—

निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा।
क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यश ॥
मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनै ।
भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासङ्गमेन च॥
महता बहुमानेन दीनानामनुकम्पया।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च॥
आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसङ्कीर्तनाच्च मे।
आर्जवेनार्यसङ्गेन निरहङ्क्रियया तथा॥
मद्धर्मणो गुणैरेतै परिसशुद्ध आशय ।
पुरुषस्याञ्जसाभ्येति श्रुतमात्रगुण हि माम्॥

(श्रीमद्भा० ३। २९। १५—१९)

[प्रेषक—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय]

~~○~~

अवतारकी सार्थकता और उसका रहस्य

[श्रीमाँ एव श्रीअरविन्दके विचार]

'अवतार' शब्दका अर्थ है उतरना। यह भगवान्‌का उस रेखाके नीचे उतर आना है, जो भगवान्‌को मानव-जगत् या मानव-अवस्थासे पृथक् करती है। (श्रीअरविन्द)

किसी निश्चित उद्देश्यके लिये पार्थिव शरीरमे अभिव्यक्त परम पुरुष अवतार है। परात्पर 'सत्य' का पृथ्वीपर साकारमूर्ति-होना अवतार है।

जब 'परात्पर भगवान्' किसी विशेष कारणसे पृथ्वीपर अभिव्यक्त होनेका निर्णय करते हैं और एक पार्थिव शरीर ग्रहण करते हैं तो यह कहा जाता है कि वह अवतार है। वे आवश्यकताओ और परिस्थितियोके अनुसार क्रमश अनेक शरीर धारण कर सकते हैं, पर सर्वदा ही वहाँ वह चीज रहती है जिसे 'केन्द्रीय सत्ता' कह सकते हैं जो कि पार्थिव शरीर ग्रहण करती है। बस, उसे ही अवतार कहा जाता है। (श्रीमाँ)

अवतार वह है, जो मनुष्य जातिके लिये किसी उच्चतर चेतनातक पहुँचनेका मार्ग खोल देता है। अवतारमे एक विशेष अभिव्यक्ति होती है। यह दिव्य जन्म ऊपरसे होता है, सनातन विश्वव्यापक विश्वेश्वर व्यष्टिगत मानवताके एक आकारमे उतर आते हैं—'आत्मान सृजामि' और वे केवल परदेके अदर ही अपने स्वरूपसे सचेतन नहीं रहते, बल्कि बाह्य प्रकृतिमे भी उन्हे अपने स्वरूपका ज्ञान रहता है। (श्रीअरविन्द)

सामान्य मानव-जन्ममे मानव रूप धारण करनेवाले जगदात्मा जगदीश्वरका प्रकृतिभाव ही मुख्य होता है, अवतारके मनुष्य-जन्ममे उनका ईश्वरभाव प्रकट होता है। एकमे ईश्वर मानव-प्रकृतिको अपनी आशिक सत्तापर अधिकार और शासन करने देते हैं और दूसरेमे वे अपनी अशसत्ता और उसकी प्रकृतिको अपने अधिकारमे लेकर उसपर शासन करते हैं। उन्हे मानवरूप और मानवचेतना धारण करनी पडती है ताकि वे उनके साथ सम्पर्क स्थापित कर सके। उन्होने उनकी चेतना अपना तो ली है, लेकिन उनका सम्बन्ध अपनी वास्तविक परम चेतनाके साथ बना रहता है। लेकिन अगर वे मानवचेतनाको न अपनाते, अगर वे उनके दु खमे दु खी न होते तो वे उनकी सहायता न कर पाते। उनका दु ख अज्ञानका दु ख नहीं है, तादात्म्यका दु ख है। यह इसलिये है कि उन्होने वे ही स्पन्दन स्वीकार किये हैं ताकि वे उनके सम्पर्कमे आ सके और उन्हे अपनी वर्तमान स्थितिसे बाहर निकाल सके, पूर्ण चेतना, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शक्तिका त्याग करके बाह्य जगत्‌के अज्ञानको स्वीकार करना ताकि उसे अज्ञानमेसे निकाल सके। (श्रीअरविन्द)

गीता हमे बतलाती है कि साधारण मनुष्य जिस प्रकार विकासको प्राप्त होता हुआ या ऊपर उठता हुआ भागवत-जन्मको प्राप्त होता है, उसका नाम अवतार नहीं है, बल्कि भगवान् जब मानवताके अदर प्रत्यक्ष रूपमे उतर आते हैं और मनुष्यके ढाँचेको पहन लेते हैं तब वह अवतार कहलाता है। (श्रीअरविन्द)

अवतारका उद्देश्य—'अवतार' का मुख्य उद्देश्य मनुष्यके आगे यह ठोस रूपसे प्रमाणित करना है कि भगवान् धरतीपर प्रकट हो सकते हैं। (**श्रीमाँ**)

अवतार उस समय आवश्यक होता है जब कोई विशेष कार्य करना होता है और विकास-क्रमम सङ्कटकाल उपस्थित होता है। अवतार एक विशिष्ट अभिव्यक्ति है, जबकि बाकी समय भगवान् साधारण मनुष्यकी सीमाओके अधीन विभूतिके रूपम कार्य करते है। (**श्रीअरविन्द**)

गीताम भगवान्ने अवतारके स्वरूप और हेतुका सक्षेपम वर्णन करते हुए कहा है—'हे अर्जुन मरे और तेरे बहुत-से जन्म बीत चुके हैं मैं उन सबको जानता हूँ, पर तू नहीं जानता। हे परतप मैं अपनी सत्तासे यद्यपि अज और अविनाशी हूँ, सब भूताका स्वामी हूँ, तो भी अपनी प्रकृतिको अपने अधीन रखकर आत्ममायासे जन्म लिया करता हूँ।' यहाँपर भगवान् अपने शब्दासे यह स्पष्ट कर देत हैं कि वे ग्रहणशील मानव प्राणीम उतर आनेकी बात नहीं कर रहे हैं बल्कि भगवान्के ही बहुत-से जन्म ग्रहण करनेकी बात कह रहे हैं क्याकि यहाँ वे ठीक सृष्टिकर्ताकी भाषामे बोल रहे हैं। यहाँ ईश्वर और मानव-जीव या पिता या पुत्रकी, दिव्य मनुष्यकी कोई बात नहीं है, बल्कि केवल भगवान् और उनकी प्रकृतिकी बात है। भगवान् अपनी ही प्रकृतिके द्वारा मानव-आकार ओर प्रकारमे उतरकर जन्म लेते हैं और यद्यपि वे स्वेच्छासे मनुष्यके आकार प्रकार और साँचेके अदर रहकर कार्य करना स्वीकार करते हैं तो भी उसके अदर भागवत-चेतना और भागवत-शक्तिको ले आते हैं और शरीरके अदर प्रकृतिके कर्मोका नियमन वे उसकी अन्त स्थित और ऊर्ध्वस्थित आत्मा रूपसे करते हैं—'**प्रकृति स्वामधिष्ठाय**।' ऊपरसे वे सदा ही शासन करत हैं क्याकि इसी तरह वे समस्त प्रकृतिका शासन चलाते हैं और मनुष्य-प्रकृति भी इसके अन्तगत है, अदरसे भी वे स्वय छिप रहकर समस्त प्रकृतिका शासन करते हैं। अन्तर यह है कि अवतारमे वे अभिव्यक्त रहत हैं, प्रकृतिके ईश्वर-रूपमे भगवान्की सत्ताका—अन्तर्यामीका सचेतन ज्ञान रहता है। यहाँ प्रकृतिका सचालन ऊपरस उनकी गुप्त इच्छाके द्वारा (स्वर्गस्थ पिताकी प्ररणाके द्वारा) नहीं होता बल्कि भगवान् अपने प्रत्यक्ष प्रकट-सङ्कल्पस ही प्रकृतिका सचालन करते हैं।

यह सिद्धान्त बडा विलक्षण है, मनुष्यकी बुद्धिके लिये इसे ग्रहण कर लेना दुष्कर है, इसका कारण भी स्पष्ट है—अवतार स्पष्ट रूपसे मनुष्य-जैसे ही होते हैं। अगर भगवान् मूलत सर्वशक्तिमान् न होते तो वे कहीं भी सर्वशक्तिमान् न हो पाते—चाहे अतिमानसिक लोकमे हो अथवा अन्य किसी भी लोकमे। चूँकि वे अपने कार्यको अवस्थाआके द्वारा सीमित करना या निर्धारित करना पसद करते हैं इसलिये उनकी सर्वशक्तिमत्ता कम नहीं हो जाती। स्वय उनका आत्मसीमन भी सर्वशक्तिमत्ताका ही एक कार्य है। यह ठीक ही है कि भगवान्के तरीके या उद्देश्यके विषयमे निर्णय करना सीमित मानव-बुद्धिके लिये असम्भव है।

भगवान् एक दूसरी ही चेतनाके अनुसार कार्य करते हैं वह चेतना है ऊपरके सत्यकी और नीचेकी लीलाकी। वे लीलाकी आवश्यकताके अनुसार कार्य करते हैं उन्ह क्या करना चाहिये या क्या नहीं—इस विषयमे मनुष्यके विचाराके अनुसार वे कार्य नहीं करते। यह पहली बात है, जिसे मनुष्यको समझ लेना चाहिये अन्यथा वह भगवान्की अभिव्यक्तिके विषयमे कुछ भी नहीं समझ सकता।

दिव्य जन्मक दो पहलू होते हैं—एक है अवतरण अर्थात् मानव-जातिमे भगवान्का जन्म-ग्रहण। मानव-आकृति और प्रकृतिम भगवान्का प्राकट्य—यही सनातन अवतार है। दूसरा है आरोहण अर्थात् भगवान्के भावमे मनुष्यका जन्मग्रहण। भागवत-प्रकृति और भागवत-चैतन्यमे उसका उत्थान—'**मद्भावमागता** '। यह जीवका नव जन्म आत्मामे द्वितीय जन्म है। भगवान्का अवतार लेना और धर्मका सस्थापन करना इसी नव जन्मके लिये होता है।

अवतारतत्त्वसम्बन्धी गीताका जो सिद्धान्त है, उसके सम्पूर्ण अर्थको समझनेके लिये अवतारके इस द्विविध पहलूको जान लना आवश्यक है। इसके बिना अवतारकी भावना मात्र भावना ही रह जायगी। अवतारका आगमन मानव-प्रकृतिमे भागवत-प्रकृतिको प्रकट करनेके लिये होता है। अवतारका दूसरा और वास्तविक उद्देश्य ही गीताके समग्र-प्रतिपादनका विषय है।

मानव-प्राणीके रूपमें भगवान्के प्राकट्यकी सम्भावनाको दृष्टान्तरूपसे सामने रखनेके लिये अवतार होता है, ताकि मनुष्य देखे कि यह क्या है और उसमे इस बातका साहस

हो कि वह अपने जीवनको उसके जैसा बना सके। यह इसलिये भी होता है कि पार्थिव प्रकृतिकी नसाम इस प्राकट्यका प्रभाव बहता रहे। यह जन्म मनुष्यको दिव्य मानवताका एक ऐसा आध्यात्मिक साँचा प्रदान करनेके लिये होता है जिसम मनुष्यकी जिज्ञासु अन्तरात्मा अपने-आपको ढाल सके। यह जन्म एक धम देनेक लिये—कोई सम्प्रदाय या मतविशेष मात्र नहीं, बल्कि आन्तरिक और बाह्य जीवन-यापनकी प्रणाली—आत्म-सस्कारक मार्ग, नियम और विधान दनेके लिये होता है, जिसके द्वारा मनुष्य दिव्यताकी ओर बढ सके। चूँकि मनुष्यका इस प्रकार आगे बढना इस प्रकार आरोहण करना मात्र पृथक् और वैयक्तिक व्यापार नहीं हे, बल्कि भगवान्‌के समस्त जगत्-कर्मकी तरह एक सामूहिक व्यापार है, मानवमात्रके लिये किया गया कर्म है। इसलिये अवतारका आना मानव-यात्राकी सहायताके लिये, महान् सकटकालके समय मानव-जातिको एक साथ रखनक लिये, अधोगामी शक्तियाँ जब बहुत अधिक बढ जायँ तो उन्ह चूर्ण-विचूर्ण करनेके लिये, मनुष्यक अदर जो भगवन्मुखी महान् धर्म है, उसकी स्थापना या रक्षा करनेक लिये, भगवान्‌के साम्राज्यकी (फिर चाहे वह कितना ही दूर क्यो न हो) प्रतिष्ठाक लिय प्रकाश और पूर्णताके साधकाको विजय दिलानेक लिय और जा अशुभ और अन्धकारका जारी रखनेके लिये युद्ध करते हैं उनक विनाशके लिये हाता है। अवतारके ये हेतु सर्वमान्य हैं और उनके इन कर्मोंको देखकर ही जनसमुदाय उन्ह विशिष्ट पुरुप जानता है और पूजनको तैयार हाता है।

इसलिय गीताकी भापासे यह स्पष्ट होता है कि दिव्य जन्मम भगवान् अपनी अनन्त चतनाके साथ मानव-जातिम जन्म लेत हैं और यह मूलत सामान्य जन्मका उलटा प्रकार है—यद्यपि जन्मके साधन वे ही हैं जो सामान्य जन्मके होते हैं—क्याकि यह अज्ञानमे जन्म लेना नहीं, बल्कि यह ज्ञानका जन्म है काई भौतिक घटना नहीं बल्कि यह आत्माका जन्म है। यह आत्माका स्वत स्थित पुरुपरूपसे जन्मक अदर आना है, अपने भूतभावका सचेतन रूपस नियन्त्रित करना हे अज्ञानके बादलम अपने-आपको खो देना नहीं, यह पुरुपका प्रकृतिके प्रभु-रूपसे शरीरमे जन्म लेना है। यहाँ प्रभु अपनी प्रकृतिके ऊपर खडे स्वेच्छास स्वच्छन्दतापूर्वक उसके अदर कार्य करते हैं उसके अधीन होकर, बेवस भवचक्ररूपी यन्त्रम फँसे भटकते नहीं रहते क्याकि उनका कर्म ज्ञानकृत होता है, सामान्य प्राणियाका-सा अज्ञानकृत नहीं।

इसलिये अवतारका अर्थ है—भागवतपुरुष 'श्रीकृष्ण' का पुरुपके दिव्य भावको मानवताके अदर प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट करना। यह ऊपरसे उसी तत्त्वका नीचे आकर आविर्भूत होना है, जिसे हमे नीचेसे ऊपर चढा ले जाना हे, यह मानव सत्ताके उस दिव्य जन्मम भगवान्‌का अवतरण हे, जिसम हम मर्त्य प्राणियोको आरोहण करना है, यह मानव प्राणीके सम्मुख, मनुष्यके ही आकार और प्रकारके अदर तथा मानव-जीवनके सिद्ध आदर्श नमूनेके अदर, भगवान्‌का एक आकर्षक दिव्य उदाहरण है। (श्रीअरविन्द)

भागवत-अवतारोका रहस्य—यदि तुम काफी ऊँचे उठ सको तो तुम समस्त वस्तुआके हृदयमे पहुँच जाते हो और जो कुछ इस हृदयम अभिव्यक्त होता है, वह सब वस्तुओमे भी व्यक्त हो सकता है। यही वह महान् रहस्य है—व्यक्तिके रूपम भगवान्‌के अवतरणका रहस्य हे। क्याकि साधारणतया जो कुछ सत्ताके केन्द्रमे अभिव्यक्त होता है, वह बाह्य रूपमे तभी अभिव्यक्त हो पाता है जब व्यक्तिमे सङ्कल्प-शक्ति जाग उठती है और कन्द्रको प्रत्युत्तर देती है। उधर, यदि केन्द्रीय सङ्कल्प एक व्यक्तिमे सतत और स्थायी रूपसे प्रकट होता है तो वह व्यक्ति इस सङ्कल्प ओर दूसरे व्यक्तियाके बीच मध्यस्थका काम कर सकता है और उनके लिये भी स्वय ही सङ्कल्प कर सकता है। यह व्यक्ति जो कुछ अनुभव करता है ओर अपनी चेतनामे परम सङ्कल्पको सर्मर्पित करता है, वह सब इस प्रकार प्रत्युत्तरित होता है मानो कि वह प्रत्यक व्यक्तिसे आया हो और यदि वैयक्तिक तत्त्वाका किसी-न-किसी कारणसे उस प्रतिनिधि सत्ताके साथ थोडा बहुत चेतन या ऐच्छिक सम्पर्क हो तो उनका यह सम्पर्क प्रतिनिधि सत्ताकी मार्थकता और प्रभावशीलताको बढा देगा। इस प्रकार जड-पदार्थमे परम क्रिया अधिक मूर्त और स्थायी रूपमे कार्य कर सकती है।

यही चेतनाके इन अवरोहणो (जिन्ह हम केन्द्रीकृत चतना भी कह सकते हैं)-का सच्चा हेतु है, क्याकि ये पृथ्वीपर सदा किसी निश्चित उद्देश्य और एक विशेप सिद्धि तथा एक ऐसे कार्यके लिये आते हैं, जा कि अवताराके आनेसे पूर्व ही नियत और सुनिश्चित किया जा चुका हाता है। ऐसे अवरोहण ही पृथ्वीपर परम अवताराके महान् पडाव हाते हैं। (श्रीमाँ)

[श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र]

शङ्करावतार भगवान् श्रीशङ्कराचार्य

(महामहोपाध्याय प० श्रीगोपीनाथजी कविराज)

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीमद्भगवद्गीताम अर्जुनको उपदेश देनेके वहाने अपने श्रीमुखसे यह प्रतिपादन किया है कि जब-जब दशम धर्मका ह्रास और अधर्मकी अभिवृद्धि होती है एव जब-जब किसी भी कारणसे धर्मराज्यमे उच्छृङ्खलता तथा वैषम्य आदिका आविर्भाव होता है तब-तब मैं अपनी मायाका अवलम्बन कर धर्मसस्थापनके लिये जगत्मे आविर्भूत होता हूँ।[१] जन्ममृत्युरहित प्राकृतसम्बन्धविवर्जित सर्वभूताके अन्तर्यामी परमात्मा केवल जगत्के कल्याणके लिये देश तथा कालके उपयोगी शरीरको धारण करते हैं, क्योकि स्थूल जगत्म स्थूलभावसे कार्य करनेके लिये स्थूल रूपका परिग्रह आवश्यक हाता है। अनन्त शक्तियाके परमाश्रयस्वरूप परमेश्वर प्रयोजनके अनुसार तत्-तत् शक्तियाको अभिव्यक्त करनेके लिय स्वेच्छासे तद्योग्य शरीरका ग्रहण किया करते हैं।

जिस समय भगवान् श्रीशङ्कराचार्य आविर्भूत हुए थे उस समय देशम सद्धर्मका अनुष्ठान प्राय लुप्त हो गया था। केवल इतना ही नहीं उसका स्वरूपज्ञान भी उच्चकोटिके इने-गिन महापुरुषाम ही सीमित रह गया था। परमात्माकी ज्ञानशक्तिने ही उस अज्ञानप्रधान समयम श्रीशङ्कराचार्यके रूपम प्रकट हाकर दशव्यापक अज्ञानान्धकारको दूर कर देशके एक कानेस दूसरे कोनतक वैदिक धर्म-कर्मका एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर दिया था। 'शङ्कर शङ्कर साक्षात्' इत्यादि वचनाके अनुसार शङ्कराचार्य लोकगुरु भगवान् शङ्करके अवतार थे, यह सर्वत्र प्रसिद्ध ही है।[२]

कुछ लोगाको यह सदेह हो सकता है कि भगवान् शङ्कराचार्यने आविर्भूत होकर ऐसा कौन-सा अभिनव सिद्धान्त प्रकट किया या धर्मका प्रचार किया जिससे यह प्रतीत हो सके कि उन्हाने जगत्का अवतारोचित अभूतपूर्व तथा लोकात्तर कल्याण किया था? वस्तुत अद्वैतवाद अनादिकालसे ही तत्-तत् अधिकारियाके अन्दर प्रसिद्ध था फिर उन्हाने प्रस्थानत्रयपर भाष्यका निर्माण कर अथवा अपने आर किसी व्यापारसे कौन-सा विशष कार्य सिद्ध किया?

इस शङ्काका समाधान यह है कि यद्यपि अधिकारके भेदके अनुसार अद्वैत, द्वैत आदि मत अनादिकालसे ही प्रसिद्ध हैं तथापि विशुद्ध ब्रह्माद्वैतवाद अवैदिक दार्शनिक सम्प्रदायक आविर्भावसे एक प्रकारसे लुप्त-सा हो गया था। योगाचार तथा माध्यमिक सम्प्रदायमे एव किसी-

---

१ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥ (४।७)

२ (क) कलौ रुद्रो महादेवो लाकानामाश्वर पर ।
करिष्यत्यवताराणि शङ्करो नीललाहित । श्रौतस्मार्तप्रतिष्ठार्थं भक्ताना हितकाम्यया॥
उपदक्ष्यति तज्ज्ञान शिष्याणा ब्रह्मसज्ञितम्। सर्ववदान्तसार हि धर्मान् वेदनिदर्शितान्॥
ये त विप्रा नियवन्ते येन कनापचारत । विजित्य कलिजान् दापान् यान्ति ते परम पदम्॥ (कूर्मपुराण १।२८।३२—३५)

(ख) चतुर्भि सह शिष्यैस्तु शङ्कराऽवतरिष्यति। (शिवपुराण)

(ग) दुराचारविनाशाय प्रादुर्भूतो महातले। स एव शङ्कराचार्य साक्षात् कैवल्यनायक ॥

किसी तान्त्रिक सम्प्रदायमे अद्वेतवादके नामसे जिस सिद्धान्तका प्रचार हुआ था, वह विशुद्ध औपनिषद ब्रह्मवादसे अत्यन्त भिन्न है। वैदिक धर्मके प्रचार तथा प्रभावके मन्द हो जानेसे समाज प्राय श्रुतिसम्मत विशुद्ध ब्रह्मवादको भूलकर अवैदिक सम्प्रदायाद्वारा प्रचारित अद्वैतवादको ग्रहण करने लगा था। हीनयान तथा महायानके अन्तर्भूत अष्टादश सम्प्रदाय, शैव, पाशुपत, कापालिक, कालामुख आदि माहेश्वरसम्प्रदाय, पाञ्चरात्र, भागवत आदि वैष्णवसम्प्रदाय तथा गाणपत्य, सौर आदि विभिन्न धर्मसम्प्रदाय भारतवर्षके विभिन्न देशामे फैल गये थे। स्थानविशेषम आर्हत सम्प्रदायका प्रभाव भी कम न था। देशके खण्ड-खण्डमे विभक्त होनेके कारण तथा मनुष्योकी रुचि और प्रवृत्तिमे विकार आ जानेके कारण श्रौतधर्मनिष्ठ एव श्रौतधर्मसरक्षक सार्वभौम चक्रवर्ती राजा भी कोई नहीं रह गया था, जिसके प्रभाव तथा आदर्शसे जनसमुदाय शुद्ध धर्मके अनुष्ठानमे प्रवृत्त हो सकता।

ऐसी परिस्थितिमे भगवान् श्रीशङ्कराचार्यने अपने ग्रन्थोम वेदानुमत निर्विशेष अद्वैत वस्तुका शास्त्र तथा युक्तिके बलसे दृढतापूर्वक प्रतिपादन कर केवल विविध द्वैतवादाका ही नहीं, अपितु भ्रान्त अद्वैतवादका भी खण्डन ही किया है। शुद्ध वैदिक ज्ञानमार्गका अन्वषण करनेवाले विरक्त, जिज्ञासु मुमुक्षु पुरुषाके लिय यही सर्वप्रधान उपकार माना जा सकता है, क्याकि भगवान् शङ्कर-जैसे लोकोत्तर धीशक्तिसम्पन्न पुरुषका छोडकर दूसरे किसीके लिये तत्कालीन दार्शनिकोके युक्तिजालका खण्डन करना सरल नहीं था। केवल इतना ही नहीं, अद्वैतसिद्धान्तका अपराक्षतया स्वानुभव करके जगत्म उसके प्रचारके लिये तत्-तत् देश और कालके अनुसार मठादिस्थापनद्वारा ज्ञानोपदेशका स्थायी प्रवन्ध करना भी साधारण मनुष्यका कार्य नहीं था।

पारमार्थिक, व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक भेदसे सत्ताभेदकी कल्पना करक भगवान् श्रीशङ्कराचार्यने एक विशाल समन्वयका मार्ग खाल दिया था। वह अपने-अपने अधिकारके अनुसार वेदमार्गरत निष्ठावान् साधकके लिये परम हितकारी ही हुआ, क्योकि व्यवहारभूमिमे अनुभवके अनुसार द्वैतवादको अङ्गीकार करते हुए और तदनुरूप आचार, अनुष्ठान आदिका उपदेश देते हुए भगवान्ने दिखाया है कि वस्तुत वेदान्तोपदिष्ट अद्वैतभावसे शास्त्रानुमत द्वैतभावका विरोध नहीं है, क्याकि शुद्ध ब्रह्मज्ञानके उदयसे सस्कार या वासनाकी निवृत्ति, विविध प्रकारके कर्मोकी निवृत्ति तथा चित्तका उपशम हो जानेपर अखिल द्वैतभावाका एक परमाद्वैतभावमे ही पर्यवसान हो जाता है, परतु जबतक इस प्रकार परा ब्रह्मविद्याका उदय न हो तब तक द्वैतभावको मिथ्या कहकर द्वैतभावमूलक शास्त्रविहित उपासना आदिका त्याग करना उनके सिद्धान्तके विरुद्ध है, क्याकि जो अनधिकारी है अर्थात् जिसको आत्मानात्म-विवेक नहीं हुआ है, जिसके चित्तम पूर्णरूपसे वैराग्यका उदय नहीं हुआ है, जो साधनसम्पन्न नहीं है और जिसम मुक्तिकी इच्छातक उदित नहीं हुई है, उसके लिये वेदान्तज्ञानका अधिकारतक नहीं है। कर्मसे शुद्धचित्त होकर उपासनामे तत्पर होनेसे धीरे-धीरे ज्ञानकी इच्छा तथा उसका अधिकार उत्पन्न हो जाता है। अतएव व्यवहारभूमिमे अपने-अपने प्राक्तन सस्काराके अनुसार जो जिस प्रकार द्वैत अधिकारम रहता है, उसके लिय वही ठीक है। भगवान् श्रीशङ्कराचार्यजीका कहना यही हे कि वह शास्त्रसम्मत होना चाहिये, क्याकि उच्छास्त्रित (शास्त्रविपरीत) पौरुषसे उन्नतिकी आशा नहीं है।

वर्णाश्रमधर्मका लोप होनेसे समाजम धर्मविपर्यय अवश्यम्भावी है। भगवान् श्रीशङ्कराचार्यका सिद्धान्त हे कि वर्णाश्रमधर्मका सरक्षण करना ही परमेश्वरका नररूपम अवतीर्ण होनेका मुख्य प्रयाजन है। भगवान् श्रीशङ्कराचार्यक जीवनचरित, शिष्याके प्रति उनक उपदश तथा ग्रन्थ आदिके पयालोचनसे प्रतीत हाता है कि उन्हान स्वय भी वर्णाश्रमधर्मका उपकार करनके लिय ही समग्र जीवन एव आत्मशक्तिका प्रयाग किया था यह उनक अवतारत्वका ही द्यातक हे। ये शङ्कररूपी शङ्करावतार वैदिकधर्मसस्थापक परमज्ञानमूर्ति प्रज्ञा तथा करुणाके विग्रहस्वरूप महापुरुष वैदिकधर्मावलम्बी मनुष्यमात्रक लिय सवदा प्रणम्य हैं।

अवतारतत्त्व

[श्रीश्री माँ आनन्दमयीके विचार]

भारतकी महान् आध्यात्मिक विभूतियोमे श्रीश्री माँ आनन्दमयीका नाम अन्यतम है। माँ आनन्दमयीकी एकनिष्ठ सेविका एव उनकी प्रतिदिनकी दिनचर्याको अपनी दैनन्दिनीमे आबद्ध कर 'श्रीश्री माँ आनन्दमयी' नामक पुस्तककी लेखिका ब्रह्मचारिणी गुरुप्रिया देवीने श्रीश्री माँके मुखारविन्दसे नि सृत अवतारतत्त्वसे सम्बन्धित वचनाको निम्र प्रकारसे लिपिबद्ध किया है—

माँने कहा—'एक दृष्टिसे देखा जाय तो सभी लाग अवतार हैं। यदि यह बात छोड भी द तो किस स्थानसे अवतरण हागा? इसके उत्तरमे कहा जाता है—निर्गुण और सगुणका प्रकाश अर्थात् सगुण और निर्गुणका एक साथ प्रकाश ही अवतार है। जैसे—पेडका अङ्कुर, उस अङ्कुरसे पेड पौधा हाता है, परतु अङ्कुरकी अवस्थाम वृक्षका रग और प्रकृति नहीं मालूम होती, माटीके साथ मिलकर रहनेसे ही बीजस अङ्कुर उत्पन्न होता है और क्रमश उसीसे पेड-पोधे, फल-फूल निकलते हैं—ऐसे ही सगुण और निर्गुण दोना भावाके एक साथ प्रकाशसे ही अवतार होता है। इसलिये अवतारम दोनो भावाकी लीला दिखायी पडती है और भी देखो—समुद्रके ऊपरका अश कितना तरङ्गमय हे, परतु भीतरके अशमे कोई तरङ्ग नहीं है, वहाँ जल स्थिर, धीर एव शान्त है। उसी प्रकार अवतारम चल और अचल, दोनो भावोकी लीला होती है।'

[प्रेषिका—ब्रह्मचारिणी गुणीता 'विद्यावारिधि' वेदान्ताचार्य]

अवतार-ग्रहणकी प्रक्रिया

[ईश्वरका जन्म कैसे ?]

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)

जन्म तो जैसे जीवका होता है, वैसे ही ईश्वरका होता है। पर, जीवके जन्ममे अविद्या काम और कर्म हेतु होते हैं और ईश्वरके जन्ममे अविद्या काम और कर्म हेतु नहीं हाते। तुम साक्षी, द्रष्टा, निराकारी होकर देहधारी बने हुए हो—अगर यह बात तुम्हारी समझम आती हो तो ईश्वरका जन्म लेना क्यो समझमे नहीं आता? और यदि तुम्ह जीवका स्वरूप ही समझम नहीं आता और जीवका जन्म समझम नहीं आता तो ईश्वरका जन्म समझमे आना शक्य नहीं है। जीवका स्वरूप बहुत विलक्षण है। जैसे ईश्वरके लिये गीताम 'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा' है, ऐसा ही जीवके लिय भी है—

न जायत म्रियते वा कदाचि-
न्नाय भूत्वा भविता वा न भूय ।
अजो नित्य शाश्वतोऽय पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीर॥
(२।२०)

वैष्णवाचार्योंके मतम भी यह वर्णन आत्मा (जावात्मा)-का ही है।'आत्मा' का न जन्म है न मरण है फिर भी अपनको जन्मन-मरनेवाला मानता है। क्या मानता है? अविद्यास। जीवात्मा अजन्मा है। यह जीवात्मा अव्यय भी है। 'अव्यय' शब्द तो गीताम ऐसा बढिया है कि यह परमपदको भी 'अव्यय' कहता है, यह आत्माको भी 'अव्यय' कहता है और यह जगत्‌का भी 'अव्यय' कहता है। आप लोग गीताका कभी गौर-से स्वाध्याय कर।

वेदाविनाशिन नित्य य एनमजमव्ययम्।
कथ स पुरुष पार्थ क घातयति हन्ति कम्॥
(२।२१)

'आत्मा' अव्यय है। इसको न जानना ही सारे अनर्थका मूल है। जान लिया तो? फिर वह भला किसको मारता है और किसक मारनेका विषय होता है। न यह किसीको मारता है और न ही इसको कोई मार सकता है। अपना आत्मा तो अव्यय है। यह बात तुम जानत हो तब भी तुम शरीरधारी हो कि नहीं हो? 'हैं।' अरे, तुम अव्यय होनेपर भी शरीरधारी हो। विचित्र है। 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे'—यह परमात्माका वर्णन नहीं है, यह आत्माका ही वर्णन है। शरीरके रहते हुए यह बात कही जा रही है। शरीरक मरनेपर परमात्माकी तो मृत्यु प्राप्त ही नहीं थी जा उसका निपेध किया जाता जीवात्माकी

मृत्युकी शका थी, सो उसीका निषेध किया गया कि शरीरके मरनेपर उसकी मृत्यु नहीं हाती। **'न जायते म्रियते'**—यह 'आत्मा' जन्म लेनेपर भी अजन्मा है—इसके शरीरधारी हानेपर भी इसके अज स्वरूपपर कोई अन्तर नहीं पडा है—केवल अविद्या है।

य एन वेत्ति हन्तार यश्चैन मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नाय हन्ति स हन्यते॥

(२।१९)

अच्छा, परमात्माको देखो। **'गच्छन्त्यमूढा पदमव्यय तत्'** (१५।५) **'ब्रह्म'** जो है वह अव्यय-पद है। ईश्वर भी 'अव्यय' है—**'बिभर्त्यव्यय ईश्वर '** (१५।१७) क्षर-अक्षरसे अतीत अव्यय है ईश्वर। अब देखो, यह प्रपञ्च भी अव्यय है—

ऊर्ध्वमूलमध शाखमश्वत्थ प्राहुरव्ययम्।
छन्दासि यस्य पर्णानि यस्त वेद स वेदवित्॥

(१५।१)

तो परमात्मा भी अव्यय, ईश्वर भी अव्यय, परमपद भी अव्यय, आत्मा भी अव्यय प्रपञ्च भी अव्यय। और, इसमे इतना बखेडा दिख रहा है—**'कि न पश्यसि ससार तत्रैवाज्ञानकल्पितम्।'** प्रपञ्चका जन्म-मरण भी बिना हुए ही दिख रहा है—यह गीताका सिद्धान्त है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभि ॥

(२।१६)

जा असत् है उसका भाव माने जन्म और तदुपलक्षित अभाव माने मृत्यु—ये दोना नहीं होते। और जो सद्-वस्तु है—उसका अभाव माने मृत्यु ओर तदुपलक्षित जन्म नहीं होते। न वन्ध्या-पुत्रका जन्म-मरण है और न ब्रह्मका जन्म-मरण है। तब यह जन्म-मरण है क्या? यह अनिर्वचनीय रूपसे दिखायी पड रहा है और तत्त्वदृष्टिसे नहीं है। जबतक तत्त्वज्ञान नहीं है तबतक सच्चा मालूम पड रहा है। यही प्रपञ्चकी स्थिति है।

तो जैसे प्रपञ्चका जन्म-मरण न होनेपर भी सन्मात्र-वस्तुमे जन्म-मरण दिखायी पड रहा है, जैसे जीवात्माका जन्म-मरण न होनेपर भी अविद्याके वशवर्ती होकर यह मालूम पडता है कि हमारा जन्म-मरण है जैसे परमपदमे जन्म-मरण न होनेपर भी मूढलोग जन्म-मरणकी कल्पना करते हैं—ठीक इसी प्रकार यह जो परमात्मा है—इसमे न जन्म है, न मरण परतु बिना अविद्याके, बिना कामनाके, बिना कर्म-फलके **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** यह महाराज, कभी प्रकट हो जाता है, कभी छिप जाता है। यदि हमारा पिता होकर पुत्रकी रक्षाके लिये न आये, यदि हमारा सखा होकर हमारी विपत्तिम काम न दे, यदि हमारा पति होकर हमारी रक्षाके लिये न आये, यदि हमारा स्वामी होकर सेवककी रक्षाके लिये न आय—तो ऐसे ईश्वरकी जरूरत ही क्या है? वह क्या ईश्वर है जो अन्यायके दमनके लिये स्वय न कूद पडे? वह क्या ईश्वर है जो किसीको सकटमे देखकर, करुणाके अधीन होकर स्वय रक्षाके लिये न आ जाय? तो उसके दयालुत्वकी दृष्टिसे, उसके न्यायकारित्वकी दृष्टिसे, स्वामित्वकी दृष्टिसे, पितृत्वकी दृष्टिसे, पतित्वकी दृष्टिसे ईश्वरका जन्म होता है परतु उसकी असगता, पूर्णतामे कभी किसी प्रकार बाधा पड ही नहीं सकती।

जिनके अपने मनम वासनाएँ बैठी हैं—वे सोचते हैं कि जैसे हम वासनाके अधीन होकर कर्म करते हैं, वैसे ही ईश्वर भी वासनाके वश होकर कर्म करता होगा। आपको, कहो तो फकीराकी एक बात सुनाते हैं—जो ईश्वरको भी वासनावान् समझते हैं—वह निगुरा है। भला, निगुरा होनेसे और ईश्वरकी वासनासे क्या सम्बन्ध है? इसका सम्बन्ध यह है कि इसका यदि कोई गुरु होता तो कम-से-कम वह यह मानता कि हम तो वासनाके अधीन होकर काम करते हैं और हमारे गुरु बिना वासनाके ही काम करते हैं। माने, मुक्त-पुरुषके व्यवहारको वह समझ सकता। जो बद्ध-पुरुष और मुक्त-पुरुषके व्यवहारको समझ सकता है, वह जीवके कर्म और ईश्वरके कर्ममे क्या भेद हो सकता है—यह भी समझ सकता है। उनका अभिप्राय यही है कि अगर तुम मुक्त-पुरुष और बद्ध-पुरुषके कर्ममे क्या भेद है—उसको समझ सकते तो ऐसा न साचते। श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीताम इसका भेद बताया हुआ है।

सूर्यको चलना पडता है, वह वासनाके वश होकर नहीं चलता। सूर्य तो भगवदवतार है। व्यष्टि-समूहको जा नेत्रसे देखनेके लिये प्रकाशकी आवश्यकता है—उसकी पूर्तिके लिये उनके प्रारब्धसे सूर्य-गोलकका निर्माण हुआ। जैसे व्यष्टिके प्रारब्धसे हमारे नेत्र-गोलकका निर्माण होता है, वैसे ही समष्टि-प्रारब्धसे सूर्य-गोलकका निर्माण होता है और ईश्वर भी

समष्टिकी उपाधिसे प्रकाश देता है वासनाके वशवर्ती होकर नहीं। जैसे परमात्मा सूर्यबिम्ब चन्द्रबिम्बको प्रकाशित करता है, ऐसे जीवन्मुक्त महापुरुष अखण्ड एकरस परमात्मासे एक होकर भी व्यष्टि-प्रारब्धजन्य शरीरको प्रकाशित करता रहता है, किंतु उसमे 'मैं' और 'मेरा'—उसकी दृष्टिमे नहीं होता।

अत ईश्वर अपने अजत्वको छोडे बिना ही, अपने अव्ययत्व—अविनाशित्वको छोडे बिना ही और जन्म तथा मरणके बीचमे जितने भाव-विकार हैं—'**जायते, अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति**'—इन सबका स्पर्श किये बिना ही ईश्वर भूताका ईश्वर होता है। आप लोग तो महाराज! जीव, ईश्वर, जगत्का विचार किये बिना ही बडी जल्दीसे सातवे आसमानपर पहुँच जाते हो न! कूटस्थ आत्मा बनकर बैठ गये तो जगत्का व्यवहार कैसे चलता है—इसको सिद्ध करनेकी जिम्मेवारी आपकी तो नहीं होती है न! यह वाङ्मयतागोचर ब्रह्म, प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न अद्वय ब्रह्म यह प्रपञ्च-व्यवहार कैसे चल रहा है—इसकी अनिर्वचनीयताको समझे बिना एक पक्ष अपने मनमे सोच लिया और बोले कि यह नहीं हो सकता—वह नहीं हो सकता! अरे, यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है! इस अनिर्वचनीय प्रपञ्चमे ऐसा क्या नहीं हो सकता?

'**भूतानामीश्वरोऽपि सन्**'—जीवका जन्म भूताके अधीन होता है वह मिट्टी, पानी अग्नि वायु और आकाशके अधीन है। परंतु ईश्वर भूताको अपने अधीन करके जन्म लेता है। एक ब्रह्माण्डके स्वामीको ईश्वर नहीं बोलते—ब्रह्माण्ड तो बच्चा है। ये जो पञ्चभूत हैं—पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश—इनमे तो कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नक्षत्र-तारे पैदा होते और मरते रहते हैं। पञ्चभूत बडी भारी चीज है और ब्रह्माण्ड तो बिलकुल छोटे-छोटे हैं। उन पञ्चभूता और उनके भी आदिकारण मायाके स्वामीका नाम 'ईश्वर' है। '*राम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड*'—जिसके रोम-रोममे ब्रह्माण्ड होता है वह ईश्वर है। अवतार लेकर भी पञ्चभूताका ईश्वर ही रहता है। अवतार लेकर भी अविनाशी ही रहता है। अवतार लेकर भी अजन्मा ही रहता है।

अब प्रश्न यह हुआ कि एक अनन्त, अद्वितीय प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परमात्म-तत्त्वसे पञ्चभूतकी सिद्धि कहाँसे होगी? तो देखो '**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया**'—**आत्ममायया स्वा प्रकृतिम् अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया सम्भवामि**। भगवान्की एक आत्ममाया है माने अपनी माया है स्वरूपभूता माया है। वह परब्रह्म परमात्मासे स्वदृष्टिसे जुदा नहीं है, अज्ञान-दृष्टिसे ही जुदा है। माने जहाँतक परब्रह्म परमात्मा अज्ञात है, वहाँतक अज्ञातताकी उपाधिसे ही वह माया पृथक् है। परमात्माके स्वरूपमे माया कोई दूसरी वस्तु नहीं है—अर्थात् कोई दूसरा खेल खेला नहीं गया है, जैसे कि एक जादूगर, स्वय अद्वैत रहता हुआ ही अपनेको अनेक रूपमे दिखा सकता है। चित्तसे यह सृष्टि नहीं बनी—जैसा कि बौद्धलोग कहते हैं। प्रकृतिसे यह सृष्टि नहीं बनी—जैसा कि साङ्ख्यलोग कहते हैं। परमाणुओसे यह सृष्टि नहीं बनी—जैसा कि न्यायवैशेषिकलोग कहते हैं। पुद्गलसे यह सृष्टि नहीं बनी—जैसा कि जैनलोग कहते हैं। तब फिर यह कैसे बनी?

वेदान्तियोका कहना है कि ईश्वरकी मायासे बनी—माने बनी नहीं जादूगरकी माया प्रतीत भर होती है। इसमे समझना यह है कि मायाका स्वभाव है—आश्रयको व्यामोहित न करना—जैसे जादूके खेलमे देखनेवाला तो उसको देखकर मोहित हो जाता है परंतु दिखानेवाला मोहित नहीं होता। उसी प्रकार मायाका यह स्वभाव ही है कि वह जिसकी होती है और जिसमे होती है उसको मोहित नहीं करती, लेकिन जो उसको देखता है, वह मोहित हो जाता है। इसी प्रकार अविद्याका स्वभाव यह है कि वह जिसमे रहती है, उसको भूलमे डालती है अर्थात् अविद्या अपने आश्रयको मोहित करता है। इसीलिये जीव अविद्याके वशवर्ती होकर जन्म लेता है—यह 'मैं', यह 'मेरा' यह प्रिय, यह अप्रिय—इस वासनाके वशवर्ती होकर कर्मके अधीन हो जाता है और कर्मका फल सुख-दु ख उसको भोगना पडता है। परंतु ईश्वर अविद्याके अधीन होकर जन्म नहीं लेता अपनी मायापर नियन्त्रण रखते हुए ही जन्म लेता है। इस सम्पूर्ण दृश्यादृश्य प्रपञ्चके कारणके रूपमे अज्ञान दशामे कल्पित जो माया है, वह अपने अधिष्ठान ब्रह्मको मोहित किये बिना ही इस प्रपञ्चको उसीमे दिखाती है।

यह जो परमेश्वर है—इसका अवतार कैसा? बोले—**आत्ममायया स्वा प्रकृतिम् अधिष्ठाय सम्भवामि।**

स्वदृष्टिसे स्वरूपभूता परंतु परदृष्टिसे आश्रयको व्यामुग्ध न करनेवाली परंतु उससे भिन्न सत्तावाली नहीं—फिर भी नाना रूपोको दिखानेवाली—जैसे कोई जादूका खेल दिखा

रहा हो—ऐसी इस मायासे यह अवतार सम्भव होता है।

देखो, तात्पर्यकी दृष्टिसे तो सब दर्शन एक ही बात बोलते हैं, परतु प्रक्रिया सबकी अलग-अलग होती है, तो प्रक्रियाकी दृष्टिसे जो त्रिगुणमयी प्रकृति है वह अद्वैत वेदान्तियाको मान्य नहीं है। अद्वैत-वदान्तम तो जो सन्मूला चिन्मूला, आनन्दमूला प्रकृति है—वह मान्य है। प्रकृति भी उनके यहाँ सच्चिदानन्दमयी है। इसका अर्थ है, सद्रूप रहते हुए—अविनाशी रहते हुए, चिद्रूप रहते हुए—अखण्डज्ञानस्वरूप रहत हुए और परमानन्दस्वरूप रहते हुए ही नाना प्रकारसे ईश्वरका अवतार होता है। सद्भावसे कुरुक्षेत्र आदि के युद्ध करत-करवाते हुए, चिद्भावसे अर्जुन और उद्धवको ज्ञानापदेश करते हुए और आनन्द-भावसे रासलीला आदि करते हुए वह ईश्वर ईश्वर ही रहता है। यह सब 'स्वामधिष्ठाय' म छिपा है। इसमे यह नहीं कि सद्भाव भगवान्‌को माह ल ओर वे कर्ममे इतने मुग्ध हो गये कि अब हम तुमको मारेगे ही। जीवन्मुक्त लोग भी मुग्ध नहीं होते हैं। यह नहीं कि चिद्भाव-ज्ञानक एक पक्षम आग्रह हा गया कि जो हम कहते हैं, सो ही ठीक है। सत्-पक्षम आकृतियाँ बनती हैं, चित्-पक्षमे प्रतीतियाँ बनती हैं ओर आनन्द-पक्षमे रसाल्लास होता है और जा रसाल्लास है—सो ही प्रतीति है और सो ही आकृति है। इसका अर्थ है कि परब्रह्म परमात्माम यह जितनी आकृति, विकृति, सस्कृति दिख रही हैं—य सब-की-सब चिन्मयी ओर आनन्दमयी हैं। इसी प्रकृतिका लकर भगवान्‌का अवतार होता है। आकार दीखते हुए भी वह सत्ता ही है। पृथक् प्रतीत होत हुए भी वह चिन्मात्र ही है। वह सुखाकार-दु खाकार वृत्तिवाला दीखते रहनेपर भी परमानन्द ही है। ऐसी अपनी सन्मयी, चिन्मयी, आनन्दमयी दिव्य-प्रकृतिको लेकर यह परमेश्वरका अवतार होता है। यदि यह न होता तो नास्तिक लोगोकी बाँछ खिल जातीं, महाराज! यह तो कभी ग्रन्थ-भेद करक ईश्वर कल्याण करता है और कभी सत-भेद करके ईश्वर कल्याण करता है, कभी स्वय आकर ईश्वर कल्याण करता हे और ऐसा मायाका चोगा ओढकर आता है कि अभक्त लोग तो पहचान ही न पावे और जो उसके प्रेमी हैं, जिज्ञासु हैं—वे उसको पहचान ले। अब पूछो कि क्यो ? ता देखो, जीवके साथ ही 'क्यो' का प्रश्न जुडता हे, क्याकि किसी कारणसे किसी प्रयोजनसे ही जीव कर्म करता है। परतु, ईश्वरक प्रति कारणता और प्रयोजनवत्ता जीवकी दृष्टिसे होती है ईश्वरकी स्वदृष्टिसे नहीं, क्याकि वह पूर्ण है अथवा कहो कि उसका ऐसा स्वभाव ही है।

~~~o~~~

अवतारवादका दिव्य-रहस्य

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीशिवानन्दसरस्वतीजी महाराज)

अवतरणका नियम

ईश्वरके अवतार लेनेका नियम सर्वत्र तथा सब युगोंम एक ही रहा है। भगवान्‌का अवतरण मानवके आरोहणके लिये होता है। घोर आपत्तिसे जगत्‌की रक्षा दुष्टाका सहार तथा धर्मकी पुन स्थापना ही प्रत्येक अवतारका प्रयोजन होता है।

भगवान्‌का मानवरूपमे इस धरापर अवतीर्ण होना ही अवतार कहलाता है।

जीवन्मुक्त तथा अवतारमे अन्तर

सामान्यत एक जीवन्मुक्त रात्रिम चमकते हुए नक्षत्रकी भाँति है। उसका प्रकाश सीमित होता ह। तप और साधनाद्वारा वह भवसागरसे पार हो जाता है, किंतु दूसराका उद्धार नहीं कर सकता। ज्ञानी पुरुष एक निर्झरकी भाँति होता है जा केवल थाडेसे मनुष्याको शान्ति तथा तृप्ति प्रदान कर सकता है परतु अवतारी पुरुष सर्वसमर्थ होता है, वह मानसरोवरकी भाँति महान् होता है, सहस्रो पुरुषो तथा नारियोकी अज्ञानताको दूर कर उन्ह शाश्वत शान्ति, आनन्द तथा ज्योति प्रदान करता है।

अवतार तथा परम-तत्त्व एक ही हैं। वह जीवात्माआकी भाँति अशमात्र नहीं हे। अवतारी आत्माएँ उसी परम-सत्ता—परमात्माकी किरण हैं। लोक-कल्याण एव लोक-सग्रहके सम्पन्न होनेके प्रयोजनको सिद्ध कर वे अन्तर्धान हो जाते हैं।

अवतारोके प्रकार

अवतार कई प्रकारके होते हैं। पूर्णावतार समस्त कलाआसे युक्त होता है। कई अशावतार और कुछ लीलावतार होत हैं।

भगवान् कृष्ण षाडश-कलासे सम्पन्न पूर्णावतार थे। श्रीशङ्कराचार्यजी अशावतार थे। मत्स्य कूर्म नृसिह वामन वाराह तथा कई अन्य लीलावतार थे।

भगवान् राम और भगवान् श्रीकृष्ण विष्णुक अवतार
~~~

थे। दक्षिणामूर्ति भगवान् शिवके अवतार थे। दत्तात्रेय त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु, शिवके अवतार थे। ब्रह्मा रचयिता विष्णु पालनकर्ता और शिव सहारकर्ता हैं। हिन्दूधर्मम बहुदेववाद नहीं, किंतु ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा देवी एक ही शक्तिके भिन्न-भिन्न रूप हैं।

भगवान्‌के अवतारोमे कलाओकी भिन्नता

प्राचीन ऋषियाने जगत्‌की रचनामें षोडश कलाआकी स्थिति बतलाते हुए कहा है कि वनस्पतियाम जहाँ एक कला विद्यमान है वहीं पशुआमे दो कलाएँ रहती हैं। मनुष्योम पाँचसे आठतक कलाएँ होती हैं। ज्यो-ज्यो अपूर्ण दशासे उत्तरोत्तर विकास प्राप्त होता है, त्यो-त्यो भगवान्‌के अवतारोमे नौसे सोलह कलाओतक वृद्धि होती रहती है। पूर्णावतारमे सोलह कलाएँ होती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण षोडश कलासे सम्पन्न पूर्णावतार थे। भगवान् रामम चौदह कलाएँ थीं। थियोसॉफी मतवाले जब अपने आध्यात्मिक गुरुओके आध्यात्मिक विकासका वर्णन करते हैं, तब सात और बारह कलाओकी बात करते हैं।

अवतारका दिव्य रूप

कई लोग कहते हैं 'हम श्रीकृष्णको भगवान् कैसे कह सकते हैं? उनका जन्म भी हुआ, मृत्यु भी हुई, वे तो मनुष्यमात्र थे'—ऐसा कथन उपयुक्त नहीं है। ऐसा तो अज्ञानी बालक ही कह सकता है। भगवान् स्वय श्रीकृष्णके रूपम प्रकट हुए थे। उन्होने मानवताके कल्याण तथा पारस्परिक आधीनता लानेके लिये कुछ कालपर्यन्त लोक-सग्रहका कार्य किया और फिर वे अन्तर्धान हो गये। वे श्रीहरि ही हैं, इसम कोई सदेह नहीं।

भगवान् श्रीराम परम तत्त्व हैं। अन्तर्यामी और प्राणिमात्रके सरक्षक हैं। वे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् तथा सर्वव्यापक हैं। न उनका जन्म होता है और न मृत्यु ही होती है। वे लोक-कल्याणार्थ प्रकट हुए और अन्तर्धान हो गये।

भगवान् राम तथा श्रीकृष्णके शरीर पाञ्चभौतिक नहीं थे। उनके शरीर दिव्य एव चिन्मय थे भले ही वे अस्थि-चर्ममय देहके दीखते थे। मनुष्योकी भाँति न तो उनका जन्म हुआ न मृत्यु। वे तो योगियोकी भाँति प्रकट होकर दृष्टिसे ओझल हो गये। उनका शरीरान्त नहीं हुआ।

जैसे एक दर्जी जो दूसरोके लिये कोट सिलता है, अपने लिये भी एक कोट सी सकता है वैसे ही ईश्वर जो विश्वभरकी रचना करता है अपने लिये भी शरीर धारण कर लेता है, इसम कुछ कठिनाई नहीं। वे सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हैं ही। मायापर पूरा अधिकार होनेके कारण ये अपने दिव्यत्वका ज्ञान रखते हैं—भले ही मानव-शरीरम हों।

कई बार राजा बन्दीगृह जाकर बन्दियोकी कोठरियाम घुस-घुसकर देखता है कि वहाँ उनकी क्या दशा है? यह सब बन्दियोके हितके लिये किया जाता है। राजा पूर्णतया स्वतन्त्र ही रहता है। स्वेच्छानुसार ही राजा बन्दीगृहमें प्रवेश करता है ठीक इसी प्रकार भगवान् परम स्वतन्त्र होते हुए भी स्वेच्छासे मानव-शरीर धारण करते हैं। मनुष्यके उत्थानके लिये अवतार लेते हैं, तब भी माया उनके अधीन रहती है। जगत्‌के जीव आत्मसाक्षात्कारके बिना मायाके अधीन हैं।

अवतारोसे सम्पर्क

कई मनुष्य अधिकारी हुए बिना ही अवतारोके दर्शन करना चाहते हैं। वे नहीं जानते कि अवतार सम्मुख प्रकट भी हो जाय तो उनको पहचाननेके लिये उनके पास नेत्र ही नहीं हैं। आप तो उन्हे साधारण मनुष्य ही समझेंगे। भगवान् कृष्णके भी ईश्वरीय स्वरूपको भला कितने लोग जान पाये थे? क्या जरासन्ध, शिशुपाल दुर्योधन उनको पहचान पाये? श्रीकृष्णको भगवान्‌का अवतार माननेवाले भीष्म पितामह-जैसे कुछ ही लोग थे। तभी तो भगवान् कहते हैं—'मूढ जन तो मेरे मानवी शरीरका निरादर करते हैं, क्योंकि वे मेरे परम तत्त्व और सर्वशक्तिमान् स्वरूपसे अनभिज्ञ रहते हैं।'

एक सत ही दूसरे सत महानुभावको समझ सकता है। रत्नोका व्यापारी ही रत्नोकी पहचान कर सकता है। भला एक रोगी वैद्यके गुणोको कैसे जान सकता है?

आध्यात्मिक पथके नये साधकोको साधनाका अभ्यास शनै -शनै करना चाहिये। उपगुरुओसे ली गयी शिक्षाका उन्हे सावधानीसे पालन करना चाहिये। ब्रह्मनिष्ठ गुरुके सान्निध्यके लिये उसे अपने आपको अधिकारी बनाना होगा तभी ध्यानकी प्रक्रियाका उपयुक्त अभ्यास हो पायेगा

जिससे भगवत्साक्षात्कार सुलभ हो जायगा।

यदि आप साधनचतुष्टयसे सम्पन्न हैं, भगवान् बुद्ध तथा राजा भर्तृहरिकी तरह उत्कट वैराग्य रखते हैं, उज्जैनके अवन्ति ब्राह्मणकी तरह आपमे क्षमा और सहिष्णुता है, त्रोटक या पद्मपादसरीखी गुरु-भक्ति तथा गुरुनिष्ठा आपमे है, तो आप इसी क्षण अवतारासे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

क्या आपमे रोगियाकी निष्काम सेवामे जुटनेकी भावना है ? क्या आपमे युद्धक्षेत्रके योद्धाकी भाँति आज्ञाकारिता है तथा रन्तिदेवकी तरह उदारता है, क्या आप भक्तिमती मीराकी भाँति निरन्तर भगवान् श्रीकृष्णकी विरहाग्निमे तडपते हैं ? बालक ध्रुव सरीखी तपस्या कर सकते हैं ? क्या आप शम्स तबरेज या मसूरकी भाँति अपनी निष्ठापर दृढ रह सकते हैं ?

यदि आपका उत्तर 'हाँ' मे है तो आप इसी क्षण आत्मसाक्षात्कार कर सकगे। आप अवतारा और ब्रह्मनिष्ठ योगियोके सान्निध्यका आनन्द ले सकगे।

अवतारोकी उपासनाद्वारा भगवत्-प्राप्ति

आप भगवान् राम और भगवान् श्रीकृष्ण-जसे अवताराकी पूजा, अर्चनाद्वारा भगवत्साक्षात्कार कर सकते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जसे—तुकाराम, समर्थ गुरु रामदास, भक्तकवि सूरदास, भक्तिमती मीराबाई, राम-भक्त तुलसीदासजी, जिन्होने अपने-अपने इष्टको इन्हीं चक्षुआसे निहारा तथा उनके मनोहारी स्वरूपके दर्शनोका आनन्द प्राप्त किया। इनकी भक्ति-रचनाएँ, इनकी आध्यात्मिक उपलब्धियाका प्रमाण हैं।

आप नित्य-निरन्तर भगवान् राम तथा भगवान् श्रीकृष्णको अपने हृदयसिहासनपर विराजमान कर अनन्य भावसे पूजा-अर्चना कीजिये, हृदयसे उनकी स्तुति कीजिये, उनका स्मरण कीजिये, शीघ्र ही वे आपके सम्मुख अपने दिव्य स्वरूपमे प्रकट हो जायँगे और आपको उनकी दिव्यानुभूति होगी। आपको अमरत्व तथा शाश्वत आनन्दकी प्राप्ति होगी।

ईश्वर अपने अनन्य भक्ताको कई रूपम दर्शन देते हैं। वे भक्ताक इष्टानुसार ही उनके सामने प्रकट होते हैं। यदि आप चतुर्भुज विष्णुभगवान्के उपासक हैं तो वे श्रीहरिके स्वरूपमे ही दर्शन दगे। यदि भगवान् शिव आपके इष्ट हैं तो वे शिवके स्वरूपम आपके सम्मुख उपस्थित हागे। यदि आप माँ दुर्गा अथवा माँ कालीके दर्शन करना चाहते हैं तो वे आपको भगवतीके रूपम दर्शन देगे। यदि आप भगवान् श्रीकृष्ण अथवा भगवान् दत्तात्रेयके उपासक हैं तो वे इन्हीं रूपाम दर्शन देगे।

सभी ईश्वरके रूप हैं। नाम एव रूपमे भिन्नता भले ही हो, पूजा उसी एक ईश्वरकी ही होती है। भक्त अपने अन्त स्थित उसी एक अन्तर्यामीकी पूजा करता है। एक रूपको, दूसरोसे श्रेष्ठ मानना अज्ञानता है। सभी रूप उसी एक परम तत्त्व ब्रह्मके ही हैं। सभी उसी एक ईश्वरकी पूजा करते हैं। उपासकोमे भिन्नता होनेके कारण इष्टदेवम भिन्नता रहती है, न कि उपास्यम।

वस्तुत राम और कृष्ण तो आपके हृदयमे ही बसे हैं। वे सदा-सर्वदा वहीं विराजमान हैं। वे ही आपके अन्तर्वासी हैं। वे आपके अभिन्न अङ्ग हैं। उनके जैसा आपका कोई सच्चा मित्र नहीं है। उन्हींके शरणापन्न होइये। उनका साक्षात्कार कीजिये और मुक्ति प्राप्त कीजिये।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

'घनश्याम सुधा बरसे बरसे'

(स्वामी श्रीनर्मदानन्दजी सरस्वती 'हरिदास)

घनश्याम सुधा बरसे बरसे।
प्रकट भयो बृज विपिन गगनमे, अनुपम छवि दरसे दरसे॥
वशी रववर स्वर वितान सो, प्रेमिन मन परसे परसे।
भए सुखी जे विरह ग्रीष्मसे, प्रथम तपित तरसे तरसे॥
नभ निहारि प्रमुदित सुरबाला, सुमन बरसि करसे करसे।
नाचत रसिक मोर मतवारे, प्रेम पुलकि हरषे हरषे॥
कृष्ण दरसको व्याकुल गोपी निकली निज घरसे घरसे।
'हरीदास यह मिलन यामिनी, सुख-समीर सरसे सरसे॥

अवतारका सिद्धान्त

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

अवतारका अर्थ है अव्यक्तरूपसे व्यक्तरूपम प्रादुर्भाव होना। यह बहुत ही अलौकिक एव रहस्यकी बात है। इसलिये जा पुरुप भगवान्‌के अवतरित हानेके दिव्य रहस्यको जानते हैं, वे भगवान्‌को प्राप्त हो जाते हैं (गीता ४।९)।

परम दयालु पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सबपर अहैतुकी दया करके ससारके परम हितक लिये ही यहाँ अवतार लेत हैं। यानी जन्म धारण करते हैं। भगवान् इतने महान् हैं कि उनकी महिमाका वर्णन करनम ब्रह्मादि दवता भी अपनेका असमर्थ समझत हैं। श्रीमद्भागवतम श्रीब्रह्माजीने स्वय कहा है—

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासता दुर्मदनिग्रहाय
प्रभा विधात सदनुग्रहाय च॥
को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथ वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।२०-२१)

'हे जगन्नियन्ता प्रभो। हे विधात । आप अजन्मा हैं, तथापि देवता, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक् और जलचरादि योनियामे आपके जा अवतार हाते हैं, वे असत्पुरुषाके मदका मथन और सत्पुरुषापर कृपा करनेके लिये ही होते हैं।

हे भगवन्। आप सर्वव्यापक परमात्मा और योगेश्वर हैं, जिस समय आप अपनी योगमायाका विस्तार कर क्रीडा करते हैं उस समय त्रिलाकीम ऐसा कौन है जो यह जान सके कि आपकी लीला कहाँ किस प्रकार, कितनी और कब हाती है?'

वे ही भगवान् हम लोगाके साथ क्रीडा करनेके लिये हमारे-जैसे बनकर हमारे इस भूमण्डलम उतर आत हैं, इसस बढकर जीवापर भगवान्‌की और क्या कृपा होगी। वे ता कृपाके आकर हैं। कृपा करना उनका स्वभाव ही है। कृपा किये विना उनसे रहा नहीं जाता। इसीलिये जब-जब भक्तापर विपत्ति आती है, पृथ्वी पापाके भारसे दब जाती है साधुपुरुष बुरी तरह सताये जाने लगते हैं और अत्याचारियाक अत्याचार असह्य हा जाते हैं तब-तब पृथ्वीका भार हरनेके लिय, भक्ताका उबारनक लिये, साधुआकी रक्षा और दुष्टाक अत्याचाराका दमन करके ससारम पुन धर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवान् समय-समयपर इस पृथ्वीमण्डलपर अवतीर्ण हुआ करत हैं। भगवान् स्वय गीताजाम कहत हैं—

अजाऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वराऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४।६—८)

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप हात हुए भी तथा समस्त प्राणियाका ईश्वर हात हुए भी अपनी प्रकृतिको

अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। हे भारत। जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोके सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधुपुरुषोका उद्धार करनके लिये, पाप-कर्म करनेवालोका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगम प्रकट हुआ करता हूँ।'

यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'भगवान् तो सर्वशक्तिमान् हैं, वे सब कुछ करनेम समर्थ हैं, वे बिना अवतार लिये ही अपनी शक्तिस—अपने सङ्कल्पसे ही सब कुछ कर सकते हैं, फिर अवतार लेनेकी उन्ह क्या आवश्यकता है?' बात बिल्कुल ठीक है, भगवान् बिना अवतार लिय ही सब कुछ कर सकते थे और कर सकते हैं और करते भी हैं, परतु लोगापर विशेष दया करके अपने दर्शन स्पर्श ओर भाषणादिके द्वारा सुगमतासे उन्ह उद्धारका सुअवसर देनेके लिये एव अपने प्रेमी भक्तोको अपनी दिव्य लीलाआका आस्वादन करानेके लिये वे इस पृथ्वीपर साकाररूपसे प्रकट होते हैं। उन अवताराम धारण किये हुए रूपका तथा उनके गुण प्रभाव, नाम, माहात्म्य और दिव्य कर्मोका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करके लोग सहज ही ससार-समुद्रसे पार हो जाते हैं। यह काम बिना अवतारके नहीं हो सकता। इसीलिये भगवान् अवतार लेते हैं।

दूसरा प्रश्न यह होता है कि 'जो भगवान् निराकाररूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं, वे अल्पकी भाँति किसी एक देशम कैसे प्रकट हो सकते हैं और यदि होते हैं तो उतने कालके लिये अन्यत्र उनका अभाव हो जाता होगा अथवा उनकी शक्ति बहुत सीमित हो जाती होगी?' इस बातको समझनेके लिये हम व्यापक अग्नि और प्रकट अग्निका दृष्टान्त लेना चाहिये। अग्नि निराकार रूपसे सर्वत्र व्याप्त है, इसीलिये उस चकमक पत्थर तथा दियासलाई आदिसे चाहे जहाँ प्रकट किया जा सकता है। जिस कालम उसे एक जगह प्रकट किया जाता है उस कालमे अन्यत्र उसका अभाव नहीं हा जाता, बल्कि एक ही कालमे वह कई जगह प्रकट होती दखी जाती है और जहाँ भी प्रकट होती है, उसम पूरी शक्ति रहती है। इसी प्रकार भगवान् भी निराकार रूपसे सर्वत्र व्याप्त रहते हुए ही किसी देशविशेषम अपनी पूरी भगवत्ताके साथ प्रकट हो जाते हैं ओर उस समय उनका अन्यत्र अभाव नहीं हो जाता, बल्कि एक ही समयमे उनके कई स्थलापर प्रकट होनेकी बात भी शास्त्रोमे कई जगह आती है। श्रीमद्भागवतमे वर्णन आता है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकासे मिथिलापुरी गये। वहाँके राजा बहुलाश्व भगवान्के अनन्य भक्त थे। वहींपर श्रुतदेव नामके एक ब्राह्मण भक्त भी रहते थे। दोनोने एक ही साथ भगवान्से अपने-अपने घर पधारनेकी प्रार्थना की। दोनो ही भगवान्की भक्तिम एक-से-एक बढकर थे। भगवान् दोनोमसे किसीका भी जी नहीं तोडना चाहते थे। अत उन्होने दोनाका ही मन रखनेके लिये एक-दूसरेको न जनाते हुए एक ही समय दो रूप धारण करके एक साथ दोनोके घर जाकर उन्ह कृतार्थ किया।*

एक और भी प्रसङ्ग श्रीमद्भागवतमे आता है। एक बारकी बात है—देवर्षि नारदजी यह देखनेके लिये कि भगवान् गृहस्थाश्रममे किस प्रकार रहते हैं द्वारकाम पहुँचे। वे अलग-अलग सब रानियोके महलोमे गये और सभी जगह उन्होने श्रीकृष्णको गृहस्थधर्मका यथायोग्य पालन करते हुए पाया। वे प्रात काल उठनेके समयमे लेकर रात्रिको सोनेके समयतकका समस्त दैनिक कृत्य अनेक रूपोमे सब जगह विधिवत् करते थे। सभाम जानेके समय वे घरोसे निकलते हुए अलग-अलग रूपाम दिखायी देते थे और फिर एकरूप होकर सभामे प्रवेश करते थे। नारदजी यह सब देखकर दग रह गये और भगवान्को प्रणाम करक उनकी स्तुति करते हुए (ब्रह्मलोकको) चले गय। (भागवत १०।६९।१३—४३)

ब्रह्माजीके मोहके प्रसङ्गमे भी भगवान्के बछडा और गोपबालकोका रूप धारण करने और सालभरतक इस प्रकार अनेकरूप हाकर रहनेकी बात श्रीमद्भागवतम आयी है। (भागवत १०।१३)

भगवान् श्रीरामके सम्बन्धम भी यह वर्णन आता है कि जब भगवान् लङ्का-विजय कर चौदह वर्षकी अवधि

* भगवास्तदभिप्रेत्य द्वयो प्रियचिकीर्षया। उभयाराविशद्देहमुभाभ्या तदलक्षित ॥ (श्रीमद्भा० १०।८६।२६)

समाप्त होनेपर अयोध्या लौटे, उस समय उन्होंने पुरवासियोंको मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर देखकर असंख्य रूप धारण कर लिये और पलभरमें वे एकसाथ सबसे मिल लिये। (रामचरितमानस, उत्तर० ६।४-५, ७)।*

भगवान्‌के लिये यह कोई बडी बात भी नहीं कही जा सकती। जिन्होंने इस सारे विश्वको अपने सङ्कल्पके आधारपर टिका रखा है और जो एक होते हुए भी लीलासे अनेक बने हुए हैं, वे यदि इस प्रकार एक ही समयमें एकसे अधिक रूप धारण कर लें, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यह कार्य तो एक योगी भी कर सकता है। फिर भगवान् तो योगेश्वरोंके भी ईश्वर तथा मायाके अधिपति ठहरे, उनके लिये ऐसा करना कौन कठिन काम है।

अब प्रश्न यह होता है कि 'क्या भगवान्‌का अवतार हम लोगोंके जन्मकी भाँति कर्मोंसे प्रेरित होता है? क्या उनका शरीर भी हमलोगोंकी भाँति पञ्चभूतोंसे बना हुआ मायिक होता है?' इसका उत्तर यह है कि भगवान्‌के अवतारमें इनमेंसे एक भी बात नहीं होती। भगवान्‌का अवतार न तो कर्मसे प्रेरित होकर होता है, न उनका शरीर पाञ्चभौतिक अथवा मायिक होता है। उनका जन्म और उनके कर्म दोनों ही दिव्य—अलौकिक होते हैं। उनका अवतार कर्मसे प्रेरित तो इसलिये नहीं होता कि वे काल और कर्मसे सर्वथा परे हैं। कर्मकी स्थिति तो मायाके अंदर है और वे मायासे सर्वथा अतीत हैं। अतः कर्म उनका स्पर्श भी नहीं कर सकते। वे स्वयं गीतामें कहते हैं—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥
(४।१४)

'कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते—इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता।' जब उन्हें तत्त्वसे जाननेवाला भी कर्मोंसे नहीं बँधता, तब उनके कर्मोंके वश होकर जन्म लेनेकी तो बात भी नहीं उठ सकती। वे तो अपनी इच्छासे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये शरीर धारण करते हैं। यह बात जेलके दृष्टान्तसे भलीभाँति समझमें आ सकती है। जेलके अंदर कैदी भी रहते हैं, जेलके कर्मचारी भी रहते हैं और जेलके अफसर—जेलर भी रहते हैं तथा कभी-कभी जेलके मालिक स्वयं राजा भी जेलके अहातेके अंदर जेलका निरीक्षण करने एवं कैदियोंपर अनुग्रह करनेके लिये तथा उन्हें जेलसे मुक्त करनेके लिये चले जाया करते हैं। परंतु उनके जानेमें और कैदियोंके जानेमें बडा अन्तर है। कैदी वहाँ राजाज्ञाके अनुसार सजा भुगतनेके लिये जाता है। नियत अवधितक उसे बाध्य होकर वहाँ रहना पडता है, अपनी इच्छासे वह वहाँ नहीं रहता। परंतु राजा वहाँ अपनी स्वतन्त्र इच्छासे जाता है, सजा भोगनेके लिये नहीं और जबतक उसकी इच्छा होती है, तबतक वहाँ रहता है। इसी प्रकार भगवान् भी प्रकृतिको वशमें करके अपनी स्वतन्त्र इच्छासे जन्म लेते हैं और लीला-कार्य समाप्त हो जानेपर पुनः बेरोक-टोक अपने धामको वापस चले आते हैं।

भगवान्‌का अवतारविग्रह भी हमलोगोंके शरीरकी भाँति पञ्चभूतोंसे बना हुआ मायिक नहीं होता, अपितु चिन्मय—सच्चिदानन्दमय होता है, इसलिये वह अनामय और दिव्य है। इस विषयमें दूसरी बात ध्यान देनेयोग्य यह है कि भगवान्‌का जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण जब कारागारमें वसुदेव-देवकीके सामने प्रकट हुए, उस समयका श्रीमद्भागवतका प्रसङ्ग देखने और विचारनेसे मनुष्य समझ सकता है कि उनका जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं हुआ। अव्यक्त सच्चिदानन्दघन परमात्मा अपनी लीलासे ही शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसहित विष्णुके रूपमें वहाँ प्रकट हुए। उनका प्रकट होना और पुनः अन्तर्धान होना उनकी स्वतन्त्र लीला है, वह हमलोगोंके उत्पत्ति-विनाशकी तरह नहीं है। भगवान्‌की तो बात ही निराली है, एक योगी भी अपने योगबलसे अन्तर्धान हो जाता है और पुनः उसी रूपमें प्रकट हो जाता है, परंतु उसकी अन्तर्धानकी अवस्थामें कोई उसे मरा नहीं समझता। जब महर्षि पतञ्जलि आदि योगके ज्ञाता एक योगीकी ऐसी शक्ति बतलाते हैं, तब परमात्मा

* प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

ईश्वरके लिये अन्तर्धान हो जाना और पुन प्रकट होना कौन बडी बात है। अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण साधारण लागाकी दृष्टिम जन्म लनेके सदृश ही था, परतु वास्तवम वह जन्म नहीं था, वह तो उनका प्रकट होना ही था। इसीलिये ता उन्हाने माता देवकीकी प्रार्थनापर अपने चतुर्भुजरूपका अदृश्य करके द्विभुज वालकका रूप धारण कर लिया।[1]

गीताके ग्यारहवे अध्यायम भी वर्णन आता है कि भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रार्थना करनपर पहले उसे अपना विश्वरूप दिखलाया, फिर उसीकी प्रार्थनापर चतुर्भुजरूप धारण किया और अन्तमे व पुन द्विभुज मनुष्यरूप हो गये।

भगवान् श्रीरामके भी इसी प्रकार चतुर्भुजरूपम ही माता कौसल्याके सामने प्रकट हाने ओर फिर उनकी प्रार्थनापर द्विभुज बालकके रूपमें बदल जानेकी वात मानसम आती है। इससे प्रकट होता है कि भगवान् अपने भक्ताकी इच्छाके अनुसार उन्ह दर्शन देकर अन्तर्धान हा जाते हैं।

मनुष्याक शरीरके विनाशकी तरह भगवान्के दिव्य वपुका विनाश भी नहीं समझना चाहिये। जिस शरीरका विनाश होता है, वह ता यहीं पडा रहता है कितु दवकीके सामने चतुर्भुजरूपके और अर्जुनके सामने विश्वरूप और चतुर्भुजरूपक अदृश्य हो जानेपर उन वपुओकी वहाँ उपलब्धि नहीं होती। इतना ही नहीं, भगवान् श्रीकृष्णने जिस देहसे यहाँ लोकहितके लिये विविध लीलाएँ की थीं, वह देह भी अन्तम नहीं मिला। वे उसी लीलामय दिव्य वपुसे परमधामको पधार गये। इसके बाद भी जब-जब भक्तोने इच्छा की, तब-तव ही उसी श्यामसुन्दर-विग्रहसे पुन प्रकट होकर उन्हे दर्शन देकर कृतार्थ किया और करते हैं। यदि उनके देहका विनाश हो गया होता, ता (परमधाम पधारनेके अनन्तर) इस प्रकार पुन प्रकट हाना कैसे सम्भव होता ?

इसस यह बात सिद्ध हुई कि भगवान्का परमधाम-प्रयाण अन्तर्धान होना हे, न कि मनुष्य-देहाकी भाँति विनाश होना। श्रीमद्भागवतमे लिखा है—

लोकाभिरामा स्वतनु धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत्स्वकम्॥
(११।३१।६)

'धारणा और ध्यानक लिये अति मङ्गलरूप अपनी लोकाभिरामा मोहिनी मूर्तिको योग-धारणाजनित अग्निके द्वारा भस्म किये विना ही भगवान्ने अपन धामम‍े प्रवेश किया।'

श्रीरामके सम्वन्धमे भी वाल्मीकीय रामायणम वर्णन आता है कि भगवान्के परमधाम-गमनके समय सब लोकांकि पितामह ब्रह्माजी भगवान्को लेनेके लिये देवताआके साथ सरयूके तटपर आये और भगवान्से अपने वैष्णव देहम प्रवेश करनेकी प्रार्थना की और भगवान्ने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर तीनो भाइयोसहित अपने इसी शरीरसे विष्णुशरीरम प्रवश किया।[2]

भगवान्का शरीर मायिक नहीं होता—इसका एक प्रमाण यह भी है कि मायाके बन्धनसे सर्वथा मुक्त आत्माराम मुनिगण भी उनके त्रिभुवनमाहन रूपको देखकर मुग्ध हा जाते हैं, शरीरकी सुध-बुध भूल जाते हैं। यदि वह शरीर मायासे रचित त्रिगुणमय होता तो गुणोसे सर्वथा ऊपर उठ हुए आत्माराम आप्तकाम मुनियाकी ऐसी दशा कैसे हो सकती थी।

जिस समय शरशय्यापर पड हुए भीष्मपितामह मृत्युके समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उस समय भगवान् श्रीकृष्णको अपने सम्मुख आया हुआ जान वे सबसे पहले उनके त्रिभुवनकमनीय रूपका ही ध्यान करते हैं और उसीम प्रीति होनकी प्रार्थना करते हैं।[3] यदि वह रूप

---

१ इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया। पित्रो सम्पश्यतो सद्यो बभूव प्राकृत शिशु ॥ (श्रीमद्भा० १०।३।४६)
यह कहकर भगवान् चुप हो गय और माता-पिताके देखते-देखते अपनी मायासे तुरन्त ही एक साधारण बालक बन गये।

२ अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामह । सर्वै परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभि ॥
तत पितामहो वाणीं त्वन्तरिक्षादभाषत। आगच्छ विष्णो भद्र ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव॥
भ्रातृभि सह देवाभै प्रविशस्व स्विका तनुम्। यामिच्छसि महाबाहो ता तनु प्रविश स्विकाम्॥
पितामहवच श्रुत्वा विनिश्चित्य महामति । विवेश वैष्णव तेज सशरीर सहानुज ॥ (उत्तरकाण्ड ११०। ३ ८ ९ १२)

३ त्रिभुवनकमन तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बर दधाने। वपुरलककुलावृताननाब्ज विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥ (श्रीमद्भा० १।९।३३)
जो त्रिभुवनसुन्दर और तमालवृक्षके सदृश श्यामवर्ण है सूर्यरश्मियाके समान पीताम्बर धारण किये हुए है तथा जिसका मुखकमल अलकावलीस आवृत है—एसे सुन्दर रूपको धारण करनेवाले अर्जुनसखा श्रीकृष्णमे मेरी निष्काम प्रीति हो।

मायिक होता तो भीष्म-जैसे ज्ञानी महात्मा, जिन्होंने सब ओरसे अपनी चित्तवृत्तियोंको हटा लिया था और जिनका सारा जीवन परमवैराग्यमय था, मृत्युके समय उसमें अपने मनको क्या लगाते?

श्रीराम-लक्ष्मण जब महर्षि विश्वामित्रके साथ धनुषयज्ञ देखने जनकपुर जाते हैं तो उस अनुपम जोडीको देखकर जनक-जैसे महान् ज्ञानीकी जो दशा होती है, उसका चित्र गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी लेखनीद्वारा बडी मार्मिकतासे चित्रित किया है। उस प्रसङ्गको उन्हींके शब्दोंमें हम नीचे उद्धृत करते हैं—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥
प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥

(रा०च०मा० १।२१५।८ २१५ २१६।३५ २१७।५)

'रामजीकी मधुर मनोहर मूर्तिको देखकर विदेह (जनक) विशेषरूपसे विदेह (देहकी सुध-बुधसे रहित) हो गये। मनको प्रेममें मग्न जान राजाने विवेकके द्वारा धीरज धारण किया और मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर गद्गद (प्रेमभरी) गम्भीर वाणीसे कहा—हे नाथ! 'मेरा मन, जो स्वभावसे ही वैराग्यरूप बना हुआ है, इन बालकोंको देखकर इस तरह मुग्ध हो रहा है जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर। इनको देखते ही अत्यन्त प्रेमके वश होकर मेरे मनने जबर्दस्ती ब्रह्मानन्दको त्याग दिया है।' राजा बार-बार प्रभुको देखते हैं, दृष्टि वहाँसे हटना ही नहीं चाहती। प्रेमसे शरीर पुलकित हो रहा है और हृदयमें बडा उत्साह है।

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अवतार-शरीर मायिक नहीं होता, अवतारोंके जन्म-कर्म अलौकिक होते हैं **'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'** (गीता ४।९) और वे भक्तोंके प्रेमवश उनपर कृपा करनेके लिये स्वेच्छासे प्रकट होते हैं कर्मोंके वश होकर नहीं। अब हम यह देखना है कि अवतारोंकी सत्ता किन-किन शास्त्रोंसे प्रमाणित होती है। श्रीमद्भागवत, गीता, वाल्मीकिरामायण तथा तुलसीकृत रामायणके प्रमाण तो ऊपर उद्धृत किये ही हैं, अब हम उपनिषद् तथा महाभारत आदि ग्रन्थोंके आधारपर भी भगवान्‌का प्रादुर्भाव होना प्रमाणित करते हैं।

केनोपनिषद्‌में एक बडी सुन्दर कथा आती है। एक बारकी बात है परब्रह्म परमात्माने देवताओंको असुरोंके साथ संग्राममें जिता दिया। देवताओंको इस विजयपर बडा भारी गर्व हो गया। उन्होंने सोचा कि यह विजय हमने अपने पुरुषार्थसे प्राप्त की है। यही हालत सब जीवोंकी है। वास्तवमें करते-कराते सब कुछ भगवान् हैं, परंतु जीव अभिमानवश अपनेको कर्ता मान लेता है और फँस जाता है। भगवान् तो सर्वज्ञ ठहरे और ठहरे दर्पहारी। वे देवताओंके अभिप्रायको जान गये और उनके अभिमानको दूर करनेके लिये एक अद्भुत यक्षके रूपमें उनके सामने प्रकट हुए। देवता लोग मायासे मोहित हुए समझ नहीं सके

कि यह यक्ष कौन है। भगवान् यदि अपनेको छिपाना चाहें तो किसकी शक्ति है जो उन्हें पहचान सके। वे स्वयं ही जब कृपा करके जिसको अपनी पहचान कराते हैं वही उन्हें पहचान पाता है, दूसरा नहीं—*'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।'* उन महामायावीने अपनेको ऐसे कौशलसे इस मायारूपी पर्देके भीतर छिपा रखा है कि उन्हें सहसा कोई पहचान नहीं सकता। भगवान्‌ने स्वयं गीतामें कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।

(७।२५)

'अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके लिये प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ।' इन्द्रने यक्षका पता लगानेके लिये क्रमश अग्नि, वायुको उनके पास भेजा। यह बतलानेके लिये कि सारे दवता उन्हींकी शक्तिस काम करत हैं, देवताआके पास जा कुछ भी शक्ति है, वह उन्हींकी दी हुई है और उनकी शक्तिक बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, ब्रह्मने एक तिनका अग्निदेवताके सामने रखा और कहा कि 'इसको जलाओ तो।' अग्निदेवता, जा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको जला डालनका अभिमान रखत थे—अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी उस छोटसे तिनकेको नहीं जला

सके और लज्जित हाकर वापिस चले आये। इसक बाद वायुदेवताकी बारी आयी। उन्ह अभिमान था कि मैं पृथ्वीभरके पदार्थोंको उडा ल जा सकता हूँ, परतु वे भी एक तिनकेका नहीं हटा सके, हटा सकते भी कैसे? उनका सारी शक्ति ता ब्रह्मने छीन ली थी जो उस शक्तिका उद्गम स्थान है। फिर उनके अदर रह ही क्या गया था जिसके बलपर वे कोई कार्य करते। भगवान्‌के भक्तोके सामने भी अग्नि आदि देवताओकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है। एक बार भक्त प्रह्लादके सामने भी अग्निका कोई बस नहीं चला था, वह उस भक्तक प्रभावसे जलकी तरह शीतल हो गया—'**पावकोऽपि सलिला-यतेऽधुना**।' भक्त सुधन्वाके लिये उबलता हुआ तेल ठढा हो गया था। अस्तु,

अबकी बार दवराज इन्द्र स्वय यक्षके पास पहुँचे। उन्हे दखते ही यक्ष अन्तर्धान हा गये। इतनेहीम हैमवती उमादेवी (पार्वती) वहाँ प्रकट हुईं और उन्हाने इन्द्रको बतलाया कि जो यक्ष अभी-अभी तुम्हारे नेत्रासे ओझल हो गया, वह ब्रह्म ही था। अब तो इन्द्रकी आँखे खुलीं और वे समझ गये कि हमलोगाका अभिमान चूर्ण करनेके लिये ही ब्रह्मने यह लीला की थी। (केनोप० ख० ३)

इस प्रकार ब्रह्मक साकार रूपमे प्रकट होनेकी बात उपनिषदाम आती है, केवल पुराणादि ग्रन्थोमे ही भगवान्‌क साकार विग्रहकी बात आयी हो, इतनी ही बात नहीं है। गीताके अतिरिक्त महाभारतम और भी अवतारवादके पोषक कई प्रसग हैं। स्थानसङ्कोचके कारण उनमसे एकाध ही प्रसगका उल्लेख हम यहाँ करते हैं। महाभारत-युद्धकी समाप्तिके बाद जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाको लौट रहे थे, रास्तेम उनकी महातेजस्वी उत्तङ्क मुनिसे भट हुई। बाता-ही-बातामे जब मुनिको मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण कौरवो और पाण्डवाके बीच सन्धि नहीं करा सके और दोनामे घमासान युद्ध हुआ, जिसमे सारे कोरव मारे गये, तो उन्ह श्रीकृष्णपर बडा क्रोध आया। उन्हाने कहा कि 'हे कृष्ण! कौरव तुम्हारे सम्बन्धी थ, तुम चाहते तो युद्धको रोक सकते थे और इस प्रकार उनकी रक्षा कर सकते थे, परतु शक्ति रहते भी तुमने उनकी रक्षा नहीं की, इसलिये मैं तुम्हे शाप दूँगा।' मुनिके इन क्रोधभरे वचनाको सुनकर श्रीकृष्ण मन-ही-मन हँसे और बोले कि 'कोई भी पुरुष तप करके मेरा पराभव नहीं कर सकता। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे तपका व्यर्थ ही नाश हो। अत तुम पहले जान लो कि मैं कौन हूँ, पीछे शाप देनेकी बात सोचना।' या कहकर भगवान्‌ने मुनिके सामने अपनी महिमाका वर्णन करना प्रारम्भ किया। व कहने लगे—'हे मुनिश्रेष्ठ! सत्त्व रज तम—ये तीना गुण मरे आश्रय रहते हैं तथा रुद्र और वसुआको भी तुम मुझसे ही उत्पन्न हुआ जानो। सारे भूत मुझम हैं और मैं सब भूतोके अदर स्थित हूँ, इसे तुम निश्चय समझो। दैत्य सर्प गन्धर्व, राक्षस, नाग और अप्सराओंको भी मुझीस उत्पन्न हुआ जानो। लोग जिसे सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त तथा क्षर-अक्षर नामसे पुकारते हैं, वह सब मेरा ही

रूप हैं। चारों आश्रमोंके जो धर्म कहे गये हैं तथा वैदिक कर्म भी मेरा ही रूप है आङ्कारसे आरम्भ होनेवाले वेद हवनकी सामग्री, हवन करनेवाले होता

तथा अध्वर्यु—ये सब मुझे ही जानो। उद्गाता सामगानके द्वारा मेरा ही स्तवन करते हैं, प्रायश्चित्तोंमें शान्तिपाठ और मङ्गलपाठ करनेवाले भी मेरी ही स्तुति करते हैं। धर्मकी रक्षाके लिये और धर्मकी स्थापनाके लिये मैं बहुत-सी योनियोंमें अवतार ग्रहण करता हूँ। मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही उत्पत्ति और प्रलयरूप हूँ। सम्पूर्ण भूतोंका रचनेवाला और संहार करनेवाला मैं ही हूँ। जब-जब युग पलटता है तब-तब मैं प्रजाजनोंके हितकी कामनासे भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म धारण कर धर्मकी मर्यादा स्थापित करता हूँ। जब मैं देवयोनि ग्रहण करता हूँ, तब देवताओंका-सा बर्ताव करता हूँ, जब मैं गन्धर्व-योनिमें लीला करता हूँ, तब गन्धर्वोंका-सा व्यवहार करता हूँ, जब मैं नाग-योनिमें होता हूँ तो नागोंकी भाँति आचरण करता हूँ और जब मैं यक्ष आदि योनिमें स्थित होता हूँ, तब मैं उन-उन योनियोंका-सा बर्ताव करता हूँ। इस समय मैं मनुष्य-योनिमें हूँ और मनुष्योंका-सा आचरण करता हूँ। इसीलिये मैंने कौरवोंके पास जाकर उनसे सन्धिके लिये बड़ी अनुनय-विनय की परंतु मोहसे अन्धे हुए उन्होंने मेरी एक भी बात नहीं मानी। मैंने भय दिखाकर भी उन्हें मार्गपर लानेकी चेष्टा की परंतु अधर्मसे अभिभूत हुए और कालचक्रमें फँसे हुए वे माने नहीं और अन्तमें युद्ध करके मारे गये।' भगवान्‌के इन वचनोंको सुनकर मुनिकी आँखें खुल गयीं। फिर मुनिकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपना विराट् रूप दिखलाया—वैसा ही जैसा अर्जुनको दिखलाया था। (महाभारत आश्वमेधिक पर्व अ० ५३—५५)

ऊपरके प्रसङ्गसे अवतारवादकी भलीभाँति पुष्टि होती है। केवल मनुष्य-योनिमें ही नहीं अन्यान्य योनियोंमें भी भगवान् अवतार लेते हैं—यह बात भी इससे प्रमाणित हो जाती है क्योंकि सभी योनियाँ उन्हींकी तो हैं। सभी रूपोंमें वे ही लीला कर रहे हैं। भगवान्‌के मत्स्य कूर्म वाराह, नरसिंह, वामनादि अवतार इसी प्रकारके अवतार थे जिनका पुराणोंमें विस्तृत वर्णन पाया जाता है। जिनकी चर्चा करनेसे लेखका आकार बहुत बढ़ जायगा। इसीलिये यहाँ केवल भगवान् राम और भगवान् कृष्ण इन दो प्रधान अवतारोंकी बात ही मुख्यतासे कही गयी है।

इनके अतिरिक्त भगवान्‌का एक अवतार और होता है, इसे अर्चावतार कहते हैं। पूजाके लिये भगवान्‌की धातु, पाषाण एवं मृत्तिका आदिसे जो प्रतिमाएँ बनायी जाती हैं, वे भगवान्‌का अर्चा-विग्रह कहलाती हैं। कभी-कभी उपासकके प्रेमबल और दृढ़ निष्ठासे ये मूर्तियाँ चेतन हो जाती हैं चलने-फिरने लग जाती हैं हँसने-बोलने लग जाती हैं। इन अर्चा-विग्रहोंमें भगवान्‌की शक्तिके उतर आनेको अर्चावतार कहते हैं। ऐसे अनेक भक्तोंके चरित्रोंका उल्लेख मिलता है, जिनकी इष्ट मूर्तियाँ उनके साथ चेतनवत् व्यवहार करती थीं। इनमेंसे किसी भी अवतारका आश्रय लेकर भगवान्‌की भक्ति करनेसे उनकी कृपासे उनके चरणोंमें सहजहीमें दृढ़ अनुराग होकर मनुष्य सदाके लिये कृतकृत्य हो जाता है। यही मनुष्य-जीवनका परम ध्येय है।

अवतारके सिद्धान्तको भिन्न-भिन्न द्वैतसम्प्रदायोंके आचार्योंने तो माना ही है, उनमेंसे कई तो भगवान्

श्रीरामके और कई भगवान् श्रीकृष्णके अवतार-विग्रहको ही अपना उपास्य एवं सर्वोपरि अवतारी मानते हैं। अद्वैत-सम्प्रदायाचार्य स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने भी अपने श्रीमद्भगवद्गीता-भाष्यके उपोद्घातमें भगवान् श्रीकृष्णको आदिपुरुष भगवान् नारायणका अवतार माना है। वे कहते हैं—

दीर्घेण कालेन अनुष्ठातॄणां कामोद्भवाद् हीयमान-विवेकविज्ञानहेतुकेन अधर्मेण अभिभूयमाने धर्मे प्रवर्धमाने च अधर्मे, जगतः स्थितिं परिपिपालयिषुः स आदिकर्ता नारायणाख्यो विष्णुः भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य रक्षणार्थं देवक्यां वसुदेवाद् अंशेन कृष्णः किल सम्बभूव।

ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्याद् वैदिको धर्मस्तदधीनत्वाद् वर्णाश्रमभेदानाम्।

स च भगवान् ज्ञानैश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजोभिस्सदा सम्पन्नस्त्रिगुणात्मिकां वैष्णवीं स्वां मायां मूलप्रकृतिं वशीकृत्य अजः अव्ययो भूतानामीश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोऽपि सन् स्वमायया देहवान् इव जात इव च लोकानुग्रहं कुर्वन्निव लक्ष्यते।

'बहुत कालसे धर्मानुष्ठान करनेवालोंके अन्तःकरणमें कामनाओंका विकास होनेसे विवेक-विज्ञानका ह्रास हो जाना ही जिसकी उत्पत्तिका कारण है, ऐसे अधर्मसे जब धर्म दबता जाने लगा और अधर्मकी वृद्धि होने लगी तब जगत्की स्थिति सुरक्षित रखनेकी इच्छावाले वे आदिकर्ता नारायण नामक श्रीविष्णुभगवान् भूलोकके ब्रह्मकी अर्थात् ब्राह्मणत्वकी रक्षा करनेके लिये श्रीवसुदेवजीसे श्रीदेवकीजीके गर्भमें अपने अंशसे श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए।

ब्राह्मणत्वकी रक्षासे ही वैदिक धर्म सुरक्षित होगा, क्योंकि वर्णाश्रमोंके भेद उसीके अधीन हैं।

ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि गुणोंसे सदा सम्पन्न वे भगवान् यद्यपि अज, अविनाशी सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर और नित्यशुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव हैं, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति वैष्णवी मायाको वशमें करके अपनी लीलासे शरीरधारीकी तरह उत्पन्न हुए-से और लोगोंपर अनुग्रह करते हुए-से दीखते हैं।'

इस प्रकार अनेक युक्तियोंसे स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने श्रीकृष्णकी भगवत्ता और वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्मके साथ एकता दिखायी है। अब हम उन्हीं परम दयालु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको बारम्बार प्रणाम करते हुए अन्तिम बात कहकर अपने लेखको समाप्त करते हैं।

जो लोग अपने पुरुषार्थसे भगवान्को पानेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ अनुभव करते हैं, जो निरन्तर केवल उन्हींकी कृपाकी बाट जोहते रहते हैं तथा मातृपरायण शिशुकी भाँति उन्हींपर सर्वथा निर्भर हो जाते हैं, उनसे मिलनेके लिये भगवान् स्वयं आतुर हो उठते हैं और उसी प्रकार दौड़ पड़ते हैं, जैसे नयी ब्यायी हुई गौ अपने बछड़ेसे मिलनेके लिये दौड़ पड़ती है। अतएव हमलोगोंको भी परम दयालु भगवान्की शरण होकर उनके दयापात्र बननेके लिये श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका नित्य निरन्तर भजन-ध्यान तत्परताके साथ करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

'लें अवतार हरी'

जब जब धर्म की हानि जगत में, लें अवतार हरी।

भगत-हित लें अवतार हरी। जगत-हित लें अवतार हरी॥
मत्स्य-रूप ले वेद उधारे। कूर्म-रूप मन्दराचल धारे॥
धरि वराह-वपु, भू-उद्धारक। दीनदयाल हरी॥
नृसिंह-रूप प्रह्लाद दुलारे। वामन बन पहुँचे बलि द्वारे॥
परशुराम बनि छत्र सहारे। अधरम नाश करी॥
पुरुषोत्तम बन रावण मारे। लीलाधर बनि कँस पछारे॥
बुद्ध अहिंसा के प्रतिपादक। कल्कि विध्वंस करी॥
हम बैठे हैं आस लगाये। दया तुम्हारी फिर हो जाये॥
धर्म की जय हो, हे प्रतिपालक। 'रमण' बने बिगरी॥

— 'रमण' भजनानन्दी

वेदमे अवतारवाद

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

वेदमे अवतारवाद है या नहीं। इसके लिये अवतारवादके प्रतिपादक कुछ मन्त्र यहाँ लिखे जात हैं—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजाय मानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनि परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

इसका अर्थ है कि प्रजाओका पति भगवान् गर्भके भीतर भी विचरता है। वह तो स्वय जन्मरहित है, किंतु अनेक प्रकारसे जन्म ग्रहण करता रहता है। विद्वान् पुरुष ही उसके उद्भव-स्थानको देखते एव समझते है। जिस समय वह आविर्भूत होता है तब सम्पूर्ण भुवन उसीके आधारपर अवस्थित रहते हैं *अर्थात् वह सर्वश्रेष्ठ नेता बनकर लोकोको चलाता* रहता है। इस मन्त्रके प्रकृत अर्थमे अवतारवाद अत्यन्त स्फुट है। अब यद्यपि कोई विद्वान् इसका अन्य अर्थ करे तो प्रश्न यही होगा कि उनका किया हुआ अर्थ ही क्यो प्रमाण माना जाय ? मन्त्रके अक्षरासे स्पष्ट निकलता हुआ हमारा अर्थ ही क्यो न प्रमाण माना जाय ? वस्तुत बात यह है कि वेद सर्वविज्ञाननिधि है। वह थोडे अक्षराम सकेतसे कई अर्थोंको प्रकाशित कर देता है और उसके सकेतित सभी अर्थ शिष्ट-सम्प्रदायमे प्रमाणभूत माने जाते हैं। इसलिये बिना किसी खींच-तान और लाग-लपेटके जब इस मन्त्रसे अवतारवाद बिलकुल *स्पष्ट हो जाता है, तब इस अर्थको अप्रमाणित* करनेका कोई कारण नहीं प्रतीत होता। यदि कोई वैज्ञानिक अर्थ भी इस मन्त्रसे प्रकाशित होता है तो वह भी मान लिया जाय। किंतु अवतारवादका अर्थ न माननेका कोई कारण नहीं। अन्य भी मन्त्र (अथर्व० १०।८।२७) देखिये—

'त्व स्त्री त्व पुमानसि त्व कुमार उत वा कुमारी।'

यहाँ परमात्माकी स्तुति है कि आप स्त्रीरूप भी हैं, पुरुषरूप भी हैं। कुमार और कुमारीरूप भी आप होते हैं।

अब विचारनेकी बात है कि परमात्मा अपने व्यापक स्वरूपम तो स्त्री पुरुष कुमार, कुमारी कुछ भी नहीं है। य रूप जा मन्त्रमे वर्णित किये *गय हैं, अवताराके* ही रूप हो सकते हैं। पुरुषरूपम राम कृष्ण आदि अवतार प्रसिद्ध ही हैं। स्त्रीरूप महिषमर्दिनी आदि अवताराका विस्तृत वर्णन श्रीदुर्गासप्तशतीम प्रसिद्ध है। वहाँके अवतार सब स्त्रीरूप ही हैं। व्यापक निराकार परमात्मा पुरुषरूपम अथवा स्त्रीरूपम इच्छानुसार कहीं भी प्रकट हो सकता है। कुमारारूपम अवतार भी वहाँ वर्णित है और कुमाररूपम वामनावतार प्रसिद्ध ही है, जिसकी विस्तारस कथा शतपथब्राह्मणम प्राप्त हाती है। शिष्ट-सम्प्रदायम मन्त्र और ब्राह्मण दानो ही वेद माने जाते हैं, इसलिये शतपथम प्रसिद्ध कथाको भी वदका ही भाग कहना शिष्ट-सम्प्रदायद्वारा अनुमोदित है और कथाका सकेत मन्त्रमे भी मिलता है—**'इद विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पा्ँसुरे स्वाहा॥'** (यजु० ५।१५)

अर्थात् इन दृश्यमान लोकाको विष्णुने विक्रमण किया—इनपर *अपने चरण रखे अर्थात् अपने चरणासे सब लोकाको* नाप डाला। सब लोग इनकी पाद-धूलिम अन्तर्गत हो गये। यह स्पष्ट वामन अवतारकी कथा है। यहाँ भी अर्थका विभाग उपस्थित हानेपर यही उत्तर होगा कि मन्त्रके अक्षरासे स्पष्ट प्रतीत होता हुआ हमारा अर्थ क्यो न माना जाय। जो कथा ब्राह्मण और पुराणामे प्रसिद्ध है, उसके अनुकूल मन्त्रका अर्थ न मानकर मनमाना अर्थ करना एक बलात् कार्य होगा। जा सम्प्रदाय ब्राह्मणभागको वेद नहीं मानते, वे भी यह तो मानते ही हैं कि मन्त्रोके अर्थ ही भगवान्ने ऋषियाको बुद्धिम प्रकाशित किये। वे ही अर्थ ऋषियाने लिखे। वे ही *ब्राह्मण हैं और पुराण आदि भी वेदार्थोके विस्तार ही हैं* यह उनमे ही वर्णन किया गया है। इसी प्रकार मत्स्यावतारकी कथा और वराह अवतारकी कथा भी शतपथ आदि ब्राह्मणाम स्पष्ट मिलती है।

महाभारतक टीकाकार श्रीनीलकण्ठने 'मन्त्र-भागवत' और 'मन्त्र-रामायण' नामके दो छाटे निबन्ध भी लिखे हैं। उनमे राम और कृष्णकी प्रत्येक लीलाओक प्रतिपादक मन्त्र उद्धृत किये हैं उन मन्त्रासे राम और कृष्णके प्रत्येक चरित प्रकाशित होते हैं। वेदके रहस्यको प्रकाशित करनेम ही जिन्हाने अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया उन वेदके *असाधारण विद्वान् विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदनजी ओझाने* भी गीता-विज्ञान-भाष्यक आचार्यकाण्डमे उन मन्त्राको दुहराया है। इसलिय य मन्त्र उन लीलाआपर नहीं घटत ऐसा कहनेका साहस कोई नहीं कर सकता। इससे वेदामे अवतारवाद होना अति स्पष्ट हो जाता है।

स्वयं भगवान्‌का दिव्य जन्म

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

मुदिरमदमुदार मर्दयन्नङ्गकान्त्या
वसनरुचिनिरस्ताम्भोजकिञ्जल्कशोभ ।
तरुणिमतरणीक्षाविक्लवद्वाल्यचन्द्रो
व्रजनवयुवराज काङ्क्षित मे कृपीष्ट॥
नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं
विकसितनलिनास्य विस्फुरन्मन्दहास्यम्।
कनकरुचिदुकूल चारुवर्हावचूल
कमपि निखिलसार नौमि गोपीकुमारम्॥

अजन्माका जन्म

जन्माष्टमीके दिन इसी भारतमे मथुराके कस-कारागारमे सर्वलोकमहेश्वर सकल-ईश्वरेश्वर, सर्वशक्तिमान्, नित्य निर्गुण-सगुण सकल अवतारमूल, सर्वमय-सर्वातीत अखिलरसामृतसिन्धु स्वय भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य जन्म हुआ था। नित्य अजन्माका यह जन्म बडा ही विलक्षण है। इस दिव्य जन्मको जाननेवाले पुरुप जन्मबन्धनसे मुक्त हा जाते हैं। जिस मङ्गलमय क्षणम इन परमानन्दघनका प्राकट्य हुआ, उस समय मध्यरात्रि थी, चारो ओर अन्धकारका साम्राज्य था, परतु अकस्मात् सारी प्रकृति उल्लाससे भरकर उत्सवमयी बन गयी। महाभाग्यवान् श्रीवसुदेवजीको अनन्त सूर्य-चन्द्रके सदृश प्रचण्ड शीतल प्रकाश दिखलायी पडा और उसी प्रकाशम दिखलायी दिया एक अद्भुत बालक। श्यामसुन्दर, चतुर्भुज, शङ्ख-गदा-चक्र और पद्मसे सुशोभित, कमलके समान सुकोमल और विशाल नत्र, वक्ष स्थलपर श्रीवत्स तथा भृगुलताके चिह्न गलेमे कौस्तुभमणि, मस्तकपर महान् वैदूर्य-रत्न-खचित चमकता हुआ किरीट, कानोम झलमलाते हुए कुण्डल, जिनकी प्रभा अरुणाभ कपोलापर पड रही है। सुन्दर काले घुँघराले केश, भुजाआमे बाजूबद और हाथामे कङ्कण कटिदेशमं देदीप्यमान करधनी, सब प्रकारसे सुशाभित अङ्ग-अङ्गसे सौन्दर्यकी रसधारा बह रही है। कैसा अद्भुत बालक! मानव-बालक माताके उदरसे निकलते हैं, तब उनकी आँख मुँदी होती हैं। दाई पाछ-पाछकर उन्हे खोलती है, पर इनके तो आकर्ण विशाल निर्मल, पद्मसदृश सुन्दर नेत्र हैं। सम्भव है, कहीं अधिक भुजावाला बालक भी जन्म जाय परतु इनके तो चारो हाथ दिव्य आयुधोस सुशोभित हैं। साधारणतया अलकारोसे बालकोकी शोभा बढा करती है, किंतु यहाँ तो ऐसा शाभामय बालक है कि इसके दिव्य दहसे सलग्न हाकर अलकारोको ही शोभा प्राप्त हो रही है। ऐसा अपूर्व बालक कभी किसीने कहीं नहीं देखा-सुना। यही दिव्य जन्म है। वास्तवमे भगवान् सदा ही जन्म और मरणसे रहित हे। जन्म और मृत्यु प्राकृत देहम ही होते हैं। भगवान्‌का मङ्गलविग्रह अप्राकृत ही नहीं, परम दिव्य है। न वह कर्मजनित हे न पाञ्चभौतिक। वह नित्य सच्चिदानन्दमय 'भगवद्देह' शाश्वत, हानोपादानरहित और स्वरूपमय है। उसके आविर्भावका नाम 'जन्म' है और उसके इस लोकसे अदृश्य हो जानेका नाम 'देहत्याग' है।

प्राकृतदेह और भगवद्देह

देह प्रधानतया दो प्रकारक होते हैं—प्राकृत और अप्राकृत। प्रकृतिराज्यके समस्त देह प्राकृत हैं और प्रकृतिसे परे दिव्यचिन्मयराज्यक अप्राकृत। प्राकृत देहका निर्माण स्थूल, सूक्ष्म ओर कारण—इन तीन भेदोंसे होता है। जबतक कारण देह रहता है, तबतक प्राकृत देहसे मुक्ति नहीं मिलती। इस त्रिविधदेहसमन्वित प्राकृत देहसे छूटकर—प्रकृतिस विमुक्त होकर केवल आत्मरूपमे ही स्थित होने या भगवान्‌के चिन्मय पार्षदादि दिव्य स्वरूपकी प्राप्ति होनेका नाम ही 'मुक्ति' है। मैथुनी-अमैथुनी, योनिज-अयोनिज—सभी प्राकृत शरीर वस्तुत योनि और बिन्दुके सयोगसे ही बनते हैं। इनम कई स्तर हैं। अधोगामी बिन्दुसे उत्पन्न शरीर अधम है और ऊर्ध्वगामीसे निर्मित उत्तम। कामप्रेरित मैथुनसे उत्पन्न शरीर सबसे निकृष्ट है, किसी प्रसङ्गविशेषपर ऊर्ध्वरेता पुरुपके सकल्पसे बिन्दुके अधोगामी होनेपर उससे उत्पन्न हानेवाला शरीर उससे उत्तम द्वितीय श्रेणीका हे ऊर्ध्वरेता पुरुपके सकल्पमात्रसे केवल नारी-शरीरके मस्तक कण्ठ कर्ण, हृदय या नाभि आदिक स्पर्शमात्रसे उत्पन्न शरीर द्वितीयकी अपेक्षा भी उत्तम तृतीय श्रेणीका है। इसम भी नीचके अङ्गोकी अपेक्षा ऊपरके

अङ्गाके स्पर्शसे उत्पन्न शरीर अपेक्षाकृत उत्तम है। बिना स्पर्शके केवल दृष्टिद्वारा उत्पन्न उससे भी उत्तम चतुर्थ श्रेणीका है और बिना देखे ही सकल्पमात्रसे उत्पन्न शरीर उससे भी श्रेष्ठ पञ्चम श्रेणीका है। इनमे प्रथम और द्वितीय श्रेणीके शरीर मैथुनी हैं ओर शेष तीनो अमैथुनी हैं। अतएव पहले दोनोकी अपेक्षा ये तीनो श्रेष्ठ तथा शुद्ध हैं। इनमे पञ्चम शरीर सर्वोत्तम है। स्त्रीपिण्ड या पुरुषपिण्डके बिना भी शरीर उत्पन्न होते हैं, परतु उनमे भी सूक्ष्म योनि और बिन्दुका सम्बन्ध तो रहता ही है। प्रेतादि लोकोमें वायुप्रधान ओर देवलोकादिमे तेज प्रधान तत्तत्-लोकानुरूप देह भी प्राकृतिक—भौतिक ही हैं। योगियोंके सिद्धिजनित 'निर्माण-शरीर' बहुत शुद्ध हैं, परतु वे भी प्रकृतिसे अतीत नहीं है। अप्राकृत पार्षदादिके अथवा भगवान्के मङ्गलमय लीलासङ्गियोंके भावदेह अप्राकृत हैं और वे प्राकृत शरीरसे अत्यन्त विलक्षण है पर वे भी भगवद्देहसे निम्नश्रेणीके ही हैं। भगवद्देह तो भगवत्स्वरूप तथा सर्वथा अनिर्वचनीय है।

भगवान् नित्य सच्चिदानन्दमय हैं, इसलिये भगवान्के सभी अवतार नित्य सच्चिदानन्दघन ही होते हैं, पर लीला-विकासके तारतम्यसे अवतारोमे भेद होता है। प्रधानतया अवतारोके चार प्रकार माने गये हैं—पुरुषावतार, गुणावतार लीलावतार और मन्वन्तरावतार।

पुरुषावतार

भगवान्ने आदिमे लोकसृष्टिकी इच्छासे महत्तत्त्वादि-सम्भूत षोडशकलात्मक पुरुषावतार धारण किया था। भगवान्का चतुर्व्यूह है—श्रीवासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। 'भगवान्' शब्द श्रीवासुदेवके लिये प्रयुक्त होता है। इन्हीको 'आदिदेव नारायण' भी कहा जाता है। पुरुषावतारके तीन भेद हैं। इनमे आद्यपुरुषावतार उपर्युक्त षोडशकलात्मक पुरुष हैं, ये ही 'श्रीसकर्षण' हैं। इन्हींको 'कारणार्णवशायी' या 'महाविष्णु' कहते हैं। पुरुषसूक्तमे वर्णित 'सहस्रशीर्ष पुरुष' ये ही हैं। ये अशरीरी प्रथम पुरुष कारण-सृष्टि अर्थात् तत्त्वसमूहके आत्मा हैं।

आद्यपुरुषावतार भगवान् ब्रह्माण्डमे अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट होते हैं वे द्वितीय पुरुषावतार 'श्रीप्रद्युम्न' हैं। ये ही 'गर्भोदकशायी' रूप हैं। इन्हीं पद्मनाभ भगवान्के नाभिकमलसे हिरण्यगर्भका प्रादुर्भाव होता है—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वत।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद् ब्रह्मा विश्वसृजां पति॥
(श्रीमद्भा० १।३।२)

तृतीय पुरुषावतार 'श्रीअनिरुद्ध' हैं, जो प्रादेशमात्र विग्रहसे समस्त जीवोमे अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं, प्रत्येक जीवमे अधिष्ठित हैं। ये क्षीराब्धिशायी सबके पालनकर्ता हैं।

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे
प्रादेशमात्र पुरुष वसन्तम्।
चतुर्भुज कञ्जरथाङ्गशङ्ख-
गदाधर धारणया स्मरन्ति॥
(श्रीमद्भा० २।२।८)

गुणावतार—(सत्त्व, रज और तमकी लीलाके लिये ही प्रकट) श्रीविष्णु, श्रीब्रह्मा और श्रीरुद्र हैं। इनका आविर्भाव गर्भोदकशायी द्वितीय पुरुषावतार 'श्रीप्रद्युम्न' से होता है।

द्वितीय पुरुषावतार लीलाके लिये स्वय ही इस विश्वकी स्थिति, पालन तथा सहारके निमित्त तीनो गुणोको धारण करते हैं परतु उनके अधिष्ठाता होकर वे 'विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र' नाम ग्रहण करते हैं। वस्तुत ये कभी गुणोके वशमे नहीं होते और नित्य स्वरूपस्थित होते हुए ही त्रिविध गुणमयी लीला करते हैं।

लीलावतार

भगवान् जो अपनी मङ्गलमयी इच्छासे विविध दिव्य मङ्गल-विग्रहोद्वारा बिना किसी प्रयासके अनेक विविध विचित्रताओसे पूर्ण नित्य-नवीन रसमयी क्रीडा करते हैं, उस क्रीडाका नाम ही लीला है। ऐसी लीलाके लिये भगवान् जो मङ्गलविग्रह प्रकट करते हैं, उन्हे 'लीलावतार' कहा जाता है। चतुस्सन (सनकादि चारो मुनि), नारद वराह, मत्स्य यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय हयग्रीव, हस ध्रुवप्रिय विष्णु, ऋषभदेव पृथु, श्रीनृसिह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी वामन, परशुराम, श्रीराम, व्यासदेव श्रीबलराम, बुद्ध और कल्कि लीलावतार हैं। इन्हे 'कल्पावतार' भी कहते हैं।

मन्वन्तरावतार

स्वायम्भुव आदि चौदह मन्वन्तरावतार माने गये हैं। प्रत्येक मन्वन्तरके कालतक प्रत्येक अवतारका लीलाकार्य

होनेसे उन्हे 'मन्वन्तरावतार' कहा गया है।

शक्ति-अभिव्यक्तिके भेदसे नामभेद

भगवान्के सभी अवतार परिपूर्णतम हैं, किसीमे स्वरूपत तथा तत्त्वत न्यूनाधिकता नहीं है, तथापि शक्तिकी अभिव्यक्तिकी न्यूनाधिकताको लेकर उनके चार प्रकार माने गये हैं—'आवेश', 'प्राभव', 'वैभव' और 'परावस्थ'।

उपर्युक्त अवतारोमे चतुस्सन, नारद, पृथु और परशुराम **आवेशावतार** हैं। कल्किको भी आवेशावतार कहा गया है।

'प्राभव' अवतारोके दो भेद हैं, जिनमे एक प्रकारके अवतार तो थोडे ही समयतक प्रकट रहते हैं—जैसे मोहिनी अवतार और हसावतार आदि, जो अपना-अपना लीलाकार्य सम्पन्न करके तुरत अन्तर्धान हो गये। दूसरे प्रकारके प्राभव अवतारोम शास्त्रनिर्माता मुनियोके सदृश चेष्टा होती है। जैसे महाभारत-पुराणादिके प्रणेता भगवान् वदव्यास, साख्यप्रणता भगवान् कपिल एव दत्तात्रेय, धन्वन्तरि और ऋपभदेव—ये सब प्राभव-अवतार हैं, इनमे आवेशावतारोसे शक्ति-अभिव्यक्तिकी अधिकता तथा प्राभवावतारोकी अपेक्षा न्यूनता हाती है।

वैभवावतार ये हैं—कूर्म, मत्स्य, नर-नारायण, वराह, हयग्रीव, पद्मगर्भ, बलभद्र और चतुर्दश मन्वन्तरावतार। इनमे कुछकी गणना अन्य अवतार-प्रकारामे भी की जाती हैं।

परावस्थावतार प्रधानतया तीन हैं—नृसिह श्रीराम और श्रीकृष्ण ये षडैश्वर्यपरिपूर्ण हैं।

नृसिहरामकृष्णेपु षाड्गुण्य परिपूरितम्।
परावस्थास्तु ते साम्य दीपादुत्पन्नदीपवत्॥

इनम श्रीनृसिहावतारका कार्य एक प्रह्लादरक्षण एव हिरण्यकशिपु-वध ही है तथा इनका प्राकट्य भी अल्पकालस्थायी है। अतएव मुख्यतया श्रीराम और श्रीकृष्ण ही परावस्थावतार हैं।

इनमे भगवान् श्रीकृष्णको **'एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** कहा है। अर्थात् उपर्युक्त सनकादि-लीलावतार भगवान्के अश-कला—विभूतिरूप हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् स्वय भगवान् हैं। भगवान् श्रीकृष्णका विष्णुपुराणम 'सित-कृष्ण-केश' कहकर पुरुपावतारक केशरूप अशावतार बताया गया है। महाभारतमे कई जगह इन्हे नरके साथी नारायण ऋषिका अवतार कहा गया है, कहीं वामनावतार कहा हे और कहीं भगवान् विष्णुका अवतार बतलाया है। वस्तुत ये सभी वर्णन ठीक हे। विभिन्न कल्पाम भगवान् श्रीकृष्णके ऐस अवतार भी होते हैं, परतु इस सारस्वत कल्पमे स्वय भगवान् अपन समस्त अशकला-वैभवाक साथ परिपूर्णरूपसे प्रकट हुए हैं। अतएव इनमे सभीका समावेश है। ब्रह्माजीने स्वय इस पूर्णताको अपन दिव्य नेत्रासे देखा था। सृष्टिम प्राकृत-अप्राकृत जो कुछ भी तत्त्व हैं, श्रीकृष्ण सभीके मूल तथा आत्मा हैं। वे समस्त जीवोके, समस्त दवताआके, समस्त ईश्वराके, समस्त अवतारोके एकमात्र कारण, आश्रय और स्वरूप हैं। सित-कृष्ण-केशावतार, नारायणावतार, पुरुपावतार—सभी इनके अन्तर्गत हैं। वे क्या नहीं हैं ? वे सबके सब कुछ हैं, वे ही सब कुछ हैं। समस्त पुरुप, अश-कला, विभूति, लीला-शक्ति आदि अवतार उन्हींम अधिष्ठित हैं। इसीसे वे स्वय भगवान् हैं—**'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'**

लोचन मीन, लसै पग कूरम, कोल धराधर की छबि छाजै।
ये बलि मोहन साँवरे राम है दुर्जन राजन को हनि काजै॥
है बल मै बल, ध्यान मै बुद्ध, लखे कल्की बिपदा सब भाजै।
मध्य नृसिह है, कान्ह जू मै सिगरे अवतारन क गुन राजै॥

किन्हीं महानुभावोंने तीन तत्त्व मान हैं—'विष्णु' 'महाविष्णु' और 'महेश्वर'। भगवान् श्रीकृष्णम इन तीनाका समावेश है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णखण्ड)-म आया है कि पृथ्वी भाराक्रान्त होकर ब्रह्माजीक शरणमे जाती है। ब्रह्माजी देवताआको साथ लेकर महेश्वर श्रीकृष्णके गालोकधामम पहुँचते हैं। नारायण ऋपि भा उनक साथ रहते हैं। ब्रह्मा तथा दवताआकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्ण अवतार ग्रहण करना स्वीकार करते हैं तब अवतारका आयोजन होन लगता है। अकस्मात् एक मणि-रत्न-खचित अपूर्व सुन्दर रथ दिखायी पडता है। उस रथपर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किय हुए महाविष्णु विराजित हैं। वे नारायण रथस उतरकर महेश्वर श्रीकृष्णक शरीरमें विलीन हो जाते हैं—**'गत्वा नारायणो देवो विलीन कृष्णविग्रहे।'**

परतु महाविष्णुके विलीन होनेपर भी श्रीकृष्णावतारका स्वरूप पूर्णतया नहीं बना, तब एक दूसरे स्वर्णरथपर आरूढ पृथ्वीपति श्रीविष्णु वहाँ दिखायी दिये और वे भी श्रीराधिकेश्वर श्रीकृष्णके शरीरम विलीन हो गये—'**स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेश्वरविग्रहे।**'

अब अवतारक लिये पार्थिव मानुषी तत्त्वकी आवश्यकता हुई। नारायण ऋषि वहाँ थे ही, वे भी उन्हींमे विलीन हो गये ओर या महाविष्णु-विष्णु-नारायणरूप स्वय महश्वर भगवान् श्रीकृष्णन अवतार लिया तथा नारायणके साथी नरऋषि अर्जुनरूपसे अवतारलीलाम सहायतार्थ अवतरित हुए।

श्रीमद्भागवतके अनुसार असुररूप दुष्ट राजाओके भारसे आक्रान्त दु खित पृथ्वी गारूप धारण करक करुण-क्रन्दन करती हुई ब्रह्माजीके पास जाती है ओर ब्रह्माजी भगवान् शकर तथा अन्यान्य दवताआको साथ लेकर क्षीरसागरपर पहुँचते हें ओर क्षीराब्धिशायी पुरुषरूप भगवान्का स्तवन करते हैं। ये क्षीरोदशायी पुरुष ही व्यष्टि पृथ्वीक राजा हैं, अतएव पृथ्वी अपना दु ख इन्हींका सुनाया करती है। ब्रह्मादि दवताआके स्तवन करनेपर ब्रह्माजी ध्यानमग्न हो जाते हैं और उन समाधिस्थ ब्रह्माजीको क्षीराब्धिशायी भगवान्की आकाशवाणी सुनायी देती हे। तदनन्तर वे देवताआसे कहते हैं—

> **गा पौरुषीं मे शृणुतामरा पुन-**
> **विधीयतामाशु तथैव मा चिरम्॥**
> **पुरैव पुसावधृतो धराज्वरो**
> **भवद्भिरंशैर्यदुपूपजन्यताम् ।**
> **स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वर**
> **स्वकालशक्त्या क्षपयश्चरेद् भुवि॥**
> **वसुदवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुष पर।**
> **जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रिय॥**
>
> (श्रीमद्भा० १०।१।२१—२३)

'देवताओ! मैंने भगवान्की आकाशवाणी सुनी है उसे तुमलोग मुझसे सुना और फिर बिना विलम्ब इसीके अनुसार करो। हमलोगाकी प्रार्थनाके पूर्व ही भगवान् पृथ्वाक सतापको जान चुके हैं। वे ईश्वराक भी ईश्वर अपनी कालशक्तिके द्वारा धराका भार हरण करनेके लिये जबतक पृथ्वीपर लीला कर, तबतक तुमलोग भी यदुकुलम जन्म लकर उनकी लीलामे योग दो। वे परम पुरुष भगवान् स्वय वसुदेवजीके घरमे प्रकट होग। उनकी तथा उनकी प्रियतमा (श्रीराधाजी)-की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ भी वहाँ जन्म धारण कर।'

क्षीरोदशायी भगवान्के इस कथनका भी यही अभिप्राय हे कि 'साक्षात् परम पुरुष स्वय भगवान् प्रकट होगे वे क्षीराब्धिशायी नहीं।' अतएव स्वय पुरुषोत्तमभगवान् ही, जिनके अशावतार नारायण हैं, वसुदेवजीके घर प्रकट हुए थे। *देवकीजीकी स्तुतिसे भी यही सिद्ध है—*

> **यस्याशाशाशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदया।**
> **भवन्ति किल विश्वात्मस्त त्वाद्याह गति गता॥**
>
> (श्रीमद्भा० १०।८५।३१)

'हे आद्य! जिस आपके अश (पुरुषावतार)-का अश (प्रकृति) है उसके भी अश (सत्त्वादि गुण)-के भाग (लशमात्र)-से इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हुआ करते हें, विश्वात्मन्! आज मैं उन्हीं आपके शरण हो रही हूँ।'

भगवान् एक ही है

कुछ महानुभाव ऐसा मानते हैं कि लीलामे अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णका त्रिविध प्रकाश है। कुरुक्षेत्रमे श्रीकृष्ण पूर्ण सत् और ज्ञानशक्तिप्रधान हैं, द्वारका और मथुराम पूर्णतर चित् और क्रियाशक्तिप्रधान हैं एव श्रीवृन्दावनमे श्रीकृष्ण पूर्णतम आनन्द और इच्छाशक्तिप्रधान हैं। कुछ लोग महाभारत और श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्णको अलग-अलग दो मानते हें। यह सब उनकी अपनी भावना है। *'जिन्ह के रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥'* वस्तुत परिपूर्णतम भगवान् एक ही हैं, उनका अनन्त लीला-विलास है और लीलानुसार उनके स्वरूप-वैचित्र्यपरक हैं, वस्तुतत्त्व एक ही है।

जिस किसी भी भावस काई उन्हे देख—अपनी-अपनी दृष्टिक अनुसार उनके दर्शन करे सब करते एक ही भगवान्के हैं। उनम छाटा-बडा न मानकर अत्यन्त प्रेम-भक्तिके साथ अपन इष्ट स्वरूपकी सेवाम ही लगे रहना चाहिये।

भगवान् कृष्णके जन्मकी कथा

(गोलोकवासी परमभागवत सत श्रीरामचन्द्रडोंगरेजी महाराज)

शुकदेवजीने राधाकृष्णसे प्रार्थना की कि हृदयमे विराजमान होकर वे ही कथा करे।

ज्ञानी पुरुष मृत्युको टालनेका नहीं, सुधारनेका प्रयत्न करते हैं। मृत्युको सुधारते हैं कृष्णकथा, कृष्णनाम, कृष्णभक्ति। जिसकी मृत्यु सुधरती है, उसे दुबारा जन्म लेना नहीं पडता।

वैर और वासना जीवनको बिगाडते हे। उनके दूर होनेपर ही जीवन और मृत्यु उजागर हाते है। वैर और वासनाको मृत्युके पहले ही हटा दो, अन्यथा मृत्यु बिगड जायगी। तुम वैरीका वन्दन करो फिर भी वह वैर बनाये रहे तो उसके पापका साझीदार तुम्हे बनना नहीं पडेगा।

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमे निरोधलीला है। ईश्वरमे मनको लय करना ही निरोध है। श्रीकृष्णको अपने हृदयमे रखोगे या श्रीकृष्णके हृदयमे बसोगे तो मनका निरोध होगा। मनका निरोध ही मुक्ति है।

धरतीपर दैत्योका उपद्रव बढ गया, लोग दु खी हो गये, पाप बढ गया। धरतीसे यह सब सहा न गया तो उसने ब्रह्माजीकी शरण ली। ब्रह्मा आदि देव ब्रह्मलोकमे नारायणके पास आये और पुरुषसूक्तसे प्रार्थना करने लगे—नाथ! अब तो कृपा कीजिये। आप अवतार लीजिये। भगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा—कुछ ही समयमे मैं वसुदेव-देवकीके घर प्रकट होऊँगा, मेरी सेवाके लिये तुम सब देव भी अवतार लेना। ब्रह्माने आकाशवाणी सुनी और सभी देवाको आश्वस्त किया।

इधर मथुराम विवाह करनेके लिये वसुदेव आये। वसुदेव-देवकीका विवाह हुआ। स्वय कसने ही वर-वधूका रथ चलाया।

कसने वसुदेवको बहुत सताया तो भगवान्का प्राकट्य शीघ्र हो गया। भक्तोके दु ख भगवान्से सहे नहीं जाते। पापीका दु ख भगवान् साक्षीके रूपम देख लेते हैं और सह लते हैं, किंतु पुण्यशालीका दु ख उनसे सहा नहीं जाता।

आकाशवाणी सुनायी दी—'हे कस देवकीकी आठवीं सतान तेरी हत्या करेगी।'

कसने आकाशवाणी सुनी तो वह तलवार लेकर देवकीकी हत्या करनेके लिये तैयार हो गया। तब वसुदेव

उसे समझाने लगे—जो आया है, वह जायगा। जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी होगी। इसीलिये तो महात्माजन मृत्युको टालनेका नहीं, सुधारनेका प्रयत्न करत हैं। मृत्युका निवारण अशक्य है। **'शीर्यते इति शरीरम्।'** शरीरका नाश ता होगा ही। वैर न करो। वर या सुखकी वासना मृत्युको भ्रष्ट करती है। वैर-वासनाका त्याग करके प्रभुस्मरण करता हुआ जो मरता है उसीकी मृत्यु उजागर होती है। देवकीकी हत्या करनेसे तो तुम अमर हो नहीं सकते और देवकी ता तुम्हारी मृत्युका कारण है नहीं।

कस—हाँ, यह ता है।

वसुदेव—तो मैं देवकीकी सभी सतान तुम्हार हवाले करता रहूँगा।

कसन भी सोचा कि यह भी ठीक है। स्त्रीहत्याके पापसे तो बच जाऊँगा। उसने कहा—अच्छा मैं देवकीकी हत्या नहीं करूँगा।

वसुदेव शुद्ध सत्त्व गुणका स्वरूप है। विशुद्ध चित्त ही वसुदेव है देवकी निष्काम बुद्धि है। इन दानाक

मिलन होनेपर भगवान्‌का जन्म होता है।

वसुदेव-देवकी घर आये। प्रथम बालकका जन्म हुआ। वसुदेवने कसको दे दिया। कसका हृदय पिघला। इस बालकको मारनेस मुझे कोई लाभ नहीं हागा। आठवाँ बालक मुझे मारेगा। यह तो पहला है। मैं इसे मारूँगा नहीं। सातो बालकाको अपने पास ही रखना। मेरा काल होनेवाला आठवाँ बालक ही मुझे देना। वसुदेवजी बालकको लेकर वापस लौटे।

नारदजीन सोचा कि यदि यह कस अच्छाई करने लगेगा ता पाप कैसे कर पायेगा और यह पाप नहीं करेगा तो भगवान् अवतार नहीं लग। कसका पाप नहीं बढेगा तो वह शीघ्र मरेगा भी नहीं। पाप न करनेवालेको भगवान् जल्दी मारते नहीं हैं।

ईश्वर तो किसीका भी नहीं मारते। मनुष्यको उसका पाप ही मारता है। हमेशा दो वस्तुआस डरते रहो—पापसे और ईश्वरसे।

नारदजी कसके पास आये और कहा, कस! तू तो बहुत भोला है। देव तुम्हे मारनेकी सोच रहे हैं। वसुदेवके बालकोको छोडकर तुमने अच्छा नहीं किया। कोई भी बालक आठवाँ हो सकता है। यदि आठव बालकका पहला माना जाय तो वह पहला बालक आठवाँ माना जायगा।

कस—तो क्या मैं सभी बालकोकी हत्या करता रहूँ?

नारदजीने सोचा कि यदि मैं सम्मति दूँगा तो मुझे भी बालहत्याका पाप लग ही जायगा।

दूसरोको पापकी प्रेरणा देनवाला भी पापी है।

नारदजी—राजन्, मैं तो तुम्हे सावधान करनेके लिये आया हूँ। तुम्हे जो ठीक लगे वह करते रहना।

इसके बाद वे 'नारायण-नारायण' बोलते हुए चले गये।

नारदजीने कसके पापको बढानेहेतु ही उसे उल्टा-सीधा पढा दिया।

कसने वसुदेव-देवकीको कारागारम बन्द कर दिया। बिना अपराध ही बन्धनमे बँध गये, फिर भी उन्होने मान लिया कि शायद ईश्वरको यही पसद है। यह तो भगवान्‌की कृपा ही है कि उनका नामस्मरण करनेके लिय एकान्तवास मिला है। अतिशय दु खको भी प्रभुका कृपा ही समझनी चाहिये।

कस अभिमान है। वह जीवमात्रको बन्द किये रहता है। सभी जीव इस ससाररूपी कारागृहम बन्द हैं। हम सब बन्दी हैं। जीव जबतक कामक आधीन है, तबतक वह स्वतन्त्र नहीं है। सभी बन्दी ही हैं।

वसुदेव-देवकी कारावासम भी जाग्रत् थे, जब कि हम तो साये ही रहते हैं। हमारा जीव कारागृहक एकान्तम जाग्रत् होनेकी अपेक्षा साया ही रहता है। ससारम जा जाग्रत् रहता है, वही भगवान्‌का पा सकता है—

'जो जागत है सो पावत है। जो सोवत है सो खोवत है॥'

जो भगवान्‌के लिय जागता है उसे ही भगवान् मिलते हैं। कबीरजीने कहा है—

सुखिया सब ससार है, खावे अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै॥

कबीर उनके लिये जागे और रोय, सो उन्ह भगवान् मिले। मीराँबाई भी उनके लिये जागीं और रोयीं सो उन्हे भी भगवान् मिले।

कसने देवकीकी छ सतानाकी हत्या कर दी।

मायाका आश्रय लिये बिना भगवान् अवतार नहीं ले सकते। शुद्ध ब्रह्मका अवतार हो नहीं सकता। यदि ईश्वर शुद्ध स्वरूपसे आये तो जो भी उनका दर्शन पा सके उसका उद्धार हो जाय। दुर्योधनने द्वारकाधीशके दर्शन तो किये थे किंतु मायासे आवृत प्रभुके दर्शन किये थे। जो निरावृत ब्रह्मका साक्षात्कार पाता है उसे मुक्ति मिलती है। मायावृत ब्रह्मके दर्शककी मुक्ति नहीं होती। सम्भव है, भगवान्‌के अवतारके समय हम कोडे-मकोडे हागे। हमने भगवान्‌के दर्शन ता किये होगे, फिर भी आजतक हमारा उद्धार नहीं हो पाया है।

योगमायाका आगमन हुआ। उन्होने सातवे गर्भकी स्थापना रोहिणीके उदरमे की। रोहिणी सगर्भा हुई और दाऊजी महाराज प्रकट हुए भाद्रपद शुक्ल एकादशीके दिन। 'बलदेव' शब्दब्रह्मका स्वरूप है। पहले शब्दब्रह्म आता है और बादमे परब्रह्म। बलरामका आगमन होनेपर

ही परब्रह्म गोकुलमे आते हैं।

दाऊजीने आँखे खोलीं ही नहीं। जबतक मेरा कन्हैया नहीं आयेगा, मैं आँख नहीं खोलूँगा। यशोदाजी पूर्णमासीसे बलरामकी नजर उतारनेकी विनती करती हैं। पूर्णमासी कहती है कि यह तो किसीका ध्यान कर रहा है। इस बालकके कारण तेरे घर बालकृष्ण पधारेंगे।

यशोदाने सभीको प्रसन्न किया।

यश सभीको दोगे और अपयश अपने पास रखोगे तो कृष्ण प्रसन्न होगे। जीव तो ऐसा दुष्ट है कि यश अपने पास रखता है और अपयश दूसरोके सिर मढ देता है।

यशोदा—'**यश ददाति इति यशोदा।**' जो दूसरोको यश देती है, वह यशोदा है।

नन्द—जो सभीको आनन्द देता है, वही नन्द है।

विचार, वाणी, वर्तन, सदाचारसे जो अन्यको आनन्द देता है, उसीके घर भगवान् पधारते हैं। जो सभीको आनन्द देता है, उसीको परमानन्द मिलता है।

नन्दबाबाने सभीको आनन्द दिया सो उनके घर परमानन्द-प्रभु आ रहे थे।

सभी गोपाल महर्षि शाण्डिल्यके पास आये। महाराज, कुछ ऐसा कीजिये कि नन्दजीके घर पुत्रका जन्म हो। शाण्डिल्यजीके कहनेपर सभी एकादशीका व्रत करने लगे।

एकादशी महाव्रत है। एकादशीके दिन पान-सुपारी खाना या सोना भी निषिद्ध है। थोडा-सा फलाहार ही किया जा सकता है। कई लोग साबूदाना और सूरण भर पेट खाते हैं। सूरण-आलू आदि खानेपर अन्नदोष तो नहीं होता है, किंतु एकादशीव्रतका पुण्य भी नहीं मिलता है। अगले दिन क्या खायगे—ऐसा सोच-विचार एकादशीके दिन करनेसे व्रतभग होगा। एकादशीके दिन तो भगवत्-स्मरण ही करना चाहिये।

सभी ग्वालोकी एक ही इच्छा थी कि परमात्मा प्रसन्न हो जायँ और नन्दबाबाके घर पुत्र-जन्म हो। भाद्रपद शुक्ल एकादशीसे सभी गोकुलवासी निर्जला एकादशी आदि व्रत करने लगे सो भगवान् गोकुलमे पधारे। बालकोने भी व्रत किया था सो वे कहते हैं कि हमारे व्रतके कारण ही कन्हैया आये। कन्हैया तो सबका है। नन्द-महोत्सवमे सारा गाँव आनन्दसे नाच रहा था। सभीको लगता है कि कन्हैया उसीका है। सारे गाँवने जो व्रत किया था।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

इधर देवकीने आठवाँ गर्भ धारण किया तो उधर कसने सेवकोंको सावधान कर दिया। मेरा काल आ रहा है।

सेवकोने कहा—हम तो सदा जागते ही रहते हैं। हम चौकन्ने ही रहते हैं। बालकका जन्म होते ही आपको समाचार दे देंगे।

देवगण देवकी-गर्भवासी भगवान् नारायणकी प्रार्थना करते हैं। आप तो सत्यस्वरूप त्रिकालाबाधित हैं। अपना वचन सत्य करनेके हेतु आप पधार रहे हैं। अनेक विद्वानोकी अधोगति हमने देखी है, किंतु जो व्यक्ति आपकी लीलाओका स्मरण और आपके नामका जप करता है, उसकी कभी अधोगति नहीं होती। नाथ! आप कृपा करे।

देवोने देवकीको भी आश्वासन दिया। नौ मास परिपूर्ण होनेको आये। मन, बुद्धि, पञ्चप्राण आदिकी शुद्धि हुई है। इन सबकी शुद्धि होनेपर परमात्माके दर्शनकी आतुरता बढती जाती है। ईश्वरके दर्शनके बिना चैन नहीं आता। अत जब जीव तडपता है और अतिशय आतुर हो जाता है तभी भगवान् अवतार धारण करते हैं।

जब परम शोभायमान और सर्वगुणसम्पन्न घडी आयी, चन्द्र रोहिणी नक्षत्रमे आया, दिशाएँ स्वच्छ हुईं, आकाश निर्मल हुआ, नदीका नीर निर्मल हुआ, वन-उपवनमे पक्षी और भँवरे गुनगुनाने लगे, शीतल सुगन्धित, पवित्र हवा बहने लगी, महात्माओके मन प्रसन्न हुए, स्वर्गमे दुन्दुभि बजने लगी, मुनि और देवगण आनन्दसे पुष्पवृष्टि करने लगे और परम पवित्र समय आ पहुँचा। भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीकी मध्यरात्रिका समय सम्पन्न हुआ और कमलनयन चतुर्भुज नारायण भगवान् बालकका रूप लेकर वसुदेव-देवकीके समक्ष प्रकट हुए।

भगवान् अपने श्रीहस्तोमे शङ्ख, चक्र गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। चारो ओर प्रकाश बिखर गया। उनका चतुर्भुजस्वरूप यह बताता है कि उनके चरणोकी

शरण लेनवालोके चारा पुरुपार्थ वे सिद्ध करग।

जा भक्त अनन्यतासे मरी आराधना करता है उसके धम अर्थ काम माक्ष चारा पुरुपार्थ मैं सिद्ध करता हूँ आर उसकी हर प्रकारस में रक्षा करता हूँ।

सम्पत्ति आर सततिका सर्वनाश हा गया था फिर भी वसुदेव-देवकी दीनतापूवक ईश्वरकी आराधना करते ह। प्रभुन कहा मरे चतुर्भुजस्वरूपका दर्शन कर लीजिये और ग्यारह वर्पतक मरा ध्यान करते रहिय। मैं अवश्य आपके पास आऊँगा।

भगवान्‌का चतुर्भुजस्वरूप अदृश्य हो गया और दो छाटे-छाटे हाथावाल बाल कन्हैया प्रकट हुए।

बाल कन्हेयालालकी जय।

प्रभु प्रत्यक्ष प्रकट हो जायँ फिर भी ध्यानकी तो आवश्यकता बनी ही रहती है।

ज्ञानदाप प्रकट होनेके बाद भी, एकाध इन्द्रिय-द्वार खुला रह जानपर विषयरूपी पवन प्रविष्ट होकर ज्ञानदीपको बुझा देता है। इस ज्ञानमार्गमे कई बाधाएँ आती रहती हैं।

भक्तिमार्ग बडा सरल ह। प्रत्येक इन्द्रियाको भक्तिरसम भिगो दो फिर विषयरूपी पवन सता नहीं पायगा।

जब ग्यारह इन्द्रियाँ ध्यानम एकाग्र हो जाती हैं तब प्रभुका साक्षात्कार हाता है। इसी कारणसे तो गीताजीम भी ग्यारहव अध्यायम अर्जुनको विश्वरूपके दर्शन हाते हैं।

प्रभुने कहा, मुझे गाकुलम नन्दबाबाके घर छोड आइये। वसुदवने उन्ह टोकरीम लिटाया किंतु बाहर कैसे निकला जाय? कारागृहके द्वार बन्द हैं और बन्धन भी टूटत नहीं ह, किंतु ज्याही टोकरी सरपर उठायी सारे बन्धन टूट गये।

मस्तकम बुद्धि हे। जब बुद्धि ईश्वरका अनुभव करती हे तब ससारक सार बन्धन टूट जाते हैं। जो भगवान्‌को अपन मस्तकपर विराजमान करता है उसक लिये कारागारके तो क्या माक्षक द्वार भी खुल जाते हैं। हाथ-पाँवकी बेडियाँ टूट जाती हैं नदीकी बाढ भी थम जाती हैं। जिसके सिरपर भगवान् हैं, उसे मार्गम विघ्न बाधित नहीं कर सकते।

मात्र घरम आनेस नहीं मनम भगवान्‌के आनेपर ही बन्धन टूट जाते हैं।

जा व्यक्ति वसुदवकी भाँति श्रीकृष्णका अपन मस्तकपर विराजमान करता है, उसके सभी बन्धन टूट जाते हैं। कारागृहके—सासारिक माहक बन्धन टूट जाते हैं, द्वार खुल जाते हैं। अन्यथा यह सारा ससार माहरूप कारागृहम ही सोया हुआ है।

वसुदेवजी कारागृहमस बाहर आये। दाऊजी दौडते हुए आये। शेपनागके रूपम बालकृष्णपर छत्र धारण किया। यमुनाजीको अत्यन्त आनन्द हुआ। दर्शनसे तृप्त

नहीं हा पा रही थी। मुझे प्राणनाथस मिलना है। यमुनाम जल बढ गया। प्रभुने लीला की, टोकरीमेसे अपने पाँव बाहरकी ओर बढा दिये। यमुनाजीन चरण-स्पर्श किया और कमल भेट किया। प्रथम दर्शन और मिलनका आनन्द यमुनाजीको दिया। धीरे-धीरे पानी कम हा गया।

वसुदेव गोकुलमे आ पहुँचे। योगमायाके आवरणवश सारा गाँव गहरी नींदमे डूबा हुआ था। वसुदेवने श्रीकृष्णको यशादाकी गोदमे रख दिया और बालिकास्वरूप योगमायाको उठा लिया। वसुदेवने सोचा कि अब भी उनका प्रारब्ध कर्म बाकी रह गया है तभी तो भगवान्‌को छोडकर मायाको गले लगानेका अवसर आया हे।

वसुदेव योगमायाको टोकरीम बिठाकर वापस कारागृह आ पहुँचे।

ब्रह्मसम्बन्ध होनेपर सभी बन्धन टूट गये थे। अब माया आयी तो बन्धन भी आ गये। वसुदेव गोकुलसे मायाको अपने सिरपर बिठाकर लाये, सो फिर बन्धन

आ पहुँचा और कारागृहके द्वार बन्द हो गय। माया बन्धनकर्ता है। भगवान्‌की आज्ञाके कारण ही तो वसुदेवने बन्धनको स्वीकार किया है।

अब कारागृहमे देवकीकी गादम सोई हुई योगमाया रोने लगी। सेवकाने शीघ्र ही कसको सतानके जन्मका समाचार दिया। कस दौडता हुआ आया। कहाँ है मेरा काल? मुझे सौंप दो उसे।

कस योगमायाके पाँव पकडकर उन्ह पत्थरपर पीटने लगा, किंतु माया कभी किसीके हाथम आयी भी है? आदिमायाने तो कसके ही सिरपर एक लात जड दी और उसके हाथोंसे छूटकर आकाशगामी हो गयी। आकाशमे उन्होने अष्टभुजा जगदम्बा भद्रकालीका रूप धारण किया। उन्हाने कससे पुकारकर कहा—अरे पापी, तेरा काल तो अवतरित हो गया है और सुरक्षित है।

कसने पश्चात्ताप करते हुए वसुदेव-देवकीसे अपने अपराधकी क्षमा माँगी।

इधर जन्माष्टमीके दिन नन्दजीने बारह बजेतक जागरण किया। शाण्डिल्यके कहनेपर सभी सो गये थे और गहरी नींदमे डूब गये थे। बालकृष्ण जब नन्दजीके घरमे आये तब नन्दबाबा सोये हुए थे। नन्दबाबाने स्वप्नमे देखा कि कई बडे-बडे ऋषि-मुनि उनके आँगनमे पधार हुए हैं, यशोदाजीने शृङ्गार किया है और गोदमे एक सुन्दर बालक खेल रहा है। उस बालकको में निहार रहा हूँ। शिवजी भी उस बालकका दर्शन करने हेतु आये हुए हैं।

नन्दबाबा प्रात कालम जाग्रत् होनेपर मनमे कई सकल्प-विकल्प करते हुए गोशालामे आये। वे स्वय गासेवा करते थे। गायाकी जो प्रेमसे सेवा करता हे उसका वश-नाश नहीं होता।

नन्दबाबाने प्रार्थना की—हे नारायण! दया करो। मेरे घर गायोके सवक गोपालकृष्णका जन्म हा।

उसी समय बालकृष्णने लीला की। पीला चोला पहने हुए, कपालपर कस्तूरीके तिलकवाले बालकृष्ण घुटनोके बल बढते हुए गाशालाम आये। इस बालकको नन्दजीने देखा तो उनके मनमे हुआ अरे, यह ता वही बालक है, जिसे मैंने स्वप्नम आज ही देखा है। बालकृष्णने नन्दबाबासे कहा—बाबा मैं आपकी गायोकी सेवा करनेके लिये आया हूँ।

गोशालामे आये हुए कन्हैयाको नन्दजी प्रेमसे निहारते हुए स्तब्धसे हो गये। उन्ह देहभानतक नहीं रहा। वे बालकृष्णके दर्शनसे समाधिस्थसे हो गये। उन्हे कुछ ज्ञात ही नहीं हो रहा था कि वे जाग रह हैं या सो रहे हैं।

सुनन्दाको यशोदाकी गोदमे बालकृष्णकी झाँकी हुई तो वह दोडती हुई गोशालाम भाईको खबर करने आयी। भैया, भैया, लालो भयो है।

आनन्द ही आनन्द हो गया। श्रीकृष्ण हृदयमे आ गये।

नन्दजीने यमुनाजीमे स्नान किया। जन्मोत्सवके उपलक्ष्यम स्नान किया जाता था। उनको सुवर्णके आसनपर बिठलाया गया। शाण्डिल्यमुनिने उनको दान करनेको कहा। नन्दजीने कहा, जो चाहो सो ले जा सकते हो। नन्दबाबाने बडी उदारतासे दान दिया। दानसे धनकी शुद्धि होती है।

गायोका दान दिया गया।

कई वर्षोतक तपश्चर्या करनेपर भी महान् ऋषि-मुनियाका काम नष्ट न हुआ, अभिमान नि शेष न हुआ तो वे सब गोकुलमे गायका अवतार लेकर आये। उन्होने सोचा था कि ब्रह्मसम्बन्ध होनेपर व निष्काम हागे।

नन्दबाबाने दो लाख गायाका दान दिया।

एक ब्राह्मणको दस हजार गाय दानस्वरूप मिलीं। वह घर ले आया। छोटा-सा था घर। उसने घरक कोने-कोनेमे गाये बाँध दी फिर भी बहुत-सी बाकी रह गयीं। इस ब्राह्मणकी पत्नी बडी कर्कशा थी। वह अपने पतिसे कहने लगी—कोई चाहे इतनी गाय दे, किंतु तुम सबको ले क्या आये? इतनी सारी गाय देनेवाला कौन निकल पडा?

ब्राह्मण—अरे तू जानती ही नहीं है क्या? नन्दबाबाके घर पुत्ररत्न जन्मा है। उन्हाने आज हजारा गायाका दान दिया है।

नन्दबाबाके घर पुत्रजन्मकी बात सुनकर ब्राह्मणी आनन्दित हा गयी। पति-पत्नी आनन्दसे माना, नाचन लगे।

नद घर आनद भयो। जय कन्हैयालालकी ॥

गाँवके एक-एक व्यक्तिको लगता है कि कन्हैया उसीका है। गाँवकी सभी गोपियाम कन्हैयाके जन्मकी बात फैल गयी तो वे सब भी उसके दर्शनक लिये दौड चलीं। मानो नवधा भक्ति दौडती हुई ईश्वरसे मिलनके लिये जा रही हो।

गोपियोका एक-एक अग कृष्णमिलन और कृष्णस्पर्शके लिये आन्दोलित हो रहा था। उनकी आँख कहने लगीं—हम जैसा भाग्यवान् कोई नहीं है, हम ही कृष्णदर्शनका आनन्द मिलेगा, तो हाथाने कहा—हम ही भाग्यशाली हैं, हम तो प्रभुको भेट देगे, तो गोपियोके कान कहने लगे—हमारे ही कारण तुम मब भाग्यशाली हुए हो, क्याकि कृष्णप्राकट्यके समाचार हमने सबसे पहल जाने हैं, हम तो कन्हैयाका बाँसुरीवादन भी सुनगे,, तो हृदयने कहा—जबतक मैं पिघलता नहीं हूँ, आनन्द आता ही नहीं है, पाँव बोल पडे—हजारा जन्मासे हम यौवनसुख और धनसम्पत्तिके पीछ भागते आये हैं और आज प्रभुदर्शनके लिये दौड पड हैं, अब जन्म-मृत्युके दु खसे छुटकारा होगा। सभीको आनन्दानुभव हो रहा था।

गोपियाकी वणीसे फूल नीचे झर रहे हैं और कह रहे हैं—तुम कृष्णदर्शनके लिये आतुरतासे दौड रही हो। तुम भाग्यशाली हो। तुम्हार सिरपर रहनेके लिये हम योग्य नहीं हैं। हम ता तुम्हार चरणाम गिरकर तुम्हारी चरणरजके स्पर्शसे पावन हो जायँगे।

यशोदाकी गादम खेलते हुए सर्वाङ्गसुन्दर वालकृष्णको गोपियाँ दहीका अभिषेक करने लगीं। निर्धन गोपियाँ दूध और दही लेकर आयी हैं। कृष्णलालके दर्शन होनेपर आनन्दावेशसे वे सानभान भूल गयीं और स्वयको ही दूध-दहीसे नहलाने लगीं। सभी गोपियाका मन कन्हैयाने आकर्षित कर लिया। हृदयमे आनन्दका पारावार उमड रहा है। गोपियाँ जितना लेकर आयी हैं, उसका दस गुना बढाकर वापस लौटाना है। किसीको चाँदीकी थाली दी गयी ता किसीको चन्द्रहार। यशोदाजीने सोच लिया था कि घरका सर्वस्व क्या न लुट जाय, किंतु सभीका आशीर्वाद और शुभेच्छा पाना है। गोपियाँ जो कुछ माँगे, दिया जाय।

आनन्दमे पागल गोपियाँ कन्हैयाकी जयकार कर रही हैं। एकने तो कहा यदि देना है मुझे तो कन्हैया ही दीजिये। यशोदाने उसे अपने पास बिठाकर उसकी गोदमे लालाको बिठाया। आनन्द आनन्द, आनन्द। हजारों जन्मोसे बिछडा हुआ जीव आज प्रभुसे मिल पाया। ईश्वरसे मिलन होनेपर जीव आनन्दसे झूम उठता है।

भगवान् विष्णुका पुराणोके रूपमे अवतरण

ब्राह्म मूर्धा हरेरेव हृदय पद्मसञ्ज्ञकम्॥
वैष्णव दक्षिणो बाहु शैव वामो महेशितु । ऊरू भागवत प्रोक्त नाभि स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेय च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते। भविष्य दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मन ॥
ब्रह्मवैवर्तसञ्ज्ञ तु वामजानुरुदाहृत । लैङ्ग तु गुल्फक दक्ष वाराह वामगुल्फकम्॥
स्कान्द पुराण लोमानि त्वगस्य वामन स्मृतम्। कौर्मं पृष्ठ समाख्यात मात्स्य मेद प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुड प्रोक्त ब्रह्माण्डमस्थि गीयते। एवमेवाभवद्विष्णु पुराणावयवो हरि ॥
(पद्मपु० स्व० ख० ६२। २—७)

'ब्रह्मपुराण भगवान् विष्णुका सिर, पद्मपुराण हृदय, विष्णुपुराण दक्षिणबाहु शिवपुराण वामबाहु भागवत जङ्घायुगल नारदपुराण नाभि, मार्कण्डेयपुराण दक्षिण चरण और अग्निपुराण वाम चरण है। भविष्य उनका दक्षिण जानु, ब्रह्मवैवर्त वाम जानु, लिङ्गपुराण दक्षिण गुल्फ (टँखना) वराहपुराण वाम गुल्फ, स्कन्दपुराण रोम वामनपुराण त्वचा कूर्मपुराण पीठ, मत्स्यपुराण मेद गरुडपुराण मज्जा ओर ब्रह्माण्डपुराण अस्थि है। इस प्रकार भगवान् विष्णु पुराण-विग्रहके रूपम प्रकट हुए हैं।'

गीतामें अवतारवाद

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

सर्वागमेषु ये प्रोक्ता अवतारा जगत्प्रभा ।
तद्रहस्य हि गीताया कृष्णेन कथित स्वयम्॥

जो अपनी स्थितिस नीचे उतरता है, उसको 'अवतार' कहते हैं। जैसे, कोई शिक्षक बालकको पढाता है तो वह उसकी स्थितिम आकर पढाता है अर्थात् वह स्वय 'क, ख, ग' आदि अक्षराका उच्चारण करता है और उस बालकसे उनका उच्चारण करवाता है तथा उसका हाथ पकडकर उसस उन अक्षराको लिखवाता है। यह बालकके सामने शिक्षकका अवतार है। गुरु भी अपने शिष्यकी स्थितिम आकर अर्थात् शिष्य जैसे समझ सके, वैसी ही स्थितिमे आकर उसकी बुद्धिके अनुसार उसको समझाते हैं। ऐसे ही मनुष्याका व्यवहार और परमार्थकी शिक्षा देनेक लिये भगवान् मनुष्याकी स्थितिमे आते हैं, अवतार लेत हैं।

भगवान् मनुष्योकी तरह जन्म नहीं लेते। जन्म न लेनेपर भी वे जन्मकी लीला करते हैं अर्थात् मनुष्योकी तरह माँके गर्भमे आते हैं, परतु मनुष्यकी तरह गर्भाधान नहीं होता। जब भगवान् श्रीकृष्ण माँ दवकीजीके गर्भमे आते हैं, तब वे पहले वसुदेवजीके मनमे आते हैं तथा नेत्राके द्वारा देवकीजीम प्रवेश करते हैं ओर देवकीजी मनसे ही भगवान्को धारण करती हैं।* गीताम भगवान् कहते हैं कि मैं अज (अजन्मा) रहते हुए ही जन्म लता हूँ अर्थात् मेरा अजपना ज्यों-का-त्या ही रहता है। मैं अव्ययात्मा (स्वरूपसे नित्य) रहते हुए ही अन्तर्धान हो जाता हूँ अर्थात् मेरे अव्ययपनेमे कुछ भी कमी नहीं आती। मैं सम्पूर्ण प्राणियोका सम्पूर्ण लोकोका ईश्वर (मालिक) रहते हुए ही माता-पिताकी आज्ञाका पालन करता हूँ अर्थात् मर ईश्वरपनेमे, मरे ऐश्वर्यम कुछ भी कमी नहीं आती। मनुष्य तो अपनी प्रकृति-(स्वभाव-) के परवश होकर जन्म लेते हैं, पर मैं अपनी प्रकृतिको अपने वशमे करके स्वतन्त्रतापूर्वक स्वेच्छानुसार अवतार लेता हूँ (४।६)।

भगवान् अपने अवतार लेनेका समय बताते हुए कहते हैं कि जब-जब धर्मका ह्रास हाता है ओर अधम बढ जाता है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ, प्रकट हा जाता हूँ (४।७)। अपने अवतारका प्रयाजन बताते हुए भगवान् कहते हैं कि भक्तजनाकी, उनके भावाकी रक्षा करनेके लिये, अन्याय-अत्याचार करनेवाले दुष्टाका विनाश करनेके लिये और धर्मकी भलीभाँति स्थापना, पुनरुत्थान करनेक लिये मैं युग-युगमे अवतार लेता हूँ (४।८)। इस तरह अज, अविनाशी और ईश्वर रहते हुए अवतार लनेवाले मुझ महेश्वरके परमभावका न जानते हुए जो लोग मरेको मनुष्य मानकर मेरी अवहेलना, तिरस्कार करते हैं, वे मूढ (मूर्ख) हैं। मूढलोग आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृतिका आश्रय लेकर जो कुछ आशा करते हैं, जो कुछ शुभकर्म करते हैं, जो कुछ विद्या प्राप्त करते हैं, वह सब व्यर्थ हो जाता है अर्थात् सत्-फल देनेवाला नहीं हाता (९।११-१२)। जो मरे सर्वश्रेष्ठ अविनाशी परमभावको न जानते हुए मुझ अव्यक्त परमात्माको जन्मने-मरनेवाला मानते हैं, वे मनुष्य बुद्धिहीन हैं। ऐसे मनुष्योके सामने मैं अपने असली रूपस प्रकट नहीं होता (७।२४-२५)।

जैसे खेलमे कोई स्वाँग बनाता है ता वह हरकको अपना वास्तविक परिचय नहीं देता। अगर वह अपना वास्तविक परिचय दे द तो खेल बिगड जायगा। एसे ही जब भगवान् अवतार लेते हैं, तब वे सबक सामने अपन-आपको प्रकट नहीं करते सबका अपना वास्तविक परिचय नहीं देते—**'नाह प्रकाश सर्वस्य'** (७।२५)। यदि वे अपना वास्तविक परिचय दे द ता फिर वे लीला नहीं कर सकते। जैस खेल खेलनेवालेका स्वाँग देखकर उसका आत्मीय मित्र डर जाता है ता वह स्वाँगधारी अपने मित्रका सकेतरूपसे अपना असली परिचय दता है कि 'अर! तू टर मत मैं वही हूँ'। ऐस ही भगवान्क अवतारी शरीराका

---

* ततो जगन्मङ्गलमच्युताश समाहित शूरसुतेन देवी। दधार सर्वात्मकमात्मभूत काष्ठा यथाऽऽनन्दकर मनस्त ॥ (श्रीमद्भा० १०।२।१८)

' यथा दीक्षाकाले गुरु शिष्याय ध्यानमुपदिशति शिष्यश्च ध्यानोक्ता मूर्ति हृदि निवशयति तथा वसुदेवा दवकीदृष्टौ स्वदृष्टि निन्धा। दृष्टिद्वारा च हरि सक्रामन् देवकीगर्भे आविर्बभूव। एतन रेतारूपणाधानं निरस्तम्॥ (अन्वितार्थप्रकाशिका)

देखकर कोई भक्त डर जाता है तो भगवान् उसको अपना असली परिचय देते हैं कि 'भैया! तू डर मत मैं तो वही हूँ।'

दो मित्र थे। एकने बाजारमें अपनी दूकान फैला रखी थी, जिससे लोग माल देखें और खरीदें। दूसरा राजकीय सिपाहीका स्वाँग धारण करके उसके पास गया और उसको खूब धमकाने लगा कि 'अरे! तूने यहाँ रास्तेमें दूकान क्या लगा रखी है? जल्दी उठा नहीं तो अभी राजमें तेरी खबर करता हूँ।' उसकी बातोंसे वह दूकानदार मित्र बहुत डर गया और अपनी दूकान समेटने लगा। उसको भयभीत देखकर सिपाही बना हुआ मित्र बोला—'अरे! तू डर मत मैं तो वही तेरा मित्र हूँ।' ऐसे ही अर्जुनके सामने भगवान् विश्वरूपसे प्रकट हो गये तो अर्जुन डर गये। तब भगवान्ने अपना असली परिचय देकर अर्जुनको सान्त्वना दी।

यहाँ एक शंका होती है कि वर्तमानमें धर्मका ह्रास हो रहा है और अधर्म बढ़ रहा है तथा श्रेष्ठ पुरुष दुःख पा रहे हैं फिर भी भगवान् अवतार क्यों नहीं ले रहे हैं? इसका समाधान यह है कि अभी भगवान्के अवतारका समय नहीं आया है। कारण कि शास्त्रोंमें कलियुगमें जैसा बर्ताव होना लिखा है उससे भी ज्यादा बर्ताव गिर जाता है तब भगवान् अवतार लेते हैं। अभी ऐसा नहीं हुआ है। त्रेतायुगमें तो राक्षसोंने ऋषि-मुनियोंको खा-खाकर हड्डियोंका ढेर कर दिया था तब भगवान्ने अवतार लिया था। अभी कलियुगको देखते हुए वैसा अन्याय-अत्याचार नहीं हो रहा है। धर्मका थोड़ा ह्रास होनेपर भगवान् कारकपुरुषोंको भेजकर उसको ठीक कर देते हैं अथवा जगह-जगह संत-महात्मा प्रकट होकर अपने आचरणों एवं वचनोंके द्वारा मनुष्योंको सन्मार्गपर लाते हैं।

एक दृष्टिसे भगवान्का अवतार नित्य है। इस संसाररूपसे भगवान्का ही अवतार है। साधकोंके लिये साध्य और साधनरूपसे भगवान्का अवतार है। भक्तोंके लिये भक्तिरूपसे ज्ञानयोगियोंके लिये ज्ञेयरूपसे और कर्मयोगियोंके लिये कर्तव्यरूपसे भगवान्का अवतार है। भूखोंके लिये अन्नरूपसे प्यासोंके लिये जलरूपसे नंगोंके लिये वस्त्ररूपसे और रोगियोंके लिये ओषधिरूपसे भगवान्का अवतार है। भोगियोंके लिये भोगरूपसे और लोभियोंके लिये रुपये वस्तु आदिके रूपसे भगवान्का अवतार है। गरमीमें छायारूपसे और सर्दीमें गरम कपड़ोंके रूपसे भगवान्का अवतार है। तात्पर्य है कि जड-चेतन स्थावर-जङ्गम आदिके रूपसे भगवान्का ही अवतार है, क्योंकि वास्तवमें भगवान्के सिवाय दूसरी कोई चीज है ही नहीं—'वासुदेवः सर्वम्' (७।१९), 'सदसच्चाहम्' (९।१९)। परंतु जो संसाररूपसे प्रकट हुए प्रभुको भोग्य मान लेता है, अपनेको उसका मालिक मान लेता है, उसका पतन हो जाता है, वह जन्मता-मरता रहता है।

जो लोग यह मानते हैं कि भगवान् निराकार ही रहते हैं, साकार होते ही नहीं, उनकी यह धारणा बिलकुल गलत है, क्योंकि मात्र प्राणी अव्यक्त (निराकार) और व्यक्त (साकार) होते रहते हैं। तात्पर्य है कि सम्पूर्ण प्राणी पहले अव्यक्त थे, बीचमें व्यक्त हो जाते हैं और फिर वे अव्यक्त हो जाते हैं (२।२८)। पृथ्वीके भी दो रूप हैं—निराकार और साकार। पृथ्वी तन्मात्रारूपसे निराकार और स्थूलरूपसे साकार रहती है। जल भी परमाणुरूपसे निराकार और भाप बादल ओले आदिके रूपसे साकार रहता है। वायु निःस्पन्दरूपसे निराकार और स्पन्दनरूपसे साकार रहती है। अग्नि दियासलाई, काष्ठ, पत्थर आदिमें निराकाररूपसे रहती है और घर्षण आदि साधनोंसे साकार हो जाती है। इस तरह मात्र सृष्टि निराकार-साकार होती रहती है। सृष्टि प्रलय-महाप्रलयके समय निराकार और सर्ग-महासर्गके समय साकार रहती है। जब प्राणी भी निराकार-साकार हो सकते हैं, पृथ्वी जल आदि महाभूत भी निराकार-साकार हो सकते हैं सृष्टि भी निराकार-साकार हो सकती है, तो क्या भगवान् निराकार-साकार नहीं हो सकते? उनके निराकार-साकार होनेमें क्या बाधा है? इसलिये गीतामें भगवान्ने कहा है कि यह सब संसार मेरे अव्यक्त स्वरूपसे व्याप्त है—**'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना'** (९।४)। यहाँ भगवान्ने अपनेको **'मया'** पदसे व्यक्त (साकार) और **'अव्यक्तमूर्तिना'** पदसे अव्यक्त (निराकार) बताया है। सातवें अध्यायके चौबीसवें श्लोकमें भगवान्ने बताया है कि जो मेरेको अव्यक्त (निराकार) ही मानते हैं व्यक्त (साकार) नहीं, वे बुद्धिहीन हैं, और जो मेरेको व्यक्त (साकार) ही मानते हैं, अव्यक्त (निराकार) नहीं, वे भी

बुद्धिहीन हैं, क्योंकि वे दोनों ही मेरे परमभावको नहीं जानते।

प्रश्न—अवतारी भगवान्‌का शरीर कैसा होता है?

उत्तर—हमलोगोंका जन्म कर्मजन्य होता है, पर भगवान्‌का जन्म (अवतार) कर्मजन्य नहीं होता। अतः जैसे हमलोगोंके शरीर माता-पिताके रज-वीर्यसे पैदा होते हैं, वैसे भगवान्‌का शरीर पैदा नहीं होता। वे जन्मकी लीला तो हमारी तरह ही करते हैं, पर वास्तवमें वे उत्पन्न नहीं होते, प्रत्युत प्रकट होते हैं—**'सम्भवाम्यात्ममायया'** (४।६)। हमारी आयु तो कर्मोंके अनुसार सीमित होती है, पर भगवान्‌की आयु सीमित नहीं होती। वे अपने इच्छानुसार जितने दिन प्रकट रहना चाहें, उतने दिन रह सकते हैं। हम लोगोंको तो अज्ञताके कारण कर्मफलके रूपमें आयी हुई अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंका भोग करना पड़ता है, पर भगवान्‌को अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंका भोग नहीं करना पड़ता, वे सुखी-दुःखी नहीं होते।

हमलोगोंका शरीर पाञ्चभौतिक होता है, पर भगवान्‌का अवतारी शरीर पाञ्चभौतिक नहीं होता, प्रत्युत सच्चिदानन्दमय होता है—**'सच्चित्सुखैकवपुषः पुरुषोत्तमस्य'**, **'चिदानदमय देह तुम्हारी'** (मानस २।१२७।३) 'सत्'से भगवान्‌का अवतारी शरीर बनता है, 'चित्' से उनके शरीरमें प्रकाश होता है और 'आनन्द' से उनके शरीरमें आकर्षण होता है। वह शरीर भगवान्‌को माननेवाले, न माननेवाले आदि सभीको स्वतः प्रिय लगता है। अतः भगवान्‌का शरीर हमलोगोंके शरीरकी तरह हड्डी, मांस, रुधिर आदिका नहीं होता। परंतु अवतारकी लीलाके समय वे अपने चिन्मय शरीरको पाञ्चभौतिक शरीरकी तरह दिखा देते हैं। भक्तोंके भावोंके अनुसार भगवान्‌को भूख भी लगती है, प्यास भी लगती है, नींद भी आती है, सर्दी-गरमी भी लगती है और भय भी लगता है।

यद्यपि देवताओंके शरीर भी दिव्य कहे जाते हैं, तथापि वे भी पाञ्चभौतिक हैं। स्वर्गके देवताओंका शरीर तेजस्तत्त्वप्रधान, वायुदेवताका शरीर वायुतत्त्वप्रधान, वरुणदेवताका शरीर जलतत्त्वप्रधान और मनुष्योंका शरीर पृथ्वीतत्त्वप्रधान होता है, परंतु भगवान्‌का शरीर इन तत्त्वोंसे रहित चिन्मय होता है। देवताओंके शरीर दिव्य होते हुए भी नित्य नहीं हैं, मरनेवाले हैं। जो आजान देवता हैं, वे महाप्रलयके समय भगवान्‌में लीन हो जाते हैं, और जो पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप स्वर्गादि लोकोंमें जाकर देवता बनते हैं, वे पुण्यकर्मके क्षीण होनेपर पुनः मृत्युलोकमें आकर जन्म लेते हैं और मरते हैं। [भगवान्‌को पाप-पुण्य नहीं लगते। उनको किसीका शाप भी नहीं लगता, पर शापकी मर्यादा रखनेके लिये वे शापको स्वीकार कर लेते हैं।]

प्रश्न—योगीकी और भगवान्‌की सर्वज्ञतामें क्या अन्तर है? क्योंकि योगी भी सबकुछ जान लेता है और भगवान् भी।

उत्तर—जो साधन करके शक्ति प्राप्त करते हैं, उनकी सामर्थ्य, सर्वज्ञता सीमित होती है। वे किसी दूरके विषयको, किसीके मनकी बातको जानना चाहें तो जान सकते हैं, पर उसको जाननेके लिये उनको अपनी मनोवृत्ति लगानी पड़ती है। भगवान्‌की सामर्थ्य, सर्वज्ञता असीम है। भगवान्‌को किसी भूत-वर्तमान-भविष्यके विषयको जाननेके लिये अपनी मनोवृत्ति नहीं लगानी पड़ती, प्रत्युत वे उसको स्वतः स्वाभाविक रूपसे जानते हैं। उनकी सर्वज्ञता स्वतः स्वाभाविक है।

प्रश्न—योगी भी चाहे जितने दिनतक अपने शरीरको रख सकता है और भगवान् भी, अतः दोनोंमें अन्तर क्या हुआ?

उत्तर—योगी प्राणायामके द्वारा अपने शरीरको बहुत दिनोंतक रख सकता है, पर ऐसा करनेमें प्राणायामकी पराधीनता रहती है। भगवान्‌को मनुष्यरूपसे प्रकट रहनेके लिये किसीके भी पराधीन नहीं होना पड़ता। वे सदा-सर्वदा स्वाधीन रहते हैं। तात्पर्य है कि योगीकी शक्ति साधनजन्य होती है, अतः वह सीमित होती है और भगवान्‌की शक्ति स्वतःसिद्ध होती है, अतः वह असीम होती है।

प्रश्न—योगीको भी भगवान् कहते हैं और अवतारी ईश्वरको भी भगवान् कहते हैं, अतः दोनोंमें क्या अन्तर है?

उत्तर—षडैश्वर्य-सम्पन्न होनेसे, अणिमा, महिमा, गरिमा आदि सिद्धियोंसे युक्त होनेसे योगीको भी भगवान् कह देते हैं, पर वास्तवमें वह भगवान् नहीं हो जाता।

कारण कि वह भगवान्‌की तरह स्वतन्त्रतापूर्वक सृष्टि-रचना आदि कार्य नहीं कर सकता। विशेष तपोबलसे वह विश्वामित्रकी तरह कुछ हदतक सृष्टि-रचना भी कर सकता है, पर उसकी वह शक्ति सीमित ही होती है और उसमे तपाबलकी पराधीनता रहती है।

भगवत्ता दो तरहकी होती हे—साधन-साध्य और स्वत सिद्ध। योग आदि साधनासे जो भगवत्ता (अलौकिक ऐश्वर्य आदि) आती है वह सीमित होती हे, असीम नहीं क्याकि वह पहले नही थी, प्रत्युत साधन करनेसे बादम आयी है। परतु भगवान्‌की भगवत्ता असीम, अनन्त होती है, क्याकि वह किसी कारणसे भगवान्‌मे नहीं आती, प्रत्युत स्वत सिद्ध हाती है।

प्रश्न—वदव्यासजी आदि कारकपुरुपाको भी भगवान् कहते हे और अवतारा ईश्वरको भी भगवान् कहते है अत दोनामे क्या अन्तर हे?

उत्तर—वदव्यासजी आदि कारकपुरुप भगवान्‌क कलावतार, अशावतार कहलाते हैं। वे भगवान्‌की इच्छासे ही यहाँ अवतार लेते ह। अवतार लेकर वे धर्मका स्थापना ओर साधु पुरुपाकी रक्षा तो करते हैं, पर दुष्टाका विनाश नहीं करते। कारण कि दुष्टोक विनाशका काम भगवान्‌का ही है, कारकपुरुपोका नहीं।

आजकल अपनेमे कुछ विशपता देखकर लोग अपनेको भगवान् सिद्ध करन लगत हैं और नामके साथ 'भगवान्' शब्द लगाने लगत हें—यह कोरा पाखण्ड ही है। अपनेको भगवान् कहकर व अपनको पुजवाना चाहते हैं, अपना स्वार्थ सिद्ध करनके लिय लोगाको ठगना चाहते हैं। मनुष्याको ऐसे नकली भगवानाक चक्करमे पडकर अपना पतन नहीं करना चाहिये प्रत्युत ऐसे भगवानासे सदा दूर ही रहना चाहिये।

किसी सम्प्रदायको मानवाले मनुष्य अपनी श्रद्धा-भक्तिसे सम्प्रदायके मूलपुरुप (आचार्य)-को भी अवतारी भगवान् कह देते ह, पर वास्तवमे वे भगवान् नहीं होते। वे आचार्य मनुष्याको भगवान्‌की तरफ लगाते हैं, उन्मार्गसे बचाकर सन्मार्गम लगाते हें, इसलिय वे उस सम्प्रदायके लिये भगवान्स भी अधिक पूजनीय हो सकते हैं,* पर भगवान् नहीं हो सकते।

दशावतार-स्तवन

(श्रीभारतेन्दुजी हरिश्चन्द्र)

जयति वेणुधर चक्रधर शखधर, पद्मधर गदाधर शृगधर वेत्रधारी।
मुकुटधर-क्रीटधर पीतपट-कटिनधर, कठ-कौस्तुभ-धरन दु खहारी॥
मत्सको रूप धरि वेद प्रगटित करन, कच्छको रूप जल मथनकारी।
दलन हिरनाच्छ बाराहको रूप धरि, दतके अग्र धर पृथ्वि भारी॥
रूप नरसिह धर भक्त रच्छाकरन, हिरनकस्यप-उदर नख विदारी।
रूप बावन धरन छलन बलिराजको, परसुधर रूप छत्री सँहारी॥
रामको रूप धर नास रावन करन, धनुपधर तीरधर जित सुरारी।
मुसलधर हलधरन नीलपट सुभगधर, उलटि करपन करन जमुन-बारी॥
बुद्धको रूपधर वेद निदा करन, रूप धर कल्कि कलजुग-सँघारी।
जयति दस रूपधर कृष्ण कमलानाथ, अतिहि अज्ञात लीला विहारी॥
गोपधर गोपिधर जयति गिरराजधर, राधिका बाहु पर बाहु धारी।
भक्तधर सतधर सोइ 'हरिचद' धर बल्लभाधीस द्विज वपकारी॥

---

* मोर मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥
राम सिधु घन सज्जन धीरा। चदन तरु हरि सत समीरा॥ (रा०च०मा० ७।१२०।८-९)

धर्मसंस्थापनके लिये अवतार

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृङ्गेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

यह सर्वविदित है कि समस्त प्राणी सुखापेक्षी हैं। केवल मानव ही सुखके लिये प्रयत्नशील है, सो बात नहीं। देवता, दानव आदि भी निज सुखके लिये सदा ही प्रयास करते आ रहे हैं। दु खकी निवृत्तिके बिना सुखकी उपलब्धि नहीं। सुखसे शान्ति है। सुख और शान्तिका गठबन्धन है। शान्तिकी कामना वैदिक परम्पराकी विशेषता है।

सृष्टिकर्ता परमेश्वरने जगत्‌की सुचारु स्थितिके लिये धर्मकी व्यवस्था की है। उस धर्मका ज्ञान वेदोसे ही मिलता है। वेद परमेश्वरके नि श्वासरूप हैं। कहा गया है—**'नि श्वसितमस्य वेदा '**। अतएव भगवत्पाद शङ्कराचार्यजीने कहा है कि सदा वेदका अभ्यास करना चाहिये और उसमे कहे गये कर्मोका अनुष्ठान करना चाहिये—**'वेदो नित्यमधीयता तदुदित कर्म स्वनुष्ठीयताम्।'**

जीवनमे कर्मकी प्रधानता है। कर्मके बिना जीवन कैसे ? कौन-सा कर्म आचरणयोग्य है और कौन-सा कर्म त्याज्य है—इसका ज्ञान हमे होना चाहिये। इन सबका आधार श्रुति और स्मृति हैं। पुराणमे भी इनका विवरण प्राप्त होता है। विहित कर्मोके आचरणसे जहाँ पुण्यकी प्राप्तिकी बात कही गयी है, वहाँ निषिद्ध कर्मोके आचरणसे दुरितकी प्राप्ति भी बतायी गयी है। निषिद्ध कर्मोका फल जन्मान्तरमे भी भोगना पडता है। वह नारकीय यातनाका कारण बनता है। युगारम्भमे लोगोकी प्रवृत्ति विहित कर्माचरणकी ओर थी अर्थात् धर्मपर उनका मन स्थिर था, परतु कालान्तरमे कर्मानुष्ठान करनेवालाके मनमे जब शैथिल्य आया और कर्माचरणमे न्यूनता, लोप आदिका प्रवेश हो गया, धर्म अस्थिर हो गया, तब धर्मकी स्थिरताके लिये दैवी शक्तिकी आवश्यकता थी। उस समय भगवान्‌का अवतार हुआ। भगवत्पाद शङ्कराचार्यजीने गीताभाष्यकी अवतरणिकाम इसको स्पष्ट किया है—

'दीर्घेण कालेन अनुष्ठातृणा कामोद्भवाद् हीयमानविवेक-विज्ञानहेतुकेन अधर्मेण अभिभूयमाने धर्मे प्रवर्धमाने च अधर्मे जगत स्थिति परिपिपालयिषु स आदिकर्ता नारायणाख्यो विष्णु भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य रक्षणार्थं देवक्या वसुदेवाद् अशेन कृष्ण किल सबभूव।'

हे भारत! जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब-तब भगवान्‌का अवतार होता है। यह अवतारका मुख्य कारण बताया गया है। स्वय भगवान् कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥

यह सृष्टि भगवान्‌की लीला है तो अवतार भी लीला है और भगवान् लीलापुरुषोत्तम हैं। राम, कृष्ण शिव, हनुमान्, दुर्गा आदिके रूपम भगवान्‌ने नाना प्रकारकी लीलाएँ की हैं। देवीपुराणमे बताया गया है कि भगवतीने ही कृष्णके रूपमे अवतार लेकर अनेक लीलाएँ कीं।

शक्तिके पारम्यकी स्वीकृति कोई नयी बात नहीं है। बिना शक्तिके शिव भी कुछ नहीं कर सकते, उनमे स्पन्दन भी नहीं हो सकता। अतएव त्रिमूर्ति शक्तिकी आराधना कर अपने कार्यमे सफल होते हैं। इतना ही क्यो ? हरि-हर अपने-अपने नाना अवतारोमे भी शक्तिकी उपासना कर कृतकृत्य हुए। इसलिये 'सौन्दर्यलहरी' (१)-मे कहा गया है—

शिव शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त प्रभवितु
न चेदेव देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्या हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तु स्तोतु वा कथमकृतपुण्य प्रभवति॥

और बडी विशेपता यह हे कि हरिने मोहिनी नामक अवतारमे हरको भी मोहित किया, उनका मन सक्षोभित किया। वस्तुत यह शक्तिका ही कौतुक है। 'सौन्दर्यलहरी' (५)-म कहा गया है—

'हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्।'

शक्ति बहुरूपा है। त्रिगुणात्मिका शक्तिकी उपासना अनेक रूपोम होती है। दुष्टाके सहारके लिये उसने ऐसे

रूपाको धारण किया। भ्रमरके रूपम दुष्ट राक्षसका सहार करनेवाली वही शक्ति है। उसीने भण्ड, महिपासुर, शुम्भ-निशुम्भादि राक्षसाका सहार किया, देवताआकी मनोकामना पूर्ण की। देवासुर-सग्राममे विजयी दवता जब समझने लगे कि स्वीय बलस वे विजयी हुए और गर्व करने लगे तो सर्वव्यापिनी शक्तिने उनके गर्वका हरण कर उनका कल्याण किया—ऐसी शक्तिको नमस्कार है—

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

समाजम जब आसुरी वृत्ति बढ जाती हे, लोगाको नाना प्रकारके कप्ट-सकट झेलने पडते हैं और तपस्वी मुनियोको भी दु ख भोगना पडता है तब भगवान् रामके रूपम, कृष्णके रूपम अवतार ग्रहण कर दुष्ट शक्तिका नाश कर शिष्ट या सज्जन लोगाकी रक्षा करत हैं—ऐसी हमारी परम्परागत धारणा है। रामायणके रचयिता महर्षि वाल्मीकिने और श्रीमद्भागवतक प्रणेता महर्षि व्यासने भगवान्के अवतारोका जो वर्णन किया है, वह मात्र कथाके प्रवाहको लेकर चलनेवाला नहीं है। जेस राजानक कुन्तकने कहा हे—समर्थ कविकी वाणी केवल कथापर ही आश्रित न होकर उसे अत्यन्त सरस बनानेकी ओर अग्रसर रहती है—

निरन्तररसोद्गारगर्भसन्दर्भनिर्भरा ।
गिर कवीना जीवन्ति न कथामात्रमाश्रितम्॥

महर्षि वाल्मीकिन ओर महर्षि व्यासने भगवान्के अवताराकी कथाआको सरस बनानेके साथ धर्मविषयक प्रसगाकी अवतारणा कर अपने ग्रन्थाको चिरस्थायी काव्य बना दिया है।

ससारमें भले लोगोकी भलाईकी प्रशसा हाती है और दुप्ट लोगाकी दुप्टता गर्हित मानी जाती है। गर्हित जीवन लाक स्वीकार नहीं करता। यह सर्वविदित है कि रावण, दुर्योधन-जैसे व्यक्तियाको आदर्श मानकर काई भी अपने बच्चाका नामकरण उन नामासे नहीं करता। हम सद्ग्रन्थासे यह शिक्षा मिलती है कि जा समाजके हितचिन्तक हैं, जो समाजम स्वीकृत हैं एसे व्यक्तियाका आदर्श हम मान्य हैं— **रामवद्वर्तितव्य न तु रावणवत्**' राम-जैसा व्यक्ति हमारा आदर्श होना चाहिये रावणादिके समान नहीं। महर्षि वाल्मीकिने 'रामायण' की रचनाके पहल दवर्षि नारदसे प्रश्न किया—

को न्वस्मिन् साम्प्रत लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रत ॥

ससारम सम्प्रति ऐसा कौन व्यक्ति है जो समस्त सद्‌गुणोसे युक्त हो, पराक्रमशाली हो, धर्मके मर्मको जानकर तदनुसार व्यवहार करनेवाला हो, कृतज्ञ हो सत्यका पालन करनेवाला हो और दृढतास अपने सकल्पको पूर्ण करनेवाला हो।

एक साथ ये सभी विशेपताएँ एक व्यक्तिम हा, यह प्राय सम्भव नहीं है। इसलिये नारदजीने सोचकर बताया कि इक्ष्वाकुकुलम 'राम' नामके एक ऐसे पुरुप हैं जो इन सकल गुणगणोसे अलकृत और लोगासे प्रशसित हैं—

'इक्ष्वाकुवशप्रभवो रामो नाम जनै श्रुत ।'

रामकी कथा, रामका आदर्श स्थायी महत्त्वका है, युग-युगान्तरतक उनकी कीर्ति व्याप्त है।

जो व्यक्ति न्यायका पथगामी है, उसकी सहायता तिर्यक् जन्तु भी करते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति अन्यायके मार्गका अनुगामी होता है, उसका परित्याग उसके सहोदर भी कर देते हैं—

यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थानन्तु गच्छन्त सोदरोऽपि विमुञ्चति॥

न्याय और धर्मके अनुसार चलनेवालेकी सहायता मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी करते हैं। रामकी सहायताके लिये वानर अग्रसर हुए। सीताहरणके समय जटायुने रावणके साथ युद्ध किया अपनी प्राण-हानिकी भी परवाह नहीं की। अधर्मके मार्गपर चलनेवाले रावणने धर्मकी बात समझानेवाले अपने भाई विभीपणको लात मारी, जिसक कारण विभीषण रावणका सागत्य छोडकर रामकी शरणमे आ गया इससे रावणकी ही हानि हुई। इससे यह स्पष्ट है कि अधर्मका मार्ग निन्द्य है और उसका परिणाम सदा ही दु खद होता है।

वाल्मीकिने रामको धर्मस्वरूप कहा है—'**रामो विग्रहवान् धर्म ।**' धर्मका दूसरा नाम ही राम है। कृष्ण भी धर्मके ही विलक्षण रूपमें चित्रित हैं। कृष्णके चरित्रको बडी सावधानीसे समझना चाहिये। वह मधुरातिमधुर है। सूतजीसे शौनकादि ऋषि-मुनि कहत हैं—'हम श्रीकृष्णकी कथा सुनत अघाते

नहीं हैं, क्योंकि रसज्ञोको उस कथामे पग-पगपर रसास्वादनका आनन्द मिलता है'—

वय तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे।
यच्छृण्वता रसज्ञाना स्वादु स्वादु पदे पदे॥

बालपनमे ही श्रीकृष्णने पूतना, शकटासुर आदि कई असुरोका सहार कर लोगोको आश्चर्यमे डाल दिया। एक बात ध्यान देनेयोग्य है कि श्रीकृष्णका चरित अनुकरणीय नहीं, उनका उपदेश सदा ही अनुकरणीय और पालनीय है। रामचरितसे कृष्णचरित भिन्न है। अतएव कहा गया है— 'रामवद्वर्तितव्य न तु कृष्णवत्' रामके समान हमे व्यवहार करना चाहिये कृष्णके समान नहीं। यही आदर्श है।

भगवान्‌के अवतारके प्राय दो प्रकार हैं। एक वह है जो दुष्टाके सहारके लिये होता है और दूसरा वह है जो लोगाको सन्मार्गपर लानेके लिये होता है। दोनोके मूलमे धर्मसस्थापन ही है। मनुष्यकी रक्षाके लिये भगवान्‌ने जो अवतार ग्रहण किया, वह दूसरे रूपका उदाहरण है। राम, कृष्ण, परशुराम, नृसिह-जैसे अवतारामे भगवान्‌ने अनेक दुष्टाका सहार कर धर्मकी स्थापना की। दत्तात्रेयके अवतारमे गुरुके रूपमे उन्होने अनुग्रह किया। उसी प्रकार भगवत्पाद शङ्कराचार्यके रूपमे अवतार ग्रहण कर उन्होने लोगोको आत्मोद्धारका मार्ग दिखाया। गुरुके रूपमे अवतार सचमुच विलक्षण है। सार्वकालिक, सार्वजनिक तत्त्वाका उपदेश देकर समस्त मानवजातिके उद्धारके लिये उन्होने जो उपदेश दिया, वह सार्वकालिक सत्य है। अज्ञानके कारण जब लोग गर्तमे गिर गये, भवरूप दावाग्निमे तप्त हो गये, तब वटमूल-स्थित परमेश्वरने शङ्कराचार्यके रूपमे अवतार ग्रहण कर सबका उद्धार किया—

अज्ञानान्तर्गहनपतितानात्मविद्योपदेशै
त्रातु लोकान्भवदवशिखातापपापच्यमानान्।
मुक्त्वा मौन वटविटपिनो मूलतो निष्पतन्ती
शम्भोर्मूर्तिश्चरति भुवने शङ्कराचार्यरूपा॥

अवताराके दोनो रूप मनोहारी और कल्याणकारी हैं। जिनकी चित्तवृत्ति जिसमे रमती है उसके अनुसार वे आदर्श और उपदेश ग्रहण कर जीवनको सार्थक बना सकते हैं और परम शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

॥ शुभम्॥

'सोइ जनमे दस बार'

ऐसी हरि करत दासपर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जनके बस, होत सदा यह रीति॥
जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी।
सोइ अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥
जाकी मायाबस बिरचि सिव, नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो॥
बिस्वभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति, बेद-बिदित यह लीख।
बलिसो कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगी भीख॥
जाको नाम लिये छूटत भव-जनम-मरन दुख-भार।
अबरीष-हित लागि कृपानिधि सोइ जनमे दस बार॥
जाग-बिराग, ध्यान-जप-तप-करि, जेहि खोजत मुनि ग्यानी।
बानर-भालु चपल पसु पामर, नाथ तहाँ रति मानी॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, ससि सब आग्याकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेनके द्वार बेल कर धारी॥

(विनय-पत्रिका पद ९८)

योगिराज भगवान् श्रीकृष्ण

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)

'योग' शब्द 'युज्' धातुसे 'घञ्' प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है—किसीका किसीके साथ ऐसा अनन्य जुड़ाव, जिससे पुन पार्थक्यकी सम्भावना प्राय नहीं रह जाती। पातञ्जलयोगसूत्र (१।१।१)-के अनुसार योगकी परिभाषा है—'**योगश्चित्तवृत्तिनिरोध**' और इस सदर्भमे भगवद्गीताकार व्यासजी कहते हैं—'**योग कर्मसु कौशलम्**॥' (गीता २।५०) अतएव योगी उसे कहते हैं जो आध्यात्मिक साधनाके कारण भगवान्‌के साथ इस प्रकार जुड़ जाता है अथवा साधनामे ऐसा रम जाता है कि ससार या सासारिक सम्बन्ध उसके लिये मात्र औपचारिक रह जाते हैं। अपनी अर्थवत्ताकी इस व्यापक भावभूमिके कारण योग अपने विविध आयामोके साथ अलग-अलग प्रकारका देखा जाता है, जैसे—हठयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग एव कर्मयोग आदि।

वस्तुतस्तु सूक्ष्मेक्षिकया मीमासा करनेपर योगके पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर होनेवाले स्वरूप कर्मयोगके ही भेदापभेद हैं, क्योंकि हठयोगका हठ, ज्ञानयोगका ज्ञान अथवा भक्तियोगकी भक्ति सभी कर्मसापेक्ष हैं और सभी सामान्यतया परस्पर अन्योन्याश्रित भी हैं। मात्र पात्र, परिस्थिति एव रुचिके प्राधान्यवश इनके अलग-अलग नाम हैं, किंतु इतने बहुभेदसम्पन्न विषयकी समग्रसिद्धि किसी एक सामान्य व्यक्तिके लिये सम्भव नहीं और यदि सम्भव है, तो उसे व्यक्ति नहीं, पूर्णपुरुष लीलापुरुषोत्तम आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं—'**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**।' भगवान्‌की हर लीला, उनका हर कर्म योग है कारण यह कि तत्कृत सभी कर्म अनन्यभावसे भावित हैं। आपने अपने जन्म अर्थात् कसके कारागारसे लेकर प्रभासके महाप्रयाणपर्यन्त जो कुछ भी किया सब लोकहितहेतु किया। यही कारण है कि सभी योगी योगीमात्र हैं, किंतु भगवान् कृष्ण योगिराज हैं, योगियोंके योगी हैं।

अवतरणके समय पहरेदारोका निद्रामग्न हो जाना कारागारद्वारका खुलना प्रभुके पदरजका स्पर्शलाभ करके यमुनाकी उत्ताल तरङ्गोका शान्त होना पूतना नाम्नी राक्षसीका वध शकटासुर-तृणावर्त आदिका सहार, माखनलीला, गोचारण-गोपालन कालीदहकी नागनथैया, गोवर्धन-धारण रासलीला गोपीप्रेम गोपी-चीरहरण कुवलयापीड-मुष्टिक-चाणूर एव कसका सहार कुब्जापर कृपा, उद्धवका ज्ञानाभिमानमर्दन, कालयवन एव जरासन्धके साथ युद्ध रुक्मिणीहरण, युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमे ब्राह्मण-सेवा-आतिथ्य, शिशुपालवध दन्तवक्त्र आदिका उद्धार, भारतीय अस्मिताकी प्रतिनिधिभूता नारी द्रौपदीकी मर्यादा-रक्षाप्रभृति सत्कर्म तथा महाभारतयुद्धके पूर्व शान्ति-स्थापनके अगणित प्रयास उनके कर्मयोगित्वके ही प्रमाण तो हैं।

कर्मयोगी वनवारीने महाभारतके महासमरमे, जहाँ दोनो सेनाएँ आमने-सामने युद्धके लिये खड़ी थीं—श्रीमद्भगवद्गीताका सदुपदेशकर इस धराधामको सदा-सदाके लिये धन्य कर दिया। उन्होंने न्यायकी रक्षाको श्रेष्ठ माना। अत उन योगिराजने कभी भी कोई पक्षपात नहीं किया, एतदर्थ अपने मामा कस, भाई शिशुपाल, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, अङ्गराज कर्ण और यहाँतक कि द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके वधरूप उसके सिरकी मणिका हरण करानेमे भी कोई सकोच नहीं किया। रणक्षेत्रके अन्तर्गत उनकी जिस शखध्वनिने उस समय क्रूर, अन्यायी एव असदाचारीजनोके दिल दहला दिये उसीने भुविभारभूत राक्षसोसे धराके मुक्त हो जानेपर समग्र त्रैलोक्यके सदाचारियोको दिलासा दी शान्ति दी। महाभारत-युद्धकी जरूरतका अनुभवकर उसमे आपने जाने किस-किसकी प्रतिज्ञा पूर्ण की। एक ओर यदि पार्थने जयद्रथ-वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की—श्रीकृष्णद्वारा कथित राष्ट्रकवि मैथिलीशरणगुप्तके शब्दोमे—

'हे पार्थ प्रण पूरा करो, देखो अभी दिन शेष है।

(जयद्रथवध)

—तो दूसरी ओर पाञ्चालीकी चोटीराशि गगन चूमने लगी और चीरसे ढँक गया वह दु शासन तथा चूर-चूर हो गयी दुर्योधनकी वह अभिमानशिला जिसके सहारे दुष्ट दु शासन भरी सभामे भारतीयताको नग्न कर देना चाहता था मर्यादाहीन कर देना चाहता था।

योगिराजकी ही वह महिमा है जिसके कारण

द्रौपदीका स्वाभिमान अन्याय और अहङ्कारके जघनशोणितसे अपनी वेणीका शृङ्गार कर सका। भारतीय योगी और यहाँका योग मात्र शारीरिक स्वास्थ्य-रक्षाके उपकरण नहीं हैं, प्रत्युत वे सारे राष्ट्रके साथ-साथ समूचे विश्व, समग्र मानवता और यहाँ तक कि जडचेतनात्मक निखिल ब्रह्माण्डके सुस्वास्थ्य अर्थात् सर्वत्र शान्ति, सुख, सतोष, सत्य, औदार्य, प्रेम एव सौहार्दकी स्थापना करते हैं। उनका लक्ष्य समूची सृष्टिमे सद्गुणाका आधानकर मनसा-वाचा-कर्मणा सर्वतोभावन सभीको सतुष्ट तथा सुखी रखना था। कहना न होगा कि असख्यासख्य योगियोके योगिराज हैं—यशोदानन्दवर्धन अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र। वे ऐसे चमत्कारी हैं कि उनके पदरजका सम्पर्श पाकर रामावतारम कभी शिला अहल्या बन जाती है, तो कभी मूक वाचाल बधिर श्रवणसुखयुक्त और पगु पर्वतारोही हो जाता है—

मूक करोति वाचाल पङ्गु लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमह वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

सूरदासके शब्दामे—

चरन-कमल बदौ हरि-राइ।
जाकी कृपा पगु गिरि लघै, अधे कौ सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बदौ तिहिं पाइ॥

(सूर-जिनय-पत्रिका पद १)

केशवका पूरा जीवन योगके लिये था अथवा योगके सिद्धान्त उन्हींके जीवनगत भावी आदर्शात्मक यथार्थको ध्यानमें रखकर बने थे यह कह पाना जान पाना दोना कठिन है क्योंकि *'कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।'* पूर्णत वही जान सकता है, जो पावे।

परमार्थतस्तु भगवान् श्रीकृष्ण और योग दोनाको अलग-अलग करके देखना अत्यौपचारिक है। लाकाभिराम नन्दके दुलारे एक ओर यदि करुणानिधि हैं तो दूसरी आर रणरङ्गधीर भी हैं। योग अपने सभी भेदोपभेदोक साथ भगवान् श्राकृष्णचन्द्रमे समाहित, सन्निविष्ट है, क्यांकि सार योग, वैराग्य आदि इन्हींस तो समुद्भूत हैं और इन्हींम विलीन भी हो जाते हैं—

'यस्माजातं जगच्छर्वं तस्मिन्नेव प्रलीयते।'

इस योगरूप हरिको जा जान लेता है, वह तदनुरूप, तदाकार तथा तन्मय हो जाता हे—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

(रा०च०मा० २।१२७।३)

कर्मयोगके उस आमुष्मिक स्वरूपको वही जान पाता है, जिसपर योगी द्वारकेशकी कृपा होती है, क्योंकि उस पथके ज्ञाता, गन्ता प्रयोक्ता तथा दाता—सब वे ही हैं। इसलिये गीता (९।२२)-मे वे कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जना पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम्॥

महाभारतके महारणका अतुलनीय सव्यसाची एक-एक बार अपने एक-एक हाथसे योगेश्वरकी कृपाके कारण पाँच-पाँच सो बाणाकी वर्षाकर वैरीदलके असख्य शवाका अम्बार लगा देता हे, क्योंकि वह **'सर्वधर्मान् परित्यज्य'** क न्यायका अनुपालन करता है, तभी तो सुदर्शन चक्र कभी-कभी मेघाच्छन्न अस्तोपम भास्करकी रश्मियोको अभिव्यक्ति प्रदानकर जयद्रथका सहार कराता है, किंतु ऐसे धनुर्धरका गाण्डीव भी उस समय हतप्रभ हो गया, जब अर्जुनके वीरत्वाभिमानके मर्दनार्थ द्वारकाधीशने द्वारकासे गोपियाको मथुरातक सकुशल पहुँचानेका दायित्व उन्हे सौंप दिया। द्वारकासे तेरह कि०मी० दूर पहुँचते-पहुँचते युद्धकलामें नितान्त अप्रशिक्षित जगली आदिवासियाद्वारा जब वे घेर लिये गये, तो उनका गाण्डीव उस समय बिना विद्युत्-धाराका जड तार बन गया। नि सहाय पार्थ कुछ न कर सके और गोपियाको उस तालाबमे प्रवेशकर प्राणोत्सर्ग करना पडा, आज जिसको 'गोपीतालाब' कहते हैं। इसी प्रकार भगवत्कृपाके बिना गाण्डीवधारी अर्जुन पहले भी ऐसी ही स्थितिको प्राप्त हो गये थे जिसमे युद्धके भयसे उनका शरीर काँपता था। (गीता १।२९-३०)

ध्यातव्य है कि यहाँ योगनिष्ठ माधवकी उस द्वारकाका उल्लेख किया जा रहा है, जिसे उन्हाने 'रणछोड' बन पश्चिमी सागरके तटपर विश्वकर्माको निर्देश दकर न केवल निर्मित कराया था बल्कि मथुरावासियाका लाकर वहाँ बसाया भी था। राजधर्मके निर्वाहके साथ-साथ योगीशने जब अपनी ही वशपरम्पराके अवाञ्छित कर्मोंस धराका बाझिल हाते हुए देखा तो प्रभासके अन्तगत उनमे परस्पर गृहयुद्ध कराकर

ससारम शान्ति की स्थापना करायी और स्वय व्याधके हाथा चित्स्वरूपमे विलीन होकर उसके जन्मान्तरीय बदलेके ऋणसे मुक्त हुए।

वस्तुत 'युक्त' एव 'युञ्जान'—उभयविध यौगिक व्यक्तित्वके धनी, भवभयहारी, विपिनविहारी कृष्णमुरारीका सारा योगजीवन समष्टिके सरक्षणार्थ समर्पित था। उदाहरणार्थ—आपका बालयोग गोवशका रक्षक है, भारतीय कृषि-व्यवस्थाका सवाहक है और है प्रत्येक भारतीयके जीवनका सफल पोषक। वह निर्भीकता, न्यायशीलता, परिश्रम, प्रेम मैत्री, तप, राष्ट्रभक्ति एव योजनाशीलताकी अगाध निष्ठाका प्रेरक है। वह इन्द्रके अहकारका मिटाकर एकब्रह्मोपासनाके सिद्धान्तका सस्थापक, व्रजनामी जन्मभूमिका रक्षक, यमुनाजीका प्रदूषणापहारक तथा दुग्ध-दधि एव मक्खनका विक्रयविरोधी योगी है। यहाँतक कि राधावल्लभको राष्ट्रमे दृष्टिहीन ज्ञानशून्य तथा अविवेकी सम्राट्, शिशुहन्ता नागरिक, गुर्वाज्ञाके अतिक्रान्ता प्रशासक एव नारीकी अवमानना करनेवाला युवराज बिलकुल स्वीकार नहीं है, चाहे वह अपना सम्बन्धी धृतराष्ट्र, आचार्यपुत्र अश्वत्थामा तथा राजपुत्र दुर्योधन या दु शासन ही क्यो न हा। जिस साम्राज्यके महारथी निरस्त्र बालकपर समवेतरूपसे आक्रमण करते हो, युद्धनीतिका उल्लघन करते हा, ऐसी व्यवस्थाका बने रहना उनकी दृष्टिम समूलत विनाशसे ज्यादा खतरनाक है, क्योंकि—

सर्वे यत्र विनेतार सर्वे पण्डितमानिन ।
सर्वे च मानमिच्छन्ति तद्राष्ट्रमवसीदति॥

लोकहितहेतु उन योगेश्वरको यदि मत्स्य, कच्छप, नृसिह एव वराह भी बनना पडता है, तो भी उन्हे सह्य है। सचमुच यही उन यागीका योगित्व है। जीवनम कभी किसी भी तरह यदि किसीने उन्हे स्मरण किया, तो वे अनासक्त होकर भी उसे कभी भूले नहीं। तभी तो सूरदासके शब्दाम उद्धवसे व कहते हैं—

'ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।' (सूरसागर)

बचपनमे गुरु सान्दीपनिका आश्रम छोडकर आनेके बीसा वर्ष बाद जब वे द्वारकाम विप्र सुदामासे मिलते हैं तो—
'पानी परात को हाथ छुवो नहिं, नैनन के जल सा पग धोए।'
(नरोत्तमदास)

-की स्थिति आ जाती है और छात्र-जीवनकी सारी स्मृतियाँ परत-दर-परत स्मृतिपटलपर आने लगती हैं।

इस प्रकार वर्तमान पद्धतिजन्य भारतीय इतिहासके मचपर अशरण-शरण योगेश्वरका कोई वर्णन प्राप्त न होनेके बावजूद श्रीमद्भागवत एव महाभारतके द्वारा देशके जनमानसम इनका स्वरूप इतना गहरा हो चला है कि द्वारका, मथुरा ही नहीं, बल्कि समस्त दुनियाम इनकी बहु-आयामी मूर्तियाँ तथा विविध मन्दिर इनके योगका सदेश '**अहर्निश सेवामहे**' के न्यायसे दे रहे हैं। इनका नाम हर भारतवासीका कण्ठहार है। प्रभुपादाचार्य, स्वामिनारायण, शाङ्करमत एव पुष्टिमार्गप्रभृति विविध सम्प्रदायोके आचार्यों, सता, कथाकारो, महता, भक्तो, धर्मोपदेशका एव अनुयायियोकी साधनाके परिणामस्वरूप रुक्मिणीवल्लभ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भजन-पूजन तथा कर्म-सिद्धान्तानुपालन आज ससारके अगणित देशाम हो रहा है और आगे होता भी रहेगा, क्योंकि सिद्धि वहीं होती है, जहाँ योगेश्वर भावशरीरसे उपस्थित रहते हैं—
'यत्र योगेश्वरो कृष्ण ~।' (गीता १८।७८)

दशावतार-वन्दना

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद् बिभ्रते दैत्यान् दारयत बलि छलयते क्षत्रक्षय कुर्वते।
पौलस्त्य जयते हल कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्य नम ॥

श्रीकृष्ण। आपने मत्स्यरूप धारणकर प्रलयसमुद्रमे डूबे हुए वेदाका उद्धार किया, समुद्र-मन्थनके समय महाकूर्म बनकर पृथ्वीमण्डलको पीठपर धारण किया, महावराहके रूपमे कारणार्णवम डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, नृसिहके रूपमे हिरण्यकशिपु आदि दैत्याका विदारण किया, वामनरूपमे राजा बलिको छला परशुरामके रूपमे क्षत्रियजातिका सहार किया, श्रीरामके रूपमं महाबली रावणपर विजय प्राप्त की श्रीबलरामके रूपमे हलको शस्त्ररूपम धारण किया भगवान् बुद्धके रूपम करुणाका विस्तार किया था तथा कल्किके रूपमे म्लच्छोको मूर्च्छित करेगे। इस प्रकार दशावतारके रूपम प्रकट आपकी मैं वन्दना करता हूँ। (भक्तकवि श्रीजयदेवजी)

अवतारहेतु तथा अवतारकलाविमर्श

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)

१-अवतारहेतु—प्रणवगत अ, उ और म् की तथा प्रकृतिगत सत्त्व, रजस् और तमस्की एकरूपता है। वाचक प्रतिपाद्यरूप वाच्यका और गुण-निर्गुणका उपव्याख्यान होता है। उपव्याख्यानको उपाधि या अभिव्यञ्जक कहते हैं। श्रीहरिके विविध अवतारोंमें अनुगतहेतु शब्द है। श्रीहरि निज इच्छासे अवतार लें या नारदादिके शापके कारण अवतार लें या कश्यपादिको दिये गये वरदानके निमित्तसे अवतार लें, अवतारमें अनुगतहेतु शब्द ही होता है। यही कारण है कि सीता, गरुड, ब्रह्मादि शब्दब्रह्मात्मक हैं—'**प्रणवगरुडमारुह्य महाविष्णो**' (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद् ५।१)। शब्द और शब्दार्थका पर्यवसान ज्ञान है। शब्दज्ञानके तुल्य घटज्ञानके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है। शब्द और अर्थ ज्ञानके प्रकारान्तर अभिव्यञ्जनमात्र हैं। आकाश वायु, तेज, जलादिसे संलग्न परिलक्षित होता है तथापि आकाश इनसे अलिप्त है। पद्मपत्र स्वाश्रित जलसे अलिप्त ही रहता है। तद्वत् शब्द अर्थमें संलग्न परिलक्षित होता है, परंतु अर्थ शब्दसे अलिप्त ही सिद्ध होता है। स्वप्रकाश शब्द ज्ञानात्मक है। ज्ञान ब्रह्मात्मतत्त्व है। अस्वप्रकाश शब्द अर्थाभिव्यञ्जक होता हुआ अर्थरूप है। मृद्घट—घटशब्दात्मक होता हुआ मृत्तिकामात्र है। मृत्तिका—पृथ्वी, जल तेज, वायु और आकाशक्रमसे अव्यक्तसंज्ञक शब्दरूप और ब्रह्मात्मस्वरूप है—'**वाचारम्भण विकारो नामधेय मृत्तिकेत्येव सत्यम्**' '**त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्**' (छान्दोग्योपनिषद् ६।१।४, ६।४।२), '**सदेव सत्यम्**' (पैङ्गी उपनिषद्)। अतएव अव्यक्तसंज्ञक सीता रुक्मिणी आदि लक्ष्मीरूपा मूलप्रकृति प्रणवात्मिका हैं। श्रीराम कृष्ण अर्धतन्मात्रात्मक तुरीयकल्प हैं। बलरामसंज्ञक संकर्षण तथा लक्ष्मण प्रणवगत अकाराक्षरसम्भूत वैश्वानररूप हैं। प्रद्युम्न तथा शत्रुघ्न प्रणवगत उकाराक्षरसमुद्भूत हिरण्यगर्भात्मक हैं। अनिरुद्ध तथा भरत ओङ्कारगत मकारसमुद्भूत प्रबुद्ध प्राज्ञकल्प हैं।

> एकमेवाद्वय ब्रह्म मायया च चतुष्टयम्।
> रोहिणीतनयो विश्व अकाराक्षरसम्भव ॥
> तैजसात्मक प्रद्युम्न उकाराक्षरसम्भव ।
> प्राज्ञात्मकोऽनिरुद्धोऽसौ मकाराक्षरसम्भव ॥
> अर्धमात्रात्मक कृष्णो यस्मिन् विश्व प्रतिष्ठितम्।
> कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूलप्रकृती रुक्मिणी॥

(गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद् १०—१२),

> अकाराक्षरसम्भूत सौमित्रिर्विश्वभावन ।
> उकाराक्षरसम्भूत शत्रुघ्नस्तैजसात्मक ॥
> प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भव ।
> अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रह ॥
> श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदाधारकारिणी ।
> उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥
> सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।
> प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन ॥

(रामोत्तरतापिन्युपनिषद् १।२।१—४)

यही कारण है कि शब्दब्रह्ममें निष्णात परब्रह्मको प्राप्त होता है—

द्वे ब्रह्मणी हि मन्तव्ये (द्वे विद्ये वेदितव्ये तु) शब्दब्रह्म पर च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णात पर ब्रह्माधिगच्छति।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद् ५।१७ ब्रह्मबिन्दूपनिषद् १७)

ध्यान रहे, रामावतारमें शेषावतार लक्ष्मणजी यद्यपि शत्रुघ्नजीसे बड़े थे तथापि दोनों युग्म होनेके कारण गर्भमें प्रथम प्रविष्टका लोकमें पश्चात् जन्मकी दृष्टिसे उन्हें दर्शन-परिप्रेक्ष्यमें अनुज मानकर ओङ्कारगत अकारसमुद्भूत विश्व या वैश्वानर माना गया है। कृष्णावतारमें शेषावतार श्रीबलराम अग्रज थे। देवकीजीके गर्भमें भी उनका प्रथम प्रवेश ही था। योगमायाके द्वारा उनका कर्षणकर रोहिणीके गर्भमें प्रवेश किया गया अत उनका नाम संकर्षण हुआ। वे प्रद्युम्नजी तथा प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धजीसे तो श्रेष्ठ थे ही तथापि शेषावतार होनेके कारण उन्हें महाभारतादिमें अर्धतन्मात्रात्मक तुरीयकल्प, शेषी श्रीकृष्णको तथा शेषात्मक बलदेवजीको प्राज्ञकल्प, प्रद्युम्नजीको हिरण्यगर्भात्मक तैजसकल्प और अनिरुद्धजीको वैश्वानरात्मक विश्वकल्प दर्शाया गया है। प्रकृत संदर्भमें और महाभारतादिमें रामावतार तथा कृष्णावतारमें एकरूपता दर्शानेके लिये शेषावतार श्रीलक्ष्मण तथा बलरामजीको ओङ्कारगत अकारात्मक विश्वरूप कहा गया है। प्रकरणका तात्पर्य प्रणवकी अ, उ, म् और अमात्रसंज्ञक अर्धतन्मात्रा तथा पुरुषके पादस्वरूप वैश्वानर तैजस, प्राज्ञेश्वर और तुरीयब्रह्ममें एकरूपता, परब्रह्माश्रित

शब्दब्रह्मकी जगत्कारण प्रकृतिरूपता और ब्रह्माधिष्ठित शब्दब्रह्मात्मक प्रणवकी विवर्तोपादानकारणता एव चतुर्व्यूहकी लोकोत्तर उत्कृष्टताके ख्यापनम है।

२-अवतारकला—भगवान्‌के कलावतार भी मन्त्राक्षररूप ही होत हैं। उदाहरणार्थ—'ॐ नमो नारायणाय स्वाहा' दशाक्षर नारायणमन्त्रान्तर्गत क्रमश प्रणवादि दशाक्षरक मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध, कल्कि अथवा मत्स्य, कूर्म वराह, नरसिह, *वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, कृष्ण और कल्कि अथवा* हस, कूर्म, मत्स्य, वराह, नरसिह, वामन परशुराम राम सात्त्वत (कृष्ण-बलराम) और कल्कि—दशावतार हैं।

नारायणादवतारा मन्त्ररूपा जायन्ते। ॐ नमा नारायणाय स्वाहा। एव दशाक्षरो मन्त्रो भवति। तत्र प्रथमो मत्स्यावतार । द्वितीय कूर्म । तृतीया वराह । चतुर्थो नरसिह । पञ्चमो वामन । षष्ठो जामदग्नि । सप्तमो रामचन्द्र । अष्टम कृष्ण परमात्मा। नवमो बुद्धावतार । दशम कल्किर्जनार्दन ।

(नारायणपूर्वतापिनायोपनिषद् ५)

शृणु नारद तत्त्वेन प्रादुर्भावान् महामुने।
मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिहश्च वामन ॥
रामा रामश्च रामश्च कृष्ण कल्की च ते दश।

(महा० शान्ति० ३३९।७६ के बाद दाक्षि०)

हस कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावा द्विजोत्तम॥
वराहो नरसिहश्च वामनो राम एव च।
रामो दाशरथिश्चैव सात्वत कल्किरेव च॥

(महा० शान्ति० ३३९।१०३-१०४)

जरा (ज्यष्ठा), पालिनिका शान्ति ईश्वरी रति कामिका वरदा ह्लादिनी प्रीति और दीर्घा—ये श्रीहरिके दशकलात्मक अवतार हैं। 'ट'से 'न'पर्यन्त—मन्त्रमाता मात्रिकासे सम्बद्ध ये कला हैं—

'जरा पालिनिका शान्तिरीश्वरी रतिकामिका।
वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा दशकला हरे ॥'

उक्त रीतिसे प्रकृतिरूपा प्रणवात्मिका भगवान्‌की कला हाती है। उदाहरणार्थ—'ॐ नमा नारायणाय' यह अष्टाक्षरमन्त्र है। केवल ओङ्कार भी अकार, उकार मकार नाद बिन्दु, कला अनुसन्धान और ध्यान—अष्टविध होता है। अकार सद्योजातस्वरूप हाता है। उकार वामदवस्वरूप हाता है। मकार अघोरस्वरूप होता है। नाद तत्पुरुपस्वरूप हाता है। बिन्दु ईशानस्वरूप होता है। कला व्यापकस्वरूप होता है। अनुसन्धान नित्यस्वरूप होता है। ध्यान ब्रह्मस्वरूप होता है। अष्टाक्षर पृथिवी, जल, तेज, वायु, व्योम चन्द्रमा, सूर्य और पुरुपरूप यजमानसज्ञक सर्वव्यापक अष्टाक्षर अष्टमूर्ति है—

ॐ नमो नारायणाय इत्यष्टाक्षरो मन्त्र । अकारोकार-मकार—नादबिन्दुकलानुसन्धानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षर भवति। अकार सद्योजातो भवति। उकारो वामदेव । अघोरो मकारो भवति। तत्पुरुषो नाद । बिन्दुरीशान । कला व्यापको भवति। *अनुसन्धानो नित्य । ध्यानस्वरूप ब्रह्म। सर्वव्यापकोऽष्टाक्षर ॥*

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमा ।
सूर्य पुमास्तथा चेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिता ॥

(नारायणपूर्वोत्तरतापिनीयोपनिषद्)

गर्गसहिताके अनुसार श्रीहरिक अशाश अश आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम—ये छ प्रकारके अवतार माने गये हैं। महर्षि मरीचि आदि अशाशावतार माने गये हैं। ब्रह्मादिदेवशिरोमणि अशावतार माने गये हैं। श्रीकपिल कूर्मादि कलावतार माने गये हैं। श्रीपरशुराम आदि आवेशावतार माने गये हैं। श्रीनृसिह, राम श्वेतद्वीपाधिपति हरि वैकुण्ठ, यज्ञ नरनारायण पूर्णावतार माने गये हैं। श्रीकृष्णचन्द्र परिपूर्णतम पुरुषोत्तमोत्तमावतार माने गये हैं—

अशाशोऽशस्तथावेश कला पूर्ण प्रकथ्यते।
व्यासाद्यैश्च स्मृत षष्ठ परिपूर्णतम स्वयम्॥

(श्रीगर्गसहिता १।१६)

ब्रह्म निर्गुण निष्कल निष्क्रिय, निर्विकल्प, निरञ्जन, निरवद्य, शान्त और सूक्ष्म है—

'निर्गुण निष्क्रिय सूक्ष्म निर्विकल्प निरञ्जनम्॥'

(अध्यात्मापनिषद् ६२)

'निष्कल निष्क्रिय" शान्त निरवद्य निरञ्जनम्।'

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।१९)

तथापि त्रिगुणमयी मायाके यागस उसे सकल भी कहा जाता है। ब्रह्मके अभिव्यञ्जक और अभिव्यक्त स्वरूपका नाम कला है। प्रश्नोपनिषद् (६।१—४)-के अनुसार पुरुप (ब्रह्मात्मतत्त्व) पाडशकलासम्पन्न है—'षोडशकल भारद्वाज पुरुष येत्थ। ""स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां ख वायु-र्ज्योतिराप पृथिवीन्द्रिय मनाऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्रा कर्म लोका लोकयु च नाम च॥'

प्राण श्रद्धा आकाश वायु, तज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय

मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक तथा नाम—ये षोडश कलाएँ हैं। प्राणरूप अव्याकृत, महदात्मिका श्रद्धा, सूक्ष्म तथा स्थूलभेदसे दश भूत दश इन्द्रिय और अहम् सहित मन—ये साख्यशैलीमे अचित् पदार्थके चौबीस प्रभेद हैं। मन्त्र तथा कर्मका अन्तर्भाव महत् (बुद्धि), अहम् तथा मनमे है। नामका अन्तर्भाव वाक् नामक कर्मेन्द्रियमे है। लोक, तप, वीर्य और अन्नका अन्तर्भाव पञ्चभूतात्मक शरीरमे है। इस प्रकार षोडश कलाका अर्थ प्रकृति तथा प्राकृत पदार्थ हैं, जो कि आत्माधिष्ठित होनेसे आत्मस्वरूप ही हैं। अभिप्राय यह है कि जो कुछ आत्माधिष्ठित है, वह कलापदवाच्य है।

इस सदर्भमे चन्द्रवशसमुत्पन्न चन्द्रतुल्य श्रीकृष्णकी षोडशकलासम्पन्नता और सूर्यवशसमुत्पन्न सूर्यतुल्य श्रीरामकी द्वादशकलासम्पन्नताका रहस्य भी समझना चाहिये। चन्द्रकी अमृता मानदा, पूषा तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता—षोडश कलाएँ क्रमश अ आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ अ, अ —सज्ञक स्वरवर्णघटित हैं। सोमरसात्मक और प्रकाशात्मक होनेसे सत्त्वगुणात्मक हैं, अतएव ये कलाएँ सत्त्वपरिपाकरूपा हैं। अन्न प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द (स्थूल, सूक्ष्म, कारणरूप त्रिविध शरीर), अतिशायिनी (देहेन्द्रियादिगत लोकोत्तर चमत्कृति), विपरिणामिनी, सक्रामिणी (परकाया-प्रवेशादि), प्रभ्वी (कायव्यूहरचनादि), कुण्ठिनी (गरल, रिपु, सिन्धु, अग्नि, इन्द्रादिक प्रभावका स्तम्भन), विकासिनी (महिमादि सिद्धि), मर्यादिनी (निर्धूम अग्निको धूमयुक्त, अरजस्वलाको रजस्वला, इन्द्रको अजगर आदि करनेकी वाक्-सिद्धि), सह्लादिनी (स्थावर-जङ्गमम लोकोत्तर उत्कर्षकी क्षमता), आह्लादिनी (निर्विकार आनन्दोत्कर्ष), परिपूर्णा (शुद्ध सत्त्वोत्कर्ष) और स्वरूपावस्थिति (मुक्ति)-सज्ञक षोडश कलाएँ भी सत्त्वपरिपाकरूपा हैं। इसी प्रकार जैमिन्युपनिषद्के अनुसार भद्र (भजनीयता), समाप्ति (गुणोकी पराकाष्ठा), आभूति (प्रपञ्चोत्पादन), सम्भूति (सरक्षा), भूत (सहार), सर्व (पूर्णता उपादानता), रूप (इन्द्रियजन्य अनुभूतिका आधार, अलिप्त), अपरिमित (देश काल वस्तुसे अपरिच्छिन्न), श्री (आकर्षणकन्द्र), यश (प्रशसा) नाम (प्रतिष्ठा), अग्र (उद्बुद्ध), सजात (शक्तिसस्थान) पय (जीवनाधार) महीय (महिमान्वित) रस (आनन्दोल्लास)-सज्ञक षोडश कलाएँ सत्त्वपरिपाकरूपा हैं।

'षोडशकल वै ब्रह्म' (जैमिन्युपनिषद् ३।२८।८)
'स हैव षोडशधा आत्मान विकृत्य सार्धं समैत्।'
(जैमिन्युपनिषद् १।४८।७)

'स षोडशधा आत्मान व्यकुरुत। भद्र च, समाप्तिश्च, आभूतिश्च, सम्भूतिश्च, भूतञ्च, सर्वञ्च, रूपञ्च, अपरिमितश्च, श्रीश्च, यशश्च, नाम च, अग्रञ्च, सजातश्च, पयश्च महीया च, रसश्च' (जैमिन्युपनिषद् १।४६।२)।

तन्त्रामे सूर्यदेवकी क भ तपिनी, ख ब तापिनी, ग फ धूम्रा, घ प मरीची, ङ न ज्वालिनी, च ध रुचि, छ द सुषुम्णा, ज थ भोगदा, झ त विश्वा, ञ ण बोधिनी, ट ढ धारिणी और ठ ड वर्णबीजघटित कलाएँ सत्त्वात्मक तेजकी विलासभूता हैं। 'क' से 'ठ' और 'भ' से 'ड' अर्थात् 'क' मे 'भ' पर्यन्त चौबीस वर्णोका सनिवेश प्रकारान्तरसे सूर्यकी चौबीस कलाओको द्योतित करते हैं।

'क' से 'ञ' पर्यन्त सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति और सिद्धि—सत्त्वोत्कर्षसूचक दश ब्रह्मकला (ब्रह्माजीकी कला) हे। शूरता, ईर्ष्या, इच्छा उग्रता, चिन्ता, मत्सरता, निन्दा तृष्णा, माया और शठता—रजोगुणके उत्कर्षसूचक दश ब्रह्मकला हैं। 'प' से 'श' पर्यन्त तीक्ष्णा रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उद्गारी और मृत्यु—तमोगुणकी प्रगल्भतासे दश रुद्रकला हैं। 'अ' से 'अ' पर्यन्त प्रकाशशीलता, प्रीति क्षमा, धृति, अहिसा, समता सत्यशीलता, अनसूया, लज्जा, तितिक्षा दया, तुष्टि साधुवृत्तिता, शुचिता, दक्षता और अपरिक्षतधर्मता—उद्रिक्त सत्त्वके योगसे अभिव्यक्त षोडश सदाशिवकलाएँ है। सदाशिवकलामे ही गणपति तथा शक्तिकी कलाएँ सनिहित हैं। निवृत्ति प्रतिष्ठा विद्या, शान्ति, इन्धिका दीपिका रेचिका, मोचिका परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञाना, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी और व्योमरूपा सदाशिवकी षोडशकलाएँ प्रसिद्ध हैं।

विवक्षावशात् इस सदर्भमे पौर्वापर्यप्रसख्यानरूप परस्परानुप्रवेशन्याय (कारणका कार्यमे या कार्यका कारणमे अन्तर्भावरूप अनुप्रवेश नियम)-का आलम्बन अपेक्षित है।

परस्परानुप्रवेशात् तत्त्वाना पुरुषर्षभ।
पौर्वापर्यप्रसख्यान यथा वक्तुर्विवक्षितम्॥
(श्रीमद्भा० ११।२२।७)

पुरुषशिरोमणे! तत्त्वोका एक-दूसरेमे अनुप्रवेश है। अतएव वक्ता तत्त्वोकी जितनी सख्या बताना चाहता है,

उसके अनुसार कारणको कार्यमे अथवा कार्यको कारणम सम्मिलित कर अपनी इच्छित सख्या सिद्ध कर लेता है।

उक्त रीतिसे कलासख्याकी दृष्टिसे देवाम उत्कर्षापकर्ष असम्भव है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश क्रमश रजस्, सत्त्व तथा तमस्के नियामक और प्रकाशक होनेसे क्रमश सत्, चित्, आनन्दस्वरूप निर्गुण हैं। अतएव त्रिदेवम विभेद तथा उत्कर्षापकर्ष भी औपचारिक है, वास्तविक नहीं।

सत्त्व, रजस्, तमस्, महत्, अहम्, पञ्चभूत, मन और इन्द्रियरूप द्वादश तत्त्वोसे सूर्यदेवकी बारह कलाएँ सिद्ध होती हैं। सत्त्व, रजस्, तमस्की साम्यावस्था त्रिगुणमयी प्रकृति है। पञ्चभूत सूक्ष्म और स्थूलभेदसे दस सिद्ध होते हैं। इन्द्रियाके दस प्रभेद हैं। इस प्रकार प्रकृति महत्, अहम्, दस भूत, मन और दस इन्द्रिय—साख्योक्त चौबीस तत्त्व सूर्यदेवकी बारह कलाम सनिहित हैं। अ, इ उ, ऋ, लृ—पञ्च मूल स्वर हैं। अनुस्वार ( ) और विसर्ग ( )-सहित सप्त स्वर हैं। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तवर्ग, पवर्ग—पाँच व्यञ्जन वर्ग हैं। इस प्रकार स्वर और व्यञ्जनरूप बारह वर्णात्मक मूल कलाएँ हैं। बारह वर्णोंमे विभक्त वर्णामाय वस्तुत अ आदि सात स्वर और 'क' से 'म' पर्यन्त पचीस व्यञ्जनरूप बत्तीस भागोमे विभक्त है।

उक्त सौरदर्शनके अनुसार त्रिगुण, महत्, अहम्, पञ्च तन्मात्रा पञ्च महाभूत, मन, चित्त, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च प्राणरूप बत्तीस प्रभेद अचित् पदार्थोंके सिद्ध होते हैं। इन्हींको बत्तीस कला भी कहते हैं। सर्ग तथा विसर्ग अथवा अनुलोम और विलोम क्रमसे ये चौंसठ कलाएँ हैं।

उक्त अचित् प्रभेदके साथ ॐगत अ, उ म् तथा अर्धतन्मात्रात्मक वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, सर्वेश्वर एव तुरीयब्रह्मरूप चित्सूर्यप्रभेदकी गणना करनेपर सौरागमके अनुसार छत्तीस तत्त्व सिद्ध होते हैं।

शैवागमम प्रकृति, त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) महत् (बुद्धि), अहम्, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूत, मन पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय राग नियति काल, विद्या, कला माया शुद्ध विद्या ईश्वर तथा पुरुष—छत्तीस तत्त्व सिद्ध होते हैं। कलाओका समग्र वर्णाम्नायकी दृष्टिसे स्कन्दपुराणके अनुसार अध्ययन तथा अनुशीलन करनपर ॐ, चौदह स्वर, तैंतीस व्यञ्जन अनुस्वार, विसर्ग जिह्वामूलाय तथा उपध्मानीय सज्ञक बावन मातृका वर्ण सिद्ध हाते हैं। ॐ (प्रणव), 'अ' से 'औ' पर्यन्त चौदह स्वरवर्ण हैं। 'क' से 'ह' पर्यन्त तैंतीस वर्ण व्यञ्जन हैं। ( ) अनुस्वार है। ( ) विसर्ग है। क, खसे पूर्व आधे विसर्गके समान ध्वनिको जिह्वामूलीय कहते हैं। प, फसे पूर्व आधे विसर्गके समान ध्वनिको उपध्मानीय कहते हैं—

ॐकार प्रथमस्तस्य चतुर्दश स्वरास्तथा।
वर्णाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च॥
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च।
उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी स्मृता॥

(स्कन्दपु०मा०कुमार० ३। २३५-२३६)

पुराणोक्त मातृकासार इस प्रकार है—ॐकारगत अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार महेश, अर्धमात्रा (•) सदाशिव हैं—

अकार कथितो ब्रह्मा उकारो विष्णुरुच्यते।
मकारश्च स्मृतो रुद्रस्त्रयश्चैते गुणा स्मृता॥
अर्धमात्रा च या मूर्ध्नि परम स सदाशिव।

(स्कन्दपु०मा०कुमार० ३। २५१-२५२)

अकारसे लेकर औकारतक चौदह स्वर मनुस्वरूप हैं। ककारसे लेकर हकारतक तैंतीस दवता हैं। ककारसे ठकारतक बारह आदित्य डकारसे बकारतक ग्यारह रुद्र हैं। भकारसे षकारतक आठ वसु हैं। 'स' और 'ह' अश्विनीकुमार हैं। इस प्रकार 'क' से 'ह' तक तैंतीस वर्ण हैं। अनुस्वार विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय—ये चार अक्षर जरायुज अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज नामक चार प्रकारके जीव बताये गये हैं—

औकारान्ता अकाराद्या मनवस्ते चतुर्दश।
॥
ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्च देवता॥
ककाराद्याष्ठकारान्ता आदित्या द्वादश स्मृता।
डकाराद्या बकारान्ता रुद्राश्चैकादशैव ते।
भकाराद्या षकारान्ता अष्टौ हि वसवो मता।
सहौ चेत्यश्विनौ ख्यातौ त्रयस्त्रिंशदिति स्मृता॥
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च।
उपध्मानीय इत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजा।
स्वेदजाश्चोद्भिज्जाश्चापि पितर्जीवा प्रकीर्तिता॥

(स्कन्दपु० कुमार० ३। २५४—२६२)

स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, रैवत, तामस, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रौच्य ओर भौत्य—ये चौदह मनु हैं। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा और विष्णु—ये बारह आदित्य हैं। कपाली, पिङ्गल, भीम विरूपाक्ष, विलोहित, अजक, शासन, शास्ता, शम्भु, चण्ड और भव—ये ग्यारह रुद्र हैं। ध्रुव, घोर, सोम, आप, नल, अनिल, प्रत्यूष ओर प्रभास—ये आठ वसु हैं। नासत्य तथा दस्र—दो अश्विनीकुमार हैं। ध्यान रहे, मन्त्रमाता मात्रिकाके प्रभेदका प्रशस्तक्रम तन्त्रोमे अक्षमालिकोपनिषद्के अनुसार ओङ्कारघटित इस प्रकार है—आदिक्षान्तमूर्ति 'ॐ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अ, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ, क्ष ' '(डकारस्य ळकारो बह्वृचाध्येतृसम्प्रदायप्राप्त ।' तथा च पठ्यते—

अज्मध्यस्थडकारस्य ळकार बह्वृचा जगु ।
अज्मध्यस्थढकारस्य ळ्हकारं वै यथाक्रमम्॥)

लघुषोढान्यासादिके अनुसार ५२ मातृकाओंको शक्ति-सहित गणेश, शिव, सूर्य, विष्णुरूप माना गया है। इनके अर्थानुसन्धानपूर्वक जपसे धर्म, काम, मोक्षकी सिद्धि सुनिश्चित है।

य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ और क्ष-से सम्बद्ध धूम्रा, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्रिया, सुरूपा, कपिला, हव्यवाहिनी और कव्यवाहिनी—दस वह्निकलाएँ हैं।

ष पीता, स श्वेता, ह अरुणा, क्ष असिता—चार ईश्वरकला हैं। **'ये स्वरास्ते धवला । ये स्पर्शास्ते पीता । ये परास्ते रक्ता ।'** (अक्षमालिकोपनिषद्)

षकार पीत वर्णका है। सकार श्वेत वर्णका है। हकार अरुण वर्णका है। क्षकार असित (कृष्ण) वर्णका है। स्वर श्वेत वर्णके हैं। स्पर्श पीत वर्णके हैं। अतिरिक्त (पर) यरादि रक्त वर्णके हैं।

प्रकारान्तरसे यह भी समझना चाहिये कि मातृकाओंके परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी-सञ्ज्ञक चार प्रभेद ईशकला हैं। सर्वतत्त्वात्मिका सर्वविद्यात्मिका, सर्व-शक्त्यात्मिका तथा सर्वदेवात्मिका—ये चार ईशकलाएँ हैं—

'नमस्ते परारूपे नमस्ते पश्यन्तीरूपे नमस्ते मध्यमारूपे नमस्ते वैखरीरूपे सर्वतत्त्वात्मिके सर्वविद्यात्मिके सर्वशक्त्यात्मिके सर्वदेवात्मिके।' (अक्षमालिकोपनिषद्)

कृतयुग तथा ब्राह्मणका वर्ण श्वेत होता है। त्रेता तथा क्षत्रियका वर्ण लाल होता है। द्वापर तथा वैश्यका वर्ण पीला होता है। कलि और शूद्रका वर्ण काला होता है। अतएव कृतयुगमे श्रीहरिके अवतारका वर्ण श्वेत होता है। त्रेतामे श्रीहरिके अवतारका वर्ण लाल होता है। द्वापरमे श्रीहरिके अवतारका वर्ण पीला होता है। कलियुगमे श्रीहरिके अवतारका वर्ण काला होता है—

ब्राह्मणाना सितो वर्ण क्षत्रियाणा तु लोहित ।
वैश्याना पीतको वर्ण शूद्राणामसितस्तथा॥

(महा० शान्ति० १८८।५)

'कृते शुक्ल ' (श्रीमद्भा० ११।५।२१), **'त्रेताया रक्तवर्ण '** (श्रीमद्भा० ११।५।२४), **'द्वापरे भगवाञ्श्याम पीतवासा निजायुध ।'** (श्रीमद्भा० ११।५।२७), **'कलावपि यथा शृणु॥' 'कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्'** (श्रीमद्भा० ११।५।३१, ३२)।

'पायात्स नो वामनः'

स्वस्ति स्वागतमर्थ्यह वद विभो कि दीयता मेदिनी का मात्रा मम विक्रमत्रयपद दत्त जल दीयताम्।
मा देहीत्युशनाब्रवीद्धरिरिय पात्र किमस्मात्पर चेत्येव बलिनार्चितो मखमुखे पायात्स नो वामन ॥

'आपका कल्याण हो।' 'आपका स्वागत है।' 'मैं याचक हूँ।' 'प्रभो! बोलिये। क्या दिया जाय।' 'मुझे भूमि (दानमे) दीजिये।' 'कितनी मात्राम ?' 'मेरे पगसे तीन पग।' 'दे दी।' 'सङ्कल्पका जल दीजिये।' 'मत दो ये याचक भिक्षुक नहीं, साक्षात् विष्णु हैं'—ऐसा शुक्राचार्यने कहा। (तो बलिने कहा—) 'इनसे बढकर दान देनेका उत्तम पात्र कौन हो सकता है ?' इस प्रकार परिचर्याके बाद राजा बलिके यज्ञारम्भमे पूजित वे वामनभगवान् हम सबकी सदा रक्षा करें। (सुभाषितरत्नभाण्डागार)

अवतार-स्वरूप और प्रयोजन

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्दसरस्वतीजी महाराज)

१-अवतारस्वरूप—सामान्य रीतिसे अवतारका अर्थ जन्म होता है। '**अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥**' (गीता २। २८), '**परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातन। य स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥ अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहु परमा गतिम्। य प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम॥**' (गीता ८। २०-२१)-के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध होता है कि व्यक्त शरीर और ससारका मूल अव्यक्त है और अव्यक्तका परमाश्रयरूप मूल सनातन अव्यक्त अर्थात् अव्यक्ताक्षर है। वही स्वप्रकाश भगवत्तत्त्व है। वेदान्तप्रस्थानके अनुसार वह जगत्कारण है। जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, सहार, जीवापर निग्रह और अनुग्रह—उसके पाँच कृत्य हैं। पृथ्वीके तुल्य वह उत्पत्ति नामक कृत्यका निर्वाहक है। जलके तुल्य वह स्थिति नामक कृत्यका निर्वाहक है। तेजके तुल्य वह सहार नामक कृत्यका निर्वाहक है। वायुके तुल्य वह निग्रह नामक कृत्यका निर्वाहक है। आकाशके तुल्य वह अनुग्रह नामक कृत्यका निर्वाहक है। कृत्यभेदसे उसके नाम रूप, लीला और धाममे भी भेद है। उत्पत्ति नामक कृत्यके यागसे उसकी हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा या सूर्य सज्ञा है। स्थिति नामक कृत्यके योगसे उसकी विष्णु सज्ञा है। सहार नामक कृत्यक योगसे उसकी शिव सज्ञा है। निग्रह नामक कृत्यके योगसे उसकी शक्ति सज्ञा है। अनुग्रह नामक कृत्यके योगसे उसकी गणपति सज्ञा है। इन पाँच रूपाम और इनके विविध अवतारोके रूपम एक परमेश्वरकी ही आराधना और उपासना विहित है। अतएव एकदेववाद ही सनातन सिद्धान्त है। कृतयुगम इस तथ्यका सर्वताभावेन निर्वाह होता था, जैसा कि महाभारतके अनुशीलनसे सिद्ध है—

एकदेवसदायुक्ता एकमन्त्रविधिक्रिया।
पृथग्धर्मास्त्वेकवेदा धर्ममकमनुव्रता॥

(महाभारत वनपर्व १४९। २०)

सत्ययुगम सब एक परमात्मदेवका ही भजनीय समझकर उनम ही चित्त लगाये रहते थे एकमात्र उन्हींके प्रणवप्रधान मन्त्रका जप करते थे तथा विधिसम्मत क्रियाका उन्हींके लिये सम्पादनकर उन्हींके प्रति क्रियाकलापको समर्पित करते थे। धर्म और ब्रह्मकी सिद्धिम एकमात्र वेदको प्रमाण मानते हुए ही अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुरूप विविध धर्मोंका अनुष्ठान करते थे। ऐसा होनेपर भी सब वेदसम्मत सनातन धर्मका ही अनुगमन करनवाले थे।

उत्पत्ति नामक कृत्यके निर्वाहक हिरण्यगर्भात्मक सूर्यके उपासक 'सौर' कहे जाते हैं। स्थिति नामक कृत्यके निर्वाहक विष्णुके उपासक 'वैष्णव' कहे जाते हैं। सहार नामक कृत्यके निर्वाहक शिवके उपासक 'शैव' कहे जाते है। निग्रह नामक कृत्यके निर्वाहक शक्तिके उपासक 'शाक्त' कहे जाते हैं। अनुग्रह नामक कृत्यके निर्वाहक गणपतिके उपासक 'गाणपत्य' कहे जाते हैं।

भगवान् श्रीविष्णुके कलावतार कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महाभागने उक्त पञ्चदेवाक नाम, रूप लीला, धाम, वाहन आयुध, परिकर, स्वभाव, विविध अवतार तथा उपासना-प्रकारका पुराणा उपपुराणा तथा महाभारतादिके माध्यमसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उनके शिष्य, प्रशिष्यादिकी समृद्ध परम्परासे आगमसिद्धान्तरूप रस-रहस्यपूर्ण अद्भुत वैभव हम सुलभ है।

अवतारसिद्धान्त अत्यन्त गम्भीर और गोपनीय हानेके कारण रहस्यमय है। अतएव अनभिज्ञताके कारण विश्वस्तरपर इसक नामपर भ्रम और विवाद भी पर्याप्त हैं। पञ्चदेवामे उत्कर्षापकर्ष और साम्यका रहस्य इस प्रकार है—

वेदान्तप्रस्थानम ब्रह्मको जगत्का निमित्त ही नहीं अपितु उपादानकारण भी माना गया है। '**तदैक्षत**' (छान्दोग्योपनिषद् ६। २। ३), '**स ईक्षाञ्चक्रे**' (प्रश्नापनिषद् ६। ३) '**सोऽकामयत्**' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ६। ४) आदि श्रुतियाके अनुसार सद्रूप परमात्मा कार्यप्रपञ्चका निमित्तकारण है। '**बहु स्या प्रजायेय**' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ६। ४) '**कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिद विज्ञात भवति**' (मुण्डकोपनिषद् १। १। ३)

'**तदात्मानः स्वयमकुरुत।**' (तैत्तिरीयोपनिषद् २।७।१), '**सर्वं खल्विद ब्रह्म**' (छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।१) आदि श्रुतियोंके अनुसार बहुभवनसामर्थ्यसम्पन्न सद्रूप ब्रह्म कार्यप्रपञ्चका उपादानकारण है। अतएव वेदान्तदर्शनके अनुसार जगत्‌का अभिन्न निमित्तोपादानकारण है—'**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्॥**' (ब्रह्मसूत्र १।४।२३)

पृथिव्यादि कार्यप्रपञ्च अनित्य, अचित् और दु खरूप अर्थात् असच्चिदानन्दस्वरूप है। अतएव इसका परमाश्रय सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही हो सकता है। अन्यथा अनवस्थान्तदोष अनिवार्य है। निमित्तकारण कार्यका निर्माता होता है। अतएव उसका ज्ञानवान्, इच्छावान् और प्रयत्नवान् होना अनिवार्य है। पृथिव्यादि कार्यप्रपञ्चका निमित्तकारण सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ही हो सकता है। सर्वोपादानकी सर्वव्यापकता भी अनिवार्य है। इस प्रकार सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द ब्रह्म जगत्‌का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है। सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी निमित्त तथा उपादानकारणता त्रिगुणमयी मायाके द्वारसे चरितार्थ है। कार्यकी सुख, दु ख, मोहकता तथा प्रकाश प्रवृत्ति, अवष्टम्भकतास त्रिगुणमयी मायाशक्तिका अनुमान हाता है।

सर्वव्यापक सर्वातीत सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म कार्यकारणतातीत परब्रह्म कहा जाता है। मायाशक्तिसमन्वित सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक सर्वेश्वर कारणब्रह्म कहा जाता है। पाञ्चभौतिक कायप्रपञ्चके रूपम परिलक्षित आर कार्यवर्गके नियामक ईश्वरका कार्यब्रह्म कहा जाता है। आरोहक्रमसे पृथ्वीकी अपक्षा जल, जलकी अपेक्षा तेज तेजकी अपेक्षा वायु, वायुकी अपेक्षा आकाशका निर्विवाद उत्कर्ष है। साख्य, योग और वेदान्तप्रस्थानम पृथ्वाका कारण जल जलका कारण तज, तजका कारण वायु तथा वायुका कारण आकाश है। उपादेयरूप कार्यकी अपेक्षा उपादानकारणका उत्कर्य स्वाभाविक है। कारण यह है कि कार्यकी अपक्षा उपादानकारण निर्विशेप, सूक्ष्म, शुद्ध विभु, आश्रय और प्रत्यक् होता है। अतएव पृथ्वीप्रधान या पार्थिव शाररूप अधिभूत नासिकारूप अध्यातम और पृथ्वीरूप अधिदैवके नियामककी अपक्षा जलप्रधान या जलज (वारुण) शाररूप अधिभूत रसनारूप अध्यात्म और वरुणरूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। उसकी अपक्षा तेज प्रधान या तैजसशरीररूप अधिभूत नेत्ररूप अध्यात्म और सूर्यरूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। उसकी अपेक्षा वायुप्रधान या वायविक (वायवीय) शरीररूप अधिभूत, त्वक्-रूप अध्यात्म और वायुरूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। उसकी अपेक्षा आकाशप्रधान या आकाशीय शरीररूप अधिभूत, श्रोत्ररूप अध्यात्म और दिक्-रूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है अथवा अवरोहक्रमसे प्रथम भूत आकाशके अधिदैव दिशा, द्वितीय भूत वायुके अधिदैव विद्युत्, तृतीय भूत तेजके अधिदैव सूर्य, चतुर्थ भूत जलके अधिभूत सोम और पञ्चम भूत पृथिवीके अधिदैव वायुको मानना चाहिये—

आकाश प्रथम भूत श्रोत्रमध्यात्ममुच्यते॥
अधिभूत तथा शब्दो दिशस्तत्राधिदैवतम्।
द्वितीय मारुतो भूत त्वगध्यात्म च विश्रुता॥
स्प्रष्टव्यमधिभूत च विद्युत् तत्राधिदैवतम्।
तृतीय ज्योतिरित्याहुश्चक्षुरध्यात्ममुच्यते॥
अधिभूत ततो रूप सूर्यस्तत्राधिदैवतम्।
चतुर्थमापो विज्ञेय जिह्वा चाध्यात्ममुच्यते॥
अधिभूत रसश्चात्र सोमस्तत्राधिदैवतम्।
पृथिवी पञ्चम भूत घ्राणश्चाध्यात्ममुच्यते॥
अधिभूत तथा गन्धो वायुस्तत्राधिदैवतम्।
एपु पञ्चसु भूतेपु त्रिपु यश्च विधि स्मृत॥

(आश्वमेधिकपर्व ४२।१८—२३)

ऐसी स्थितिमे आकाशका अधिपति मानकर अपने इष्टदेवकी प्रधान आराधना और अनुगामी मानकर शेप चार भूतोके अधिपतियाकी आराधना अपेक्षित है। यह तथ्य इन्द्रयागमे इन्द्रकी, वरुणयागमे वरुणकी, रुद्रयागमे रुद्रकी, विष्णुयागमे विष्णुकी अथवा इन्द्रदेवक विवाहम इन्द्रदेवकी, वरुणदवके विवाहमे वरुणदेवकी रुद्रदेवक विवाहम रुद्रदेवकी और विष्णुदवके विवाहम विष्णुदेवकी प्रधानताके तुल्य चरितार्थ है।

आदित्य गणनाथ च दर्वी रुद्र च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्त सर्वकर्मसु पूजयत्॥

विवक्षावशात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर शिव अथवा सदाशिवको पञ्चदेव माना जाता है—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वर शिव एव च।
पञ्चधा पञ्च दवत्य प्रणव परिपट्यते॥

(अथर्वशिखापनिपद्)

सूर्य शिवा जगन्नाथ सोम साक्षादुमा स्वयम्॥
आदित्य भास्कर भानु रवि देव दिवाकरम्।
उमा प्रभा तथा प्रज्ञा सन्ध्या सावित्रीमेव च॥

(लिङ्गपुराण १९।२४, २९)

गाणपत्यप्रस्थानमे अष्टधा प्रकृतिके अभिप्रायसे कार्यात्मिका पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहम् और महत्-सञ्ज्ञक प्रकृतिविकृतिके योगसे कार्यब्रह्मके सात प्रभेद हैं। विवक्षावशात् मूल प्रकृतिके योगसे कारणब्रह्मका नाम 'गणेश' है। गणेश महत्से पृथ्वीपर्यन्त सात गणोके ईश अर्थात् नियामक हैं। वे प्रकृतिसङ्ग विमुक्त होनेके कारण कार्यकारणातीत ज्ञानस्वरूप निर्वाणरूप हैं। गणेश अष्टधा प्रकृतिके नियामक होनेके कारण ज्ञानप्रद तथा निर्वाणप्रद हैं। पृथ्वीके योगसे गणेशकी एकदन्त सञ्ज्ञा है। 'एक' प्रधानवाचक और 'दन्त' सर्वाधिक बलसूचक है। पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप सर्वविशेषताओसे सम्पन्न होनेके कारण प्रधान है—

भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तषा भूमि प्रधानत ॥

(महा०भाष्मपर्व ५।४)

विशेषताकी पराकाष्ठा और चरमकार्य होनेसे पृथ्वी सर्वप्रधान बल है। उसके नियामक होनसे गणेश एकदन्त हैं। जलके योगसे गणेश 'हेरम्ब' हैं। 'हे' का अर्थ अभावग्रस्त, दीन है। 'रम्ब' का अर्थ पालन-पोषण है। हेरम्बका अर्थ जीवनप्रद है। जल जीवन है। उसके योगसे गणेश हेरम्ब हैं। अन्धकारनिमित्तक कण्टकादि विघ्नोका शमन अग्नि और तेजसे होता है। अत अग्नि या तेजके योगसे गणेश 'विघ्ननायक' हैं। वायुको सवर्ग कहते हैं। वह विद्युत् आदिका शोषक है। अग्नि भी बाह्याभ्यन्तर वायुके योगसे अन्नादिका पाचक है। अत वायु लम्बोदर है। उसके योगसे गणेशको 'लम्बोदर' कहते हैं। आकाश कर्णगोचर शब्दका आश्रय होनेसे 'शूर्पकर्ण' है। गणेश आकाशयोगसे 'शूर्पकर्ण' हैं। गगनका जनक होनेसे अहम् 'गजवक्त्र' है। उसके योगसे गणेश 'गजवक्त्र' हैं। स्वामिकार्तिकेयके अग्रज होनेसे वे गुहाग्रज हैं। दर्शनप्रस्थानमे अव्यक्त या मायाका नाम गुहा या गुहाग्र है। उससे समुत्पन्न महत् गुहाग्रज है। उसके योगसे गणेश 'गुहाग्रज' हैं—

गणेशमेकदन्त च हेरम्ब विघ्ननायकम्।
लम्बोदर शूर्पकर्णं गजवक्त्र गुहाग्रजम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण ३।४४।८५)

इस प्रकार कार्यवर्गके नियामकका नाम कार्यब्रह्म है। मायारूपा कारणके नियामकका नाम कारणब्रह्म है। केवल सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मका नाम कार्यकारणातीत परब्रह्म है। पञ्चदेव कार्यब्रह्म, कारणब्रह्म और कार्यकारणातीत परब्रह्मरूपसे एक ही हैं, केवल लीलाविग्रहकी दृष्टिसे इनमे नाम, रूप, लीला और धामगत विभेद हैं—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिण ।
उपासकाना कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥
रूपस्थाना देवताना पुस्त्र्यङ्गास्त्रादिकल्पना।
द्विचत्वारिषडष्टाना दश द्वादश षोडश॥
अष्टादशामी कथिता हस्ता शङ्खादिभिर्युता ।
सहस्रान्तास्तथा तासा वर्णवाहनकल्पना॥
शक्तिसेनाकल्पना च ब्रह्मण्येव हि पञ्चधा।
कल्पितस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकल्पना॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १।७—१०)

'यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, निष्कल, अशरीर है तथापि उपासकोके कार्यकी सिद्धिके लिये ब्रह्मके विविध रूपोकी ब्रह्मद्वारा कल्पना (लीलोपयुक्त भावना) की जाती है। साकारभावको प्राप्त उन देवताओके स्त्री, पुरुष, अङ्ग और अस्त्रादिकी भी कल्पना की जाती है। विविध रूपोमे अभिव्यक्त अवतारविग्रहके चार, छ, आठ, दस, बारह, सोलह, अट्ठारह हाथ होते हैं। ये शङ्ख आदिसे सुशोभित होते हैं। विश्वरूपदर्शनके समय प्रभु सहस्रो हाथोसे युक्त होते हैं। अवतारभेदसे रङ्ग, वाहन शक्ति और सेना आदिकी भी कल्पना की जाती है। उत्पत्ति, स्थिति, सहार, निग्रह और अनुग्रहरूप पञ्च कृत्योके निर्वाहक प्रभु ब्रह्मा, विष्णु, शिव शक्ति और गणपतिरूपसे स्वयको उद्भासित करते हैं। तदनुरूप सेनादि भी प्रकल्पित करते हैं।'

सुमेरु पर्वतसे बत्तीस हजार योजन ऊपर स्थित क्षीरसिन्धुके उत्तरभागमे मुख्यरूपसे निवास करनेवाले श्रीहरिमे अव्यक्तात्मक (अव्यक्तभावापन्न) शेषसञ्ज्ञक जीवतत्त्व—सकर्षण महदात्मक प्रद्युम्न, सात्त्विक अहमात्मक अनिरुद्ध राजस अहमात्मक ब्रह्मा स्थूलसूक्ष्मभूतसहित तामस अहमात्मक दक्षिणपार्श्ववर्ती एकादश रुद्र दशेन्द्रियसहित मनोबुद्धिरूप वामपार्श्ववर्ती द्वादश आदित्य प्राणात्मक प्रवह, अपानात्मक आवह, उदानात्मक उद्वह, समानात्मक सम्वह व्यानात्मक विवह परिवह तथा परावहके सहित वायुरूप

अग्रभागवर्ती अष्ट वसु, नासाभ्यन्तरचारी पृष्ठभागवर्ती नासत्य तथा दस्नसञ्ज्ञक अश्विनीकुमार एव त्वक्, मास, शोणित, अस्थि, स्नायु, मज्जा, शुक्रसञ्ज्ञक सप्तधातुमय सप्तर्षि, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, स्वायम्भुव मनु आदि प्रजापति, मूर्तिमन्त वेद, यज्ञ, ओपधि, यम, नियम, तप, अष्टैश्वर्य, श्री, लक्ष्मी, कीर्ति, पृथ्वी, नक्षत्र, ध्रुव, सरस्वती, समुद्र, सरोवर, सरिता, मेघमण्डल, पितृगण तथा त्रिगुणादिका सनिवेश है तथापि भगवान्‌का वासुदेवविग्रह निर्गुण निराकारकल्प हाता हे। वह भौतिक नहीं होता। अभिप्राय यह हे कि भगवान् निर्गुण निराकार होनेपर भी स्वरूपभूता सन्धिनी, सवित् और ह्लादिनी शक्तिक यागसे अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव एव त्रिगुणमय प्रकृतिसारसर्वस्व अवतारविग्रह धारण करत हैं। अतएव उनका दर्शन किसी बद्ध या मुक्त जीव (प्राणी)-के दर्शनतुल्य नही होता। वे सर्वव्यापक, सर्वभूतान्तरात्मा हैं। वे भूत तथा भोतिक शरीरादिके नष्ट हो जानेपर भी नष्ट नहीं होते हैं। देवर्षि नारदके प्रति स्वय श्रीहरिने इस रहस्यका प्रतिपादन किया है—

माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मा पश्यसि नारद॥
सर्वभूतगुणैर्युक्त नव त्व ज्ञातुमर्हसि।
मयेतत् कथित सम्यक् तव मूर्तिचतुष्टयम्॥
अह हि जीवसञ्ज्ञातो मयि जीव समाहित ।
नेव ते बुद्धिरत्राभूद् दृष्टो जीवो मयेति व॥
अह सर्वत्रगो ब्रह्मन् भूतग्रामान्तरात्मक ।
भूतग्रामशरीरेपु नश्यत्सु न नशाम्यहम्॥

(महाभारत शान्ति० ३३९।४५—४८)

विवक्षावशात् उत्पत्ति, स्थिति, सहार, निग्रह तथा अनुग्रह नामक कृत्यामे निग्रहका सहारमे ओर अनुग्रहका स्थितिम अन्तर्भाव कर उत्पत्ति, स्थिति, सहाररूप तीन कृत्याको ही माना जाता हे। इस दृष्टिसे वेदान्तवद्य परब्रह्म सच्चिदानन्दकी आत्मार्था सृष्टिम सनिहित सत्प्रधाना सन्धिनी शक्ति, चित्प्रधाना सवित्शक्ति तथा आनन्दप्रधाना ह्लादिनी शक्ति है और जीवार्था सृष्टिम सनिहित सत्प्रधाना तामसी, चित्प्रधाना सात्त्विकी एव आनन्दप्रधाना राजसी शक्ति है। सन्धिनी तथा तमस्‌से रूपकी, सवित् तथा सत्त्वसे नामकी तथा ह्लादिनी एव रजस्‌से क्रियाकी निष्पत्ति होती है। नाम, रूप, लीला आर धामम, रूप तथा धामम समानता है। नाम, रूप और क्रियाका समवेतस्वरूप लीला है। स्वरूपकी प्रकारान्तर अभिव्यक्ति 'रूप' है। रूपकी ख्यापक सामग्री 'नाम' है। स्वरूपख्यापन 'क्रिया' है। आरोहक्रमसे चरम रूप 'स्वरूप' है अर्थात् घटादिका ऊर्ध्वमुख चरम रूप सच्चिदानन्दस्वरूप 'ब्रह्म' है। नाम और क्रिया 'स्पन्द' हे। स्वरूप परब्रह्म है। स्पन्द शब्दब्रह्म है। शब्दब्रह्म प्रकृति, प्रणव और लक्ष्मी है—

'महालक्ष्मीर्मूलप्रकृतिरिति।'

(नारायणपूर्वतापनीयोपनिषद् २)

सीता भगवती ज्ञया मूलप्रकृतिसञ्ज्ञिता।
प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन ॥

(सीतोपनिषद्)

२-अवतारप्रयोजन—वेदान्तप्रस्थानकेअनुसारअव्यक्त-का व्यक्त हाना अवतार है। अविज्ञेय अव्यक्त हे और विज्ञेय व्यक्त है—**'यदविज्ञेय तदव्यक्तम्। यद् व्यज्यते तद् व्यक्तस्य व्यक्तत्वम्।'** (अव्यक्तोपनिषद् १-३)

जीव, जगत् और जगदीश्वरम अचिन्त्य मायाशक्तिके योगसे सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी अभिव्यक्ति मान्य है। अतएव तीना ही ब्रह्मके अवतार हैं। यद्यपि ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया, जीवेश्वरभेद, माया और चिद्रूप ब्रह्मका योग—ये छ अनादि हैं तथापि ईश्वर और जीव चैतन्य ब्रह्मके अनादिसिद्ध अवतार हैं। जगत् मायायोगसे ब्रह्म, ईश्वर और जीवका सम्मिलित अवतार है। ब्रह्म सर्वाधिष्ठान हे, अत उसके लिये उसका कोई प्रयोजन नहीं। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् हैं, अत उनका उनके लिये कोई प्रयोजन नहीं। माया और मायिक प्रपञ्च अचित् होनेसे परार्थ हैं, अत उनका उनके लिये कोई प्रयोजन नहीं। जीव (प्राणी) अल्पज्ञ तथा अल्पशक्तिमान् है अत ब्रह्म, ईश्वर, माया ओर जगत्‌से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप अभ्युदय और नि श्रेयससिद्धि उसका प्रयोजन है। जगत्‌से अर्थ, काम तथा धर्मकी सिद्धिरूपा भुक्ति और विरक्ति प्रयोजन हे। ईश्वरसे उत्पत्ति, स्थिति, सहति, निग्रह तथा अनुग्रह प्रयाजन है। षडैश्वर्यसम्पन्न ईश्वर भगवान् हैं। भगवान्‌के अवतारसे जीवका प्रयोजन अर्थ-कामरूप भोगकी सिद्धि भगवद्भक्ति तथा योगरूप समाधिकी सिद्धि और पूर्ण कृतार्थतारूप मोक्षकी सिद्धि है। भोग 'प्रेय' है, मोक्ष 'श्रेय' है। प्रेय और श्रेयोमार्गका

द्वारभूत धर्म है। अधर्म धर्मका अवरोधक है। अधर्मके अभ्युत्थानसे समुद्भूत धर्मग्लानिका निवारण और धर्मग्लानिमे हेतुभूत कुमार्गगामियोका उन्मूलन तथा धर्मसिद्धिमे हेतुभूत सन्मार्गगामी साधुओका परित्राण भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्गकी सिद्धि प्रशस्त राजसिहासन (राजगद्दी, शासनतन्त्र) तथा व्यासपीठ (व्यासगद्दी)-के अधीन है। राजगद्दी और व्यासगद्दीके शोधनके लिये भगवान्‌का अवतार अनिवार्य है। अतएव शिवावतार भगवत्पाद श्रीशकराचार्यके अनुसार व्यासगद्दीसे सम्बद्ध ब्राह्मणाके ब्राह्मणत्वको सुस्थिर कर राजगद्दीसे सम्बद्ध क्षत्रियोको क्षात्रधर्ममे प्रतिष्ठित करनेके लिये श्रीभगवान्‌का अवतार होता है। अत्यन्त उग्र अराजक तत्त्वोका उन्मूलन और उद्धार तथा अराजक तत्त्वोके उत्पातसे अत्यन्त उत्पीडित सज्जनोका त्राण तथा आह्लादरूप परित्राण भगवान्‌के अवतार लिये बिना असम्भव है।

यहाँ ध्यान रखनेकी आवश्यकता यह है कि सुषुप्तिके तुल्य महाप्रलय पुरुषार्थभूमि नहीं है। अतएव भगवान् अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धिके लिये अकृतार्थ जीवोको सर्गारम्भमे बुद्धि इन्द्रिय, मन और प्राणसे युक्त जीवन प्रदान करते हैं तथा पाञ्चभौतिक प्रपञ्चकी रचना कर उन्हे कृतार्थ होनेका पूर्ण अवसर प्रदान करते हैं—

बुद्धीन्द्रियमन प्राणान् जनानामसृजत् प्रभु ।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च॥

(श्रीमद्भा० १०।८७।२)

भगवान्‌का अवतार पुरुषार्थचतुष्टयकी द्रुतगतिसे सिद्धि और पुरुषार्थचतुष्टयके उपायभूत ब्रह्माण्डके पोषक और पृथिवीके धारक मानविन्दुओकी रक्षा तथा तदर्थ प्ररणाके लिये होता है—

गोविप्रसुरसाधूना छन्दसामपि चेश्वर ।
रक्षामिच्छस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि॥

(श्रीमद्भा० ८।२४।५)

विमला उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या ईशाना और अनुग्रहाशक्तिसम्पन्न सर्वेश्वर गौ, ब्राह्मण, सुर साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षाके लिये श्रीविग्रह धारण करते हैं।

नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मन ॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।१४)

हे नृप! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और दिव्यातिदिव्य अचिन्त्य गुणगणनिलय भगवान्‌की अभिव्यक्ति (अवतार)-का प्रयोजन मनुष्यादि प्राणियाके नि श्रेयस (परम कल्याण)-के लिये है।

अज, अनादि, अप्रमेय, अव्यय, निर्गुण ब्रह्म ब्रह्मादि देवशिरोमणियोके लिये भी अदृश्य है। यह उसका सत्पुरुषोपर अनुग्रह ही है कि वह भक्तवत्सलताके कारण स्वयको अचिन्त्यलीलाशक्तिके योगसे सगुण साकार रूपसे व्यक्त कर लेता है। अविद्या, काम, कर्मसे अतीत सर्वेश्वर लीलापूर्वक जन्म लेता है, अत उसका जन्म लेना दिव्य है। वह अपनी अविक्रिय विज्ञानघन अव्ययरूपताका समादर करता हुआ ही कर्म करता है, अत उसका कर्म करना दिव्य है। उसके योगवैभवका प्रधान प्रयोजन अपने प्रति आस्था और अनुरक्तिकी प्रगाढ अभिव्यक्ति ही है—

त्व भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपु प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(श्रीमद्भा० ३।९।११)

'नाथ! आपका मार्ग केवल गुणश्रवणसे ही जाना जाता है। आप भावयोगसे परिभावित हृदयकमलम निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! रसिक भावुक जिस-जिस भावसे आपकी विशेष भावना करते हैं, उन सत्पुरुषोपर अनुग्रह करनेक लिये आप वही-वही रूप धारण कर लेते हैं।'

तथा परमहसाना मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथ पश्येम हि स्त्रिय ॥

(श्रीमद्भा० १।८।२०)

'जब आत्मानात्मविवेकसम्पन्न परमहस, मननशील मुनि और रागादिविरहित शमादिसम्पन्न सनकादिसरीखे अमलात्मा सत भी स्वरूप, शक्ति वैभवसे अनन्त, अचिन्त्यमहिमामण्डित आपको नहीं जान पाते, तब आपकी भक्ति करनेकी भावनावाली किंतु देह, गेह, सगे-सम्बन्धियोंमें रची-पची हम स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं? अभिप्राय यह है कि आप मुनियो और परमहसोके मनको

भी अपने दिव्यातिदिव्य गुणगणासे समाकृष्टकर उन्हे भक्तियोग प्रदान करनेके लिये अवतीर्ण होते हैं।'

श्रीमद्भगवद्गीता (४।२-३, ७-८)-के अनुसार श्रीभगवान्का अवतार मोक्षप्रद तत्त्वज्ञानरूप योगकी प्रतिष्ठा, धर्मसंस्थापन, दुष्टदलन और साधुपरित्राणके लिये होता है—

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

ध्यान रहे—विरक्ति, भक्ति और भगवत्प्रबोधमें वेदोक्त कर्मोपासना और ज्ञानकाण्डका तात्पर्य संनिहित है। तदनुकूल व्यासपीठ और शासनतन्त्र अपेक्षित है। तदर्थ मर्त्यशिक्षण मर्त्यावतारका प्रयोजन है—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभो।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥

(श्रीमद्भा० ५।१९।५)

'प्रभो! आपका मर्त्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है। इसका मुख्य प्रयोजन तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा आप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर आत्मारामको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था?'

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(श्रीमद्भा० १।७।१०)

मननशील, चिज्जडग्रन्थिभेदनसम्पन्न आत्माराम भगवान्‌की निष्काम भक्ति किया करते हैं। क्यों न हो, भगवान्‌के अप्राकृत दिव्यातिदिव्य गुणगण ही ऐसे अनुपम हैं जो गुणातीत परमहंसोंको भी अपनी ओर हठात् आकर्षित करते हैं।

विश्वरूपप्रोक्त नारायणकवचके अनुशीलनसे मत्स्यादि अवतारोंकी उपयोगिताका परिज्ञान होता है। मत्स्यावतार जलजन्तुओंसे और वरुणपाशसे रक्षा करनेवाले हैं। स्थल तथा नभमें वामनावतार रक्षा करनेवाले हैं। नृसिंहावतार वन, दुर्ग, रणादि दुर्गम स्थलोंमें रक्षा करनेवाले हैं। वराहावतार मार्गमें रक्षा करनेवाले हैं। परशुरामावतार पर्वतोंके शिखरोंपर रक्षा करनेवाले हैं। रामावतार प्रवासमें रक्षा करनेवाले हैं। नारायणावतार अभिचार और प्रमादसे रक्षा करनेवाले हैं। नरावतार गर्वसे रक्षा करनेवाले हैं। दत्तात्रेयावतार योगान्तरायसे रक्षा करनेवाले हैं। कपिलावतार कर्मबन्धसे रक्षा करनेवाले हैं। सनत्कुमार कामसे रक्षा करनेवाले हैं। हयग्रीव देवापराधसे रक्षा करनेवाले हैं। नारदावतार सेवापराधसे रक्षा करनेवाले हैं। कच्छपावतार नरकसे रक्षा करनेवाले हैं। धन्वन्तरि कुपथ्यसे रक्षा करनेवाले हैं। ऋषभावतार द्वन्द्वोंसे रक्षा करनेवाले हैं। यज्ञावतार लोकापवादसे रक्षा करनेवाले हैं। बलरामावतार मनुष्यकृत कष्टोंसे रक्षा करनेवाले हैं। शेषावतार क्रोधवश नामक सर्प-समुदायसे रक्षा करनेवाले हैं। व्यासावतार अज्ञानसे रक्षा करनेवाले हैं। बुद्धावतार पाखण्डियों और प्रमादसे रक्षा करनेवाले हैं। कल्किदेव कलिकालके दोषोंसे रक्षा करनेवाले हैं। केशव, गोविन्द, मधुसूदन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पद्मनाभ, श्रीहरि, जनार्दन, दामोदर तथा विश्वेश्वर अहर्निश रक्षा करनेवाले हैं। (श्रीमद्भा० ६।८।१२—२२)

~~~ ○ ~~~

हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुत्तरति॥

हरि ही जगत् हैं, जगत् ही हरि हैं, हरि और जगत्‌में किञ्चिन्मात्र भी भेद नहीं है। जिसकी ऐसी मति है, उसीकी परमार्थमें गति है, वह पुरुष संसार-सागरको तर जाता है।

~~~ ○ ~~~

श्रीहंसावतार एवं सुदर्शनचक्रावतार—श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)

भगवदवतारका हेतु स्वयं सर्वनियन्ता सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें इन सुप्रसिद्ध श्लोकद्वयसे स्पष्टरूपेण निरूपित किया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४।७-८)

इस धराधामपर जब-जब भी अनादि वैदिक सनातनधर्मका ह्रास होता है एवं अधर्मकी अभिवृद्धि होती है, तब-तब मैं स्वयं भूतलपर अवतीर्ण होता हूँ। उत्तमश्लोक श्रेष्ठ महापुरुषोंके सर्वविध-रक्षार्थ एवं पापाचारपरायण दुरितजनोंके परिहार एवं श्रुतिसम्मत सनातनधर्मके सम्यक् संस्थापननिमित्त ही मैं स्वयं प्रत्येक युगमें अवतरित होता हूँ।

यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीतोक्त श्रीभगवदीय वचनसे अवतारका प्रमुखहेतु स्वतः स्वाभाविक एवं सुस्पष्ट है तथापि सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यचरणोंने अपने 'वेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी' के अष्टम श्लोकसे श्रीहरिके अवतारका जो भाव प्रतिपादित किया है, वह निश्चय ही अत्यन्त विलक्षण, परम दिव्य भावसे परिपूर्ण एवं शास्त्रसम्मत है।

वे श्रीप्रभु अनन्तकोटिब्रह्माण्डाधिपति क्षराक्षरातीत जगज्जन्मादिहेतु निखिलजगदभिन्ननिमित्तोपादानकारण कर्तुम-कर्तुमन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थ हैं। वे सर्वनियन्ता, सर्वान्तरात्मा और सर्वशक्तिमान् हैं। वे अपने नित्यदिव्यधाममें विराजित रहते हुए '**संकल्पादेव तच्छ्रुतेः**' इस सिद्धान्तानुसार समस्त चराचर जगत्का क्षणमात्रमें उद्भव, संरक्षण एवं विलय कर देते हैं, उन्हें अवतारकी अपेक्षा ही नहीं तथापि अनुग्रहविग्रहस्वरूप श्रीसर्वेश्वर अपने प्रपन्न, परम भागवत भगवज्जनोंकी स्वाभाविक पराभक्तिसे समाकृष्ट हो भारतकी इस पावन वसुधापर अवश्य ही विभिन्न स्वरूपोंमें अवतीर्ण होते हैं।

'वेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी' के अष्टम श्लोकसे भगवच्छरणागतिके निरूपणक्रममें भगवदवतारपरक जो प्रतिपादन हुआ है, वह परम कमनीय है—

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्
सन्दृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्॥

इस श्लोकके तृतीय चरणमें '**भक्तेच्छयोपात्त-सुचिन्त्यविग्रहात्**' का निर्देश करके श्रीप्रभुके अवतार लेनेका हेतु स्पष्ट रूपसे अभिव्यक्त है, जिसमें यही भाव निर्दिष्ट किया गया है कि वे सर्वाधिष्ठान श्रीहरि भक्तोंके चिरभिलषित पावन मनोरथोंको पूर्ण करनेहेतु ही समय-समयपर स्वयं श्रीराम-श्रीकृष्णप्रभृति स्वरूपमें शिशुरूप धारण कर अवतीर्ण होकर उनके श्रेष्ठतम मनोरथोंको सर्वात्मना पूर्ण करते हैं। महाराज दशरथ और माता कौसल्या, व्रजाधीश नन्द एवं यशोदाके उत्तमोत्तम मनोरथोंको पूर्ण करनेके निमित्त ही स्वयं बालरूपमें आविर्भूत होते हैं। यही तो उन सर्वेश्वरकी भगवत्ता एवं परम कृपालुता है।

श्रीहंसावतारधारणका भी यही प्रमुख लक्ष्य है। जगत्स्रष्टा पितामह श्रीब्रह्माके समक्ष जब उन्हींके मानस पुत्र श्रीसनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार महर्षिप्रवरोंने यह जिज्ञासापूर्ण प्रश्न उपस्थित किया—

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः॥
(श्रीमद्भा० ११।१३।१७)

अर्थात् हे ब्रह्मदेव! प्राणिमात्रका यह त्रिगुणात्मक चित्त इस चराचरात्मक त्रिगुणरूप जगत्के विषयोंमें आलिप्त है तथा ये जागतिक विषय इस चित्तमें व्याप्त हैं, अतः विषय तथा चित्त—ये दोनों ही आपसमें एक-दूसरेसे मिले हुए हैं तब इस भवार्णवसे निवृत्त होनेकी उत्कण्ठावाले मोक्षाभिलाषीको इस जगत्से मोक्षकी प्राप्ति कैसे सम्भव है? इनका उभयात्मक परस्पर स्वाभाविक सम्बन्ध है,

अतएव इस जगत्से चित्तकी सर्वथा निवृत्ति कैसे सम्भावित है? कृपाकर इसका सम्यक् समाधान करें।

श्रीसनकादि महर्षियोंके इस परम गूढ़तम, रहस्यात्मक और अत्यद्भुत प्रश्न करनेपर जगत्पिता ब्रह्मा भी व्यामुग्ध हो गये और इसका सही समाधान न पानेपर उन्होंने मन-ही-मन अकारणकरुणावरुणालय अखिलान्तरात्मा भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्णका चिन्तन किया। अनन्तकृपासिन्धु दयार्णव श्रीहरि इस अतीव गूढ़तम प्रश्नके समाधानार्थ श्रीब्रह्माके वाहन हंसरूपमें उनके समक्ष कुछ ही दूरीपर अतिशय ददीप्यमानस्वरूपमें अवतीर्ण हो गये और उन्होंने श्रीसनकादि महर्षियोंके जिज्ञासापूर्ण प्रश्नका इस प्रकार समाधान किया—

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः॥

(श्रीमद्भा० ११। १३। २३)

देव, मानव, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि सभी पञ्चभूतात्मक होनेपर आप कौन हैं? यह जिज्ञासात्मक प्रश्न ही यथार्थ नहीं है, मात्र वाग्विलास कथनरूप व्यर्थ ही है।

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११। १३। २४)

मन, वाणी श्रोत्र, नेत्रप्रभृति इन्द्रियोंसे जो भी ज्ञान किया जाय, वह मैं सर्वेश्वर ही हूँ। इसके रहित कोई भी पदार्थ नहीं, अतः यही अन्तर्बाह्यज्ञान ज्ञातव्य है।

इस प्रकार श्रीसनकादिकोंद्वारा श्रीब्रह्माके प्रति किये गये प्रश्नका श्रीहंस भगवान्से समाधान पानेपर ये चारों महर्षिवृन्द अत्यन्त संतुष्ट हुए। पश्चात् उसी क्षण श्रीसनकादि महर्षियोंकी अभिलाषानुसार गुञ्जाफलसदृश दक्षिणावर्ती चक्राङ्कित अर्चाविग्रहरूप शालग्रामस्वरूप श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी सेवा उन्हें हंस भगवान्से प्राप्त हुई जो आगे चलकर वैष्णवपराभक्तिरसकी सर्वस्वरूपा बन गयी। इसीका अवबोध महर्षिवर्य श्रीसनकादिकोंने देवर्षिप्रवर श्रीनारदको कराया। इसके अनन्तर द्वापरान्तमें सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यको यही श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी सेवा देवर्षिवर्य श्रीनारदजीने प्रदान की। यह सेवा अद्यावधि आचार्यपरम्परागत निम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ पुष्करक्षेत्र (राजस्थान)-में विद्यमान है। यहाँ प्रतिदिन गोदुग्धसे वैदिक पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा अभिषेक होता है।

महर्षिवर्य श्रीसनकादिकोंने लोकलोकान्तरोंमें विचरण करते हुए इस धराधामपर तीर्थगुरु श्रीपुष्करतीर्थमें, जहाँ श्रीब्रह्माजी ब्रह्मलोककी भाँति सर्वदा सुशोभित हैं आकर अपना यह अतीव गूढ़तम प्रश्न किया और भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्णने ही श्रीहंसरूपमें अवतीर्ण होकर उनके प्रश्नका दिव्यतम समाधान किया।

चौबीस अवतारोंका शास्त्रोंमें वर्णन है और सभी अवतार इसी भूतलपर—भारतवर्षकी पावन वसुधापर हुए हैं। अवतरणका अर्थ ही ऊर्ध्व लोकोंसे पृथ्वीतलपर आना है। अतः यह अवतार भी भूतलपर पुष्करमें ही हुआ है। अतः पुष्करतीर्थ श्रीहंसभगवान्की पावनस्थली भी है।

इसी प्रकार वे जगन्नियन्ता श्रीहरि कभी स्वयं तो कभी अपने नित्य एवं दिव्य पार्षदोंको भी सम्प्रेषित कर अज्ञानान्धकारका निवारण एवं आसुरी शक्तिका परिहार कराते हैं और अनादि वैदिक सनातन वैष्णवधर्मका प्रतिष्ठापन भी कराते हैं।

पञ्चसहस्रवर्षपूर्व द्वापरान्त एवं कलियुगारम्भकालमें अपने ही करारविन्दमें नित्य सुशोभित चक्रराज श्रीसुदर्शनको उन्होंने एवंविध आज्ञा प्रदान की—

सुदर्शन महाबाहो कोटिसूर्यसमप्रभ।
अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय॥

(भविष्यपुराण)

अर्थात् करोड़ों सूर्यसदृश दिव्य प्रभायुत महाबाहो! श्रीसुदर्शन! आप इस जगतीतलपर अज्ञानान्धकारके निवारणार्थ आचार्यस्वरूपसे अवतीर्ण हों और संसारासक्त जनोंको वैष्णव पराभक्तिके पावनपथका उत्तम ज्ञान करावें।

अनुग्रहविग्रहस्वरूप सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गल आदेश प्राप्त कर चक्रराज श्रीसुदर्शन इस अवनितलपर भारतवर्षके दक्षिणाञ्चलक्षेत्र गोदावरी तटवर्ती पैठनके संनिकट मूंगी ग्राममें महर्षिवर्य श्रीअरुणके यहाँ माता श्रीजयन्तीके पावन उदरसे नियमानन्दके रूपमें अवतीर्ण हुए और आपने व्रजमण्डलस्थ गोवर्धन-संनिकटवर्ती निम्बग्राममें देवर्षि श्रीनारदजीसे पञ्चपदी विद्यात्मक श्रीगोपालमन्त्रराजकी दीक्षा ली तथा श्रीसनकादिससेवित श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी सेवा प्राप्त की। यहीं पर आपने अपने आश्रममें सूर्यास्त होनेपर

श्रीसुदर्शनचक्रराजका आवाहन कर समागत दिवाभोजी दण्डीयतिरूप श्रीब्रह्माको सूर्यवत् दिवानुभूति कराकर उनका आतिथ्य कर उन्हे भगवत्प्रसाद कराया, इसीसे जगत्स्रष्टा श्रीब्रह्मदेवने उन्हे 'निम्बार्क' नामसे सम्बोधित किया। तभीसे आप श्रीनिम्बार्काचार्य नामसे विख्यात हुए। आपकी उपासना नित्यनिकुञ्जवृन्दावनविहारी युगलकिशोर भगवान् श्रीराधाकृष्णकी है और आपका दार्शनिक सिद्धान्त स्वाभाविक-द्वैताद्वैत है। एकादशीव्रतादिमे कपालवेधसिद्धान्त आपका ग्राह्य है। प्रस्थानत्रयीमे आपका ब्रह्मसूत्रपर 'वेदान्तपारिजातसौरभ' नामक भाष्य वृत्त्यात्मक रूपसे परम प्रख्यात है। आपके 'वेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी', 'प्रात स्तवराज', 'श्रीराधाष्टकस्तोत्र' 'मन्त्ररहस्यषोडशी' एव 'प्रपन्नसुरतरुमञ्जरी' प्रभृति ग्रन्थ परम मननीय है। आप वैष्णव चतु सम्प्रदायामे अत्यन्त प्राचीनतम हैं। आपकी आचार्यपरम्परामे पूर्वाचार्योंने सस्कृत वाङ्मय एव हिन्दी व्रजसाहित्यमे अनेक दार्शनिक तथा उपासनापरक सरस रचनाएँ की हैं, जो भागवतजनोके लिये अपने अन्तर्मानसमे सर्वदा अवधारणीय है।

वेदोमे अवतारवाद

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

परमेश्वरका अवतरण होता है, वे स्वय अवतार लेते हैं अर्थात् शरीर धारण करते हैं, परतु अपने ज्ञानको विलुप्त करके नहीं, अपितु ज्ञानपूर्वक ही अवतार धारण करते हैं। उनका अदृष्ट नहीं होता, वे किसी अदृष्टकी प्रेरणासे बाध्य होकर जन्म नहीं लेते। कर्तृत्वाभिमान न होनेसे वे कोई नया कर्म भी नहीं करते हैं, प्रत्युत **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** मात्रके लिये ही लीला करते हैं।

विचार करके देखा जाय तो हमारे वेद ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा समस्त पुराण तथा उपपुराणसमूह अवतारवादके अपूर्व भण्डार हैं। पुराणसमूह तो अवतारवादसे भरे पडे हैं, क्योकि पुराण वेदोके उपबृहण हैं, यही कारण है कि हमारा वैदिक सनातन धर्म अवतारवादसे ओतप्रोत है। अवतारवादका मूल वेद ही है। वेदमे अवतारवादके बीज यत्र-तत्र पाये जाते हैं।

सृष्टिके मूलमे अनेक कारण नहीं हैं अपितु एक कारण है और वह ब्रह्म ही है। इसलिये वेदमे कहा भी है—**'न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।'** (अथर्व० १३।४।१६) उस चैतन्यस्वरूप ब्रह्ममे द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आदि कुछ भी भेद नहीं है। **'एकमेवाद्वितीयम्॥'** (छा० ६।२।१) वह एक अद्वितीय तत्त्व ब्रह्ममात्र विद्यमान है। इसलिये वेदकी ऋचाओमे ही स्पष्ट शब्दोमे कहा है—

'पुरुष एवेद सर्वं यद्भूत यच्च भव्यम्॥'

(ऋक्० १०।९०।२)

जो भूतकालमे उत्पन्न हुआ था, जो वर्तमानकालमे है और जो भविष्यत् कालमे होनेवाला है वह सब पुरुष (ब्रह्म)-रूप ही है। अन्यत्र भी कहा है—

इन्द्र मित्र वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान्।
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यम मातरिश्वानमाहु ॥

(ऋक्० १।१६४।४६)

इस विश्वब्रह्माण्डके पीछे एक ही सद् वस्तु (ब्रह्ममात्र) विद्यमान है। मनस्वीजन उस एक तत्त्वको ही—इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि अनेक नामोसे पुकारते हैं। सुन्दर पखवाले तीव्रगामी गरुड भी वे ही है। उसी तत्त्वको यम तथा मातरिश्वा नामसे भी कहते हैं। क्या वे अनेक हैं? नहीं, अनेक नहीं हैं, अपितु उस एकके ही वे अनेक नाम और रूपमात्र हैं। एक ही ब्रह्म अनेक कैसे बन जाता है? इसका उत्तर भी वेदमे ही दिया हुआ है। अत देखिये—

रूप रूप प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरय शता दश॥

(ऋक्० ६।४७।१८)

वह परमेश्वर अपनी मायाशक्तिसे अर्थात् अनन्त सामर्थ्योंसे अनेक देहोके रूपवाला हो जाता है। वह इस अपने रूपको सबपर विख्यात करनेके लिये जैसे-जैसे रूपकी इच्छा करता है वैसे-वैसे रूपवाला हो जाता है।

अत उस परमेश्वरके अनन्त रूप हैं।

इस प्रकारसे जब एक ही ब्रह्मतत्त्व सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डमे ओत-प्रोत होकर पूर्ण व्यापकरूपमे सर्वत्र विद्यमान है तो वहाँ दूसरे चेतनके लिये अवकाश ही कहाँ रह जाता है? अत दूसरे चेतनके लिये अनवकाश है। जब ऐसा है तो एक ब्रह्म ही सब देव मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप आदि समस्त प्राणियाके रूपमे हुआ। तब अवतार भी इस ईश्वरका ही हुआ और फिर जीव और ब्रह्मकी एकता भी स्वत ही सिद्ध हो जाती है।

साकार और निराकार ब्रह्म—वेदमे उस निर्गुण-निर्विशेष ब्रह्मतत्त्वका ही सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार तथा मूर्त और अमूर्तके भेदसे दो रूपोमे वर्णन किया गया है। श्रुतिमे कहा गया है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च॥'

(बृह० २।३।१)

ब्रह्मके दो रूप हैं, एक मूर्त, जो सगुण-साकाररूपमे जाना जाता है और दूसरा है अमूर्त, जो निर्गुण-निराकारके रूपमे जाना जाता है। अन्यत्र भी कहा है—

'पर चापर च ब्रह्म यदोङ्कार ' (प्रश्न०उप० ५।२) अर्थात् यह आकाररूप ब्रह्म ही परब्रह्म भी है और अपरब्रह्म भी।

निर्गुण निराकारका तात्पर्य है जिसका कोई रूप या आकार न हो। जिसके आकारकी कल्पना न हो, गुणसे रहित गुणातीत हो वही निराकारतत्त्व ब्रह्म है। वेदामे निर्गुण निराकार ब्रह्मका वर्णन बहुलरूपमे मिलता है। जैसे ऋग्वेद (८।६९।११) यजुर्वेद (४०।८), मुण्डक० (१।१६) तथा बृहदारण्यक (३।८।८) आदिमे देखा जा सकता है। रही बात सगुण-साकारकी। सगुण-साकार ब्रह्मका वर्णन भी वेदामे ही मौजूद है जो कि पुरुषसूक्तमे देखा जा सकता है। पुरुषसूक्त थोडा अन्तरके साथ चारो वेदोमे आता है। उसी पुरुषसूक्तके प्रथम मन्त्रमे ही सगुण-साकार ब्रह्मका वर्णन आता है। यथा—

सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात्।
स भूमि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

(ऋक्० १०।९०।१)

हजारो मस्तक जिसके हैं हजारो आँख जिसकी हैं, हजारो बाहु जिसके है, हजारो पाँव जिसके हैं, ऐसा एक पुरुष है। वह भूमिको चारो ओर घेरकर रह रहा है और दस अङ्गुल नाभिसे ऊपर हृदयस्थानमे अथवा दस अङ्गुल-रूप अल्प-सृष्टिको व्याप्त कर बाहर भी वह है।

इस पुरुषके सिर, आँख, बाहु और पाँव आदि लिखे हैं। यह उपलक्षण है। अर्थात् इस पुरुषके—सिर, आँख नाक, कान, बाहु, छाती, उदर, मूत्रद्वार, जाँघे, गुह्यद्वार, पिण्डलियाँ, पाँव अर्थात् समस्त अवयव हजारो, लाखो, करोडो, अरबो हैं। ऐसा यह पुरुष पृथ्वीके ऊपर चारो ओर पृथ्वीको घेरकर रह रहा है और पृथ्वी जैसे अन्य लोकोमे भी है।

उक्त मन्त्रमे सगुण-साकार ब्रह्मका ही वर्णन किया गया है निर्गुण-निराकार ब्रह्मका नहीं, क्योकि हाथ, पाँव, नेत्र तथा मस्तक आदि सगुण-साकार ब्रह्मके ही होते हैं निर्गुण-निराकार ब्रह्मके नहीं। जब ब्रह्म सगुण-साकार है तो वह गर्भमे भी आता है, शरीर भी धारण करता है और अवतार आदि भी लेता है—यह बात स्वत ही सिद्ध हो जाती है। इसलिये वेदमे स्पष्ट रूपमे कहा है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनि परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

(यजु० ३१।१९)

सर्वात्मा प्रजापति गर्भमे प्रविष्ट होकर अजन्मा होते हुए भी अनेक कारणरूप होकर जन्म लेते हैं, शरीर धारण करते हैं। धीर पुरुष उस प्रजापतिके मूलस्थानको देखते हैं। सम्पूर्ण भुवन उस कारणात्मक प्रजापतिरूप ब्रह्ममे स्थित है।

अन्यत्र भी कहा है—

'एषो ह देव प्रदिशोऽनु सर्वा पूर्वो ह जात स उ गर्भे अन्त । स एव जात स जनिष्यमाण प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुख ॥' (यजु० ३२।४)

वह परमात्मदेव सब दिशा-विदिशाओमे नाना रूप धारण करके ठहरा हुआ है। वही प्रथम सृष्टिके आरम्भमे हिरण्यगर्भके रूपमे उत्पन्न हुआ वही गर्भके भीतर आया और वही उत्पन्न हुआ। आगे भी वही उत्पन्न होगा—जो सबके भीतर ठहरा हुआ है और जो नाना रूप

धारण करके सब ओर मुखवाला हो रहा है। अथर्ववदमे भी स्पष्ट शब्दोम कहा ह कि—

'उतैषा पितोत वा पुत्र एषामुतैषा ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठ ।
एको ह देवो मनसि प्रविष्ट प्रथमो जात स उ गर्भे अन्त ॥'

(अथर्व० १०।८।२८)

हे सर्वेश्वर! तू ही इन प्राणियाका पिता है, पुत्र है, इनका ज्येष्ठ है और कनिष्ठ भी है। एक ही देवता मनम प्रविष्ट हुआ है और वही गर्भके भीतर आता है तथा जन्म लेता है।

वेदकी उक्त ऋचाआसे स्पष्ट प्रमाणित हो जाता हे कि परमात्मा गर्भमे आता हे, शरीर धारण करता हे, अवतार धारण करता है।

प्रश्न—परमात्मा अवतार क्यो लेते हैं? क्या प्रयोजन है उन्ह अवतार लेनेका?

उत्तर—इस प्रश्नका उत्तर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्वय ही गीता (४।७-८)-म इन शब्दाक द्वारा दिया है। यथा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

हे भरतवशी अर्जुन! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मे अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकार रूप धारण कर लोगाके सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधुपुरुषाका उद्धार और पापकर्म करनेवालाका विनाश करनेक लिय एव धर्मको पुन प्रतिस्थापित करनेके लिये मैं युग-युगमे प्रकट हाता हूँ—शरीर धारण करता हूँ। परतु **'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'** (गीता ४।९) मेरा जन्म और कर्म दिव्य और अलौकिक होता है। यही तो अवताराकी विशेषता हाती है।

प्रश्न—परमात्मा जब किसी स्थानविशेषमे अवतार धारण कर लेता हे तब तो वह एकदेशीय अर्थात् सीमित बन गया और उसकी सवव्यापकता भी समाप्त हो जाती होगी, तब जगत्का शासन कौन करता हागा?

उत्तर—परमात्माक किसी स्थानविशेषमें अवतार धारण कर लेनेपर भी उसकी सर्वव्यापकता समाप्त नहीं हो जाती और न ही उसका शासन ही समाप्त हा जाता है, प्रत्युत पूर्ववत् चलता ही रहता है। उसके लिये श्रुतिने अग्नि और वायुका दृष्टान्त दिया है। यथा—

अग्निर्यथैको भुवन प्रविष्टो
रूप रूप प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूप रूप प्रतिरूपो बहिश्च॥

(कठ० २।२।९)

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डमे प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपामे उनके समान रूपवाला-सा हो रहा हे, वैसे ही समस्त प्राणियाका अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपोमे उन्हींके-जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी वही है।

इसी प्रकार वायुका भी दृष्टान्त दिया है। अत परमात्माके कहींपर भी अवतार धारण कर लेनेपर भी न तो उनकी सर्वव्यापकता समाप्त हो जाती है और न जगत्का शासन-कार्य ही समाप्त हो जाता है, प्रत्युत समस्त कार्य पूर्ववत् चलता ही रहता हे, यही उनकी विशेषता है।

चौबीस अवतारोके नाम—*पुराणामे* जिन चौबीस अवताराका नाम आता है, वे इस प्रकार हैं—१-नारायण (विराट् पुरुष), २ ब्रह्मा, ३ सनक-सनन्दन-सनत्कुमार-सनातन, ४ नर-नारायण, ५ कपिल ६ दत्तात्रेय, ७ यज्ञ, ८ हयग्रीव, ९ ऋषभदव १० पृथु, ११ मत्स्य, १२ कूर्म, १३ हस, १४ धन्वन्तरि, १५ वामन, १६ परशुराम, १७ मोहिनी, १८ नृसिह, १९ वेदव्यास, २० राम, २१ बलराम, २२ श्रीकृष्ण, २३ बुद्ध तथा २४ कल्कि।

इनमे दस अवतार मुख्य हं। इनके नाम इस प्रकार हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। कल्कि अवतार अभी नहीं हुआ है, कलिके अन्तम हागा।

अवताराकी दिव्य कथा अत्यन्त रोचक तथा प्रभावशाली है। इस सन्दर्भम कुछ अवताराकी वेदिकताका साकेतिक वणनमात्र प्रस्तुत है—

ब्रह्मावतार—ब्रह्मावतारके विषयमें अथर्ववेदमें कहा गया है कि—

ब्रह्मज्येष्ठा सभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान्।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥
(अथर्व० १९।२३।३०)

ब्रह्माजीने बड़े बल धारण किये हैं, उन्होंने ही सृष्टिके आरम्भमें बड़े द्युलोकका विस्तार किया है। वे समस्त प्राणियोंसे पूर्व प्रकट हुए। उन ज्येष्ठ ब्रह्मासे स्पर्धा करनेमें कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं।

मुण्डक श्रुतिमें भी कहा गया है कि—

'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।' (मुण्डक० १।१।१)

ब्रह्माजी समस्त देवताओंसे प्रथम उत्पन्न हुए, जो जगत्‌के रक्षक तथा विश्वके बनानेवाले हैं।

यजुर्वेदमें भी कहा गया है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजु० १३।४)

हिरण्यपुरुषरूप ब्रह्माण्डमें गर्भरूपसे स्थित प्रजापति ब्रह्मा हिरण्यगर्भ हैं। समस्त प्राणियोंमें पहले उन्होंने शरीर धारण किया वे ही जातमात्र समस्त जगत्‌के अकेले ही पति हुए। वे अन्तरिक्ष, द्युलोक और इस पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। उन प्रजापतिको हम हवि देते हैं।

मनुने भी कहा है—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥
(मनु० १।९)

वह जो सुवर्णकी कान्तिवाला सूर्यके समान तेजधारी अण्ड था उस अण्डमें सर्वलोकके पिता ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए। इससे भी ब्रह्मावतारकी बात सिद्ध होती है।

वामनावतार—वामनावतारका उल्लेख भी वेदमें ही है। जैसे कहा है—

'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे स्वाहा॥' (यजु० ५।१५)

सर्वव्यापक विष्णुने इस चराचर विश्वको विभक्त कर पहला पृथिवी, दूसरा अन्तरिक्ष और तीसरा द्युलोकमें पदनिक्षेप किया है। इस विष्णुके पदमें सम्पूर्ण विश्व समा गये। हम उन्हीं परमात्माके लिये हवि देते हैं।

ब्राह्मणग्रन्थमें भी कहा है कि—

'वामनो ह विष्णुरास ॥' (शतपथ० का० १।२।२।५) अर्थात् विष्णु ही वामन थे—जो वामनावतार कहलाये। अन्य श्रुतिमें भी कहा है—'मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते॥' (काठक श्रुति० ५।३)

शरीरके मध्य (हृदय)-में बैठे हुए उस सर्वश्रेष्ठ वामनरूप परमात्माकी सभी देवता उपासना करते हैं—पूजते हैं। इससे भी वामनावतार सिद्ध हो जाता है।

वराह-अवतार—वराहावतारकी बात भी वेदमें ही मिल जाती है। जैसे कहा है—

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय॥
(अथर्व० १२।१।४८)

शत्रुको भी धारण करनेवाली, पुण्य और पाप करनेवालेके शवको भी सहनेवाली, बड़े-बड़े पदार्थोंको धारण करनेवाली और वराह—सूकर जिसे ढूँढ रहे थे वह पृथ्वी वराहको ही प्राप्त हुई थी और उन्होंने ही पृथ्वीका उद्धार किया है।

इसकी पुष्टिमें तैत्तिरीय आरण्यकमें कहा गया है—

'उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।'
(तै० आरण्यक १।१।३०)

हे भूमि! तुम्हारा असंख्य भुजावाले कृष्ण-वराहने उद्धार किया।

इसी बातको शतपथब्राह्मणमें भी कहा गया है। यथा—

इयतीह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेमूष।
इति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः प्रजापतिरिति॥
(शतपथ० १४।१।२।११)

पहले तो भूमि प्रादेशमात्र प्रकट हुई उसका वराहने उद्धार किया, इसलिये इसका पति प्रजापति है। इससे भी वराहावतार सिद्ध होता है।

यक्षावतार—सामवेदीय केनोपनिषद् तलवकार ब्राह्मणके अन्तर्गत है। इसमें प्रारम्भसे लेकर अन्ततक सर्वप्रेरक ब्रह्मतत्त्वके ही स्वरूप तथा प्रभावका वर्णन

किया गया है। इसमे चार खण्ड हैं, तीसरे खण्डम यक्षोपाख्यान है। इसके द्वारा देवताआकी अन्तस्थ-अहवृत्तिका निरसन हुआ हे।

एक बार परब्रह्म परमात्माने ही देवताओको शक्ति प्रदान की, जिससे उन्होने असुरापर विजय प्राप्त की, किंतु उस परब्रह्म परमात्माकी विजयमे इन्द्र आदि देवताओने अपनेमे महत्त्वका अभिमान कर लिया। वे ऐसा समझने लगे कि यह हमारी ही विजय हे ओर हमारी ही यह सब महिमा है।

परतु उस परब्रह्मने इन देवताआके अभिमानको जान लिया और कृपापूर्वक उनका अभिमान दूर करनेके लिये देवताआके समक्ष वे निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही सगुण-साकार रूप धारण कर अर्थात् यक्षके रूपम प्रकट हो गये। अचानक ही व्योममण्डलमे एक दिव्य तेजस्वी यक्षक रूपको देखकर सब देवता घबरा गये। यह यक्ष कौन है? कोई असुर ही तो हमारा भेद लेनेके लिये नहीं आ गया? इसका पता लगा लेना चाहिये। तब देवताआने अपने प्रधान अग्निदवसे कहा कि हे जातवेदा अग्नि! आप जाकर इस वातका पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है? अग्निने कहा—बहुत अच्छा। ऐसा कहकर अग्नि यक्षके पास जा पहुँचे। यक्षने पूछा—आप कौन हैं? अग्निने उत्तरमे कहा—मैं जातवेदा अग्नि हूँ। यक्षने फिर पूछा—आपमे क्या पराक्रम है? अग्निने कहा—मेरे पराक्रमकी बात मत पूछिये, में यदि चाहूँ तो समस्त ब्रह्माण्डको जलाकर राखका ढेर बना दूँ। यह सुनकर यक्षने उनके सामने एक तिनका रखकर कहा कि इसको जलाकर दिखाय। अग्नि बडे वेगसे उस तिनकेपर टूट पडे, परतु वे उस तिनकेको नहीं जला सके। तब निराश होकर वे देवताआके पास लौट आये और कहा कि यह यक्ष कौन है, मैं नहीं जान सका। उसे जानना मेरी शक्तिसे बाहर है।

उसके बाद देवताआने वायुसे कहा कि अव आप जायँ और यह पता लगाय कि यह यक्ष कौन है? आदश मिलते ही वायुदेवता शीघ्रतापूवक यक्षके पास पहुँच गये। यक्षने पूछा—आप कौन हैं? उसने उत्तर दिया कि मैं मातरिश्वा वायु हूँ। यक्षने उनसे भी पूछा कि आपम क्या बल-पराक्रम हे? वायुने कहा—यदि में चाहूँ तो इस ब्रह्माण्डको उडाकर इसके टुकडे-टुकडे बना दूँ। यक्षने उनके सामने भी एक तिनका रखकर कहा कि इसे उडाएँ। वायुने बडे वगसे उस तृणको उडाना चाहा, किंतु पूरी शक्ति लगाकर भी वायुदेवता उस तिनकेको उडा न सके। हारकर वायु भी देवताआके पास जाकर बाले कि यह यक्ष कौन हे, में नहीं जान सका।

तदनन्तर देवताआने इन्द्रसे कहा कि अब आप जायँ और यह पता लगाये कि यह यक्ष कौन है? इन्द्र जब यह पता लगानेके लिये यक्षके पास गये तबतक यक्ष वहाँसे अन्तर्धान हो गया। बादम ब्रह्मविद्यारूपिणी हैमवती उमाने इन्द्रको बताया कि यह यक्ष साक्षात् ब्रह्म ही था,

अन्य काई नहीं। उन्हींकी शक्तिको प्राप्त कर आप सब देवताआने असुरापर विजय प्राप्त की है।

इससे स्पष्ट हा जाता है कि वेदाम अवतारवाद विद्यमान है, इसम किञ्चिन्मात्र सदेह नहीं है, क्याकि वह सर्वशक्तिमान् है। इसलिये वह **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ'** है।

शिवावतारी गुरु गोरक्षनाथका लोक-कल्याणकारी रूप

(श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

गुरु गोरक्षनाथ भारतीय मानसमे देवाधिदेव शिवके रूपमे प्रतिष्ठित हैं। गोरक्षनाथको पुराणोमे शिवका अवतार माना गया है। शिवके गोरक्ष-अवतारका वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवान् शिवने गोरक्षरूपमे अवतरित होकर योगशास्त्रकी रक्षा की और उसी योगशास्त्रको योगाचार्योने यम-नियम आदि योगाङ्गोके रूपमे यथास्थान निरूपित किया—

शिवो गोरक्षरूपेण योगशास्त्रं जुगोप ह।
यमाद्यङ्गैर्यथास्थाने स्थापिता योगिनोऽपि च॥

'महाकालयोगशास्त्रकल्पद्रुम' मे देवताओके पूछनेपर कि गोरक्षनाथ कौन हैं? स्वय महेश्वर उत्तर देते हैं—

अहमेवास्मि गोरक्षो मद्रूपं तन्निबोधत।
योगमार्गप्रचाराय मया रूपमिदं धृतम्॥

भारतीय संस्कृतिमे सभी प्रकारके ज्ञानके आदिस्रोत शिव ही हैं। ये ही शिव योगमार्गके प्रचारके लिये 'गोरक्ष'-के रूपमे अवतरित होते हैं। योगमार्ग उतना ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन भारतीय संस्कृति।

भारतीय साधनाके इतिहासमे गोरक्षनाथ निश्चय ही अत्यन्त महिमामय, अलौकिक प्रतिभासम्पन्न, युगद्रष्टा, लोक-कल्याणरत, महातेजस्वी ज्ञानविचक्षण महापुरुष हुए हैं, जिन्होने समस्त भारतीय तत्त्व-चिन्तनको आत्मसात् करके साधनाके एक अत्यन्त निर्मल मार्गका प्रवर्तन किया और लोकमानसमे वे शिवरूपमे प्रतिष्ठित हुए। नाथ-तत्त्व चिरन्तन है। शिवरूप गोरखनाथ देश-कालकी सीमासे परे हैं। भारतवर्षमे कोई ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ गोरक्षनाथकी मान्यता न हो और जहाँके लोग सीधे उनसे अपना सम्बन्ध न जोडते हो। यह व्यापक स्वीकृति इस बातका प्रमाण है कि किसी समय नाथ-मत अत्यन्त प्रभावशाली रहा होगा। इसकी शक्तिका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि इसमे शैव शाक्त, जैन बौद्ध, तन्त्र रसायनके साथ ही औपनिषदिक चिन्तनके तत्त्व भी विद्यमान हैं। यही नहीं वैष्णव-तन्त्रपर भी गोरखनाथजीकी योग-साधनाका स्पष्ट प्रभाव है। नाथयोगमे शक्ति-संयुक्त शिवकी जो परिकल्पना है, वह प्रमाणित करती है कि यह मत अत्यन्त प्राचीन है।

नाथ-पन्थकी परम्परागत मान्यताके अनुसार महायोगी गुरु गोरक्षनाथ आदिनाथ शिवके अवतार हैं, अत उनकी ऐतिहासिकता अविवेच्य है। आदिनाथ शिव और गोरक्षनाथ तत्त्वत एक ही हैं। स्वानन्दविग्रह, परमानन्दस्वरूप, परम गुरु (मत्स्येन्द्रनाथ)-की कृपासे योगविग्रह शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथजी योगामृत प्रदान करनेके लिये चारो युगोमे विद्यमान रहकर प्राणिमात्रको कैवल्यस्वरूपमे अवस्थित करते रहते हैं। यह निरूपित किया गया है कि गोरखनाथजी सत्ययुगमे पंजाबमे प्रकट हुए। त्रेतायुगमे वे गोरखपुरमे अधिष्ठित थे। द्वापरमे वे द्वारका (हरभुज)-मे थे और कलियुगमे उनका प्राकट्य सौराष्ट्रमे काठियावाडके गोरखमढी नामक स्थानमे हुआ था। ऐसा विश्वास एव ऐसी मान्यता है कि नाथयोग-साधनाके प्रख्यात केन्द्र गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुरमे त्रेतायुगमे भगवान् श्रीरामने अश्वमेधयज्ञके समय तथा द्वापरमे धर्मराज युधिष्ठिरने गोरखनाथजीको अपने-यज्ञोमे शामिल होनेके लिये आमन्त्रित किया था। 'श्रीनाथ-तीर्थावली' नामक पुस्तकमे उल्लेख है कि द्वापरयुगमे गोरखनाथजीने कृष्ण एव रुक्मिणीका कंकण-बन्धन सिद्ध किया था। साथ ही वे श्रीराम, हनुमान्, युधिष्ठिर भीम आदि सभी धर्म एव शक्तिके प्रतीकोके पूज्य एव मान्य हैं।

उपर्युक्त सभी बातोका तार्किक संकेत मात्र इतना ही है कि शिवस्वरूप होनेके कारण योगिराज गोरखनाथ सर्वयुगीन एव सर्वकालिक हैं। पूरे देशमे गोरखनाथजीकी समाधि कहीं भी नहीं मिलती है हर जगह उनकी तप स्थली—साधना-स्थली ही विद्यमान है।

गोरखनाथजीका व्यक्तित्व भारतीय संस्कृतिकी पौराणिक चेतनामे ढलकर भारतीय जनमानसमे प्रतिष्ठित परम तत्त्वके अवतारी स्वरूपोके प्रति व्यक्त होनेवाली गहरी आस्थाका केन्द्र बन गया है। हिन्दू संस्कृतिकी समन्वयशील परम्परा अपने आराध्य देवोको कभी अलग-अलग नहीं देख सकती। आज शिवावतारी योगिराज गोरखनाथ विशाल हिन्दू जनताके मानसमे श्रीराम-कृष्ण आदि अवतारोकी

ही भाँति प्रतिष्ठित एव पूज्य हैं। सत कबीर महायोगी गुरु गोरखनाथजीके चरित्र-व्यक्तित्व एव योगसिद्धिसे इतने प्रभावित थे कि उन्हे कलिमे गोरखनाथजीकी अमरताका वर्णन करना पडा—

'साधी गोरखनाथ ज्यूँ अमर भये कलि माँहिं।'

गुरु गोरखनाथका नामकरण वश-परम्परागत था अथवा दीक्षागत, यह कहना कठिन है। पर उनका यह गोरक्षनाथ नाम सार्थक अवश्य था। 'गोरक्ष' शब्द प्राय दो अर्थोमे गृहीत है—गो-रक्षक एव इन्द्रिय-रक्षक। गोरखनाथजीका अपनी इन्द्रियापर पूर्ण नियन्त्रण था, यह विषय तो निर्विवाद है। साथ ही गो-रक्षक अथवा गो-सेवकके रूपमे भी उनके व्यक्तित्वका परिचय मिल जाता है। अनेक किवदन्तियाँ गोरक्षनाथके गो-पालक रूपसे सम्बद्ध हैं। नेपालस्थित काठमाण्डू नगरकी मृगस्थली गोरक्षनाथजीकी तपोभूमि बतलायी जाती है। मृगस्थलीके सन्निकटका क्षेत्र आज भी 'गोशाला' नामसे सम्बोधित किया जाता है। नाथयोगी सत वर्तमान समयमे भी गायाको मातृवत् सम्मान देते हैं। नाथमठो एव मन्दिरोमे ऐसी व्यवस्था है कि गोके लिये नियमित रूपसे ग्रास निकालकर आदरके साथ उसे ग्रहण कराया जाता है। शिवावतारी गुरु गोरक्षनाथकी त्रेतायुगकी तप स्थली वर्तमान गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुरमे भी स्वदेशी गो-वशके सरक्षण एव सवर्धनकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

गोरक्षनाथजीका तात्त्विक स्वरूप तो अलौकिक है ही, पर एक व्यक्तिके रूपमे भी उनका व्यक्तित्व मध्ययुगीन साधकोमे अद्वितीय है। मध्यकालमे विकृत होती हुई भारतीय साधनाओके स्वरूप-तत्त्वोको आत्मसात् कर योगगुरु गोरक्षनाथजीने नाथयोगको नयी शक्ति प्रदान की थी। बौद्ध धर्मकी तान्त्रिक परिणति एव तन्त्र-साधनामे वाममार्गी प्रवृत्तियाके प्रवेशके बाद भारतीय साधनाके क्षेत्रमे अनेक विकृतियाँ आ गयी थीं। साधनाके नामपर साधक अनेक प्रकारके कुत्सित यौन-आचारोमे प्रवृत्त हो जाते थे। मद्य, मास, मैथुन आदि साधनाके अङ्ग बन गये थे। इन विकृतियासे साधकोको मुक्त करते हुए गोरक्षनाथजीने नाथ-योगियोको राष्ट्रकी नैतिक शक्तिके रूपमे अखिल भारतीय स्तरपर पुन सगठित करनेका अभूतपूर्व कार्य किया। उनके व्यक्तित्वमे निर्भीकता, मस्ती एव अक्खडपन समाहित है। उन्होने विविध तान्त्रिक शैव सम्प्रदायोके भीतर लक्षित होनेवाली अनेक विडम्बनाआकी नि सारता सिद्ध करते हुए उनमे अपने ढगकी समन्वयात्मक चेतना जाग्रत् की। आचरणकी शुद्धताके साथ-साथ जाति-पाँतिकी नि सारता, बाह्याचार एव तन्मूलक श्रेष्ठताके प्रति फटकारकी भावना गोरक्षनाथमे लक्ष्य की जा सकती है—

मूरिष सभा न बैसिबा अवधू, पडित सौं न करिबा वाद।
राजा सग्रामे झूझ न करबा, हलेसे न पोड्या नाद॥

(गो॰बा॰ सबदी पृ॰ ४७)

गोरखनाथजीने योगीके जीवनको वाद-विवादसे परे देखनेका प्रयास किया। कार्यकी सात्त्विकता और झूठके महापापके प्रति गोरक्षनाथने चेतावनी दी है—*'जैसा करे सो तैसा पाय, झूठ बोले सो महा पापी।'* गोरखनाथजीका जीवन उदात्त था, जिसमे सत्याचरण, ईमानदारी एव कथनी-करनीका मेल था। सामान्य जनाको सयमित जीवन व्यतीत करनेका तथा शीलयुक्त आचरण करनेका आदेश गोरक्षनाथजीने दिया है—

हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरे धरिबा पाव।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरष राव॥

(गो॰बा॰ सबदी पृ॰ २७)

गुरु गोरक्षनाथको स्त्रीके कामिनीरूपसे अपार घृणा थी। उन्होने कञ्चन एव कामिनीको सर्वथा त्याज्य बताया तथा ब्रह्मचर्यपर अत्यधिक बल दिया। उनकी वाणी है कि ज्ञान ही सबसे बडा गुरु है। चित्त ही सबसे बडा चेला है। ज्ञान और चित्तका योग सिद्ध कर जीवको जगत्मे अकेला रहना चाहिये। यही श्रेय अथवा आत्मकल्याणका पथ है—

ग्यान सरीखा गुरू न मिलिया, चित्त सरीखा चेला।
मन सरीखा मेलू न मिलिया, तीर्थे गोरख फिरै अकेला॥

गुरु गोरखनाथकी हठयोगकी साधना-प्रणाली शरीर-रचनाके सूक्ष्म निरीक्षण तथा शरीरके अन्तर्गत प्राण एव मानसिक शक्तियाकी क्रियाशीलताके नियमोपर आधारित है। वस्तुत गोरखनाथजीके हठयोगका लक्ष्य प्राणशक्ति और मनोशक्तिको निम्नतम भौतिक तलसे परे उच्चतम आध्यात्मिक

भूमितक ल जाना है, जहाँ प्राण एव मन दिव्य आत्माके साथ एकत्वकी अनुभूति करते हें।'व्यष्टि पिण्डका परपिण्ड पदसे सामरस्य'—नाथयोगका प्राणतत्त्व है।

शिव गोरक्ष महायागी गारखनाथजीका दिव्य जीवन-चरित शिवस्वरूप नाथयोगामृतका माङ्गलिक पर्याय है। गोरखनाथजीकी यागदृष्टिम 'नाथ' शिवस्वरूप हें। महायोगी गोरखनाथजीने लोक-लोकान्तरके प्राणियाको सत्स्वरूपके योग-ज्ञानम प्रतिष्ठित करनेके लिये योगदेह धारण किया था। उन्हाने जन-जीवनको सम्बुद्ध किया कि अहकार नष्ट कर देना चाहिये, सद्गुरुकी खोज करनी चाहिये आर योग-पन्थकी योगमार्गीय-साधनाकी कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। मनुष्य-जीवनकी प्राप्ति बार-बार नहीं होती हे, इसीलिये सिद्ध पुरुषके शरणागत हाकर स्वसवेद्य निरञ्जन तत्त्वका साक्षात्कार कर लना ही श्रेयस्कर है। गोरखनाथजीका योगदर्शन सार्वभौम है। उन्हाने बाह्यसाधना—योगाभ्यासकी अपेक्षा अन्त साधनाकी सिद्धिपर विशेष बल दिया। उन्होने कहा कि स्वसवेद्य परमात्मशिव तत्त्व अपने ही भीतर विद्यमान हे। वाह्य-उपासना—योग-साधनासे स्वरूपबोध नहीं हो सकता है। उन्होने कहा कि योग ही सर्वश्रेष्ठ साधन—मार्ग हे। यही परम सुखका पुण्यप्रद मार्ग हे। यह महासूक्ष्म ज्ञान है। इसपर चलनेवाला साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

प्राणिमात्रपर अहैतुकी कृपा करनेके लिय महायोगी गुरु गोरखनाथजीने साधकाको कायिक, वाचिक और मानसिक अन्धकारसे बाहर निकालकर परमात्मस्वरूपका सूक्ष्मतम दिव्य विज्ञान अत्यन्त सरल जन-साधारणकी भाषाम प्रदान किया। सामान्य जनोके अलावा अनेकानक नाथ सिद्ध-योगिया एव योग साधकाको भी उन्हांने अपने उदात्त यौगिक चरित्र और व्यवहार तथा आचार-विचारसे प्रभावित किया। ऐसे यागियाम यागिराज भर्तृहरि, गोड बगालके गोपीचन्द उडीसाके मल्लिकानाथ, महाराष्ट्रके गहनिनाथ, पजावके चौरगीनाथ राजस्थानके गोगा पीर और उत्तराञ्चलके हाजी रतननाथ आदिक नाम अग्रगण्य हैं। इन यागसिद्धान गोरखनाथजीके सदुपदेशामृत और अलौकिक दिव्य-चरितसे स्वरूप-बोध प्राप्त किया। भारतवर्षके प्राय सभी प्रदशाम गोरखनाथजाके प्रभावी व्यक्तित्वका दर्शन हाता है। नेपालम तो वे पूरे राष्ट्रक गुरुपदपर अत्यन्त प्राचान कालस सम्मानित एव पूजित हें। गारखनाथजीने लाकमङ्गलका भावनाको अपनी दृष्टिम रखकर सुख-दु ख और मुक्तिका अपनी वाणीम वडा मार्मिक निरूपण किया है कि जा इस शरीरम सुख है, वही स्वर्ग है—आनन्दभाग है। जो दु ख है वही नरक है अथवा अशुभ कर्मोंकी नारकीय यातना है। सकाम कर्म ही वन्धन है सकल्परहित अथवा निर्विकल्प हो जानेपर मुक्ति सहज सिद्ध है—

'यत् सुख तत् स्वर्गं यद् दु ख तन्नरक यत् कर्म तद् बन्धन यन्निर्विकल्प तन्मुक्ति ।'

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति ३।१३)

गोरक्षोपदिष्टमार्ग वह योगमार्ग है, जिसपर चलकर सकीर्ण सम्प्रदायगत मनोवृत्तियाको समाप्त कर बृहद् मानव-समाजका निर्माण किया जा सकता है। मलिक मोहम्मद जायसीने अपने ग्रन्थ 'पद्मावत' मे यहाँतक कह दिया है कि योगी तभी सिद्धि प्राप्त कर सकता है, जव वह (अमरकाय) गोरखका दर्शन पाता है, गोरखनाथसे उसकी भेट होती हे—

विनु गुरु पथ न पाइअ भूलै सोइ जो भेट।
जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सौ भेट॥

(पद्मावत २१७)

गोरखनाथजीने योगशास्त्रविहित (ईश्वरप्रणिधान) भगवद्भक्तिका योगकी साधनाके परिप्रेक्ष्यम अत्यन्त श्रयस्कर प्रतिपादन किया है।

अध्यात्मके उच्च शिखरपर आरूढ होते हुए भी शिवावतारी गुरु गोरखनाथजीने अपनी याग-देहसे कथनी-करनीकी एकता, कनक-कामिनीके भोगका त्याग, ज्ञान-निष्ठा, वाक्-सयम, ब्रह्मचर्य, अन्त -बाह्यशुद्धि, सग्रह-प्रवृत्तिकी उपेक्षा, क्षमा दया, दान आदिका महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया है। गोरखनाथजीकी शिक्षाआकी प्रधान विशपता है इसकी सर्वजनीनता। गोरखनाथजी अमरकाय हैं। उनका नाथयोग सनातन है।

प्रभुके अनन्त अवतार

[अवतारकथा शुभा]

(आचार्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज, रामायणी)

भारतीय वाङ्मयके समस्त ग्रन्थाम, श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासम और श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानस आदि लाकोपकारक सर्वमान्य सद्ग्रन्थामे पूर्णब्रह्म परात्पर श्रीभगवान्‌के अवताराकी कथा, अवताराके कारण और अवतारोंके रहस्यका अनेक प्रकारसे वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थाके अनेक मङ्गलमय प्रसङ्गोम श्रीठाकुरजीके विभिन्न अवतारोका विभिन्न प्रकारसे निरूपण किया गया है, परतु अन्तमे यह भी कहा है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई॥

अर्थात् श्रीहरिके अवतार इतने ही नहीं हैं। श्रीभगवान्‌के अनन्त अवतार हैं, उनका परिगणन अशक्य है। योगीश्वर श्रीद्रुमिलजीने कहा है—हे राजेश्वर! श्रीहरि अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं। जो इन गुणाका परिगणन करनेकी कामना करता है, वह वालवुद्धि है। यह तो शक्य है कि कोई किसी प्रकार भगवती वसुन्धराके धूलिकणाका परिगणन कर ले, परतु समग्र शक्तियाके आश्रयभूत श्रीहरिके अनन्त गुणाकी, अवतारोकी और उनके दिव्य नामोकी गणना कोई कभी किसी प्रकार नहीं कर सकता है—

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ता-
ननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धि ।
रजासि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित्
कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्न ॥

(श्रीमद्भा० ११।४।२)

श्रीमद्भागवतमहापुराणके आरम्भम ही प्रथम अध्यायम श्रीशौनकादि ऋषियाने श्रीसूतजीसे छ प्रश्न किये हैं।

कि श्रेय शास्त्रसार क स्वावतारप्रयोजनम्।
कि कर्म कोऽवताराश्च धर्म क शरण गत ॥
इत्येते सूतमुद्दिश्य षट् प्रश्ना मुनिभि कृता ।

उनम पाँचवाँ प्रश्न है—

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथा शुभा ।
लीला विदधत स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥

(श्रीमद्भा० १।१।१८)

इस श्लोकम 'अथ' शब्दसे मङ्गलाचरण करके मुनिलोग प्रश्न करत हैं—ह धीमन्! ह दिव्यबुद्धिसम्पन्न श्रीसूतजी! मेरे इस प्रष्टव्य प्रश्नके उत्तरका परिज्ञान सर्वसाधारणको नहीं हा सकता है, एतावता सर्वसाधारणस पूछा भी नहीं जा सकता है। आप भगवत्प्रदत्त बुद्धिस सब जानत हैं। आपने महाभारत आदि समस्त इतिहासाके साथ पुराणा और धर्मशास्त्राका विधिवत् अध्ययन किया है तथा उनकी विधिवत् व्याख्या भी की है। आपने वेदवेत्ताआम परम श्रेष्ठ महान् रसिक भगवान् बादरायणि—महामुनीन्द्र श्रीशुकदेवजीकी करुणामयी कृपा प्राप्त की है सुतरा आप मेरे प्रश्नका उत्तर देनमे सर्वथा समर्थ हे। इसी आशयसे **'धीमन्'** सम्बोधनसे सम्बोधित किया है। **ईश्वरस्य—**सर्वं कर्तुं समर्थ श्रीभगवान्‌की, **आत्ममायया—**अपनी इच्छाशक्तिसे—*'आत्ममाया तदिच्छा स्याद् गुणमाया जडात्मिका।'* (महासहिता) *'निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।'* (रा०च०मा० १।१९२) *'निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।'* (रा०च०मा० ४।२६), *'इच्छामय नरबेष सँवारे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे॥'* (रा०च०मा० १।१५२।१) अथवा **'आत्मन स्वस्य मायया आश्चर्यशक्तियुक्तेन'** आश्चर्यशक्तिके द्वारा कि वा सङ्कल्परूपा ज्ञानशक्तिके द्वारा **'मायया सतत वेत्ति प्राणिनाञ्च शुभाऽशुभम्।'** अथवा **आत्ममायया—**अपनी योगमायाके द्वारा कि वा अपनी अनन्त अचिन्त्य शक्तिके द्वारा स्वच्छन्द लीला करत हैं। आप उन श्रीहरिकी शुभा—मङ्गलमयी—अमायिकी—वक्ता, श्रोता-प्रश्नकर्ताको यथेष्ट धर्मादि शुभ फल प्रदान करनेवाली अवतारकथाआका वर्णन कीजिये।

श्रीठाकुरजीके अनेक प्रकारके अवतार होते हैं। प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व रज ओर तम। इनको अङ्गीकार करके इस जगत्‌की स्थिति, उत्पत्ति और सहारके लिये एक अद्वितीय परब्रह्म ही विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—ये तीन नाम स्वीकार करते हैं। फिर भी प्राणियोका परम

श्रेयस् तो सत्त्वगुण शरीरवाले श्रीठाकुरजीसे ही होता है—

सत्त्व रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
र्युक्त पर पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति सज्ञा
श्रेयासि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणा स्यु ॥

(श्रीमद्भा० १।२।२३)

इसके पूर्व परमात्माका पुरुषावतार होता है। पुरुषावतार, गुणावतार और लीलावतार—इन तीन प्रकारके अवतारोंमें ही समस्त अवतारोंका अन्तर्भाव माना जाता है। तीन प्रकारके पुरुषावतार तीन प्रकारके गुणावतार और अनेक प्रकारके लीलावतारोंका वर्णन किया गया है। श्रीसनकादि, श्रीनारद, श्रीवाराह, श्रीमत्स्य श्रीयज्ञ श्रीनर-नारायण, श्रीकपिल, श्रीदत्तात्रेय श्रीहयग्रीव, श्रीहस, श्रीपृश्निगर्भ, श्रीऋषभ, श्रीपृथु, श्रीनृसिह, श्रीकूर्म, श्रीधन्वन्तरि, श्रीमोहिनी, श्रीवामन, श्रीपरशुराम, श्रीदाशरथि राम श्रीवेदव्यास, श्रीबलभद्र श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीबुद्ध और श्रीकल्कि इत्यादि अवतार प्रत्येक कल्पमें होते हैं। इनके अतिरिक्त मन्वन्तरावतार आदि अनेक प्रकारके अवतार और भी होते हैं।

श्रीशौनकादि महर्षि श्रीसूतजीसे प्रश्न करते है—हे धीमन्! इन अवतारकथाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

इति सम्प्रश्नसहृष्टो विप्राणा रौमहर्षणि ।
प्रतिपूज्य वचस्तेषा प्रवक्तुमुपचक्रमे॥

(श्रीमद्भा० १।२।१)

इस प्रकार ब्राह्मणोंके सम्यक् प्रश्नसे परम प्रसन्न होकर भगवद्गुणोंके श्रवण, स्मरण और वर्णन करते समय जिनके रोम-रोममें सर्वदा प्रसन्नता समुच्छलित होती रहती थी ऐसे श्रीरोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा सूतने ऋषियोंके मङ्गलमय वचनोंका अभिनन्दन करके कहना आरम्भ किया।

श्रीसूतजी श्रीहरिके अनेक अवतारोंका वर्णन करके अन्तमें कहते है—हे शौनकादि महर्षियो! यह तो श्रीभगवान्‌के अवतारोंका दिशानिर्देश मात्र किया गया है। उनके समस्त अवतारोंका सामस्त्येन वर्णन करनेमें कौन सक्षम है? जिस प्रकार उपक्षयशून्य—अगाध सरोवरसे सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि श्रीहरिके अगणित अवतार हुआ करते हैं—

अवतारा ह्यसख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा ।
यथाविदासिन कुल्या सरस स्यु सहस्रश ॥

(श्रीमद्भा० १।३।२६)

इस श्लोकमे श्रीहरिको सत्त्वनिधि कहनेका आशय यह है कि श्रीभगवान् विशुद्ध सत्त्वमूर्ति हैं, वे पालन करते हैं। पालन करनेके लिये जब जिस अवतारकी अपेक्षा होती है, उसी समय उस अवतारको धारण कर लेते हैं। उदाहरणके रूपमें एक अत्यन्त भावपूर्ण विलक्षण प्रसङ्ग प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस प्रसङ्गमे अवतारोंके आनन्त्य—असख्य होनेका परिज्ञान होता है। किं बहुना परमकृपालु श्रीहरि किन-किन स्वरूपोंको हमारे लिये स्वीकार करते हैं, यह अनुभव भी भक्तहृदयको होता है।

महामुनीन्द्र व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'हे उत्तरानन्दन! सावधान होकर इस रहस्यमयी लीलाका आस्वादन करो।'

नन्दनन्दन परमानन्दकन्द मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र अपने सखा ग्वाल-बालोंकी मृत्युरूप अघासुरके मुखसे रक्षा करके उन्हें यमुना-पुलिनपर ले आये और उनसे कहने लगे—'हे मेरे सखाओ! यह कालिन्दीपुलिन यमुनातट कितना सुरम्य है। यहाँ हमलोगोंके क्रीडा करने योग्य समग्र सामग्री विद्यमान है। यहाँ गद्देके समान अत्यन्त सुकोमल और स्वच्छ बालुका—यामुनरेणु बिछी है। वृक्षोंपर बैठे पक्षी अत्यन्त मधुर ध्वनि कर रहे हैं, दूसरी ओर विकसित कमलोंकी सुगन्धसे आकृष्ट होकर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। मानो ये पक्षी और मधुप हमारा स्वागतगान कर रहे हैं। समय अधिक हो गया है, हमलोग क्षुधार्त्त भी हैं, सुतरां हम यहीं भोजन कर लेना चाहिये। हमारे गोवत्स-बछड़े पासमें ही पानी पीकर धीरे-धीरे घास चरते रहें—

'चरन्तु शनकैस्तृणम्॥'

(श्रीमद्भा० १०।१३।६)

श्रीठाकुरजीके प्रिय सखाओंने—ग्वालबालोंने कहा—हाँ कन्हैया भैया! ऐसा ही हो। तदनन्तर उन्होंने गोवत्सोंको जल पिलाकर हरी-हरी घासमें छोड दिया। समस्त सखा श्रीभगवान्‌के सामने मण्डल बनाकर बैठ गये। सबके

मध्यम सबके प्यारे दुलारे, आँखाके तारे श्रीकृष्णचन्द्रजी विराज रहे थे। सखाआके नत्र श्रीहरिके मुखको निहारकर आनन्दस प्रफुल्लित हो रहे थे। यद्यपि सवका प्रभुक सम्मुख होना सम्भव नहीं था तथापि श्रीहरिकी अचिन्त्य लीलाशक्तिने सवक सम्मुख सबके सामने लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रको प्रकट कर दिया। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका मङ्गलमय मुखारविन्द प्रत्येक ग्वाल-वालकी आर ही ह। प्रत्यक सखाको प्रतीत हो रहा है—हमारा प्राणधन गोपाल हमारी आर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे दखकर स्नेह-साहार्द्रकी अजस्र धारा प्रवाहित करते हुए अवस्थित ह—

'सहोपविष्टा विपिने विरजु-
श्छदा यथाम्भारुहकर्णिकाया ॥'
(श्रामद्भा० १०।१३।८)

आज ग्वाल-वालाके भाजनपात्र भी अनाखे ही हैं। कुछने कमलक पत्र आदिका लेकर अपना भाजनपात्र निर्मित किया ह। कुछने पवित्र कदली-पत्रका भाजनपात्र वनाया ह। कुछ ग्वाल-बालाने प्रक्षालित प्रस्तरखण्डाको ही अपने सामने भोजनपात्रके लिये स्थापित कर लिया है।

श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी मधुर वाणीसे कहा—हे समुज्ज्वल निष्क-पदक धारण करनेवाले मेर बन्धुओ! अपने-अपन

छींकासे सुन्दर सुस्वादु भाजन-सामग्री निकालो—
भो भो भो भा उज्ज्वलनिष्का निष्कासयत
भक्ष्य सामग्रीयमिति। (श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू)

अपने प्राणसखा श्रीकृष्णचन्द्रके स्नेहिल वचनाको सुनकर सवने अपने-अपने छींकेसे दही, भात, मीठा मोदक, नमकीन, वडा, शाक-भाजी, चटनी, अचार, मुरब्बा, पायस आदि अनेक प्रकारके व्यञ्जन निकाले ओर उन्हे पत्ता ओर पत्थरोका पात्र वनाकर भोजन करने लग। सभी अपने-अपने भोजनाके स्वादका वर्णन करते थे। इस प्रकार हँसते-हँसाते भाजनानन्दका सब आनन्द ले रहे थे। इस प्रकार सुखसागरमे निमग्न बालकवृन्द भोजन करते हुए असीम आनन्दम विभोर थे। स्वय करुणा-वरुणालय जगदीश्वर कन्हैया जिनके सखाके रूपमे नित्य वर्तमान हैं, उनके सुखकी इयत्ता हो ही कैसे सकती हे?

आकाशपथ विमानासे परिपूर्ण हो गया है। इस अभूतपूर्व अप्रतिम मनोहर छविका दर्शन देवसमाज अपने सहज निमेषोन्मेपरहित अपलक नेत्रासे—अतृप्त नेत्रासे कर रहा ह। सर्वयज्ञभोक्ताका यह भोजन—ऐसा वात्सल्य-रससम्पुटित स्वच्छन्द भोजनकालीन विहार क्या बार-बार देखनेको मिल सकता हे?

'स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलि ॥'
(श्रीमद्भा० १०।१३।११)

'भोजन करत कुँवर साँवरे छवि लखि अमर भये बावरे।'

एक सखाने आश्चर्यसे कहा—हे कन्हैया! भैया! हमारे गोवत्स कहाँ चले गये? फिर तो सबके हाथके ग्रास हाथमे ही रह गये। सवकी दृष्टि उस अदूरवर्ती तृणश्यामल भूभागपर चली गयी, जहाँ अभी-अभी कुछ क्षण पूर्व समस्त गोवत्स स्वच्छन्द विचरण कर रहे थे, परतु सम्प्रति वहाँ एक भी न था। सब-क-सब न जाने कहाँ चल गये। श्रीहरिके समस्त सखा अपने प्यारे कन्हेयाकी ओर भयसन्त्रस्त दृष्टिसे देखने लगे। उनकी दृष्टिसे अनेक प्रकारक भाव अभिव्यक्त हा रहे थे। भैया कन्हेया! आपको छोडकर तो बछडे कभी कहीं नहीं जाते थे। वे तो हमारी ही तरह आपका मङ्गलमय दर्शन करके आनन्दानुभूति करते थे। आज कहाँ चले गये? कैसे चले गये? क्या चले गये?

भैया! कन्हैया! अघासुरको आपने मारा और हमलोग

उसे यो ही छोडकर चले आये। उसे तो जला देना चाहिये था। सर्प तो हवा चलनेपर स्वय जीवित हो जाते हैं, कहीं जीवित होकर उसने हमारे गोवत्साको अपना ग्रास तो नहीं बना लिया? उस समय अपने सखाओके मन, प्राण और इन्द्रियाको शीतल करते हुए, उन्हे आश्वस्त करते हुए करुणामय श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—हे मरे सखाओ! तुम लोग निश्चिन्त हो जाओ, भोजन करना मत छोडो। गोवत्साको तो मै अकेला ही जाकर लाता हूँ—

तान् दृष्ट्वा भयसत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम्।
मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम्॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।१३)

इस श्लोकमे श्रीकृष्णजीको **'अस्य भीभयम्'** कहा गया है। इसका भाव यह है—इस ससारके भी जो भय हैं—काल आदि, उनको भी भय प्रदान करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् हैं अर्थात् वे स्वत ही सबको अभय प्रदान करनेवाले हैं, सुतरा इनके वाक्यसे ही सद्य भय समाप्त हो गया।

इस प्रकार अपने सखाआका आश्वस्त करके हस्तगृहीत-ग्रास श्रीहरि सखाआके बछडाको खोजनेके लिये चल पडे—

'विचिन्वन् भगवान् कृष्ण सपाणिकवलो ययौ॥'

(श्रीमद्भा० १०।१३।१४)

इस पक्तिमे **भगवान्, कृष्ण , सपाणिकवल** —ये तीन शब्द मननीय हैं। **'भगवान्'** अर्थात् महान् दयालु हैं। **'कृष्ण '** अर्थात् सबके चित्तको आकर्षित करनेवाली मधुर लीलाका आस्वादन कराते हैं। **'सपाणिकवल '** का आशय है—

(क) अपने प्रिय सखाआके सतोषके लिये **'सपाणिकवल '** होकर गये कि हे सखाओ! मैंने हाथ भी नहीं धोया, तुम्हारा कार्य करने जा रहा हूँ।

(ख) हे ससारके भक्तो! देखो, मैं अपने भक्तोके लिये कितना दयालु हूँ कि जैसा था वैसा ही चल पडा।

(ग) वत्सान्वेषणके समय भी अपने सखाआका अर्पण किया हुआ स्नेहिल भोजन करता रहूँगा।

(घ) गोवशका सरक्षण करनेके लिये अत्यन्त शीघ्र चल पडे।

(ङ) श्रीब्रह्माजीको शिक्षा दी कि देखो, मेरा यह भी एक स्वरूप है।

चतुर्मुख श्रीब्रह्माजी पहलेसे ही नभपथमे समुपस्थित थे। उन्हाने पहले तो बछडोको और फिर गोपाल कृष्णके गोवत्साको खोजनेके लिये जानेपर ग्वाल-बालोका भी अपहरण करके अन्यत्र ले जाकर स्थापित कर दिया। तदनन्तर स्वय अन्तर्धान हो गये।

विश्वके समस्त ज्ञान-विज्ञानके जो उत्स हैं, वे सर्वज्ञशिरोमणि आज गोवत्साकी गतिविधिको नहीं जान पाये, उनका पता नहीं लगा पाये और अन्तत निराश होकर यमुनापुलिनपर आ गये। वहाँ किसी सखाको न देखकर एक-एकका नाम लेकर पुकारने लगे। श्रीदाम, सुबल, तोककृष्ण, भद्रसेन, अर्जुन, पयोद, चन्दन, मङ्गल, मधुमङ्गल आदिका नाम ले-लेकर यशोदानन्दन करुणस्वरमे उच्च स्वरसे बुलाने लगे, परतु कहींसे कोई प्रत्युत्तर नहीं प्राप्त हुआ—

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान्।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्तत ॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।१६)

अन्तमे लीलाभिनय छोडकर श्रीभगवान् अपने विश्ववित् रूपमे प्रतिष्ठित हो जाते हैं। गोवत्स, ग्वाल-बाल कहाँ हैं, वे कैसे गये, क्यो गये और उन्हे कौन ले गया—सब जान गये।

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान् पालाश्च विश्ववित्।
सर्वं विधिकृत कृष्ण सहसावजगाम ह॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।१७)

करुणामय, वृजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रने सोचा—गोधूलिवेलाम जब मैं घर जाऊँगा, तब मेरी वात्सल्यमयी मैया आनन्द और उत्साहसे मेरा स्वागत करेगी। उस समय मेरे सखाओकी माताएँ भी अपने-अपने वात्सल्यभाजन पुत्राको देखना चाहेगी। गोवत्सोकी माताएँ—गाय भी अपने वत्साकी दिदृक्षामे हम्बा-रवसे अपने लालाको पुकारकर स्तनोसे पय क्षरण करती हुई दौडगी। उस समय ग्वाल-वालो और वत्साको न देखकर व्रजम कोहराम मच जायगा, व्रजमे करुणाकी नदी बह जायगी। अहा! उस समय कितना कारुणिक दृश्य उपस्थित होगा? हा हन्त! उस समय मैं उन्ह कैसे देख पाऊँगा?

इतना सोचते ही विश्वकृदीश्वर—विश्वस्रष्टाआके भी ईश्वर परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने अभूतपूर्व चमत्कार किया। सद्य श्रीहरिके अनेक अवताराका, स्वरूपाका जड-चेतनके रूपमे प्राकट्य हो गया। सहसा लाखा स्वरूपामे श्रीहरि

प्रकट हो गये। इन अवताराके परिगणन करनेकी क्षमता सहस्रवदन श्रीशेष और अनन्तवदना वाग्वादिनी श्रीशारदाम भी नहीं है फिर अन्योकी भौतिकी और क्षुद्र बुद्धिके विषयमे ता सोचना ही व्यर्थ है। श्रीशुक, श्रीव्यास, श्रीनारद और श्रीसूत सब एक स्वरम कहते हैं—'अवतारा ह्यसख्येया ।'

श्रीब्रह्माके द्वारा अपहृत ग्वाल-बाल ओर गावत्स ही नहीं प्रकट हुए अपितु स्वय श्रीकृष्णने ही स्वयको दो रूपोमे प्रकट कर दिया। बछडा एव ग्वाल-बालाकी माताओ और श्रीब्रह्माको भी आनन्दसिन्धुम निमग्न करनके लिये असख्य ग्वाल-बाल एव राशि-राशि गोवत्सोके रूपमे स्वय श्रीकृष्ण ही प्रकट हो गये—अवतरित हो गये। बलिहारी है, नाथ! आपकी, इस अदभ्र करुणाकी! इस अप्रतिम बाल्यलीला-विहारकी! असीम-अपरिमित अवतरणकी! धन्य है! धन्य है!!

तत कृष्णो मुद कर्तुं तन्मातृणा च कस्य च।
उभयायितमात्मान चक्रे विश्वकृदीश्वर ॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।१८)

उस समय अनेक गोपशिशुओ, अनेक गोवत्सो, लाखो गोचारणकी छडियो, लाखा वशियो, लाखा घुँघरुओ, लाखो लाल, पीले, हर, श्वेत, नीले वस्त्रा, लाखो मुकुटा, लाखा छींको, लाखां शृङ्गो आदिके जड-चतनात्मक रूपामे ठाकुरजीके अवतार हो गये। श्रीहरिके अनन्त असख्य अवताराका इससे बढकर उदाहरण एव प्रमाण और क्या हो सकता है? श्रीशुकमुखविगलित पीयूषवर्षिणी वाणीम इसका समास्वादन करे—

यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिक
यावद् यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद् विभूषाम्बरम्।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिक
सर्व विष्णुमय गिरोऽङ्गवदज सर्वस्वरूपो बभौ॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।१९)

परीक्षित्! वे बालक और बछडे सख्याम जितने थे, जितने छोटे-छोटे उनके शरीर थे उनके हाथ-पैर जैसे-जैसे थे, उनके पास जितनी और जैसी छडियाँ, सिगी, बाँसुरी, पत्ते और छीके थे जैसे और जितने वस्त्राभूषण थे, उनके शील, स्वभाव, गुण, नाम रूप ओर अवस्थाएँ जैसी थीं, जिस प्रकार वे खाते-पीते और चलते थे, ठीक वैसे ही ओर उतने ही रूपाम सर्वस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उस समय 'यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है'—यह वेदवाणी माना मूर्तिमती होकर प्रकट हो गयी।

बीसवीं सदीकी एक सच्ची कथा

(प० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

मगध क्षेत्रके कोथवा, रामपुर, नयनचक, मुस्तफापुर, आदमपुर ओर आसोपुर आदि गाँवाम एक ही विद्यालय था, जो काफी प्रसिद्ध था, उसका नाम था 'वेदरत्न विद्यालय'। इस विद्यालयमे छ कोठरियाँ थीं, अत छ ही कक्षाएँ थीं। छात्रावास भी था, जिसमे प्रान्तके विद्यार्थी आकर रहते तथा पढते थे। उनके लिये एक भोजनशाला थी और एक खेलका मैदान भी था मैदानमे गेद भी खेला जाता था। इस प्रकार विद्यालयमे सभी सुविधाएँ थीं। विद्यालयम पहली कक्षासे ही हिन्दी, सस्कृत, गणित, अग्रेजीकी पढाई शुरू हो जाती थी। पढाई अच्छी थी। इस स्कूलको खोलनका उद्देश्य था आर्य-मतका प्रचार करना। इस विद्यालयका नाम तो 'वेदरत्न विद्यालय' था, किंतु यह वेदविरोधी शिक्षा देता था। विद्यालयकी दूसरी कक्षाम 'धर्मशिक्षा—दूसरा भाग' नामक एक अनिवार्य पुस्तक थी, जिसके प्रथम पृष्ठपर लिखा था—

प्रश्न—क्या भगवान् अवतार लेते हैं?

उत्तर—नहीं।

अगर भगवान्‌का अवतार माना जाय तो वे भी जन्मने-मरनवाले तथा अव्यापक हो जायँगे, अत अवतारकी बात नहीं माननी चाहिये। रामजी दशरथ एव कौसल्यासे जन्मे और आज नहीं हैं, इसलिये मरे भी हैं। अगर रामको भगवान् माना जाय तो ईश्वरको भी जन्मने और मरनेवाला कहना पडेगा। अत अवतारको ईश्वर नहीं माना जा सकता।

अब रही व्यापकताकी बात। रामकथाम आता है कि कैकेयीको दिये वरदानस्वरूप जब राम वनमे चले गये ता उनके वियोगम अयोध्यावासी तडपने लग, अयोध्या सूनी हो गयी। दशरथकी मृत्यु प्रमाण है, जा रामके वियोगमे मर गये। यदि राम ईश्वर होनेसे व्यापक होते तो वनवासके समय अयोध्याम भी रहत और फिर रामवियोग होता ही क्या? इस प्रकार अवतार माननेपर अव्यापकताका दोप भी जुड जाता हे।

इस 'धर्मशिक्षा' को पढानेवाले शिक्षक भी उसी मतके थे। व प्रत्येक लडकेस पाठ पढानेके वाद पूछते— क्या रामको अवतार मानते हो, जो जन्मने-मरनेवाल थे तथा व्यापक भी नहीं थे? लडका क्या कहता? कहता—अब नहीं मानेगे।

हिन्दी पढनेवालामे एक लडका ऐसे घरम उत्पन्न हुआ था, जहाँ सुवह-शाम रामधुन गायी जाती थी। उसको आजकी पढाई अच्छी नहीं लगी, किंतु उत्तर न मिलनसे वह उद्विग्न हो गया, उसकी भूख बन्द हो गयी। उसने माँसे कहा—आज हम नहीं खायगे तबियत ठीक नहीं है। सयोगसे उसी शाम उस लडकेके पिता दानापुरसे आ गये जो 'सनातन धर्म-सभा'-द्वारा दानापुरमे सचालित सस्कृतटाल नामक विद्यालयमे पढाते थे तथा सातवे दिन घर आते थे। लडकेकी माँने पितासे कहा—देखिये, आज लडका कहता है—हम नहीं खायगे, तबियत ठीक नहीं है। इसे देखिये तो जरा। लडका पहले ही पिताके पैर छूने आ गया था। पिताने पूछा—क्या बात है, भोजन क्यो नहीं करते? तब उद्विग्न लडकेने कहा—हमारे मनमे तो राम हैं, परतु , फिर उसने सारी बाते दाहरा दीं।

पिताने कहा—बेठो, साथम भोजन करो। कल तुम्हे साथ ले चलगे, उत्तर एक मिनटम हो जायगा। लडकेके पिताको अगले दिन १० वजे सस्कृतटोल जाना था, इससे कुछ पहले ही इक्केपर बैठकर वे अपने आवासपर आ गये। आवास एक मन्दिरम था। पिता-पुत्र पहुँचे। तब लडकेने कहा कि विद्यालय जानेमे १० मिनट देरी होगी, कोई बात नहीं, आप कलके प्रश्नका उत्तर दे द तो मन हल्का हो जायगा। तब उन्हाने मन्दिरसे मिट्टीका एक बुझा हुआ दीपक और दियासलाई निकाली और लडकेसे पूछा—'बोलो यहाँ कहीं अग्नि है कि नहीं है?' लडकेने चारा ओर देखा, वहाँ अग्नि नहीं थी। पिताजीने कहा कि देखो, हम माचिस जलाते हैं फिर कहा देखो, दीपकम अग्नि है। इसके वाद पिताने उससे पूछा कि अग्नि सारे मन्दिरम हे या कवल दीयेम है? लडकेने कहा—'अग्नि तो सभी जगह है भले ही वह दिखायी न पडे।' पिताने कहा—'बेटा! सभी जगह व्यापक मानते हो ता हाथकी

दियासलाईमे है कि नहीं।' लडकेके 'हाँ' मे उत्तर देनेपर कहने लगे—इस प्रकार इसे कलकत्तामे, पटनामे—जहाँ भी जलाओगे, जल जायगी। इसीको सस्कृत (शास्त्रा)-मे कहा जाता है कि आग समूचे विश्वमे व्यापक है, परतु दिखती नहीं। जहाँ-जहाँ उसको प्रकट किया जाता है, वह वहींपर साकार दिखती है। इसके बाद पण्डितजीने दीपक बुझा दिया और पूछा कि अब आग है या नहीं? उसने कहा—नहीं, दीपक बुझ गया है। पितान बताया कि वस्तुत यह आग नहीं थी, यह उसका जन्मना-मरना नहीं है, यह उसका प्रकट होना-न होना था।

भाव यह है कि अप्रकट रूपसे अग्नि हर जगह व्याप्त है, परतु दिखती नहीं है। जब दियासलाई आदि किसी उपायसे दिख जाती है, तब उसकी व्यापकतामे कोई दोष (कमी) नहीं आता। इसी प्रकार राम दशरथ एव कौसल्यासे प्रकट हुए थे, मनुष्यकी तरह जन्मे नहीं थे। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासने लिखा है—*'भए प्रकट कृपाला ।'* और आज राम दिखते नहीं तो इसका यह अर्थ नहीं कि वे मर गये, वे केवल अप्रकट हो गये हैं। सामान्य मनुष्याके जन्मने-मरनेसे यह सर्वथा भिन्न है। इसी बातको गीतामे भगवान्ने कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

—हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

इसके बाद लडकेको साथ लेकर पण्डितजी सस्कृतटोल चले गये। रास्तेम लडकेने पूछा—आपने रामायण और गीताक प्रमाण दिये इनको हमारे स्कूलवाले नहीं मानते, अत हमें कोई वेदका प्रमाण दीजिये। तब पिताने कहा—चलो हम पढायेगे नहीं, एक पुस्तक दगे, हमने जो अभीतक बताया है, वह वेदकी ही बात है। वेदका एक मन्त्र है—

अग्निर्यथैको भुवन प्रविष्टो
रूप रूप प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूप रूप प्रतिरूपो बहिश्च॥

(कठोपनिषद् २।२।९)

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डमे प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपामे उनके समान रूपवाला-सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियोका अन्तरात्मा परब्रह्म एक हाते हुए भी नाना रूपामे उन्हींके जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

कहनेका तात्पर्य है कि अग्नि सारे ससारमे व्यापक है, अप्रकट रूपसे व्यापक है और यदि हम दियासलाई जलाय तो दीपक जलानेपर अल्प तथा होली जलाये तो वह व्यापक रूपसे प्रकट हो जाता है आदि। उसी तरह भगवान् भी कभी रामके रूपमे, कभी कृष्णके रूपमे प्रकट होते हैं। वेदोम भी भगवान्के अवतार-सिद्धान्तका वर्णन है—इस तथ्यको पाकर बालकको बडी प्रसन्नता हुई। उसने कहा कि पिताजी! जब इतनी साफ बात वेदमे लिखी है तो ये लोग गलत क्यो पढाते हैं? पिताने कहा—इन सब बातोको मत पूछो, यह अग्रेजी (रहस्य) तुम्हारी समझमे नहीं आयेगी। तुम्हारा काम चल गया है, तुम रहने दो।

अवतारी-विग्रहकी विशेषता—भगवान् राम, कृष्ण आदिका अवतारी शरीर प्राकृतिक नहीं होता अर्थात् भगवान्के शरीरम हड्डी, चाम, मास आदि कुछ नहीं होता। भगवान्का स्वरूप हे सच्चिदानन्द। वे ही भगवान् नीलरूपम प्रकट हो गये—

'कृष्णो वै पृथगस्ति काऽप्यविकृत सच्चिन्मयो नीलिमा॥'

(प्रबोधसुधाकर)

पृथ्वीपर ही अभी आगको हमने देखा है। इसका भी शरीर कोई हड्डी, मास, चामका नहीं है, फिर भी अग्निका स्वरूप प्राकृत पदार्थ है, परतु भगवान् इससे सर्वथा विलक्षण हैं। यह अग्निका आधिभौतिक रूप है, इसका आधिदैविक रूप पृथक् है।

भगवान्की कृपाशक्ति प्रभुको अवतार ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करती है

(प० श्रीरामकृष्णजी शास्त्री)

समस्त स्थावरजङ्गमात्मक सृष्टिप्रपञ्च परमात्माका अवतार है। भगवती श्रुतिने भी कहा है—'**पुरुष एवेदः सर्वं यद्भूत यच्च भाव्यम्।**' (यजु० ३१। २) अर्थात् जगत्का जो स्वरूप विद्यमान है जो अतीतमे था और जैसा भविष्यमे होगा, वह सब परमात्मस्वरूप ही है। महाप्रलयकालके उपस्थित हानेपर कार्यकारणरूप यह जगत् अपने कारणाम लीन होता हुआ अन्तमे सर्वकारणकारण परमात्मामे अवस्थित हो जाता है, तब परमात्मा योगमायाका आश्रय करक क्षीरसागरमे शयन करते हैं। भगवान्के साथ ही भगवान्की क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति भी निष्क्रिय हो जाती है, किंतु नारायणकी कृपाशक्ति उस स्थितिमे भी जागरूक रहती है और जब समूचे सृष्टिप्रपञ्चक समष्टि-प्रारब्धका परिपाक होता है तो भगवान्की कृपाशक्ति परमात्मासे जगत्का विस्तार करके ससारके प्राणियोको अपना कल्याण करनेके लिये अवसर देनेका आग्रह करती है। अपनी कृपाशक्तिसे भगवान् अचिन्त्य मायाके गुणाको स्वीकार करते हैं और सृष्टिके उद्भव, स्थिति और सहारके लिये स्वयको तीन रूपाम विभक्त कर देते हैं—

नम परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने॥
(श्रीमद्भा० २।४।१२)

अर्थात् उन पुरुषोत्तम भगवान्के चरणकमलामे मेर कोटि-कोटि प्रणाम हैं, जो ससारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करनेके लिये सत्त्व, रज तथा तमोगुणरूप तीन शक्तियोका स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करका रूप धारण करते हैं, जो समस्त चर-अचर प्राणियाके हृदयम अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं जिनका स्वरूप और उसकी उपलब्धिका मार्ग बुद्धिके विषय नहीं हैं, जो स्वय अनन्त हैं तथा जिनकी महिमा भी अनन्त है।

यहींसे सृष्टि-प्रक्रियाका आरम्भ होता है। भगवान्से निर्मित यह विचित्र ससार उनकी मायाकी आवरणशक्तिके द्वारा अयथावत् (जैसा नहीं है वैसा) प्रतीत होता है। आवरणशक्ति स्वरूपका तिरोधान करती है, मलके द्वारा अयथावत् प्रतीति हाती है तथा विक्षेपके कारण अविद्या अस्मिता आदि पञ्चक्लेशा[1] तथा बुभुक्षा, पिपासा आदि षडूर्मियाकी प्राप्ति होती है।

परमात्माकी कृपाका अवलम्ब लेकर श्रुतिस्मृतिसमर्थित पुरुषार्थके द्वारा ही अजेय मायाकी इस बाधाका यथाकथञ्चन निराकरण किया जाना सम्भव है। इस पुरुषार्थकी अनेक विधाएँ हैं। व्यक्तिका अपनी अर्हताक अनुसार मार्ग निर्धारित करके तदनुरूप पुरुषार्थम अविलम्ब प्रवृत्त हो जानेकी आवश्यकता है। श्रीशुकदेवजीन महाराज परीक्षित्को उपदेश देते हुए कहा है कि रजोगुण और तमोगुणके द्वारा विक्षिप्त ओर मूढ हुए अन्त करणके कषायकी निवृत्तिक लिये भगवान्के स्थूल स्वरूपकी धारणा[2] करनी चाहिये, जिस धारणाके द्वारा साधक भगवत्-सम्बन्ध स्थापित करके भक्तियोगको प्राप्त कर लेता है। इसपर महाराज परीक्षित्ने कहा कि धारणा किसकी, कैसे और किस प्रकार की जानी चाहिये, जिससे रजोगुण और तमोगुणके द्वारा विक्षिप्त और विमूढ हुए अन्त करणकी चिकित्सा की जा सके। इसपर शुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! आसन, श्वास, आसक्ति और इन्द्रियापर विजय प्राप्त करके फिर बुद्धिके द्वारा मनको भगवान्के स्थूल रूपम लगाना चाहिये। यह कार्यरूप सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा—सब-का-सब जिसमे दीख पडता है, वही भगवान्का स्थूल-से-स्थूल और विराट् शरीर है। जल, अग्नि, वायु, आकाश अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति—इन सात आवरणासे घिरे हुए इस ब्रह्माण्ड शरीरम जो विराट् पुरुष भगवान् हैं, वे ही धारणाके आश्रय हैं, उन्हींकी धारणा की जाती है।[3]

धारणाके माध्यमसे अन्त करणके मलकी आत्यन्तिक ओर अनैकान्तिक निवृत्ति सम्पादित करके क्रमश ध्यान, समाधिकी स्थितिको प्राप्त हुआ जीव अपने सम्पूर्ण कल्याणको करनेमे समर्थ हो सकता है।

भगवान्के स्थूल स्वरूपकी धारणा साधकके लिये सामान्यतया शक्य या सम्भव प्रतीत होती है, क्याकि प्रत्यक्षात्मक

---

१ अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा क्लेशा। (यागसूत्र २। ३)

२ देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। (योगसूत्र ३। १) चित्तका वृत्तिमात्रसे किसी स्थानविशेषमें बाँधना 'धारणा' कहलाता है।

३ जितासनो जितश्वासा जितसङ्गो जितेन्द्रिय। स्थूले भगवता रूपे मन सन्धारयेद्धिया॥
विशेषस्तस्य देहोऽय स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्। यत्रेद दृश्यते विश्व भूत भव्य भवच्च सत्॥
आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसयुते। वैराज पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रय॥ (श्रीमद्भा० २। १। २३—२५)

ज्ञानकी प्रक्रिया यह है कि जैसे कूप या सरोवरका जल नालीके माध्यमसे क्यारीमे जाकर क्यारीका जैसा आकार होता है—वर्तुल, चतुर्भुज, षट्कोण आदि, उसी आकार-प्रकारमे परिणत होता जाता है, इसी प्रकार अन्त करण जिस विषयको ग्रहण करना चाहता है, उसके लिये अनादियोग्यतासिद्ध[1] इन्द्रियरूपी प्रणालिकाके द्वारा विषयदेशमे जाकर विषयाकारतया परिणत हो जाता है। विषयाकारतया परिणत अन्त करणका आत्मचैतन्यपर प्रतिविम्ब पडता है और तब विषयोंका प्रत्यक्षात्मक ज्ञान होता है। प्रत्यक्षज्ञानकी इस प्रक्रियाके अनुसार भगवान्‌के स्थूलस्वरूपकी धारणामे ही प्राणी समर्थ हो सकेगा। जहाँ रूप रस आदि विषय नहीं हैं जो तत्त्व निर्विषय और निर्विशेष है, उसकी धारणा कैसे की जा सकती है?

इसी प्रक्रियाको बुद्धि-विषय करके भक्तशिरोमणि श्रीप्रह्लादजीने असुरबालकोको उपदेश करते हुए कहा है कि सर्वत्र सब वस्तुओंमे परमात्माका रूप देखना चाहिये अर्थात् सब वस्तुओको परमात्म-स्वरूप देखना चाहिये। संसारमे मानव-शरीर धारण करनेका सबसे श्रेष्ठ और एकमात्र परमार्थ यही है कि वह भगवान्‌से शाश्वत सम्बन्ध स्थापित करके भगवान्‌की अनपायिनी और अनन्य अविस्मृतिरूप भक्ति प्राप्त कर ले, जिससे उसके सभी अनर्थोंकी निवृत्ति और पञ्चम पुरुषार्थकी प्राप्ति भी सम्भव हो जाय—

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंस स्वार्थ पर स्मृत ।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्॥
(श्रीमद्भा० ७।७।५५)

भगवान्‌की अविस्मृतिसे अमङ्गलका नाश, अन्त करणका निग्रह, अन्त करणके कषायकी आत्यन्तिक निवृत्ति, वैराग्य और विज्ञानसे युक्त ज्ञान तथा परमात्माकी पराभक्ति प्राप्त हो जाती है—

अविस्मृति कृष्णपदारविन्दयो
क्षिणोत्यभद्राणि शम तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धि परमात्मभक्ति
ज्ञान च विज्ञानविरागयुक्तम्॥
(श्रीमद्भा० १२।१२।५४)

स्थूल स्वरूपकी धारणा परिपक्व हो जानेके अनन्तर विराट् स्वरूपकी धारणामे साधकको अपना अग्रिम अपेक्षित अध्यवसाय करना चाहिये, जिसके लिये शास्त्रकी दृष्टिका अवलम्ब लेना होगा। भगवान्‌के विराट् रूपका वर्णन श्रीमद्भागवतमे किया गया है, जिसके अनुसार पाताल विराट् पुरुषके तलवे हैं, उनकी एडियाँ और पजे रसातल हैं, दोनो गुल्फ—एडीके ऊपरकी गाँठे महातल हैं, उनके पैरके पिण्डे तलातल हैं। विश्वमूर्ति भगवान्‌के दोनो घुटने सुतल हैं, जाँघे वितल और अतल हैं पड्डू भूतल है और उनके नाभिरूप सरोवरको ही आकाश कहते है। आदिपुरुष परमात्माकी छातीको स्वर्गलोक गलेको महर्लोक मुखको जनलोक और ललाटको तपोलोक कहते हैं। उन सहस्र सिरवाले भगवान्‌का मस्तकसमूह ही सत्यलोक है।[2]

सम्पूर्ण प्राकृत सृष्टिप्रपञ्च त्रिगुणात्मक है। इन गुणोका स्वभाव है कि जब एक गुण उत्कट होता है तो अन्य दो अभिभूत हो जाया करते हैं।

तमोगुणके उद्रेक होनेपर जब अनेक प्रकारकी कुत्सित प्रवृत्तियोमें व्यक्ति अथवा समाजकी प्रवृत्ति होती है तथा परमात्माकी श्रुतिस्मृतिरूप व्यवस्था उच्छिन्न होने लगती है, श्रुति-स्मृतिकी व्यवस्थाके अधीन जीवन-निर्वाह करनेवाले साधुपुरुषोकी दुर्दशा होने लगती है और धरणी आततायियोके भारसे पीडित होने लगती है तब परमात्मा श्रुतिस्मृति-मर्यादाके उल्लङ्घन, अपने निजजनोकी व्यथा, सतोकी पीडा और पृथ्वीकी वेदनाको समाप्त करनेके लिये अवतार धारण करते हैं—यह बात भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे (गीता ४।७-८ मे) कही है और सतोने भी यत्र-तत्र इसे अवतारका प्रयोजन बताया है।

विचार करनेपर लगता है कि भगवान्‌की अचिन्त्य शक्तिसम्पन्ना माया भगवान्‌के अनुशासनको पाकर निमिषमात्रमे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोके पालन और सहारकी शक्ति रखती है तो फिर भगवान्‌के द्वारा स्थापित मर्यादाका उल्लघन करनेवाले असुरोका विनाश करनेहेतु भगवान्‌को अवतार धारण करनेकी क्या आवश्यकता? यह कार्य तो उनके सङ्कल्पमात्रसे ही हो

---

१ महावैयाकरण भर्तृहरिने कहा है—'इन्द्रियाणा स्वविषयेष्वनादिर्योग्यता यथा' (वाक्यपदीय)।

२ पातालमेतस्य हि पादमूल पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्। महातल विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातल वै पुरुषस्य जङ्घे॥
द्वे जानुनी सुतल विश्वमूर्तेरूरुद्वय वितल चातल च। महीतल तज्जघन महीपते नभस्तल नाभिसरो गृणन्ति॥
उर स्थल ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदन वै जनोऽस्य। तपो रराटीं विदुरादिपुस सत्य तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्ण ॥
(श्रीमद्भा० २।१।२६—२८)

सकता है।

वस्तुत तमोगुण और रजोगुणकी उत्कर्षावस्थामे अपने कल्याण करनेके लिये चर्चित सभी साधन भी बाधित हो जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि प्रवृत्तियोंके द्वारा ज्ञान और वैराग्य समाप्त-सा हो जाता है। शास्त्रोक्त जप, तप, मख, दान आदि सभी कल्याणकारी साधनोंका फल केवल श्रममात्र रह जाता है। भक्तशिरोमणि गोस्वामीजीने कहा है—

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम-फलनि फरो सो॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।
× × ×
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो।
(विनय-पत्रिका १७३)

अत भवबन्धनसे मुक्ति प्राप्त करनेके जितने उपाय हैं, उन सभीके बाधित हो जानेके कारण भगवान्‌की मङ्गलमयी कृपाशक्ति परमात्माको अवतार ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करती है। भगवान् अपनी निग्रहानुग्रहात्मिका कृपाके साथ अवतीर्ण होकर नाना प्रकारकी लीला करते हैं और नाना प्रकारके अपने कर्म और गुणोंका विस्तार करते हैं। जीव परमात्माके अवतार, गुण और कर्मका बोध करानेवाले उनके मङ्गलमय नामोंका कीर्तन करके अनायास ही अपना कल्याण कर सकता है—

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥
(श्रीमद्भा० ३।९।१५)

अर्थात् जो लोग प्राणत्याग करते समय आपके अवतार, गुण और कर्मोंको सूचित करनेवाले देवकीनन्दन, जनार्दन, कंसनिकन्दन आदि नामोंका विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेक जन्मोंके पापोंसे तत्काल छूटकर मायादि आवरणोंसे रहित ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आपकी शरण लेता हूँ।

तमोगुण और रजोगुणके उद्रेककी स्थितिमें समस्त कल्याणकारी साधन बाधित हो जानेके कारण ही भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यासजीने कहा है—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥[1]
(श्रीमद्भा० १२।४।४०)

परमात्मा अमलान्तरात्मा महात्माओंकी भावनाके अनुरूप उनके ऊपर कृपा करके उनके हृदयमें तत्तद् रूपोंमें प्रकट हो जाते हैं, यह परमात्माके अवतारकी एक दूसरी विलक्षण लीला है—

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥[2]
(श्रीमद्भा० ३।९।११)

इस प्रकार भगवान् अपनी अवतार-लीला और गुण-कर्मोंका विस्तार करनेके लिये अपनी कृपाशक्तिके साथ अनेक रूप धारण करते हैं, उनमें इसी वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान्‌ने वामनरूप धारण किया था।

वामनावतार-कथा—इन्द्रने बलिके ऊपर आक्रमण करके उनका सर्वस्व जीत लिया और बलिकी हत्या भी कर दी तब शुक्राचार्यने सञ्जीवनी विद्याके आधारपर बलिको पुनर्जीवित कर दिया। जीवन धारण करनेके अनन्तर राजा बलि ब्रह्मवादी भृगुवंशी ब्राह्मणोंकी निष्ठापूर्वक सेवा करते हुए उनसे प्राप्त शक्तिके कारण उत्कट कोटिके पुण्यकर्म और यज्ञ-यागादिमें प्रवृत्त हो गये। भृगुवंशी ब्राह्मणोंने उनसे विश्वजित् यज्ञ कराया।

हविष्योंके द्वारा जब अग्निदेवताकी पूजा की गयी, तब यज्ञकुण्डमेंसे सोनेकी चद्दरसे मढ़ा हुआ एक बड़ा सुन्दर रथ निकला। फिर इन्द्रके घोड़ों-जैसे हरे रंगके घोड़े और सिंहके

१ जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग अनेक प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं उनके लिये पुरुषोत्तमभगवान्‌की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन कोई नौका नहीं है। ये केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।

२ नाथ! आपका मार्ग केवल गुण-श्रवणसे ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्योंके भक्तियोगके द्वारा परिशुद्ध हुए हृदयकमलमें निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! आपके भक्तजन जिस-जिस भावनासे आपका चिन्तन करते हैं उन साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप वही-वही रूप धारण कर लेते हैं।

चिह्नसे युक्त रथपर लगानेकी ध्वजा निकली। साथ ही सोनेके पत्रसे मढा हुआ दिव्य धनुष, कभी खाली न होनेवाले दो अक्षय तरकस और दिव्य कवच भी प्रकट हुए। बलिके पितामह प्रह्लादजीने बलिको एक ऐसी माला दी, जिसके फूल कभी कुम्हलाते न थे। शुक्राचार्यने एक शङ्ख दिया। इस प्रकार ब्राह्मणोकी कृपासे युद्धकी सामग्री प्राप्त करके उनके द्वारा स्वस्तिवाचन हो जानेपर राजा बलिने उन ब्राह्मणोकी प्रदक्षिणा की और उन्हे नमस्कार किया। इसके बाद उन्होने प्रह्लादजीके चरणोमे नमस्कार किया।

तदनन्तर भृगुवंशियोके द्वारा प्रदत्त महान् रथपर आरूढ होकर बलिने देवराज इन्द्रकी पुरीको चारो ओरसे घेर लिया और आचार्यके द्वारा दिये हुए महान् ध्वनिवाले शङ्खको बजाया। देवराज इन्द्रने बलिके युद्धोद्यमको जानकर बृहस्पतिकी शरण ली। देवगुरु बृहस्पतिने ब्रह्मवादी भृगुवंशी ब्राह्मणोके द्वारा बलिसे विश्वजित्-यज्ञ कराये जानेके वृत्तान्तको बताकर इन्द्रसे शत्रुके पराभवकालकी प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। महाराज बलिके द्वारा जगत्त्रयपर विजय प्राप्त कर लेनेके अनन्तर भृगुवंशी ब्राह्मणोने उनसे सौ अश्वमेधयज्ञ कराये। इस प्रकार ब्राह्मण और देवोके द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यका उपभोग बलि करने लगे।

अपने पुत्रोके पराभवसे अत्यन्त दुःखी अदितिने अपने पति महर्षि कश्यपसे अपने दुःखको प्रकाशित करते हुए प्रार्थना की कि हमारे श्रीहीन पुत्रोको लक्ष्मी पुनः वरण कर ले, शत्रुओके द्वारा जीते गये उनके स्थान उन्हे प्राप्त हो जायँ, कृपया ऐसा कल्याणका मार्ग बतानेका अनुग्रह करे। कश्यपजीने अदितिके पुत्रादिविषयक मोहरूपी बन्धनमे डालनेवाली भगवान्‌की मायाके बलके प्रति आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—

अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत्॥
क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः।
कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम्॥

(श्रीमद्भा० ८।१६।१८-१९)

अर्थात् बडे आश्चर्यकी बात है। भगवान्‌की माया भी कैसी प्रबल है! यह सारा जगत् स्नेहकी रज्जुसे बँधा हुआ है। कहाँ यह पञ्चभूतोसे बना हुआ अनात्मा शरीर और कहाँ प्रकृतिसे परे आत्मा? न किसीका कोई पति है, न पुत्र है और न तो सम्बन्धी ही है। मोह ही मनुष्यको नचा रहा है।

तदनन्तर कश्यपजीने अदितिको पयोव्रतके द्वारा परमात्माकी आराधना करनेका उपदेश दिया और पयोव्रतकी विधि भी बता दी। अदितिने पयोव्रतद्वारा बारह दिनतक भगवान्‌की आराधना की, फलस्वरूप आदिपुरुष भगवान् अदितिके सामने अपने स्वरूपमे प्रकट हो गये और उन्होने कहा—देवमाता! आपके अभिलाषको हमने जान लिया। आप शत्रुओके द्वारा पराजित अपने पुत्रोको पुनः उनका स्थान दिलाना चाहती हैं, किंतु इस समय युद्धमे देवोद्वारा असुरोको परास्त किया जाना सम्भव नहीं, तथापि आपकी व्रतचर्यासे संतुष्ट होकर मैं उपायका चिन्तन करूँगा। श्रद्धानुरूप फल देनेवाली मेरी अर्चा व्यर्थ नहीं होती—ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और अदितिके गर्भमे प्रविष्ट हुए। कालक्रमसे परमात्मा भाद्रशुक्ल द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमे अभिजित् मुहूर्त तथा विजयायोगमे वामनरूपमे प्रकट हुए। महर्षियोने प्रसन्न होकर प्रजापतिको आगे करके उनके संस्कार सम्पन्न कराये। सविता देवताने उन्हे सावित्रीका उपदेश दिया, बृहस्पतिने ब्रह्मसूत्र दिया, कश्यपने मेखला दी, पृथ्वीने कृष्णाजिन प्रदान किया, सोमने दण्ड दिया और माताने कौपीन दिया। इस प्रकार भगवान्‌को वामन ब्रह्मचारीके रूपमे देखकर महर्षियोको बडा आनन्द हुआ।

भगवान् वामनने सुना कि इस समय त्रैलोक्याधिपति बलि नर्मदाके उत्तर तटपर भृगुकच्छ नामक क्षेत्रमे यज्ञानुष्ठान कर रहे हैं—ऐसा सुनकर भगवान्‌ने बलिके यज्ञस्थानकी ओर प्रस्थान किया। परमात्मा वामनने छत्र, दण्ड, सजल कमण्डलु धारण करते हुए अश्वमेधयज्ञके मण्डपमे प्रवेश किया। यजमान बलि भगवान्‌के मङ्गलमय परम आकर्षक विग्रहको देखकर हर्षातिरेकमे मग्न हो गये, उन्होने उन्हे आसन दिया, स्वागत-वचन कहे, उनके चरणोका प्रक्षालन करके उनकी पूजा की और परमात्माके चरणामृतको अपने सिरपर धारण किया। भगवान्‌के अपने यज्ञमे पधारनेसे बलिने अपने कुल और अपने अहोभाग्यकी प्रशंसा की और फिर कहा—'ब्राह्मणबालक! मेरा अनुमान है कि तुम किसी प्रयोजनसे आये हो, तुम जो भी चाहते हो, उसे माँग लो।' बलिके धर्मयुक्त वचनको सुनकर उन्होने उसके पूर्वज हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद और उसके पिता विरोचनकी प्रशंसा की और कहा—आपकी कुलपरम्पराकी वदान्यता सर्वत्र प्रसिद्ध है। दानवीरोमे श्रेष्ठ आप सब कुछ देनेमे समर्थ हैं। यद्यपि आप जगदीश्वर हैं तथापि हे दैत्येन्द्र! मैं आपसे अपने पैरोके प्रमाणसे तीन पग भूमिकी याचना करता हूँ, क्योंकि जितनेमे न्यूनतम निर्वाह हो सके उतने अर्थके प्रतिग्रहसे पाप नहीं होता।

दैत्यगुरु शुक्राचार्यके द्वारा यह कहकर तीन पग भूमि देनेका विरोध किया गया कि यह वामनरूपधारी प्रच्छन्न विष्णु ही है और इस दानके द्वारा तुम्हारा सर्वस्व हरण हो जायगा। दान-सङ्कल्पकी पूर्तिके अभावमे तुम्हे नरकगामी होना पड

सकता है। यह तुम्हारा स्थान, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और यश—सब छीनकर इन्द्रको दे देगा। तुम्हारी वृत्ति विपन्न हो जायगी और भार्या-पुत्र आदि सब सकटग्रस्त हो जायँगे। इसपर बलिने शुक्राचार्यजीसे कहा—

नाह बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात्।
न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात्॥
(श्रीमद्भा० ८।२०।५)

अर्थात् मैं नरकसे, अधन्यतासे, दु खके समुद्रसे, अपने राज्यके नाशसे और मृत्युसे भी उतना नहीं डरता, जितना ब्राह्मणसे प्रतिज्ञा करके उसे धोखा देनेसे डरता हूँ।

तदनन्तर बलिद्वारा दानका सङ्कल्प करते ही भगवान् वामनने विराट् रूप धारण कर लिया। उन्हाने एक पैरसे सम्पूर्ण पृथ्वीको नाप लिया, शरीरसे आकाश और भुजाओसे दिशाएँ घेर लीं। दूसरे पैरसे उन्हाने स्वर्गको नाप लिया, तीसरा पैर रखनेके लिये बलिकी जब कोई वस्तु नहीं बची तब भगवान्ने बलिसे कहा—'सङ्कल्पको तुम पूरा नहीं कर सके, अत नरकमे प्रवेश करो।' भगवान्के तात्पर्यको जानकर गरुडजीने वारुणपाशसे बलिको बाँध लिया। इसके बाद बलिने भगवान्की प्रार्थना की और कहा—कृपया आप अपना तीसरा पैर मेरे सिरपर रख दीजिये।[१]

बन्धनमे पडे बलिको देखकर प्रह्लादजी उपस्थित हुए और उन्हाने कहा—प्रभो! आपने इसे समस्त ऐश्वर्य दिया था और यह इस ऐश्वर्यसे मोहित न हो जाय, इसलिये कृपा करके आपने उसे छीन लिया। वस्तुत आपका यह कृपाप्रसाद न ब्रह्माको प्राप्त हुआ, न लक्ष्मीने प्राप्त किया है और न शिवको ही प्राप्त हो सका है। विश्ववन्द्य ब्रह्मा आदिके द्वारा जिनके चरणोकी वन्दना की जाती है, वे ही आप हम असुरोके दुर्गपाल हो गये।

भगवान्की ऐसी लीला देखकर ब्रह्माजी उपस्थित हुए और उन्होने भगवान्से कहा—

यत्पादयोरशठधी सलिल प्रदाय
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम्।
अप्युत्तमा गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमना कथमार्तिमृच्छत्॥
(श्रीमद्भा० ८।२२।२३)

अर्थात् प्रभो! जो मनुष्य सच्चे हृदयसे कृपणता छोड आपके चरणामे जलका अर्घ्य देता है और केवल दूर्वादलसे भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। फिर बलिने तो बडी प्रसन्नतासे धैर्य और स्थिरतापूर्वक आपको त्रिलोकीका दान कर दिया है, तब यह दु खका भागी कैसे हो सकता है?

इसपर परमात्मा भगवान् वामनने ब्रह्माजीसे कहा—ब्रह्मन्! मैं जिसके ऊपर कृपा करता हूँ, उसके धनका हरण कर लेता हूँ,[२] जिस धनके मदसे व्यक्ति उन्मत्त होकर लोकको और मेरी अवमानना करता है। मैंने देवताओके लिये भी दुष्प्राप्य स्थान इसे दे दिया है। यह सावर्णि मन्वन्तरमे इन्द्र होगा। फिर बलिको सम्बोधित कर भगवान्ने कहा—

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते।
सुतल स्वर्गिभि प्रार्थ्यं ज्ञातिभि परिवारित ॥
रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वा सानुग सपरिच्छदम्।
सदा सन्निहित वीर तत्र मा द्रक्ष्यते भवान्॥
(श्रीमद्भा० ८।२२।३३ ३५)

महाराज इन्द्रसेन! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने भाई-बन्धुओके साथ उस सुतल लोकमे जाओ, जिसे स्वर्गके देवता भी चाहते रहते हैं। मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचराकी और भोगसामग्रीकी भी सब प्रकारके विघ्नासे रक्षा करूँगा। वीर बलि! तुम मुझे वहाँ सदा-सर्वदा अपने पास ही देखोगे।

यहाँ यह विचारणीय है कि प्रह्लादजी दैत्येन्द्र बलिके ऊपर भगवान्की अनुग्रहात्मिका कृपाको अङ्गीकार करते हैं और ब्रह्माजीने इसी सन्दर्भको परमात्माकी निग्रहात्मिका कृपाके रूपमे देखा है तो यह निग्रहानुग्रहात्मिका कृपा दृष्टिभेदसे ही भिन्न जान पडती है। वस्तुत परमात्माका कृपाप्रसाद निग्रहानुग्रहात्मक जैसा भी हो जीवके सम्पूर्ण कल्याणको सम्पादित करनेका एकमात्र हेतु है।

भगवान् वामनके अवतारके सारे प्रकरणपर दृष्टिपात करते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि परमात्माका वामनावतार जब हुआ था, तब न धर्मकी ग्लानि थी और न ही अधर्माभ्युत्थान हुआ था। अत गोस्वामीजीकी इन पक्तियो—*'हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई॥'* के अनुसार परमात्मा ही अपने अवतारका हेतु जाने। सताके द्वारा भगवान्के जिस अवतारके पूर्व जगत्की जैसी स्थिति थी उसीके अनुरूप अवतारके हेतुकी भी कल्पना की गयी है।

---

१ बलिके इस सर्वस्व-समर्पणरूपी दानके अनन्तर ही 'बलिदान' पदका प्रयोग आरम्भ हुआ जान पडता है।
२ परमात्माने भी यहाँ अपनी निग्रहात्मिका कृपाको ही कृपाके रूपमे निरूपित किया है।

भगवान्‌के विविध अवतार और उनकी कथाएँ

[विभिन्न युगामे भगवान्‌के सगुण-साकार रूपमे विभिन्न अवतारोका दिव्य दर्शन हमे प्राप्त होता है। भगवान् नारायण (विष्णु), श्रीगङ्गाधर (शिव), महाशक्ति (भगवती दुर्गा), गणनाथ (गणेश) और भुवनभास्कर (सूर्यदेव)— ये पञ्चदेव एक ही तत्त्वके पाँच स्वरूप ह, वैसे दिव्य धामोमे इनके पृथक्-पृथक् नित्य धाम हे, किंतु साकार विग्रह पृथक्-पृथक् होते हुए भी ये एक ही परम तत्त्वके अनेक रूप ह। अत इनमे न सामर्थ्यका कोई अन्तर है और न अनुग्रहका। एक अनन्त सच्चिदानन्द चाहे जिस रूपमे हो, उनमे कोई अतर सम्भव नहीं है। अवतार इन पाँच देवोमेसे ही किसीका होता है अथवा इनके माध्यमसे ही होता हे। अत परब्रह्मस्वरूप पञ्चदेवोके प्राकट्य एव अवतारकी विभिन्न कथाएँ यहाँ प्रस्तुत हे—सम्पादक]

भगवान् श्रीगणेशकी विभिन्न अवतारकथाएँ

जब-जब आसुरी शक्तियाके प्रबल होनेसे जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दय दैत्य सत्त्वगुण-सम्पन्न सुर-समुदायका सर्वस्व हरणकर निरन्तर उन्हे पीडित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र अनीति, अनाचार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एव अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मङ्गल-मोद-निधान श्रीगणेशजी भू-भारहरणार्थ अवतार ग्रहण करते हें। वे गुणतत्त्व-विवेचक आदिदेव गजमुख दैत्याका विनाशकर देवताआका अपहृत अधिकार उन्हे लौटाते हैं तथा प्रत्येक रातिसे सद्धर्मकी स्थापना करते हें, जिससे समस्त प्राणियोको सुख-शान्तिकी अनुभूति होती है।

भगवान् गणेशके प्राकट्यकी विभिन्न लीलाएँ पुराणाम प्राप्त होती हैं। कहीं वे भगवती पार्वतीके उबटनसे उत्पन्न बताये गये हैं तो कहीं गङ्गाजीके सहयोगसे जन्म लेते हैं और गाङ्गेय भी कहलाते हैं, इसी तरह कहीं देवी पार्वतीके पुण्यक व्रतके प्रभावसे प्रकट होते हैं। प्राकट्यके ये स्वरूप अनेक कल्प-कल्पान्तराम होते हैं, ऐसा मानना चाहिये।

प्रत्येक युगमे उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं तथा उनके द्वारा जिन दैत्याका सहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होत हैं।

कृतयुगमे ये परमप्रभु गजानन सिहारूढ 'महोत्कट विनायक' के नामसे प्रख्यात हुए, त्रेतामे ये मङ्गलमोद-प्रदाता गणश मयूरारूढ 'मयूरेश्वर' के नामसे प्रसिद्ध हुए, द्वापरमे मूषकवाहन शिवपुत्रकी 'गजानन' या 'गोरीपुत्र' के नामसे ख्याति हुई तथा कलिके अन्तमे ये धर्मरक्षक गजानन अश्वारोही 'धूम्रकेतु' के नामसे प्रसिद्ध हागे।

महोत्कट विनायकका अवतार

एक बारकी बात हे, महर्षि कश्यप अग्निहोत्र कर चुक थे। सुगन्धित यज्ञ-धूम आकाशमे फैला हुआ था। इसी समय पुण्यमयी अदिति अपने पति महर्षि कश्यपके समीप पहुँचीं। परम तपस्वी पतिके श्रीचरणामें प्रणामकर उन्हाने निवेदन किया—'स्वामिन्। इन्द्रादि देवगणाको तो मैंने पुत्ररूपमे प्राप्त किया हे, किंतु पूर्ण परात्पर सच्चिदानन्द परमात्मा मुझे पुत्ररूपसे प्राप्त हा—यह कामना मेरे मनम बार-बार उदित हो रही हे। वे परम प्रभु किस कारण मेरे पुत्र होकर मुझे कृतकृत्य करेंगे आप कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट कीजिये।'

महर्षि कश्यपने अपनी प्रिय पत्नी अदितिको विनायकका ध्यान, उनका मन्त्र और न्याससहित पुरश्चरणकी पूरी विधि विस्तारपूर्वक बताकर उन्हे कठोर तपस्याके लिये प्रोत्साहित किया।

महाभागा अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुईं और पतिकी आज्ञा प्राप्तकर कठोर तप करनेके लिये एकान्त शान्त अरण्यम जा पहुँचीं तथा वहाँ देवदेव विनायकके ध्यान और जपम तन्मय हो गयीं।

भगवती अदितिकी सुदृढ प्रीति एव कठोर तपसे कोटि-कोटि भुवनभास्करकी प्रभास भी अधिक परम

तेजस्वी कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देवदेव गजानन विनायकने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे अत्यन्त घोर तपसे संतुष्ट होकर तुम्हें वर प्रदान करने आया हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करूँगा।'

'प्रभो! आप ही जगत्के स्रष्टा, पालक और संहारकर्ता हैं। आप सर्वेश्वर, नित्य, निरञ्जन, प्रकाशस्वरूप, निर्गुण, निरहंकार, नाना रूप धारण करनेवाले और सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं। प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मेरे पुत्ररूपमें प्रकट होकर मुझे कृतार्थ करें। आपके द्वारा दुष्टोंका विनाश एवं साधु-परित्राण हो और सामान्य-जन कृतकृत्य हो जायँ।'

'मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' वाञ्छाकल्पतरु विनायकने तुरंत कहा—'साधुजनोंका रक्षण, दुष्टोंका विनाश एवं तुम्हारी इच्छाकी पूर्ति करूँगा।' इतना कहकर देवदेव विनायक अन्तर्धान हो गये।

देवमाता अदिति अपने आश्रमपर लौटीं। उन्होंने अपने पतिके चरणोंमें प्रणामकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। महर्षि कश्यप आनन्दमग्न हो गये।

× × ×

उधर देवान्तक और नरान्तकके कठोरतम क्रूर शासनमें समस्त देवसमुदाय और ब्राह्मण अत्यन्त भयाक्रान्त हो कष्ट पा रहे थे। वे अधीर और अशान्त हो गये थे। तब ब्रह्माजीके निर्देशानुसार दुष्ट दैत्योंके भारसे पीडित—व्याकुल धरित्रीसहित देवताओं और ऋषियोंने हाथ जोड़कर आदिदेव विनायककी स्तुति करते हुए कहा—'देव! सम्पूर्ण जगत् हाहाकारसे व्याप्त एवं स्वधा और स्वाहासे रहित हो गया है। हम सब पशुओंकी तरह सुमेरु-पर्वतकी कन्दराओंमें रह रहे हैं। अतएव हे विश्वम्भर! आप इन महादैत्योंका विनाश करें।'

—इस प्रकार करुण प्रार्थना करनेपर पृथ्वीसहित देवताओं और ऋषियोंने आकाशवाणी सुनी—

कश्यपस्य गृहे देवोऽवतरिष्यति साम्प्रतम्।
करिष्यत्यद्भुतं कर्म पदानि वः प्रदास्यति॥
दुष्टानां निधनं चैव साधूनां पालनं तथा।
(गणेशपु० २।६।१७-१८)

'सम्प्रति देवदेव गणेश महर्षि कश्यपके घरमें अवतार लेंगे और अद्भुत कर्म करेंगे। वे ही आप लोगोंको पूर्वपद भी प्रदान करेंगे। वे दुष्टोंका संहार एवं साधुओंका पालन करेंगे।'

'देवि! तुम धैर्य धारण करो।' आकाशवाणीसे आश्वस्त होकर पद्मयोनिने मेदिनीसे कहा—'समस्त देवता पृथ्वीपर जायँगे और निःसंदेह महाप्रभु विनायक अवतार ग्रहणकर तुम्हारा कष्ट निवारण करेंगे।'

पृथ्वी, देवता तथा मुनिगण विधाताके वचनसे प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

× × ×

कुछ समय बाद सती कश्यप-पत्नी अदितिके समक्ष मङ्गलमयी वेलामें अद्भुत, अलौकिक, परमतत्त्व प्रकट हुआ। वह अत्यन्त बलवान् था। उसकी दस भुजाएँ थीं। कानोंमें कुण्डल, ललाटपर कस्तूरीका शोभाप्रद तिलक और मस्तकपर मुकुट सुशोभित था। सिद्धि-बुद्धि साथ थीं और कण्ठमें रत्नोंकी माला शोभायमान थी। वक्षपर चिन्तामणिकी अद्भुत सुषमा थी और अधरोष्ठ जपापुष्प-तुल्य अरुण थे। नासिका ऊँची थी और सुन्दर भ्रुकुटिके संयोगसे ललाटकी सुन्दरता बढ़ गयी थी। वह दाँतसे दीप्तिमान् था। उसकी अपूर्व देहकान्ति अन्धकारको नष्ट करनेवाली थी। उस शुभ बालकने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था।

महिमामयी अदिति उस अलौकिक सौन्दर्यको देखकर चकित और आनन्द-विह्वल हो रही थीं। उस समय परम तेजस्वी अद्भुत बालकने कहा—'माता! तुम्हारी तपस्याके फलस्वरूप मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे आया हूँ। मैं दुष्ट दैत्योंका संहारकर साधु-पुरुषोंका हित एवं तुम्हारी कामनाओंकी पूर्ति करूँगा।'

'आज मेरे अद्भुत पुण्य उदित हुए हैं, जो साक्षात् गजानन मेरे यहाँ अवतरित हुए।' हर्ष-विह्वल माता अदितिने विनायकदेवसे कहा—'यह मेरा परम सौभाग्य है, जो चराचरमें व्याप्त, निराकार नित्यानन्दमय, सत्यस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर गजानन मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए।' किंतु अब आप इस अलौकिक एवं परम दिव्य रूपका उपसंहार

कर प्राकृत बालककी भाँति क्रीडा करते हुए मुझे पुत्र-मुख प्रदान करें—

इदं रूपं परं दिव्यमुपसंहर साम्प्रतम्।
प्राकृतं रूपमास्थाय क्रीडस्व कुहका यथा॥
(गणेशपु० २।६।३५)

तत्क्षण अदितिके सम्मुख अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट सशक्त बालक धरतीपर तीव्र रुदन करने लगा। उसके रुदनकी ध्वनि आकाश, पाताल और धरतीपर दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गयी। अद्भुत बालकके रुदनसे धरती काँपने लगी, वन्ध्या स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं, नीरस वृक्ष सरस हो गये, देव-समुदायसहित इन्द्र आनन्दित और दैत्यगण भयभीत हो गये।

महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिके अङ्कमें बालक आया जानकर ऋषि-मुनि एवं ब्रह्मचारी आदि आश्रमवासी तथा देवगण सभी प्रसन्न थे। बालकके स्वरूपके अनुसार पिता कश्यपने उसका नामकरण किया—'महोत्कट।'

ऋषिपुत्र—महोत्कटके जन्मका समाचार सुनकर असुरोंके मनमें भय व्याप्त हो गया और वे उन्हें बाल्यकालमें ही मार डालनेका प्रयत्न करने लगे। असुरराज देवान्तकने महोत्कटको मारनेके लिये 'विरजा' नामकी एक क्रूर राक्षसीको भेजा, परंतु महोत्कटने खेल-खेलमें ही उसे परमधाम प्रदान कर दिया। इसके बाद 'उद्धत' और 'धुन्धुर' नामक दो राक्षस शुक-रूपमें कश्यपके आश्रममें पहुँचकर अपने तीक्ष्ण चोंचोंसे मुनिकुमार 'महोत्कट' को मारनेका प्रयास करने लगे। इसपर क्रुद्ध हो उन्होंने क्षणभरमें उन शुकरूप राक्षसोंको धरतीपर पटककर मार डाला। इसी प्रकार महोत्कटने धूम्राक्ष, जृम्भा, अन्धक, नरान्तक तथा देवान्तक आदि भयानक मायावी असुरों एवं आसुरी सेनाका अनेक लीलाओंसे संहारकर तीनों लोकोंको आनन्दित किया—विश्वकी रक्षा की। भगवान्के हाथों मृत्यु होनेसे इन असुरोंको परमपदकी प्राप्ति हुई। देवान्तक-युद्धमें प्रभु द्विदन्तीसे एकदन्ती हो गये और अपने एक रूपसे 'ढुण्ढिविनायक' के नामसे काशीमें प्रतिष्ठित हो गये।

~~o~~

भगवान् मयूरेश्वरका अवतार

त्रेतायुगकी बात है। मैथिलदेशमें प्रसिद्ध गण्डकी नगरके सद्धर्मपरायण नरेश चक्रपाणिके पुत्र सिन्धुके क्रूरतम शासनसे धराधामपर धर्मकी मर्यादाका अतिक्रमण हो रहा था। उसी समय भगवान् गणेशने 'मयूरेश्वर' के रूपमें लीला-विग्रह धारणकर विविध लीलाएँ कीं और महाबली सिन्धुके अत्याचारोंसे त्रैलोक्यका रक्षण करते हुए पुनः विधाताके शाश्वत नियमोंकी प्रतिष्ठापना की।

अत्यन्त शक्तिशाली सिन्धुके दो सहस्र वर्षकी उग्र तपस्यासे सहस्रांशु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अभीष्ट वरके रूपमें अमृतपात्र प्रदान करते हुए कहा—'जबतक यह अमृतपात्र तुम्हारे कण्ठमें रहेगा, तबतक तुम्हें देवता नाग, मनुष्य, पशु एवं पक्षी आदि कोई भी दिन, रात प्रातः तथा सायं किसी भी समय मार न सकेगा।' अब तो वर प्राप्तकर वह अत्यन्त मदोन्मत्त हो गया। अकारण ही सत्यधर्मके मार्गपर चलनेवालोंकी तथा निरपराध नर-नारियों एवं अबोध शिशुओंकी हत्या करनेमें गर्वका अनुभव करने लगा। सम्पूर्ण धरित्री रक्त-रंजित-सी हो गयी। इसके बाद उसने पातालमें भी अपना आधिपत्य जमा लिया और ससैन्य स्वर्गलोकपर चढ़ाई करके वहाँ शचीपति इन्द्रादि देवताओंको पराभूतकर तथा विष्णुको बंदी बनाकर सर्वत्र हाहाकार मचा दिया।

चिन्तित देवताओंने इस विकट कष्टसे मुक्ति पानेके लिये अपने गुरु बृहस्पतिसे निवेदन किया। सुरगुरुने कहा—'परम प्रभु विनायक स्वल्प पूजासे ही शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं, अतः आप लोग असुरसंहारक, दशभुज विनायककी स्तुति-प्रार्थना करें। ऐसा करनेसे वे करुणासिन्धु अवतरित होकर असुरोंका वधकर धराका भार हलका करेंगे और आप लोगोंको अपहृत पद पुनः प्रदान करेंगे।' प्रसन्नतापूर्वक देवताओंने भक्तिपूर्वक उनका स्तवन प्रारम्भ कर दिया।

देवताओंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर परमप्रभु विनायक प्रकट हो गये और कहने लगे—'जिस प्रकार मैंने महामुनि कश्यपकी परम साध्वी पत्नी अदितिके गर्भसे जन्म लिया था, उसी प्रकार शिवप्रिया माता पार्वतीके यहाँ अवतरित होकर महादैत्य सिन्धुका वध करूँगा और आप सबको अपना-अपना पद प्रदान करूँगा। इस अवतारमें मेरा नाम 'मयूरेश्वर' प्रसिद्ध होगा'—इतना कहकर परम प्रभु विनायक अन्तर्धान हो गये। देवगणोंके तो हर्षका ठिकाना न रहा।

एक बार माता पार्वती देवाधिदेव भगवान् शंकरको तपश्चरणमें निरत देख उनसे कहने लगीं—'प्रभो! आप तो स्वयं सृष्टिके पालन एवं संहारकर्ता तथा अनन्तानन्त-कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं, फिर आप किसे प्रसन्न करनेके लिये तप करते हैं'? शूलपाणिने उत्तर दिया—'निष्पापे! मैं उन अनन्त महाप्रभुकी प्रसन्नताके लिये तप करता हूँ, जिनकी शक्ति, गुण और कर्म सभी अनन्त हैं। अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड उनके प्रत्येक रोममें निवास करते हैं और समस्त गुणोंके ईश होनेके कारण वे 'गुणेश' कहे जाते हैं। मैं उन्हीं 'गुणेश' का निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ।' यह सुनकर गौरीने जिज्ञासा प्रकट की—'प्रभो! वे परम प्रभु मुझपर कैसे प्रसन्न होंगे, मुझे उनका प्रत्यक्ष दर्शन किस प्रकार हो सकेगा?' भगवान् शंकरने कहा—'हे प्रिये! निष्ठापूर्वक किये गये आराधन तथा तपश्चरणसे ही उनका दर्शन सुलभ हो सकेगा। इसके लिये तुम्हें बारह वर्षोंतक गणेशके एकाक्षरी मन्त्रका जप करना होगा।' जगन्माता पार्वती भगवान् शंकरसे उपदिष्ट उस एकाक्षरी गणेशमन्त्र (ग)-का जप करने लगीं।

× × ×

कुछ ही समय बाद भाद्रपद-मासकी शुक्ल-पक्षीय चतुर्थी-तिथि आयी। सभी ग्रह-नक्षत्र शुभस्थ एवं मङ्गलमय योगमें विराजमान थे। उसी समय विराट्रूपमें पार्वतीके सम्मुख भगवान् गणेशका अवतरण हुआ। इस रूपसे चकित-थकित होती हुई तपस्विनी पार्वतीने कहा—'प्रभो! मुझे अपने पुत्र-रूपका दर्शन कराइये।' इतना सुनना था कि सर्वसमर्थ प्रभु तत्काल स्फटिकमणितुल्य षड्भुज दिव्य विग्रहधारी शिशुरूपमें क्रीडा करने लगे। उनकी देहकी कान्ति अद्भुत लावण्ययुक्त एवं प्रभासम्पन्न थी। उनका वक्षःस्थल विशाल था। सभी अंग पूर्णतः शुभ चिह्नोंसे अलंकृत थे। दिव्य शोभासम्पन्न यह विग्रह ही 'मयूरेश्वर' रूपमें साक्षात् प्रकट हुआ था। मयूरेशके आविर्भावसे ही प्रकृतिमात्र आनन्दविभोर हो उठी। आकाशस्थ देवगण पुष्प-वर्षण करने लगे।

आविर्भावके समयसे ही सर्वविघ्नहारी शिवा-पुत्रकी दिव्य लीलाएँ प्रारम्भ हो गयी थीं। एक दिनकी बात है। समस्त ऋषियोंके अन्यतम प्रीतिभाजन हेरम्ब क्रीडा-मग्न थे, सहसा गृध्ररूपधारी एक भयानक असुरने उन्हें अपनी चोंचमें पकड लिया और बहुत ऊँचे आकाशमें उड गया। जब पार्वतीने अपने प्राणप्रिय बालकको आकाशमें उस विशाल गृध्रके मुखमें देखा तो सिर धुन-धुनकर करुण विलाप करने लगीं। सर्वात्मा हेरम्बने माताकी व्याकुलता देखकर मुष्टि-प्रहार मात्रसे ही गृध्रासुरका वध कर दिया। चीत्कार करता हुआ वह विशालकाय असुर पृथ्वीपर गिर पडा। बाल भगवान् मयूरेश उस असुरके साथ ही नीचे आये थे, परंतु वे सर्वथा सुरक्षित थे, उन्हें खरोंचतक नहीं लगी थी। माता पार्वतीने दौडकर बच्चेको उठा लिया और देवताओंकी मिन्नत करती हुई दुग्धपान कराने लगीं।

इसी तरह एक दिन माता पार्वती जब उन्हें पालनेमें लिटाकर लोरी सुना रही थीं, उसी समय क्षेम और कुशल नामक दो भयानक असुर वहाँ आकर बालकको मारनेका प्रयत्न करने लगे, पार्वती अभी कुछ समझ पातीं तबतक बालकने अपने पदाघातसे ही उन राक्षसोंका हृदय विदीर्ण कर दिया। वे राक्षस रक्त-वमन करते हुए वहीं गिर पडे। भगवान्ने उन्हें मोक्ष प्रदान कर दिया।

× × ×

एक दिन माता पार्वती सखियोंके साथ मन्दिरमें पूजा करने गयीं। बालक गणेश वहीं मन्दिरके बाहर खेलने लगे। उसी समय क्रूर नामक एक महाबलवान् असुर ऋषिपुत्रके वेषमें आकर उनके साथ खेलने लगा और खेल-खेलमें हेरम्बको मार डालनेके लिये उनके केश पकडकर उन्हें धरतीपर पटकना चाहता था, परंतु लीलाधारी भगवान्ने उसका गला दबाकर तत्क्षण ही उसकी इहलीला समाप्त कर

दी। सखियासहित पार्वती यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं।

इसी तरह मङ्गलमोद प्रभु गणेशने लीला करते हुए असुर सिन्धुद्वारा भेजे गये अनेक छल-छद्मधारी असुरोको सदा-सर्वदाके लिये मुक्त कर दिया। इस क्रममे उन्हाने दुष्ट वकासुर तथा श्वानरूपधारी 'नूतन' नामक राक्षसका वध किया। अपने शरीरसे असख्य गणाको उत्पन्न कर 'कमलासुर' की बारह अक्षौहिणी सेनाका विनाश कर दिया तथा त्रिशूलसे कमलासुरका मस्तक काट डाला। उसका मस्तक भीमा नदीके तटपर जा गिरा। देवताओ तथा ऋषियोकी प्रार्थनापर गणेश वहाँ 'मयूरेश' नामसे प्रतिष्ठित हुए।

इधर दुष्ट दैत्य सिन्धुने जब सभी देवताओको कारागारम बदी बना लिया, तब भगवान्ने दैत्यको ललकारा। भयकर युद्ध हुआ। असुर-सैन्य पराजित हुआ। यह देख कुपित दैत्यराज अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रासे मयूरेशपर प्रहार करने लगा, परतु सर्वशक्तिमान्के लिये शस्त्रास्त्रोका क्या महत्त्व! सभी प्रहार निष्फल हो गये। अन्तमे महादैत्य सिन्धु मयूरेशके परशु-प्रहारसे निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर पडा। उसे दुर्लभ मुक्ति प्राप्त हुई। देवगण मयूरेशकी स्तुति करने लगे। भगवान् मयूरेशने सबको आनन्दितकर सुख-शान्ति प्रदान किया और अपने लीलावतरणके प्रयोजनकी पूर्णता बतलाते हुए अन्तमे अपनी लीलाका सवरण करके वे परम प्रभु परमधामको पधार गये—वहीं अन्तर्धान हो गये।

~~०~~

श्रीगजाननकी प्राकट्य-लीला

द्वापर युगकी बात है। एक दिन पार्वतीवल्लभ शिव ब्रह्म-सदन पहुँचे। उस समय चतुर्मुख शयन कर रहे थे। कमलासनने निद्रासे उठते ही जँभाई ली। उसी समय उनके मुखसे एक महाघोर पुरुप प्रकट हुआ। जन्म लेते ही उसने त्रैलोक्यम भय उत्पन्न करनेवाली घार गर्जना की। उसके उस गर्जनसे सम्पूर्ण वसुधा काँप गयी, दिक्पाल चकित हो गये।

उस महाघोर पुरुपकी अङ्ग-कान्ति जपा-पुष्पके सदृश लाल थी और उसके शरीरस तीव्र सुगन्ध निकल रही थी। उसके रूप-सोन्दर्यको देखकर पद्मयोनि भी चकित हो गये। उन्हान उससे पूछा—'तुम कौन हो? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है और तुम्हे क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुपन उत्तर दिया—'देवाधिदेव! आप अनेक ब्रह्माण्डाका निर्माण करते हैं, सर्वज्ञ हे, फिर अनजानकी तरह कैसे पूछ रहे हैं? जँभाई लेते समय मैं आपके मुखसे प्रकट हुआ आपका पुत्र हूँ, अतएव आप मुझ स्वीकार कीजिये और मेरा नामकरण कर दीजिये।'

विधाता अपने पुत्रका सौन्दर्य दखकर मुग्ध हा गय थे अब उसकी मधुर वाणा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हाने कहा—'बटा! अतिशय अरुणवर्ण हानके कारण तेरा नाम 'सिन्दूर' हागा। त्रैलाक्यको अधीन करनेका तुझम अद्भुत शक्ति होगी। तू क्रोधपूर्वक अपनी विशाल भुजाआम पकडकर जिसे दबाच लेगा, उसके शरीरके सैकडा टुकडे हो जायँगे, त्रैलोक्यम तेरी जहाँ इच्छा हो, तुझ जो स्थान प्रिय लग, वहीं निवास कर।'

पितास इतने वर प्राप्तकर मदोन्मत्त सिन्दूर साचने लगा—'उनका वर-प्रदान सत्य है कि नहीं, केसे पता चले? यहाँ काई हे भी नहीं, जिसे मैं अपने भुजापाशम आबद्धकर वरका परीक्षण कर लूँ। कहाँ जाऊँ? कहीं तो कोई नहीं दीखता।'

अब वह सीधे पितामहके समीप पहुँचा। उसने अपनी दोना भुजाआका तोलते हुए गर्जना की। उसकी कुचेष्टाकी कल्पना करक भयभीत पद्मयानिने दूर जाकर पूछा—'लौट केसे आय बेटा?'

'आपके वरकी परीक्षा करना चाहता हूँ।'

सिन्दूरका कथन सुनकर पितामहने उस शाप दते हुए कहा—'सिन्दूर! अब तू असुर हा जायगा। सिन्दूर-प्रिय सिन्दूरारुण प्रभु गजानन तेरे लिये अवतरित हाग और निश्चय ही तुझ मार डालग।'

इस प्रकार शाप दत हुए पितामह प्राण लेकर भाग। दौडत-दौडत व वैकुण्ठ पहुँच और श्रीहरिसे निवदन किया—'प्रभो! इस दुष्टस आप मेरी रक्षा कीजिय।'

वर-प्राप्त सिन्दूरकी सुगठित प्रचण्ड काया देखकर श्रीविष्णुने अत्यन्त मधुर वाणीमें उसे समझाना चाहा, लेकिन सर्वथा मूर्ख, उद्दण्ड-प्रचण्ड वह असुर युद्धके लिये विष्णुकी ओर बढ़ने लगा। तब भगवान् विष्णुने उसे भगवान् शंकरसे युद्धके लिये प्रेरित किया।

बलोन्मत्त मूर्ख असुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह बड़े वेगसे उड़ा और कैलासपर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ आशुतोष शिव पद्मासन लगाये ध्यानस्थ थे। नन्दी और भृङ्गी आदि गण उन परम प्रभुके आस-पास थे और माता पार्वती उनकी सेवा कर रही थीं।

सिन्दूर पार्वतीकी ओर मुड़ा ही था कि वे वटपत्रकी भाँति काँपती हुई मूर्च्छित हो गयीं। महापातकी असुरने जगज्जननीकी वेणी पकड़ ली और उन्हें बलपूर्वक ले चला। कोलाहलसे त्रिपुरारिकी समाधि भङ्ग हुई।

यह देख क्रोधसे भगवान् शंकरके नेत्र लाल हो गये। वे तीव्रतम गतिसे सिन्दूरके पीछे दौड़े तथा क्षणभरमें ही उसके समीप पहुँच गये। अत्यन्त कुपित वृषभध्वज असुरसे युद्ध करनेके लिये उद्यत थे ही, उसी समय माता पार्वतीने मन-ही-मन मयूरेशका चिन्तन किया। तत्क्षण कोटिसूर्य-समप्रभ देवदेव मयूरेश्वर ब्राह्मणके वेषमें सिन्दूर और शंकरके बीच प्रकट हो गये। वे अत्यन्त सुन्दर एवं वस्त्राभूषण-भूषित थे। उन्होंने अपने तीक्ष्णतम तेजस्वी परशुसे असुरको पीछे हटाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'माता गिरिजाको तुम मेरे पास छोड़ दो, फिर शिवके साथ युद्ध करो। युद्धमें जिसकी विजय होगी, पार्वती उसीकी होगी, अन्यथा नहीं।'

ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशके वचन सुनकर सिन्दूर संतुष्ट हुआ। उसने माता पार्वतीको मयूरेशके पास चले जाने दिया और फिर युद्ध आरम्भ हुआ। परशुके आघातसे सिन्दूरकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी। उसके शिथिल होते ही मदनान्तकने उसपर अपने कठोर त्रिशूलका प्रहार किया, जिससे आहत होकर असुर वहीं गिर पड़ा।

विवश हो सिन्दूरने पार्वतीकी आशा छोड़ दी और वह पृथ्वीके लिये प्रस्थित हुआ। शंकर विजयी हुए।

अब ब्राह्मणवेषधारी मयूरेश अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये और अपनी माताकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगे तथा मातासे कहा—'मैं आपके पुत्ररूपमें शीघ्र ही प्रकट होकर असुरोंका विनाश करूँगा।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

इधर जब सिन्दूरके आतंकसे त्रैलोक्य कम्पित हो गया तब सुरगुरु बृहस्पतिके निर्देशानुसार देवगण करुणामय विनायककी स्तुति करने लगे। स्तुति करके देवता और मुनि सभी तपस्यामें संलग्न हुए। देवताओं और ऋषियोंके कठोर तपसे देवदेव गणराज प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्होंने कहा—'देवताओ! मैं असुर सिन्दूरका वध करूँगा। तुम लोग निश्चिन्त हो जाओ। 'गजानन' यह मेरा सर्वार्थसाधक नाम प्रसिद्ध होगा। मैं सिन्दूरका वधकर पार्वतीके सम्मुख अनेक प्रकारकी लीलाएँ करूँगा। इतना कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये।

देवाधिदेव भगवान् शंकरके अनुग्रहसे जगज्जननी पार्वतीके सम्मुख अतिशय तेजोराशिसे उद्दीप्त चन्द्र-तुल्य परमाह्लादक परम तत्त्व प्रकट हुआ।

माता पार्वतीने उस परम तेजस्वी मूर्तिसे पूछा—'आप कौन हैं? कृपया परिचय देकर आप मुझे आनन्द प्रदान करें।'

तेजस्वी विग्रहने उत्तर दिया—'माता! त्रेतामें शुभ्रवर्ण षड्भुज मयूरेश्वरके रूपमें मैंने ही आपके पुत्रके रूपमें अवतरित होकर सिन्धु-दैत्यका वध किया था और द्वापरमें पुनः आपको पुत्र-सुख प्रदान करनेका जो वचन दिया था, उसका पालन करनेके लिये मैं आपके पुत्र-रूपमें प्रकट हुआ हूँ। मैंने ही ब्राह्मण-वेषमें आकर सिन्दूरके हाथसे आपकी रक्षा की थी। माता! अब मैं सिन्दूरका वधकर त्रिभुवनको सुख-शान्ति दूँगा और भक्तोंकी कामना-पूर्ति करूँगा। मेरा नाम 'गजानन' प्रसिद्ध होगा।'

देवदेव विनायकको पहचानकर गौरीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर वे उनका स्तवन करने लगीं।

माताकी प्रार्थना सुनते ही परम प्रभु अत्यन्त अद्भुत चतुर्भुज शिशु हो गये। उनकी चार भुजाएँ थीं। नासिकाके स्थानपर शुण्डदण्ड सुशोभित था। उनके मस्तकपर चन्द्रमा

और हृदयपर चिन्तामणि दीप्तिमान् थे। वे गणपति दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्यगन्धयुक्त नवजात शिशुकी तरह माताके सम्मुख उपस्थित थे। कुछ क्षणके पश्चात् शिशुरूपधारी परम प्रभु गजाननने शिवसे कहा—'सदाचारपरायण परम पवित्र धर्मात्मा राजा वरेण्य मेरा भक्त है। उसकी सुन्दरी साध्वी पत्नीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिका पतिव्रता, पतिप्राणा और पतिवाक्यपरायणा है। उन दोनोंने मुझे संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षोंतक कठोर तप किया था। मैंने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया था—'निश्चय ही मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' पुष्पिकाने अभी-अभी प्रसव किया है, किंतु उसके पुत्रको एक राक्षसी उठा ले गयी है। इस समय वह मूर्च्छित है, पुत्रके बिना वह प्राण त्याग देगी। अतएव आप मुझे तुरंत उस प्रसूताके पास पहुँचा दीजिये।'

गजाननकी वाणी सुनकर भगवान् शंकरने नन्दीको बुलाकर कहा—'पराक्रमी नन्दी! माहिष्मी नामक श्रेष्ठ नगरीमें वरेण्य नामक नरेशकी पत्नी पुष्पिकाने अभी कुछ ही देर पूर्व प्रसव किया है। वह कष्टसे मूर्च्छित हो गयी है और उसके शिशुको एक राक्षसी उठा ले गयी है। तुम इस पार्वती-पुत्रको तुरंत उसके समीप रखकर लौट आओ। पुष्पिकाकी मूर्च्छा दूर होनेके पूर्व ही यह शिशु उसके समीप पहुँच जाय, अन्यथा प्रसूताके प्राण-संकटकी सम्भावना है।'

नन्दी अपने स्वामीके चरणोंमें प्रणामकर गजाननको लेकर वायुवेगसे उड़ चले और मूर्च्छिता पुष्पिकाके सम्मुख चुपचाप गजमुखको रखकर तुरंत लौट आये।

रात्रि व्यतीत हुई। अरुणोदय हुआ। पुष्पिकाने ध्यानपूर्वक अपने शिशुको देखा—रक्तवर्ण, चतुर्बाहु, गजवक्त्र, कस्तूरी-तिलक, चन्दन-चर्चित अङ्गपर पीतवर्ण-परिधान और मोतियोंकी माला तथा विविध रत्नाभरण शोभित हो रहे थे।

इस प्रकारका अद्भुत बालक देखकर पुष्पिका चकित और दुःखी ही नहीं हुई, भयसे काँपती हुई वह प्रसूति-गृहसे बाहर भागी। वह शोकसे व्याकुल होकर रोने लगी। रानीका रुदन सुनकर परिचारिकाएँ प्रसूति-गृहमें गयीं। अलौकिक बालकको देखकर वे भी भयाक्रान्त हो काँपती हुई बाहर आ गयीं। दूसरे जिन-जिन स्त्री-पुरुषोंने उन शिशु-रूपधारी परम पुरुषका दर्शन किया, वे सभी भयभीत हुए। कुछ तो मूर्च्छित हो गये।

प्रत्यक्षदर्शियोंने राजासे कहा—ऐसे विचित्र बालकको घरमें नहीं रखना चाहिये।

सबके मुँहसे भयभीत करनेवाले ऐसे वचन सुनकर नरेश वरेण्यने अपने दूतको बुलाकर आज्ञा दी—'इस शिशुको निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

राजाके दूतने नवजात शिशुको उठाया और शीघ्रतासे निर्जन वनमें एक सरोवरके तटपर धीरेसे रख दिया और द्रुत गतिसे लौट चला।

गहन काननमें सरोवरके तटपर पड़े नवजात शिशुपर अचानक महर्षि पराशरकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने शिशुके समीप पहुँचकर देखा—'दिव्य वस्त्रालंकारविभूषित, सूर्यतुल्य तेजस्वी, चतुर्भुज, गजमुख अलौकिक शिशु।'

महामुनिने शिशुको बार-बार ध्यानपूर्वक देखा। उसके नन्हे-नन्हे अरुण चरण-कमलोंपर दृष्टि डाली। उनपर ध्वज, अंकुश और कमलकी रेखाएँ दिखायी दीं।

महर्षिको रोमाञ्च हो आया। हर्षातिरेकसे हृदय गद्गद, कण्ठ अवरुद्ध और नेत्र सजल हो गये। आश्चर्यचकित मुनिके मुँहसे निकल गया—'अरे! ये तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। इन करुणामयने देवता और ऋषियोंका कष्ट निवारण करने और मेरा जीवन—जन्म सफल बनानेके लिये अवतार ग्रहण किया है।'

महर्षिने शिशुके चरणोंमें प्रणामकर उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अङ्कमें ले लिया और प्रसन्न-मन द्रुत गतिसे आश्रमकी ओर चले।

गजाननके चरण-स्पर्शसे ही महर्षि पराशरका सुविस्तृत आश्रम अतिशय मनोहर हो गया। वहाँके सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो उठे। वहाँकी गायें कामधेनु-तुल्य हो गयीं। सुखद पवन बहने लगा। आश्रम दिव्यातिदिव्य हो गया।

'मेरे शिशुका पालन दिव्यदृष्टि-सम्पन्न महर्षि पराशर कर रहे हैं।' इस संवादसे नरेश वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने यहाँ पुत्रोत्सव मनाया। वाद्य बजने लगे। घर-घर मिष्टान्न-वितरण हुआ। नरेशने अत्यन्त

ब्राह्मणोंको बहुमूल्य वस्त्र, स्वर्ण और रत्नालङ्करण देकर संतुष्ट किया।

गजानन नौ वर्षके हुए। इस बीच उन्होंने अपनी भुवनमोहिनी बाल-क्रीडाओंसे महर्षि पराशर, माता वत्सला और आश्रमोंके ऋषियों, ऋषि-पत्नियों तथा मुनि-पुत्रोंको अतिशय सुख प्रदान किया। साथ ही कुशाग्रबुद्धि विचक्षण गजानन समस्त वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों एवं शस्त्रास्त्रसंचालन आदिमें पारंगत विद्वान् हो गये। उनकी प्रखर प्रतिभाका अनुभव करके महर्षि पराशर चकित हो जाते, ऋषिगण विस्मित रहते। गजमुख सबके अन्यतम प्रीतिभाजन बन गये थे।

इधर सर्वथा निरंकुश, परम उद्दण्ड, शक्तिशाली सिन्दूरका अत्याचार पराकाष्ठापर पहुँच गया था। उसके भयसे देवपूजन और यज्ञ-यागादि सब बंद हो गये थे तथा देवता, ऋषि और ब्राह्मण त्रस्त थे, भीत थे। कुछ गिरि-गुफाओं और निविड वनोंमें छिपकर अपने दिन व्यतीत करते थे। अधिकांश सत्त्वगुणसम्पन्न धर्मपरायण देव-विप्रादि सिन्दूरके कारागारमें यातना सह रहे थे।

उस उद्धत असुरकी इस अनीतिका संवाद जब पराशर-आश्रममें पहुँचता तो गजानन अधीर और अशान्त हो जाते और अब तो त्रैलोक्यकी दारुण स्थिति उनके लिये असह्य हो गयी। क्षुब्ध गजाननने अपने पिता पराशरके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुनिवर! सिन्दूरासुरके दुराचारसे धरती त्रस्त हो गयी है, अतः आप और माँ दोनों मुझे आशिष् दें, जिससे मैं अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना कर सकूँ।'

पुलकित महर्षि और महर्षि-पत्नीके नेत्र बरस पड़े। वे लोग गजाननके सिरपर हाथ फेरते हुए गद्गद-कण्ठ हो बोल न सके, उनके मुँहसे केवल अधूरा वाक्य निकल सका—'माता-पिता तो अपने प्राण-प्रिय पुत्रकी सदा ही विजय ।'

फिर वत्सलानन्दन अपने चारों हाथोंमें अंकुश, परशु, पाश और कमल धारणकर मूषकपर आरूढ हुए। वीर बालक गजाननने गर्जना की। उनके गर्जनसे त्रिभुवन काँपने लगा। गजानन वायुवेगसे चल पड़े। उनके परम तेजस्वी स्वरूपसे प्रलयाग्नि-तुल्य ज्वाला निकल रही थी।

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर इसकी सूचना दी। सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो गये, किंतु दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। वह वेगसे चला और गजमुखके सम्मुख पहुँच गया तथा अनेक प्रकारके अनर्गल प्रलापसे गजाननको डराने-धमकाने लगा।

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकतासे कहा—'मैं दुष्टोंका सर्वनाश कर धरणीका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला हूँ। यदि तू मेरी शरण आकर अपने पातकोंके लिये क्षमा-प्रार्थनापूर्वक सद्धर्मपरायण नरेशकी भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा कर ले, तब तो तुम्हें छोड़ दूँगा, अन्यथा विश्वास कर, तेरा अन्तकाल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनने विराट् रूप धारण कर लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा। दोनों पैर पातालमें थे। कानोंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्वत्र व्याप्त थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन दिव्य वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उन अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योंके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप देखकर परम प्रचण्ड वर-प्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया, पर उसने धैर्य नहीं छोड़ा। उसने भयानक गर्जना की और फिर वह प्रज्वलित दीपपर शलभकी तरह अपना खड्ग लेकर प्रहार करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'मूढ! तू मेरे अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जानता, अब मैं तुझे मुक्ति प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महादैत्य सिन्दूरका कण्ठ पकड़ लिया। इसके बाद वे उसे अपने वज्र-सदृश दोनों हाथोंसे दबाने लगे। असुरके नेत्र बाहर निकल आये और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया।

क्रुद्ध गजाननने उसके लाल रक्तको अपने दिव्य अङ्गोंपर पोत लिया। इस कारण जगत्‌में उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुका 'सिन्दूरवदन' और 'सिन्दूरप्रिय' नाम प्रसिद्ध हो गया।

'जय गजानन!' उच्च घोष करते हुए आनन्दमग्न देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके वाद्य बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

ब्रह्मा, इन्द्रादि देव और वसिष्ठादि मुनि 'गजाननकी जय' बोलते हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दु ख दूर करनवाले परम प्रभु गजमुखके सम्मुख एकत्र हुए। सिन्दूर-वधसे प्रसन्न नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित, पाश, अकुश, परशु और मालाधारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी भक्तिपूर्वक षोडशोपचार पूजा की।

'मर पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरको समाप्त किया है।' इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य भी वहाँ आ पहुँचे।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव दखकर राजा वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हाने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पूजा की और कहा—'जिस अनन्तकाटि ब्रह्माण्ड-नायकको ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अज्ञानी मनुष्य उसे कैसे जान पाता। मैं अपनी मूढताको क्या कहूँ ? घर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर खदेड दिया। आपकी मायासे मोहित होकर मैंने वडा अनर्थ किया है। आप मुझे क्षमा कर।'

पश्चात्ताप करते हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वरेण्यनन्दन गजाननने अपनी चारा भुजाओसे उनका आलिङ्गन किया और फिर कहा—'नरेश! पूर्वकल्पमे जब तुमने अपनी पत्नीके साथ सूखे पत्तापर जीवन-निर्वाह करते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तप किया था, तब मैंने प्रसन्न होकर तुम्हे दशन दिया। तुमने मुझसे मोक्ष न माँगकर मुझे पुत्र-रूपम प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। अतएव तुम्हारे पुत्र-रूपम सिन्दूरका वधकर भू-भार-हरण करने तथा साधुजनाके पालनके लिये मैंने साकार विग्रह धारण किया, अन्यथा मैं तो निराकार-रूपसे अणु-परमाणुमे व्याप्त हूँ। मैंने अवतार धारणकर सारा कार्य पूर्ण कर लिया। अब स्वधामप्रयाण करूँगा। तुम चिन्ता मत करना।'

'प्रभो! जगत् शाश्वत दु खालय है।' प्रभुके स्वधामगमनकी बात सुनते ही राजा वरेण्यने अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोडकर कहा—'आप कृपापूर्वक मुझे इससे मुक्त होनेका मार्ग बता दीजिये।'

कृपापरवश प्रभु गजानन वहीं आसनपर बैठ गये। अपने सम्मुख बद्धाञ्जलि-आसीन राजा वरेण्यके मस्तकपर उन्हाने अपना त्रितापहारी वरद हस्त रख दिया। तदनन्तर उन्हाने नरेश वरेण्यको सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् भगवान् श्रीगजानन अन्तर्धान हो गये।

परम प्रभुकी सनिधि, उनके कर-स्पर्श एव अमृतमय उपदेशसे नरेश वरेण्य पूर्ण विरक्त हो गये। उन्हाने राज्यका दायित्व अमात्याको सौंपा और स्वय तपश्चरणार्थ वनमें चले गये। वहाँ उन्होने अपना चित्त विषयासे हटाकर परब्रह्म श्रीगजाननमे केन्द्रित किया तथा अपना जीवन-जन्म सफल कर लिया।

श्रीगजानन-प्रदत्त वह अमृतोपदेश '*गणेश-गीता*' के नामसे प्रख्यात हुआ।

~~~ ○ ~~~

श्रीधूम्रकेतुका अवतार

श्रीगणशका कलियुगीय भावी अवतार 'धूम्रकेतु' के नामसे विख्यात होगा। जब कलियुगम सर्वत्र धर्मका लोप हो जायगा, अत्याचार-अनाचारका साम्राज्य व्याप्त हो जायगा, आसुरी-तामसी वृत्तियोंकी प्रबलता छा जायगी, तब कलिके अन्तमें सर्वदु खापह परम प्रभु गजानन धराधामपर अवतरित होगे। उनका 'शूर्पकर्ण' और 'धूम्रवर्ण' नाम भी प्रसिद्ध होगा। क्रोधके कारण उन परम तेजस्वी प्रभुके शरीरसे ज्वाला निकलती रहेगी। वे नाले अश्वपर आरूढ होग। उन प्रभुके हाथमे शत्रु-सहारक तीक्ष्णतम खड्ग हागा। वे अपने इच्छानुसार नाना प्रकारके सैनिक एव बहुमूल्य अमोघ शस्त्रास्त्राका निर्माण कर लगे।

फिर पातकध्वसी परम प्रभु शूर्पकर्ण अपने तेज एव सेनाके द्वारा सहज ही म्लेच्छाका सर्वनाश कर देगे। म्लेच्छ या म्लेच्छ-जीवन व्यतीत करनेवाले निश्चय ही परम प्रभु धूम्रकेतुके द्वारा मारे जायँगे। उन धर्म-सस्थापक प्रभुके नेत्रोसे अग्नि-वर्षा होती रहेगी।

वे सर्वाधार, सर्वात्मा प्रभु धूम्रकेतु उस समय गिरिकन्दराओ एव अरण्यामे छिपकर वनफलापर जीवन-निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणोको बुलाकर उन्हे सम्मानित करेग और करुणामय धर्ममूर्ति शूर्पकर्ण उन सत्पुरुषाको सद्धर्म एव सत्कर्मके पालनके लिये प्रेरणा एव प्रोत्साहन प्रदान करेगे। फिर सबके द्वारा धर्माचरण सम्पादित होगा और धर्ममय सत्ययुगका शुभारम्भ हो जायगा। (गणेशपुराण)

~~~ ○ ~~~

श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार

मुद्गलपुराणम कहा गया है कि विघ्नविनाशन गणेशके अनन्त अवतार हैं। उनका वर्णन सौ वर्षोंम भी सम्भव नहीं है। उनम कुछ मुख्य हैं। उन मुख्य अवताराम भी ब्रह्मधारक आठ मुख्य अवतार हैं। उनके नाम इस प्रकार ह—

(१) '**वक्रतुण्डावतार**' देह-ब्रह्मका धारण करनेवाला है, वह मत्सरासुरका सहारक तथा सिहवाहनपर चलनवाला माना गया है। (२) '**एकदन्तावतार**' दहि-ब्रह्मका धारक है, वह मदासुरका वध करनेवाला ह, उसका वाहन मूषक वताया गया हे। (३) '**महोदर**'-नामसे विख्यात अवतार ज्ञान-ब्रह्मका प्रकाशक है। उसे मोहासुरका विनाशक और मूषक-वाहन बताया गया है। (४) '**गजानन**' नामक अवतार साख्यब्रह्म-धारक हे। उसको साख्ययागियाके लिये सिद्धिदायक जानना चाहिये। उसे लोभासुरका सहारक ओर मूपकवाहन कहा गया है। (५) '**लम्बादर**' नामक अवतार क्रोधासुरका उन्मूलन करनेवाला है, वह सत्स्वरूप जा शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता हे। वह भी मूपकवाहन ही है। (६) '**विकट**'-नामसे प्रसिद्ध अवतार कामासुरका सहारक है। वह मयूर-वाहन एव सारब्रह्मका धारक माना गया है। (७) '**विघ्नराज**' नामक जा अवतार हे, उसक वाहन शेपनाग बताये जाते हैं, वह विष्णुब्रह्मका वाचक (धारक) तथा ममतासुरका विनाशक है। (८) '**धूम्रवर्ण**' नामक अवतार अभिमानासुरका नाश करनवाला है, वह शिवब्रह्म-स्वरूप है। उस भी मूपक-वाहन ही कहा जाता है।

इस प्रकार मङ्गलमूर्ति आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर श्रीगणपतिके अवताराकी अत्यन्त सक्षिप्त मङ्गलमयी लीलाकथा पूरी हुई। इसका पठन, श्रवण और मनन-चिन्तन जन-जनके लिये परम कल्याणकारक है। इन अवताराका पौराणिक एव एतिहासिक महत्त्व तो है ही, उससे भी बढकर आध्यात्मिक महत्त्व है। सर्वव्यापी परमात्मा श्रीगणपति सबके हृदयम नित्य विराजमान हैं। सग और प्राक्तन सस्कारवश प्रत्येक मनुष्यके हृदयम समय-समयपर मात्सर्य, मद, माह, लाभ, काम, ममता एव अहता—इन आन्तरिक दापाका उद्‌बोधन हाता ही ह। आसुरी सम्पत्तिक प्रतीक होनेसे इनका 'असुर' कहा गया है। इन आसुरी-वृत्तियासे परित्राण पानेका अमाघ उपाय है—'भगवान् गणपतिका चरणाश्रय।' गीताम भी भगवान्‌ने यही कहा है—'**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते॥**' अत इन आसुरी-वृत्तियाके दमन तथा दैवी-सम्पदाआक सवधनके लिये परम प्रभु गणपतिका मङ्गलमय स्मरण करना सबके लिये सर्वथा श्रेयस्कर है और यही इस अवतार-कथाका सारभूत सदेश है।

~~~ ० ~~~

विविध पुराणोमें उपलब्ध भगवान् गणेशके प्राकट्यकी कथाएँ

(प० श्रीघनश्यामजी अग्निहोत्री)

आदिपूज्य गणाध्यक्षमुमापुत्र विनायकम्।
मङ्गल परम रूप श्रीगणश नमाम्यहम्॥

क्षीरसागरमे शेपशय्यापर लेटे हुए श्रीनारायण और उनके चरण पखारती देवी लक्ष्मीको छोडकर सभी देवता प्रत्येक कल्पकी समाप्तिपर नारायणम समायोजित हो जाते हैं और नये कल्पक सधिकालम पुन प्रकट हाकर सृष्टिकी रचना पालन तथा सहारमं अपन-अपने धर्मका निर्वहन करते हैं। इसी सिद्धान्तके अनुसार श्रीगणशजी भी प्रत्येक कल्पम प्रकट होकर लीला करते हैं, यह रहस्य शिवपुराणम स्वय ब्रह्माजीने नारदजीको बताया है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमे भी श्रीकृष्णने वृद्ध ब्राह्मणके रूपम माता पार्वतीके समक्ष उपस्थित होकर उनकी स्तुति की और उन्ह बताया कि—

गणेशरूप श्रीकृष्ण कल्प कल्पे तवात्मज ।
(ब्रह्मवैवर्तपुराण गणपतिखण्ड)

हे देवी! श्रीकृष्ण स्वय प्रत्येक कल्पमे आपके पुत्ररूपम अवतीर्ण होते आये हैं।

वेदा और पुराणाके अनुसार श्रीगणशजी आदिदेवता है। उनकी आदिकालसे उपासना एव महिमाके कई प्रमाण वदो, पुराणा तथा अन्य ग्रन्थामे उपलब्ध हैं, यथा—

गणाना त्वा गणपतिः हवामहे प्रियाणा त्वा प्रियपतिः
~~~

हवामहे निधीना त्वा निधिपतिः हवामहे वसा मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्। (शुक्लयजुर्वेद २३। १९)

अर्थात् हे गणोके बीच रहनेवाले सर्वश्रेष्ठ गणपति! हम आपका आवाहन करते हैं। हे प्रियोके बीच रहनेवाले प्रियपति! हम आपका आवाहन करत हैं। हे निधियोके बीच सर्वश्रेष्ठ निधिपति! हम आपका आवाहन करते हैं। हे जगत्‌को बसानेवाले! आप हमारे हो। आप समस्त जगत्‌को गर्भमे धारण करते हैं, पैदा (प्रकट) करते हैं। आपकी इस क्षमताको हम भली प्रकार जानें।

इसी प्रकारका उल्लेख ऋग्वेद (२। २३। १)-मे भी मिलता है, जिसम श्रीगणेशका आवाहन किया गया है।

गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् (६)-मे वर्णित है कि श्रीगणेश सर्वदवमय हैं। यथा—

'त्व ब्रह्मा त्व विष्णुस्त्व रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्व वायुस्त्व सूर्यस्त्व चन्द्रस्त्व ब्रह्म भूर्भुव स्वरोम्।'

अर्थात् तुम ब्रह्मा हो, तुम विष्णु हो, तुम रुद्र हो, तुम इन्द्र हो, तुम अग्नि हो, तुम वायु हो, तुम सूर्य हो, तुम चन्द्रमा हो, सगुण ब्रह्म हो, तुम निर्गुण त्रिपाद भू, भुव, स्व एव प्रणव हो।

मङ्गलदाता, उमा-महेशसुत, कुमार कार्तिकेयके भ्राता, देवी सिद्धि एव बुद्धिके स्वामी, क्षेम और लाभके पिता, बुद्धिविधाता श्रीगणेशकी प्राकट्य कथाएँ तथा लीलाएँ भी अद्भुत एव अलौकिक हैं। विभिन्न कल्पोमे उनका प्राकट्य एक विलक्षणता लिये हुए हे। विभिन्नता लिये हुए इन कथाओमे शका नहीं करनी चाहिये वरन् *'हरि अनत हरिकथा अनता'* का भाव रखकर उसका लाभ लेना चाहिये। सदा यह भावना रहे कि श्रीगणेश, श्रीकृष्ण, श्रीमहादेव आदि एक ही तत्त्व हैं। यहाँ विभिन्न पुराणोमें उपलब्ध भगवान् श्रीगणेशकी प्राकट्यकथाएँ निम्नानुसार सक्षेपमे उल्लिखित की जा रही हैं—

१-पद्मपुराणम वर्णित प्राकट्यकथा—इस पुराणके सृष्टिखण्डमे श्रीगणेशको देवी पार्वती एव त्रैलोक्यतारिणी भगवती गङ्गाका पुत्र बताया गया है। शिव-पार्वतीविवाहक उपरान्त एक दिन देवी पार्वती गङ्गाजीके निकट तटपर बैठकर स्नानपूर्व अपनी सखियासे सुगन्धित ओषधियोंसे निर्मित उबटन लगवा रही थीं। बैठे-बैठे देवीने अपने शरीरसे पृथ्वीपर गिरे अनुलपको एकत्रकर एक पुरुष-आकृति बनाकर उसे हस्तिमुख प्रदान कर दिया। इस विचित्र गजमुख आकृतिको दवी पार्वतीने गङ्गाम डाल दिया। पुण्यसलिला गङ्गाने उसे सजीव (प्राणवान्) बनाकर एक स्वस्थ सुन्दर बालकका रूप दे दिया। यह देख स्नेहवश माता पार्वतीने उसे जलसे निकाल 'पुत्र' सम्बाधित किया एव गोदमे लेकर वे उसे पुत्रवत् दुलार करने लगीं। इसी समय भगवती गङ्गा, जो पार्वतीजीकी सहेली हैं, प्रकट हुई और व भी सुन्दर बालकको 'पुत्र' कहकर दुलारने लगीं। इस विलक्षण दृश्यको निहारने आकाशमे दवसमूह एकत्र हो गया। स्वय ब्रह्माजीने बालकको आशिष् प्रदान कर गणाका अधिपति घोषित कर दिया। देवगण भी वहाँ उपस्थित हो देवी पार्वती ओर सुरसरिके पुत्रकी वन्दना करन लगे ओर 'श्रीगणेश' तथा 'गाङ्गेय' नामसे बालकको विभूषित कर आशिष् प्रदान कर वे देवलोकको प्रस्थान कर गये। इस प्रकार पद्मपुराणम वर्णित हे कि स्वय माता पार्वतीने गणेशजीको गजमुख बनाया एव पुण्यसलिला गङ्गाने उन्ह सजीव किया।

२-शिवपुराणम वर्णित प्राकट्यकथा—शिवपुराणमे वर्णित कथाका सार इस प्रकार है—भगवती पार्वतीने एक बार शिवजीके गण नन्दीके द्वारा उनकी आज्ञा-पालनमे त्रुटिसे खिन्न होकर अपनी प्रिय सहेलिया जया और विजयाके सुझावपर स्वयके मङ्गलमय पावनतम शरीरके उबटनसे एक चेतन पुरुष निर्मित कर उसे सम्पूर्ण शुभ गुणोसे सयुक्त कर दिया। यथा—

विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसम्भवम्।
पुरुष निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसयुतम्॥
सर्वावयवनिर्दोष सर्वावयवसुन्दरम्।
विशाल सर्वशोभाढ्य महाबलपराक्रमम्॥

(शिवपुराण रुद्रसहिता कुमारखण्ड १३। २०-२१)

अर्थात् वह बालक शुभ लक्षणासे सयुक्त था। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग दोषरहित एव सुन्दर थे। उसका शरीर विशाल, परम शोभायमान एव महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था।

ऐसी सुन्दर रचना कर देवीने बालकको सुन्दर वस्त्रा एव अलकारासे सुशोभित कर आशीर्वाद दिया एव कहा—तुम मरे परम प्रिय पुत्र हो, तुम्हे केवल मरे ही आदेशका पालन करना है अन्य किसीका नहीं। तुम मर द्वारपाल होकर मेरी आज्ञाके बिना किसीको भीतर महलमे प्रवश मत करने दना। प्यार-दुलारकर माता पुत्रको एक छडी देकर सखियाके साथ महलम स्नानार्थ चली गयीं। उसी समय त्रिलोकीनाथ त्रिकालदर्शी शिव वहाँ उपस्थित हुए ओर भवनम जाने लगे। बालकने उन्हे विनयपूर्वक रोका, पर महारुद्र भी हठ कर गये। परिणामत शक्तिपुत्रके साथ भयकर युद्ध कर शिवने पिनाक नामक धनुषसे भी विजय नहीं पानेपर अपने तीक्ष्णतम शस्त्र शूलके प्रहारसे नन्हे बालकका शीश भग कर दिया। यह

समाचार सुन भगवता अत्यन्त कुपित हो गयीं। सभी लोकाम हाहाकार मच गया। समस्त देवताआद्वारा परमेश्वरी शिवप्रिया गिरिजाकी स्तुति की जाने लगी। भगवतीने केवल पुत्रके जीवित होनेपर विनाश रोकनेकी बात कही।

पशुपतिनाथ शिवकी आज्ञासे एक दाँतवाले गजबालकका शीश लाकर मृत बालकके शरीरसे जोडा गया एव उसे प्राणवान् बनाया गया। श्रीनारायण एव रुद्रसहित सभी देवताओने गजमुख बालकका पूजन-अर्चन कर उसे आशिष् प्रदान किया। जगदीश्वरी प्रसन्न हो बालकको गोदमे लेकर दुलार करने लगीं। श्रीनारायणने बालकको गणेश, गजानन, गणपति, एकदन्त-जैसे नामासे सम्बोधितकर अग्रपूजाका आशीर्वाद दिया। देवाधिदेव महादेवने बालकको पुत्रवत् स्वीकारकर अपने गणाका अध्यक्ष नियुक्त कर कहा—

चतुर्थ्यां त्व समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर।
असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्यादयने शुभे॥
प्रथमे च तथा यामे गिरिजाया सुचेतस ।
आविर्बभूव ते रूप यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥

(शिवपुराण रुद्रसहिता कुमारखण्ड १८। ३५-३६)

हे गणेश्वर! तू भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी शुभ तिथिको शुभ चन्द्रादय होनेपर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ उस समय रात्रिका प्रथम पहर बीत रहा था, इसलिये उसी

तिथिमे तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये।

यह व्रत सर्वसिद्धिप्रद होगा। सभी वर्णोंद्वारा, विशेषकर स्त्रियाको, यह चतुर्थीव्रत अवश्य करना चाहिये। इससे सभी वाञ्छित अभिलाषाएँ पूर्ण हागी। यह आशिष् रुद्रने श्रीगणेशको देकर पुत्रवत् दुलार किया। यह शिवपुराणके कुमारखण्डमे वर्णित कथाका साराशमात्र है।

३-ब्रह्मवैवर्तपुराणमे वर्णित प्राकट्यकथा— इस पुराणके गणपतिखण्डके तरह अध्यायोमे श्रीगणेशकी मङ्गलमयी प्राकट्यकथा वर्णित है। सक्षेपमे कथासार निर्दिष्ट है—

एक समय देवी पार्वतीने सदाशिवसे एक उत्तम पुत्र पानकी अभिलाषा व्यक्त की। देवाधिदेव महादेवने देवीको पुण्यकव्रतका अनुष्ठान करनेका परामर्श दिया एव कहा कि इस पुण्यकव्रतके प्रभावसे तुम्ह स्वय भगवान् श्रीकृष्ण पुत्ररूपमे प्राप्त हागे। देवी पार्वतीको व्रतका विधि-विधान बताकर गणोको सम्पूर्ण व्यवस्थाका भार सोंप सदाशिवने समस्त देवताओ, ऋषि-मुनिया आदिको कैलासपर आमन्त्रित कर दिया। देवी पार्वतीने इस परमोत्तम व्रतके सम्पूर्ण कर्तव्याको वर्षपर्यन्त प्रतिदिन विधि-विधानसे पूर्णकर व्रतका उद्यापन किया। इसके फलस्वरूप गोलोकनाथ साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण उन्हे सर्वाङ्ग-मनोहर शिशुरूपमे प्राप्त हुए। कैलासपर इस अवसरपर विलक्षण उत्सव मनाया गया, जिसमे श्रीनारायण, श्रीब्रह्मा आदि देवता सपरिवार सम्मिलित हुए एव उन्हाने शिशुको अनक उपहार तथा शुभ आशिष् प्रदान किये। इस अवसरपर शनिदेव भी वहाँ उपस्थित थे, पर उन्हाने न तो शिशुको निहारा, न आशिष् दिया। भगवती पार्वतीके पूछनपर उन्हाने पत्नीद्वारा शाप दिये जानेका वृत्तान्त बताकर कहा—देवि! मेरे देखनेमात्रसे इस सुन्दर शिशुका अनिष्ट हा सकता है। माता पार्वतीने स्नेहपूर्वक शनिदेवको आश्वस्त करते हुए कहा कि कर्मभागफल तो ईश्वरेच्छाके अधीन हाते हैं अत तुम नि सकोच मेरे पुत्रको देखो एव आशिष् प्रदान करो। परिणामत शनिकी दृष्टिमात्र पडते ही शिशुका मस्तक धडस पृथक् होकर आकाशमे विलीन हो गया और गोलोकमे जाकर अपने अभीष्ट परात्पर श्रीकृष्णमे प्रविष्ट हो गया। यह देख माता पार्वती घोर विलाप करने लगीं। सम्पूर्ण कैलासमे हाहाकार मच गया। तभी वहाँ उपस्थित श्रीविष्णु गरुडपर सवार हो पुष्पभद्रा नदीके तटसे उत्तरकी ओर सिर किये एक गजका मस्तक ले आये और पार्वतीसुतके धडपर सुन्दरतासे जोडकर उसे प्राणवान् कर दिया। तदुपरान्त अचेत माता पार्वतीको सचेतकर शिशु उनकी गोदमे द दिया एव कहा—हे देवि। महर्षि कश्यपके शापसे शिवपुत्रका शाश-भग होना एक प्रारब्ध था, इसमे शनिका कोई दोष नहीं है। कैलासमे पुन उल्लासका वातावरण बन गया। श्रीविष्णुने बालकके विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब गजानन आदि नाम रखे।

वहाँ उपस्थित त्रिदेवासहित सभी देवी-देवताओ, ऋषि-मुनिया आदिने गजाननका निम्न ३२ अक्षराके मन्त्रसे पूजन किया—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नम ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण गणपतिखण्ड १३।३२)

यह मन्त्र सम्पूर्ण मनाकामनाओका पूर्णकर अन्तमे मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

इसके उपरान्त श्रीविष्णुजीने 'गणेशस्तोत्रम्' द्वारा श्रीगजानन गणेशकी सुन्दर स्तुति की, जिसका कुछ अश यहाँ प्रस्तुत है—

प्रवर सर्वदेवाना सिद्धाना योगिना गुरुम्।
सर्वस्वरूप सर्वेश ज्ञानराशिस्वरूपिणम्॥
अव्यक्तमक्षर नित्य सत्यमात्मस्वरूपिणम्।
वायुतुल्यातिनिर्लिप्त चाक्षत सर्वसाक्षिणम्॥
ससारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे।
कर्णधारस्वरूप च भक्तानुग्रहकारकम्॥
वर वरण्य वरद वरदानामपीश्वरम्।
सिद्ध सिद्धिस्वरूप च सिद्धिद सिद्धिसाधनम्॥

(ब्र०वै०पु० गण० १३। ४२—४५)

अर्थात् आप सभी दवाम श्रेष्ठ, सिद्धा और यागियाक गुरु, सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, ज्ञानराशिस्वरूप अव्यक्त, अविनाशी नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप वायुके समान अत्यन्त निर्लेप क्षतरहित ओर सबके साक्षी हैं। आप ससारसागरसे पार होनेके लिये परम दुर्लभ मायारूपी नौकाके कर्णधारस्वरूप और भक्तापर अनुग्रह करनेवाले ह। आप श्रेष्ठ, वरणीय, वरदाता एव वरदानियाके भी ईश्वर हैं। आप सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिदाता एव सिद्धिके साधन हैं।

इसके उपरान्त श्रीविष्णुने देवी पावताको बताया कि आज आपके इस पुत्रकी हम त्रिदेवोने प्रथम पूजा की है। अत॰ आजसे यह प्रथम पूजाका अधिकारी रहेगा। आज भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी है, यह आपके पुत्रक नामसे गणशचतुर्थी कही जायगी। आज जो आपके पुत्रकी पूजा-अर्चना करेगा उसके समस्त सकट एव कष्टाका निवारण हो जायगा और उसे समस्त कार्यकलापाम सिद्धि प्राप्त होगी।

४-लिङ्गपुराणम वर्णित प्राकट्यकथा—आशुतोष भगवान् शिव एव श्रीब्रह्माजीसे वरदान प्राप्तकर राक्षस हमेशा देवलोकपर चढाई कर देवताआको वहाँसे खदेड दिया करते थे, इसीसे व्यथित देवगण देवर्षि नारदके साथ कैलासपर भगवान् शङ्करके पास गये और उनकी स्तुति कर गुणगान करने लगे। अन्तर्यामी कैलासपतिने प्रसन्न होकर देवताआसे इच्छित वर माँगनेको कहा। कातरभावसे देवताआने राक्षसासे रक्षाकी याचना की और कहा—प्रभो! असुराके कार्यम जैसे विघ्न पडे, वैसा आप करे। पार्वतीवल्लभने 'तथास्तु' कहकर देवताओको सम्मानसहित विदा किया। इसके बाद एक दिन परम तजस्वी, सुन्दर शरीरवाल गजमुख शिशुरूपम एक हाथम त्रिशूल तथा दूसरम पाश लकर भगवती पावतीक सम्मुख प्रकट हुए और उन्ह माता कहकर दण्डवत् प्रणाम किया। भगवती माता पार्वतीन आश्चर्यपूर्ण भावक साथ तजस्वी मनोहर बालकको गोदम उठा लिया। उसी समय वहाँ भगवान् शिवन उपस्थित होकर दवी पार्वतीस कहा—यह तुम्हारा पुत्र है, जो दवताआकी रक्षाहतु प्रकट हुआ है। भगवती प्रसन्न हो बालकका शृगार करन लगीं और पुत्रवत् दुलार करन लगीं। देवगण प्रसन्न हो आकाशम नृत्य-गानक साथ पुष्पवर्षा करन लग। तब कल्याणकारी शिवन अपने पुत्रसे कहा—

तवावतारो दैत्याना विनाशाय ममात्मज।
देवानामुपकारार्थं द्विजाना ब्रह्मवादिनाम्॥
× × ×
ब्राह्मणै क्षत्रियैर्वैश्यै शूद्रैश्चैव गजानन।
सम्पूज्य सर्वसिद्ध्यर्थं भक्ष्यभोज्यादिभि शुभै॥
त्वा गन्धपुष्पधूपाद्यैरनभ्यर्च्य जगत्त्रये।
देवैरपि तथान्यैश्च लब्धव्य नास्ति कुत्रचित्॥

(लिङ्गपुराण १०५। १५ २४-२५)

अर्थात् हे मेरे पुत्र! तुम्हारा यह अवतार राक्षसाका नाश करने तथा देवता ब्राह्मण और ब्रह्मवादियापर उपकार करनेके निमित्त हुआ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्राद्वारा भी तुम सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये भक्ष्य-भोज्य एव शुभ पदार्थोंसे पूजित होओगे। तीना लोकामे जो चन्दन, पुष्प, धूप-दीप आदिके द्वारा तुम्हारी पूजा किये बिना कुछ पानेकी चेष्टा करगे—चाहे व देवता हो अथवा अन्य, उन्ह कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।

इस प्रकार श्रीगणेश गजानन आदि नामोसे शृगारित कर शिवजीने अपने अवतार हस्तिमुखको प्रथमपूज्य होनेका आशिष् दिया।

यह लिङ्गपुराणमे वर्णित कथाका सार है।

५-स्कन्दपुराणम वर्णित प्राकट्यकथा—इस पुराणमें वर्णित प्राकट्यकी कथा शिवपुराणम वर्णित कथाके समान ही है। केवल शिवजीद्वारा शीशभग किये जानेके बादवाले

प्रसगम अन्तर है। शिवजीद्वारा द्वाररक्षक शिशुका मस्तक काटा ही गया था कि गणासे गजासुर नामक राक्षसके केलासपर आक्रमणकी सूचना प्राप्त होते ही वे उससे युद्ध करने जा पहुँचे। शिवने गजासुरको भी शीशविहीन कर दिया। इसी समय नदीने देवी पार्वतीद्वारा उनके पुत्रके

धडको लेकर विलाप करनेका समाचार शिवजीको बताया। उन्होन गजासुरका कटा शीश अपने हाथाम उठा लिया ओर उसे लाकर बालकके धडसे जोडकर उसे प्राणवान् कर दिया तथा बालकका पुत्रवत् स्वीकार कर 'गजानन' नामकरण किया एव देवी पार्वतीकी प्रसन्नताहेतु स्वय गजाननकी पूजा कर अग्रपूजाका वर प्रदान किया। इस पुराणमे भी श्रीगणेशका प्राकट्य भाद्रपदमास शुक्लपक्षकी चतुर्थीको होना बताया गया है। इस दिन की गयी इनकी आराधनाको वहुत महत्त्वपूर्ण बताया गया है।

उपर्युक्त पुराणोके अतिरिक्त निम्न पुराणाम भी श्रीगणशकी प्राकट्यकथाएँ वर्णित हैं, किंतु उनम उपर्युक्त कथाएँ ही वर्णित हैं अत उन्हं यहाँ केवल अति सक्षेपम उल्लिखित किया जा रहा है—

६-मत्स्यपुराण—यह प्राकट्यकथा पद्मपुराणम वर्णित कथाके समान ही है। देवी पावती आर गङ्गाजीके पुत्र गणेश एव गाङ्गेय नामसे विख्यात हो प्रथमपूज्य हागे, यही आशय दर्शाया गया है।

७—९-वायुपुराण, सौरपुराण एव ब्रह्मपुराण— इन पुराणोम लिङ्गपुराणमे वर्णित कथाके अनुसार श्रीगणशको साक्षात् शिव ही दर्शाया गया है।

१०-गणेशपुराण—इसम श्रीगणेशको श्रीविष्णुका अवतार बताया गया है, जैसा कि ब्रह्मवैवर्तपुराणम वर्णित है।

११-महाभारत—इसम उन्ह वेदव्यासद्वारा महाभारत महाकाव्य लिखनेहेतु स्मरण करनेमात्रसे प्रकट होना प्रतिपादित किया गया है।

इस प्रकार विभिन्न पुराणाम श्रीगणेशकी प्राकट्य-कथाआमे विविधता होते हुए भी प्रत्येक कल्पम उन्ह शकरसुवन, भवानीनन्दन ही बताया गया है। श्रीगणेश सभीकी आस्थाके केन्द्र हैं। विश्वभरमे उनके कई मन्दिर हैं, उनकी मूर्ति भी भव्य आकारकी अतिमनोहर होती है। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको श्रीगजाननके प्राकट्यके विषयम निम्न श्लोक प्रसिद्ध है—

सर्वदेवमय साक्षात् सर्वमङ्गलदायक ।
भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां तु प्रादुर्भूतो गणाधिप ॥
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसा चिन्तितान्यपि।
तन ख्याति गतो लाके नाम्ना सिद्धिविनायक ॥

इस दिनकी आराधनासे भगवान् श्रीगणश अपने भक्ता (आराधका)-का समस्त कार्य-कलापाम सिद्धि प्रदान करते हैं।

कलियुगम श्रीगणश ही एकमात्र एसे दवता हैं जा दूर्वा सिन्दूर चन्दन, पुष्प एव गुड-बताशेमात्रसे प्रसन्न होकर अपने भक्तका सभी कामनाएँ पूण कर दत हैं। उनकी आराधनामात्रस—

विद्यार्थी लभत विद्या धनार्थी लभते धनम्।
पुत्रार्थी लभत पुत्रान्माक्षार्थी लभत गतिम्॥

—विद्यार्थीका विद्या धनकी इच्छावालका धन, पुत्रको कामनावालका पुत्र एव माक्ष चाहनवालका परमगति प्राप्त होती है।

भगवान् श्रीविष्णुके चौबीस अवतार

[भगवान् अनन्त हैं। वे सर्वशक्तिमान् करुणामय परमात्मा अपना कोई प्रयोजन न रहनेपर भी साधु-परित्राण, धर्म-सरक्षण एव जीवोपर अनुग्रह करनेके लिये शरीर-धारण कर लिया करते हैं। उनके अवतरण और उनके अवतार-चरित्र भी अनन्त है। श्रीमद्भागवतमे सूतजीने कहा है—

अवतारा ह्यसख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा । यथाविदासिन कुल्या सरस स्यु सहस्रश ॥

(१।३।२६)

'जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे हजारो छोटे-छोटे जल-प्रवाह निकलकर चारो ओर धावित होते है, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोकी उत्पत्ति होती है।' पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, युगावतार, पूर्णावतार, अशावतार, कलावतार, आवेशावतार आदि उनके अवान्तर भेद हैं। कल्पभेदसे प्रभु-चरित्रोमे भी भिन्नता आती है। श्रीमद्भागवतादि पुराणग्रन्थोमे सर्वसमर्थ, कल्याण-विग्रह प्रभुके मुख्यतया चौबीस अवतारोका सविशेष वर्णन है, पर उनमे भी क्रम-भेद है। यहाँ हम दयाधामके उन अद्भुत एव मङ्गलकर चौबीस अवतारोका चरित्र स्थानाभावके कारण अत्यन्त सक्षेपमे दे रहे हैं तथापि इस सक्षिप्त कथाके भी मनोयोगपूर्वक पठन-पाठनसे पाठक लाभान्वित होंगे, हमारा ऐसा विश्वास है—सम्पादक]

(१) श्रीसनकादि

सृष्टिके प्रारम्भमें लोकपितामह ब्रह्माने विविध लोकोको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। स्रष्टाके उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर विश्वाधार प्रभुने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनियोके रूपमे अवतार ग्रहण किया। ये प्राकट्य-कालसे ही मोक्षमार्ग-परायण, ध्यानमे तल्लीन रहनेवाले, नित्यसिद्ध एव नित्य विरक्त थे। इन नित्य ब्रह्मचारियोसे ब्रह्माजीके सृष्टि-विस्तारकी आशा पूरी नहीं हो सकी।

देवताओके पूर्वज और लोकस्रष्टाके आद्य मानसपुत्र सनकादिके मनमे कहीं किंचित् आसक्ति नहीं थी। वे प्राय आकाशमार्गसे विचरण किया करते थे। एक बार वे श्रीभगवान्‌के श्रेष्ठ वैकुण्ठधाममे पहुँचे। वहाँ सभी शुद्ध-सत्त्वमय चतुर्भुजरूपमे रहते हैं। सनकादि भगवद्दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठकी दुर्लभ दिव्य दर्शनीय वस्तुओकी उपेक्षा करते हुए छठी ड्योढीके आगे बढ ही रहे थे कि भगवान्‌के पार्षद जय और विजयने उन पञ्चवर्षीय-से दीखनेवाले दिगम्बर तेजस्वी कुमारोकी हँसी उडाते हुए उन्हे आगे बढनेसे रोक दिया। भगवद्दर्शनमे व्यवधान उत्पन्न होनेके कारण सनकादिने उन्हे दैत्यकुलमे जन्म लेनेका शाप दे दिया।

अपने प्राणप्रिय एव अभिन्न सनकादि कुमारोके *अनादरका सवाद मिलते ही वैकुण्ठनाथ श्रीहरि* तत्काल वहाँ पहुँच गये। भगवान्‌की अद्भुत, अलौकिक एव दिव्य सौन्दर्यराशिके दर्शन कर सर्वथा विरक्त सनकादि कुमार चकित हो गये। अपलक नेत्रोसे प्रभुकी ओर देखने लगे। उनके हृदयमे आनन्द-सिन्धु उच्छलित हो रहा था। उन्होने *वनमालाधारी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी* स्तुति करते हुए कहा—

प्रादुश्चकर्थ यदिद पुरुहूत रूप
तेनेश निर्वृतिमवापुरल दृशो न ।
तस्मा इद भगवते नम इद्विधेम
योऽनात्मना दुरुदयो भगवान् प्रतीत ॥

(श्रीमद्भा० ३।१५।५०)

'विपुलकीर्ति प्रभो! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नेत्रोको बडा ही सुख मिला है विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषोके लिये इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हैं और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'ब्राह्मणाकी पवित्र चरण-रजको मैं अपने मुकुटपर धारण करता हूँ।' श्रीभगवान्ने अत्यन्त मधुर वाणीमे कहा। 'जय-विजयने मेरा अभिप्राय न समझकर आप लोगोका अपमान किया है। इस कारण आपने इन्हे दण्ड देकर सर्वथा उचित ही किया है।'

लोकोद्धारार्थ लोक-पर्यटन करनेवाले, सरलता एव करुणाकी मूर्ति सनकादि कुमाराने श्रीभगवान्की सारगर्भित मधुर वाणीको सुनकर उनसे अत्यन्त विनीत स्वरमे कहा—

य वानयोर्दममधीश भवान् विधत्ते
वृत्तिं नु वा तदनुमन्महि निर्व्यलीकम्।
अस्मासु वा य उचितो ध्रियता स दण्डो
येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्बिषेण॥
(श्रीमद्भा० ३।१६।२५)

'सर्वेश्वर! इन द्वारपालाको आप जैसा उचित समझे, वैसा दण्ड द अथवा पुरस्काररूपम इनकी वृत्ति बढा द—हम निष्कपटभावसे सब प्रकार आपसे सहमत हैं। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरोको शाप दिया है, इसके लिये हमे ही उचित दण्ड दे। हमे वह भी सहर्ष स्वीकार है।'

'यह मेरी प्रेरणासे ही हुआ है।' श्रीभगवान्ने उन्हे सतुष्ट किया। इसके अनन्तर सनकादिने सर्वाङ्गसुन्दर भगवान् विष्णु और उनके धामका दर्शन किया और प्रभुकी परिक्रमा कर उनका गुणगान करते हुए वे चारा कुमार लौट गये। जय-विजय इनके शापसे तीन जन्मातक क्रमश हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-दन्तवक्त्र हुए।

एक समय जब भगवान् सूर्यकी भाँति परमतेजस्वी सनकादि आकाशमार्गसे भगवान्के अशावतार महाराज पृथुके समीप पहुँचे, तब उन्हाने अपना अहोभाग्य समझते हुए उनकी सविधि पूजा की। उनका पवित्र चरणोदक माथेपर छिडका और उन्हे सुवर्णके सिहासनपर बैठाकर बद्धाञ्जलि हो विनयपूर्वक निवेदन किया—

अहो आचरित किं मे मङ्गल मङ्गलायना ।
यस्य वो दर्शन ह्यासीद्दुर्दर्शाना च योगिभि ॥
नैव लक्ष्यते लोका लोकान् पर्यटतोऽपि यान्।
यथा सर्वदृश सर्व आत्मान येऽस्य हेतव ॥
(श्रीमद्भा० ४।२२।७ ९)

'मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो! आपके दर्शन तो योगियोको भी दुर्लभ हैं, मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वत आपका दर्शन प्राप्त हुआ। इस दृश्य-प्रपञ्चके कारण महत्तत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं, तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं देख सकते, इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोम विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारी लोग आपको नहीं देख पाते।'

फिर अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—

तदह कृतविश्रम्भ सुहृदो वस्तपस्विनाम्।
सम्पृच्छे भव एतस्मिन् क्षेम केनाञ्जसा भवेत्॥
(श्रीमद्भा० ४।२२।१५)

'आप ससारानलसे सतप्त जीवाके परम सुहृद् हैं, इसलिये आपमे विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस ससारमे मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है?'

भगवान् सनकादिने आदिराज पृथुका ऐसा प्रश्न सुनकर उनकी बुद्धिकी प्रशसा की और उन्हे विस्तारपूर्वक कल्याणका उपदेश देते हुए कहा—

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यान सर्वार्थापह्नवो नृणाम्।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम्॥
न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्ग तमस्तीव्र तितीरिषु ।
धर्मार्थकाममोक्षाणा यदत्यन्तविघातकम्॥
कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशा
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति।
तत् त्व हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रि
कृत्वोडुप व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥
(श्रीमद्भा० ४।२२।३३-३४ ४०)

'धन और इन्द्रियोके विषयोका चिन्तन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है, क्याकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियामें जन्म पाता है। इसलिये जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोम आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये, क्योकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमे बडी बाधक है।'

'जो लोग मन और इन्द्रियरूप मगरासे सकुल इस

ससार-सागरको योगादि दुष्कर साधनासे पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही हे, क्योकि उन्हे कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है। अत तुम तो भगवान्‌के आराधनीय चरण-कमलोको नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर दु ख-समुद्रको पार कर लो।

भगवान् सनकादिके इस अमृतमय उपदेशसे आप्यायित होकर आदिराज पृथुने उनकी स्तुति करते हुए पुन उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सविधि पूजा की।

ऋषिगण प्रलयके कारण पहले कल्पका आत्मज्ञान भूल गये थे। श्रीभगवान्‌ने अपने इस अवतारमे उन्हे यथोचित उपदेश दिया, जिससे उन लोगोने शीघ्र ही अपने हृदयमे उस तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया।

सनकादि अपने योगबलसे अथवा 'हरि शरणम्' मन्त्रके जप-प्रभावसे सदा पाँच वर्षके ही कुमार बने रहते हैं। ये प्रमुख योगवेत्ता साख्यज्ञान-विशारद, धर्मशास्त्रोके आचार्य तथा मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं। श्रीनारदजीको इन्होने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया था।

भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोके तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नके उत्तरमे सुविस्तृत उपदेश देते हुए बताया था—

नास्ति विद्यासम चक्षुर्नास्ति सत्यसम तप ।
नास्ति रागसम दु ख नास्ति त्यागसम सुखम्॥
निवृत्ति कर्मण पापात् सतत पुण्यशीलता।
सद्वृत्ति समुदाचार श्रेय एतदनुत्तमम्॥

(महा० शान्ति० ३२९।६-७)

'विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है। सत्यके समान कोई तप नहीं है। रागके समान कोई दु ख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं हे। पापकर्मोसे दूर रहना, सदा पुण्यकर्मोका अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषोके-से बर्ताव और सदाचारका पालन करना—यही सर्वोत्तम श्रेय (कल्याण)-का साधन है।'

प्राणिमात्रके सच्चे शुभाकाङ्क्षी कुमार-चतुष्टयके पावन पद-पद्मोमे अनन्त प्रणाम।

~~~ ० ~~~

(२) भगवान् वराह

स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद
प्राग्वशकायाखिलसत्रसन्धे ।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव
सनातनात्मन् भगवन् प्रसीद॥

(विष्णुपुराण १।४।३४)

'प्रभो! स्रुक् आपका तुण्ड (थूथनी) है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है प्राग्वश (यजमानगृह) शरीर है तथा सम्पूर्ण सत्र (सोमयाग) शरीरकी सधियाँ हैं। देव! इष्ट (यज्ञ-यागादि) और पूर्त (कुआँ, बावली, तालाब आदि खुदवाना, बगीचा लगाना आदि लोकोपकारी कार्य)-रूप धर्म आपके कान हैं। नित्यस्वरूप भगवन्! प्रसन्न होइये।'

× × ×
~~~

सम्पूर्ण शुद्धसत्त्वमय लाकाके शिरोभागम भगवान् विष्णुका वैकुण्ठधाम स्थित है। वहाँ वेदान्तप्रतिपाद्य धर्ममूर्ति श्रीआदिनारायण अपन भक्ताको सुखी करनेके लिये शुद्धसत्त्वमय स्वरूप धारणकर निरन्तर विराजमान रहते हैं। विष्णुप्रिया श्रीलक्ष्मीजी वहाँ चञ्चलता त्यागकर निवास करती हैं। उस दिव्य और अद्भुत वैकुण्ठधामम सभी लोग विष्णुरूप होकर रहत हैं और वहाँ सम्पूर्ण कामनाआको त्यागकर अपने धर्मद्वारा उन क्षीराब्धिशायीकी आराधना करनेवाले परम भागवत ही प्रवेश पाते हैं।

एक बारकी बात है। आसक्ति त्यागकर समस्त लोकाम आकाशमार्गसे विचरण करनेवाले चतुमुख ब्रह्माके मानसपुत्र सनकादि उक्त अलौकिक वैकुण्ठधामम जा पहुँचे। उनके मनम भगवद्दर्शनकी लालसा थी, इस कारण वे अन्य दशनीय सामग्रियाकी उपेक्षा करते आगे बढ़ते हुए छ ड्योढियाँ पार कर गये। जब वे सातवीं ड्योढीपर पहुँचे, तब उन्ह हाथर्म गदा लिये दो समान आयुवाले देवश्रेष्ठ दिखलायी दिये। वे बाजूबद, कुण्डल और किरीट आदि अनेक बहुमूल्य आभूषणासे अलकृत थे। उनकी चार श्यामल भुजाओक बीच वनमाला सुशोभित थी, जिसपर भ्रमर गुजार कर रहे थे।

समदर्शी सनकादि सातवीं ड्योढीम प्रवेश कर ही रहे थे कि श्रीभगवान्‌के उन दोनो द्वारपालाने उन्हे दिगम्बर वृत्तिम देखकर उनकी हँसी उडायी और बत अडाकर उह आगे बढनेसे राक दिया।

'तुम भगवान् वैकुण्ठनाथके पार्षद हा, किंतु तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त मन्द है।' सनकादिने क्रुद्ध होकर उन्हे शाप देते हुए कहा—'तुम ता देव-रूपधारी हो फिर भी तुम्ह एसा क्या दिखायी देता है, जिससे तुमने भगवान्‌के साथ कुछ भेदभावक कारण होनेवाले भयकी कल्पना कर ली ? तुम अपनी भेदबुद्धिके दोषसे इस वैकुण्ठलोकसे निकलकर उन पापपूरित योनियाम जाओ, जहाँ काम, क्रोध एव लोभ—प्राणियाक ये तीन शत्रु निवास करत हैं।'

'भगवन्! हमने निश्चय ही अपराध किया है, सनकादिके दुर्निवार शापसे व्याकुल होकर दोना पार्षद उनके चरणाम लोटकर अत्यन्त दीनभावसे प्रार्थना करने लगे—'आपके दण्डसे हमारे पापका प्रक्षालन हो जायगा, किंतु आप इतनी कृपा कर कि अधमाधम योनियामे जानेपर भी हमारी भगवत्स्मृति बनी रहे।'

इधर श्रीभगवान् पद्मनाभको जब विदित हुआ कि हमारे पार्षदाने सनकादिका अनादर किया है, तब वे तुरत लक्ष्मीजीके साथ वहाँ पहुँच गये। समाधिके विषय

भुवनमोहन चतुर्भुज विष्णुके अचिन्त्य, अनन्त सौन्दर्यराशिके दर्शन कर सनकादिकी विचित्र दशा हो गयी। वे अपनेको सँभाल न सके और करुणासिन्धु भगवान् कमलनयनके चरणारविन्द-मकरन्दसे मिली तुलसीमञ्जरीकी अलौकिक गन्धसे उनके मनम भी खलबली उत्पन्न हो गयी।

ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोश-
मुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम्।
लब्धाशिष पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रि-
द्वन्द्व नखारुणमणिश्रयण निदध्यु ॥
(श्रीमद्भा० ३। १५। ४४)

'भगवान्‌का मुख नील कमलके समान था अति सुन्दर अधर आर कुन्दकलीक समान मनोहर हाससे उसकी शोभा ओर भी बढ गयी थी। उसकी झाँकी करके वे कृतकृत्य हो गये ओर फिर पद्मरागके समान लाल-लाल नखासे सुशोभित उनके चरण-कमल देखकर वे उन्हींका ध्यान करने लगे।'

फिर प्रभुके प्रत्यक्ष दर्शनका परम सौभाग्य प्राप्तकर वे निखिलसृष्टिनायककी स्तुति और उनके मङ्गलमय चरणकमलोम प्रणाम करने लग।

'मुनियो!' वैकुण्ठनिवास श्रीहरिने उनकी प्रशसा करते हुए कहा—'ये जय-विजय मेरे पार्षद हैं। इन्हाने आपका अपराध किया है। आपने इन्हे दण्ड देकर उचित ही किया है। ब्राह्मण मेरे परम आराध्य हैं। मेरे अनुचराके द्वारा आपलोगाका जो अनादर हुआ है, उसे मैं अपने द्वारा ही किया मानता हूँ। मैं आपलोगामे प्रसन्नताकी भिक्षा माँगता हूँ।'

त्रैलोक्यनाथ! सनकादिने प्रभुकी अर्थपूर्ण ओर सारयुक्त गम्भीर वाणी सुनकर उनका गुणगान करते हुए कहा—'आप सत्त्वगुणकी खान ओर सम्पूर्ण जीवाके कल्याणके लिये सदा उत्सुक रहते हैं। इन द्वारपालाको आप दण्ड अथवा पुरस्कार दे, हम विशुद्ध हृदयसे आपसे सहमत हैं या हमने क्रोधवश इन्हे शाप दे दिया, इसके लिये हम ही दण्डित करे, हम सहर्ष स्वीकार है।'

'मुनियो!' दयामय प्रभुने सनकादिसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा—'आप सत्य समझिये, आपका यह शाप मेरी ही प्रेरणासे हुआ है। ये दैत्ययोनिमे जन्म तो लेगे, किंतु क्रोधावेशसे बढी एकाग्रताके कारण शीघ्र ही मेरे पास लौट आयगे।'

सनकादि ऋषियोंने प्रभुकी अमृतमयी वाणीसे आप्यायित होकर उनकी परिक्रमा की और उनके त्रैलोक्यवन्दित चरणोंमे प्रणाम कर उनकी महिमाका गान करते हुए वे लौट गये।

'तुमलोग निर्भय होकर जाओ।' प्रभुने ऋषियोके प्रस्थानके अनन्तर अपने अनुचरासे कहा—'तुम्हारा कल्याण होगा। मैं सर्वसमर्थ होकर भी ब्रह्मतेजकी रक्षा चाहता हूँ, यही मुझे अभीष्ट है। एक बार मेरे योगनिद्रामे स्थिर होनेपर तुम दोनाने द्वारमे प्रवेश करती हुई लक्ष्मीजीको रोका था। उस समय उन्हाने क्रुद्ध होकर पहले ही तुम्हे शाप दे दिया था। अब दैत्ययोनिमे मेरे प्रति अत्यधिक क्रोधके कारण तुम्हारी जो एकाग्रता होगी, उससे तुम विप्र-तिरस्कारजनित पापसे मुक्त होकर कुछ ही समयमे मेरे पास लौट आओगे।'

श्रीभगवान्के पधारते ही सुरश्रेष्ठ जय-विजय ब्रह्मशापके कारण भगवान्के उस श्रेष्ठ धाममे ही श्रीहीन हो गये और उनका सारा गर्व चूर्ण हो गया।

× × ×

लीलामय प्रभुकी लीला अत्यन्त विचित्र होती है। उसका हेतु तथा रहस्य देवता और ऋषि-महर्षियोको भी समझमे नहीं आता, मनुष्य तो क्या समझे? किंतु प्रभुकी लीला जब हो, जैसी हो, होती है परम मङ्गलमयी, उसकी परिणति शुभ और कल्याणमे ही होती है।

प्रभुकी इसी अद्भुत लीलाके फलस्वरूप तपस्वी मरीचिनन्दन कश्यपमुनि जब खीरकी आहुतियोद्वारा अग्निजिह्व भगवान्की उपासना कर सूर्यास्त देख अग्निशालामे ध्यानमग्न बैठे थे कि उनकी पत्नी दक्षपुत्री दितिदेवी उनके समीप पहुँचकर सर्वश्रेष्ठ सतान प्राप्त करनेकी कामना व्यक्त करने लगीं।

महर्षि कश्यपने उनकी इच्छापूर्तिका आश्वासन दते हुए असमयकी ओर सकेत किया, पर दिति अपनी

कामनापूर्तिके लिये हठ करती ही जा रही थीं। महर्षि कश्यप जब सब प्रकारसे समझाकर थक गये, किंतु उनकी पत्नीका दुराग्रह नहीं टला तब विवश होकर इसे श्रीभगवान्की लीला समझकर उन्होने मन-ही-मन सर्वान्तर्यामी प्रभुके चरणोमे प्रणाम किया और एकान्तमे जाकर दितिकी कामना-पूर्ति की और फिर स्नानोपरान्त यज्ञशालामें बैठकर तीन बार आचमन किया और सायकालीन सध्या-वन्दन करने लगे।

सध्या-वन्दनादि कर्मसे निवृत्त होकर महर्षि कश्यपने देखा कि उनकी सहधर्मिणी दिति भयवश थर-थर काँप रही है और अपने गर्भके लौकिक तथा पारलौकिक

उत्थानके लिये प्रार्थना कर रही है।

'तुमने चतुर्विध अपराध किया है।' महर्षि कश्यपने दितिदेवीसे कहा—'एक तो कामासक्त होनेके कारण तुम्हारा चित्त मलिन था, दूसरे वह असमय था, तीसरे तुमन मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया और चाथे, तुमने रुद्र आदि दवताआका तिरस्कार किया है, इस कारण तुम्हारे गर्भसे दो अत्यन्त अधम और क्रूरकर्मा पुत्र उत्पन्न हागे। उनके कुकर्मों एव अत्याचारासे महात्मा पुरुप क्षुब्ध एव धरित्री व्याकुल हो जायगी। वे इतने पराक्रमी ओर तजस्वो हागे कि ब्रह्मतेजसे भी वे प्रभावित नहीं हागे। उनका वध करनेके लिये स्वय नारायण दो पृथक्-पृथक् अवतार ग्रहण करगे। तुम्हारे दाना पुत्राकी मृत्यु प्रभुके ही हाथा होगी।'

'भगवान् चक्रपाणिके हाथा मरे पुत्राका अन्त हो, यह मैं भी चाहती हूँ।' कुछ सतोपक साथ दिति वोली—'ब्राह्मणाके शापसे उनकी रक्षा हो जाय, क्याकि ब्रह्मशापसे दग्ध प्राणीपर तो नारकाय जीव भी दया नहीं करते। मरे पुत्रांके कारण लक्ष्मीवल्लभ श्रीविष्णु अवतार ग्रहण करग—यह अत्यन्त प्रसन्नताकी बात है, यद्यपि वे प्रभुभक्त नहीं हागे—इस बातका मुझ दु ख है।'

दितिदेवीका सर्वेश्वर प्रभुके प्रति सम्मानका भाव देखकर महामुनि कश्यप सतुष्ट हो गय। उन्हाने कहा—'दवि! तुम्ह अपने कर्मके प्रति पश्चात्ताप हो रहा है, शीघ्र ही तुम्हारा विवेक जाग्रत् हो गया और भगवान् विष्णु, भूतभावन शिव तथा मरे प्रति भी तुम्हारे मनमं आदरका भाव दीख रहा है, इस कारण तुम्हारे एक पुत्रके चार पुत्रोंमें एक श्रीभगवान्का अनन्य भक्त हागा। वह श्रीभगवान्का अत्यन्त प्रीतिभाजन हागा और भक्तजन उसका सदा गुणगान करते रहगे। तुम्हारे उस पोत्रको कमलनयन हरिका प्रत्यक्ष दर्शन होगा।'

'मरा पौत्र श्रीनारायण प्रभुका भक्त होगा तथा मेरे पुत्राके जीवनका अन्त श्रीहरिके द्वारा होगा'—यह जानकर दितिका मन उल्लाससे भर गया। किंतु अपने पुत्राके द्वारा सुर-समुदायके कष्टकी कल्पना कर उन्हाने अपने पति (कश्यपजी)-के तेजको सौ वर्पतक उदरम ही रखा। उस गर्भस्थ तेजसे लाकामे सूर्यादिका तेज क्षीण होने लगा। इन्द्रादि लाकपाल सभा तेजाहत हो गय।

'भूमन्!' इन्द्रादि देवगण तथा लोकपालादिन ब्रह्माक समीप जाकर उनकी स्तुतिक अनन्तर निवेदन किया—'इस समय मवत्र अन्धकार बढता जा रहा है। दिन-रातका विभाग स्पष्ट न रहनेसे लाकाक सारे कर्म लुप्त होत जा रहे हैं। सब दु खी और व्याकुल हैं। आप उनका दु ख-निवारण काजिये। दितिका गर्भ चतुर्दिक् अन्धकार फलाता हुआ बढता जा रहा है।'

'इस समय दक्षसुता दितिक उदरम महर्पि कश्यपका तेज है' विधाताने अपने मानसपुत्र सनकादिके द्वारा वैकुण्ठधामम श्रीनारायणके पापद जय-विजयका दिये हुए शापका वृत्तान्त सुनात हुए कहा—'आर उसम श्रीनारायणके उन दाना पार्पदाने प्रवेश किया है। उन दाना दैत्याक तेजके सम्मुख ही तुम सबका तेज मलिन पड गया है। इस समय लीलाधर श्रीहरिकी यही इच्छा प्रतीत हाती है। वे सृष्टि-स्थिति-सहारकारी श्रीहरि ही हम सबका कल्याण करगे। इस सम्बन्धम हमलोगाके सोच-विचार करनेका कोई अर्थ नहीं।'

शङ्का-निवारण हो जानेके कारण दवगण श्रीभगवान्का स्मरण करते हुए स्वर्गके लिय प्रस्थित हुए।

'मरे पुत्र उपद्रवी हागे ओर उनसे सत्पुरुपोको कष्ट होगा'—यह आशङ्का दितिके मनमे बनी रहती थी। इस कारण सौ वप पूरा हो जानेके उपरान्त उन्होने दो यमज (जुडवाँ) पुत्र उत्पन्न किये।

उन दैत्याके धरतीपर पैर रखते ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गम अनेका उपद्रव होन लगे। अन्तरिक्ष तिमिराच्छन्न हो गया और बिजली चमकने लगी। पृथ्वी और पर्वत काँपने लगे। भयानक आँधी चलने लगी। सर्वत्र अमङ्गलसूचक शब्द तथा प्रलयकारी दृश्य दृष्टिगोचर होने लग। सनकादिके अतिरिक्त सभी जीव भयभीत हो गय। उन्हाने समझा कि अब ससारका प्रलय होनेवाला ही है।

वे दोना दैत्य जन्म लेते ही पर्वताकार एव परम पराक्रमी हो गये। प्रजापति कश्यपजीने उनमसे जो उनके वीर्यसे दितिके गर्भमे पहले स्थापित हुआ था, उसका नाम 'हिरण्यकशिपु' तथा जो दितिके गर्भस पृथ्वीपर पहले आया, उसका नाम 'हिरण्याक्ष' रखा।

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष—दोनो भाइयोमे बडी प्रीति थी। दोनो एक-दूसरेको प्राणाधिक प्यार करते थे। दोनो ही महाबलशाली, अमित पराक्रमी एव उद्धत थे। वे अपने सम्मुख किसीको कुछ नहीं समझते थे। हिरण्याक्षने अपनी विशाल गदा कधेपर रखी और स्वर्ग जा पहुँचा। इन्द्रादि देवताओके लिये उसका सामना करना सम्भव नहीं था। सब भयभीत होकर छिप गये। निराश हिरण्याक्ष अपने प्रतिपक्षीको ढूँढने लगा, किंतु उसके सम्मुख कोई टिक नहीं पाता था।

अथ भूम्युपरि स्थित्वा मर्त्या यक्ष्यन्ति देवता ।
तेन तेषां बलं वीर्यं तेजश्चापि भविष्यति॥
इति मत्वा हिरण्याक्ष कृते सर्गे तु ब्रह्मणा।
भूमेर्या धारणाशक्तिस्तां नीत्वा स महासुर ॥
विवेश तोयमध्ये तु रसातलतलं नृप।
विना शक्त्या च जगती प्रविवेश रसातलम्॥

(श्रीनरसिंहपुराण ३९।७—९)

एक बार उसने सोचा—'मर्त्यलोकमे रहनेवाले पुरुष पृथ्वीपर रहकर देवताओका यजन करेगे, इससे उनका बल, वीर्य और तेज बढ जायगा'—यह सोचकर महान् असुर हिरण्याक्ष ब्रह्माजीद्वारा सृष्टि-रचना की जानेपर उसे धारण करनेकी भूमिमे जो धारणा-शक्ति थी, उसे ले जाकर जलके भीतर-ही-भीतर रसातलमे चला गया। आधारशक्तिसे रहित होकर यह पृथ्वी भी रसातलमे ही चली गयी।

मदोन्मत्त हिरण्याक्षने देखा कि उसके तेजके सम्मुख सभी देवता छिप गये हैं, तब वह महाबलवान् दैत्य जलक्रीडाके लिये गम्भीर समुद्रमे घुस गया। उसे देखते ही वरुणके सैनिक जलचर भयवश दूर भागे। वहाँ भी किसीको न पाकर वह समुद्रकी उत्ताल तरगोपर ही अपनी गदा पटकने लगा। इस प्रकार प्रतिपक्षीको ढूँढते हुए वह वरुणकी राजधानी विभावरीपुरीमे जा पहुँचा।

'मुझे युद्धकी भिक्षा दीजिये।' बडी ही अशिष्टतासे उसने वरुणदेवको प्रणाम करते हुए व्यंग्यसहित कहा। 'आपने कितने ही पराक्रमियोके वीर्यमदको चूर्ण किया है। एक बार आपने सम्पूर्ण दैत्योको पराजितकर राजसूय यज्ञ भी किया था। कृपया मेरी युद्धकी क्षुधाका निवारण कीजिये।'

'भाई! अब तो मेरी युद्धकी इच्छा नहीं है।' पराक्रमी और उन्मत्त शत्रुके व्यंग्यपर वरुणदेव क्रुद्ध तो हुए, पर प्रबल दैत्यको देखकर धैर्यपूर्वक उन्होने कहा—'मेरी दृष्टिमे श्रीहरिके अतिरिक्त अन्य कोई योद्धा नहीं दीखता, जो तुम्हारे-जैसे वीरपुगवको सतुष्ट कर सके। तुम उन्हींके पास जाओ। उनसे भिडनेपर तुम्हारा अहकार शान्त हो जायगा। वे तुम-जैसे दैत्योके सहारके लिये अनेक अवतार ग्रहण किया करते हैं।'

× × ×

सत्यसङ्कल्प ब्रह्माजी सृष्टि-विस्तारके लिये मन-ही-मन श्रीहरिका स्मरण कर रहे थे कि अकस्मात् उनके शरीरके दो भाग हो गये। एक भागसे 'नर' हुआ और दूसरे भागसे 'नारी'। विधाता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

"मेरे मनके अनुरूप होनेके कारण तुम्हारा नाम 'मनु' होगा।" नरकी ओर देखकर उन्होने कहा—"मुझ स्वयम्भूके पुत्र होनेसे तुम्हारा 'स्वायम्भुव' नाम भी प्रख्यात होगा। तुम्हारी बगलमे अपने शत-शत रूपोसे मनको आकृष्ट करनेवाली सुन्दरी खडी है। इसका नाम 'शतरूपा' प्रसिद्ध होगा। तुम पति और यह तुम्हारी पत्नी होगी। मेरे आधे अङ्गसे बननेके कारण यह तुम्हारी अर्धाङ्गिनी होगी। तुम्हारे मध्य धर्म स्थित है। इसे साक्षी देकर तुम इसे सहधर्मिणी बना लो। यह तुम्हारी धर्मपत्नी होगी। तुम्हारे वशज 'मनुष्य' कहे जायँगे।"

'भगवन्! एकमात्र आप ही सम्पूर्ण प्राणियोके जीवनदाता हैं।' अत्यन्त विनयपूर्वक स्वायम्भुव मनुने अपने पिता विधातासे हाथ जोडकर कहा। 'आप ही सबको जीविका प्रदान करनेवाले पिता हैं। हम ऐसा कौन-सा उत्तम कर्म करे, जिससे आप सतुष्ट हो और लोकमे हमारे यशका विस्तार हो।'

'मैं तुमसे अत्यधिक सतुष्ट हूँ।' सृष्टि-विस्तारके कार्यमे अपने पूर्वपुत्रोसे निराश विधाताने प्रसन्न होकर मनुसे कहा। 'तुम अपनी इस भार्यासे अपने ही समान गुणवती सतति उत्पन्न कर धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते हुए यज्ञोके द्वारा श्रीभगवान्की उपासना करो।'

'मैं आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा' मनुने श्रीब्रह्मासे निवेदन किया। 'किंतु आप मेरे तथा मेरी भावी

प्रजाके रहनेयोग्य स्थान बताइये। पृथ्वी तो प्रलयजलमे डूबी हुई है। उसके उद्धारका यत्न कीजिये।'

'अथाह जलमे डूबी पृथ्वीको कैसे निकालूँ?' चतुर्मुख ब्रह्मा विचार करने लगे। 'क्या करूँ?' फिर उन्होने सोचा—'जिन श्रीहरिके संकल्पमात्रसे मेरा जन्म हुआ है, वे ही सर्वसमर्थ प्रभु यह कार्य करें।'

सर्वान्तर्यामी सर्वलोकमहेश्वर प्रभुकी स्मृति होते ही अकस्मात् पद्मयोनिके नासाछिद्रसे अँगूठेके बराबर एक श्वेत वराह-शिशु निकला। विधाता उसकी ओर आश्चर्यचकित हो देख ही रहे थे कि वह तत्काल विशाल हाथीके बराबर हो गया।

'निश्चय ही यज्ञमूर्ति भगवान् हमलोगोको मोहित कर रहे हैं।' स्वायम्भुव मनुके साथ ब्रह्माजी विचार करते हुए इस निष्कर्षपर पहुँचे। 'यह कल्याणमय प्रभुका ही वेदयज्ञमय वराह-वपु है।'

इतनेमे ही भगवान्का वराह-वपु पर्वताकार हो गया। उन यज्ञमूर्ति वराह भगवान्का घोर गर्जन चतुर्दिक् व्याप्त हो गया। वे घुरघुराते और गरजते हुए मत्त गजेन्द्रकी-सी लीला करने लगे। उस समय मुनिगण प्रभुकी प्रसन्नताके लिये स्तुति कर रहे थे। वराह भगवान्का बडा ही अद्भुत एवं दिव्य स्वरूप था—

उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन् खररोमशत्वक्।
खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ॥
घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ।
करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतोऽविशत्कम्॥

(श्रीमद्भा० ३।१३।२७-२८)

'पहले वे सूकररूप भगवान् पूँछ उठाकर बडे वेगसे आकाशमे उछले और अपनी गर्दनके बालोको फटकारकर खुरोंके आघातसे बादलोको छितराने लगे। उनका शरीर बडा कठोर था, त्वचापर कडे-कडे बाल थे, दाढ़े सफेद थीं और नेत्रोसे तेज निकल रहा था, उस समय उनकी बडी शोभा हो रही थी। भगवान् स्वयं यज्ञपुरुष हैं, तथापि सूकररूप धारण करनेके कारण अपनी नाकसे सूँघ-सूँघकर पृथ्वीका पता लगा रहे थे। उनकी दाढे बडी कठोर थीं। इस प्रकार यद्यपि वे बडे क्रूर जान पडते थे, तथापि अपनी स्तुति करनेवाले मरीचि आदि मुनियोकी ओर बडी सौम्य दृष्टिसे निहारते हुए उन्होने जलमे प्रवेश किया।'

वज्रमय पर्वतके तुल्य अत्यन्त कठोर और विशाल वराह भगवान्के कूदते ही महासागरमे ऊँची-ऊँची लहरे उठने लगीं। समुद्र जैसे व्याकुल होकर आकाशकी ओर जाने लगा। भगवान् वराह बडे वेगसे जलको चीरते हुए रसातलमे पहुँचे। वहाँ उन्होने सम्पूर्ण प्राणियोकी आश्रयभूता पृथ्वीको देखा। प्रभुको सम्मुख उपस्थित देखकर पृथ्वीने प्रसन्न होकर उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की—

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर।
मामुद्धरास्मादद्य त्वं त्वत्तोऽहं पूर्वमुत्थिता॥
भवतो यत्परं तत्त्वं तन्न जानाति कश्चन।
अवतारेषु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ॥
यत्किञ्चिन्मनसा ग्राह्यं यद्ग्राह्यं चक्षुरादिभिः ।
बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव॥
मूर्तामूर्तमदृश्यं च दृश्यं च पुरुषोत्तम।
यच्चोक्तं यच्च नैवोक्तं मयात्र परमेश्वर।
तत्सर्वं त्वं नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ॥

(विष्णुपुराण १।४।१२ १७ १९ २४)

पृथ्वी बोली—'शङ्ख, चक्र, गदा एव पद्म धारण करनेवाले कमलनयन प्रभो! आपको नमस्कार है। आज आप इस पातालसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमे आपसे ही मैं उत्पन्न हुई थी। प्रभो! आपका जो परतत्त्व है उसे तो कोई भी नहीं जानता, अतः आपका जो रूप अवतारोमे प्रकट होता है, उसीकी देवगण पूजा करते हैं। मनसे जो कुछ ग्रहण (संकल्प) किया जाता है, चक्षु आदि इन्द्रियोमे जो कुछ (विषयरूपसे) ग्रहण करनेयोग्य है, बुद्धिद्वारा जो कुछ आकलनीय है, वह सब आपका ही रूप है। हे पुरुषोत्तम! हे परमेश्वर! मूर्त-अमूर्त, दृश्य-अदृश्य तथा जो कुछ इस प्रसङ्गमे मैंने कहा है और जो नहीं कहा, वह सब आप ही हैं। अतः आपको नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है।'

धरित्रीकी स्तुति सुनकर भगवान् वराहने घर्घर-शब्दसे गर्जना की और—

ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया
महावराहः स्फुटपद्मलोचनः ।

रसातलादुत्पलपत्रसंनिभ
समुत्थितो नील इवाचलो महान्॥
(विष्णुपुराण १।४।२६)

'फिर विकसित कमलके समान नेत्रावाले उन महावराहने अपनी दाढ़ासे पृथिवीको उठा लिया और वे कमल-दलके समान श्याम तथा नीलाचलके सदृश विशालकाय भगवान् रसातलसे बाहर निकले।'

उधर वरुणदेवके द्वारा अपने प्रतिपक्षीका पता पाकर हिरण्याक्ष अत्यन्त प्रसन्न हुआ। 'आप मुझे श्रीहरिका पता बता दें।' हिरण्याक्ष देवर्षि नारदके पास पहुँच गया। उसे युद्धकी अत्यन्त त्वरा थी।

'श्रीहरिने तो अभी-अभी श्वेतवराहके रूपमें समुद्रमें प्रवेश किया है।' देवर्षिके मनमें दया थी। उन्होंने सोचा—'यह भगवान्‌के हाथों मरकर दूसरा जन्म ले। तीन ही जन्मके अनन्तर तो यह अपने स्वरूपको प्राप्त होगा।' बोले—'यदि शीघ्रता करो तो तुम उन्हें पा जाओगे।'

हिरण्याक्ष दौड़ा रसातलकी ओर। वहाँ उसकी दृष्टि अपनी विशाल दाढ़ोंकी नोकपर पृथ्वीको ऊपरकी ओर ले जाते हुए वराहभगवान्‌पर पड़ी।

'अरे सूकररूपधारी सुराधम!' चिल्लाते और भगवान्‌की ओर तेजीसे दौड़ते हुए हिरण्याक्षने कहा। 'मेरी शक्तिके सम्मुख तुम्हारी योगमायाका प्रभाव नहीं चल सकता। मेरे देखते तू पृथ्वीको लेकर नहीं भाग सकता। निर्लज्ज कहींका।'

श्रीभगवान् दुर्जय दैत्यके वाग्बाणोंकी चिन्ता न कर पृथ्वीको ऊपर लिये चले जा रहे थे। वे भयभीत पृथ्वीको उचित स्थानपर स्थापित करना चाहते थे। इस कारण हिरण्याक्षके दुर्वचनोंका कोई उत्तर नहीं दे रहे थे। कुपित होकर दैत्यने कहा—'सत्य है, तेरे-जैसे व्यक्ति सभी अकरणीय कृत्य कर डालते हैं।'

प्रभुने पृथ्वीको जलके ऊपर लाकर व्यवहारयोग्य स्थलपर स्थापितकर उसमें अपनी आधारशक्तिका संचार किया। उस समय हिरण्याक्षके सामने ही भगवान्‌पर देवगण पुष्प-वृष्टि और ब्रह्मा उनकी स्तुति करने लगे।

'मैं तो तेरे सामने कुछ नहीं।' तब प्रभुने कज्जलगिरिके तुल्य हिरण्याक्षसे कहा। वह अपने हाथमें विशाल गदा लिये अनर्गल प्रलाप करता हुआ दौड़ा आ रहा था। प्रभु बोले—'अब तू अपने मनकी कर ले।'

फिर तो वीरवर हिरण्याक्ष एवं भगवान् वराहमें भयानक संग्राम हुआ। दोनोंके वज्रतुल्य शरीर गदाकी चोटसे रक्तमें सन गये। हिरण्याक्ष और मायासे वराहरूप धारण करनेवाले भगवान् यज्ञमूर्तिका युद्ध देखने मुनियोंसहित ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की, 'प्रभो! शीघ्र इसका वध कर डालिये।'

विधाताके भोलेपनपर श्रीभगवान्‌ने मुस्कराकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अब अत्यन्त शूर हिरण्याक्षसे प्रभुका भयानक संग्राम हुआ। अपने किसी अस्त्र-शस्त्र तथा छल-छद्मका आदिवराहपर कोई प्रभाव पड़ता न देख हिरण्याक्ष श्रीहत होने लगा। अन्तमें श्रीभगवान्‌ने हिरण्याक्षकी कनपटीपर एक तमाचा मारा।

श्रीभगवान्‌ने यद्यपि तमाचा उपेक्षासे मारा था, किंतु

उसकी चोटसे हिरण्याक्षके नेत्र बाहर निकल आये। वह घूमकर कटे वृक्षकी तरह धराशायी हो गया। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

'ऐसी दुर्लभमृत्यु किसे प्राप्त होती है!' ब्रह्मादि देवताओंने हिरण्याक्षके भाग्यकी सराहना करते हुए कहा। 'मिथ्या उपाधिसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये योगीन्द्र-मुनीन्द्र जिन महामहिम परमेश्वरका ध्यान करते हैं उन्हींके चरण-प्रहारसे उनका मुख देखते हुए इस दैत्यराजने अपना प्राण-त्याग किया! धन्य है यह।'

इसके साथ ही सुर-समुदाय महावराह प्रभुकी स्तुति करने लगा। और—

विहाय रूप वाराह तीर्थे कोकति विश्रुत।
वैष्णवाना हितार्थाय क्षत्र तद्गुह्यमुत्तमम्॥
(श्रीनरसिंहपुराण ३९।१८)

'फिर प्रभुने वैष्णवाक हितके लिय काकामुख तीर्थम वराहरूपका त्याग किया। वह वराह-क्षत्र उत्तम एव गुप्त तीर्थ है।'

पृथ्वीक उसी पुन प्रतिष्ठा-कालसे इस श्वेतवाराह-कल्पकी सृष्टि प्रारम्भ हुई है।

× × ×

उत्तरकुरुवर्षम भगवान् यज्ञपुरुष वराहमूर्ति धारण करक विराजमान हैं। साक्षात् पृथ्वीदेवी वहाँके निवासियासहित उनकी अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे उपासना करती हैं और इस परमोत्कृष्ट मन्त्रका जप करती हुई उनका स्तवन करती हैं—

'ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नम कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्त।' (श्रीमद्भा० ५।१८।३५)

'जिनका तत्त्व मन्त्रास जाना जाता ह, जो यज्ञ आर क्रतुरूप हैं तथा वडे-वड यज्ञ जिनके अङ्ग हैं— उन ओंकारस्वरूप शुक्लकर्ममय त्रियुगमूर्ति पुरुषात्तम भगवान् वराहको वार-वार नमस्कार है।'

~~o~~

(३) देवर्षि नारद

मङ्गलमूर्ति नारदजा श्रीभगवान्क मनक अवतार हैं। कृपामय प्रभु जो कुछ करना चाहते हैं, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वीणापाणि नारदजीक द्वारा वैसी ही चष्टा होती है।

श्रीमद्भागवतम कहा गया है—

तृतीयमृषिसर्गं च दवर्षित्वमुपत्य स।
तन्त्र सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यत॥
(१।३।८)

''ऋषियाकी सृष्टिम उन्हाने देवर्षि नारदके रूपम तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत-तन्त्रका (जिसे 'नारदपञ्चरात्र' कहत हैं) उपदेश किया, उसम कर्मोंक द्वारा किस प्रकार कर्मवन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है।''

परम तपस्वी और ब्राह्मतजसे सम्पन्न नारदजी अत्यन्त सुन्दर हैं। उनका वर्ण गौर है। उनके मस्तकपर शिखा सुशोभित है। अत्यन्त कान्तिमान् नारदजी दवराज इन्द्रके दिये हुए दो उज्ज्वल, महीन, दिव्य, शुभ और बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं। वेद और उपनिषदाके ज्ञाता, देवताओंद्वारा पूजित, पूर्वकल्पाकी वाताके जानकार, महाबुद्धिमान् और असख्य सद्गुणासे सम्पन्न महातेजस्वी नारदजी भगवान् पद्मयोनिसे प्राप्त वीणाकी मनोहर झकृतिके साथ दयामय भगवान्क मधुर, मनोहर एव मङ्गलमय नाम और गुणाका गान करते हुए लोक-लोकान्तरामे विचरण किया करते हैं। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले साधु पुरुषाक हितक लिये नारदजी सतत प्रयत्नशील रहते हैं। वे सचल कल्पवृक्ष हैं।

वे स्वय अपने मुखारविन्दसे कहते हैं—

प्रगायत स्ववीर्याणि तीर्थपाद प्रियश्रवा।
आहूत इव मे शीघ्र दर्शन याति चेतसि॥
(श्रीमद्भागवत १।६।३४)

'जब मैं उनकी लीलाआका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनक चरण-कमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशागान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है बुलाये हुएकी भाँति तुरन्त मरे हृदयम आकर दर्शन दे देते हैं।'

कृपाकी मूर्ति नारदजी वेदान्त, योग, ज्यौतिष, आयुर्वेद एव सगीत आदि अनेक शास्त्राके आचार्य हैं और भक्तिके तो व मुख्याचार्य हैं। उनका पञ्चरात्र भागवत-मार्गका प्रधान ग्रन्थरत्न है। प्राणिमात्रकी कल्याण-कामना करनेवाले नारदजी श्रीहरिके मार्गपर अग्रसर होनेकी इच्छा रखनेवाले प्राणियाका सहयोग देते रहते हैं। मुमुक्षुआका मार्गदर्शन उनका प्रमुख कर्तव्य है। उन्हाने त्रैलोक्यम कितने प्राणियोको किस प्रकार परम प्रभुके पावन पद-पद्मामे पहुँचा दिया, इसकी गणना सम्भव नहीं।

बालक प्रह्लादकी दृढ भक्तिसे भगवान् नृसिह अवतरित हुए। प्रह्लादके इस भगवद्विश्वास एव प्रगाढ निष्ठाम भगवान्

नारद ही मुख्य हेतु थे। उन्हाने गर्भस्थ प्रह्लादको लक्ष्य करके उनकी माता दैत्येश्वरी कयाधूको भक्ति और ज्ञानका उपदेश दिया। प्रह्लादजीका वही ज्ञान उनक जीवन और जन्मको सफल करनेम हेतु वना। इसी प्रकार पिताके तिरस्कारसे क्षुब्ध ध्रुवकुमारके वन-गमनके समय नारदजीने उन्हे भगवान् वासुदेवका मन्त्र दिया तथा उन्हे उपासनाकी

पद्धति भी विस्तारपूर्वक बतायी। जब दक्ष प्रजापतिने पञ्चजनकी पुत्री असिक्नीसे 'हर्यश्व' नामक दस सहस्र पुत्र उत्पन्न कर उन्हे सृष्टि-विस्तारका आदेश दिया ओर एतदर्थ वे पश्चिम दिशामे सिन्धु नदी और समुद्रके सगमपर स्थित पवित्र नारायण-सरपर तपश्चरण करने पहुँचे, तब नारदजीने अपने अमृतमय उपदेशसे उन
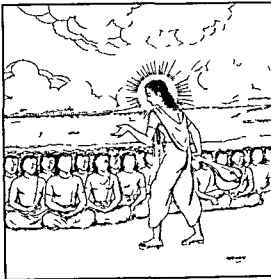
सबको विरक्त वना दिया। दक्ष प्रजापति वड दु खी हुए। उन्हाने फिर 'शवलाश्व' नामक एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। नारदजीने कृपापूर्वक उन्हे भी श्रीभगवच्चरणारविन्दाकी आर उन्मुख कर दिया। फिर तो अत्यन्त क्रुद्ध हाकर प्रजापति दक्षने अजातशत्रु नारदजीका शाप दे दिया—'तुम

लोक-लाकान्तराम भटकते ही रहोगे।' साधुशिरोमणि नारदजाने इसे प्रभुकी मङ्गलमयी इच्छा समझकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया।

जव वेदाका विभाग तथा पञ्चम वेद महाभारतकी रचना कर लेनेपर भी श्रीव्यासजी अपनेको अपूर्णकाम अनुभव करते हुए खिन्न हो रहे थे, तब दयापरवश श्रीनारदजी उनके समीप पहुँच गये और व्यासजीके पूछनेपर उन्हाने बताया—'व्यासजी! आपने भगवान्के निर्मल यशका गान प्राय नहीं किया। मेरी ऐसी मान्यता है कि वह शास्त्र या ज्ञान सर्वथा अपूर्ण है, जिससे जगदाधार स्वामी सतुष्ट न हा। वह वाणी आदरक योग्य नहीं, जिसम श्रीहरिकी परमपावनी कीर्ति वर्णित न हो। वह तो कौओके लिये उच्छिष्ट फेकनेके स्थानके समान अपवित्र है। उसके द्वारा तो मूर्ख कामुक व्यक्तियाका ही मनोरञ्जन हो सकता है। मानस-सरके कमलवनमे विहार करनवाले राजहसाके समान ब्रह्मधामम विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहस भक्तोका मन उसम कैसे रम सकता है? विद्वान् पुरुषोने निर्णय किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन यज्ञानुष्ठान एव

समस्त धर्मकर्मोंकी सफलता इसीमे है कि पुण्यकीर्ति श्रीप्रभुकी कल्याणमयी लीलाओंका गान किया जाय। अतएव—

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभो
समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां
संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा॥

(श्रीमद्भा० १।५।४०)

'व्यासजी! आपका ज्ञान पूर्ण है, आप भगवान्‌की ही कीर्तिका—उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये। उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। जो लोग दुःखोंके द्वारा बार-बार रौंदे जा रहे हैं, उनके दुःखकी शान्ति इसीसे हो सकती है। इसके सिवा उनका और कोई उपाय नहीं है।'

जब दुर्योधनके छल और कुटिल नीतिसे सहृदय पाण्डवोंने अरण्यके लिये प्रस्थान किया, उस समय भरतवंशियोंके विनाशसूचक अनेक प्रकारके भयानक अपशकुन होने लगे। चिन्तित होकर इस सम्बन्धमें धृतराष्ट्र और विदुर परस्पर बातचीत कर ही रहे थे कि उसी समय महर्षियोंसे घिरे भगवान् नारद कौरवोंके सामने आकर खड़े हो गये और सुस्पष्ट शब्दोंमें उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा—

इतश्चतुर्दशे वर्षे विनङ्क्ष्यन्तीह कौरवाः।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च॥

(महा० सभा० ८०।३४)

'आजसे चौदहवें वर्षमें दुर्योधनके अपराधसे भीम और अर्जुनके पराक्रमद्वारा कौरवकुलका नाश हो जायगा।'

इतना कहकर महान् ब्रह्मतेजधारी नारदजी आकाशमें जाकर सहसा अन्तर्धान हो गये।

सर्वोच्च ज्ञानके परमपावन विग्रह श्रीशुकदेवजीको उपदेश देते हुए महामुनि नारदजीने कहा था—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्॥

(महा० शान्ति० ३३०।२०, ३०)

'संग्रहका अन्त है विनाश। ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण।'

'जो अध्यात्मविद्यामें अनुरक्त, कामनाशून्य तथा भोगासक्तिसे दूर है, जो अकेला ही विचरण करता है, वही सुखी होता है।'

जब अविनाशी नारायण और नर बदरिकाश्रममें घोर तप करते हुए अत्यन्त दुर्बल हो गये थे और उन परम तेजस्वी प्रभुका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ था, उस समय नारदजी महामेरु पर्वतसे गन्धमादन पर्वतपर उतर गये और जब भगवान् नर और नारायणके समीप पहुँचे, तब उन्होंने शास्त्रीय विधिसे नारदजीकी पूजा की। नारदजीने उनसे अनेक भगवत्सम्बन्धी प्रश्नोंका तृप्तिकर उत्तर प्राप्त किया और फिर उनकी अनुमतिसे श्वेतद्वीपमें पहुँचकर श्रीभगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन-लाभ कर पुनः गन्धमादन पर्वतपर श्रीनर-नारायणके समीप चले आये। नारदजीने भगवान् नर-नारायणको सारा वृत्तान्त सुनाया और उनके समीप दस सहस्र दिव्य वर्षोंतक रहकर वे भजन एवं मन्त्रानुष्ठान करते रहे।

स्कन्दपुराणमें इन्द्रकृत श्रीनारदजीकी एक अत्यन्त सुन्दर स्तुति है। उसके सम्बन्धमें एक बार भगवान् श्रीकृष्णने नारदजीके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए राजा उग्रसेनसे कहा था कि 'मैं देवराज इन्द्रद्वारा किये गये स्तोत्रसे दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजीकी सदा स्तुति किया करता हूँ।'*

सर्वसुहृद् श्रीनारदजी ही एकमात्र ऐसे हैं, जिनका सभी देवता और दैत्यगण समानरूपसे सम्मान एवं विश्वास करते हैं, उन्हें अपना शुभैषी समझते हैं और निश्चय ही वे दयामय सबके यथार्थ हित-साधनके लिये सचिन्त और प्रयत्नशील रहते हैं। अब भी करुणामय प्रभुके सच्चे प्रेमी भक्तोंको उनके दर्शन हो जाते हैं।

~~~ ○ ~~~

* उक्त स्तोत्र यहाँ स्थानाभावसे नहीं दिया जा सका। वह स्कन्दपुराणके माहेश्वर (कुमारिका) खण्डके ५४वें अध्यायमें श्लोक संख्या २७ से ४६ तकमें वर्णित है।
~~~

(४) भगवान् नर-नारायण

दृश्यते ज्ञानयोगेन आवा च प्रसृतो तत ।
एव ज्ञात्वा तमात्मान पूजयाव सनातनम्॥
य तु तद्भाविता लोके ह्यकान्तित्व समास्थिता ।
एतदभ्यधिक तेषा यत् ते त प्रविशन्त्युत॥

(महा० शान्तिपर्व ३३४। ४२ ४४)

'ज्ञानयोगद्वारा उस (परमात्मा)-का साक्षात्कार हाता है। हम दोनाका आविर्भाव उसीसे हुआ है—यह जानकर हम दोनो उस सनातन परमात्माकी पूजा करते हैं। '

जो सदा उसका स्मरण करते तथा अनन्यभावसे उसकी शरण लेते हे, उन्हे सवसे बडा लाभ यह हाता हे कि वे उसके स्वरूपमे प्रवेश कर जाते हे।'—नर-नारायण

स्वय भगवान् वासुदवने सृष्टिके आरम्भम धर्मकी सहधर्मिणी मूर्तिस दो रूपाम अवतार धारण किया। वे अपने मस्तकपर जटामण्डल धारण किये हुए थे। उनके हाथाम हस चरणाम चक्र एव वक्ष स्थलम श्रीवत्सके चिह्न सुशाभित थे। उनकी बडी-बडी भुजाएँ, मेघक समान गम्भीर स्वर, सुन्दर मुख, चौडा ललाट बाँकी भोंह, सुन्दर ठोढी और मनोहर नासिका थी। उनका सम्पूर्ण वेष तपस्वियाका था। वे अत्यन्त तेजस्वी, रूप-रग ओर स्वभावम एक-से थे। उन वरदाता तपस्वियाके नाम थे—'नर और नारायण'।

अवतार ग्रहण करते ही अविनाशी नर-नारायण वदरिकाश्रमम चले गये। वहाँ वे गन्धमादन पर्वतपर एक विशाल वट-वृक्षके नीचे तपस्या करने लग। भगवान् श्रीहरिके अशावतार उन नर-नारायण नामक दानो ऋषियाने वहाँ रहकर एक सहस्र वर्षतक कठार तपस्या की। उनके प्रचण्ड तपसे देवराज इन्द्र सशङ्क हो तुरत गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे। वहाँ उन्हाने परम पवित्र आश्रमम तपोभूमि भारतके आराध्य परम तेजस्वी भगवान् नर-नारायणको तपनिरत देखा।

'धर्मनन्दन! तुम दोना अवश्य ही अत्यन्त भाग्यवान् हो।' सूर्यकी भाँति प्रकाश विकीर्ण करते हुए तपोधन नर-नारायणके समीप पहुँचकर शचीपतिने कहा। 'तुम दानाकी तपश्चर्यासे सतुष्ट होकर मैं तुम्हे वर देनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। तुम अपना अभीष्ट बताओ। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

इस प्रकार दवाधिप इन्द्रके सम्मुख खड होकर

बार-बार आग्रह करनेपर भी नर-नारायणन कोई उत्तर नहीं दिया। उनका चित्त सर्वथा शान्त एव अविचलित रहा।

तव इन्द्रने उन्ह भयभीत करनक लिये मायाका प्रयोग किया। भयानक झझावात, प्रलयकर वृष्टि एव अग्निवर्षा प्रारम्भ हो गयी। भेडिये और सिह गरजने लगे किंतु नर-नारायण सर्वथा शान्त थे। उनका चित्त किसी प्रकार भी विचलित नहीं हुआ। अनक प्रकारकी मायाका प्रयोग किये जानेपर भी जव तपस्वियोके सिरमौर नर-नारायण तपसे विरत नहीं हुए, तब इन्द्र निराश होकर लौट गये।

उन्हाने रम्भा तिलोत्तमा पुष्पगन्धा, सुकेशी और काञ्चनमालिनी आदि अप्सराआ आर वसन्तके साथ कामदेवको प्रभु नर-नारायणको वशीभूत करनके लिये भेजा। उक्त श्रेष्ठ पर्वत गन्धमादनपर वसन्तके पहुँचते ही आम, वकुल, तिलक, पलाश साखू, ताड, तमाल आर महुआ आदि सभी वृक्ष पुष्पासे सुशोभित हो गये। कोयल कूकने लगीं। सुगन्धित पवन मन्द गतिसे बहने लगा। इसके साथ ही रतिसहित पुष्पधन्वा भी वहाँ जा पहुँचे। रम्भा और तिलात्तमा आदि सगीत-कलाम प्रवीण अप्सराओंन स्वर आर तालम गायन प्रारम्भ किया।

मधुर सगीत, कोयलाका कलरव और भ्रमराकी गुजारसे नर-नारायणकी समाधि टूट गयी। उन्हाने इसे

इन्द्रकी कुटिलता समझकर उन लोगासे कहा—'कामदेव, मलय पवन और देवाङ्गनाओ! तुमलोग आनन्दपूर्वक ठहरो। तुम सभी स्वर्गसे यहाँ आये हो, इसलिये हमारे अतिथि हो। हम तुम्हारा अद्भुत प्रकारसे आतिथ्य-सत्कार करनेके लिये तैयार हैं।'

भगवान्‌के शान्त वचन सुनकर काँपते हुए कामदवके मनम निर्भयता आयी। उन्हान हाथ जोडकर कहा—'प्रभो! आप मायास पर, निर्विकार हैं। वड-वडे आत्माराम आर धार पुरुप सदा आपके चरणकमलाम प्रणाम करते रहते हैं। प्रभो! क्रोध आत्मनाशक ह, पर वडे-वड तपस्वी उसक वश हो अपनी कठिन तपस्या खो वेठते हे, कितु आपके चरणाका आश्रय लेनवाला सदा निरापद जीवन व्यतीत करता हे।'

कामदेव आर वसन्त आदिकी इस प्रकारकी स्तुति सुनकर सर्वसमर्थ भगवान्‌ने वस्त्रालकारास अलकृत, अद्भुत रूप-लावण्यसे सम्पन्न सहस्रा स्त्रियाँ प्रकट करके दिखलायीं, जा प्रभुकी सवा कर रही थीं। जव इन्द्रक अनुचराने समुद्रतनया लक्ष्मीक समान अनुपम रूप-लावण्यकी राशि सहस्रा दवियाको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रभुकी सवा-पूजा करते देखा तो लज्जासे उनका सिर झुक गया। व श्रीहत होकर उनक शरीरसे निकलनवाली दिव्य सुगन्धस मोहित हो गय।

'तुमलाग इनमस किसी एक स्त्रीका, जो तुम्हारे अनुरूप हा ग्रहण कर लो।' भक्तप्राण नारायणने मुस्कराते हुए कहा। 'वह तुम्हार स्वर्गकी शाभा वढायेगी।'

'जैसी आज्ञा!' कहकर उन सवने प्रभुके चरणामे प्रणाम किया आर उनके द्वारा प्रकट की हुई स्त्रियामे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी उर्वशीको लकर वे स्वर्गलाक चले गये।

स्वर्गम उन्हाने दवराज इन्द्रको प्रणाम कर देवदेवेश नर-नारायणकी महिमाका गान किया तो सुराधिप चकित विस्मित आर भयभीत हो गये।

पुराणपुरुप नर-नारायण स्वय सर्वसमर्थ होकर भी सृष्टिम तपश्चर्याका आदर्श स्थापित करनेके लिय निरन्तर कठोर तप करते रहत हैं। काम, क्रोध और मोहादि शत्रु तपके महान् विघ्न हैं। अहकार आर क्रोधके दोपसे तपका क्षय होता है—यह नर-नारायण प्रभुने अपने जीवनसे सिखाया ह।

वात तबकी है जव अपने पिता हिरण्यकशिपुक शरीरान्तके वाद भक्तवर प्रह्लाद भगवान् नृसिहके आदेशसे पातालम रहने लगे। वहीं उनकी राजधानी थी। वे अत्यन्त धर्मपूर्वक शासन करते थे। दानवराज प्रह्लाद देवता ओर ब्राह्मणाक सच्चे भक्त थे। तपस्या करना, धर्मका प्रचार करना आर तीर्थाटन करना—यही उस समयके ब्राह्मणाका कार्य था। सभी वर्णोके लोग स्वधर्मका पालन तत्परतापूर्वक करते थे।

एक वारकी वात है, तपस्वी भृगुनन्दन च्यवनजी पवित्र नर्मदाके तटपर व्याहृतीश्वर तीर्थमे स्नान करने चले। मार्गम रेवा नदी मिली। महर्षि च्यवन उसके तटपर उतरने लग कि एक भयानक विपधरने उन्ह पकड लिया। विपधरक प्रयाससे ही वे पातालम पहुँच गये। विवश होकर ऋपि मन-ही-मन कमललोचन श्रीहरिका ध्यान करने लगे। ध्यान करते ही उनका सर्प-विप दूर हो गया और तपस्वी समझकर सर्पने भी भयवश उन्ह छोड दिया आर शापभयसे नाग-कन्याएँ ऋपिकी पूजा करने लगीं।

इसके अनन्तर महर्पि च्यवन दानवो और नागाकी पुरीमे जाकर वहाँका दृश्य देखने लग।

'भगवन्! आप यहाँ कैस पधारे?' दानवराज प्रह्लादकी उनपर दृष्टि पडी तो उन्होने ऋपिकी विधिवत् पूजा की और फिर पूछा—'सुरेश्वर इन्द्र हमलोगोसे शत्रुता रखते हैं। कहीं उन्हाने तो मेरा भेद लेनेक लिये आपको नही भेजा है? कृपापूर्वक सत्य बताइये।'

'राजन्! मैं भृगुका धर्मात्मा पुत्र च्यवन हूँ।' महर्पिन उत्तर दिया। 'में इन्द्रका दौत्य-कर्म क्या करने लगा? आप श्रीविष्णुक भक्त हें, मुझे भी वैसा ही समझिये।' और फिर उन्होने अपने पातालपुरीमे प्रविष्ट होनेकी सारी घटना उन्हे बता दी।

ऋपिके उत्तरसे सतुष्ट होकर प्रह्लादजीने उनसे पृथ्वीके पवित्र तीर्थोके सम्बन्धमे पूछा। महर्पि च्यवनके मुँहसे पृथ्वीक तार्थोका वर्णन सुनकर दानवन्द्र प्रह्लादने नैमिपारण्य जानका निश्चय कर लिया।

सहस्रा महावली दैत्याका समूह दानवराज प्रह्लादक

साथ नैमिषारण्य पहुँचा। वहाँ सबने स्नान किया। भक्तराज प्रह्लाद नैमिषारण्य तीर्थके कार्यक्रम पूरे कर रहे थे कि उन्हे कुछ ही दूरीपर एक विशाल वट-वृक्ष दिखायी दिया। वहाँ उन्होने विभिन्न प्रकारके सुतीक्ष्ण शर देखे।

'इस परम पवित्र तीर्थमे धनुर्बाणधारी व्यक्तिका क्या काम ?'

दानवेश्वर प्रह्लाद मनमे विचार कर ही रहे थे कि उन्हे सम्मुख कृष्ण-मृगचर्म धारण किये नर-नारायणके दर्शन हुए। उनकी अत्यन्त सुन्दर विशाल जटाएँ थीं। उनके सामने शार्ङ्ग और आजगव नामक दो चमकते हुए प्रसिद्ध धनुष तथा बाणपूरित तरकस रखे थे।

'तुमलोगाने यह क्या पाखण्ड रच रखा है?' ध्यानमग्न धर्मनन्दन नर-नारायणको देखकर क्रोधसे नेत्र लाल किये भक्त प्रह्लादने कहा। 'उत्कट तप और धनुर्बाणधारण, ऐसा आश्चर्य तो कहीं नहीं देखा। इस प्रकारके आडम्बरसे धर्मकी क्षति होती है। तुम्हे तो धर्माचरण ही उचित है।'

'दानवेन्द्र! तुम हमारी तपस्याकी व्यर्थ चिन्ता मत करो।' नारायण बोले। 'युद्ध और तप—दोनाम हमारी गति है। ब्राह्मणोकी व्यर्थ चर्चा उचित नहीं। तुम अपना मार्ग पकडो।'

'तपस्वियो! तुम्हे व्यर्थ अहकार उचित नहीं।' दैत्येन्द्र प्रह्लादने कहा। 'मैं दैत्याका राजा हूँ। धर्म-रक्षा मेरा कर्त्तव्य है। मेरे रहते इस पावन क्षेत्रमे तुम्हारा यह आचरण उचित नहीं। यदि तुम्हारे पास ऐसी कोई शक्ति है तो रणभूमिमे उसका प्रदर्शन करो।'

'तुम्हारी इस इच्छाकी पूर्ति हो जायगी।' भगवान् नरने तुरत उत्तर दिया। 'युद्धमे तुम मेरे सामने आ जाओ।'

'यद्यपि इन्द्रियजयी नर-नारायण कठोर तपस्वी हैं' अत्यन्त क्रुद्ध होकर अप्रतिम बलशाली वीर प्रह्लादने प्रतिज्ञा की—'तथापि मैं इन तपस्वियोका अवश्य पराजित करूँगा।'

प्रह्लादने धनुष उठा लिया और नरसे भयानक सग्राम होने लगा। पीछे नारायणने भी युद्धमे भाग लिया। दोनो पक्ष एक-दूसरेपर भयानक अस्त्रोका प्रहार करते रहे। उनका यह युद्ध इन्द्रसहित कितने ही देवता आकाशमें विमानपर बैठे चकित हो देख रहे थे। विश्ववन्द्य नर नारायण तथा दानवकुलभूषण प्रह्लादका युद्ध देवताओंके एक हजार वर्षतक चलता रहा, पर कोई पक्ष विचलित नहीं हुआ।

अन्तत लक्ष्मीसहित शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये, नवजलधरश्याम श्रीविष्णु प्रह्लादके आश्रमपर पधारे। श्रीभगवान्‌के चरणाम श्रद्धा-भक्तिपूर्ण प्रणाम और उनकी स्तुति कर भक्त प्रह्लादने भगवान् रमापतिसे कहा— 'भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो! तपस्वियासे दीर्घकालतक युद्ध करते रहनेपर भी मेरी विजय न होनेका हेतु समझमें नहीं आता। मैं अत्यन्त चकित हूँ।'

'इसम आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।' भगवान् विष्णुने उत्तर दिया। 'विख्यात जितात्मा तपस्वी नर और नारायण मेरे अशावतार हैं। तुम इन्हे किसी प्रकार भी पराजित नहीं कर सकते। अतएव मुझमे भक्ति रखते हुए पाताल चले जाओ। इन परमादर्श महातपस्वियोका विरोध उचित नहीं।'

प्रभुका आदेश पाकर दैत्येन्द्र प्रह्लाद असुर-यूथोके साथ अपनी राजधानीके लिये प्रस्थित हुए और नर-नारायण अपनी तपश्चर्यामें लग गये।

× × ×

बात उस समयकी है, जब नर-नारायणने धर्ममय रथपर आरूढ होकर गन्धमादन पर्वतपर दीर्घकालीन महान् तप किया था। उसी समय प्रजापति दक्षने भी यज्ञ प्रारम्भ किया। उक्त यज्ञमे रुद्रको भाग न देनेके कारण दधीचिके कहनेसे रुद्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्षका यज्ञ विध्वस करनेके लिये अपना प्रज्वलित त्रिशूल फेका। यह तीक्ष्ण त्रिशूल दक्ष-यज्ञका विनाश करते हुए अत्यन्त वेगसे बदरिकाश्रममे जाकर नारायणके वक्षमे लगा। उस प्रज्वलित त्रिशूलकी लपटसे नारायणकी जटा मूँजके रगकी हो गयी। इससे उनका नाम 'मुञ्जकेश' हुआ।

देवेश नारायणके हुकारसे प्रतिहत होकर वह त्रिशूल भगवान् शिवके हाथमे वापस चला गया। इसपर रुद्र अत्यन्त क्रुद्ध हुए और तप करते हुए नर-नारायणपर टूट पडे।

तपस्विश्रेष्ठ नारायणने रुद्रके आकस्मिक आक्रमणसे क्षुब्ध हुए विना ही रुद्रका कण्ठ पकड लिया। इससे उनका कण्ठ नीला पड गया और रुद्र 'नीलकण्ठ' नामस प्रख्यात हुए।

फिर नरन एक अभिमन्त्रित सीक रुद्रपर छोडी। वह सींक एक विशाल तीक्ष्ण परशुके रूपमे परिणत हो गयी, पर उसे रुद्रने खण्डित कर दिया। इस कारण उनका नाम 'खण्डपरशु' हुआ।

श्रीनारायण और रुद्रके भयानक युद्धस त्रैलाक्य काँपने लगा। भयानक अपशकुन प्रकट हानेपर पद्मयोनि विधाता वहाँ पहुँचे और रुद्रकी स्तुति करते हुए उन्होन कहा—

नरो नारायणश्चैव जाता धर्मकुलोद्वहौ।
तपसा महता युक्तो देवश्रेष्ठो महाव्रतौ॥
अह प्रसादजस्तस्य कुतश्चित् कारणान्तरे।
त्व चैव क्रोधजस्तात पूर्वसर्गे सनातन ॥
मया च सार्धं वरद विबुधेश्च महर्षिभि ।
प्रसादयाशु लोकाना शान्तिर्भवतु मा चिरम्॥

(महा० शान्ति० ३४२।१२७—१२९)

'धर्मकुलम उत्पन्न हुए ये दाना महाव्रती दवश्रेष्ठ नर और नारायण महान् तपस्यासे युक्त हैं। किसी निमित्तसे उन्हीं नारायणके कृपाप्रसादसे मेरा जन्म हुआ है। तात! आप भी पूर्व सर्गम उन्हीं भगवान्के क्रोधसे उत्पन्न हुए सनातन पुरुष हैं। वरद! आप देवताओ और महर्षिया तथा मरे साथ शीघ्र इन भगवान्को प्रसन्न कीजिये, जिससे सम्पूर्ण जगत्म शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो।'

ब्रह्माकी वाणी सुनकर रुद्र सर्वसमर्थ नारायणको प्रसन्न कर उनकी शरणम गये। वरदायक नारायणने प्रसन्न हाकर रुद्रका प्रेमालिङ्गन करते हुए कहा—'प्रभा! मेरी भक्ति करनेवाला आपका भक्त है और आपका सतुष्ट करनवाला मुझ तुष्ट करता है। मुझम और आपम काई अन्तर नहीं। हम दोना एक ही हैं।'*

फिर आदिदेव नारायणन कहा—'मर वक्षम आपके शूलका यह चिह्न आजसे 'श्रीवत्स' क नामसे प्रसिद्ध हागा और आपके कण्ठम मेरे हाथका चिह्न अङ्कित हानेक कारण आप 'श्रीकण्ठ' कहे जायँगे।'

इस प्रकार भगवान् नारायणन रुद्रदेवको सतुष्ट कर उन्हं विदा किया और स्वय तपश्चरणम लग गये।

परम तपस्वी दवाधिदेव नर-नारायणने देवताआकी सहायताके लिये भी रणाङ्गणमे अपने अद्भुत युद्धकौशल तथा अनुपम शूरताका परिचय दिया था। उनके युद्धमे प्रवश करते ही दैत्यकुलम हाहाकार मच गया था।

समुद्र-मन्थनके पश्चात् जब अमृत असुराके हाथसे निकल गया, तब वे अत्यन्त कुपित हुए और सगठित होकर दवताआसे सग्राम करने लगे। क्षीरसागरक तटपर भयानक युद्ध छिडा। देवता और दैत्याम प्रचण्ड युद्ध हा ही रहा था कि उनकी सहायताक लिये भगवान् विष्णुके दाना रूप नर ओर नारायण भी समर-क्षेत्रम आ गये। भगवान् नरके हाथम दिव्य धनुप और सुतीक्ष्ण शर दखकर नारायणने सुदर्शनचक्रका स्मरण किया। देवताआके साथ नर-नारायणके प्रबल आक्रमणसे दैत्यकुल छटपटाकर मृत्यु-मुखम जाने लगा। देत्य अत्यन्त कुपित होकर देवताआपर आकाशस पर्वतो एव विशाल शिलाखण्डोकी वृष्टि करने लग। उक्त पर्वता एव शिलाआके वर्पणसे वनोसहित धरती काँपने लगी और देवता व्याकुल एव निराश होन लगे।

तब भगवान् नरने सुवर्ण-भूपित अग्रभागवाले पखयुक्त तीक्ष्ण शरासे पर्वता एव शिलाखण्डाको चूर-चूर कर दिया। सम्पूर्ण आकाश तेजस्वी नरके बाणास आच्छादित हो गया और प्रज्वलित विशाल अग्रिपिण्डकी भाँति सुदर्शनचक्रस भस्म हाते हुए दैत्य अपने प्राण लेकर खार समुद्रम प्रवश कर गये।

इस विजयसे दवता वड प्रसन्न हुए। दवताआसहित सुरन्द्रने अमृतकी निधि रक्षाकी दृष्टिस भगवान् नरक हाथाम दे दी।

× × ×

क्राधादि वृत्तियास रहित हाकर भगवान् नर-नारायण सदा तपम हा लगे रहत हैं। तपस्याकी अद्भुत शक्तिका आदर्श व भूमण्डलक मनुष्याक सम्मुख रखत हैं, किंतु कभी-कभी शिक्षा दनक लिय भी उन्हं युद्ध करना पडता है।

* यस्त्वा वत्ति स मा वत्ति यस्त्वामनु स मामनु। नावयोरन्तर किञ्चिन्मा तेऽभूद् बुद्धिरन्यथा॥ (महा० शान्तिपर्व ३४२।१३३)

क्षत्रिय-धर्म और राजनीतिके अनुसार विनीत-बुद्धि, लोभशून्य अहंकाररहित, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, कोमल-स्वभाव तथा सौम्य होकर प्रजापालनका उपदेश देते हुए भगवान् नरने दण्डोद्भवसे कहा—

अनुज्ञातः स्वस्ति गच्छ मैवं भूयः समाचरेः ।
कुशलं ब्राह्मणान् पृच्छेरावयोर्वचनाद् भृशम्॥

(महा० उद्योग० ९६।३८)

'मैंने तुम्हें आज्ञा दे दी, तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, फिर ऐसा बर्ताव न करना। विशेषतः हम दोनोंके कहनेसे तुम ब्राह्मणोंसे उनका कुशल-समाचार पूछते रहना।'

सम्राट् दण्डोद्भवने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रीनर-नारायणके चरणोंमें प्रणाम किया और अपनी राजधानीमें लौटकर अहंकार-शून्य चित्तसे धर्मपूर्वक शासन करने लगे।

× × ×

एक बार आदिदेव नर-नारायणके दर्शनार्थ देवर्षि नारद गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे। देवता और पितरोंका पूजन करनेके अनन्तर जब भगवान् नर-नारायणने देवर्षि नारदको देखा तो शास्त्रोक्त विधिसे उनकी पूजा की।

शास्त्रधर्मके विस्तार और इस आश्चर्यपूर्ण व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीने भगवान् नर-नारायणके चरणोंमें प्रणाम किया।

'प्रभो! सम्पूर्ण वेद, शास्त्र और पुराण आपकी ही महिमाका गान करते हैं।' नारायण-भक्त श्रीनारदजीने श्रद्धापूर्वक निवेदन किया। 'आप अजन्मा सनातन और निखिल प्राणि-जगत्के माता-पिता हैं। आप ही जगद्गुरु हैं। सम्पूर्ण देवता तथा मनुष्य आपकी ही उपासना करते हैं, फिर आप किसकी पूजा करते हैं, समझमें नहीं आता। बतलानेकी कृपा कीजिये।'

'ब्रह्मन्! यह अत्यन्त गोपनीय विषय है।' श्रीभगवान् बोले। 'यह सनातन रहस्य किसीसे कहनेयोग्य नहीं, किंतु तुम्हारे-जैसे अत्यन्त प्रेमी भक्तसे छिपाना भी उचित नहीं। अतएव मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो।' श्रीभगवान्ने आगे कहा—

तां योनिमावयोर्विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ।
आवाभ्यां पूज्यतेऽसौ हि दैवे पित्र्ये च कल्प्यते॥
नास्ति तस्मात् परोऽन्यो हि पिता देवोऽथ वा द्विज।
आत्मा हि नः स विज्ञेयस्ततस्तं पूजयावहे॥
दैवं पित्र्यं च सततं तस्य विज्ञाय तत्त्वतः ।
आत्मप्राप्तानि च ततो प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः ॥

(महा० शान्ति० ३३४।३२-३३, ३८)

'वह सदसत्स्वरूप परमात्मा ही हम दोनोंकी उत्पत्तिका कारण है—इस बातको जान लो। हम दोनों उसीकी पूजा करते तथा उसीको देवता और पितर मानते हैं। ब्रह्मन्! उससे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है। वे ही हमलोगोंकी आत्मा हैं, यह जानना चाहिये, अतः हम उन्हींकी पूजा करते हैं। श्रेष्ठ द्विज उसीके उद्देश्यसे किये जानेवाले देवता तथा पितृ-सम्बन्धी कार्योंको ठीक-ठीक जानकर अपनी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेते हैं।'

'आपने कृपापूर्वक गोपनीय विषय भी मुझपर प्रकट कर दिया, इसके लिये मैं आपका चिरकृतज्ञ रहूँगा।' नारदजीने कहा। 'मुझे आपकी कृपाका ही सहारा है। अब मैं श्वेतद्वीपस्थित आपके आदिविग्रहका दर्शन करना चाहता हूँ। आप आज्ञा प्रदान करें।'

भगवान् नारायणने श्रीनारदजीकी पूजा की और फिर उन्हें वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी।

कुछ दिनोंके अनन्तर ब्रह्मपुत्र नारदजी जब अत्यन्त अद्भुत श्वेतद्वीपका तथा प्रभुका दुर्लभ दर्शन करके लौटे, तब पुनः गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके समीप पहुँचे। वे भगवान् नर-नारायणके परम तेजस्वी अद्भुत रूपका दर्शन कर कृतार्थताका अनुभव करते हुए सोचने लगे—'अरे, मैंने श्वेतद्वीपमें भगवान्की सभाके भीतर जिन सर्वभूतवन्दित सदस्योंका दर्शन किया था, ये दोनों श्रेष्ठ ऋषि भी तो वैसे ही हैं।'

भगवान् नर-नारायणने नारदजीका स्वागत कर उनका कुशल-समाचार पूछा। नारदजीने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् नर-नारायणकी परिक्रमा की और उनके सम्मुख एक कुशासनपर बैठे। भगवान् नर-नारायण भी पाद्यार्घ्यादिसे नारदजीका पूजन कर उनके सामने अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये।

'देवर्षे!' नर-नारायणने अत्यन्त मधुर वाणीमें नारदजीसे पूछा—'तुमने श्वेतद्वीपमें जाकर हम दोनोंके कारण परब्रह्म परमेश्वरका दर्शन कर लिया?'

'भगवन्! अत्यन्त दया कर विश्वरूपधारी, अविनाशी परम पुरुषने मुझे अपना परम दुर्लभ दर्शन दिया। निखिल ब्रह्माण्ड उन अचिन्त्य, अनन्त, अपरिसीम, महामहिम परमात्मामे ही स्थित है।' श्रीनारदजीने कहा। श्रीभगवान्ने मुझे सम्पूर्ण धर्म, क्षेत्रज्ञ एव भावी अवताराके सम्बन्धमे भी बताया था। ओर प्रभो!

अद्यापि चेन पश्यामि युवा पश्यन् सनातनौ॥
यैर्लक्षणैरुपेत स हरिरव्यक्तरूपधृक्।
तैर्लक्षणैरुपेतौ हि व्यक्तरूपधरौ युवाम्॥
(महा० शान्ति ३४३।४८-४९)

'मै इस समय भी आप दोना सनातन पुरुषाको देखकर यहाँ श्वेतद्वीपनिवासी भगवान्की झाँकी कर रहा हूँ। वहाँ मैंने अव्यक्तरूपधारी श्रीहरिको जिन लक्षणासे सम्पन्न देखा था, आप दोना व्यक्तरूपधारी पुरुष भी उन्हीं लक्षणासे सुशोभित है।'

इसके अनन्तर नारदजीने कहा—'इतना ही नहीं उन परमात्माके समीप मैने आप दोना महापुरुषाको भी देखा था और उन परम प्रभुके आदेशसे ही मैं यहाँ पुन आपके समीप आया हूँ। त्रैलोक्यमे उन महाप्रभुके सदृश आपके सिवा अन्य कोई नहीं दीखता।'

'तुमपर श्रीभगवान्का बडा अनुग्रह है जो उन्होने तुम्हे अपना दर्शन दे दिया' नर-नारायण बोले। 'परमात्माके उक्त स्थलमे हम दोनाके अतिरिक्त तुम्हारे पिता कमलयोनि ब्रह्माको भी प्रवेशका अधिकार नहीं है। उन प्रभुको भक्तके समान और कोई प्रिय नहीं। अपने मनको एकाग्र कर लेनेवाले शौच-सताप आदि नियमासे सम्पन्न, जितेन्द्रिय भक्त ही अनन्यभावसे उनके चरणकमलाकी शरण ग्रहणकर उन वासुदेवमे प्रवेश करते हैं। हम दोना धर्मके यहाँ अवतार ग्रहणकर इस बदरिकाश्रममे कठोर तपश्चर्यामे लगे हैं।'

ये तु तस्यैव देवस्य प्रादुर्भावा सुरप्रिया ।
भविष्यन्ति त्रिलोकस्थास्तेषा स्वस्तीत्यथो द्विज॥
(महा० शान्ति ३४४।२१)

'ब्रह्मन्! उन्हीं भगवान् परमदेव परमात्माके तीनो लोकामे जो देवप्रिय अवतार होनेवाले हैं उनका सदा ही परम मङ्गल हो—यही हमारी इस तपस्याका उद्देश्य है।'

भगवान् नर-नारायणने आगे कहा—'ब्रह्मन्! तुमने श्वेतद्वीपमे भगवान्के दर्शन और उनसे वार्तालाप किया यह सब हम विदित है।'

नर और नारायणकी यह बात सुनकर नारदजी उनके चरणामे गिर पडे और फिर वहाँ उनके चरणामे रहकर भगवान् वासुदेवकी एव नर-नारायणकी आराधनामें लग गये। उन्हाने नारायण-सम्बन्धी अनेक मन्त्राका जप करते हुए भगवान् नर-नारायणके पवित्रतम आश्रममे एक हजार दिव्य वर्षोतक निवास किया।

× × ×

द्वापरमे भू-भारहरण करनेके लिये अवतरित होनेवाले कमलनयन श्रीकृष्ण और उनके प्राणप्रिय सखा पाण्डुनन्दन अर्जुनके रूपमे भगवान् नर-नारायणने ही अवतार ग्रहण किया था। द्वारकामे ब्राह्मणके मृतपुत्राको लानेके लिये जब मधुसूदन कुन्तीपुत्र अर्जुनके साथ शेषशायी अनन्त भगवान्के पास पहुँचे, तब ब्राह्मणके मृतपुत्राको लौटाते हुए उन्हाने स्वय उन दोनासे कहा था—

द्विजात्मजा मे युवयार्दिदृक्षुणा
मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्
हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे॥
पूर्णकामावपि युवा नरनारायणावृषी।
धर्ममाचरता स्थित्यै ऋषभौ लोकसग्रहम्॥
(श्रीमद्भा० १०।८९।५९-६०)

'श्रीकृष्ण और अर्जुन! मैंने तुम दोनाको देखनेके लिये ही ब्राह्मणके बालक अपने पास मँगा लिये थे। तुम दोनाने धर्मकी रक्षाके लिये मेरी कलाओके साथ पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया है पृथ्वीके भाररूप दैत्योका सहार करके शीघ्र-से-शीघ्र तुमलोग फिर मेरे पास लौट आओ। तुम दोना ऋषिवर नर और नारायण हो। यद्यपि तुम पूर्णकाम और सर्वश्रेष्ठ हो, फिर भी जगत्की स्थिति और लोक-सग्रहके लिये धर्मका आचरण करो।'

× × ×

कौरवाकी सभामे जब दुश्शासन द्रौपदीका वस्त्र खींचने जा रहा था उस समय लाज बचानेके लिये द्रौपदीने श्रीकृष्णके साथ भगवान् नरको पुकारा था—

'कृष्ण च विष्णु च हरि नर च त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी।'

(महा०, सभा० ६८।४६)

'यज्ञसे उत्पन्न हुई कृष्णा अपनी रक्षाके लिये श्रीकृष्ण, विष्णु, हरि ओर नर आदि भगवन्नामाको जोर-जोरसे पुकार रही थी।'

अन्तकालमे जिनके प्राणाका निष्क्रमण ग्रीवासे हाता है, वे भाग्यवान् ऋषियामे परमात्तम नरकी सनिधि-लाभ करते हैं—

'ग्रीवया तु मुनिश्रेष्ठ नरमाप्नोत्यनुत्तमम्।'

(महा०, शान्ति० ३१७।५)

भगवान् नर-नारायणका अवतार कल्पपर्यन्त तपश्चर्याके लिये हुआ है। वे प्रभु आज भी बदरिकाश्रममे तप कर रहे हैं। अधिकारी पुरुष उनके दर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं।

~~~o~~~

(५) भगवान् कपिलमुनि

नान्यत्र मद्भगवत प्रधानपुरुषेश्वरात्।
आत्मन सर्वभूताना भय तीव्र निवर्तते॥

(श्रीमद्भा० ३।२५।४१)

'मैं साक्षात् भगवान् हूँ, प्रकृति और पुरुषका भी प्रभु हूँ तथा समस्त प्राणियाका आत्मा हूँ, मेरे सिवा और किसीका आश्रय लेनेसे मृत्युरूप महाभयसे छुटकारा नहीं मिल सकता।'—भगवान् कपिल

सृष्टिके प्रारम्भिक पाद्मकल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरकी बात है। लोकपितामह चतुराननको सृष्टिसवर्द्धनकी ही चिन्ता थी। उन्होने स्वायम्भुव मनुको शतरूपासे विवाह करनेकी प्रेरणा की। तदनन्तर स्रष्टाने अपने मानसपुत्र महर्षि कर्दमको भी प्रजा-वृद्धिका आदेश दिया। महर्षि कर्दमने पिताकी आज्ञा स्वीकार की और बिन्दुसरतीर्थपर जाकर तप करने लगे। वे अपनी चित्तवृत्तियोको एकाग्र कर धारणा-ध्यानसे ऊपर समाधिमें स्थित होकर त्रैलोक्यवन्दित शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीहरिके भुवनमोहन सौन्दर्यका दर्शन कर आप्यायित हो रहे थे। उन्हे बाह्य जगत्का किचित् भी ज्ञान नहीं था। इस प्रकार दस सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर अचानक महर्षिके हृदयसे उनकी प्राणप्रिय ध्यानमूर्ति अदृश्य हो गयी। व्याकुलतासे उनके नेत्र खुले तो वे धन्यातिधन्य परम कृतार्थ हो गये। महर्षि कर्दमके सम्मुख उनकी ध्यानकी वही मूर्ति, उनक वे ही परम ध्येय नीलात्पलदलश्याम, पीताम्बरधारी श्रीहरि उनके सम्मुख प्रत्यक्ष खडे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। महर्षि प्रभुके चरणकमलाम दण्डकी भाँति लोट गये ओर फिर हाथ जोडकर प्रेमपूर्ण हृदयसे अत्यन्त मधुर वाणीमे स्तुति करते हुए कहने लगे—

तथा स चाह परिवोढुकाम
समानशीला गृहमेधधेनुम्।
उपेयिवान्मूलमशेषमूल
दुराशय कामदुघाङ्घ्रिपस्य॥
त त्वानुभूत्योपरतक्रियार्थं
स्वमायया वर्तितलोकतन्त्रम्।
नमाम्यभीक्ष्ण नमनीयपाद-
सरोजमल्पीयसि कामवर्षम्॥

(श्रीमद्भा० ३।२१।१५, २१)

'प्रभो! आप कल्पवृक्ष हैं। आपके चरण समस्त मनोरथोको पूर्ण करनेवाले हैं। मेरा हृदय काम-कलुषित है। मैं भी अपने अनुरूप स्वभाववाली और गृहस्थ-धर्मके पालनमे सहायक शीलवती कन्यासे विवाह करनेके लिये आपके चरणकमलाकी शरणमे आया हूँ। नाथ! आप स्वरूपसे निष्क्रिय होनेपर भी मायाके द्वारा सारे ससारका व्यवहार चलानेवाले हैं तथा थोडी-सी उपासना करनेवालपर भी समस्त अभिलषित वस्तुआकी वर्षा करते रहते हैं। आपके चरणकमल वन्दनीय हैं, मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।'

'मुने! जिसके लिये तुम दीर्घकालसे मरी आराधना कर रहे हो, वह अवश्य पूरी होगी।' भक्त-प्राणधन श्रीहरिने मुस्कराते हुए कर्दमजीसे कहा। सप्तद्वीपा वसुन्धराके यशस्वी सम्राट् स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्तमे रहकर पृथ्वीका
~~~

शासन करते हैं। वे परसा ही अपनी रूप-यौवन-गुण-शील-सम्पन्ना देवहूति नामक कन्याको लेकर अपनी साध्वी पत्नी शतरूपाके साथ यहाँ आयगे। वह राजकन्या सर्वथा तुम्हारे याग्य है। महाराज स्वायम्भुव मनु उसे तुम्हे सविधि अर्पण कर देगे। उस महिमामयी आदर्श देवीकी कोखसे नो कन्याएँ उत्पन्न होगी। वे कन्याएँ मरीच्यादि ऋषियासे विवाहित होकर स्रष्टाके अभीष्ट सृष्टि-सवर्द्धनम सहायक होगी। इसक अनन्तर सर्वान्तर्यामी, सर्वसमर्थ, करुणावरुणालय प्रभुने कहा—

त्व च सम्यगनुष्ठाय निदश म उशत्तम।
मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मा प्रपत्स्यसे॥
सहाह स्वाशकलया त्वद्वीर्येण महामुन।
तव क्षेत्रे देवहूत्या प्रणष्ये तत्त्वसहिताम्॥

(श्रीमद्भा० ३।२१।३० ३२)

'तुम भी मेरी आज्ञाका अच्छी तरह पालन करनेसे शुद्धचित्त हो फिर अपने सव कर्मोका फल मुझे अर्पणकर मुझका ही प्राप्त होआगे। महामुन! में भी अपने अश-कलारूपस तुम्हारे वीर्यद्वारा तुम्हारी पत्नी देवहूतिके गर्भसे अवतीर्ण होकर साख्यशास्त्रकी रचना करूँगा।'

इतना कहकर श्रीहरि गरुडारूढ हो स्वधाम पधारे ओर महर्षि कर्दम वहीं बिन्दुसरपर महाराज स्वायम्भुव मनुक आगमनकी प्रतीक्षा करने लग। उस समय पुष्प एव फलाक भारसे लदे पवित्र वृक्ष-लताआसे घिरे बिन्दुसरकी अद्भुत शाभा हो रही थी। वहाँ अनेक प्रकारके सुन्दर पक्षी निर्द्वन्द्व हाकर प्रसन्नतापूर्वक कलरव कर रह थे।

आदिराज महाराज मनु अपनी भाग्यशालिनी पुत्री दवहूतिक साथ उक्त परम पावन तीर्थम पहुँचे तो उन्हाने अग्निहात्रसे निवृत्त हुए महामुनि कदमका दखा। व तपकी सजीव मूर्ति जटा-जूटमण्डित तप्तकाञ्चनकाय ऋषिको दखकर आनन्दविह्वल हा गय ओर उन्हाने उनक चरणाम प्रणाम किया। महर्षिन आशीर्वाद दकर उनसे आश्रमम आनका हतु जानना चाहा।

'मुन! यह प्रियव्रत आर उत्तानपाद—नामक दा वन्धुआकी वहन मरी प्राणप्रिया पुत्री दवहूति ह।' महाराज स्वायम्भुव मनुन निवदन किया। 'इसन दवर्षि नारदक मुखस आपक रूप आयु, विद्या शाल एव तप आदिका वर्णन सुनकर आपको पतिरूपम प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया है। में अत्यन्त आदर एव श्रद्धाके साथ इसे आपके करकमलामे समर्पित करने आया हूँ।'

'में परम प्रतापी महाराज स्वायम्भुव मनुकी परम लावण्यमयी, सर्वसद्गुणसम्पन्ना पवित्र कन्याका पाणिग्रहण अवश्य करूँगा।' महर्षिने स्पष्ट शब्दाम उत्तर दिया। 'और जबतक इसके सतान नहीं हो जायगी, तवतक मैं गृहस्थ धर्मका पालन भी करूँगा, किंतु सतान हानेके बाद मैं परम पिता परमात्माको प्रसन्न करनेके लिय तपश्चरणार्थ वनम चला जाऊँगा। इसे आप समझ ले।'

यह कहकर महर्षि कर्दम मौन हो गये। पर अपनी पुत्री देवहूतिकी प्रसन्नताका अनुभव कर महाराज स्वायम्भुव मनु ओर शतरूपाने उसका वहीं महर्षिक साथ सविधि विवाह कर दिया और वस्त्राभूषण तथा पात्र आदि अत्यधिक मात्राम दिय।

पुत्रीसे बिछुडते समय मनु और शतरूपाके नेत्र बरसन लगे, किंतु महर्षि कर्दमके आश्वासनसे धैर्य धारणकर वे रथपर बैठ ओर पुण्यतोया सरस्वती नदीक दोनो तटापर ऋषि-मुनियाके आश्रमाकी शोभा देखते हुए अपनी राजधानी बर्हिष्मतीपुरीके लिये प्रस्थित हुए।

भगवान्‌की प्ररणासे ही महर्षि कर्दमक मनम कामनाका अकुर उगा था, अन्यथा वे परम तपस्वी सर्वथा नि स्पृह थे। मनानुकूल पत्नीक लिय उन्होन दीर्घकालतक तप किया पर विवाहमे भी उनकी किंचित् भोगबुद्धि नहीं थी। इधर विवाह हुआ आर उधर महर्षि तपश्चरणम लग गय पर राजकुलकी सुख-सुविधाम पली परमसाध्वी सुकुमारी देवहूतिने अपना तन, मन आर प्राण—सभी पतिकी सवाम लगा दिये। वे अपन पतिदेवकी छोटी-स-छाटी सुविधाआका भी ध्यान रखती थी। समिधाएँ, कुश, पुष्प, फल तथा जल वनम दूरतक जाकर वे ढूँढ-ढूँढकर ल आतीं आश्रमका झाड-बुहार एव गामयसे लीपकर स्वच्छ ओर पवित्र रखतीं। इस प्रकार पतिकी सेवाम उनका सुकामल सुन्दर शरार सूखकर काला पड गया। उनक काल सुचिक्कण नागिन-तुल्य लम्ब कश जटाआम वदल गय। व भी वल्कलधारिणी तपस्विनी हा गयीं।

'राजकुमारी!' एक दिन अत्यन्त प्रसन्न हाकर महर्षिन

अपनी सहधर्मिणी देवहूतिसे कहा। 'तुमने मेरी सेवाके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। अब मैं तुम्हें इसका प्रतिदान देना चाहता हूँ।'

महर्षिके योग-प्रभावसे अत्यन्त अद्भुत दिव्य विमान प्रकट हुआ। उसमें सभी उपकरण स्वर्ण एवं बहुमूल्य रत्नोंके थे। उपवन, सरोवर, शयन-कक्ष, विश्राम-कक्ष, भोजनालय आदि सभी अलौकिक थे। सहस्रों अलौकिक दास-दासियाँ भी थीं। दासियोंने उन्हें दिव्य गन्धयुक्त अङ्गराग लगाकर दिव्यौषधियोंके जलोंसे स्नान कराया। दुर्लभ वस्त्राभरण धारणकर भगवती देवहूति अपने परम तपोधन पति कर्दमजीके साथ विमानपर आरूढ हुईं।

विमानमें सभी लोकोत्तर ऐश्वर्य विद्यमान थे। उस अद्भुत विमानपर निवास कर दुर्लभ सुखोंका उपभोग करते हुए महर्षिने मेरु पर्वतकी घाटियोंमें विहार किया, जो लोकपालोंकी विहारभूमि है। इस तेजोमय विमानपर महर्षि अपनी सती धर्मपत्नी देवहूतिके साथ वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्र और चैत्ररथ आदि अनेक देवोपवनों, मानस-सरोवर तथा सभी लोकोंमें विचरते हुए विहार करते रहे। इस प्रकार अपनी प्राणप्रिया देवहूतिको समस्त वसुन्धराका परिभ्रमण कराकर महर्षि कर्दम अपने आश्रमपर लौट आये। देवहूतिके नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वे कन्याएँ अनिन्द्य सुन्दरी थीं और उनके प्रत्येक अङ्गसे लाल कमलकी सुगन्ध निकल रही थी।

'अब मैं अपने कथनानुसार त्यागपूर्ण जीवन एवं तपश्चर्याके लिये वनमें जाऊँगा।' महर्षि कश्यपने अपनी परम सुशीला धर्मपत्नी देवहूतिसे स्पष्ट कह दिया। 'तुम्हारे पिताजीके सम्मुख ही यह निश्चय हो गया था।'

देवी देवहूति अधीर हो गयीं। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। उनके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये, किंतु अपने मनोभावोंको दबाकर उन्होंने अत्यन्त प्रेमसे मुस्कराते हुए मधुर वाणीमें कहा—'भगवन्! आपकी प्रतिज्ञा अक्षरशः पूरी हुई, तब भी मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मुझे निर्भय और निश्चिन्त करें। मैं दुर्बल स्त्री हूँ। इन नौ कुमारियोंको सत्पात्रोंके हाथों समर्पित करना है और आपके वन-गमनके पश्चात् मेरे जीवन-मृत्युका दुःख-निवारण करनेवाला भी कोई होना चाहिये', इसके अनन्तर उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक अपने सर्वसमर्थ विरक्त पतिसे निवेदन किया—

> नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
> न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥
> साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम्।
> यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात्॥
>
> (श्रीमद्भा० ३।२३।५६-५७)

'संसारमें जिस पुरुषके कर्मोंसे न तो धर्मका सम्पादन होता है, न वैराग्य उत्पन्न होता है और न भगवान्‌की सेवा ही सम्पन्न होती है, वह पुरुष जीते ही मुर्देके समान है। अवश्य ही मैं भगवान्‌की मायासे बहुत ठगी गयी, जो आप-जैसे मुक्तिदाता पतिदेवको पाकर भी मैंने संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा नहीं की।'

'निर्दोष प्रिये! देवी देवहूतिकी वैराग्यमयी वाणी सुनकर दयालु महर्षि कर्दम प्रसन्न हो गये और उसी समय उन्हें जगत्पति श्रीविष्णुके वचनकी स्मृति हो आयी। उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'तुम सर्वथा निश्चिन्त हो जाओ। मेरा साथ व्यर्थ नहीं जायगा। तुम्हारे अनेक प्रकारके व्रत सफल होकर रहेंगे। तुम संयम, नियम और तप करती हुई भी भगवान्‌का श्रद्धापूर्वक भजन करो। दान और प्रत्येक धर्मका पालन करो। साक्षात् श्रीहरि तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर मेरा, तुम्हारा और जगत्‌का अशेष मङ्गल करेंगे।'

अपने परम तपस्वी पतिके वचनपर सुदृढ़ [illegible] कारण महिमामयी माता देवहूतिकी प्रसन्नता [illegible] थी। वे प्राणपणसे अखिलभुवनपति [illegible] चिन्तन, भजन-कीर्तन, पूजन एवं [illegible]। उनका मन, बुद्धि, वाणी और [illegible] परमात्माका ही परम प्रेमपात्र [illegible]।

अन्ततः परम पुनीत [illegible]। [illegible] एवं सरिताओंके जल [illegible]-सुगन्ध समीर बहने लगा। [illegible] आकाशमें मङ्गल [illegible]। [illegible] सुरगण दिव्य [illegible]। [illegible] शालिनी माता [illegible] अवतीर्ण [illegible]।

कुछ दिना बाद महर्षि कर्दमने लोकस्रष्टा ब्रह्माके आदेशानुसार अपनी पवित्र-कन्याआमसे कला नामकी कन्या महर्षि मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको, हविर्भू पुलस्त्यको, गति पुलहको, क्रिया क्रतुको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको और शान्ति अथर्वाऋषिको सविधि समर्पित कर दी। कन्याएँ प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने पतियाके साथ चली गयीं।

कुछ समय बाद महर्षि कर्दम अपने पुत्रके रूपम अवतरित ज्ञानावतार कपिलजीके समीप पहुँचे। उस समय भगवान् कपिल एकान्तम ध्यानमग्न बेठे हुए थे। महर्षिने उनके चरणोमे आदरपूर्वक प्रणाम किया तो वे सकोचम पड गये। इसपर महर्षिने उनकी स्तुति करते हुए कहा—

त्वा सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाद्धा
सदाभिवादार्हणपादपीठम् ।
ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोध-
वीर्यश्रिया पूर्त्तमह प्रपद्ये॥
(श्रीमद्भा० ३। २४। ३२)

'आपका पाद-पीठ तत्त्वज्ञानकी इच्छासे युक्त विद्वानाद्वारा सर्वदा वन्दनीय है तथा आप ऐश्वर्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य और श्री—इन छहो ऐश्वर्योंसे पूर्ण हैं। मैं आपकी शरण हूँ।'

फिर उन्होने कहा—'प्रभो! आपके अनुग्रहसे मेरी सारी कर्मराशि समाप्त हो गयी। मैं देव-ऋषि-पितृ-ऋणसे मुक्त हो गया। अब मेरा करणीय कुछ शेष नहीं रहा। अब तो मैं सर्वस्व त्यागकर सन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि आपका चिन्तन करता हुआ शान्तिपूर्वक जीवनके शेष श्वास पूरे कर दूँ। आपने कृपापूर्वक मरे यहाँ पुत्ररूपमे अवतार ग्रहण किया, यह आपकी दयालुताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अब आप मुझे आज्ञा प्रदान कर।

अत्यन्त विरक्त एव परम कृतार्थ महर्षि कर्दमको सदुपदेश देते हुए भगवान् कपिलने उनसे कहा—

गच्छ काम मयाऽऽपृष्टो मयि सन्यस्तकर्मणा।
जित्वा सुदुर्जय मृत्युममृतत्वाय मा भज॥
मामात्मान स्वयन्ज्योति सर्वभूतगुहाशयम्।
आत्मन्येयात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि॥
(श्रीमद्भा० ३। २४। ३८-३९)

'मुने! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम इच्छानुसार जाओ और अपने सम्पूर्ण कर्म अर्पण करते हुए दुर्जय मृत्युको जीतकर मोक्षपद प्राप्त करनेक लिये मेरा भजन करो। मैं स्वयप्रकाश और सम्पूर्ण जीवाके अन्त करणाम रहनेवाला परमात्मा हो हूँ। अत जब तुम विशुद्ध बुद्धिके द्वारा अपने अन्त करणमें मेरा साक्षात्कार कर लागे, तब सब प्रकारके शोकासे छूटकर निर्भय पद (मोक्ष) प्राप्त कर लागे।'

इसके अनन्तर श्रीभगवान्ने कहा—'मैं अपनी परमपुण्यमयी सरला जननीको भी तत्त्वज्ञानका उपदश करूँगा, जिससे उसे आत्मज्ञान प्राप्त हो जायगा और वह सहज ही इस भवाटवीके पार अनन्त अपरिसीम आनन्दसिन्धुमें सदाके लिये निमज्जित हो जायगी।'

महर्षि कर्दमने भगवान् कपिलकी परिक्रमा की और बार-बार उनके चरणोमे प्रणाम कर निस्सङ्गभावसे विचरण करनेके लिये चले गये। समदर्शिता एव सर्वात्मभावके कारण

उनकी बुद्धि अन्तर्मुखी और शान्त हो गयी। सर्वान्तर्यामी जगत्पति भगवान् वासुदेवम चित्त स्थिर हो जानेके कारण वे सम्पूर्ण बन्धनासे मुक्त हो गये और करुणामय श्रीभगवान्की भक्तिके प्रभावसे उन्हाने उनका दुर्लभ परम पद प्राप्तकर अपना जीवन और जन्म सफल कर लिया।

परमभाग्यवती माता दवहूतिने दखा कि उनके तप पूत पति परमात्माक परमपदकी प्राप्तिके लिये वनमे चले गये, पुत्रियाँ अपने तपस्वी पतियाके आश्रयम सुखपूर्वक रहने लगीं और रहा एक पुत्र, जो साक्षात् परमपुरुषका ज्ञानावतार है।

महर्षि कर्दमकी धर्मपत्नी एव भगवान् कपिलकी जननी होनेके कारण व अध्यात्मकी सजीव मूर्ति थीं ही, अब उनके मनम अत्यधिक वैराग्य भर गया। अब उन्ह वृक्ष-लता, सर-सरिता, वन-उपवन, पशु-पक्षी—सबम असारता और नश्वरताके ही दर्शन होते थे। देवदुर्लभ विमानके लोकोत्तर सुख एव सहस्रा दास-दासियाकी सेवा—सबको उन्हाने क्षणभरमे ही त्याग दिया।

एक दिन परमविरक्ता माता देवहूतिने देखा, उनके पुत्रके रूपम प्रकट भगवान् कपिल बिन्दुसरके समीप लता-मण्डपमे ध्यानावस्थित आसीन हैं। माता देवहूतिने उनके चरणोमे श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

'माता! आप यह क्या कर रही हैं ?' अत्यन्त सकोचमे पडकर भगवान् कपिलने कहा। 'मैं आपका पुत्र हूँ। आप मुझे आज्ञा प्रदान कर।'

'प्रभो! यह सर्वथा सत्य है कि आपने इस पृथ्वीपर मुझे ही जननी-पदपर प्रतिष्ठित होनेका गौरवपूर्ण सौभाग्य प्रदान किया है।' माता देवहूतिने उत्तर दिया। 'पर लोकपितामहने मुझ आपके प्राकट्य-कालमे ही बता दिया था कि आप निखिल-लाकपति साक्षात् परब्रह्म परमश्वर हे, यह सर्वथा निर्भ्रान्त सत्य है। में विषयकी लालसाआस घबरा गयी हूँ। इनकी कहीं सीमा नहीं। अब आप कृपापूर्वक मरे अज्ञानतिमिरको अपनी ज्ञानरश्मियासे नष्ट कर द। मेरा देह-गहादिके प्रति महामोह आप दूर कर दे। मैं आपके चरणाम श्रद्धायुक्त प्रणाम करती हूँ। आपके शरण हूँ। आप मुझे भी ज्ञान प्रदानकर मेरा परम कल्याण कर दीजिय। मुझपर दया कीजिय।'

भगवान् कपिल अपनी माता देवहूतिकी परम पवित्र वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्हाने मन-ही-मन अपनी माताकी प्रशसा की ओर धारे-धीरे कहने लगे—'माता! अध्यात्मयागके द्वारा ही मनुष्य अपना सुनिश्चित परम कल्याण-साधन कर सकता हे। वहाँ 'स्व' आर 'पर' 'राग' और 'द्वेष' तथा 'सुख' ओर 'दु ख'—सत्र समाप्त हो जात हैं। जिस समय प्राणी अहता और ममतास उत्पन्न हानवाले काम-क्राधादिस मुक्त आर पवित्र हाता है वह सुख-दु खादि द्वन्द्वासे मुक्त होकर समताकी स्थितिम पहुँच जाता है, उस समय प्राणी ज्ञान-वेराग्य एव भक्तिपरिपूरित हृदयसे आत्माको प्रकृतिसे परे, एकमात्र, भेदरहित स्वयप्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन देखता है और प्रकृतिको असमर्थ समझने लगता हे। बुद्धिमान् मुनि सग या आसक्तिको ही बन्धनका हेतु वतलाते हें, पर वही सग और आसक्ति मुक्तपुरुषोम हानेसे मुक्तिका हतु बन जाती है। भगवत्प्राप्तिके लिय श्रीभगवान्‌की भक्तिके अतिरिक्त अन्य कोई सरल एव सुगम साधन नहीं है।*

इस प्रकार भगवान् कपिलने धीरे-धीरे अत्यन्त विस्तारसे अपनी माता देवहूतिको महदादि तत्त्वाकी उत्पत्तिका क्रम समझाकर प्रकृति और पुरुपका विवेक प्राप्त होनेपर मोक्षकी प्राप्ति हाती है, यह बताया। फिर उन्हाने पुरुषाकी देह-गेहम आसक्तिका कुपरिणाम एव अष्टाङ्गयोगकी विधि बतलाते हुए भक्तिका मर्म बतलाया। उन्हाने अपनी माता देवहूतिस स्पष्ट शब्दाम कहा—

ज्ञानवैराग्ययुक्तन भक्तियोगन यागिन ।
क्षेमाय पादमूल मे प्रविशन्त्यकुतोभयम्॥
एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुसा नि श्रेयसोदय ।
तीव्रेण भक्तियोगन मनो मय्यर्पित स्थिरम्॥
(श्रीमद्भा० ३।२५।४३-४४)

यागिजन ज्ञान-वेराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा शान्ति प्राप्त करनके लिय मर निर्भय चरणकमलाका आश्रय लेते हैं। ससारम मनुष्यके लिये सवसे वडी कल्याण-प्राप्ति यही हे कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझम लगकर स्थिर हा जाय।

सत्ययुगक प्रथम ऋषि-अवतार भगवान् कपिलन अपनी माता देवहूतिको भक्ति ज्ञान आर यागका विस्तृत उपदेश दिया। उन्हान अपनी माताका पूर्ण आत्मज्ञानसम्पन्ना वना दिया और जव उन्ह निश्चय हा गया कि उनका मातान परमार्थक तत्त्व और रहस्यको भलाभाँति समझ लिया हे, तव विवेक-वराग्यके सजाव विग्रह भगवान् कपिलन त्यागका आदर्श स्थापित करनका निश्चय कर अपनी परमविरक्ता ब्रह्मवादिना माताक चरणाम प्रणाम किया।

माता दवहूतिन भी गुरुभावस उनका पूजा और परिक्रमा की और बार-वार उनक चरणाम प्रणाम किया।

माया- माहरहित भगवान् कपिलन अपनी वन्दनीया

* भगवान् कपिलका यह सदुपदेश श्रीमद्भागवतक तासर स्कन्धमें विस्तारपूवक दिया गया है।

माता देवहूतिको वहीं सरस्वतीके पावनतटपर सिद्धाश्रमम छोड दिया आर स्वय वहाँसे पूर्व और उत्तर दिशाकी मध्य दिशा ईशानकोणकी ओर चल दिये। ज्ञानसम्पन्न होनेपर भी माता देवहूति पुत्रक विछाहसे अधीर हा गयीं। उनके नत्रासे स्नेहाश्रु वहने लगे। उनकी आन्तरिक स्थितिकी अनुभूति ता सदाक लिये इकलौते पुत्रसे विछुडती हुई माता हो कर सकती है।

भगवान् कपिलके चले जानेपर उनकी माता देवहूतिन उनके द्वारा उपदिष्ट ज्ञानम अपने चित्तको एकाग्र कर लिया। उन्हाने अल्पकालम ही सिद्धि प्राप्त कर ली। अव उन्ह अपने शरीरका भी भान नहीं रहा। कुछ दिन तो उनके शरीरकी दूसरोके द्वारा रक्षा हुई, पीछ आत्मस्वरूप नित्यमुक्त परब्रह्म परमात्माको प्राप्त परमविरक्ता माता देवहूतिका शरीर कव द्रवित होकर परम पुण्यमयी स्वच्छ-सलिलपूरिता सरिताके रूपम परिणत होकर प्रवाहित होने लगा, वे नहीं जान सकीं। माता देवहूतिने जिस स्थलपर सिद्धि प्राप्त की, वह 'सिद्धपुर' (मातृगया)-क नामसे प्रख्यात है।

अत्यन्त प्राचीनकालम 'स्यूमरश्मि' नामक ऋषिने भगवान् कपिलसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक शिष्यकी भाँति अनेक प्रश्न किये थे। भगवान् कपिलने उनके तर्कोंका खण्डन करते हुए उनसे कहा था—

> **आनृशस्य क्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम्।**
> **अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा शमस्तथा॥**
> **पन्थानो ब्रह्मणस्त्वते एतै प्राप्नोति यत्परम्।**
> **तद् विद्वाननुबुद्ध्यत मनसा कर्मनिश्चयम्॥**
>
> (महा० शान्ति० २७०।३९-४०)

'समस्त प्राणियापर दया, क्षमा, शान्ति, अहिसा, सत्य, सरलता, अद्रोह, निरभिमानता, लज्जा, तितिक्षा और शम—ये परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके मार्ग हैं। इनके द्वारा पुरुप परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार विद्वान् पुरुषको मनके द्वारा कर्मके वास्तविक परिणामका निश्चय समझना चाहिये।'

धरणीको धारण करनेवालोम धर्मादिके साथ भगवान् कपिलका भी नाम आता है—

> **धर्म कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च।**
> **अनन्त कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधरा॥**
>
> (महा० अनु० १५०।४१)

'धर्म, काम और काल, वसु और वासुकि, अनन्त और कपिल—य सात पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं।'

शरशय्यापर पड हुए भीष्मपितामहके शरीर-त्यागक समय वदज्ञ व्यासादि ऋपियाक साथ भगवान् कपिल भी वहाँ उपस्थित थ।

भगवान् कपिल अपनी मातासे विदा हाकर परम पुण्यतोया जाह्नवीक तटपर पहुँच। फिर उनक तटका सौन्दर्य देखत हुए व धार-धार वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवती भागीरथी महासागरम मिलती हैं। उस 'गङ्गासागर' भी कहते हैं। भगवान् कपिलके वहाँ पहुँचनेपर समुद्रने सशरीर समाप आकर उनक चरणाम प्रणाम कर उनकी सविधि पूजा की। आकाशसे देवता तथा सिद्धादि परम प्रभुका स्तवन करते हुए उनके ऊपर दिव्य पुष्पाकी वर्षा करने लगे।

भगवान् कपिलकी वहाँ निवास करनेकी इच्छा जाननेपर समुद्रके प्रसन्नताकी सीमा न रही। उसने इसे अपना परम सौभाग्य समझा। भगवान् वहीं समुद्रके भीतर रहकर तपश्चरण करते हैं। वर्पम एक दिन मकरकी सक्रान्तिके दिन समुद्रने वहाँसे हट जानेका वचन दिया था, जिससे उस दिन वहाँ जाकर दर्शन करनेवाले अक्षय पुण्य प्राप्त कर सक।

राजा सगरके साठ सहस्र पुत्र अश्वान्वेषणके लिये धरतीको खोदते हुए तपोमूर्ति भगवान् कपिलक आश्रमपर पहुँचे और उनकी धर्पणा करनेपर उनके नेत्रकी ज्वालासे भस्म हो गये।

भगवान् कपिल साख्य-दर्शनके प्रवर्तक हैं। आप भागवत धर्मके मुख्य बारह आचार्योमसे एक हैं। आपका एक नाम 'चक्रधनु' भी है। विष्णु-वाहन गरुडने महर्षि गालवको बताया था—

> **अत्र चक्रधनुर्नाम सूर्याज्जातो महानृषि॥**
> **विदुर्यं कपिल देव येनार्ता सगरात्मजा।**
>
> (महा० उद्योग० १०९।१७-१८)

'सूर्यके समान तेजस्वी महर्पि कर्दमसे उत्पन्न हुए 'चक्रधनु' नामक महर्पि इसी दिशामे रहते थे, जिन्हे सब लोग कपिलदेवके नामसे जानते हैं। उन्हाने ही सगरके पुत्राको भस्म कर दिया था।'

प्रतिवर्प मकर-सक्रान्तिके दिन गङ्गासागर-सगमपर सहस्रा स्त्री-पुरुप भगवान् कपिलके पुनीत आश्रमके दर्शनार्थ जाते हैं।

(६) भगवान् दत्तात्रेय

जो अज्ञान-तिमिरको दूरकर हृदयमे ज्ञानका प्रकाश फैलाते हैं, उन्हे 'गुरु' कहते हैं। 'गिरति अज्ञानम्' अथवा 'गृणाति ज्ञानम्, स गुरु '—ऐसी 'गुरु' शब्दकी व्युत्पत्ति है। जीवोका अज्ञान मिटानेके लिये अथवा जीवोके हृदयम ज्ञानका प्रकाश फैलानेके लिये ही प्राय भगवान्के अवतार होते हैं। वैसे तो अवतारके कई प्रयोजन होते हैं, किंतु जीवोका अज्ञानान्धकार-निवारण अवतारका परम प्रयोजन होता है। जबतक सृष्टिमे जीव हैं, तबतक इस कर्मको अविरतरूपमे चलाना अपरिहार्य है—यही सोचकर भगवान् श्रीविष्णुने सद्गुरु श्रीदत्तात्रेयजीके रूपमे अवतार ग्रहण किया।

जैसे जलपूरित महासरोवरसे असख्य स्रोत उमड पडते हैं, उसी प्रकार परोपकारके लिये भगवान्के अवतार होते ही रहते हैं। उन अनन्त अवताराम चौबीस अवताराका निर्देश श्रीमद्भागवतकारने किया है। उन चौबीस अवताराम सिद्धराज भगवान् श्रीदत्तात्रेयजीका अवतार छठा माना जाता है। इस अवतारकी परिसमाप्ति नहीं है, इसीलिये इन्हे 'अविनाश' भी कहते हैं। ये समस्त सिद्धोके राजा होनेके कारण 'सिद्धराज' कहलाते हैं। योगविद्यामे असाधारण अधिकार रखनेके कारण इन्हे 'योगिराज' भी कहते हैं। अपने असाधारण योगचातुर्यसे इन्होने देवताओका सरक्षण किया है, इसलिये ये 'देवदेवेश्वर' भी कहे जाते हैं।

'मुझे प्राणियोका दु ख-निवारण करनेवाला पुत्र प्राप्त हो'—इस अभिप्रायसे अत्रिमुनिकी भावपूर्ण घोर तपस्या देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् श्रीविष्णुने कहा—'मैंने निजको ही तुम्हे दान कर दिया है'—इस कारण इनकी 'दत्त' सज्ञा हुई 'दत्तो मयाहमिति यद्भगवान् स दत्त ' (श्रीमद्भा० २।७।४)। अत्रिमुनिके पुत्र होनेके कारण इन्हे 'आत्रेय' भी कहते हैं। 'दत्त' और 'आत्रेय'—इन दोनो नामोके सयोगसे इनका 'दत्तात्रेय' एक ही नाम रूढ हो गया। ये निस्स्पृह होकर सदा ही ज्ञानका दान देते रहते हैं, अतएव 'गुरुदेव' या 'सद्गुरु'—ये दो विशेषण इनके नामके पूर्व व्यवहृत होते हैं।

इनकी माता थीं परम सती श्रीअनसूया देवी। ये अत्यन्त सुन्दरी भी थीं, किंतु उनमे गर्वका लेश भी नहीं था। एक दिन श्रीनारदजीके मुखसे श्रीसरस्वती, श्रीउमा और श्रीरमाने महासती अनसूयाजीकी महिमा सुन ली। 'वे हमसे बडी कैसे हैं?' इस विचारसे उनके मनमे कुछ ईर्ष्या हुई। तीनो देवियाने अपने-अपने पतियाको अनसूयाजीके सतीत्व-परीक्षणके लिये महर्षि अत्रिके आश्रममे भेजा। ब्रह्मा, विष्णु और महेश वहाँ पहुँचे, किंतु सतीशिरोमणि अनसूयाके सतीत्वके प्रभावसे तीनो नवजात शिशु बन गये। माता अनसूयाने वात्सल्यभावसे उन्हे अपना स्तन्य-पान कराया। कुछ दिनो बाद सरस्वती, उमा और रमा माता अनसूयाके समीप आकर उनके चरणोमे गिरीं और उन्होने उनसे क्षमा-याचना की। दयामयी माता अनसूयाने तीनो बालकोको पूर्ववत् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर बना दिया।

'आप चिन्ता न करें, हम आपके पुत्ररूपमे आपके पास ही रहेंगे।' जाते समय त्रिदेवोने अत्रि और अनसूयाका अभिप्राय समझकर कहा। फिर ब्रह्मदेव सोमके रूपमे, भगवान् श्रीविष्णु दत्तके रूपमे और भगवान् शंकर दुर्वासाके रूपमे भगवती अनसूयाके पुत्र बनकर अवतरित हुए। ऐसी और भी कई कथाएँ विभिन्न पुराणोमे वर्णित हैं इन कथाओमे भेद होते हुए भी विरोध नहीं है।

विचार करनेपर सभी कथाआका ठीकसे समन्वय हो सकता है।

भगवान् श्रीविष्णुने दत्तात्रेयजीक रूपम अवतरित होकर जगत्का वडा ही उपकार किया है। कृतयुगम उन्हाने श्रीकार्तिकस्वामी, श्रीगणश भगवान् आर भक्त प्रह्लादका उपदेश दकर उन्ह उपकृत किया था। त्रेताम राजा अलर्कप्रभृतिका योगविद्या एव अध्यात्मविद्याका उपदश देकर उन्हे कृतार्थ किया। राजा पुरूरवा और राजा आयु भी दत्तात्रेयजीकी कृपाके ऋणी थे। द्वापरमे भगवान् श्रीपरशुराम तथा हैहयाधिपति राजा कार्तवीर्य आदिका भगवान् दत्तात्रेयका अनुग्रह प्राप्त हुआ था और उन्हींकी कृपासे वे तेजस्वी एव यशस्वी हुए। कलियुगमे भी भगवान् शकराचार्य, गोरक्षनाथ, महाप्रभु, सिद्ध नागार्जुन—ये सब दत्तात्रेयजीके अनुग्रहसे ही धन्य हा गये हैं। श्रीसत ज्ञानेश्वर महाराज, श्रीजनार्दन स्वामी, श्रासत एकनाथ, श्रीसत दासोपत, श्रीसत तुकाराम महाराज—इन भक्ताने दत्तात्रेयजीका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया था। भगवान् श्रीदत्तात्रय भक्तका करुण-क्रन्दन सुनकर तुरत उसके समीप पहुँच जाते हैं। इसी कारण इन्ह 'स्मर्तृगामी' (स्मरण करते ही आनेवाले) कहा गया है।

गिरनार श्रीदत्तात्रेयजीका सिद्धपीठ है। उनका उन्मत्ताका तरह विचित्र वेष और उनक आगे-पीछे कुत्ते—उन्ह पहचान लेना सरल नहीं। वे सिद्धाक परमाचार्य हैं और उन्ह उच्चकोटिके अधिकारी पुरुष ही पहचान सकते हें, किंतु उनके आराधक तो अपना जीवन धन्य कर ही लेते हैं।

~~ ० ~~

(७) भगवान् यज्ञ

बात है स्वायम्भुव मन्वन्तरकी। स्वायम्भुव मनुकी निष्पापा पत्नी शतरूपाके गर्भसे महाभागा आकूतिका जन्म हुआ। वे रुचि प्रजापतिकी पत्नी हुईं। इन्हीं आकूतिकी कुक्षिसे धरणीपर धर्मका प्रचार करनेके लिये आदिपुरुष श्रीभगवान् अवतरित हुए। उनकी 'यज्ञ' नामसे ख्याति हुई। इन्हीं परमप्रभुने यज्ञका प्रवर्तन किया और इन्हींक नामसे यह प्रचलित हुआ। उनस देवताआकी शक्ति वढी आर देवताआकी शक्तिसे सारी सृष्टि शक्तिशालिनी हुई।

परम धर्मात्मा स्वायम्भुव मनुकी धीरे-धीर सासारिक विषय-भोगासे अरुचि हा गयी। ससारसे विरक्त हो जानेक कारण उन्हाने राज्य त्याग दिया ओर अपनी महिमामयी पत्नी शतरूपाक साथ तपस्या करनेके लिये वनम चले गये। वे पवित्र सुनन्दा नदीक तटपर एक पैरपर खडे होकर आगे दिये हुए मन्त्रमय उपनिषत्-स्वरूप श्रुतिका निरन्तर जप करने लगे। वे तपस्या करते हुए प्रतिदिन श्रीभगवान्की स्तुति करते थे—

यन चेतयते विश्व विश्व चेतयते न यम्।
या जागर्ति शयनेऽस्मिन्नाय त वद वद स ॥
य न पश्यति पश्यन्त चक्षुर्यस्य न रिष्यति।
त भूतनिलय देव सुपर्णमुपधावत॥
(श्रीमद्भा० ८।१।९ ११)

'जिनकी चेतनाके स्पर्शमात्रसे यह विश्व चतन हो जाता है किंतु यह विश्व जिन्ह चेतनाका दान नहीं कर सकता, जो इसके सा जानपर प्रलयम भी जागत रहते हैं, जिनको यह विश्व नहीं जान सकता, परतु जो इस जानते हैं—वे ही परमात्मा हैं। भगवान् सबके साक्षी हैं। उन्ह बुद्धि-वृत्तियाँ या नेत्र आदि इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं, परतु उनकी ज्ञान-शक्ति अखण्ड है। समस्त प्राणियाके हृदयम रहनवाले उन्हीं स्वयम्प्रकाश असङ्ग परमात्माकी शरण ग्रहण करो।'*

इस प्रकार स्तुति एव जप करते हुए उन्होने सौ वर्षतक अत्यन्त कठोर तपश्चरण किया। एकाग्र चित्तसे इस मन्त्रमय उपनिषद्-स्वरूप श्रुतिका पाठ करते-करते उन्ह अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही। उसी समय वहाँ अत्यन्त क्षुधार्त असुरो एव राक्षसाका समुदाय एकत्र हो गया। व ध्यानमग्न परम तपस्वी मनु और शतरूपाको खानेके लिय दौड।

सर्वान्तर्यामी आकूतिनन्दन भगवान् यज्ञ अपने

* पूरो श्रुति श्रामद्भागवतक ८व स्कन्धके प्रथम अध्यायम श्लाक-सख्या ९ से १६ तक दखनी चाहिय।

याम नामक पुत्रके साथ तुरन्त वहाँ पहुँच गये। राक्षसासे भयानक सग्राम हुआ। अन्तत राक्षस पराजित हुए। कालके गालमें जानेसे बचे असुर और राक्षस अपने प्राण बचाकर भागे।

भगवान् यज्ञके पौरुष एव प्रभावको देखकर देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने भगवान्से देवेन्द्र-पद स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। देव-समुदायकी तुष्टिके लिये भगवान् इन्द्रासनपर विराजित हुए। इस प्रकार श्रीभगवान्ने इन्द्र-पदपालनका आदर्श उपस्थित किया।

भगवान् यज्ञके उनकी धर्मपत्नी दक्षिणासे अत्यन्त तेजस्वी बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे। ये ही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'याम' नामक बारह देवता कहलाये।

~~~०~~~

(८) भगवान् ऋषभदेव

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्ण
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥

(श्रीमद्भागवत ५।६।१९)

'निरन्तर विषय-भोगोंकी अभिलाषा करनेके कारण अपने वास्तविक श्रेयसे चिरकालतक बेसुध हुए लोगोंको जिन्होंने करुणावश निर्भय आत्मलोकका उपदेश दिया और जो स्वय निरन्तर अनुभव होनेवाले आत्मस्वरूपकी प्राप्तिसे सब प्रकारकी तृष्णाओंसे मुक्त थे, उन भगवान् ऋषभदेवको नमस्कार है।'

× × ×

आग्नीध्रनन्दन महाराज नाभिके कोई सतान नहीं थी। इस कारण उन्होंने अपनी धर्मपत्नी मेरुदेवीके साथ पुत्रकी कामनासे यज्ञ प्रारम्भ किया। तप पूत ऋत्विजोंने श्रुतिके मन्त्रोंसे यज्ञपुरुषका स्तवन किया और ब्राह्मणसर्वस्व, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए। उनके श्रीअङ्गोंकी अद्भुत शोभा थी। अनन्त अपरिसीम सौन्दर्यसुधासिन्धु मङ्गलमय प्रभुका दर्शन कर राजा, रानी और ऋत्विजोंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। सबने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे प्रभु-पदपद्मोंमें सादर दण्डवत् प्रणाम कर अर्घ्यादिके द्वारा उनकी पूजा एव वन्दना की।

'प्रभो! राजर्षि नाभि और उनकी पत्नी मेरुदेवी आपके ही समान पुत्र चाहते हैं।' ऋत्विजोंने प्रभु-गुण-गान करनेके उपरान्त कामना स्पष्ट कर दी।

'ऋषियो! आपलोगोंने बड़ा दुर्लभ वर माँगा है।' श्रीभगवान्ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा। 'मैं अद्वितीय हूँ। अतएव आपलोगोंके वचनकी रक्षाके लिये मैं स्वयं महाराज नाभिके यहाँ अवतरित होऊँगा, क्योंकि मेरे समान तो मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं।'

यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और कुछ दिनोंके बाद महाराज नाभिकी परम सौभाग्यशालिनी पत्नी मेरुदेवीकी कुक्षिसे परमतत्त्व प्रकट हुआ।

नाभिनन्दनके अङ्ग विष्णुके वज्र-अङ्कुश आदि चिह्नोंसे युक्त थे। पुत्रके अत्यन्त सुन्दर सुगठित शरीर, कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणोंको देखकर महाराज नाभिने उसका नाम 'ऋषभ' (श्रेष्ठ) रखा।

महाराज नाभि परमप्रभु ऋषभदेवका पुत्रवत् पालन करने लगे। पुत्रको अतिशय प्यारसे पुकारने तथा अङ्कमें लेकर लाड़ लड़ानेसे वे अत्यधिक आनन्दका अनुभव करने लगे, किंतु कुछ ही दिनोंके अनन्तर जब ऋषभदेव वयस्क हो गये और महाराज नाभिने देखा कि सम्पूर्ण राष्ट्रके नागरिक तथा मन्त्री आदि सभी लोग ऋषभदेवको अतिशय आदर और प्रीतिकी दृष्टिसे देखते हैं, तब उन्होंने ऋषभदेवको राजपदपर अभिषिक्त कर दिया और स्वय अपनी सती पत्नी मेरुदेवीके साथ तप करने वनमें चले गये। वे उत्तर दिशामें हिमालयके अनेक शिखरोंको पार करते हुए गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके वासस्थान बदरिकाश्रममें पहुँचे। वहाँ वे परमप्रभुके नर-नारायण-रूपकी उपासना एव उनका चिन्तन करते हुए समयानुसार उन्हींमें विलीन हो गये।

शासनका दायित्व अपने कन्धेपर आ जानेके कारण ऋषभदेवने मानवोचित कर्तव्यका पालन करना प्र
~~~

किया। उन्होंने गुरुकुलमें कुछ काल रहकर वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन किया और फिर अन्तिम गुरुदक्षिणा देकर व्रतान्तस्नान किया। इसके उपरान्त वे राज-कार्य देखने लगे। ऋषभदेव राज्यका सारा कार्य बड़ी ही सावधानी एवं तत्परतापूर्वक देखते थे। उनकी राज्य-व्यवस्था और शासनप्रणाली सर्वथा अनुकरणीय और अभिनन्दनीय थी।

'*भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण।*'

(श्रीमद्भागवत ५।४।१८)

'भगवान् ऋषभदेवके शासनकालमें इस देशका कोई भी पुरुष अपने लिये किसीसे भी अपने प्रभुके प्रति दिन-दिन बढ़नेवाले अनुरागके सिवा और किसी वस्तुकी कभी इच्छा नहीं करता था। यही नहीं, आकाशकुसुमादि अविद्यमान वस्तुकी भाँति कोई किसीकी वस्तुकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करता था।'

सम्पूर्ण प्रजा ऋषभदेवको अत्यधिक प्यार करती एवं श्रीभगवान्‌की तरह उनका आदर और सम्मान करती थी। यह देखकर शचीपति (इन्द्र)-के मनमें बड़ी ईर्ष्या हुई। उन्होंने सोचा—'मैं त्रैलोक्यपति हूँ, वर्षाके द्वारा सबका भरण-पोषण करता और सबको जीवन-दान देता हूँ, फिर भी प्रजा मेरे प्रति इतनी श्रद्धा नहीं रखती। इसके विपरीत धरतीका एक नरेश इतना लोकप्रिय क्यों है? उसे प्रजा परमेश्वरकी भाँति क्यों पूजती है? मैं इस नरपतिका प्रभाव देखता हूँ।' तब सुरेन्द्रने ईर्ष्यावश एक वर्षतक वर्षा बन्द कर दी।

भगवान् ऋषभदेवने अमरपतिकी ईर्ष्या-द्वेषकी वृत्ति एवं अहंकारको समझकर योगबलसे सजल-घनोंकी सृष्टि की। आकाश काले मेघोंसे आच्छादित हो गया और पृथ्वीपर जल-ही-जल हो गया। समस्त भूमि शस्यश्यामला बन गयी।

सुरपतिका मद उतर गया। उन्होंने भगवान् ऋषभदेवके प्रभावको समझ लिया। फिर तो उन्होंने ऋषभदेवकी स्तुति की और अपनी पुत्री जयन्तीका विवाह उनके साथ कर दिया। ऋषभदेवने लोक-मर्यादाकी रक्षाके लिये गृहस्थाश्रम-धर्मका पालन किया और उनसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे बड़े, सर्वाधिक गुणवान् एवं महायोगी भरतजी थे। वे इतने प्रतापी नरेश हुए कि उन्हींके नामपर इस अजनाभखण्डका नाम 'भारतवर्ष' प्रख्यात हुआ।

राजकुमार भरतसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट—ये नौ राजकुमार भारतवर्षमें पृथक्-पृथक् देशोंके प्रजापालक नरेश हुए। ये सभी नरेश तपस्वी, धर्माचरणसम्पन्न एवं भगवद्भक्त थे। इनके देश इन्हीं राजाओंके नामसे विख्यात हुए।

इन दस राजकुमारोंसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन—ये नौ राजकुमार बालब्रह्मचारी, भागवतधर्मका प्रचार करनेवाले एवं बड़े भगवद्भक्त थे। ये योगी एवं सन्यासी हो गये। इनसे छोटे महाराज ऋषभदेवके इक्यासी पुत्र वेदज्ञ, कर्मकाण्डी, सदाचारी, मातृ-पितृभक्त, विनीत, शान्त तथा महान् थे। वे निरन्तर यज्ञ, देवार्चन एवं पुण्यकर्मोंके करनेसे ब्राह्मण हो गये।

एक बारकी बात है। महाराज ऋषभदेव भ्रमण करते हुए गङ्गा-यमुनाके मध्यकी पुण्यभूमि ब्रह्मावर्तमें पहुँचे, जहाँके शासक उनके चतुर्थ पुत्र ब्रह्मावर्त थे। वहाँ उन्होंने प्रख्यात महर्षियोंके समुदायके साथ अपने अत्यन्त विनयी एवं शीलवान् पुत्रोंको भी बैठे देखा। उक्त सुअवसरसे लाभ उठाकर भगवान् ऋषभदेवने अपने पुत्रोंके मिससे जगत्‌के लिये अत्यन्त कल्याणकर उपदेश दिया। ऋषभदेवने कहा—

नाय देहो देहभाजा नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजा ये।
तपो दिव्य पुत्रका येन सत्त्व
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्य त्वनन्तम्॥

(श्रीमद्भागवत ५।५।१)

'पुत्रो! इस मर्त्यलोकम यह मनुष्य-शरीर दु खमय विषयभोग प्राप्त करनेके लिये ही नहीं है। ये भोग तो विष्ठाभोजी सूकर-कूकरादिको भी मिलते ही हैं। इस शरीरसे दिव्य तप ही करना चाहिय, जिससे अन्त करण शुद्ध हो, क्योंकि इसीसे अनन्त ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होती है।'

'मनुष्य प्रमादवश कुकर्ममे प्रवृत्त होता हे, किंतु इससे आत्माको नश्वर एव दु खदायी शरीर प्राप्त होता है। जबतक मनुष्य श्रीहरिके चरणाका आश्रय नहीं लेता, उन्हींका नहीं वन जाता, तबतक उसे जन्म-जरा-मरणसे त्राण नहीं मिल पाता। अतएव प्रत्यक माता-पिता एव गुरुका परम पुनीत कर्तव्य है कि वह अपनी सतति एव शिष्यको विषयासक्ति एव काम्यकर्मोसे सर्वथा पृथक् रहनेकी ही सीख दे।' फिर ससारकी नश्वरता एव भगवद्भक्तिका माहात्म्य बताते हुए श्रीऋषभदेवने कहा—

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैव न तत् स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयद्य समुपेतमृत्युम्॥
सवाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भि-
श्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि।
सम्भावितव्यानि पदे पदे वो
विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हण मे॥

(श्रीमद्भागवत ५।५।१८ २६)

'जो अपने प्रिय सम्बन्धीको भगवद्भक्तिका उपदेश देकर मृत्युकी फाँसीसे नहीं छुडाता, वह गुरु गुरु नहीं हे, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं हे, माता माता नहीं है, इष्टदव इष्टदेव नहीं हे ओर पति पति नहीं है। पुत्रा! तुम सम्पूर्ण चराचर भूताको मेरा ही शरार समझकर शुद्ध बुद्धिसे पद-पदपर उनको सवा करो यही मेरी सच्ची पूजा है।'

अपने सुशिक्षित एव भक्त पुत्राके मिसस जगत्को उपदेश दकर ऋषभदवजीन अपने वड पुत्रको राज-पदपर अभिषिक्त कर दिया आर स्वय विरक्त-जीवनका आदर्श प्रस्तुत करनेक लिये राजधानीसे बाहर वनम चले गये। भगवान् ऋषभदेव सर्वथा ज्ञानस्वरूप थे, किंतु लोकदृष्टिसे प्राणियाको शिक्षा दने एव पारमहस्य धर्मकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिये उन्हाने उन्मत्तोका वेष धारण कर लिया।

ब्रह्मावर्तसे बाहर जानेपर उनका मुँह जिधर उठा, उसी ओर चल देते। बुद्धिके आगार होनेपर भी मूर्खो-जैसा उनका आचरण हाने लगा। वे किसीके प्रश्नका उत्तर न देकर मूक-सा व्यवहार करने लगे। धूलि-धूसरित शरीर, जिधर जीम आता दौडने लगते। लडके पीछे-पीछे तालियाँ बजाते, इन्हे चिन्ता नहीं। जहाँ कोई कुछ दे देता, पेटम डाल लते, पर किसीसे माँगते न थे।

ऋषभदवजी सर्वथा दिगम्बर हाकर विचरण करने लगे। उनकी उच्चतम स्थितिको न समझकर कितने ही दुष्ट उनपर दण्ड-प्रहार कर बेठते। कितने गालियाँ देते और कितने उन परम पुरुषपर थूक देते। कुछ ककड-पत्थर मारते तो कुछ उनके ऊपर लघुशङ्का अथवा मलत्यागतक कर देते। पर शरीरक प्रति अनासक्ति और मैं-पनका भाव न होनेके कारण ऋषभदेवजी कुछ नहीं बोलते। सर्वथा शान्त और मौन रहकर अपनी राह आगे बढ जाते। ऋषभदेवजीकी धूलिसे लिपटी काया एव रूखे बालोकी उलझी लटे तथा पागल-जेसा वेष भी अत्यन्त मनाहर एव चित्ताकर्षक प्रतीत होता था। अब वे अवधूत-वृत्तिक अनन्तर अजगर-वृत्तिसे रहने लगे। उन्हे मनुष्यताका अभिमान विस्मृत हो गया। अब उनको कोई खानेको दे देता तो खा लेते, अन्यथा उनक द्वारा भोजनकी कोई चेष्टा नहीं होती थी। वे पशुआकी तरह पानी पी लेते। पशुआकी ही भाँति जहाँ हाता, लेट-ही-लेटे मल-मूत्रका त्याग कर दते। मलको अपने सारे शरीरमे पात लते, किंतु उनके मलसे अत्यन्त अलौकिक सुगन्ध निकलती थी जा दस-दस योजनतक फैल जाती थी। इस प्रकार मोक्षपति भगवान् ऋषभदेव अनेक प्रकारकी योगचर्याआका आचरण करते हुए निरन्तर आनन्दमग्न रहत थे। प्रभुका यह जीवन आचरणीय नहीं, यह तो अवस्था थी। यह स्थिति शास्त्रसे पर है।

जब भगवान् ऋषभदेव ससारकी असारताका पूर्णतया अनुभव कर जीवन्मुक्तावस्थाका आनन्द-लाभ कर रहे थे, उस समय समस्त सिद्धियाने उनकी सेवा म उपस्थित

होकर कैंकर्यावसर प्रदान करनेकी प्रार्थना की, पर उन्हें स्वीकार करना तो दूर ऋषभदेवने मुस्कराते हुए उन्हें तत्काल वहाँसे चले जानेकी आज्ञा दे दी।

सर्वसमर्थ भगवान् ऋषभदेवको सिद्धियोंकी आवश्यकता भी क्या थी? वे तो सिद्धोंके सिद्ध महासिद्ध थे। सिद्धियाँ तो उनकी चरण-धूलिका स्पर्श प्राप्त करनेके लिये लालायित रहतीं, व्याकुल रहतीं, पर वह पुण्यमयी धूलि—सुर-मुनिवन्दित रज उन्हें मिल नहीं पाती। साथ ही साधकों, भक्तों एवं योगाभ्यासियोंके सम्मुख उन्हें आदर्श भी उपस्थित करना था। मन बड़ा चञ्चल होता है। इसे तनिक भी सुविधा देने, इसकी ओरसे तनिक भी असावधान होनेसे यह घात कर बैठता है, पतनके महागर्तमें ढकेल देता है।

कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः।
कर्मबन्धश्च यन्मूलं स्वीकुर्यात्को नु तद् बुधः॥

(श्रीमद्भागवत ५।६।५)

'काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और भय आदि शत्रुओंका तथा कर्म-बन्धनका मूल तो यह मन ही है, इसपर कोई भी बुद्धिमान् कैसे विश्वास कर सकता है?'

इसी कारण भगवान् ऋषभदेवने साक्षात् पुराणपुरुष आदिनारायणके अवतार होनेपर भी अपने ईश्वरीय प्रभावको छिपाकर अवधूतका-सा, मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले पारमहंस्य-धर्मका आचरण किया। ज्ञानी तो अपनी योग-दृष्टिसे उन्हें ईश्वरावतार समझते थे, किंतु सर्वसाधारणको उनके वास्तविक स्वरूपका तनिक भी परिचय होना कठिन था। सकल्प-शून्य होकर उनका शरीर प्रारब्धवश पृथ्वीपर डोल रहा था। इस प्रकार वे दिगम्बर-वेषमें कोङ्क, वेङ्क, कुटक और कर्णाटक आदि दक्षिण-देशमें मुँहमें पत्थर दबाये घूमते रहे। उन्मत्तताकी स्थितिमें वे कुटकाचलके निर्जन वनमें विचरण कर रहे थे।

अब ऋषभदेवजीको पाञ्चभौतिक शरीर त्याग देनेकी इच्छा हुई। एक दिन सहसा प्रबल झंझावातसे घर्षणके कारण वनके बाँसोंमें आग लग गयी और वह आग अपनी लाल-लाल लपटोंसे सम्पूर्ण वनको भस्मसात् करने लगी। ऋषभदेवजी भी वहीं विद्यमान थे। उनकी शरीरमें तनिक भी आसक्ति और मोह होता तो उसकी रक्षाके लिये उद्योग करते, किंतु उनकी तो सर्वत्र समबुद्धि थी। अतएव वे चुपचाप बैठे रहे और उनका नश्वर शरीर अग्निकी भयानक ज्वालामें जलकर भस्म हो गया। इस प्रकार शरीर छोड़कर भगवान् ऋषभदेवने योगियोंको देहत्यागकी विधिकी भी शिक्षा दे दी—

'अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः॥'

(श्रीमद्भागवत ५।६।१२)

'भगवान्‌का यह अवतार रजोगुणसे भरे हुए लोगोंको *मोक्षमार्गकी शिक्षा देनेके लिये ही हुआ था।'*

अवतार-प्रयोजन

(श्रीनारायणदासजी भक्तमाली 'मामाजी')

दुखी दीनों पै जब असुरोंका अत्याचार होता है।
तभी भूतल पै करुणासिन्धुका अवतार होता है॥

संत सुर भूमि भूसुर सुरभि सज्जन कष्ट जब पाते।
प्रजा पीड़ित, प्रताड़ित, जगमें हाहाकार होता है॥ तभी०॥
तमोगुणका अँधेरा घोर, चारों ओर जब फैले।
सरल सज्जन गरीबोंका जीना दुश्वार होता है॥ तभी०॥
कृतघ्नी क्रूर कुटिल कुमार्गगामी खल जभी बढ़ते।
धराधर-शेषके सिर पापियोंका भार होता है॥ तभी०॥
अधर्मी लंपटों, पर-द्रोहियोंकी बाढ़ जब आती।
धर्मपर अति कठिन प्रहार बारम्बार होता है॥ तभी०॥
परायी नारि, पर-धन लूटनेवाले लुटेरोंसे।
प्रभावित जब प्रशासन होके भ्रष्टाचार होता है॥ तभी०॥
प्रथम तो फूलते-फलते दिखायी पड़ते हैं पापी।
अन्त जब फूटता भंडा तो बंटाढार होता है॥ तभी०॥

परिस्थितिसे न घबड़ाओ, धरो धीरज सुमिरु प्रभुको।
कृपा कर दे जो 'नारायण' तो बेड़ा पार होता है॥ तभी०॥

(९) आदिराज पृथु

त्वन्माययाद्धा जन ईश खण्डितो
यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुध ।
यथा चरद्बालहित पिता स्वय
तथा त्वमवार्हसि न समीहितुम्॥
(श्रीमद्भागवत ४।२०।३१)

'प्रभा! आपकी मायासे ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप आपसे विमुख हाकर अज्ञानवश अन्य स्त्री-पुत्रादिकी इच्छा करता है, फिर भी जिस प्रकार पिता पुत्रकी प्रार्थनाकी अपेक्षा न रखकर अपने-आप ही पुत्रका कल्याण करता है, उसी प्रकार आप भी हमारी इच्छाकी अपेक्षा न करक हमार हितक लिय स्वय ही प्रयत्न कर।'

× × ×

स्वायम्भुव मनुक वशम अङ्ग नामक प्रजापतिका विवाह मृत्युकी मानसिक पुत्री सुनीथाके साथ हुआ। उनक वेन नामक पुत्र हुआ। वन अपन मातामह (नाना)-के स्वभावपर गया। वह अत्यन्त उग्र, अधार्मिक, परपीडक और राग-द्वेषक वशीभूत हा प्रजापर अत्याचार करने लगा। उसकी दुष्टतास प्रजा अत्यन्त कष्ट पाने लगी। महर्षियाद्वारा राजपदपर अभिषिक्त होते ही उसने घोषणा कर दी—

न यष्टव्य न दातव्य न हातव्य कथञ्चन।
भोक्ता यज्ञस्य कस्त्वन्यो ह्यह यज्ञपति प्रभु ॥
(विष्णुपुराण १।१३।१४)

'भगवान् यज्ञपुरुष मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त यज्ञका भाक्ता आर स्वामी हो ही कौन सकता है। इसलिये कभी काई यज्ञ, दान और हवन आदि न करे।'

'महाराज! आप ऐसी आज्ञा दीजिये, जिसस धर्मका क्षय न हो।' प्रजापति वेनकी घोषणास चकित हाकर महर्षियाने उसे समझाते हुए कहा। 'आपका मङ्गल हो।' देखिये, हम बड-बड यज्ञाद्वारा जो सर्वयज्ञेश्वर देवाधिदेव श्रीहरिकी पूजा करगे, उसके फलका षष्ठांश आपको भी प्राप्त होगा। इस प्रकार यज्ञाद्वारा यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु प्रसन्न हाकर हमलोगाके साथ आपकी भी अभिलाषा पूर्ति करगे।'

'मुझस भी बढकर मरा पूज्य कौन है?' मदान्मत्त वेनने महर्षियाकी उपक्षा करत हुए कहा—"जिस तुम यज्ञेश्वर मानते हो, वह 'हरि' कहलानवाला कौन है? कृपा करने और दण्ड दनेम समर्थ सभी देवता राजाके

शरीरम निवास करत हैं, अतएव राजा सर्वदेवमय है। इसलिय ब्राह्मणो! मेरी आज्ञाका पालन हो। कोई भी दान यज्ञ और हवन न करे। मेरी आज्ञाका पालन ही तुमलोगाका धर्म है।"

'इस पापात्माको मार डालो।' सर्वेश्वर हरिकी निन्दा सुनकर क्रुद्ध महर्षियान मन्त्रपूत कुशाद्वारा उसे मार डाला।

माता सुनीथाने कुछ दिनोतक अपन पुत्र ... शरीर सुरक्षित रखा और इधर राजाक बिना ... और लुटेरोके कारण सर्वत्र अराजकता ... यह स्थिति देखकर ऋषि मन्त्रोच्चारण ... जङ्घाका मन्थन करन लगे। ... काला, अत्यन्त नाटा और ... उत्पन्न हुआ। उसन अत्यन्त ... 'मैं क्या करूँ?'

'निषाद (बैठ ... 'निषाद' कहलाया ... पाप निकल ...

इसके अनन्तर ब्राह्मणाने पुत्रहीन राजा वेनकी भुजाओका मन्थन किया, तब उनसे एक स्त्री-पुरुषका जोडा प्रकट हुआ।

'यह पुरुप भगवान् विष्णुकी विश्वपालनी कलासे प्रकट हुआ है' ऋषियाने कहा। 'और यह स्त्री उन परम पुरुषकी शक्ति लक्ष्मीजीका अवतार हे।'

"अपनी सुकीर्तिका प्रथन—विस्तार करनेके कारण यह यशस्वी पुरुप 'पृथु' नामक सम्राट् होगा।" ऋषियाने और बताया। "और इस सर्वशुभलक्षणसम्पन्ना परम सुन्दरीका नाम 'अर्चि' होगा। यह सम्राट पृथुकी धर्मपत्नी होगी।" पृथुके दाहिने हाथमे चक्र और चरणामे कमलका चिह्न देखकर ऋषियाने और बताया—'पृथुके वेषमे स्वय श्रीहरिका अश अवतरित हुआ हे और प्रभुकी नित्य सहचरी लक्ष्मीजीने ही अर्चिके रूपमे धरतीपर पदार्पण किया है।'

'महात्माओ! धर्म और अर्थका दर्शन करानेवाली अत्यन्त सूक्ष्म वुद्धि मुझे स्वत प्राप्त हो गयी है।' इन्द्रके समान तेजस्वी नरश्रेष्ठ पृथुने कवच धारण कर रखा था। उनकी कमरमे तलवार बँधी थी। वे धनुप-

वाण लिये हुए थे। उन्हे वेद-वेदाङ्गाका पूर्ण ज्ञान था। वे धनुर्वेदके भी विद्वान् थे। उन्हाने हाथ जाडकर ऋषियासे कहा—'मुझे इस वुद्धिके द्वारा आपलागाका कोन-सी सवा करनी है? आपलोग आज्ञा प्रदान करे। मैं उसे अवश्य पूरी करूँगा।'

तव वहाँ दवताआ और महर्पियाने उनसे कहा—

नियतो यत्र धर्मो वै तमशङ्क समाचर॥
प्रियाप्रिये परित्यज्य सम सर्वेषु जन्तुषु।
काम क्रोध च लोभ च मान चोत्सृज्य दूरत ॥
यश्च धर्मात् प्रविचलेल्लोके कश्चन मानव ।
निग्राह्यस्ते स्वबाहुभ्या शश्वद्धर्ममवेक्षता॥
प्रतिज्ञा चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यह भौम ब्रह्म इत्येव चासकृत्॥
यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीतिव्यपाश्रय ।
तमशङ्क करिष्यामि स्ववशो न कदाचन॥
अदण्ड्या मे द्विजाश्चेति प्रतिजानीहि हे विभो।
लोक च सकरात्कृत्स्न त्रातास्मीति परतप॥

(महा०, शान्तिपर्व ५९।१०३—१०८)

"वेननन्दन! जिस कार्यमे निश्चितरूपसे धर्मकी सिद्धि होती हो, उसे निर्भय होकर करो। प्रिय और अप्रियका विचार छोडकर, काम, क्रोध, लाभ और मानको दूर हटाकर समस्त प्राणियोके प्रति समभाव रखो। लोकमे जो कोई भी मनुष्य धर्मसे विचलित हो, उसे सनातन धर्मपर दृष्टि रखते हुए अपने बाहुबलसे परास्त करके दण्ड दो। साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि 'मैं मन वाणी और क्रियाद्वारा भूतलवर्ती ब्रह्म (वेद)-का निरन्तर पालन करूँगा। वेदमे दण्डनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाला जो नित्य धर्म बताया गया हे, उसका मैं निश्शक होकर पालन करूँगा। कभी स्वच्छन्द नहीं होऊँगा।' परतप प्रभो! साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि 'ब्राह्मण मेरे लिये अदण्डनीय हाग तथा मैं सम्पूर्ण जगत्को वर्णसकरता आर धर्मसकरतासे बचाऊँगा।"

'पूज्य महात्माओ!' आदिसम्राट् महाराज पृथुने अत्यन्त विनम्र वाणीमे ऋषियाके आज्ञापालनका दृढ सकल्प व्यक्त करते हुए कहा—'महाभाग ब्राह्मण मरे लिये सदा वन्दनीय हागे।'

महाराज पृथुके दृढ आश्वासनसे ऋषिगण अत्यन्त सतुष्ट हुए। उन्हाने महाराज पृथुका अभिपेक करनका निर्णय किया। उस समय नदी समुद्र पर्वत सर्प गौ पक्षी, मृग, स्वर्ग, पृथ्वी तथा अन्य सभी प्राणिया और दवताआने भी उन्हे वहुमूल्य उपहार दिय। फिर सुन्दर वस्त्राभूपणासे अलकृत महाराज पृथुका विधिवत् राज्याभिपक

हुआ। उस समय महारानी अर्चिके साथ उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी।

इसके अनन्तर भविष्यद्रष्टा ऋषियोकी प्ररणासे वन्दीजनाने महाराज पृथुके भावी पराक्रमाका वणन कर उनकी स्तुति की। महाराज पृथुने वन्दीजनाकी प्रशसा करते हुए उन्ह अभीष्ट वस्तुएँ देकर सतुष्ट किया, साथ ही उन्होने ब्राह्मणादि चारा वर्णों, सेवका, मन्त्रिया, पुरोहिता, पुरवासिया, दशवासिया तथा विभिन्न व्यवसायिया आदिका भी यथाचित सत्कार किया।

'महाराज! हमारे प्राणाकी रक्षा कर।' भूखसे जर्जर अत्यन्त कृशकाय प्रजाजनाने आकर अपन सम्राट्से प्रार्थना की। हम पटकी भीषण ज्वालासे जल रहे हैं। आप हमारे अन्नदाता प्रभु बनाये गये हैं, हम आपके शरण हैं। आप अन्नकी शीघ्र व्यवस्था कर हमारे प्राणाको बचा ल।'

वेनक पापाचरणसे पृथ्वीका अन्न नष्ट हो गया था। सर्वत्र दुर्भिक्ष फैला हुआ था। प्राणप्रिय प्रजाके आर्त्तनादसे व्याकुल हो आदिसम्राट् महाराज सोचने लगे।

'पृथ्वीने ही अन्न एव आपधियोको अपने भीतर छिपा लिया है।' यह विचार मनमे आते ही महाराज पृथु अपना 'आजगव' नामक दिव्य धनुष और दिव्य वाण लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक पृथ्वीके पीछे दौडे। उन्हे शस्त्र उठाये देखकर पृथ्वी काँप उठी और भयभीत मृगीकी भाँति गौका रूप धारणकर प्राण लेकर भागी। दिशा-विदिशा, धरती-आकाश और स्वर्गतक पृथ्वी भागती गयी, किंतु सर्वत्र उसे धनुषकी प्रत्यञ्चापर अपना तीक्ष्ण शर चढाये, लाल आँख किये अत्यन्त क्रुद्ध सम्राट् पृथु दीखे। विवश हाकर अपनी प्राण-रक्षाके लिये काँपती हुई पृथ्वीने परम पराक्रमी महाराज पृथुसे कहा—'महाराज!
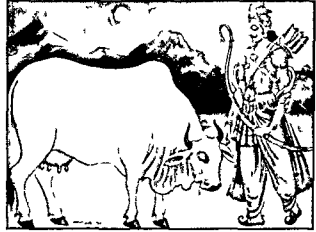
मुझ मारनेपर आपको स्त्री-वधका पाप लगेगा।'

'जहाँ एक दुष्टके वधस बहुताकी विपत्ति टल जाती हो,' कुपित पृथुने पृथ्वीको उत्तर दिया, 'सब सुखी होते हा, उसे मार डालना ही पुण्यप्रद है।'

'नृपोत्तम!' पृथ्वी बाली—'मुझे मार देनेपर आपकी प्रजाका आधार ही नष्ट हो जायगा।' 'वसुधे! अपनी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेके कारण मैं तो तुझे मार ही डालूँगा।' प्रतापी महाराज पृथुने उत्तर दिया। 'फिर मैं अपने योगबलसे प्रजाको धारण करूँगा।'

'लोकरक्षक प्रभो!' धरणीने महाराज पृथुके चरणाम प्रणाम कर उनकी स्तुति की। फिर उसने कहा—'पापात्माओंके द्वारा दुरुपयोग किये जाते देखकर मैंने बीजाको अपनेम रोक लिया। अधिक समय होनेसे वे मेरे उदरमे पच गये हैं। आपकी इच्छा हो तो मैं उन्ह दुग्धक रूपमे दे सकती हूँ। आप प्रजाहितके लिये ऐसा बछडा प्रस्तुत कर, जिससे वात्सल्यवश मैं उन्हे दुग्धरूपसे निकाल सकूँ।'

'धर्मात्माआम श्रेष्ठ महाराज!' पृथ्वीने आगे कहा—'एक बात और है। आप मुझे समतल करनेका भी कष्ट कर, जिससे वर्षा ऋतु व्यतीत होनेपर मेरे ऊपर इन्द्रका बरसाया जल सर्वत्र बना रह। मेरी आर्द्रता सुरक्षित रहे, शुष्क न हो जाय। यह आपके लिये भी शुभकर होगा।'

पृथ्वीके उपयोगी वचन सुनकर महाराज पृथुने

स्वायम्भुव मनुको बछडा बना उसका दोहन करके उससे ओषधि-बीज-अन्नादिका उत्पादन किया। पृथ्वीके द्वारा सब कुछ प्रदान करनेपर महाराज पृथु बड़े प्रसन्न हुए और अत्यधिक स्नेहवश उन्होंने सर्वकामदुघा पृथ्वीको अपनी कन्याके रूपमें स्वीकार कर लिया। महाराज पृथुने पृथ्वीको समतल भी कर दिया—

मन्वन्तरेषु सर्वेषु विषमा जायते मही।
उज्जहार ततो वैन्य शिलाजालान् समन्तत ॥
धनुष्कोट्या महाराज तेन शैला विवर्धिता ।

(महा० शान्ति० ५९। ११५-११६)

'सभी मन्वन्तरोंमें यह पृथ्वी ऊँची-नीची हो जाती है, अत वेनकुमार पृथुने धनुषकी कोटिद्वारा चारों ओरसे शिलासमूहोंको उखाड डाला और उन्हें एक स्थानपर संचित कर दिया, इसीलिये पर्वतोंकी लम्बाई चौडाई और ऊँचाई बढ गयी।'

न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।
प्रविभाग पुराणा वा ग्रामाणा वा पुराभवत्॥
न सस्यानि न गोरक्ष्य न कृषिर्न वणिक्पथ ।
वैन्यात्प्रभृति मैत्रेय सर्वस्यैतस्य सम्भव ॥

(विष्णुपुराण १। १३। ८३-८४)

'इससे पूर्व पृथ्वीके समतल न होनेसे पुर और ग्राम आदिका कोई विभाग नहीं था। हे मैत्रेय! उस समय अन्न, गोरक्षा, कृषि और व्यापारका भी कोई क्रम न था। यह सब तो वेनपुत्र पृथुके समयसे ही प्रारम्भ हुआ है।'

महाराज पृथुके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी। प्रजा सर्वथा निश्चिन्त रहकर अपने-अपने धर्मका पालन करती थी। वहाँ रोग-शोक नामकी कोई वस्तु नहीं थी—

न जरा न च दुर्भिक्ष नाधयो व्याधयस्तथा॥
सरीसृपेभ्य स्तेनभ्यो न चान्योन्यात् कदाचन।
भयमुत्पद्यते तत्र तस्य राज्ञोऽभिरक्षणात्॥

(महा० शान्ति० ५९। १२१-१२२)

'महाराज पृथुके राज्यमें किसीको बुढापा, दुर्भिक्ष तथा आधि-व्याधिका कष्ट नहीं था। राजाकी ओरसे रक्षाकी समुचित व्यवस्था होनेके कारण वहाँ कभी किसीको सर्पों, चोरों तथा आपसके लोगोंसे भय नहीं प्राप्त होता था।'

इतना ही नहीं, विष्णुके अंशावतार श्रीपृथुके शासनमें इच्छित वस्तुएँ स्वयं प्राप्त हो जाती थीं—

अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया।
सर्वकामदुघा गाव पुटके पुटके मधु॥

(विष्णुपुराण १। १३। ५०)

'पृथ्वी बिना जोते-बोये धान्य पकानेवाली थी। केवल चिन्तामात्रसे ही अन्न सिद्ध हो जाता था, गौएँ कामधेनुरूप थीं और पत्ते-पत्तेमें मधु रहता था।'

महाराज पृथुके चरणोंमें सारा जगत् देवताके समान मस्तक झुकाता था। वे सागरकी ओर जाते तो उसका जल स्थिर हो जाता। पर्वत उन्हें मार्ग दे देते थे। उनके रथकी पताका सदा फहराती रही।

सम्राट् पृथु अत्यन्त धर्मात्मा तथा परम भगवद्भक्त थे। उन्हें विषयभोगोंकी तनिक भी इच्छा नहीं थी। सांसारिक कामनाएँ उनका स्पर्शतक नहीं कर सकी थीं। वे सदा श्रीभगवान्‌को ही प्रसन्न रखना चाहते थे। उन्होंने प्रभुको संतुष्ट करनेके लिये मनुके ब्रह्मावर्त क्षेत्रमें जहाँ पुण्यतोया सरस्वती पूर्वमुखी होकर बहती हैं, सौ अश्वमेध-यज्ञोंकी दीक्षा ली। श्रीहरिकी कृपासे उस यज्ञानुष्ठानसे उनका बडा उत्कर्ष हुआ, किंतु यह बात देवराज इन्द्रको प्रिय नहीं लगी। सौ श्रौतयाग करनेके फलस्वरूप ही जीवको इन्द्रपद प्राप्त होता है। सुतरा ऐसी स्थितिमें दूसरा कोई 'शतक्रतु' हो जाय, यह उन्हें कैसे सहन होता। जब महाराज पृथु अन्तिम यज्ञद्वारा यज्ञपति श्रीभगवान्‌की आराधना कर रहे थे, इन्द्रने यज्ञका अश्व चुरा लिया। पाखण्डसे अनेक प्रकारके वेष बनाकर वे अश्वको चोरी करते और महर्षि अत्रिकी आज्ञासे पृथुके महारथी पुत्र विजिताश्व उनसे अश्व छीन लाते।

जब इन्द्रकी दुष्टताका पता महाराज पृथुको चला, तब वे अत्यन्त कुपित हुए, उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने इन्द्रको दण्ड देनेके लिये धनुष उठाया और उसपर अपना तीक्ष्ण बाण रखा।

'राजन्! यज्ञदीक्षा लेनेपर शास्त्रविहित यज्ञपशुके अतिरिक्त अन्य किसीका वध उचित नहीं है।' ऋत्विजोंने असह्यपराक्रम महाराज पृथुको रोकते हुए कहा। 'इस यज्ञमें उपद्रव करनेवाला आपका शत्रु इन्द्र आपकी सुकीर्तिसे ही

निस्तेज हो रहा है। हम अमाघ आवाहन-मन्त्राके द्वारा उसे अग्निम हवनकर भस्म कर दते हें। आप यज्ञम दीक्षित पुरुपकी मर्यादाका निवाह कर।'

यजमान महाराज पृथुसे परामर्श करक याजकाने क्रोधपूवक इन्द्रका आवाहन किया। वे स्रुवासे आहुति दना ही चाहते थे कि चतुर्मुखने उपस्थित हाकर उन्ह राक दिया। विधाताने आदिसम्राट् महाराज पृथुसे कहा—'राजन्! यज्ञसज्ञक इन्द्र तो श्रीभगवान्की ही मूर्ति हैं। यज्ञक द्वारा आप जिन देवताआको सतुष्ट कर रह हैं, वे इन्द्रक ही अङ्ग हैं और उस आप यज्ञद्वारा भस्म कर दना चाहत हैं! आप तो श्राहरिक अनन्य भक्त हैं। आपका ता माक्ष प्राप्त करना है। अतएव आपको इन्द्रपर क्रोध नहीं करना चाहिये। आप यज्ञ बन्द कर दाजिय।'

श्राब्रह्माजीक इस प्रकार समझानपर महाराज पृथुने यज्ञकी वहीं पूर्णाहुति कर दी। उनकी सहिष्णुता, विनय एव निष्काम भक्तिसे भगवान् विष्णु बड प्रसन्न हुए। भक्तवत्सल प्रभु इन्द्रक साथ वहाँ उपस्थित हो गये। इन्द्र अपने कर्मोंस लज्जित हाकर महाराज पृथुक चरणाम गिरना ही चाहते थे कि महाराजन उन्ह अत्यन्त प्रातिपूवक हृदयस लगा लिया और उनक मनकी मलिनता दूर कर दी।

महाराज पृथुने त्रैलाक्यसुन्दर, भुवनमाहन भगवान् विष्णुकी आर दखा ता उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। नेत्राम जल भर आनक कारण वे प्रभुका दर्शन नहीं कर पा रहे थ। श्रीभगवान्ने उन्ह ज्ञान, वराग्य तथा राजनीतिके गूढ रहस्याको वताते हुए कहा—

> वर च मत् कञ्चन मानवेन्द्र
> वृणीष्व तेऽह गुणशीलयन्त्रित ।
> नाह मखैर्वै सुलभस्तपाभि-
> र्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती॥
> (श्रीमद्भागवत ४।२०।१६)

'राजन्! तुम्हारे गुणो और स्वभावन मुझको वशम कर लिया है, अत तुम्ह जो इच्छा हा, वही वर मुझसे माँग लो। उन क्षमा आदि गुणासे रहित यज्ञ तप अथवा यागके द्वारा मुझका पाना सरल नहीं है, मैं तो उन्हींक हृदयम रहता हूँ, जिनक चित्तमे समता रहती है।'

प्रभुक चरणकमल वसुन्धराको स्पर्श कर रहे थे। उनका एक करकमल गरुडजीक कन्धेपर था। महाराज पृथुन अश्रु पाछकर प्रभुके मुखारविन्दकी आर दखते हुए अत्यन्त विनयक साथ कहा—

> वरान्विभो त्वद्वरदेश्वराद्बुध कथ वृणीते गुणविक्रियात्मनाम्।
> य नारकाणामपि सन्ति देहिना तानीश कवल्यपत वृणे न च॥
> न कामय नाथ तदप्यह क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासव ।
> महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमष मे वर ॥
> (श्रामद्भागवत ४।२०।२३-२४)

'मोक्षपति प्रभा! आप वर दनेवाल ब्रह्मादि देवताआको भी वर दनेम समर्थ हैं। काई भी बुद्धिमान् पुरुप आपसे दहाभिमानियाक भागनयोग्य विपयाका कैसे माँग सकता है? व तो नारकी जीवाका भा मिलते ही हैं। अत मैं इन तुच्छ विपयाका आपसे नहीं माँगता। मुझ तो उस मोक्षपदकी भी इच्छा नहीं है, जिसम महापुरुपाक हृदयस उनके मुखद्वारा निकला हुआ आपक चरणकमलाका मकरन्द नहीं ह—जहाँ आपकी कीर्ति-कथा सुननका सुख नहीं मिलता। इसलिये मरी ता यही प्रार्थना हे कि आप मुझ दस हजार कान दे दाजिये, जिनस मैं आपक लीला-गुणाका सुनता ही रहूँ।'

'तुम्हारा अनुरक्ति मुझम बना रहे!'—इस प्रकार वरदान देकर महाराज पृथुद्वारा पूजित श्रीभगवान् अपन धामको पधारे।

× × ×

आदिराज महाराज पृथुने गङ्गा-युमनाके मध्यवर्ती क्षेत्र प्रयागराजको अपनी निवासभूमि बना लिया था। वे सर्वथा अनासक्त भावसे तत्परतापूर्वक प्रजाका पालन करते थे। वे अनक प्रकारके महोत्सव किया करते थे। एक बार एक महासत्रमे देवता, ब्रह्मर्पि और राजर्पि भी उपस्थित थे। उन सबका यथायोग्य स्वागत-सत्कार करनेके उपरान्त परम भागवत महाराज पृथुने सबके सम्मुख अपनी प्रजाको उपदेश दते हुए कहा—'प्रिय प्रजाजन! अपने इस राजाके पारमार्थिक हितक लिय आपलोग परस्पर दोपदृष्टि छोडकर हृदयसे सर्वेश्वर प्रभुको स्मरण करते हुए अपने-अपन कर्तव्यका पालन करते रहिये। आपका स्वार्थ भी इसीम है और इस प्रकार मुझपर भी आपका परम अनुग्रह होगा। इस पृथ्वीतलपर मेरे जा प्रजाजन सर्वगुरु श्रीहरिकी निष्ठापूर्वक अपने-अपने धर्मोंके द्वारा निरन्तर पूजा करते हे, उनकी मुझपर बडी कृपा ह।' भगवान्की महिमाका निरूपण

करनेके साथ ही उन्होने क्लेशोकी निवृत्ति तथा मोक्ष-प्राप्तिका साधन भी भगवद्भजनको ही बताया। उन्होने सबको धर्मका उपदेश किया और अन्तम अपनी अभिलाषा व्यक्त की कि 'ब्राह्मण-कुल, गावश आर भक्ताक सहित भगवान् मुझपर सदा प्रसन्न रह।'

सभी महाराज पृथुको प्रशसा करने लगे। उसी समय वहाँ लोगाने आकाशसे सूर्यके समान तेजस्वी चार सिद्धाको उतरते देखा। परम पराक्रमी महाराज पृथुन सनकादिकुमाराको पहचानकर इन्ह श्रेष्ठ स्वर्णासनपर बठाया और श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे उनकी विधिवत् पूजा की। फिर उनके चरणादकको अपने मस्तकपर चढाया और हाथ जाडकर अत्यन्त विनयपूर्वक उन्हाने सनकादिसे कहा—'प्रभा! आपने मेर यहाँ पधारनेकी कृपा कर मेरा बडा ही उपकार किया है। मैं आपके प्रति आभार किन शब्दाम व्यक्त करूँ? अब आप दयापूर्वक यह बतानेका कष्ट कर कि इस धरतीपर प्राणीका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है।'

महाराज पृथुपर अत्यन्त प्रसन्न होकर सनकादि कुमारोने उन्ह धन ओर इन्द्रियाके विषयाके चिन्तनका त्याग कर भगवान्की भक्ति करनेका सदुपदश दिया।

'आपलागोक उपकारका बदला भला मैं कैसे दे सकता हूँ।' सनकादिक अमृतमय उपदेशासे उपकृत महाराज पृथुने उनकी स्तुति तथा पूजा की ओर वे आत्मज्ञानियाम श्रेष्ठ सनकादि महाराजके शील-गुणकी सराहना करते हुए सबके सामने ही आकाशमार्गसे प्रस्थित हुए।

इस प्रकार प्रजाके जीवन-निर्वाहकी पूरी व्यवस्था तथा साधुजनोचित धर्मका पालन करते हुए महाराज पृथुकी आयु ढलने लगी।

'अब मुझे अन्तिम पुरुषार्थ—मोक्षक लिये प्रयत्न करना चाहिये।' या विचारकर उन्हाने अपनी पुत्रारूपा पृथ्वीका भार अपने पुत्र*को सौंप दिया और अपनी सहधर्मिणी अर्चिके साथ वे तपस्याके लिये वनम चले गये।

वहाँ महाराज पृथुने अत्यन्त कठार तपस्या करते हुए सनकादिके उपदेशके अनुसार श्रीभगवान्म चित्त स्थिर कर लिया। इस प्रकार अपने परमाराध्य श्रीहरिम मन लगाकर एक दिन आसनपर बैठे-बठे ही उन्हाने योगधारणाके द्वारा अपना भातिक कलेवर त्याग दिया।

अपन पुण्यमय पतिक तप कालम उनकी सुकुमारी महारानी अर्चिन अत्यन्त दुर्वल हात हुए भी उनकी प्रत्यक रीतिस सेवा की। व निर्जन वनम समिधा एकत्र करतीं, कुश पुष्प आर फल एकत्र करतीं आर पवित्र जल लाकर पतिके भजनम सतत यागदान करती रहीं। जब उन्हाने पतिक निष्प्राण शरीरका दखा तब व करुण विलाप करन लगीं।

कुछ दरके वाद परमपराक्रमा आदिराज महाराज पृथुकी महारानी अर्चिने धर्य धारणकर लकडियाँ एकत्र कीं ओर समीपस्थ पर्वतपर चिता तयार की। फिर पतिके निर्जीव शारारको स्नान कराकर उस चितापर रख दिया। इसके अनन्तर उन्हाने स्वय स्नान कर अपने पतिका जलाञ्जलि दी। फिर अन्तरिक्षम उपस्थित देवताआकी वन्दना कर उन्हाने चिताकी तीन बार परिक्रमा की और स्वय भी प्रज्वलित अग्निम प्रविष्ट हा गयीं।

महारानी अर्चिका अपने वीर पति पृथुका अनुगमन करते देख सहस्रा वरदायिनी दवियाने उनकी स्तुति की। वहाँ देववाद्य बजने लगे आर आकाशसे सुमन-वृष्टि हाने लगी। देवाङ्गनाआने परम सती महारानी अर्चिकी प्रशसा करत हुए कहा—

सेषा नून व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्य पति सती।
पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा॥
तेषा दुराप कि त्वन्यन्मर्त्याना भगवत्पदम्।
भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत॥

(श्रीमद्भागवत ४। २३। २६-२७)

'अवश्य ही अपन अचिन्त्य कर्मके प्रभावसे यह सती हमे भी लाँघकर अपने पतिके साथ उच्चतर लोकोको जा रही है। इस लोकमे कुछ ही दिनाका जीवन होनेपर भी जो लाग भगवान्के परमपदकी प्राप्ति करानेवाला आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते ह, उनके लिये ससारमे और कौन पदार्थ दुर्लभ हे।'

× × × ×

पृथ्वीपर महाराज पृथु जैसे आदिराजा थे महारानी अर्चि भी उसी प्रकार पतिके साथ सहमरण करनेवाली प्रथम सती थीं।

---

* अर्चिके गर्भसे पाँच योग्य पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके नाम थे—विजिताश्व धूम्रकेश हर्यक्ष द्रविण और वृक।

(१०) भगवान् मत्स्य

प्रलयपयसि धातु सुप्तशक्तेर्मुखेभ्य
श्रुतिगणमपनीत प्रत्युपादत्त हत्वा।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रताना
तमहमखिलहेतु जिह्ममीन नतोऽस्मि॥
(श्रीमद्भागवत ८।२४।६१)

'प्रलयकालीन समुद्रमे जब ब्रह्माजी सो गये थे, उनकी सृष्टि-शक्ति लुप्त हो चुकी थी उस समय उनके मुखोसे निकली हुई श्रुतियोको चुराकर हयग्रीव दैत्य पातालमे ले गया था। भगवान्ने उसे मारकर वे श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं एव राजर्षि सत्यव्रत तथा सप्तर्षियोको ब्रह्मतत्त्वका उपदेश किया। उन समस्त जगत्के परम कारण लीला-मत्स्यभगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ।'

× × ×

कृतयुगके आदिमे सत्यव्रत-नामसे विख्यात एक राजर्षि थे। ये ही वर्तमान महाकल्पमे श्राद्धदेव-नामसे प्रसिद्ध विवस्वान्के पुत्र हुए, जिन्हे भगवान्ने वैवस्वत मनु बना दिया था। राजा सत्यव्रत बडे क्षमाशील, समस्त श्रेष्ठ गुणोसे सम्पन्न और सुख-दुखको समान समझनेवाले एक वीर पुरुष थे। ये पुत्रको राज्यभार सौंपकर स्वय तपस्याके लिये वनमे चले गये और मलय पर्वतके एक शिखरपर उत्तम योगका आश्रय लेकर घोर तपमे सलग्न हो गये। दस हजार वर्ष बीतनेके पश्चात् कमलासन ब्रह्मा राजाके समक्ष प्रकट हुए और बोले—'वर वृणीष्व—वर माँगो।' तब राजाने पितामहके चरणोमे प्रणाम करके कहा—'देव! मैं आपसे केवल एक ही उत्तम वर प्राप्त करना चाहता हूँ, वह यह है कि प्रलयकाल उपस्थित होनेपर मैं चराचर समस्त भूत-समुदायकी रक्षा करनेमे समर्थ हो सकूँ।' यह सुनकर विश्वात्मा ब्रह्मा 'एवमस्तु—यही हो' यो कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये और देवताओने राजापर महान् पुष्पवृष्टि की।

एक दिनकी घटना है कि राजर्षि सत्यव्रत नदीमे स्नान करके तर्पण कर रहे थे। इतनेमे ही जलके साथ एक छोटी-सी मछली उनकी अञ्जलिमे आ गयी। राजाने जलके साथ ही उसे फिरसे नदीमे डाल दिया। तब उस मछलीने बडी करुणाके साथ राजासे कहा—'राजन्! आप बडे दयालु हैं। आप जानते ही हैं कि बडे-बडे जलजन्तु अपनी जातिवाले छोटे-छोटे जलजन्तुओको खा जाते हैं तब फिर आप मुझे इस नदीके जलमे क्यो छोड रहे हैं।' राजा सत्यव्रतने उस मछलीकी अत्यन्त दीनतापूर्ण वाणी सुनकर उसे अपने कमण्डलुमे रख लिया और आश्रमपर ले आये। एक ही रातमे वह मछली इतनी बढ गयी कि उसके रहनेके लिये कमण्डलुमे स्थान ही नहीं रह गया। तब वह राजासे बोली—'राजन्! अब तो इस कमण्डलुमे मेरा किसी प्रकार भी निर्वाह नहीं हो सकता, अत मेरे सुखपूर्वक रहनेके लिये कोई बडा-सा स्थान नियत कीजिये।' तब राजर्षि सत्यव्रतने उस मछलीको कमण्डलुसे निकालकर एक बहुत बडे पानीके मटकेमे रख दिया, परतु दो ही घडीमे वह वहाँ भी बढकर तीन हाथकी हो गयी। फिर उसने राजासे कहा—'राजन्! यह मटका भी मेरे लिये पर्याप्त नहीं है, अत मुझे सुखपूर्वक रहनेके लिये कोई दूसरा बडा-सा स्थान दीजिये।' राजा सत्यव्रतने वहाँसे उस मछलीको उठाकर एक बडे सरोवरमे डाल दिया परतु थोडी ही देरमे उसने उस सरोवरके जलको भी घेर लिया और कहा—'राजन्! यह भी मेरे सुखपूर्वक रहनेके लिये पर्याप्त नहीं है।' इस प्रकार राजा उसे अन्यान्य अगाध जलराशिवाले सरोवरोमे छोडते गये और

वह उन्हें अपनी शरीर-वृद्धिसे परिव्याप्त करती गयी। तब राजाने उसे समुद्रमें डाल दिया। समुद्रमें छोड़े जाते समय उस लीला-मत्स्यने कहा—'वीरवर नरेश! समुद्रमें बहुत-से विशालकाय मगरमच्छ रहते हैं, वे मुझे निगल जायँगे, अतः आप मुझे समुद्रमें मत डालिये।'

मत्स्यभगवान्‌की वह मधुर वाणी सुनकर राजा सत्यव्रतकी बुद्धि मोहाच्छन्न हो गयी। तब उन्होंने पूछा—
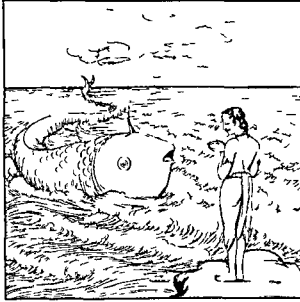
'हमें मत्स्यरूपसे मोहित करनेवाले आप कौन हैं? आपने एक ही दिनमें सौ योजन विस्तारवाले सरोवरको आच्छादित कर लिया। ऐसा पराक्रमशाली जलजन्तु तो हमने आजतक न देखा था और न सुना ही था। निश्चय ही आप साक्षात् सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी अविनाशी श्रीहरि हैं। जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपने जलचरका रूप धारण किया है। पुरुषश्रेष्ठ! आप जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कर्ता हैं, आपको नमस्कार है। विभो! हम शरणागत भक्तोंके आप ही आत्मा और आश्रय हैं। यद्यपि आपके सभी लीलावतार प्राणियोंके अभ्युदयके लिये ही होते हैं तथापि मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने यह मत्स्यरूप किस उद्देश्यसे धारण किया है?'

राजाके यों पूछनेपर मत्स्यभगवान् बोले—"शत्रुसूदन! आजसे सातवें दिन भूर्लोक आदि तीनों लोक प्रलयपयोधिमें निमग्न हो जायँगे। उस समय प्रलयकालकी जलराशिमें त्रिलोकीके डूब जानेपर मेरी प्रेरणासे एक विशाल नौका तुम्हारे पास आयेगी। तब तुम समस्त ओषधियों, छोटे-बड़े सभी प्रकारके बीजों और प्राणियोंके सूक्ष्मशरीरोंको लेकर सप्तर्षियोंके साथ उस बड़ी नावपर चढ़ जाना और निश्चिन्त होकर उस एकार्णवके जलमें विचरण करना। उस समय प्रकाश नहीं रहेगा, केवल ऋषियोंके दिव्य तेजका ही सहारा रहेगा। जब झंझावातके प्रचण्ड वेगसे नाव डगमगाने लगेगी, उस समय मैं इसी रूपमें तुम्हारे निकट उपस्थित होऊँगा। तब तुम वासुकि नागके द्वारा उस नावको मेरे सींगमें बाँध देना। इस प्रकार जबतक ब्राह्मी निशा रहेगी, तबतक मैं तुम्हारे तथा ऋषियोंके द्वारा अधिष्ठित उस नावको प्रलय-सागरमें खींचता हुआ विचरण करूँगा। उस समय तुम्हारे प्रश्न करनेपर मैं उनका उत्तर दूँगा, जिनसे मेरी महिमा, जो 'परब्रह्म' नामसे विख्यात है, तुम्हारे हृदयमें प्रस्फुटित हो जायगी।' राजासे यों कहकर मत्स्यभगवान् वहीं अन्तर्हित हो गये।

राजर्षि सत्यव्रत भगवान्‌के बताये हुए उस कालकी प्रतीक्षा करने लगे। वे कुशोंको, जिनका अग्रभाग पूर्वकी ओर था, बिछाकर उसपर ईशानकोणकी ओर मुख करके बैठ गये और मत्स्यरूपधारी श्रीहरिके चरणोंका चिन्तन करने लगे। इतनेमें ही राजाने देखा कि समुद्र अपनी मर्यादाभङ्ग करके चारों ओरसे पृथ्वीको डुबाता हुआ बढ़ रहा है और भयंकर मेघ वर्षा कर रहे हैं। तब उन्होंने

भगवान्‌के आदेशका ध्यान किया और देखा कि नाव आ गयी। फिर तो राजा ओषधि, बीज और सप्तर्षियोंको साथ लेकर उस नावपर सवार हो गये। तब सप्तर्षियोंने प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! केशवका ध्यान कीजिये। वे ही

हमलोगोंकी इस संकटसे रक्षा करके कल्याण करेंगे।' तदनन्तर राजाके ध्यान करते ही श्रीहरि मत्स्यरूप धारण करके उस प्रलयाब्धिमें प्रकट हो गये। उनका शरीर स्वर्ण-सा देदीप्यमान तथा चार लाख कोसके विस्तारवाला था। उनके एक सींग भी था। राजाने पूर्वकथनानुसार उस नावको वासुकि नागद्वारा मत्स्यभगवान्‌के सींगमें बाँध दिया और स्वयं प्रसन्न होकर उन मधुसूदनकी स्तुति करने लगे।

राजा सत्यव्रतके स्तवन कर चुकनेपर मत्स्यरूपधारी पुरुषोत्तम भगवान्‌ने प्रलय-पयोधिमें विहार करते हुए उन्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश किया, जो 'मत्स्यपुराण' नामसे प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् प्रलयान्तमें भगवान्‌ने हयग्रीव असुरको मारकर उससे वेद छीन लिये और ब्रह्माजीको दे दिये। भगवान्‌की कृपासे राजा सत्यव्रत ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न होकर इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए।

~~~ ० ~~~

(११) भगवान् कूर्म

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-

न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः।

यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिभेनाम्भसा

यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति॥

(श्रीमद्भागवत १२।१३।२)

'जिस समय भगवान्‌ने कच्छपरूप धारण किया था और उनकी पीठपर बड़ा भारी मन्दराचल मथानीकी तरह घूम रहा था, उस समय मन्दराचलकी चट्टानोंकी नोकसे पीठके खुजलाये जानेके कारण भगवान्‌को तनिक सुख मिला। उन्हें नींद-सी आने लगी और उनके श्वासकी गति थोड़ी बढ़ गयी। उस समय उस श्वास-वायुसे जो समुद्रके जलको धक्का लगा था, उसका संस्कार आज भी उसमें शेष है। आज भी समुद्र उसी श्वास-वायुके थपेड़ोंके फलस्वरूप ज्वार-भाटोंके रूपमें दिन-रात चढ़ता-उतरता रहता है, उसे अबतक विश्राम न मिला। भगवान्‌की वही परमप्रभावशाली श्वास-वायु आपलोगोंकी रक्षा करे।'

'सुन्दरी! अपने हाथमें सुशोभित संतानक-पुष्पोंकी अत्यन्त सुगन्धित दिव्य माला मुझे दे दो।' एक बार भगवान् शंकरके अंशावतार महर्षि दुर्वासाने सानन्द पृथ्वीतलपर विचरण करते हुए एक विद्याधरीके हाथमें अत्यन्त सुवासित मालाको देखकर उससे कहा।

'मेरा परम सौभाग्य है।' विद्याधरीने महर्षिके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उनके कर-कमलोंमें माला देते हुए अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मधुर वाणीमें कहा। 'मैं तो कृतार्थ हो गयी।'

महर्षिने माला लेकर अपने गलेमें डाल ली और आगे बढ़ गये। उधरसे त्रैलोक्याधिपति देवराज इन्द्र ऐरावतपर चढ़कर देवताओंके साथ आ रहे थे। महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर अपने गलेका भ्रमरोंसे गुञ्जायमान अत्यन्त सुन्दर और सुगन्धित माला निकालकर शचीपति इन्द्रके ऊपर फेंक दी। सुरेश्वरने वह माला ऐरावतके मस्तकके ऊपर डाल दी। ऐरावतने उस भ्रमरोंकी गुंजारसे युक्त सुवासित मालाको सूँडसे सूँघा और फिर उसे पृथ्वीपर फेंक दिया। यह दृश्य देखकर महर्षि दुर्वासाके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर सहस्राक्षको शाप दे दिया—

मया दत्तामिमां मालां यस्मान्न बहु मन्यसे।

त्रैलोक्यश्रीरतो मूढ विनाशमुपयास्यति॥

मद्दत्ता भवता यस्मात् क्षिप्ता माला महीतले।

तस्मात् प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति॥

(विष्णुपुराण १।९।१४ १६)

'रे मूढ! तूने मेरी दी हुई मालाका कुछ भी आदर नहीं किया, इसलिये तेरा त्रिलोकीका वैभव नष्ट हो जायगा। तूने मेरी दी हुई मालाको पृथ्वीपर फेंका है, इसलिये तेरा यह त्रिभुवन भी शीघ्र ही श्रीहीन हो जायगा।'

भयाक्रान्त शचीपति ऐरावतसे उतरकर महर्षिके चरणोंपर गिर पड़े और हाथ जोड़कर अनेक प्रकारकी स्तुतियोंसे उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न करने लगे। तब भी महर्षि दुर्वासाने कहा—

नाहं क्षमिष्ये बहुना किमुक्तेन शतक्रतो।

विडम्बनामिमां भूयः करोत्यनुनयात्मिकाम्॥

(विष्णुपुराण १।९।२४)
~~~

'शतक्रतो! तू बारम्बार अनुनय-विनयका ढोंग क्या करता है? तेरे इस कहने-सुननेसे क्या होगा? मैं तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता।'

महर्षि दुर्वासा वहाँसे चले गये और इन्द्र भी उदास होकर अमरावती पहुँचे। उसी क्षणसे अमरेन्द्रसहित त्रैलोक्यके वृक्ष तथा तृण-लतादि क्षीण होनेसे श्रीहत एवं विनष्ट होने लगे। त्रिलोकीके श्रीहीन एवं सत्त्वशून्य हो जानेसे प्रबल-पराक्रमी दैत्योंने अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंसे देवताओंपर आक्रमण कर दिया। देवगण पराजित होकर भागे। स्वर्ग दानवोंका क्रीडाक्षेत्र बन गया।

असहाय, निरुपाय एवं दुर्बल देवताओंकी दुर्दशा देखकर इन्द्र, वरुण आदि देवता समस्त देवताओंके साथ सुमेरुके शिखरपर लोकपितामहके पास पहुँचे। संकटग्रस्त देवताओंके त्राणके लिये चतुरानन सबके साथ भगवान् अजितके धाम वैकुण्ठमें पहुँचे। वहाँ कुछ भी न दीखनेपर उन्होंने वेदवाणीके द्वारा श्रीभगवान्‌की स्तुति करते हुए प्रार्थना की—

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम्॥
(श्रीमद्भागवत ८।५।४५)

'प्रभो! हम आपके शरणागत हैं और चाहते हैं कि मन्द-मन्द मुस्कानसे युक्त आपका मुखकमल अपने इन्हीं नेत्रोंसे देखें। आप कृपा करके हमें उसका दर्शन कराइये।'

देवताओंके स्तवनसे संतुष्ट होकर अमित तेजस्वी, मङ्गलधाम एवं नयनानन्ददाता भगवान् विष्णु मन्द-मन्द मुस्कराते हुए उन्हींके बीच प्रकट हो गये। देवताओंने पुनः दयामय, सर्वसमर्थ प्रभुकी स्तुति करते हुए अपना अभीष्ट निवेदन किया—

त्वमार्त्ताः शरणं विष्णो प्रयाता दैत्यनिर्जिताः।
वयं प्रसीद सर्वात्मंस्तेजसाप्याययस्व नः॥
(विष्णुपुराण १।९।७२)

'विष्णो! दैत्योंद्वारा परास्त हुए हमलोग आतुर होकर आपकी शरणमें आये हैं। सर्वस्वरूप! आप हमपर प्रसन्न होइये और अपने तेजसे हमें सशक्त कीजिये।'

'पुनः सशक्त होनेके लिये तुम्हें जरा-मृत्युनिवारिणी सुधा अपेक्षित है।' जगत्पति भगवान् विष्णुने मेघगम्भीर स्वरमें देवताओंसे कहा। 'अमृत समुद्र-मन्थनसे प्राप्त होगा। यह काम अकेले तुम देवताओंसे नहीं हो सकता। इसके लिये तुमलोग सामनीतिका अवलम्बन कर असुरोंसे संधि कर लो। अमृतपानके प्रश्नपर वे भी सहमत हो जायँगे। फिर समुद्रमें सारी ओषधियाँ लाकर डाल दो। इसके उपरान्त मन्दरगिरिकी मथानी एवं नागराज वासुकिकी नेती बनाकर मेरी सहायतासे समुद्र-मन्थन करो। तुम्हें निश्चय ही सुफल प्राप्त होगा, पर आलस्य और प्रमाद त्यागकर शीघ्र ही अमृतप्राप्तिके लिये प्रयत्न करो।'

लीलाधारी प्रभु वहीं अन्तर्धान हो गये। इन्द्रादि देवता दैत्यराज बलिके समीप पहुँचे। बुद्धिमान् इन्द्रने

उन्हें अपने बन्धुत्वका स्मरण कराया और भगवान्‌के आदेशानुसार बलिसे अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थनकी बात कही। 'अमृतमें देवताओं और दैत्योंका समान भाग होगा'—इस लाभकी दृष्टिसे दैत्येश्वर बलिने सुरेन्द्रका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वहाँ उपस्थित अन्य सेनापति शम्बर-अरिष्टनेमि और त्रिपुरनिवासी दैत्योंने भी इसका समर्थन किया।

फिर तो धराधामकी सारी ओषधियाँ, तृण और लताएँ क्षीरसागरमें डाल दी गयीं। देवताओं और दैत्योंने अपना मतभेद त्यागकर मन्दरगिरिको उखाड़ा और उसे क्षीराब्धितटकी ओर ले चले, किंतु महान् मन्दराचल उनसे अधिक दूर नहीं जा सका। विवशतः उन लोगोंने

उसे बीचमे ही पटक दिया। उस सोनेके मन्दरगिरिके गिरनेसे कितने ही दव और दैत्य हताहत हो गये।

दवा और दैत्याका उत्साह भङ्ग होत ही भगवान् गरुडध्वज वहाँ प्रकट हो गय। उनकी अमृतमयी कृपादृष्टिसे मृत देवता पुन जावित हो गय और उनकी शक्ति भी पूर्ववत् हो गयी। दयाधाम सर्वसमर्थ श्रीभगवान्ने एक हाथसे धारेसे मन्दराचलको उठाकर गरुडकी पीठपर रखा और देवता तथा दैत्यासहित जाकर उस क्षीरोदधि-तटपर रख दिया।

देवता ओर दत्यान महान् मन्दरगिरिको समुद्रमे डालकर नागराज वासुकिकी नेती बनायी। सर्वप्रथम अजितभगवान् नागराज वासुकिक मुखकी ओर गये। उन्हे दखकर अन्य दवता भी वासुकिक मुखकी ओर चल गय।

'पूँछ सपका अशुभ अङ्ग ह।' दैत्याने विरोध करते हुए कहा। 'हम इस नहीं पकडग।' और दत्यगण दूर खडे हो गये।

देवताआने कोई आपत्ति नहीं की। व पूँछकी ओर आ गय ओर दैत्यगण सगर्व मुखकी ओर जाकर सोत्साह समुद्रमन्थन करने लग। किंतु मन्दरगिरिके नीचे कोई आधार नहीं था। इस कारण वह नीचे समुद्रम डूबने लगा। यह दखकर अचिन्त्यशक्ति-सम्पन्न श्रीभगवान् विशाल एव विचित्र कच्छपका रूप धारणकर समुद्रमे मन्दरगिरिके नीचे पहुँच गये। कच्छपावतार भगवान्की एक लाख योजन विस्तृत पीठपर मन्दरगिरि ऊपर उठ गया। देवता और दैत्य समुद्र-मन्थन करने लग। भगवान् आदिकच्छपकी सुविस्तृत पीठपर मन्दरगिरि अत्यन्त तीव्रतासे घूम रहा था और श्रीभगवान्को ऐसा प्रतीत होता था, जेसे कोई उनकी पीठ खुजला रहा है।

समुद्र-मन्थनका कार्य सम्पन्न हो जाय, एतदर्थ श्रीभगवान् शक्ति-सवर्द्धनके लिये असुराम असुररूपसे, देवताआम दवरूपसे और वासुकिनागम निद्रारूपसे प्रविष्ट हो गये। इतना ही नहीं, वे मन्दरगिरिको ऊपरसे दूसरे महान् पर्वतकी भाँति अपने हाथासे दवाकर स्थित हो गय। श्रीभगवान्की इस लीलाको देखकर ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादि दवगण स्तुति करते हुए उनके ऊपर दिव्य पुष्पाकी वृष्टि करने लगे।

इस प्रकार कच्छपावतार श्रीभगवान्की पीठपर मन्दराचल स्थिर हुआ आर उन्हींकी शक्तिसे समुद्र-मन्थन हुआ।

(१२) भगवान् धन्वन्तरि

दवान् कृशानसुरसघनिपीडिताङ्गान्
दृष्ट्वा दयालुरमृत वितरीतुकाम ।
पाथाधिमन्थनविधौ प्रकटोऽभवद्या
धन्वन्तरि स भगवानवतात् सदा न ॥

'असुराके द्वारा पाडित हानेस जो दुर्बल हो रहे थे, उन दवताआको अमृत पिलानकी इच्छासे ही भगवान् धन्वन्तरि समुद्र-मन्थनसे प्रकट हुए थे। वे हमारी सदा रक्षा कर।'

× × ×

सागर-मन्थनका महत्त्व बतलाकर देवताआने असुराको अपना मित्र बना लिया। इसके पश्चात् दव और दानवाने मिलकर अनेक आषधियाका क्षीरसागरम डाला। मन्दराचलको मथानी और वासुकिनागको रस्सी बनाकर ज्यो ही उन्होने समुद्र-मन्थन प्रारम्भ किया त्या ही निराधार मन्दराचल समुद्रमे धँसन लगा। तब स्वय सर्वेश्वर भगवान्ने कूर्मरूपसे मन्दरगिरिको अपनी पीठपर धारण किया। इतना ही नहीं श्रीभगवान्ने देवता, दानवो एव वासुकिनागम प्रविष्ट होकर और स्वय मन्दराचलको ऊपरसे दबाकर समुद्र-मन्थन कराया। हलाहल, कामधेनु, ऐरावत, उच्चै श्रवा अश्व, अप्सराएँ, कौस्तुभमणि, वारुणी, शङ्ख, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मीजी ओर कदलीवृक्ष उससे प्रकट हो चुके थे। अमृत-प्राप्तिक लिये पुन समुद्र-मन्थन होन लगा और अन्तम हाथम अमृत-कलश लिये भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए। धन्वन्तरि साक्षात् विष्णुके अशसे प्रकट हुए थे इस कारण उनका स्वरूप भी मघश्याम श्रीहरिके समान श्यामल एव दिव्य था। चतुर्भुज धन्वन्तरि शौर्य एव तेजसे युक्त थे।

अमृत-वितरण हो जानपर देवराज इन्द्रने इनसे

देववैद्यका पद स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। इन्होने इन्द्रके इच्छानुसार अमरावतीमे निवास करना स्वीकार कर लिया। कुछ समय बाद पृथ्वीपर अनेक व्याधियाँ फैलीं। मनुष्य विभिन्न प्रकारके रोगोसे कष्ट पाने लगे। तब इन्द्रकी प्रार्थनासे भगवान् धन्वन्तरिने काशिराज दिवोदासके रूपमे पृथ्वीपर अवतार धारण किया। इन्हे आदिदेव, अमरवर, अमृतयोनि एव अब्ज आदि नामोसे सम्बोधित किया गया है।

लोक-कल्याणार्थ एव जरा आदि व्याधियोको नष्ट करनेके लिये स्वय भगवान् श्रीविष्णु धन्वन्तरिके रूपमे कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको प्रकट हुए थे, अत आयुर्वेद-प्रेमी भगवान् धन्वन्तरिके भक्तगण एव आयुर्वेदके विद्वान् इसी दिन प्रतिवर्ष आरोग्य-देवताके रूपमे इनकी जयन्ती मनाते हैं।

(१३) श्रीमोहिनी

जरा-मृत्युनिवारिणी सुधाकी प्राप्तिके लिये देवता और दैत्योने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। अनेक अलौकिक वस्तुओके अनन्तर जब श्वेतवस्त्रधारी भगवान् धन्वन्तरि अमृत-कलश लिये प्रकट हुए, तब सुधा-पानके लिये आतुर असुर उनके हाथसे अमृत-घट छीनकर भाग खडे हुए। प्रत्येक असुर अद्भुत शक्ति एव अमरता प्रदान करनेवाला अमृत सर्वप्रथम पी लेना चाहता था। किसीको धैर्य नहीं था। किसीका विश्वास नहीं था।

'पूरा अमृत कहीं एक ही पी गया तो?' सभी सशङ्क थे। सभी चिन्तित थे। अमृत-घट प्राप्त करनेके लिये सब परस्पर छीना-झपटी और तू-तू, मैं-मैं करने लगे।

'इस छीना-झपटीमे कहीं अमृत-कलश उलट गया और अमृत गिर गया तब?'—यह प्रश्न सबके सम्मुख था, किंतु स्वार्थके सम्मुख वस्तुस्थितिका विचार कौन करता? दैत्योसे न्याय और धर्मकी आशा व्यर्थ थी। दुर्बल देवता दूर उदास और निराश खडे थे। कोई समाधान नहीं था।

सहसा कोलाहल शान्त हुआ। देवता और दानवोकी दृष्टि एक स्थानपर टिक गयी। अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न लोकोत्तर रमणी सामने खडी थी। नखसे शिखतक—उसके अङ्ग-अङ्गपर कोटि-कोटि रतियोका अनूप रूप न्योछावर था सर्वथा फीका था। उन मोहिनीरूपधारी श्रीभगवान्को देखकर सब-के-सब मोहित सब-के-सब मुग्ध हो गये।

'सुन्दरि! तुम उचित निर्णय कर दो।' असुरोने अद्भुत छटा बिखरती त्रैलोक्यमोहिनीसे कहा। 'हम सभी कश्यपके पुत्र हैं और अमृत-प्राप्तिके लिये हमने समानरूपसे श्रम किया है। तुम इसे हम दैत्य और देवताओमे निष्पक्षभावसे वितरित कर दो, जिससे हमारा यह विवाद समाप्त हो जाय।'

'आपलोग परम पुनीत महर्षि कश्यपकी संतान हैं।' मोहिनीने मन्दस्मितसे जैसे सुधा-वृष्टि कर दी। 'और मेरी जाति और कुल-शीलसे आप सर्वथा अपरिचित हैं। फिर आपलोग मेरा विश्वासकर यह दायित्व मुझे क्यो सौंप रहे हैं?'

'हम आपपर विश्वास है।' मोहिनीरूपधारी जगत्पति श्रीभगवान्के अलौकिक सौन्दर्यसे मोहित असुरोने अमृत-घट उनके हाथमे दे दिया।

'मेरी वितरण-पद्धतिमे यदि आपलोगोको तनिक भी आपत्ति न हो तो मैं यह कार्य कर सकती हूँ।' अत्यन्त मोहग्रस्त करनेवाली मोहिनीने आश्वासन चाहा। 'अन्यथा यह काम आपलोग स्वय कर लें।'

'हमे कोई आपत्ति नहीं।' मोहिनीकी मधुर वाणी सुनकर दैत्योने कहा—'आप निष्पक्षभावसे सुधा-वितरण करनेमे स्वतन्त्र हैं।'

देवता और दैत्य—दानोने एक दिन उपवास कर स्नान किया। नूतन वस्त्र धारणकर अग्निमे आहुतियाँ दीं। ब्राह्मणोसे स्वस्तिपाठ कराया और पूर्वाग्र कुशोके आसनोपर पृथक्-पृथक् पङ्क्तिमे सब बैठ गये।

अमित सौन्दर्यराशि मोहिनीने अपने सुकोमल करकमलोमे अमृतकलश उठाया। स्वर्णमय नूपुर झंकृत

हो उठे। देवता और असुरोकी दृष्टि भुवनमोहिनी माहिनीकी ओर थी। माहिनीने मुस्कराते हुए दैत्याकी ओर दृष्टिपात किया। वे आनन्दान्मत्त हो गये।

मोहिनीरूपधारी विश्वात्मा प्रभुने दैत्योकी ओर देखते और मुस्कराते हुए दूरकी पङ्क्तिमे बेठे अमराको अमृत-पान कराना प्रारम्भ किया। अपन वचन एव त्रैलोक्य-दुर्लभ माहिनीकी रूपराशिसे मर्माहत असुरगण चुपचाप अपनी पारीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हे लावण्यमयी मोहिनीकी प्रेम-प्राप्तिकी आशा थी, विश्वास था।

धैर्य-धारण न कर सकनेके कारण छाया-पुत्र राहु देवताआके वेषमे सूर्य-चन्द्रके समीप बैठ गया। अमृत उसके कण्ठके नीचे उतर भी न पाया था कि दोनो देवताआने इङ्गित कर दिया और दूसरे ही क्षण क्षीराब्धिशायी प्रभुके तीक्ष्णतम चक्रसे उसका मस्तक कटकर पृथ्वीपर जा गिरा।

चौंककर दानवाने देखा तो मोहिनी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी सजलमघश्याम श्रीविष्णु वन गयी। असुराका मोह-भङ्ग हुआ। उन्हाने कुपित होकर शस्त्र उठाया और भयानक देवासुर-सग्राम छिड गया।

सम्पूर्ण सृष्टि भगवान् मायापतिकी माया है। कामके वशीभूत सभी प्रभुके उस मायारूपपर लुब्ध हे, आकृष्ट ह। आसुरभावसे अमरता प्रदान करनेवाला अमृत प्राप्त होना सम्भव नहीं। वह तो करुणामय प्रभुकी चरण-शरणसे ही सम्भव है—

असदविषयमङ्घ्रि भावगम्य प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्यम्।
कपटयुवतिवेषो मोहयन् य सुरारी-
स्तमहमुपसृताना कामपूर नतोऽस्मि॥

(श्रीमद्भागवत ८।१२।४७)

'दुष्ट पुरुषाको भगवान्के चरणकमलाकी प्राप्ति कभी हो नहीं सकती। वे तो भक्तिभावसे युक्त पुरुषको ही प्राप्त होते हैं। इसीसे उन्होने स्त्रीका मायामय रूप धारण करके दैत्याको मोहित किया ओर अपने चरणकमलोके शरणागत देवताआको समुद्र-मन्थनसे निकले हुए अमृतका पान कराया। उन्हींकी बात नहीं—चाहे जो भी उनके चरणाकी शरण ग्रहण करे, वे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। मैं उन प्रभुके चरणकमलामे नमस्कार करता हूँ।'

~~०~~

(१४) भगवान् नृसिह

कृतयुगकी बात है, एक बार ब्रह्माके मानस-पुत्र सनकादि, जिनकी अवस्था सदा पञ्चवर्षीय बालककी-सी ही रहती है, वैकुण्ठलोकम जा पहुँचे। वे भगवान् विष्णुके पास जाना चाहते थे, परतु जय-विजय नामक द्वारपालाने उन्हे बालक समझकर भीतर जानेसे रोक दिया। तब तो ऋषियाको क्रोध आ गया और उन्हाने शाप देत हुए कहा—'तुमलोगाकी बुद्धि तमागुणसे अभिभूत है अत तुम दानो असुर हो जाओ। तीन जन्माके बाद पुन तुम्ह इस स्थानकी प्राप्ति होगी।' ऋषि-शापवश व ही दाना दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके रूपम उत्पन्न हुए। हिरण्याक्षका भगवान् विष्णुने वराहावतार धारण करके मार डाला। भाईक वधस सतप्त हा हिरण्यकशिपु दैत्या ओर दानवाको अत्याचार करनेके लिय आज्ञा देकर स्वय महन्द्राचलपर चला गया। उसके हृदयम वैरकी आग धधक रही थी, अत वह विष्णुस बदला लेनेके लिये घार तपस्यामे सलग्न हो गया।

इधर हिरण्यकशिपुको तपस्या-निरत देखकर इन्द्रने दैत्यापर चढाई कर दी। दैत्यगण अनाथ होनेके कारण भागकर रसातलम चले गये। इन्द्रने राजमहलम प्रवेश करके राजरानी कयाधूको वदी बना लिया। उस समय वह गर्भवती थी इसलिये उसे वे अमरावतीकी ओर ले जा रहे थे। मार्गम उनकी देवर्षि नारदस भेट हो गयी। नारदजीन कहा—'इन्द्र! इस कहाँ ले जा रहे हो।' इन्द्रने कहा—'देवर्षे! इसक गर्भम हिरण्यकशिपुका अश है, उसे मारकर इस छाड दूँगा।' यह सुनकर नारदजीने कहा—'दवराज! इसके गर्भमे वहुत वडा भगवद्भक्त ह जिसे मारना तुम्हारी शक्तिक वाहर है अत इस छोड दो।' नारदजीक कथनका गोरव मानते हुए इन्द्र कयाधूका

छाडकर अमरावती चले गये। नारदजी कयाधूको अपन आश्रमपर ले आय और उससे बोले—'वटी! तुम यहाँ तबतक सुखपूर्वक निवास करो, जबतक तुम्हारा पति तपस्यासे लौटकर नहीं आ जाता।' समय-समयपर नारदजी गर्भस्थ बालकको लक्ष्य करके कयाधूका तत्त्वज्ञानका उपदेश देते रहते थे। यही बालक जन्म लेनपर परम भागवत प्रह्लाद हुआ।

जब हिरण्यकशिपुकी तपस्यासे त्रिलाकी सतप्त हो उठी और देवताआम खलबली मच गयी तब वे सब सगठित हाकर ब्रह्माकी शरणम गये और उनसे हिरण्यकशिपुका तपसे विरत करनेकी प्रार्थना की। ब्रह्मा हसपर आरूढ होकर वहाँ आये जहाँ हिरण्यकशिपु तपस्या कर रहा था। उसके शरीरको चीटियाँ चाट गयी थीं केवल अस्थिगत प्राण अवशप थे और एक बाँबीका आकार दीख पडता था। ब्रह्माने अपने कमण्डलुका जल उस बाँबीपर छिडक दिया। उसमसे हिरण्यकशिपु अपने असली रूपम निकल आया। तब ब्रह्माने कहा—'बेटा! एसी तपस्या तो आजतक न किसीने की है ओर न आग कोई करेगा ही। अब तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो।' यह सुनकर हिरण्यकशिपु बोला—'प्रभा! यदि आप मुझे अभीष्ट वर देना चाहते हैं ता ऐसा वर दीजिये कि आपके बनाये हुए किसी प्राणीसे—चाहे वह मनुष्य हो या पशु, प्राणी हो या अप्राणी, देवता हो या दैत्य अथवा नागादि—किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो। भीतर-बाहर दिनमे-रात्रिम, आपके बनाये प्राणियाके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे अस्त्र-शस्त्रसे, पृथ्वी या आकाशम—कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। युद्धमे मेरा कोई सामना न कर सके। मैं समस्त प्राणियाका एकच्छत्र सम्राट् हो जाऊँ। देवताआमे आप-जैसी महिमा मेरी भी हो और तपस्विया एव योगियाके समान अक्षय ऐश्वर्य मुझे भी दीजिये।'

ब्रह्मा उसकी तपस्यासे प्रसन्न तो थे ही अत उसे मुँहमाँगा वरदान देकर वहीं अन्तर्धान हा गये। हिरण्यकशिपु अपनी राजधानीमे चला आया। कयाधू भी नारदजीके आश्रमसे राजमहलमे आ गयी। उसके गर्भसे भागवतरत्न प्रह्लाद उत्पन्न हुए। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र थे। प्रह्लाद उनम सबसे छोटे थे अत उनपर हिरण्यकशिपुका विशप स्नेह था। उसन अपन गुरुपुत्र पण्ड और अमर्कको बुलवाया और शिक्षा दनके लिय प्रह्लादको उनक हवाले कर दिया। प्रह्लाद गुरु-गृहम शिक्षा पान लग। कुशाग्रबुद्धि हानक कारण व गुरु-प्रदत्त शिक्षा शात्र ही ग्रहण कर लत थे। साथ ही उनकी भगवद्भक्ति भा बढती गयी। व असुर-बालकाका भी भगवद्भक्तिकी शिक्षा दत थे। एक दिन हिरण्यकशिपुन बड प्रमस प्रह्लादका गादम बैठाकर पुचकारत हुए कहा—'बटा! अपनी पढी हुई अच्छी-से-अच्छी बात सुनाआ।' तब प्रह्लादन भगवद्भक्तिकी प्रशसा की। यह सुनते ही हिरण्यकशिपु क्राधस आगबबूला हो गया आर उसन प्रह्लादको अपनी गादस उठाकर भूमिपर पटक दिया तथा असुराका उन्ह मार डालनेकी आज्ञा दे दी। फिर तो प्रह्लादका काम तमाम कर दनक लिये असुराने उनपर विभिन्न अस्त्राका प्रयाग किया, परतु वे सभी निष्फल हो गये। तत्पश्चात् उन्ह हाथियास कुचलवाया विषधर सर्पोंस डँसवाया, पुरोहितासे कृत्या राक्षसी उत्पन्न करायी, पहाडकी चाटीस नाच डलवा दिया शम्बरासुरसे अनेक प्रकारकी मायाका प्रयाग करवाया, अँधेरी काठरियामें बद करा दिया विष पिलाया, भाजन बद कर दिया, बर्फीली जगह दहकती हुई आग और समुद्रम डलवाया आँधीमे छाड दिया तथा पर्वतके नीचे दबवा दिया, परतु किसी भी उपायसे प्रह्लादका बाल भी बाँका न हुआ।

एक दिन गुरु-पुत्रोंके शिकायत करनेपर हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको अपने निकट बुलाया और उन्ह तरह-तरहसे डराने-धमकाने लगा। फिर उसने कहा—'रे दुष्ट! जिसक बलपर तू ऐसी बहकी-बहकी बात बोल रहा है, तेरा वह ईश्वर कहाँ है? वह यदि सर्वत्र हे तो इस खम्भेमे क्यो नहीं दिखायी देता?' तब प्रह्लादने कहा—'मुझे तो वे प्रभु खम्भेमे भी दीख रहे हैं।' यह सुनकर जब हिरण्यकशिपु क्रोधक मारे अपनेको सँभाल न सका, तब हाथम खड्ग लेकर सिहासनसे कूद पडा और बडे जारसे उस खम्भेम एक घूँसा मारा। उसी समय उस खम्भेसे बडा भयकर शब्द हुआ। ऐसा जान पडता था माना ब्रह्माण्ड फट गया हा। उस शब्दका सुनकर हिरण्यकशिपु घबराया हुआ-सा इधर-उधर देखने लगा कि यह शब्द करनेवाला कौन है, परतु उसे सभाके भातर कुछ भी दिखायी न पडा। इतनम

ही वहाँ बडी अलौकिक घटना घटी।

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥
(श्रीमद्भा० ७।८।१८)

'इसी समय अपने भृत्य प्रह्लादकी वाणी सत्य करने तथा समस्त भूतोंमें अपनी व्यापकता दिखानेके लिये सभाके भीतर उसी खम्भेमेंसे अत्यन्त अद्भुत रूप धारण करके भगवान् प्रकट हुए। वह रूप न तो समूचा सिंहका ही था और न मनुष्यका ही।'

जिस समय हिरण्यकशिपु शब्द करनेवालेकी खोज कर रहा था, उसी समय उसने खम्भेके भीतरसे निकलते हुए उस अद्भुत प्राणीको देखा। वह सोचने लगा—'अहो! यह न तो मनुष्य है न पशु, फिर यह नृसिंहके रूपमें कौन-सा अलौकिक जीव है?' जिस समय हिरण्यकशिपु इस उधेड़-बुनमें लगा हुआ था उसी समय उसके ठीक सामने ही भगवान् नृसिंह खड़े हो गये। उनका रूप बड़ा भयावना था—

'उनकी तपाये हुए सोनेके समान पीली-पीली भयावनी आँखें थीं चमचमाते हुए गरदनके तथा मुँहके बालोंसे उनका चेहरा भरा-भरा दीख रहा था, उनकी दाढ़ें बड़ी विकराल थीं तलवारके समान लपलपाती हुई तथा छुरेकी धारके सदृश तीखी उनकी जीभ थी, टेढ़ी भौंहोंके कारण उनका मुख और भी भीषण था, उनके कान निश्चल एवं ऊपरकी ओर उठे हुए थे उनकी फूली हुई नासिका और खुला हुआ मुख पर्वतकी गुफाके सदृश अद्भुत जान पड़ता था, फटे हुए जबड़ोंके कारण उसकी भीषणता बहुत बढ़ गयी थी। उनका विशाल शरीर स्वर्गका स्पर्श कर रहा था। गरदन कुछ नाटी और मोटी थी, छाती चौड़ी और कमर पतली थी, चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद रोएँ सारे शरीरपर चमक रहे थे, चारों ओर सैकड़ों भुजाएँ फैली हुई थीं जिनके बड़े-बड़े नख आयुधका काम दे रहे थे।' (श्रीमद्भा० ७।८।२०—२२) भयके मारे भगवान् नृसिंहके निकट जानेका साहस किसीको नहीं होता था। भगवान्ने चक्र आदि आयुधोंद्वारा सारे दैत्य-दानवोंको खदेड़ दिया।

तत्पश्चात् हिरण्यकशिपु सिंहनाद करता हुआ हाथमें गदा लेकर नृसिंहभगवान्पर टूट पड़ा। तब भगवान् भी कुछ देरतक उसके साथ युद्धलीला करते रहे। अन्तमें उन्होंने बड़ा भीषण अट्टहास किया, जिससे हिरण्यकशिपुकी आँखें बंद हो गयीं। तब भगवान्ने झपटकर उसे उसी प्रकार दबोच लिया जैसे साँप चूहेको पकड़ लेता है। फिर उसे सभाके दरवाजेपर ले जाकर अपनी जाँघोंपर गिरा लिया और खेल-ही-खेलमें अपने नखोंसे उसके कलेजेको फाड़ डाला। उस समय उनकी क्रोधसे भरी आँखोंकी ओर देखा नहीं जा सकता था। वे अपनी लपलपाती हुई जीभसे दोनों जबड़ोंको चाट रहे थे। उनके मुख और गरदनके बालोंपर खूनके छींटे झलक रहे थे। उन्होंने अपने तीखे नखोंसे हिरण्यकशिपुके कलेजेको फाड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया। फिर सहायतार्थ आये हुए सभी दैत्योंको उन्होंने खदेड़-खदेड़कर मार डाला। उस समय भगवान् नृसिंहके गरदनके बालोंके झटकेसे बादल तितर-बितर हो जा रहे थे। उनके नेत्रोंकी ज्वालासे सूर्य आदि ग्रहोंका तेज फीका पड़ गया। उनके श्वासके धक्केसे समुद्र क्षुब्ध हो उठे। उनके सिंहनादसे भयभीत होकर दिग्गज चिग्घाड़ने लगे। उनकी गरदनके बालोंसे टकराकर देवताओंके विमान अस्त-व्यस्त हो गये। स्वर्ग डगमगा गया पैरोंकी धमकसे भूकम्प आ गया, वेगसे पर्वत उड़ने लगे, तेजकी चकाचौंधसे दिशाओंका दीखना बंद हो गया। उनका क्रोध बढ़ता जा रहा था। वे हिरण्यकशिपुकी राजसभामें ऊँचे सिंहासनपर विराजमान हो गये। उनकी क्रोधपूर्ण भयंकर

मुखाकृतिको देखकर किसीका भी साहस नहीं हुआ, जो निकट जाकर उन्हे प्रसन्न करनेकी चेष्टा करे।

उधर स्वर्गमे देवाङ्गनाओको जब यह समाचार मिला कि भगवान्‌के हाथो हिरण्यकशिपुकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी, तब वे आनन्दसे खिल उठीं और भगवान्‌पर बारबार पुष्पोकी वर्षा करने लगीं। इसी समय ब्रह्मा, इन्द्र, शकर आदि देवगण, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, महानाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वेताल किनर और भगवान्‌के सभी पार्षद उनके पास आये और थोडी दूरपर स्थित होकर सभीने अञ्जलि बाँधकर अलग-अलग नृसिहभगवान्‌की स्तुति की। इस प्रकार स्तवन करनेपर भी जब भगवान्‌का क्रोध शान्त नहीं हुआ, तब देवताओने लक्ष्मीजीको उनके निकट भेजा, परतु भगवान्‌के उस उग्र रूपको देखकर वे भी भयभीत हो गयीं और उनके पासतक न जा सकीं। तब ब्रह्माने प्रह्लादसे कहा—'बेटा! तुम्हारे पितापर ही तो भगवान् कुपित हुए थे। अब तुम्हीं जाकर उन्हे शान्त करो।' प्रह्लाद 'जो आज्ञा' कहकर भगवान्‌के निकट जा, हाथ जोड पृथ्वीपर साष्टाङ्ग लोट गये। अपने चरणोमे एक नन्हेसे बालकको पडा हुआ देखकर भगवान् दयार्द्र हो गये। उन्होने प्रह्लादको उठाकर उनके सिरपर अपना करकमल रख दिया। फिर तो प्रह्लादके बचे-खुचे सभी अशुभ सस्कार नष्ट हो गये। तत्काल उन्हे परमतत्त्वका साक्षात्कार हो गया। उन्होने भावपूर्ण हृदय तथा निर्निमेष नयनोसे भगवान्‌को निहारते हुए प्रेम-गद्‌गद वाणीसे स्तुति की।

प्रह्लादद्वारा की गयी स्तुतिसे नृसिहभगवान् सतुष्ट हो गये और उनका क्रोध जाता रहा। तब वे प्रेमसे भरकर प्रसन्नतापूर्वक बोले—

प्रह्लाद भद्र भद्र ते प्रीतोऽह तेऽसुरोत्तम।
वर वृणीष्वाभिमत कामपूरोऽस्म्यह नृणाम्॥
मामप्रीणत आयुष्मन् दर्शन दुर्लभ हि मे।
दृष्ट्वा मा न पुनर्जन्तुरात्मान तप्तुमर्हति॥
प्रीणन्ति ह्यथ मा धीरा सर्वभावेन साधव ।
श्रेयस्कामा महाभागा सर्वासामाशिषा पतिम्॥
(श्रीमद्भा० ७।९।५२—५४)

'भद्र प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। असुरोत्तम! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, माँग लो, मैं मनुष्योकी कामना पूर्ण करनेवाला हूँ। आयुष्मन्! जो मुझे प्रसन्न नहीं कर लेता, उसके लिये मेरा दर्शन दुर्लभ है, परतु जब मेरे दर्शन हो जाते हैं, तब प्राणीके हृदयमे किसी प्रकारकी जलन नहीं रह जाती। मैं समस्त मनोरथोको पूर्ण करनेवाला हूँ, इसीलिये सभी कल्याणकामी परम भाग्यवान् साधुजन जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त वृत्तियोसे मुझे प्रसन्न करनेका ही प्रयत्न करते हैं।'

तब प्रह्लादने कहा—'मेरे वरदानिशिरोमणि स्वामी! यदि आप मुझे मुँहमाँगा वरदान देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कर दीजिये कि मेरे हृदयमे कभी किसी कामनाका बीज अकुरित ही न हो।'

यह सुनकर नृसिहभगवान्‌ने कहा—'वत्स प्रह्लाद! तुम्हारे-जैसे एकान्तप्रेमी भक्तको यद्यपि किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं रहती तथापि तुम केवल एक मन्वन्तरतक मेरी प्रसन्नताके लिये इस लोकमे दैत्याधिपतिके समस्त भोग स्वीकार कर लो। यज्ञभोक्ता ईश्वरके रूपमे मैं ही समस्त प्राणियोके हृदयमे विराजमान हूँ, अत तुम मुझे अपने हृदयमे देखते रहना और मेरी लीला-कथाएँ सुनते रहना। समस्त कर्मोके द्वारा मेरी ही आराधना करके अपने प्रारब्ध-कर्मका क्षय कर देना। भोगके द्वारा पुण्यकर्मोके फल और निष्काम पुण्यकर्मोके द्वारा पापका नाश करते हुए समयपर शरीरका त्याग करके समस्त बन्धनोसे मुक्त होकर तुम मेरे पास आ जाओगे। देवलोकमे भी लोग तुम्हारी विशुद्ध कीर्तिका गान करेगे। इतना ही नहीं, जो भी हमारा और तुम्हारा स्मरण करेगा, वह समस्त कर्म-बन्धनोसे मुक्त हो जायगा।'

तदनन्तर प्रह्लादने कहा—'दीनबन्धो! मेरी एक प्रार्थना यह है कि मेरे पिताने आपको भ्रातृहन्ता समझकर आपसे और आपका भक्त जानकर मुझसे जो द्रोह किया है उस दुस्तर दोषसे वे आपकी कृपासे मुक्त हो जायँ।'

तब नृसिहभगवान्‌ने हिरण्यकशिपुकी पवित्रताको प्रमाणित करते हुए प्रह्लादको उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करनेकी आज्ञा दी और स्वय ब्रह्माद्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर उन्हे वैसा वर देनेसे मना करते हुए वे वहीं अन्तर्धान हो गये।

(१५) भगवान् वामन

पूर्वकालकी बात है। देवताओ और दैत्याम युद्ध हुआ। देवता पराजित हुए। दैत्याने स्वर्गपर अधिकार कर लिया।

इस प्रकार दैत्येश्वर बलिका आधिपत्य देखकर दवराज इन्द्र अपनी माता अदितिके सुन्दर आश्रमपर, जो सुमरुगिरिक शिखरपर विराजमान था, पहुँचे। वहाँ दानवासे पराजित हुए उन सभी देवताआने माता अदितिके निकट जाकर उनके चरणाम प्रणाम किया आर अपनी सारी कष्ट-कहानी कह सुनायी। फिर माता अदितिके आदशानुसार इन्द्रादि देवगण परम तपस्वी मरीचिनन्दन कश्यपक समीप जा, उनके चरणाम प्रणाम करके हाथ जोडकर बाले— 'पिताजी! बलशाली दैत्यराज वलि युद्धम हमारे लिय अजेय हा गया है। इसलिय कोई ऐसा उपाय कीजिये जो हम देवताआके लिय श्रेयस्कर और पुष्टिवर्धक हा।'

पुत्राकी बात सुनकर महर्षि कश्यपन देवताआको साथ लिया और वे ब्रह्माकी परमात्कृष्ट विशाल सभामे पहुँच। ब्रह्माकी उस सर्वकामप्रदायिनी सभाम प्रवेश करके धर्मात्माआमे श्रेष्ठ कश्यप तथा उनके पुत्र दवराज इन्द्र और उन सभी देवताआने पद्मासनपर विराजमान ब्रह्माका दशन किया और ब्रह्मर्षियाक साथ उनक चरणाम सिर झुकाकर प्रणाम किया। ब्रह्माके चरणाका स्पर्श करते ही वे सभी पापास मुक्त हो गये। तब कश्यपके साथ उन सभी दवताआको आया हुआ देखकर दवेश्वर ब्रह्माने उन्ह उत्तर दिशाम स्थित क्षीरसागरक उत्तर तटपर जाकर कठिन तप करनेकी आज्ञा दी।

पितामहकी आज्ञा स्वीकार करके दवताआन उन्ह सिर झुकाकर प्रणाम किया ओर वे श्वेतद्वीपम पहुँचनेके उद्दश्यसे उत्तर दिशाकी ओर चल पडे। थाडी ही देरम वे सरित्पति क्षाराब्धिके तटपर पहुँच गये। वहाँसे वे साता समुद्रा काननासहित पर्वता तथा अनेका पुण्यसलिला नदियाको लाँघत हुए पृथ्वाक अन्तम जा पहुँचे। वहाँ चारा ओर अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था। वहाँ महर्षि कश्यप एक निष्कण्टक स्थानपर पहुँचकर ब्रह्मचर्य एव मानपूर्वक वारासनसे वैठ गये आर उन्हाने सहस्र-वार्षिक दिव्य व्रतकी दीक्षा ल ली, क्याकि उन्ह सहस्रनेत्रधारी यागाधिपति भगवान् नारायणका प्रसन्न करना था। इसी प्रकार सभी दवता क्रमश तपस्यामे निरत हो गये। तदनन्तर महर्षि कश्यपन नारायणका रिझानेके लिये वदोक्त 'परमस्तव' नामक स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति की।

इस प्रकार मरीचिपुत्र द्विजवर कश्यपद्वारा किय गय स्तवनको सुनकर भगवान् नारायणका मन प्रसन्न हो गया और उन्हाने गम्भीर वाणीमे कहा—'देवगण! आपका मङ्गल हा। आप कोई अभीष्ट वर माँग ल। मं आपलागाका वर दना चाहता हूँ।'

कश्यपजीने कहा—'सुरश्रेष्ठ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो में सभी लागाक एकमतसे यह याचना कर रहा हू कि आप स्वय अदितिके गर्भसे इन्द्रके छोटे भाईके रूपम उत्पन्न हा।' उधर वरार्थिनी दवमाता अदितिन भी वरदायक भगवान्स पुत्रके लिये ही प्रार्थना की। साथ ही सभी देवताआने भी एक साथ निवेदन किया कि 'महेश्वर'! आप हम सारे दवताआके इसी प्रकार त्राता, भर्ता, दाता ओर आश्रय बने।

भगवान् विष्णुने उन देवताआसे कहा—"देवगण! आपलागाके जितने भी शत्रु हागे, वे सभी मिलकर मरे सामने क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकते। में यज्ञभागक अग्रभोजी सारे असुराका सहार करके सभी देवताआको 'हव्याशी' तथा पितृगणाका 'कव्याशी' बनाऊँगा। सुरश्रेष्ठगण! आपलोग जिस मार्गसे आये हें, उसी मार्गसे लौट जायँ।"

प्रभावशाली भगवान् विष्णुक या कहनेपर उन सभी देवताआने कश्यप ओर अदितिको आग कर भगवान् विष्णुकी पूजा की ओर फिर उन्ह प्रणाम करके वे कश्यपाश्रमकी ओर चल पडे। वहाँ पहुँचकर उन्हाने अदितिका समझा-वुझाकर घार तपस्याक लिये राजी कर लिया। उस समय महर्षियाका दैत्याद्वारा तिरस्कृत हाते दखकर अदितिके मनम महान् निर्वेद उत्पन्न हुआ। वे साचन लगीं कि 'मरा पुत्र उत्पन्न करना ही व्यर्थ हा गया।' इसलिये वे इन्द्रियाका वशम करक शरणागतवत्सल भगवान् विष्णुकी आराधनाम तत्पर हा गयीं। उस समय वायु हा

उनका आहार था। वे उन सर्वव्यापी भगवान्‌की स्तुति करने लगी।

अदितिके द्वारा किये गये स्तवनसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु सभी प्राणियोसे अलक्षित रहते हुए अदितिके सम्मुख प्रकट हो गये आर बोले—

'महाभागा अदिति! तुम्हारे हृदयम जिस वर-प्राप्तिकी अभिलाषा है, वह मुझे ज्ञात है। धर्मज्ञे! तुम जिन-जिन वराको प्राप्त करनेकी इच्छा रखती हो, वे सभी मेरी कृपासे निस्सन्देह तुम्हे मिल जायँगे। मेरा दर्शन कभी निष्फल नहीं होता।'

अदितिने कहा—"भक्तवत्सल प्रभो! यदि आप मेरी भक्तिसे प्रसन्न ह तो मुझे यह वरदान दीजिये कि 'मेरा पुत्र इन्द्र त्रिलाकीका अधिपति हो जाय और असुरोने जो उसका राज्य तथा यज्ञभाग छीन लिया है वह सब आपकी कृपासे मेरे पुत्रको प्राप्त हो जाय।' केशव! मेरे पुत्रका राज्य चला गया, इसका मुझे लेशमात्र भी दु ख नहीं है, परतु यज्ञभागका छिन जाना मरे हृदयमे शूल-सा चुभ रहा है।"

यह सुनकर भगवान् विष्णु वरदान देते हुए बोले—

कृत प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम्।
स्वांशेन चैव ते गर्भे सम्भविष्यामि कश्यपात्॥
तव गर्भे समुद्भूतस्ततस्ते ये त्वरातय।
तानह च हनिष्यामि निवृता भव नन्दिनि॥

(वामनपुराण २८। १०-११)

'देवि! तुम्हारी कामनाके अनुसार ही में कार्य करूँगा। में महर्षि कश्यपके द्वारा अपने अशसे तुम्हारे गर्भम प्रवेश करूँगा। इस प्रकार तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होनेके पश्चात् जो कोई भी तुम्हारे शत्रु होगे, उन सवका मं सहार करूँगा। नन्दिनि! तुम शोक छाडकर स्वस्थ हो जाओ।'

अदितिसे या कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। उस समय अदितिको यह जानकर कि स्वय भगवान् मरे गर्भसे जन्म लगे, महान् हर्ष हुआ। वह बडे प्रमसे अपने पतिदव कश्यपकी सेवाम जुट गयी। कश्यपजी भी तत्त्वदर्शी थे। उन्हाने समाधियोगके द्वारा यह जान लिया कि भगवान्‌का अश उनक अन्दर प्रविष्ट हो गया है। तव जैसे वायु लकडीम अग्निका आधान करती है, उसी प्रकार कश्यपजीन समाहित चित्तसे अपनी तपस्याद्वारा चिरसचित वीर्यका अदितिम आधान किया। इस प्रकार भगवान् विष्णु अदितिक गर्भम प्रविष्ट हाकर क्रमश बढने लगे।

जब ब्रह्माजीका यह बात ज्ञात हुई कि अदितिक गर्भमे स्वय अविनाशी भगवान् आये हैं, तब उन्हाने भगवान्‌के रहस्यमय नामासे उनकी स्तुति की।

समय बीतते दर नहीं लगती। अन्ततोगत्वा दसवे मासमे भगवान्‌का प्राकट्य-काल उपस्थित हुआ। उस समय चन्द्रमा श्रवणनक्षत्रपर थे। भाद्रपदमासक शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी। अभिजित् मुहूर्त्त चल रहा था। सभी नक्षत्र और तारे मङ्गलकी सूचना दे रह थे। एसी शुभ वेलाम भगवान् अदितिके सामने प्रकट हुए। उस समय उनका अलौकिक रूप था—

चतुर्भुज शङ्खगदाब्जचक्र
पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षण॥
श्यामावदाता झषराजकुण्डल-
त्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुज पुमान्।
श्रीवत्सवक्षा वलयाङ्गदोल्लस-
त्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुर॥
मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया
विराजित श्रीवनमालया हरि।
प्रजापतर्वेश्मतम स्वरोचिषा
विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभ॥

(श्रीमद्भागवत ८। १८। १—३)

'भगवान्‌के चार भुजाएँ थीं, जिनम शङ्ख, गदा, कमल और चक्र सुशोभित थे। शरीरपर पीताम्बर चमक रहा था। कमल-पुष्पके समान विशाल एव सुन्दर नेत्र थे। उज्ज्वल श्यामवर्णका शरीर था। मकराकृति कुण्डलोकी कान्तिस मुख-कमलकी शोभा विशेषरूपसे उल्लसित हो रही थी। वक्ष स्थलम श्रीवत्सका चिह्न हाथामे कगन, भुजाआमे बाजूबन्द, मस्तकपर किरीट, कमरमे करधनीकी लडियाँ और पैराम सुन्दर नूपुर शोभा दे रह थे। गलेम उनकी अपनी स्वरूपभूत वनमाला विराजमान थी, जिसके चारा ओर झुण्ड-के-झुण्ड भौंरे गुञ्जार कर रहे थे। कण्ठ कौस्तुभमणिसे विभूपित था। वे अपनी प्रभासे प्रजापति कश्यपके घरके अन्धकारका विनाश कर रहे थे।'

भगवान्‌क जन्म लनेके समय दिशाएँ निर्मल हो गयीं।

नदी और सरोवरोंका जल स्वच्छ हो गया। प्रजाके हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। सब ऋतुएँ एक साथ अपना-अपना गुण प्रकट करने लगीं। स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, देवता, गौ, द्विज और पर्वत—इन सबके हृदयमें हर्षका संचार हो गया। सुखदायिनी शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु चलने लगी। आकाश निर्मल हो गया। सभी प्राणियोंकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त हो गयी। आकाशमें शङ्ख, ढोल मृदङ्ग,

डफ और नगारे बजने लगे। दुन्दुभियोंकी तुमुल ध्वनि होने लगी। अप्सराएँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं। श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे। मुनि, देवता, मनु, पितर और अग्नि स्तुति करने लगे। सिद्ध, विद्याधर किम्पुरुष, किन्नर, चारण यक्ष, राक्षस, पक्षी, मुख्य-मुख्य नागगण और देवताओंके अनुचर नाचने-गाने और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे तथा उन लोगोंने पुष्प-वृष्टि करके उस आश्रमको ढक दिया। लोकस्रष्टा ब्रह्मा भी भावाविष्ट होकर स्तुति करने लगे।

श्रद्धा-भक्तिपूर्ण स्तुति किये जानेपर भगवान्‌ने चतुर्भुज रूपका परित्याग करके अपनेको वामनाकृतिमें परिवर्तित कर लिया। यह देखकर माता अदितिको महान् हर्ष हुआ तब कश्यपजीने जातकर्म आदि संस्कार किये। तदनन्तर भगवान् वामनद्वारा अपने उपनयनकी इच्छा व्यक्त किये जानेपर ब्रह्मर्षियोंने उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया। उस समय वामन बटुकको महर्षि पुलहने यज्ञोपवीत, पुलस्त्यने दो श्वेत वस्त्र, अगस्त्यने मृगचर्म, भरद्वाजने मेखला, ब्रह्मपुत्र मरीचिने पलाशदण्ड, वसिष्ठने अक्षसूत्र अङ्गिराने कुशका बना हुआ वस्त्र, सूर्यने छत्र, भृगुने एक जोड़ी खड़ाऊँ और बृहस्पतिने कमण्डलु प्रदान किया। यों उपनीत होनेके पश्चात् वामनने अङ्गोसहित वेदों और शास्त्रोंका अध्ययन करके एक ही मासमें उनमें निपुणता प्राप्त कर ली। तब उन्होंने महर्षि भरद्वाजसे कहा—

ब्रह्मन् व्रजामि दह्याज्ञां कुरुक्षेत्रं महोदयम्।
तत्र दैत्यपतेः पुण्यो हयमेधः प्रवर्तते॥

(वामनपुराण ८८।५२)

'ब्रह्मन्! मैं महोदय (कान्यकुब्ज) मण्डलके अन्तर्गत परम पवित्र कुरुक्षेत्रमें जाना चाहता हूँ, वहाँ दैत्यराज बलिका पवित्र अश्वमेध यज्ञ हो रहा है, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।'

यह सुनकर महर्षिने कहा—'प्रभो! मैं इस विषयमें आपको आज्ञा नहीं दे सकता। अपनी इच्छासे आप जायँ या रहें, परंतु हमलोग अब शीघ्र ही यहाँसे बलिके यज्ञमें जायँगे।' तब भगवान् वामन ब्रह्मचारीके वेषमें छत्र-दण्ड-कमण्डलु आदिसे सुसज्जित होकर दैत्यराज बलिके यज्ञमें पहुँचनेके लिये कुरुक्षेत्रकी ओर चले। उस समय देवगुरु बृहस्पति उनके आगे-आगे मार्ग दिखाते चलते थे। उनके पैर रखनेसे पृथ्वीमें गड्ढे हो जाते थे। समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। पृथ्वी काँपने लगी। इस प्रकार वे ब्रह्मर्षियोंके साथ आगे बढ़ रहे थे।

उधर दैत्यगुरु शुक्राचार्यने अमिततेजस्वी राजा बलिको विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञके लिये दीक्षित कर रखा था। दैत्यराज बलि श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे और श्वेत पुष्पोंकी माला तथा श्वेत चन्दनसे विभूषित थे। उनकी पीठपर मोरपंखसे चिह्नित मृगचर्म बँधा हुआ था। वे हयग्रीव, क्षुर, मय और बाणासुर आदि सदस्योंसे घिरे हुए बैठे थे। उनकी पत्नी ऋषिकन्या विन्ध्यावली भी, जो सहस्रों नारियोंमें प्रधान थी, यज्ञकर्ममें दीक्षित थी। शुक्राचार्यने शुभलक्षणसम्पन्न श्वेत वर्णवाले यज्ञिय अश्वको पृथ्वीपर विचरनेके लिये छोड़ दिया था और तारकाक्ष उसकी रक्षामें नियुक्त था। इस प्रकार सुचारुरूपसे यज्ञ चल रहा था। इतनेमें ही पृथ्वी काँपने लगी। समुद्रोंमें ज्वार-भाटा उठने लगा। दिशाएँ क्षुभित हो गयीं। असुरोंने यज्ञभाग ग्रहण करना छोड़ दिया। यह देखकर बलिने शुक्राचार्यजीसे

पूछा—'गुरुदेव! सहसा ये जो उत्पात उठ खड हुए हैं, इसका क्या कारण हे?'

तब वेदज्ञश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्यजी दीर्घकालतक ध्यान करनेके बाद कहने लगे—'दानवश्रेष्ठ! जगद्योनि सनातन परमात्मा श्रीविष्णु वामनरूपसे कश्यपके घरमे अवतीर्ण हुए हैं। निश्चय ही वे तुम्हारे यज्ञमे आ रहे हैं। उन्हींके पादप्रक्षेपसे यह पृथ्वी चलायमान हो गयी है पर्वत काँप रहे हैं और सागर क्षुब्ध हो उठे हैं। पृथ्वी उन जगदीश्वरको वहन करनेमे समर्थ नहीं है। उन्होंने ही देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नगोसहित समूची पृथ्वीको धारण कर रखा है तथा वे ही जल अग्नि, पवन आकाश और समस्त देवताओं मनुष्यों एव असुरोको भी धारण करते हैं। जगद्धाता विष्णुकी यह माया दुरत्यय है। उन्हींके सनिधानसे देवता यज्ञभागभोजी हो गये हैं, इसी कारण तीनो अग्नियाँ आसुर भागको ग्रहण नहीं कर रही हैं।'

शुक्राचार्यकी बात सुनकर हर्षातिरेकके कारण बलिके शरीरमे रोमाञ्च हो आया। तब उन्होने कहा—'ब्रह्मन्! मैं धन्य हूँ। मैंने पूर्वजन्ममे कोई महान् पुण्यकर्म किया है, जिसके फलस्वरूप स्वय यज्ञपति भगवान् मेरे यज्ञमे पधार रहे हैं। भला मुझसे बढकर भाग्यशाली दूसरा और कौन होगा, क्योकि योगीलोग सदा योगयुक्त होकर जिन अविनाशी परमात्माका दर्शन करनेकी अभिलाषा करते हैं (परतु देख नहीं पाते), वे ही भगवान् मेरे यज्ञमे पधारेगे। इसलिये गुरुदेव! अब मेरे लिये जो कर्तव्य हो उसका आदेश देनेकी कृपा कीजिये।'

तब शुक्रने कहा—''दैत्यराज! वेदोके प्रमाणसे देवता ही यज्ञभागके अधिकारी हैं किंतु तुमने दानवोको यज्ञभागका भोक्ता बना दिया है। ये भगवान् देवताओंका कार्य सम्पन्न करना चाहते हैं, अत जब वे देवोकी उन्नतिके लिये उद्यत होकर तुमसे कोई याचना करे तो तुम्हे यही कहना चाहिये कि 'देव! मैं यह देनेमे समर्थ नहीं हूँ'।''

यह सुनकर बलिने उत्तर दिया—''ब्रह्मन्! जब मैं किसी याचकको निराश नहीं करता, तब भला, ससारके पाप-समूहको नष्ट करनेवाले देवेश्वर विष्णुद्वारा कुछ माँगे जानेपर मैं 'नास्ति'—'नहीं है' कैसे कह सकता हूँ? जो भगवान् श्रीहरि विभिन्न प्रकारके व्रतोपवासोद्वारा प्राप्त किये जाते हैं, वे ही गोविन्द मुझसे याचना करे—इससे बढकर मेरा और कौन-सा सौभाग्य होगा? अहो! शौचादिगुणसम्पन्न पुरुषोद्वारा जिनकी प्रसन्नताके लिये अनेक यज्ञानुष्ठान किये जाते हैं, वे ही भगवान् मुझसे याचना करेगे! पूर्वजन्ममे मैंने कोई श्रेष्ठ पुण्यकर्म और उत्तम तपस्या की है, जो मेरे दिये हुए दानको स्वय श्रीहरि ग्रहण करेगे। गुरो! परमेश्वरके पधारनेपर 'नास्ति'—'नहीं है' यह मैं कैसे कह सकता हूँ? मैं प्राणोका विसर्जन भले ही कर दूँगा, परतु 'नास्ति' किसी प्रकार नहीं कह सकता। यदि इस यज्ञमे भगवान् यज्ञेश मुझसे याचना करते हैं तो निश्चय ही मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। यदि वे गोविन्द मुझसे माँगेगे तो मैं बिना आगा पीछा सोचे अपना मस्तक भी उन्हे समर्पित कर दूँगा। इससे अधिक और क्या कहूँ? महाभाग! मेरे राज्यमे कोई दु खी दरिद्र, आतुर, वस्त्ररहित उद्विग्न अथवा विषादयुक्त नहीं है। सभी लोग हृष्ट-पुष्ट, सतुष्ट, सुगन्धित वस्तुओसे युक्त और सम्पूर्ण गुणोसे सम्पन्न हैं। यह मुझे विशिष्ट दानरूपी बीजके फलरूपमे प्राप्त हुआ है। मुनिशार्दूल! इसका ज्ञान मुझे आपके मुखसे ही प्राप्त हुआ है। गुरो! यह श्रेष्ठ दान-बीज यदि महान् पात्र जनार्दनके हाथमे पड जाय तो बताइये, मुझे क्या नहीं मिल गया? मेरा वह दान सर्वोत्तम होगा। और कहा जाता है कि दान उपभोगसे सौगुना अधिक सुखदायी होता है। निश्चय ही यज्ञसे पूजित हुए श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हैं, इसीलिये निस्सन्देह वे दर्शन देकर मेरा कल्याण करनेके लिये आ रहे हैं अथवा यदि वे क्रुद्ध होकर देवभागमें रुकावट डालनेवाले मुझको मारनेके लिये ही आ रहे हैं, तो भी उन अच्युतके हाथसे मारा जाना मेरे लिये श्लाघ्यतम होगा। किंतु भला, वे हृषीकेश मेरा वध क्यो करेगे? मुनिश्रेष्ठ! यह जानकर जगदीश्वर गोविन्दके आनेपर आपको दानमे विघ्नकारक नहीं बनना चाहिये।''

यह सुनकर महर्षि शुक्राचार्य कुपित हो उठे और बलिको शाप देते हुए बोले—

दृढ पण्डितमान्यज्ञ स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया।
मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रिय ॥

(श्रीमद्भागवत ८।२०।१५)

'मूर्ख! है तो तू अज्ञानी! परतु अपनेको महान्

पण्डित समझता हे। तुझे गर्व हा गया है, इसी कारण तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है। मेरी उपेक्षा करनेके कारण तू शीघ्र ही अपनी राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जायगा।'

महर्षि शुक्राचार्य यो कह ही रहे थे, तबतक भगवान् वामन देवगुरु बृहस्पतिको आगे करक सुरगणाके साथ उस यज्ञशालामे आ पहुँचे। तब बलिन अपने पुरोहित शुक्राचायसे फिर कहा—'ब्रह्मन्! जा सभी प्राणियाके हृदयके साक्षी, सर्वदेवमय आर अचिन्त्य हैं, वे ही भगवान् जनार्दन मायासे वामनरूप धारण करके मुझस इच्छानुसार याचना करनेके लिये मेरे घर पधारे हैं।' इस प्रकार वामनभगवान्को यज्ञशालामे प्रविष्ट हुआ देखकर उनके प्रभावसे सभी असुरगण विक्षुब्ध हो उठे और उनके तेजसे उन सबकी कान्ति फीकी पड गयी तथा उस महायज्ञमे पधारे हुए वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग ओर अन्यान्य महर्षि भयसे थर्रा उठे, परतु बलिन अपना जन्म सफल माना। उस समय सक्षुब्ध होनेके कारण कोई किसीसे कुछ बोल न सका। सभीने उन देवदवेश्वरकी पूजा की। तब असुरराज बलि तथा मुनीश्वरोको विनम्र हुआ देखकर देवदेवेश्वर वामनरूपधारी साक्षात् विष्णु उस यज्ञ अग्नि, यजमान, ऋत्विज, यज्ञकर्माधिकारी सदस्य और द्रव्य-सम्पत्ति आदिकी प्रशसा करने लगे। यह सुनकर सभी ब्राह्मणोने उन्हे साधुवाद दिया। तत्पश्चात् जिनके शरीरम हर्षके मारे रोमाञ्च हो रहा था, वे राजा बलि अर्घ्य लेकर गोविन्दकी पूजा करने लगे। उस समय महारानी विन्ध्यावली झारी लेकर जल गिरा रही थीं और बलि वामनभगवान्के पद पखार रह थे। यह दखकर चतुर्दिक बलिके भाग्यकी सराहना हो रही थी। दैत्यराज बलिने उस चरणोदकको अपन सिरपर धारण करके भगवान्से कहा—'विप्रवर! सुनिये, सुवर्ण और रत्नोके ढेर, गज, महिप, स्त्रियाँ, वस्त्र, अलकार, गौएँ, अन्य वहुत-सी धातुएँ ओर सारी पृथ्वी—मरी इन सम्पत्तियाम जो भी आपको प्रिय लगे अथवा जो अभीप्सित हो उसे कहिये में सव देनेके लिये तेयार हूँ।'

दैत्याधिप वलिके ये प्रेमभरे वचन सुनकर वामनरूपधारी भगवान् विष्णु मुसकराते हुए गम्भीर वाणीम बोले—

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम्।
सुवर्णग्रामरत्नादि तदर्थिभ्य प्रदीयताम्॥

(वामनपुराण ३१।४४)

'राजन्! सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि पदार्थ उनकी याचना करनवालाको दीजिये। मुझे तो अग्निहोत्रके लिये केवल तीन पग भूमि प्रदान कीजिये।'

तब बलिने कहा—'मानवश्रेष्ठ! तीन पग भूमिसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? अरे! सैकडो हजारा पग क्या नहीं माँग लेते?'

यह सुनकर भगवान् वामन बोले—

एतावता दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे।
अन्येषामर्थिना वित्तमिच्छया दास्यते भवान्॥

(वामनपुराण ३१।४६)

'दैत्यपते! मैं तो इतना पाने (इन तीन पगाकी याचना)-से ही कृतकृत्य हूँ। आप अन्य याचकाको उनके इच्छानुसार धन दीजियेगा।'

वामनके वचन सुनकर बलि अपनी पत्नी विन्ध्यावली तथा पुत्र बाणासुरकी ओर दृष्टिपात करके कहने लगा—'देखो न, यह केवल शरीरसे ही वामन नहीं है, इसे वस्तुएँ भी छोटी ही प्रिय हैं जो मुझ-जैसे व्यक्तिसे तीन पगमात्र भूमि माँग रहा है। ठीक है, जिसका भाग्य विपरीत हो जाता है, उस मन्दबुद्धि पुरुपको विधाता अधिक धन नहीं देते। इसी कारण यह मुझ-जैसे दातासे भी तीन पग भूमि माँग रहा है।' पत्नी और पुत्रसे यो कहकर सुरारि बलिने पुन भगवान् वामनसे कहा—'विष्णो! हाथी, घोडे, पृथ्वी, दासियाँ और सुवर्ण आदि जो पदार्थ और जितनी मात्रामे अभीप्सित हो, मुझसे माँग ले। विष्णो! आप याचक हैं और मैं जगत्पति दाता हूँ—ऐसी दशामे तीन पग भूमि दान करनेमे मुझे लज्जा कैसे नहीं होगी। इसलिये वामन! जरा स्वस्थचित्त होकर याचना कर। मैं रसातल, भूलोक अथवा स्वर्गलोक—इनमेसे कौन-सा लोक आपको प्रदान करूँ?'

तब वामनभगवान्ने कहा—

गजाश्वभूहिरण्यादि तदर्थिभ्य प्रदीयताम्।
एतावता त्वह चार्थी देहि राजन् पदत्रयम्॥

(वामनपुराण ९१।१६)

'राजन्! हाथी, घोडे, भूमि, सुवर्ण आदि उन-उन वस्तुआके याचकाको दीजिये, मैं तो इतनेकी ही याचना करता हूँ, इसलिये मुझ तीन पग (भूमि) प्रदान कीजिय।

महात्मा वामनके या कहनेपर बलिने गडुएसे जल लेकर उन्हे तीन पग भूमि दान करनेका सकल्प किया।

उसी समय एक अद्भुत घटना घटी। भगवान्के हाथमे सकल्पका जल पडते ही वे वामनसे अवामन हो गये और उसी क्षण उन्हाने अपना सर्वदेवमय रूप प्रकट कर दिया। अब वे अखिल ज्याति तथा परमोत्कृष्ट तपकी मूर्ति थे।

भगवान् विष्णुके उस सर्वदेवमय रूपको देखकर महाबली दैत्य उसी प्रकार उनके निकट नहीं जा सके, जस फतिगे अग्निके। इसी बाच महादैत्य चिक्षुरने भगवान्के पादाङ्गुष्ठको दाँतासे पकड लिया। तब श्रीहरिने अङ्गुष्ठस हो उसकी ग्रीवापर प्रहार किया ओर पैरो तथा हाथाके तलवासे ही सारे असुराको मार डाला। तत्पश्चात् उन्हाने एक पगसे चराचरसहित पृथ्वी अपने अधिकारम कर ली। पुन दूसरा पग ऊपर बढानेपर उस महारूपके दाहिने चन्द्रमा और बाय सूर्य आ गये। इस प्रकार आधे पगसे उन्हाने स्वर्ग, मह , जन ओर तपालोकका तथा आधेसे समूचे आकाशको आच्छादित कर लिया। तीसरे पगको आगे बढानेपर वह ब्रह्माण्डोदरका भदन करके निरालोक प्रदशम जा पहुँचा। इसी समय भगवान्के पेरक आगे वढनेसे अण्डकटाहक फूट जानस विष्णुपदसे जलकी बूँदे झरने लगीं। इसालिये तापस लाक इस 'विष्णुपदी' कहकर इसकी स्तुति करत हैं। इस प्रकार तासर पगक पूर्ण न होनेपर सवव्यापा भगवान् विष्णु वलिक निकट आकर क्रोधावेशम हाठको कुछ कँपाते हुए या बोले—

'दैत्येन्द्र! अब तो तुम ऋणी हो गय, जिसके परिणामस्वरूप घार बन्धनकी प्राप्ति हाती है। इसलिये या तो तुम मेरा तीसरा पग पूरा करो अन्यथा मरे बन्धनम आ जाओ।' (वामनपुराण ९१।३५)

भगवान्के इस वचनको सुनकर बलि-पुत्र बाणासुर हँसने लगा ओर उन देवश्वरस हेतुयुक्त वचन बाला— 'जगत्पते। आप तो स्वय भुवनेश्वराक विधाता हैं, फिर भी थाडी-सी पृथ्वीकी याचना करके मर पितासे इतनी विस्तृत भूमि क्या माँग रहे हैं ? विभो। आपने जितनी पृथ्वीकी सृष्टि की थी, उतनी-की-उतनी मेरे पिताने आपको दे डाली। अब वाक्चातुर्यसे आप उन्हे क्या बाँध रहे हैं? इन दैत्यराजने पहले जिस शक्तिसे आपके सामने प्रतिज्ञा की थी, उसी शक्तिसे ये अब भी पूजा करनेम समर्थ हैं। इसलिये प्रभो। इनपर कृपा कीजिये, बन्धनकी आज्ञा मत दीजिये। श्रुतियामे आपके ही कहे हुए एसे वचन मिलते ह कि उत्तम पात्र पवित्र देश और पुण्यकालमे दिया हुआ दान विशेष सुखदायक होता है। वह पूरा-का-पूरा आप चक्रपाणिम वर्तमान हे। जेसे—भूमिका दान है, सभी मनारथाको पूर्ण करनेवाले अजितात्मा देवदेवेश्वर आप पात्र हैं, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्राके योगम चन्द्रमा वर्तमान हैं— ऐसा पुण्यकाल हे ओर कुरुक्षेत्र-जैसा प्रसिद्ध पुण्यदेश है। देव। आप तो स्वय श्रुतियाके आदिकर्ता आर व्यवस्थापक हैं, एसी दशाम भला, मुझ-जैसा मन्दबुद्धि व्यक्ति आपको उचित-अनुचितकी शिक्षा कैसे दे सकता है। लाकनाथ। जब आपन वामनरूपसे तीन पग भूमिकी याचना की है तब फिर लोकवन्दित विश्वमयरूपसे उसे क्या ग्रहण कर रहे हैं? आप कृपया उसी रूपसे दान भी ग्रहण कीजिये। विष्णो। एसी स्थितिम आप मेरे पिताको क्या बाँध रहे हैं? फिर भी विभो। जैसी आपकी इच्छा हो, वेसा कीजिये।'

बलिपुत्र बाणके तर्कोंका सुनकर भगवान् वामनने उनका उत्तर दिया—''बलिनन्दन। तुमने जा अभी-अभा बात कही हैं उनका सारयुक्त उत्तर देता हूँ, सुनो। मेन पहल तुम्हारे पितासे कहा था—'राजन्। मुझे मर प्रमाणस तीन पग भूमि प्रदान कीजिये।' अत मैंने उसीका पालन किया है। क्या तुम्हारे पिता असुरराज बलि मेरे प्रमाणको नहीं जानत थे जो

इन्होंने निश्शङ्क होकर मेरे शरीरके मापके अनुसार तीन पग भूमि दान कर दी? अरे, यदि मैं चाहूँ तो एक ही डगसे भू, भुव आदि सभी लोकोंको नाप लूँ। मैंने तो बलिके हितके लिये ही इन्हें दो पगसे नापा है। इसलिये तुम्हारे पिताने जो मेरे हाथमें सकल्पका जल दिया है, उसके प्रभावसे मैंने उसे एक कल्पकी आयु प्रदान की है।" बलिकुमार बाणसे यों कहकर भगवान् त्रिविक्रमने बलिसे मधुर वाणीमें कहा—

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते।
सुतल स्वर्गिभि प्रार्थ्यं ज्ञातिभि परिवारित ॥
न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशा किमुतापरे।
त्वच्छासनातिगान् दैत्याश्चक्र मे सूदयिष्यति॥
रक्षिष्ये सर्वतोऽह त्वा सानुग सपरिच्छदम्।
सदा सन्निहित वीर तत्र मा द्रक्ष्यते भवान्॥

(श्रीमद्भागवत ८।२२।३३—३५)

'महाराज इन्द्रसेन! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ उस सुतललोकमें जाओ, जिसे स्वर्गवासी भी चाहते रहते हैं। बड़े-बड़े लोकपाल भी अब तुम्हें पराजित नहीं कर सकते, दूसरोंकी तो बात ही क्या है। तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले दैत्योंको मेरा चक्र छिन्न-भिन्न कर डालेगा। मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचरोंकी और भोग-सामग्रीकी भी सब प्रकारसे रक्षा करूँगा। वीरवर! तुम मुझे वहाँ सदा अपने पास ही देखोगे।'

मधुसूदनने इस प्रकार दैत्यराज बलिसे कहकर पत्नी-पुत्रसहित उसे विदा कर दिया और स्वयं पृथ्वीको लेकर ब्रह्मा और देवगणोंके साथ तुरंत ही इन्द्रके पास पहुँचे। वहाँ वे इन्द्रको स्वर्गका अधिपति और देवगणोंको यज्ञभागभाजी बनाकर सबके देखते हुए अन्तर्हित हो गये।

~~o~~

(१६) भगवान् हयग्रीव

पृथ्वीके एकार्णवमें विलीन हो जानेपर विद्याशक्तिसे सम्पन्न भगवान् विष्णु योगनिद्राका आश्रय लेकर शेषनागपर शयन कर रहे थे। प्रभुकी नाभिसे सहस्रदल पद्म प्रकट हुआ। उक्त सहस्रदल कमलपर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह, लोकस्रष्टा, सिन्दूरारुण भगवान् हिरण्यगर्भ व्यक्त हुए। परम तेजस्वी ब्रह्माने दृष्टिपात किया तो चतुर्दिक् जल-ही-जल था। जिस पद्मपत्रपर लोकस्रष्टा बैठे थे उसपर क्षीरोदधिशायी श्रीनारायणकी प्रेरणासे पहलेसे ही रजोगुण और तमोगुणकी प्रतीक जलकी दो बूँदें पड़ी थीं।

उनमेंसे एक बूँदपर आद्यन्तहीन श्रीभगवान्की दृष्टि पड़ी तो वह तमोमय मधु नामक दैत्यके रूपमें परिणत हो गयी। वह दैत्य मधुके रंगका अत्यन्त सुन्दर था। जलकी दूसरी बूँद भगवान्के इच्छानुसार दूसरे अत्यन्त शक्तिशाली एवं पराक्रमी दैत्यके रूपमें व्यक्त हुई। उसका नाम 'कैटभ' पड़ा। दोनों ही दैत्य अत्यन्त वीर एवं बलवान् थे।

कमल-नालके सहारे वे दैत्यद्वय वहाँ पहुँच गये, जहाँ अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मा बैठे हुए थे। लोक-पितामह सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त थे और उनके समीप ही अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण किये हुए चारों वेद थे। उन महाबली, महाकाय, श्रेष्ठ दैत्योंकी दृष्टि वेदोंपर पड़ते ही उन्होंने वेदोंका हरण कर लिया। श्रुतियोंको लेकर वे पूर्वोत्तर महासागरमें प्रविष्ट होकर रसातलमें पहुँच गये।

'वेद ही मेरे नेत्र, वेद ही मेरी अद्भुत शक्ति, वेद ही मेरे परम आश्रय एवं वेद ही मेरे उपास्य देव हैं।' श्रुतियोंको अपने समीप न देखकर विधाता अत्यन्त दुःखी होकर मन-ही-मन विलाप करने लगे। 'वेदोंके नष्ट हो जानेसे आज मुझपर भयानक विपत्ति आ पड़ी है। इस समय कौन मेरा दुःख दूर करेगा? वेदोंका उद्धार कौन करेगा?' फिर उन्होंने सर्वान्तर्यामी और सर्वसमर्थ श्रीनारायणसे प्रार्थना की। ब्रह्माजीने कहा—

'कमलनयन! आपका पुत्र मैं शुद्ध सत्त्वमय शरीरसे उत्पन्न हुआ हूँ। आप ईश्वर, स्वभाव, स्वयम्भू एवं पुरुषोत्तम हैं। आपने मुझे वेदरूपी नेत्रोंसे युक्त बनाया है। आपकी ही कृपासे मैं कालातीत हूँ—मुझपर कालका वश नहीं चलता। मेरे नेत्ररूप वे वेद दानवोंद्वारा हर लिये गये हैं, अतः मैं अन्धा-सा हो गया हूँ। प्रभो! निद्रा त्यागकर जागिये। मुझे मेरे नेत्र वापस दीजिये, क्योंकि मैं आपका प्रिय भक्त हूँ और आप मेरे प्रियतम स्वामी हैं।' (महा०, शान्तिपर्व अ० ३४७)

हिरण्यगर्भकी यह श्रद्धा-भक्तिपूर्ण करुण स्तुति सुनकर देवदवश श्रीनारायण तत्क्षण अपनी निद्रा त्यागकर जग गये। श्रुतियाका उद्धार करनेके लिये वे सर्वात्मा परम प्रभु अत्यन्त सुन्दर एव कान्तिमान् हयग्रीवके रूपमे प्रकट हुए।

प्रभुकी गर्दन और मुखाकृति घोडको-सी थी। उनका वह परमपवित्र मुखारविन्द वेदाका आश्रय था। तारकखचित स्वर्ग उनका मस्तक था और अशुमालीकी रश्मियाके तुल्य उनके बाल चमक रह थे। आकाश-पाताल उनके कान, पृथ्वी ललाट, गङ्गा और सरस्वती उनके नितम्ब तथा दो सागर उनके भ्रू थे। सूर्य और चन्द्र उनके नेत्र, सध्या नासिका, ओकार सस्कार (आभूषण) और विद्युत् जिह्वा थी। पितर उनके दशन, ब्रह्मलोक उनके ओष्ठ तथा कालरात्रि उनकी ग्रीवा थी।

इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत, अत्यन्त तेजस्वी, अत्यन्त शक्तिशाली, अत्यन्त पराक्रमी एव अत्यन्त बुद्धि-वैभव-सम्पन्न, आदि-अन्तसे रहित भगवान्ने श्रीहयग्रीवका रूप धारणकर महासमुद्रमे प्रवेश किया और वे रसातलमे जा पहुँचे।

वहाँ भगवान् श्रीहयग्रीवने सामगानका सस्वर गान शुरू किया। भगवान्की लोकोपकारिणी मधुर ध्वनि रसातलमे सर्वत्र फैल गयी। मधु और कैटभ दोनो दैत्याने भी सामगानका वह चित्ताकर्षक स्वर सुना तो उन्हाने वेदाको कालपाशमे बाँधकर रसातलमे फेक दिया और उक्त मङ्गलकारिणी मधुर ध्वनिकी ओर दौड पडे।

भगवान् हयग्रीवने अच्छा अवसर देखा। उन्हाने तुरन्त वेदाको रसातलसे निकालकर ब्रह्माको दे दिया और पुन महासागरके पूर्वोत्तर भागमे वेदोके आश्रय अपने हयग्रीवरूपकी स्थापना कर पुन पूर्वरूप धारण कर लिया। भगवान् हयग्रीव वहीं रहने लगे।

मधु और कैटभने देखा, जहाँसे मधुर ध्वनि आ रही थी वहाँ तो कुछ भी नहीं है। अतएव वे पुन बडे वेगसे रसातलमे पहुँचे। वहाँ वेदाको न पाकर वे अत्यन्त आश्चर्यचकित एव क्रुद्ध हुए। शत्रुको ढूँढनेके लिये वे दोनो दैत्य तत्काल अत्यन्त शीघ्रतासे रसातलके ऊपर पहुँचे तो वहाँ उन्होने देखा कि महासागरकी विशाल लहरोपर चन्द्रमाके तुल्य गौर वर्णके सुन्दरतम भगवान् श्रीनारायण शेषनागकी शय्यापर अनिरुद्ध-विग्रहमे शयन कर रहे हैं।

'निश्चय ही इसने रसातलसे वेदाको चुराया है।' दैत्याने अट्टहास करते हुए कहा। 'पर यह है कौन? किसका पुत्र है? यहाँ कैसे आया? और यहाँ सर्पशय्यापर क्यो शयन कर रहा है?'

मधु-कैटभने अत्यन्त कुपित होकर भगवान् श्रीनारायणको जगाया। त्रैलोक्यसुन्दर विष्णुने नेत्र खोलकर चारो ओर देखा तो उन्होने समझ लिया कि ये दैत्य युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध हैं।

भगवान् उठे और उनका मधु और कैटभ दोनो महान् दैत्यासे भयानक सग्राम छिड गया। श्रीविष्णुका उन अत्यन्त पराक्रमी दैत्यासे पाँच सहस्र वर्षोतक केवल बाहुयुद्ध चलता रहा। वे अपनी महान् शक्तिके मदसे उन्मत्त तथा श्रीभगवान्की महामायासे मोहमे पडे हुए थे। उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी।

तब हँसते हुए श्रीहरिने कहा—'अबतक मैं कितने ही दैत्यासे युद्ध कर चुका हूँ, किंतु तुम्हारी तरह शूर-वीर मुझे कोई नहीं मिले। मैं तुमलोगाके युद्ध-कौशलसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुमलोग कोई इच्छित वर माँग लो।'

श्रीभगवान्की वाणी सुनकर अहकारके साथ दैत्याने कहा—'विष्णो! हम तुमसे याचना क्या करे? तुम हमे क्या दोगे?' वे भगवान् विष्णुसे कहने लगे—'हम तुम्हारी वीरतासे अत्यन्त सतुष्ट हैं। तुम हमलोगासे कोई वर माँग

लो।' श्रीभगवान्ने कहा—

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृत मम।

(मार्कण्डेयपुराण ८१।७४)

'यदि तुम दोनो मुझपर प्रसन्न हा तो अब मर हाथसे मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। इस समय दूसरे किसी वरसे क्या लेना है?'

'हम तो ठगे गय।' भगवान् विष्णुकी वाणी सुन चकित होकर दैत्याने देखा, सर्वत्र जल-ही-जल है। तब उन्हाने श्रीभगवान्से कहा—'जनार्दन! तुम देवताआके स्वामी हो। तुम मिथ्याभाषण नहीं करते। पहले तुमने ही हमे वर देनेके लिय कहा था। इसलिय तुम भी हमारा अभिलषित वर दे दो।' अत्यन्त उदास होकर दैत्यान श्रीभगवान्से निवेदन किया—

'आवा जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता॥'

(मार्कण्डेय० ८१।७६)

'जहाँ पृथ्वी जलमे डूबी हुई न हो—जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो।'

'महाभाग! जलशून्य स्थानपर ही मैं तुम्ह मार रहा हूँ।' श्रीभगवान् विष्णुन सुदर्शन चक्रको स्मरण किया ओर अपनी विशाल जाँघाको जलपर फैलाकर मधु-कैटभको जलपर ही स्थल दिखला दिया ओर हँसते हुए उन्हाने दैत्यासे कहा—'इस स्थानपर जल नहीं ई, तुमलोग अपना मस्तक रख दा। आजसे में भी सत्यवादी रहूँगा आर तुम भी।'

कुछ देरतक मधु ओर केटभ दोना महादेत्य भगवान्की वाणीकी सत्यतापर विचार करते रहे। फिर उन्हाने भगवान्की दाना सटी हुई विशाल एव विचित्र जाँघापर चकित होकर अपना मस्तक रख दिया ओर श्रीभगवान्ने तत्काल अपने तीक्ष्ण चक्रसे उन्ह काट डाला। दैत्याका प्राणान्त हो गया आर उनके चार हजार कोसवाले विशाल शरीरक रक्तस सागरका सारा जल लाल हो गया।

इस प्रकार वेदासे सम्मानित ओर श्रीभगवान् नारायणस सुरक्षित होकर लोकस्रष्टा ब्रह्मा सृष्टि-कार्यमे जुट गये।

दूसरे कल्पमे

प्रख्यात दितिपुत्र हयग्रीव सुन्दर, वलवान् एव परम-पराक्रमी था। उसकी भुजाएँ विशाल थीं। वह पुण्यताया सरस्वती नदीके पावन तटपर उपवास करता हुआ करुणामयी जगदीश्वरीके मायाबीजके एकाक्षर मन्त्रका जप करने लगा। उसने इन्द्रियाको वशमे करके सम्पूर्ण भागाको त्याग दिया था। वह महान् दैत्य एक हजार वर्षतक श्रीजगदम्बाकी तामसी शक्तिकी आराधना करता हुआ उग्र तप करता रहा।

'सुव्रत! वर माँगो।' करुणामयी सिहवाहिनीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर हयग्रीवसे कहा। 'तुम्हारी जा इच्छा हो, माँग लो। मैं उसे दनेके लिये तैयार हूँ।'

'सृष्टि-स्थिति-सहारकारिणी कल्याणमयी देवी!' प्रेमसे पुलकित नेत्रामे अश्रुभरे हयग्रीवने भगवती जगदम्बाकी स्तुति की—'आपके चरणामे प्रणाम ह। पृथ्वीपर, आकाशमे और जहाँ-कहीं जो कुछ हे, वह सब आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप दयामयी हे। आपकी महिमाका पार पाना सम्भव नही।'

'तुम इच्छित वर माँग लो!' त्रैलाक्येश्वरी भगवतीने हयग्रीवस पुन कहा। 'तुमने अद्भुत तप किया हे। में तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। तुम अभिलषित वर माँग लो।'

'माता! मुझे मृत्युका मुख न देखना पडे।' हयग्रीवने कृपामयी आराध्यासे निवेदन किया। 'मेरी कामना हे कि मैं अमर यागी बन जाऊँ।'

'देत्यपते! जन्मके अनन्तर मृत्यु सुनिश्चित हे।' देवीने कहा। 'ऐसी सिद्ध मर्यादा जगत्मे केसे व्यर्थ की जा सकती हे? मृत्युके सम्बन्धमे इस नियमको स्पष्ट समझकर इच्छित वर माँग लो।'

'अच्छा में हयग्रीवके द्वारा ही मारा जाऊँ।' हयग्रीवने अपनी समझसे बुद्धिमानी की। वह स्वय अपनको क्या मारेगा? उसने दयामयी माँसे निवेदन किया—'काई दूसरा मुझे न मार सके।' 'तथास्तु' दवीने कहा। 'हयग्रीवक अतिरिक्त तुम्ह आर काई नहीं मार सकेगा। अब तुम घर लाटकर सानन्द राज्य करो।'

जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं और दत्यराज हयग्रीव भी आनन्दमग्न हो अपन घर लाट गया। फिर ता उसन अनेक उपद्रव करने प्रारम्भ किये। ऋषिया-मुनियाका वह पीडित करन लगा। अनक प्रकारसे वह वदाको सता रहा था। अपनी बुद्धिसे अमरताक लिय आश्वस्त अत्यन्त शूर-वार हयग्रीव अपनी असुरता अक्षरश चरितार्थ कर रहा था। सत्पुरुष एव देवता उससे त्रस्त एव व्याकुल थ, पर उसे पराजित करना या उस मार डालना किसीक

वशकी बात नहीं थी। हयग्रीव सर्वथा निश्चिन्त, निस्सकोच धर्मध्वस कर रहा था। पृथ्वी व्याकुल हो गयी।

अन्तत भगवान् श्रीहरि वेदो, भक्तो एव धर्मके त्राण तथा अधर्मका नाश करनेके लिये हयग्रीवके रूपमे प्रकट हुए। श्रीहरिका वह हयग्रीव रूप अत्यन्त तेजस्वी एव मनोहर था। उनकी शक्ति और सामर्थ्यका पार नहीं था। वे असीम बलशाली एव परम पराक्रमी थे। उनके अङ्ग-अङ्गसे तेज छिटक रहा था।

अत्यन्त अभिमानी एव देवताओके शत्रु दैत्य हयग्रीवका परमप्रभु श्रीहयग्रीवसे युद्ध छिड गया। बडा ही भयानक सग्राम था वह। दीर्घकालतक युद्ध करता हुआ वह असुर हयग्रीव परम मङ्गलमय भगवान् श्रीहयग्रीवके द्वारा मार डाला गया।

ब्रह्मादि देव-समुदाय प्रभु श्रीहरिकी जय-जयकार करने लगा।

(१७) [क] भगवान् श्रीहरिकी भक्त ध्रुवपर कृपा

भक्ति मुहु प्रवहता त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महतामममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसन भवाब्धि
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्त ॥

(श्रीमद्भा० ४।९।११)

'अनन्त परमात्मन्! मुझे तो आप उन विशुद्धहृदय महात्मा भक्तोका सङ्ग दीजिये, जिनका आपमे अविच्छिन्न भक्तिभाव है, उनके सङ्गमे मैं आपके गुणो और लीलाओकी कथा-सुधाको पी-पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही इस अनेक प्रकारके दु खोसे पूर्ण भयकर ससार-सागरके उस पार पहुँच जाऊँगा।'—ध्रुव

× × ×

स्वायम्भुव मनुके अत्यन्त प्रतापी पुत्र उत्तानपादकी दो पत्नियाँ थीं। उनमसे छोटी सुरुचिपर महाराजकी अत्यधिक प्रीति थी। उसके पुत्रका नाम उत्तम था। बडी रानी सुनीतिके पुत्रका नाम था ध्रुव।

एक दिनकी बात है। उत्तम अपने पिताकी गोदमे बैठा हुआ था। उसी समय ध्रुवने भी पिताकी गोदमे बैठना चाहा, किंतु पिताकी ओरसे उसे प्यार और दुलार नहीं मिला और वहीं बैठी हुई पतिप्रेम-गर्विता सुरुचिने ध्रुवका तिरस्कार करते हुए द्वेषपूर्ण स्वरमे कहा—'बेटा ध्रुव! तू भी यद्यपि राजाका पुत्र है, फिर भी इतनेसे ही राजसिहासनपर बैठनेका अधिकार तुझे नहीं है। पिताकी गोद और राजसिहासनपर बैठनेके लिये तुम्हे मेरे उदरसे जन्म लेना चाहिये था। यदि तू अपनी यह इच्छा पूरी करना चाहता है तो परमपुरुष श्रीनारायणको प्रसन्न कर उनके अनुग्रहसे मेरी कोखसे जन्म ले। इसका अधिकारी तो मेरा पुत्र 'उत्तम' ही है।'

पिताके दुलारसे वञ्चित ध्रुव सुरुचिकी कटूक्ति सुनकर तिलमिला उठे। क्रोध और दु खसे उनके अधर काँपने लगे। उनके नेत्रोमे आँसू भर आये। रोते हुए वे अपनी माताके समीप पहुँचे।

सुरुचिके द्वारा किये गये अपमानसे व्यथित अपने प्राणप्रिय पुत्र ध्रुवको सुबुकियाँ भरते देखकर माता सुनीतिका हृदय दु खसे भर गया। उनके नेत्रोसे आँसू बहने लगे। वे ध्रुवको अपनी गोदमे बैठाकर उसके सिरपर हाथ फेरते हुए समझाने लगीं—'बेटा! तू व्याकुल मत हो। रोना छोड दे। इस पृथ्वीपर जन्म लेनेपर पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोके फल ही सुख-दु खके रूपमे प्राप्त होते हैं। पूर्वके पुण्य कर्मोके ही कारण सुरुचिमे राजाकी सुरुचि (प्रीति) है और पुण्यरहित होनेके कारण ही मैं केवल भार्या (भरण करनेयोग्य) हूँ। इसी प्रकार उत्तम भी अपने पूर्वके शुभ कर्मोके कारण पिताका प्यार-दुलार पा रहा है और तू मन्दभाग्य होनेके कारण ही उससे वञ्चित है।'

कुछ क्षण रुककर अश्रु पोछते हुए माता सुनीतिने कहा—'बेटा! तू सुशील, पुण्यात्मा और प्राणिमात्रका शुभचिन्तक बन। इससे समस्त सम्पत्तियाँ सुलभ होती हैं। एक बात सुरुचिने सौतेली माँ होकर भी अत्यन्त उत्तम कही है। वह यह कि ईर्ष्या-द्वेष छोडकर तू श्रीअधोक्षज भगवान्‌की आराधना आरम्भ कर दे। तुम्हारे प्रपितामह ब्रह्मा उन्हीं परमपुरुषकी आराधनासे ब्रह्मा हुए और तुम्हारे पितामह स्वायम्भुव मनु उन्हीं अशरण-शरण प्रभुकी बडी-

बडी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंके द्वारा अनन्य भावसे आराधना कर अत्यन्त दुर्लभ लौकिक-अलौकिक सुख प्राप्त कर सके थे। तुम भी उन्हीं कमलदल-लोचन श्रीहरिकी चरण-शरण ग्रहण करो। उनके अतिरिक्त महान् दु खोसे त्राण देनेवाला अन्य कोई नहीं है।'

'माँ! मुझे आज्ञा दे।' ध्रुवने अपनी माताके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रार्थना की। 'निश्चय ही मैं अब परमपुरुष परमात्मासे अप्राप्य वस्तु प्राप्त करूँगा। तू प्रसन्नमनसे मुझे आशिष् दे।'

'मेरे तन, मन और प्राणकी सारी आशिष् तेरे लिये है, बेटा!' नेत्रोंसे बहते आँसू पोछती हुई माता सुनीतिने अधीर होकर कहा। 'पर बेटा! अभी तू निरा बालक है। तेरी आयु गृह-त्यागके उपयुक्त नहीं। तू घरमे ही रहकर दान-धर्म आदि पुण्यकर्म और क्षीराब्धिशायी विष्णुकी प्रीतिपूर्वक उपासना कर। समयपर प्रभु-प्राप्तिके लिये गृहत्याग भी कर लेना। अभी तो कहीं जानेकी बात सोचना उचित नहीं।'

'माँ! तू बिल्कुल ठीक कहती है।' ध्रुव बोले। 'किंतु मेरा हृदय छटपटा रहा है। प्रभुके समीप जानेमे अब एक क्षणका विलम्ब भी मुझे सह्य नहीं। मुझे राजसिंहासन नहीं चाहिये। मैं अलभ्य-लाभके लिये करुणामय स्वामीके चरणोंमे अवश्य जाऊँगा। तू मुझे दयाकर आज्ञा दे दे।'

'सर्वान्तर्यामी, सर्वसमर्थ, करुणावरुणालय तुम्हारा कल्याण करें, बेटा!' माता सुनीति बोलीं—

विष्णोराराधने नाहं वारये त्वां सुपुत्रक।
जिह्वा मे शतधा यातु यदि त्वां वारयामि भो ॥

'बेटा! मैं तुम्हे भगवान् श्रीविष्णुकी आराधनासे नहीं रोकती। यदि मैं ऐसी चेष्टा करूँ तो मेरी जीभ सैकडों टुकडे होकर गिर पडे, क्योंकि श्रीभगवान्‌की आराधनासे सम्पूर्ण असम्भव सम्भव हो जाता है।'

माता सुनीतिने ध्रुवकी दृढ निष्ठा देखकर नीलकमलोंकी माला पहनाकर उसे अपनी गोदमे ले लिया और उसके सिरपर हाथ फेरकर अनुमति देते हुए कहा—'बेटा! जा, कण-कणमें व्याप्त श्रीहरि तुम्हारा सर्वविध मङ्गल करें। तू उनकी कृपा प्राप्त कर।'

माता सुनीतिके आँसू झर रहे थे और दृढनिश्चयी ध्रुव अपने पिताके नगरसे निकल पडे।

प्रभु-पदपद्मोंकी ओर अग्रसर होनेवाले भक्तोंको देवर्षि नारदजीका सहयोग और उनकी सहायता तत्काल सुलभ होती है। थोडा-सा भी मान-भङ्ग न सह सकनेवाले नन्हे-से क्षत्रिय-बालकको परमपुरुष परमेश्वरकी आराधनाका निश्चय कर वन-गमन करते देख देवर्षि तत्काल वहाँ पहुँच गये। उन्होंने ध्रुवके मस्तकपर अपना पापनाशक, मङ्गलमय वरद कमलहस्त फेरते हुए स्नेहसिक्त स्वरमें कहा—'बेटा! तेरी आयु बहुत छोटी है और परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर है। योगीन्द्र-मुनीन्द्र तथा देवताओंको भी उनका दर्शन बडी कठिनतासे प्राप्त होता है। अतएव तू अपनी जन्मदायिनी जननीकी आज्ञा मानकर घर लौट जा। वहाँ योगाभ्यास एवं शुभ कर्मोंके द्वारा संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत कर। बडा होनेपर प्रभुप्राप्तिके लिये तप करना।'

'ब्रह्मन्! आपका उपदेश बडा सुन्दर है।' अत्यन्त विनयपूर्वक ध्रुवने देवर्षिसे निवेदन किया। 'मैं क्षत्रियकुलोत्पन्न बालक हूँ। माता सुरुचिकी कटूक्ति मेरे हृदयमें टूटी हुई बर्छीकी अनीकी भाँति करक रही है। मैं छटपटा रहा हूँ। मैं त्रैलोक्य-दुर्लभ पदकी प्राप्तिके लिये कटिबद्ध हूँ। मेरे पूर्वजोंने जो नहीं पाया है, वह श्रेष्ठ पद मुझे अभीष्ट है। आप कमलयोनि ब्रह्माके पवित्र पुत्र हैं और जगत्के अशेषमङ्गलके लिये वीणा बजाते, हरिगुण गाते त्रैलोक्यमें विचरण किया करते हैं। आप मुझपर भी दया कर और उन सुर-नर-मुनिवन्दित परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग बताये। आपके श्रीचरणकमलोंमें मेरी यही प्रार्थना है।'

'बेटा! तुम्हारी माता सुनीतिने जो तुम्हें मार्ग बताया है, वही भगवान् वासुदेवकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय है।' ध्रुवकी बातोंसे अत्यन्त प्रसन्न होकर देवर्षि नारदने अत्यन्त प्यारसे ध्रुवको बताया—

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः ॥
(श्रीमद्भा० ४।८।४२)

'बेटा! तेरा कल्याण होगा अब तू श्रीयमुनाजीके तटवर्ती परम पवित्र मधुवनमें जा वहाँ श्रीहरिका नित्य

निवास है।'

'वहाँ कालिन्दीके निर्मल जलमें त्रिकाल स्नान कर नित्यकर्मोसे निवृत्त हो, आसन बिछाकर बैठना और प्राणायामके द्वारा इन्द्रियोंके दोषोंको दूर कर मनसे परम पुरुष परमात्माका इस प्रकार ध्यान करना'—

'वे दयाके समुद्र नवजलधर-वपु, मंद-मंद मुस्करा रहे हैं। उनके श्रीअङ्गसे आनन्द और प्रेम-सुधाकी वर्षा हो रही है। उन भुवनमोहन प्रभुकी नासिका, भौंहें कपोल, अधर-पल्लव, दंतपंक्तियाँ—सभी परम सुन्दर और दिव्य हैं। उनके वक्षपर श्रीवत्सका चिह्न है। उनके कम्बुकण्ठमें अत्यन्त सुगन्धित वनमाला पड़ी हुई है और उससे दिव्यातिदिव्य मधुर सुगन्ध निकल रही है। उस सुगन्धसे हमारे तन-मन-प्राण आनन्द-सिन्धुमें सराबोर होते जा रहे हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हैं। श्रीअङ्गोंपर किरीट कुण्डल, केयूर और कङ्कणादि आभूषण सुशोभित हैं। परम दिव्य, श्यामल घन-तुल्य मङ्गलमय श्रीविग्रहपर पीताम्बर अत्यन्त शोभा पा रहा है। कटिप्रदेशमें सुवर्णकी करधनी सुशोभित है, जिससे अद्भुत प्रकाश छिटक रहा है। देव-ऋषिवन्दित कमल-सरीखे चरणोंमें अद्भुत सुवर्णमय पैजनी शोभा दे रही है। मानस-पूजा करनेवाले भक्तोंके हृदयरूपी कमलकी कर्णिकापर वे भक्तवत्सल प्रभु अपने नखमणिमण्डित मनोहर पादारविन्दोंको स्थापितकर विराजते हैं। वे प्रभु हमारी ओर अत्यन्त कृपापूर्ण दृष्टिसे निहार रहे हैं, मंद-मंद हँस रहे हैं। इस प्रकार श्रीभगवान्‌का ध्यान करते रहनेसे मन उनकी सौन्दर्य-सुधामें डूब जाता है।'

देवर्षि नारदने अत्यन्त कृपापूर्वक ध्रुवको आगे बताया—'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**—यह भगवान् वासुदेवका परम पवित्र एवं परम गुह्य मन्त्र है। इसका ध्यानके साथ जप करता रहे। जल पुष्प, पुष्पमाला, मूल और फलादि सभी सामग्रियाँ और तुलसी आदि प्रभु-पूजाके जिन-जिन उपचारोंका विधान किया गया है, उन्हें मन्त्रमूर्ति वासुदेवको इस द्वादशाक्षर मन्त्रसे ही अर्पित करे।'

देवर्षि नारदके इस उपदेशका ध्यानपूर्वक श्रवणकर सुनीतिकुमार ध्रुवने उनकी परिक्रमा कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके अनन्तर श्रीनारदजीके आदेशानुसार वे परम पवित्र मधुवनके लिये चल पड़े।

विष्णुपुराणमें आया है कि उत्तानपादनन्दन ध्रुव अपनी माता सुनीतिसे विदा हो नगरके बाहर उपवनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने पहलेसे ही सात कृष्णमृग-चर्मके आसनोंपर बैठे सप्तर्षियोंको देखकर उनके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। ध्रुवने अपनी व्यथा सुनाते हुए उनसे उसके निवारणका उपाय पूछा।

'तुमने क्या सोचा है और हम तुम्हारी क्या सहायता करें?' सप्तर्षियोंने नन्हे ध्रुवमें क्षात्रतेज देखकर कहा। 'तुम निस्संकोच अपने मनकी बात हमसे कह दो।'

'मुझे राज्य और धन आदि किसी वस्तुकी इच्छा नहीं है' ध्रुवने उनसे अपना अभीष्ट व्यक्त किया। 'मैं तो केवल एक उसी स्थानको चाहता हूँ, जिसे अबतक कभी किसीने पहले न भोगा हो। आप कृपाकर यही बता दें कि क्या करनेसे वह अग्रगण्य स्थान मुझे प्राप्त हो सकता है?' महर्षि मरीचि अत्रि और अङ्गिराके बाद महर्षि पुलस्त्यने कहा—

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथा परम्।
तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम्॥

(विष्णुपुराण १।११।४६)

'जो परब्रह्म, परमधाम और जो सबसे बड़े और श्रेष्ठ हैं, उन हरिकी आराधना करनेसे मनुष्य अति दुर्लभ मोक्षपदको भी प्राप्त कर लेता है।'

महर्षि पुलह और क्रतुने भी जनार्दनको प्रसन्न करनेके लिये उनकी आराधनाका उपदेश दिया। अन्तमें वसिष्ठजीने कहा—

प्राप्नोष्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छसि।
त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु वत्सोत्तमोत्तमम्॥

(विष्णुपुराण १।११।४९)

'हे वत्स! विष्णुभगवान्‌की आराधना करनेपर तू अपने मनसे जो कुछ चाहेगा वही प्राप्त कर लेगा फिर त्रिलोकीके उत्तमोत्तम स्थानकी तो बात ही क्या है।'

ऋषियोंके इस सदुपदेशसे प्रसन्न होकर ध्रुवने उनसे जपादिके सम्बन्धमें पूछा तो ऋषियोंने बताया—"राजकुमार! विष्णुभगवान्‌की आराधनामें तत्पर पुरुषको सम्पूर्ण बाह्य विषयोंसे चित्तको हटाकर उसे जगदीश्वरमें स्थिर कर देना

चाहिय। इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर तन्मय भावसे 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। तुम्हार पितामह स्वायम्भुव मनुने भी इसी मन्त्रका जप करके अपना अभीष्ट प्राप्त किया था। तू भी इस मन्त्रका जप करता हुआ श्रीगोविन्दको प्रसन्न कर, उनका कृपा प्राप्त कर ले।''

इस प्रकार ऋषियाक उपदेश सुनकर ध्रुवने उनके चरणाम प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद ले कालिन्दाकूलस्थित पवित्रतम मधुवनकी यात्रा आरम्भ का।

सुनातिकुमार ध्रुव मधुवन पहुँचे। उन्हाने श्रीयमुनाजीको प्रणाम कर स्नान किया और रात्रिमे उपवास कर प्रात काल पुन स्नान कर ऋषियाके उपदेशानुसार श्रीनारायणकी आराधना आरम्भ कर दी। उन्हाने उपासना-कालम एक मासतक प्रति तीसर दिन शरीर-निर्वाहक लिये कैथ और वेरका फल लिया, दूसरे मासम छ -छ दिनक वाद वे सूखे घास और पत्ते खाकर भक्तवत्सल प्रभुकी उपासना करत रह। तीसरे मासम वे नवे दिन केवल जल पीकर भजनमें लगे रहे। चौथे महीने बारह दिनाके अन्तरसे केवल वायु पीकर परमात्माके ध्यान और भजनम लगे रह। पाँचव मासम उत्तानपादनन्दन ध्रुव श्वास रोककर एक पैरपर खडे हो हृदयस्थित भगवान् वासुदेवका चिन्तन करने लगे। उनकी चित्तवृत्ति सर्वथा शान्त एव स्थिर हाकर कमल-नयन प्रभुमे ही लीन हो गयी थी। ध्रुवके द्वारा सम्पूर्ण तत्त्वाके आधार परब्रह्मकी धारणा की जानपर त्रैलोक्य काँप उठा। ध्रुवके एक पैरपर खडे होनेसे उनके अँगूठेसे दबकर आधी धरती एक ओर झुक गयी। उनके इन्द्रिय एव प्राणोको राककर अनन्य बुद्धिसे परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने एव उनकी समष्टि प्राणसे अभिन्नता हो जानेके कारण जीवमात्रका श्वास-प्रश्वास रुक गया। फलत लोक और लोकपाल—सभी व्याकुल हो गये।

फिर तो देवाधिप इन्द्रके साथ कूष्माण्ड नामक उपदेवताआने अनेक भयानक रूपोसे ध्रुवका ध्यान भङ्ग करना प्रारम्भ किया। भयानक राक्षसियाँ आयीं और चीत्कार करने लगीं, पर ध्रुवने उनकी ओर देखातक नहीं। फिर मायाकी सुनीति प्रकट हुई और विलाप करते हुए उसने कहा—'बेटा। तू इस भयानक वनमे क्या कर रहा है? तेरा कष्ट मुझसे देखा नहीं जा रहा है। सौतकी कटूक्तिके कारण मुझ अनाथाको छोड देना तुझे उचित नहीं है। क्या मैंने इसी दिनके लिये तुम्हे पाला था?' फिर सुनीति वडे जोरस चिल्लायी—'अरे वटा! भाग-भाग! देख, इस निर्जन वनम कितने क्रूर राक्षस भयानक अस्त्र लिये दाडे चले आ रहे हैं।' यह कह, वह चली गयी। फिर कितने ही राक्षस ओर राक्षसियाँ प्रकट हुए। वे अत्यन्त भयानक थे तथा उनके मुखसे आगकी ज्वालाएँ निकल रही थीं। 'मारो-काटो'—इस प्रकार व चिल्ला रह थे। फिर उस छाटे-से बालकको भयाक्रान्त करनेके लिये ऊँट, सिह, मकर और शृगाल आदिके मुखवाले राक्षस चीत्कार करने लगे, हृदयको कँपा दनेवाले उपद्रव करने लगे, पर श्रीहरिसे एकाकार हुआ ध्रुवका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। व नवनीरदवपु श्रीविष्णुके ध्यानम ही तन्मय रहे।

ध्रुवपर मायाका कोई प्रभाव पडता न देख और श्वास-प्रश्वासकी गति अवरुद्ध हो जानेके कारण भयभीत होकर देवता शरणागतवत्सल श्रीहरिके पास पहुँचे और उन्हाने अत्यन्त करुण स्वरमे कहा—'प्रभो! ध्रुवकी तपस्यासे व्याकुल होकर हम आपकी शरणमे आये हैं। हमे पता नहीं, वह इन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण, चन्द्रमा या किसके पदकी कामना करता है। आप हमपर प्रसन्न हों ध्रुवको तपसे निवृत्तकर हम शान्ति प्रदान कीजिये।'

'देवताओ! मेरे प्रिय भक्त ध्रुवको इन्द्र, सूय, वरुण अथवा कुबेर आदि किसीके भी पदकी अभिलाषा नहीं है।' श्रीभगवान्ने देवताआको आश्वस्त करते हुए कहा। 'उसकी इच्छा मैं पूर्ण करूँगा। आपलोग निश्चिन्त होकर जायँ, मैं जाकर उसे तपसे निवृत्त करता हूँ।'

मायातीत देवाधिदेव प्रभुके वचन सुनकर इन्द्रादि देवताओने प्रभुके चरणकमलामे प्रणाम किया तथा वे अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर परमपुरुष श्रीभगवान् ध्रुवके तपसे प्रसन्न हाकर उनके सम्मुख चतुर्भुजरूपमे प्रकट हो गये।

'सुनीतिकुमार! मैं तुम्हारी तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हे वर देने आया हूँ।' मन्द-मन्द मुस्कराते हुए नवघनश्याम चतुर्भुजरूपधारी भगवान्ने ध्रुवसे कहा। 'तू

इच्छित वर माँग।'

साथ ही, ध्रुव जिस देदीप्यमान मूर्तिका अपने हृदय-कमलमें ध्यान कर रहे थे, वह सहसा लुप्त हो गयी। तब तो घबराकर ध्रुवने अपनी आँखें खोल दीं और उन्होंने अपने सम्मुख किरीट, कुण्डल तथा शङ्ख, चक्र गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग धारण किये परमप्रभुको देखा तो वे उनके चरणोंमें लोट गये। प्रणामके अनन्तर ध्रुव हाथ जोडकर खड़े हो गये। उनका रोम-रोम प्रेमसे पुलकित हो रहा था। नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर गये थे। उनका कण्ठ गद्गद था। वे त्रैलोक्यपावन परम दिव्य, अलौकिक और परम दुर्लभ कल्याणमयी श्रीभगवान्‌की परम सौन्दर्यमयी कृपामयी मूर्तिको अपलक नेत्रोंसे निहारते हुए उनकी स्तुति करना चाहते थे पर प्रभु-स्तवन किस प्रकार करें, वे जानते नहीं थे।

सर्वान्तर्यामी प्रभुने करस्थ श्रुतिरूप शङ्खसे बालकके कपालका स्पर्श कर दिया। ध्रुवके मनमें हंसवाहिनी

सरस्वती प्रकट हो गयीं। उन्हें वेदमयी दिव्यवाणी प्राप्त हो गयी और वे अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे अपने परमाराध्य परमप्रभुका स्तवन करने लगे—

'सर्वातीत सर्वात्मन्, सर्वशक्तिसम्पन्न करुणामय जगदाधार स्वामी! मैं आपके कल्याणमय मङ्गलमय सुर-मुनिवन्दित चरणकमलोंमें प्रणाम करता हूँ।' ध्रुवने प्रभुकी स्तुति की। 'प्रभो! आप एक हैं किंतु अपनी रची हुई सम्पूर्ण सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त हैं। दयामय स्वामी! इन्द्रियोंसे भोगा जानेवाला विषय-सुख तो नरकमें भी प्राप्त हो सकता है, ऐसी स्थितिमें जो लोग विषय-सुखके लिये लालायित रहते हैं, उसीके लिये रात-दिन प्रयत्नशील रहते हैं और जन्म-जरा-मरण-व्याधिसे मुक्त होनेके लिये आपके चरणोंका आश्रय नहीं लेते, वे घोर मायाविद्ध अत्यन्त अभागे हैं। प्रभो! आपके आनन्दमय, कल्याणमय, अनन्त सौन्दर्य-सम्पन्न नवनीरद वपुके ध्यान, आपके मधुर नामोंके जप तथा आपके और आपके भक्तोंके पावन चरित्र सुननेमें जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख निजानन्द ब्रह्ममें भी नहीं, जगत्‌में तो कहाँसे प्राप्त होगा? पद्मनाभ प्रभो! जिनका मन आपके चरणकमलोंका भ्रमर बन चुका है, जिनकी जिह्वाको आपके नामामृत-पानका चस्का लग गया है उन आपके प्रेमी भक्तोंका सङ्ग-लाभ होनेपर, सगे-सम्बन्धी, स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव घर-द्वार और मित्रादि सभी छूट जाते हैं। उन्हें आपके स्वरूपका ध्यान, आपके नामका जप और आपकी लीला-कथाका श्रवण-मनन-चिन्तन तथा आपके अनुरागी भक्तोंके सङ्गके अतिरिक्त और कहीं कुछ अच्छा नहीं लगता। उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रह जाती। दयामय! आप नित्यमुक्त, शुद्धसत्त्वमय सर्वज्ञ, परमात्मस्वरूप निर्विकार, आदिपुरुष षडैश्वर्य-सम्पन्न तथा तीनों गुणोंके अधिपति हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌के कारण अखण्ड अनादि अनन्त आनन्दमय, निर्विकार ब्रह्मरूप हैं। मैं आपके शरण हूँ। परमानन्दमूर्ति प्रभो! भजनका सच्चा फल आपके चरणकमलोंकी प्राप्ति है और वे देवदुर्लभ, त्रैलोक्यपूज्य परम पावन चरण-कमल मुझे प्राप्त हो चुके हैं। अब मैं उन्हें नहीं छोड़ूँगा। प्रभो! ये मङ्गलमय त्रैलोक्यपावन चरणकमल सदा-सर्वदा मेरे हृदयधनके रूपमें बने रहें। मुझे कभी इनका विछोह न हो। मैं पहले यहाँ माता सुरुचिकी कटूक्तिसे आहत होकर दुर्लभ पद-प्राप्तिकी कामना लेकर आया था, किंतु अब मुझे कोई इच्छा नहीं है। अब तो मैं केवल इन चरणकमलोंका भ्रमर बनकर रहना चाहता हूँ। मुझे क्षणभरके लिये भी आपकी विस्मृति न हो—मैं यही चाहता हूँ। दयामय! अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न परमात्मन्! आप सदा-सर्वदा मेरे बने रहें—बस मेरी यही कामना है। आप इसकी पूर्ति कर दें नाथ!'

'बालक! मेरा दर्शन होनेसे तेरी तपस्या सफल हो गयी।' श्रीभगवान्ने ध्रुवसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा। 'किंतु मेरा दर्शन अव्यर्थ होता है। तुम्हारी लौकिक कामनाओंकी पूर्ति भी अवश्य होगी। पूर्वजन्ममें तू मुझमें निरन्तर एकाग्रचित्त रखनेवाला मातृ-पितृभक्त, धर्माचरण-सम्पन्न ब्राह्मण था। कुछ ही दिनोंमें एक अत्यन्त सुन्दर राजपुत्रसे तेरी मैत्री हो गयी। उसके वैभवको देखकर तुम्हारे मनमें भी राजपुत्र होनेकी कामना उदित हुई, उसीके फलस्वरूप तूने दुर्लभ स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्तानपादके पुत्रके रूपमें जन्म लिया। अब अपनी आराधनाके फलस्वरूप मैं तुझे त्रैलोक्य-दुर्लभ, सर्वोत्कृष्ट 'ध्रुव' (निश्चल)-पद दे रहा हूँ, जो सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों, सभी नक्षत्रों, सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणोंसे ऊपर है। साथ ही तुझे एक कल्पतककी स्थिति दे रहा हूँ।'

'तेरी माता सुनीति भी प्रज्वलित तारेके रूपमें तेरे समीप ही एक विमानपर उतने ही दिनोंतक रहेगी। प्रातः-सायं तेरा गुणगान करनेवाले भी पुण्यके भागी होंगे।'

श्रीभगवान्ने ध्रुवसे आगे कहा—'तपश्चरणके लिये अपने पिताके वनमें जानेके अनन्तर तू राज्यका अधिकारी होगा और अनेक बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ करते हुए छत्तीस हजारवर्षतक पृथ्वीका शासन करेगा और फिर अन्तमें तू सम्पूर्ण लोकोंद्वारा वन्दनीय, अत्यन्त दुर्लभ और परम सुखद मेरे धाममें पहुँच जायगा, जहाँ जाकर फिर इस जगत्में कोई लौटकर नहीं आता।'

सुनीतिनन्दन ध्रुवको इस प्रकार वर देकर ध्रुवसे पूजित श्रीभगवान् वासुदेव अपने धाम पधारे, किंतु प्रभुके विछोहसे उदास होकर ध्रुव अपने नगरके लिये लौट पड़े।

उधर देवर्षि नारद ध्रुवके वनगमनके अनन्तर राजा उत्तानपादके समीप पहुँचकर बोले—'राजन्! तुम कुछ उदास दीख रहे हो। तुम्हारी चिन्ताका क्या कारण है?'

'मैं बड़ा ही स्त्रैण और निष्ठुर हूँ।' बिलखते हुए नरेशने देवर्षिसे कहा। 'मेरी दुष्टताके कारण मेरा पाँच वर्षका अबोध बच्चा गृह त्यागकर वनमें चला गया। पता नहीं, वह कैसे है। उसे हिंस्र जंतुओंने खा डाला या उसका क्या हुआ? वह बालक प्रेमवश मेरी गोदमें आना चाहता था, किंतु मैंने उसे प्यार नहीं दिया। मेरी पत्नीने उसे बड़ी कटूक्तियाँ कहीं। यह मेरे ही पापका परिणाम है, पर अब मेरा हृदय अधीर और अशान्त है। मेरे दुःखकी सीमा नहीं। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? कुछ समझमें नहीं आता।'

'ध्रुवके रक्षक सर्वसमर्थ हरि हैं, तुम उसकी चिन्ता मत करो।' श्रीनारदजीने उत्तानपादको आश्वस्त किया। 'वह बालक देवदुर्लभ पद प्राप्तकर सकुशल लौट आयेगा। अत्यन्त यशस्वी होगा ध्रुव।'

श्रीनारदजी चले गये, पर राजा उत्तानपाद निरन्तर पुत्रकी चिन्तामें ही घुलने लगे। राजकार्यमें उनका मन नहीं लग पा रहा था।

× × ×

'दुर्लभ मणि सम्मुख रहनेपर भी मैं काँच ले बैठा।' ध्रुवका मन अत्यन्त दुःखी और उदास था। 'भगवान्की सेवाके स्थानपर मैंने दुर्लभ पद ले लिया।' मैं बड़ा ही मूढ और अभागा हूँ।' इस प्रकार सोचते और अपने आराध्यका स्मरण करते हुए वे अपनी राजधानीके समीप पहुँचे।

'कुमार ध्रुव नगरके समीपतक आ गये हैं'—संदेश मिलनेपर भी राजा उत्तानपादको सहसा विश्वास नहीं हुआ, पर देवर्षि नारदके वचनोंका स्मरण कर वे अत्यन्त हर्षित हो गये। उन्होंने इस सुखद संवाद लानेवालेको बहुमूल्य हार उतारकर दे दिया। नगर-द्वार-चौराहे—सब सज उठे। माङ्गलिक वाद्य बजने लगे। प्रजाकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। राजा उत्तानपाद, ध्रुवकी माँ सुनीति तथा सुरुचि पुत्रका मुँह देखनेके लिये अधीर हो रहे थे। राजा ब्राह्मणों, वंशके वृद्ध मन्त्री और बन्धुजनोंको साथ ले, स्वर्णजटित रथपर आरूढ होकर नगरके बाहर पहुँचे। उनके आगे-आगे शङ्ख-दुन्दुभि आदि वाद्य बज रहे थे। सुनीति और सुरुचि उत्तमके साथ पालकियोंपर बैठकर वहाँ पहुँचीं।

उपवनके समीप पहुँचते ही महाराज उत्तानपादने ध्रुवको देखा और तुरत रथसे उतर पड़े। उन्होंने अपने

बच्चे ध्रुवको छातीसे लगा लिया। उनके नेत्र बरस पडे तथा साँस जोरसे चलने लगी। राजा बार-बार अपने बिछुडे पुत्रके सिरपर हाथ फेर रहे थे। उनके आँसू थमते ही न थे। ध्रुवने पिताके चरणोपर सिर रख दिया।

'चिरजीवी रहो।' ध्रुवने माता सुरुचिके चरणोपर सिर रखा तो स्नेहवश उन्होने आशीर्वाद दिया। जिसपर भगवान् कृपा करते हैं, उसपर सबकी कृपा स्वत उतर पडती है।

ध्रुव अपने भाई उत्तमसे गले मिले और जब अपनी माता सुनीतिके चरणोपर उन्होने सिर रखा तब उनकी विचित्र दशा हो गयी। बिछुडे हुए बछडेको पाकर जिस प्रकार गायकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रहती, उसी प्रकार माता सुनीतिकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। उन्होने अपने प्यारे बच्चेको वक्षसे लगाया तो सब कुछ भूल गयी। उन्हे अपने तन और प्राणकी भी सुधि नहीं रही। उनके नेत्रोसे आँसू और स्तनोसे दुग्ध-धारा बहने लगी।

'आपने निश्चय ही विश्ववन्द्य हरिकी उपासना की है', पुरवासियोने महारानीकी प्रशसा करते हुए कहा। 'जो आपका खोया हुआ लाल लौटकर आ गया। श्रीहरिकी आराधना करनेवाले तो दुर्जय मृत्युपर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं।'

ध्रुवके दर्शनसे लोगोके नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे। उनके प्रति सभी अपना स्नेह व्यक्त कर रहे थे। उसी समय महाराज उत्तानपाद ध्रुवके साथ उत्तमको भी हाथीपर बैठाकर राजधानीमे प्रवेश करनेके लिये चल पडे। मार्ग खूब सजाया गया था और ध्रुवपर प्रजा-परिजन पुष्प पुष्पमाला एव माङ्गलिक द्रव्योकी वर्षा कर रहे थे। इस प्रकार ध्रुव राजभवनमे पहुँचे।

देवर्षि नारदके कथनानुसार महाराज उत्तानपाद ध्रुवका भक्तिपरायण अत्यन्त तेजस्वी जीवन देखकर मन-ही-मन आश्चर्यचकित हो रहे थे। ध्रुवकी तरुणाई एव उनपर प्रजाकी प्रीति तथा अपनी वृद्धावस्था देखकर महाराज उत्तानपाद उन्हे राज्यपर अभिषिक्त कर स्वय तपश्चर्याके लिये वनमे चले गये।

पृथ्वीके सम्राट् ध्रुवका शासन कैसा रहा होगा यह सहज ही सोचा जा सकता है। परम भगवद्भक्त नरेशके राज्यमे प्राय बडे-बडे यज्ञ हुआ करते थे। सर्वत्र सुख-शान्तिका अखण्ड साम्राज्य था। सत्य, क्षमा, दया, उपकार, त्याग, तपप्रभृति सर्वत्र दीखते थे। सर्वत्र श्रीभगवान्का पूजन भजन और कीर्तन होता था। मिथ्याचार एव दुराचारकी प्रजाके मनमे कल्पना भी नहीं थी।

परम वैष्णव नरेश ध्रुवके छत्तीस सहस्र वर्षोके दीर्घ-कालव्यापी शासनमे युद्धका कहीं अवसर नहीं आया, किंतु एक बार उनका भाई उत्तम आखेटके व्यसनके कारण वनमे गया। वहाँ एक बलवान् यक्षने उसे मार डाला। ममतामयी माँ सुरुचि कुछ लोगोके साथ उसे ढूँढने गयी, पर वहाँ आग लग जानेके कारण वह जलकर भस्म हो गयी।

इस सवादसे आहत और कुपित होकर ध्रुव एक रथपर सवार होकर यक्षोके देशमे जा पहुँचे। वहाँ यक्षोने पृथ्वीके सम्राट्का अभिनन्दन करना तो दूर रहा, शस्त्रास्त्रसहित वे ध्रुवपर टूट पडे। यद्यपि वे ध्रुवकी बाण-वर्षासे व्याकुल हो गये, फिर भी उनकी सख्या अत्यधिक थी। यक्षोने कुपित होकर एक ही साथ ध्रुवपर इतने परिघ, खड्ग, प्रास, त्रिशूल, फरसे, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी तथा चित्र-विचित्र पखवाले बाणोकी वर्षा की कि वे शस्त्रोसे ढक गये। यह दृश्य देखकर आकाशस्थित सिद्धगण व्याकुल हो गये। यक्षगण अपनी विजयका अनुमान कर हर्षोन्मादसे गर्जन करने लगे।

किंतु कुछ ही देर बाद ध्रुवजी उस शस्त्रसमूहसे इस प्रकार बाहर निकल आये जैसे कुहरेको भेदकर अशुमाली प्रकट होते हैं। फिर ध्रुवने यक्षोपर इतने तीक्ष्ण शरोकी वर्षा की कि यक्षोके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कटकर सर्वत्र बिखर गये। बचे-खुचे यक्ष प्राण लेकर भागे। रणभूमि यक्षोसे रहित हो गयी परतु कुछ ही देर बाद यक्षोने भयानक माया रची। आकाशमे काले बादल घिर आये। बिजली चमकने लगी। उनसे रक्त कफ, पीब एव विष्ठा-मूत्रादिकी वर्षा होने लगी। ध्रुवकी ओर अनेक हिंसक व्याघ्रादि जन्तु गर्जन करते दौडकर आते हुए दीखे। उन असुरोकी कँपानेवाली मायाको देखकर ऋषियोने वहाँ आकर महाराज ध्रुवको शुभाशीर्वाद प्रदान किया—

औत्तानपादे भगवास्तव शार्ङ्गधन्वा
देव क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान्।

यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा
लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम्॥
(श्रीमद्भा० ४।१०।३०)

'उत्तानपादनन्दन ध्रुव! शरणागत-भय-भञ्जन शार्ङ्गपाणि भगवान् नारायण तुम्हारे शत्रुओंका संहार करें। भगवान्का तो नाम ही ऐसा है, जिसके सुनने और कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य दुस्तर मृत्युके मुखसे अनायास ही बच जाता है।'

ऋषियोंके वचन सुन ध्रुवजीने आचमन कर श्रीनारायणद्वारा निर्मित नारायणास्त्रको अपने धनुषपर चढ़ाकर छोड़ दिया। फिर तो यक्षोंकी सारी माया क्षणार्द्धमें ही नष्ट हो गयी और वे कट-कटकर गिरने लगे। यक्षोंने कुपित होकर पुनः अपने शस्त्र सँभाले, पर ध्रुवके शरोंसे वे गाजर-मूलीकी भाँति कटने लगे।

असंख्य यक्षोंको तड़प-तड़पकर मृत्युके मुखमें जाते देखकर ध्रुवके पितामह स्वायम्भुव मनुका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने तुरन्त वहाँ आकर ध्रुवसे कहा—'बेटा! बस करो। क्रोध नरकका द्वार है। तुम्हारी अपने भाईके प्रति प्रीति थी यह ठीक है, पर एक यक्षके कारण इतने निर्दोष यक्षोंका संहार हमारे कुलकी रीति नहीं, यह उचित नहीं है।' स्वायम्भुव मनुने अपने पौत्र ध्रुवको सीख दी—

नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम्।
यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम्॥
तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति॥
(श्रीमद्भा० ४।११।१०, १३)

'इस जड़ शरीरको ही आत्मा मानकर इसके लिये पशुओंकी भाँति प्राणियोंकी हिंसा करना—यह भगवत्सेवा-परायण साधुजनोंका मार्ग नहीं है, सर्वात्मा श्रीहरि तो अपनेसे बड़े पुरुषोंके प्रति सहनशीलता, छोटोंके प्रति दया, बराबरवालोंके साथ मित्रता तथा समस्त जीवोंके साथ समताका बर्ताव करनेसे ही प्रसन्न होते हैं।'

'बेटा! तुम्हारे भाईको मारनेवाले ये यक्ष नहीं हैं क्योंकि प्राणीके जन्म-मृत्युका कारण तो परमात्मा है। तुम क्रोधको शान्त करो, क्योंकि यह कल्याणमार्गका शत्रु है—

येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम्।
न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः॥
(श्रीमद्भा० ४।११।३२)

'क्रोधके वशीभूत हुए पुरुषसे सभी लोगोंको बड़ा भय होता है, इसलिये जो बुद्धिमान् पुरुष ऐसा चाहता है कि मुझसे किसी भी प्राणीको भय न हो और मुझे भी किसीसे भय न हो, उसे क्रोधके वशमें कभी नहीं होना चाहिये।'

'बेटा! यक्षोंके इतने संहारसे तुमसे कुबेरका अपराध बन गया है। तुम उन्हें यथाशीघ्र संतुष्ट कर लो। भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें।'

ध्रुवने बड़ी श्रद्धासे अपने पितामह मनुके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके अनन्तर मनुजी महर्षियोंसहित अपने लोकको चले गये।

अपना क्रोध त्यागकर ध्रुव भगवान् कुबेरके समीप गये और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

'अपने पितामहके सदुपदेशसे तुमने वैरभावका त्याग कर दिया, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई' कुबेरने कहा। 'सच तो यह है कि न तो यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा है और न तुमने यक्षोंको। सम्पूर्ण जीवोंके जन्म और मृत्युके हेतु तो भगवान् काल हैं। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें। तुम मुझसे कोई वर माँग लो।'

'श्रीहरिकी अखण्ड स्मृति बनी रहे।' ध्रुवने विनयपूर्वक वर माँगा। 'जिससे मनुष्य सहज ही दुस्त्यज संसारसागरसे

तर जाता है।'

श्रीकुवेरने ध्रुवको अखण्ड भगवत्स्मृतिका वर दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये। ध्रुवजी अपनी राजधानीको लौट आये।

ध्रुवजी अत्यन्त शीलवान्, ब्राह्मणभक्त, दीनवत्सल एवं मर्यादाके रक्षक थे। वे सदा यज्ञादि पावन कर्म एवं भगवच्चिन्तनमें लगे रहते थे। उन्होंने देखा, राजकार्य करते छत्तीस हजार वर्ष बीत गये और ये संसारकी सारी वस्तुएँ कालके गालमें पड़ी हुई हैं, अतएव अब तो उन्हें अपने आराध्यके भजनमें ही दिन व्यतीत करने चाहिये।

बस, उन्होंने अपने पुत्र उत्कलका राजतिलक किया और बदरिकाश्रमको चले गये। वहाँ स्नानादिसे निवृत्त होकर वे आसनपर बैठे और प्राणायामद्वारा वायुको वशमें कर लिया। फिर वे श्रीहरिके ध्यानमें तन्मय हो गये। ध्रुवजी प्रेमोन्मत्त होकर भगवान् वासुदेवका ध्यान कर रहे थे। उनका रोम-रोम पुलकित होता और नेत्रोंसे अश्रु झरते जाते। कुछ समय बाद उनका देहाभिमान सर्वथा गल गया। मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ, इसकी स्मृति भी उन्हें नहीं रही।

अचानक उन्होंने देखा, जैसे चन्द्रमा उनके सम्मुख उतर रहा हो। समीप आनेपर उन्होंने देखा, एक सुन्दर विमान था। उससे चतुर्दिक् प्रकाश छिटक रहा था। उससे दो अत्यन्त श्याम वर्ण किशोर चतुर्भुजपार्षद उतरे। वे सुन्दर वस्त्र एवं दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थे।

उन्हें श्रीविष्णुके पार्षद जानकर ध्रुवजी उठकर खड़े हो गये। उन्होंने श्रीभगवान्‌का नाम लेते हुए उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़े, सिर नीचा किये, श्रीभगवान्‌के नामका जप एवं उनके चरणोंका ध्यान करने लगे।

भगवान्‌के पार्षद सुनन्द और नन्दने मुस्कराते हुए ध्रुवके समीप आकर कहा—'भक्तवर ध्रुव! आपका मङ्गल हो। आपने पाँच वर्षकी आयुमें ही तप करके भगवान् वासुदेवका दर्शन प्राप्त कर लिया था। हम उन्हीं परम प्रभुके आदेशसे आपको उस लोकमें ले चलनेके लिये आये हैं, जहाँ सप्तर्षि भी नहीं पहुँच सके। केवल नीचेसे देखते रहते हैं। सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल उसकी परिक्रमा करते हैं। यह श्रेष्ठ विमान पुण्यश्लोक-शिखामणि प्रभुने आपके लिये भेजा है। आप इसपर बैठ जायँ।'

ध्रुवने स्नान और संध्या-वन्दनादि कर्म किया। बदरिकाश्रमके मुनियोंको प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके अनन्तर उक्त श्रेष्ठ विमानकी पूजा एवं उसकी परिक्रमा कर प्रभुके पार्षदोंका पूजन किया।

'मर्त्यधामके प्रत्येक प्राणीको मैं स्पर्श करता हूँ।' मूर्तिमान् कालको सम्मुख देखकर ध्रुवने कहा—'तुम्हें मेरा स्पर्श प्राप्त हो।' और उसके मस्तकपर पैर रखा और विमानपर आरूढ होने लगे।'

'क्या मैं अपनी जन्मदायिनी जननीको छोड़कर एकाकी वैकुण्ठधाम जाऊँगा?' विमानपर चढ़ते ही ध्रुव विचार करने लगे।

'वह देखिये!' सुनन्द और नन्दने ध्रुवके मनकी बात जानकर उनका समाधान करनेके लिये कहा। 'आपकी परम पूजनीया माता दूसरे विमानपर आगे-आगे जा रही हैं।'

ध्रुवने देखा दूसरा विमान विद्युत्कान्तिकी भाँति प्रकाश बिखेरता शून्यमें चला जा रहा है।

ध्रुव सर्वथा निश्चिन्त होकर श्रीहरिका स्मरण करते हुए विमानमें बैठ गये और वह परमधाम—अविचल धामके लिये उड़ चला।

आकाशमें मङ्गल-वाद्य बज उठे।

× × ×

यद् भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो
लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजन्त एते।

यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा
व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम्॥
शान्ता समदृश शुद्धा सर्वभूतानुरञ्जना ।
यान्त्यञ्जसाच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवा ॥
(श्रीमद्भा० ४।१२।३६-३७)

'यह दिव्य धाम (विष्णुधाम) सब ओर अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है, इसीके प्रकाशसे तीनो लोक प्रकाशित हैं। इसमे जीवापर निर्दयता करनेवाले पुरुष नहीं जा सकते। यहाँ ता उन्हींकी पहुँच होती है, जो दिन-रात प्राणियोके कल्याणके लिये शुभ कर्म ही करते रहते हैं। जो शान्त, समदर्शी, शुद्ध ओर सब प्राणियाको प्रसन्न रखनेवाले हैं तथा भगवद्भक्ताको ही अपना एकमात्र सच्चा सुहृद् मानते हैं—ऐसे लोग सुगमतासे ही इस भगवद्धामको प्राप्त कर लेते हे।'

~~o~~

[ख] गजेन्द्रोद्धारक भगवान् श्रीहरि

नाय वेद स्वमात्मान यच्छक्त्याहधिया हतम्।
त दुरत्ययमाहात्म्य भगवन्तमितोऽस्म्यहम्॥
(श्रीमद्भा० ८।३।२९)

'आपकी मायारूपा अहबुद्धिसे आत्माका स्वरूप ढक गया है, इसीसे यह जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमा अपार है। उन सर्वशक्तिमान् एव माधुर्यनिधि आप भगवान्के में शरण हूँ।'—गजेन्द्र

× × ×

अत्यन्त प्राचीन कालकी बात हे। द्रविड देशमे एक पाण्ड्यवशी राजा राज्य करते थे। उनका नाम था—इन्द्रद्युम्न। वे भगवान्की आराधनामे ही अपना अधिक समय व्यतीत करते थे। यद्यपि उनके राज्यमे सर्वत्र सुख-शान्ति थी, प्रजा प्रत्येक रीतिसे सतुष्ट थी तथापि राजा इन्द्रद्युम्न अपना समय राजकार्यमे कम ही दे पात थे। 'श्रीभगवान् ही मेरे राज्यकी व्यवस्था करते हैं। उनका राज्य, चिन्ता वे कर।' वे तो बस, अपने इष्ट परमप्रभुकी उपासनामे ही दत्तचित्त रहते।

राजा इन्द्रद्युम्नके मनमे आराध्य-आराधनाकी लालसा उत्तरोत्तर बढती ही गयी, इस कारण वे राज्यका त्याग कर मलयपर्वतपर रहने लगे। उनका वेष तपस्वियाका था। सिरके बाल बढकर जटाके रूपमे हो गये। राजा इन्द्रद्युम्नने मोन-व्रत धारण कर लिया था आर व स्नानादिसे निवृत्त होकर निरन्तर परब्रह्म परमात्माकी आराधनामे तल्लीन रहते। उनके मन ओर प्राण भी श्रीहरिके चरणकमलाके मधुकर बने रहते। इसके अतिरिक्त उन्हे जगत्की कोई वस्तु न सुहाती आर न उन्ह राज्य, कोष, प्रजा पत्नी आदि किसी प्राणी-पदार्थकी स्मृति ही होती।

एक बारकी बात है, राजा इन्द्रद्युम्न प्रतिदिनकी *भाँति अपने नियमानुसार स्नानादिसे निवृत्त होकर सर्वसमर्थ* प्रभुकी उपासनामे तल्लीन थे। उन्हे बाह्य जगत्का तनिक भी ध्यान न था। सयोगवश उसी समय महर्षि अगस्त्य अपने शिष्य-समुदायके साथ वहाँ पहुँचे।

न पाद्य, न अर्घ्य, न स्वागत! मौनव्रती राजा इन्द्रद्युम्न तो परमप्रभुके ध्यानमे निमग्न थे।

महर्षि अगस्त्य कुपित हो गये, इन्द्रद्युम्नको उन्हाने शाप दे दिया—

तस्मा इम शापमदादसाधु-
रय दुरात्माकृतबुद्धिरद्य।
विप्रावमन्ता विशता तमोऽन्ध
यथा गज स्तब्धमति स एव॥
(श्रीमद्भा० ८।४।१०)

'इस राजाने गुरुजनासे शिक्षा नहीं ग्रहण की है, अभिमानवश परोपकारसे निवृत्त होकर मनमानी कर रहा है। ब्राह्मणाका अपमान करनेवाला यह हाथीके समान जडबुद्धि है, इसलिय इसे वही घोर अज्ञानमयी हाथीकी योनि प्राप्त हो।'

क्रुद्ध महर्षि अगस्त्य भगवद्भक्त इन्द्रद्युम्नको शाप देकर चले गये। नरेशने इसे श्रीभगवान्का मङ्गलमय विधान समझकर प्रभुके चरणामे सिर रख दिया।

× × ×

क्षीराब्धिमे दस सहस्र याजन लम्बा-चाडा और ऊँचा एक त्रिकूट नामक पवत था। यह पर्वत अत्यन्त सुन्दर एव श्रेष्ठ था। उक्त पर्वतराज त्रिकूटकी तराइमे

ऋतुमान् नामक भगवान् वरुणका एक क्रीडा-कानन था। उसके चारा आर दिव्य वृक्ष सुशाभित थे। वे वृक्ष सदा पुष्पा और फलास लद रहत थे।

उक्त काननम एक अत्यन्त सुन्दर एव विशाल सरावर था। उसम खिले कमलाकी अद्भुत शाभा थी। उनपर भ्रमर गुजार करत रहते थे। उसके तटपर चारा आर अत्यन्त सुगन्धित पुष्पावाले वृक्ष शाभा दे रहे थे। वे वृक्ष प्रत्येक ऋतुम हरे-भर आर पुष्पित रहते थे। देवाङ्गनाएँ वहाँ क्रीडा करने आया करती थीं।

उक्त भगवान् वरुणके क्रीडा-कानन ऋतुमान्क समीप पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटक गहन वनम हथिनियाके साथ अत्यन्त शक्तिशाली और अमित पराक्रमी एक गजन्द्र रहता था। वह श्रेष्ठ गजाम अग्रगण्य और यूथपति था। यूथपति गजेन्द्र अपनी हथिनिया कलभा आर दूसर हाथियाके साथ वनम विचरण किया करता था। अत्यन्त बलशाली गजन्द्रकी महान् शक्तिस हिसक जगली पशु सदा ही सशङ्क रहते। उसके गण्डस चूनेवाली मदधाराकी गन्धस व्याघ्र, गड, नाग और चमरी गाय आदि जगली पशु दूर भाग जाते।

एक बारकी बात ह। गर्मीके दिन थे। मध्याह्नकाल ओर प्रचण्ड धूप थी। गजेन्द्र अपने साथियासहित तृषाधिक्यसे व्याकुल हो गया। कमलकी गन्धसे सुगन्धित वायुको सूँघकर वह उक्त अत्यन्त सुन्दर आर चित्ताकर्षक विशाल सरोवरके तटपर जा पहुँचा।

गजेन्द्रन उक्त सरोवरक अत्यन्त निर्मल, शीतल ओर मीठे जलम प्रवेश किया। पहले तो उसने जल पीकर अपनी तृषा बुझायी ओर फिर उक्त जलम स्नानकर अपना श्रम दूर किया। फिर उसने जल-क्रीडा आरम्भ की। वह अपनी सूँडमे जल भरकर उसकी फुहारासे हथिनियाको स्नान करान लगा तथा कलभाके मुँहम सूँड डालकर उन्ह जल पिलाने लगा। दूसरी हथिनियाँ आर गज अपनी सूँडोकी फुहारसे गजेन्द्रका स्नान करा रह थे तथा उसका सत्कार कर रह थ।

अचानक गजन्द्रने सूँड उठाकर चीत्कार की। पता नहीं, किधरस एक मगरन आकर उसका पर पकड लिया। गजन्द्रने अपना पर छुडानक लिये पूरी शक्ति लगायी पर उसका वश नहीं चला, पर नहीं छूटा। अपन स्वामी गजन्द्रको ग्राहग्रस्त देखकर हथिनियाँ, कलभ आर अन्य गज अत्यन्त व्याकुल हा गये। व सूँड उठाकर चिग्घाडने आर गजन्द्रको बचानक लिय सरावरक भीतर-बाहर दाडन लग। उन्हान पूरी चष्टा का पर वे सफल नहीं हुए।

महर्षि अगस्त्यक शापसे शप्त महाराज इन्द्रद्युम्न ही गजेन्द्र हा गये थे आर गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू महर्षि दवलक शापसे ग्राह हो गये थ। वे भी अत्यन्त पराक्रमी थे।

सघर्ष चल रहा था। गजेन्द्र बाहर खींचता आर ग्राह गजेन्द्रका भीतर। सरोवरका निर्मल जल गँदला हो गया। कमल-दल क्षत-विक्षत हा गय। जल-जन्तु व्याकुल हा उठे। गजेन्द्र और ग्राहका सघर्ष एक सहस्र वर्षतक चलता रहा। दोना जीवित रहे। यह दृश्य दखकर देवगण चकित हा गये।

अन्तत गजेन्द्रका शरीर शिथिल हो गया। उसक शरीरम शक्ति ओर मनमे उत्साह नहीं रहा, परतु जलचर होनके कारण ग्राहकी शक्तिम काई कमी नहीं आयी। उसकी शक्ति बढ गयी ओर वह नवीन उत्साहसे आर अधिक शक्ति लगाकर गजेन्द्रको खींचने लगा।

सर्वथा असमर्थ गजेन्द्रके प्राण सकटम पड गये। उसकी शक्ति ओर पराक्रमका अहकार चूर्ण हो गया। वह पूर्णतया निराश हो गया कितु पूर्वजन्मकी निरन्तर भगवदाराधनाके फलस्वरूप उसे भगवत्स्मृति हो आयी। उसने मन-ही-मन निश्चय किया—'मं कराल कालके भयसे चराचर प्राणियाके शरण्य सर्वसमर्थ प्रभुकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

गजेन्द्र इस निश्चयके साथ मनको एकाग्रकर पूर्वजन्मम सीखे श्रेष्ठ स्तात्रके द्वारा परम प्रभुकी स्तुति करने लगा—

जो जगत्के मूल कारण ह आर सबके हृदयम पुरुषरूपम विराजमान हैं एव समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं जिनक कारण इस ससारम चेतना जाग्रत् हाती है—उन भगवान्के चरणाम मैं प्रणाम करता हूँ। प्रेमपूर्वक उन्हीं प्रभुका ध्यान करता हूँ। प्रलयकालम सब कुछ नष्ट हो जानेपर भी जो महामहिम परमात्मा बने रहते ह वे प्रभु मरी रक्षा कर। नटकी भाँति

अनेक वेष धारण करनेवाले प्रभुका वास्तविक स्वरूप एव रहस्य देवता भी नहीं जानते, फिर अन्य काई उसका कैसे वर्णन करे? वे प्रभु मेरी रक्षा कर। जिन कल्याणमय प्रभुके दशनक लिये सत-महात्मागण सर्वस्व त्यागकर जितेन्द्रिय हो वनम अखण्ड तपश्चरण करते हैं, वे परमात्मा मेरी रक्षा कर। में सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर्यमय, सर्वसमर्थ प्रभुके चरणाम नमस्कार करता हूँ। मैं जीवित रहना नहीं चाहता। इस अज्ञानमय योनिम रहकर करूँगा ही क्या? मैं तो आत्मप्रकाशको आच्छादित करनेवाले अज्ञानके आवरणसे मुक्त होना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपन-आप नहीं छूट सकता, किंतु कवल भगवत्कृपा और तत्त्वज्ञानद्वारा ही नष्ट हाता है। अतएव में उन श्रीहरिके चरणाम प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपासे जीवन और मृत्युक कठोर पाशसे जीव सहज ही छूट जाता है। हे प्रभो! आपकी मायाके वश होकर जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमाका पार नहीं। आप अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, सवान्तर्यामी एव सौन्दर्यमाधुर्यनिधि हैं। में आपक शरण हूँ। आप मेरी रक्षा करे।'

गजेन्द्रकी स्तुति सुनकर सर्वात्मा सर्वदेवरूप श्रीहरि प्रकट हो गये। गजेन्द्रको पीडित देखकर श्रीहरि वेदमय गरुडपर आरूढ हाकर अत्यन्त शीघ्रतासे उक्त सरोवरके तटपर गजेन्द्रक पास पहुँच गय।

जब जीवनसे निराश और पीडासे छटपटाते गजेन्द्रने हाथम चक्र लिये गरुडारूढ श्रीहरिको तीव्रतासे अपनी ओर आते देखा ता उसने कमलका एक सुन्दर पुष्प अपनी सूँडमे लेकर ऊपर उठाया आर बड कष्टसे कहा—'नारायण! जगद्गुरो! भगवन्! आपको नमस्कार है।'

गजेन्द्रका अत्यन्त पीडित देखकर सर्वशक्तिमान् श्रीहरि गरुडकी पीठसे कूद पडे आर गजेन्द्रके साथ ही ग्राहको भी सरावरसे बाहर खींच लाये। इसके उपरान्त श्रीहरिने तुरत अपने तीक्ष्ण चक्रसे ग्राहका मुँह फाडकर गजेन्द्रको मुक्त कर दिया।

ब्रह्मादि दवगण श्रीहरिकी प्रशसा करते हुए उनके ऊपर स्वर्गीय सुमनाकी वृष्टि करने लगे। दुन्दुभियाँ बज उठीं। गन्धर्व नृत्य और गान करने लगे। सिद्ध, ऋषि-महर्षि परब्रह्म श्रीहरिका गुणानुवाद गाने लगे।

ग्राह दिव्यशरीरधारी हो गया। उसने श्रीभगवान्के चरणाम सिर रखकर प्रणाम किया और फिर वह भगवान्के गुणाकी प्रशसा करने लगा। भगवान् श्रीहरिक मङ्गलमय वरद हस्तके स्पर्शस पापमुक्त होकर शप्त हूहू गन्धर्वने प्रभुकी परिक्रमा की और उनके त्रैलोक्यवन्दित चरणकमलाम प्रणामकर वह अपने लोकको चला गया। भगवान् श्रीहरिने गजेन्द्रका उद्धार कर उसे अपना पार्षद बना लिया। गन्धर्व, सिद्ध और देवगण उनका इस लीलाका गान करने लगे। गजेन्द्रकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वात्मा एव सर्वभूतस्वरूप श्रीहरिने सवलागाक सामने कहा—

ये मा स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये।
तेषा प्राणात्यये चाह ददामि विमला मतिम्॥

(श्रीमद्भा० ८।४।२५)

'प्यार गजेन्द्र! जो लोग ब्राह्ममुहूर्तम जगकर तुम्हारी की हुई स्तुतिसे* मेरा स्तवन करेगे मृत्युके समय उन्हे मे निर्मल बुद्धिका दान करूँगा।'

श्रीहरिने पार्षदरूप गजेन्द्रको साथ लिया और गरुडारूढ हा अपने दिव्यधामके लिये प्रस्थित हो गये।

---

* श्रीमद्भागवतके आठवे स्कन्धका तृतीय अध्याय 'गजेन्द्रस्तुति' है।

(१८) भगवान् परशुराम

महर्षि जमदग्निकी पतिपरायणा पत्नी (महाराज रेणुकी पुत्री) रेणुकाके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए—रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और पाँचवें सबसे छोटे परशुराम। इनमेंसे परशुराम निखिलसृष्टिनायक श्रीविष्णुके आवेशावतार हैं। प्रकट होते ही ये पार्वतीवल्लभ भगवान् शंकरकी आराधना करनेके लिये कैलासपर्वतपर चले गये। देवाधिदेव महादेवने संतुष्ट होकर इन्हें वर माँगनेके लिये कहा। परशुरामजी बोले—'प्रभो! आप कृपापूर्वक मुझे कभी कुण्ठित न होनेवाला अमोघ अस्त्र प्रदान कीजिये।'

भगवान् शंकरने इन्हें अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसहित दिव्य परशु प्रदान किया। वह दिव्य परशु भगवान् शंकरके उसी महातेजसे निर्मित हुआ था, जिससे श्रीविष्णुका सुदर्शन चक्र और देवराज इन्द्रका वज्र बना था। अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाला अमोघ परशु धारण करनेके कारण भगवान् 'राम' का परशुसहित नाम 'परशुराम' पड़ा।

परशुरामजी बाल्यकालसे ही अत्यन्त वीर पराक्रमी अस्त्र-शस्त्र-विद्याके प्रेमी, त्यागी, तपस्वी एवं सुन्दर थे। धनुर्वेदकी विधिवत् शिक्षा इन्होंने अपने पितासे ही प्राप्त की। ये 'रुरु' नामक मृगका चर्म धारण करते। कंधेपर धनुबाण एवं हाथमें दिव्य परशु लेकर चलते समय ये वीररसके सजीव विग्रह प्रतीत होते थे। पिताके चरणोंमें इनकी अनन्य भक्ति थी।

एक बारकी बात है, संध्याका समय था। माता रेणुका अपने आश्रमसे जल लेने यमुना-तटपर गयीं। संयोगवश उसी समय गन्धर्वराज चित्ररथ अप्सराओंसहित वहाँ आकर जलमें क्रीडा करने लगा। माता रेणुकाका भाव दूषित हो गया और यह बात महर्षि जमदग्निको विदित हो गयी। माता रेणुका जल लेकर लौटीं तो क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने पुत्रोंसे कहा—'इस पापिनीका वध कर दो।' किंतु वहाँ उपस्थित चारों पुत्र मातृस्नेहवश चुपचाप खड़े रहे।

'बेटा! तुम अपनी दुष्टा माता और इन चारों भाइयोंका सिर उतार लो।' परशुरामजी वनसे लौटे ही थे कि उन्हें क्रुद्ध पिताने आज्ञा दी। अपने पिताके तपोबलसे परिचित परशुरामजीने तुरंत परशु उठाया और मातासहित अपने चारों भाइयोंका मस्तक काटकर पृथक् कर दिया।

'धर्मज्ञ राम! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।' क्रोध शान्त होनेपर महर्षि जमदग्निने परशुरामजीसे कहा। 'तुम इच्छित वर माँग लो।'

'पिताजी! मेरी माता जीवित हो जायँ और उन्हें मेरेद्वारा मारे जानेकी स्मृति न रहे।' परशुरामजीने हाथ जोड़कर पितासे निवेदन किया—'और वह मानस-पाप उन्हें स्पर्श न करे। मेरे चारों भाई जीवित हो जायँ। युद्धमें मेरा कोई सामना न कर सके और मैं दीर्घायु प्राप्त करूँ।'

'यही होगा।' मुस्कराकर जमदग्निजीने कहा—'इन सबके सिर इनके धड़ोंसे जोड़ दो।'

परशुरामजीने पिताकी आज्ञाका पालन किया और उनकी माता तथा अग्रज अनायास ही उठ बैठे। उन्होंने समझा हम गाढ निद्रामें आ गये थे।

एक बार हैहयवंशीय महाराज कृतवीर्यके परम पराक्रमी पुत्र माहिष्मतीपुरी (आधुनिक महेश्वर)-के नरेश वीरवर सहस्रार्जुन महर्षि जमदग्निके आश्रममें उपस्थित हुए। महर्षिने कामधेनुके द्वारा ससैन्य उनका अद्भुत स्वागत किया। शूरशिरोमणि सहस्रार्जुनने महर्षिसे कामधेनु दे देनेके लिये कहा, पर महर्षि जमदग्निने कहा—'राजन्!

यह कामधेनु तो मेरे समस्त धर्म-कर्मोंकी जननी है। यज्ञिय सामग्री, देवता ऋषि, पितर और अतिथियोंका सत्कार हो नहीं इसी गौके द्वारा मेरे सारे इहलौकिक तथा पारलौकिक कर्म सम्पन्न होते हैं। मैं इसे देनेका विचार भी कैसे कर सकता हूँ?'

शक्तिसम्पन्न नरेश सहस्रार्जुनने बलपूर्वक गाय छीन ली और सेनासहित अपनी माहिष्मतीपुरीके लिये चलते बने। सवत्सा कामधेनु पीछे ऋषिकी ओर देख-देखकर रँभाती जा रही थी। दुष्ट क्षत्रिय उसे दण्ड-प्रहार कर हाँकते ले जा रहे थे।

परम वीतराग, क्षमामूर्ति, ब्राह्मण-ऋषिके नेत्रोंमें आँसू भर आये, पर वे कुछ बोल न सके। चुपचाप श्रीभगवान्के ध्यानमें बैठ गये।

'मैं अपने पिताका मलिन और उदास मुँह नहीं देख सकता, माँ!' समिधा लिये वनसे लौटकर मूर्तिमान् तप और तेज परशुरामने अपनी माताके मुखसे गो-हरणका संवाद सुना तो क्रोधसे काँप उठे। उन्होंने अपनी मातासे कहा—'माता! मैं उस कृतघ्न और दुष्ट नरेशको यथोचित दण्ड दे, कामधेनुको लेकर लौटनेपर ही पूज्य पिताके चरणोंमें प्रणाम निवेदन करूँगा।'

माता रेणुका कुछ बोल भी न सकीं कि उग्रताकी प्रचण्ड मूर्ति जामदग्न्य अत्यन्त शीघ्रतासे अपना धनुष, अक्षय तूणीर और प्रचण्ड परशु ले सहस्रार्जुनके पीछे दौड़े। तपस्यासे दीप्त, गौरवर्ण, बिखरी काली जटाएँ, कटिमें रुरु मृगका चर्म, स्कन्धपर धनुष, पृष्ठदेशपर अक्षय तूणीर दाहिने हाथमें विद्युत्-तुल्य चमचमाता दिव्य अमोघ परशु, हृदयमें क्रोधकी ज्वाला लिये और लाल-लाल नेत्रोंसे अङ्गार बरसाते वायुवेगसे दौड़ते परशुराम—जैसे महाकालकी प्रचण्ड मूर्ति सहस्रार्जुनको निगल जानेके लिये दौड़ रही हो।

उद्धत कार्तवीर्य अपनी माहिष्मतीपुरीमें प्रविष्ट भी नहीं हो पाया था कि पितृभक्त, परम तेजस्वी ऋषिकुमार परशुरामकी गर्जना सुनकर सहम गया। अपने पीछे प्रज्वलित अग्नितुल्य परशुरामको युद्धके लिये प्रस्तुत देखकर उसने अत्यन्त उपेक्षा-भावसे अपने सैनिकोंसे कहा—'ब्राह्मण कामधेनु लेने आया है। इसे मार डालो।'

पर उसके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उसके लक्षाधिक सशस्त्र वीर सैनिक कुछ ही क्षणोंमें परशुरामके प्रचण्ड परशुकी भेंट हो गये। कार्तवीर्यने एक साथ पाँच सौ धनुषोंसे पाँच सौ तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा परशुरामपर की, पर उनके एक ही धनुषके एक साथ छूटे हुए सहस्र शरोंकी वर्षासे कार्तवीर्यके शर बीचमें ही नष्ट हो गये और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे रक्तकी धाराएँ निकलने लगीं। परम धीर सहस्रार्जुन घबरा गया। धनुर्बाणसे सफलताकी आशा न देख वह परशुरामको पर्वतके नीचे दबाकर मार डालनेके लिये पर्वत उखाड़ना ही चाहता था कि मूषकपर बिडालकी भाँति सहस्रार्जुनपर परशुराम चढ़ बैठे। उन्होंने उसकी सहस्र भुजाओंको काटकर पृथ्वीपर फेंक दिया और फिर उसका सिर धड़से अलग करके वे क्रोधसे प्रज्वलित विग्रहकी भाँति चतुर्दिक् शत्रुओंकी प्रतीक्षा करने लगे। सहस्रार्जुनके दस हजार पुत्र युद्धभूमिसे भाग गये थे।

परशुरामजीने एक ओर अत्यन्त भीत और चकित कामधेनुको देखा तो जैसे महापाषाण द्रवित हो गया हो परशुरामजीके नेत्रोंसे जलकी दो बूँदें लुढ़क पड़ीं। उन्होंने गायके गलेमें अपनी लम्बी बाँहें डाल दीं तथा उसे सहलाकर प्यारपूर्वक ले चले।

'सार्वभौम नृपतिका वध ब्रह्महत्याके तुल्य पातक है।' सवत्सा कामधेनुसहित रामके श्रद्धापूर्वक प्रणाम करनेपर क्षमामय महर्षि जमदग्नि अशान्त चित्तसे अपने पुत्रसे कहा—'ब्राह्मणका सर्वोपरि धर्म क्षमा है। तुम्हारे लिये प्रायश्चित्त आवश्यक है।'

'पिताजी! प्रेमपूर्वक स्वागत करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणकी गाय बलपूर्वक छीन लेनेवाले नराधम और परम पातकीका वध पाप नहीं।' परशुरामजीने सिर झुकाकर शान्तिपूर्वक उत्तर दिया। 'पर आपके आदेशानुसार मैं प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा। आपकी प्रत्येक आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।'

अपने पिता महर्षि जमदग्निके आदेशानुसार निस्स्पृह तपस्वी परशुरामजी अपने हृदयमें भुवनमोहन परम प्रभुकी मङ्गलमयी छविका ध्यान एवं मुखसे उनके सुमधुर नामोंका धीरे-धीरे कीर्तन करते हुए तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। परशुरामजी एक वर्षमें पिताके बताये सम्पूर्ण

तीर्थोका सविधि पर्यटनकर अपने आश्रममे लाटे, तब उन्होने माता-पिताके चरणाम अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उन्हाने भी अपने निष्पाप तपस्वी पुत्रको अत्यन्त प्रसन्न हाकर शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

वीर महस्रार्जुनके कायर पुत्र परशुरामजीके सम्मुख तो नहीं ठहर सके, प्राणभयसे भाग गये, किंतु वे अपने पिताके वधका बदला लेनेके लिये सदा सचिन्त रहते थे। एक बार जब उन्ह विदित हुआ कि अपने चारा भाइयासहित राम वनमे दूर चले गये हैं, तब वे नर-राक्षस जमदग्निके आश्रमपर पहुँचे और चोरीसे ध्यानरत महर्षिका मस्तक उतार उसे अपने साथ ले, आश्रमको नष्ट करते हुए भाग गये।

'हा राम! हा राम!!'—माताका करुण-क्रन्दन सुनकर परशुराम भागते हुए आश्रमपर आये। उन्हाने सहस्रार्जुनके नीच पुत्राके द्वारा अपने परमपूज्य पिताकी हत्या देखी तो वे अपना अक्षय तूणीरसहित धनुष और तीक्ष्ण परशु लेकर दौडे। माहिष्मतीपुरीमे पहुँचते ही वे सहस्रार्जुनके सहस्रा पुत्राको अपने अमोघ परशुसे काटने लगे। साक्षात् कालकी भाँति वे दुष्ट क्षत्रियोको काट रह थे। माहिष्मतीपुरी जैसे रक्तम डूब गयी। सहस्रार्जुनके पाँच पुत्र—जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु ओर ऊर्जित किसी प्रकार लुक-छिपकर प्राण बचाकर भाग जानेमे समर्थ हुए, पर अत्युग्र परशुरामजी क्रूरकर्मी क्षत्रियाका वध करते ही रहे। वे नगर-नगर और गाँव-गाँवम जाकर पृथ्वीके भारभूत कुकर्मी और पातकी क्षत्रियोका सहार करने लगे। उन्होने पृथ्वीको क्षत्रिय-शून्य समझकर अपने पिताके सिरको धडसे जोडकर उनका विधिवत् दाह-सस्कार किया। महर्षि जमदग्निको स्मृतिरूप सकल्पमय शरीर तथा सप्तर्षियाम सातवाँ स्थान मिला।

भगवान् परशुरामने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियासे हीन कर दिया। वे क्षत्रियोको ढूँढ-ढूँढकर एकत्र करते और कुरुक्षेत्रमे ले जाकर उनका वध कर डालते। इस प्रकार परशुरामजीने क्षत्रियाके रक्तस पाँच सरोवर भर दिय। वह स्थान 'समन्तपञ्चक' नामसे प्रसिद्ध है।

उन सरावराके रक्तरूपी जलस भगवान् परशुरामने अपन पितराका तर्पण किया। परशुरामजीक ऋचीक आदि पितृगण प्रसन्न होकर उनके समीप आये और उन्ह इच्छित वर माँगनेक लिये कहा। अपन पितराक चरणामे प्रणाम कर तपस्वी परशुरामजीने उनस प्रार्थना की—

यदि मे पितर प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादित मया॥
अतश्च पापान्मुच्येऽहमेष मे प्रार्थितो वर।
ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुता॥

(महा०आदि० २।८ ९)

'यदि आप सब हमारे पितर मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे अपना अनुग्रह-पात्र समझते हैं तो मैंने जो क्रोधवश क्षत्रियवशका विध्वस किया है, इस कुकर्मके पापसे मैं मुक्त हो जाऊँ और ये मेरे बनाये हुए सरोवर पृथ्वाम प्रसिद्ध तीर्थ हो जायँ। यही वर मैं आपलोगासे चाहता हूँ।'

'यही होगा।' पितराने परशुरामजीको वर देते हुए कहा—'पर अब शेष क्षत्रिय-वशका सहार मत करना, उन्ह क्षमा कर देना।'

अपने पूज्य पितरोके आदेशसे जमदग्निनन्दन शान्त हो गये। उस समय सम्पूर्ण वसुन्धरा परशुरामजीके अधीन थी। उनका विरोध करनेका साहस किसीमे नहीं था, किंतु उन्ह राज्यसुख एव वैभवकी कोई कामना नहीं थी। फलत उन्होने सारी पृथ्वी कश्यपजीको दान कर दी।

जब श्रीभगवान्‌के आवेशावतार परशुरामजीने सम्पूर्ण पृथिवीको तृणतुल्य समझकर दान कर दिया, तब महर्षि कश्यपने उनसे कहा—'तुम मेरी पृथ्वी छोड दो और अपने लिये समुद्रसे स्थान माँग लो।'

परशुरामजी तुरत वहाँसे महेन्द्रपर्वतपर चले गये। उस समय महर्षि भरद्वाजके यशस्वी पुत्र द्रोण धनुर्वेद, दिव्यास्त्रा एव नीतिशास्त्रके ज्ञानके लिये भगवान् परशुरामके पास महेन्द्रपर्वतपर पहुँचे।

'मैं आङ्गिरस-कुलात्पन्न महर्षि भरद्वाजका अयोनिज पुत्र 'द्राण' हूँ।' अपना परिचय देते हुए द्रोणने परशुरामजीके चरणाम प्रणाम किया आर कहा—'मैं धनकी इच्छासे आपके पास आया हूँ, आप मुझपर दया करे।'

परमविरक्त परशुरामजीने द्राणसे कहा—

शरीरमात्रमेवाद्य मया समवशेषितम्।
अस्त्राणि वा शरीर वा ब्रह्मन्नेकतम वृणु॥

(महा० आदि० १६५।१०)

'ब्रह्मन्! अव तो मैंने केवल अपने शरीरको ही वचा रखा है (शरीरके सिवा सब कुछ दान कर दिया)। अत अब तुम मेरे अस्त्रा अथवा यह शरीर—दोनामस किसी एकको माँग लो।'

'प्रभो! आप मुझे सम्पूर्ण अस्त्र, उनक प्रयोग तथा उपसहारकी विधि प्रदान कर।' द्राणने निवेदन किया।

तव रेणुकानन्दनने अपने सब अस्त्र द्रोणको दे दिये। आचार्य द्राण भृगुनन्दन परशुरामजीस दुर्लभ ब्रह्मास्त्रका भा ज्ञान प्राप्तकर धरतीपर अत्यधिक शक्तिशाली हो गये।

राजा युधिष्ठिरके राज्याभिषकके समय महातपस्वी व्यास, देवल, असित तथा अन्य महर्षियाके साथ जामदग्न्यने भी उनका अभिषक किया था।

भाष्मपितामहन भी इनसे अस्त्र-विद्या सीखी थी। उन्हाने अपने मुखारविन्दस कहा—'एक वार मुझसे मेरे गुरु परम तेजस्वी परशुरामजीका युद्ध हुआ। परशुरामजीके पास रथ नहीं था। तव मैंने कहा—'ब्रह्मन्! मैं रथपर बैठा हूँ और आप धरतीपर खड हैं। इस कारण मैं आपसे युद्ध नहीं करूँगा। मुझसे युद्ध करनेके लिये आप कवच पहनकर रथारूढ हो जायँ।'

'तव युद्धभूमिमे मुस्कराते हुए परशुरामजीन मुझसे कहा—

रथा मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदा सदश्ववत्॥
सूतश्च मातरिश्वा वै कवच वेदमातर।
सुसवीतो रणे ताभिर्योत्स्यऽह कुरुनन्दन॥

(महा० उद्योग० १७९। ३-४)

'कुरुनन्दन भीष्म! मरे लिये पृथ्वी ही रथ ह, चारा वेद ही उत्तम अश्वाके समान मरे वाहन हैं, वायुदेव ही सारथि हैं और वदमाताएँ (गायत्री, सावित्री और सरस्वती) ही कवच हैं। इन सवसे आवृत एव सुरक्षित हाकर मैं रणक्षेत्रम युद्ध करूँगा।'

'इतना कहकर पराक्रमी परशुरामजीने मुझे अपने तीक्ष्ण शरास घर लिया। उस समय मने दखा—परशुरामजी एक नगरतुल्य विस्तृत, अद्भुत एव दिव्य विमानम बठे हैं। उसम दिव्य अश्व जुते थे। वह स्वर्णनिर्मित रथ प्रत्येक रीतिसे सजा हुआ था। उसम सम्पूर्ण श्रष्ठ आयुध रखे हुए थे। परशुरामजीने सूर्य-चन्द्र-खचित कवच धारण कर रखा था और उनके प्रिय सखा वदवत्ता अकृतव्रण उनक सारथिका कार्य कर रह थे।'

परम पराक्रमी, परम तजस्वी, परम तपस्वी, परम पितृभक्त भगवान् परशुरामजीके साथ मेरा भयानक सग्राम हुआ। सुहृदाके समझानेसे युद्ध बद हुआ तो मैंने परमर्षि परशुरामजीक समीप जाकर उनके चरणाम प्रणाम किया। परशुरामजीने मुस्कराकर मुझसे कहा—

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् क्षत्रिय पृथिवीचर।
गम्यता भीष्म युद्धेऽस्मिस्तोषिताऽह भृश त्वया॥

(महा० उद्योग० १८५। ३६)

'भीष्म! इस जगत्‌म भूतलपर विचरनेवाला कोई भी क्षत्रिय तुम्हार समान नहीं है। जाओ, इस युद्धमे तुमने मुझ बहुत सतुष्ट किया है।'

श्रीपरशुरामजी कल्पान्त-स्थायी हैं। किसी-किसी भाग्यशाली पुण्यात्माको उनके दर्शन भी हो जाते हैं।

(१९) भगवान् व्यास

लोकोत्तर-शक्तिसम्पन्न भगवान् व्यास भगवान् नारायणके कलावतार थे। वे महाज्ञानी महर्षि पराशरके पुत्ररूपम प्रकट हुए थे। उनका जन्म कैवर्तराजकी पोष्यपुत्री महाभागा सत्यवताके गर्भस यमुनाजीके द्वीपम हुआ था। इस कारण उन्ह 'पाराशर्य' ओर 'द्वैपायन' भी कहते हे। उनका वर्ण घननील था अतएव वे 'कृष्णद्वैपायन' नामसे प्रख्यात हैं। वदरीवनम रहनेके कारण वे 'बादरायण' भी कहे जाते हैं। उन्ह अङ्गा और इतिहासासहित सम्पूर्ण वेद और परमात्मतत्त्वका ज्ञान स्वत प्राप्त हो गया, जिसे दूसर व्रतोपवासनिरत यज्ञ, तप और वदाध्ययनसे भी प्राप्त नहीं कर पाते।

'आवश्यकता पडनेपर तुम जव भी मुझे स्मरण करागी' धरतीपर पदार्पण करते ही अचिन्त्य-शक्तिशाली व्यासने अपनी जननीसे कहा—'मैं अवश्य तुम्हारा दर्शन करूँगा।' आर वे माताकी आज्ञासे तपश्चरणम लग गये।

प्रारम्भम वद एक ही था। ऋषिवर अङ्गिरान उसमसे

प्राणभयसे भागते एक क्षुद्र कीटको देखा। कीटसे उन्होंने वार्तालाप किया तथा अपने तपोबलसे उसे अनेक योनियोंसे निकालकर शीघ्र ही मनुष्य-योनि प्राप्त करा दी। फिर क्रमशः क्षत्रिय-कुल एवं ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर उस भूतपूर्व कीटने दयामय व्यासजीके अनुग्रहसे अत्यन्त दुर्लभ सनातन 'ब्रह्मपद' प्राप्त कर लिया।

महर्षि व्यासकी शक्ति अलौकिक थी। एक बार जब वे वनमें धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलने गये, तब सपरिवार युधिष्ठिर भी वहीं उपस्थित थे। धृतराष्ट्र और गान्धारी पुत्रशोकसे दुःखी थे। धृतराष्ट्रने अपने कुटुम्बियों और स्वजनोंको देखनेकी इच्छा व्यक्त की। रात्रिमें महर्षि व्यासके आदेशानुसार धृतराष्ट्र आदि गङ्गा-तटपर पहुँचे। व्यासजीने गङ्गाजलमें प्रवेश किया और दिवंगत योद्धाओंको पुकारा। फिर तो जलमें युद्धकालका-सा कोलाहल सुनायी देने लगा। साथ ही पाण्डव और कौरव—दोनों पक्षोंके योद्धा और राजकुमार भीष्म और द्रोणके पीछे निकल आये। सबकी वेष-भूषा, शस्त्रसज्जा, वाहन और ध्वजाएँ पूर्ववत् थीं। सभी ईर्ष्या-द्वेषशून्य दिव्य-देहधारी दीख रहे थे। वे रात्रिमें अपने स्नेही सम्बन्धियोंसे मिले और सूर्योदयके पूर्व भगवती भागीरथीमें प्रवेशकर अपने-अपने लोकोंको चले गये।

'जो स्त्रियाँ पतिलोक जाना चाहें, इस समय गङ्गाजीमें डुबकी लगा लें।' व्यासजीके वचन सुन जिन वीरगतिप्राप्त योद्धाओंकी पत्नियोंने गङ्गाजीमें प्रवेश किया, वे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर विमानमें बैठीं और सबके देखते-देखते अभीष्ट लोकके लिये प्रयाण कर गयीं।

नागयज्ञकी समाप्तिपर जब यह कथा परीक्षित्-पुत्र जनमेजयने महर्षि वैशम्पायनसे सुनी, तब उन्हें इस अद्भुत घटनापर सहसा विश्वास न हुआ और उन्होंने इसपर शङ्का की। वैशम्पायनने उसका बड़ा ही युक्तिपूर्ण आध्यात्मिक समाधान किया। (महा०, आश्रमवासिक० ३४)। पर वे इसपर भी न माने और कहा कि 'भगवान् व्यास यदि मेरे पिताजीको भी उसी वयोरूपमें ला दें तो मैं विश्वास कर सकता हूँ।' भगवान् व्यास वहीं उपस्थित थे और उन्होंने जनमेजयपर पूर्ण कृपा की। फलतः शृङ्गी, शमीक एवं मन्त्री आदिके साथ राजा परीक्षित् वहाँ उसी रूप-वयमें प्रकट हो गये। अवभृथ (यज्ञान्त)-स्नानमें वे सब सम्मिलित भी हुए और फिर वहीं अन्तर्धान हो गये।

महर्षि व्यास मूर्तिमान् धर्म थे। आद्यशंकराचार्य तथा अन्य कितने ही महापुरुषोंने उनका दर्शन-लाभ किया है। अब भी श्रद्धा-भक्तिसम्पन्न अधिकारी महात्मा उनके दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

दया-धर्म-ज्ञान एवं तपकी परमोज्ज्वल मूर्ति उन महामहिम व्यासजीके चरणकमलोंमें बार-बार प्रणाम।

~~~o~~~

(२०) भगवान् हंस

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥

(श्रीमद्भा० ११।१४।२७)

'जो पुरुष निरन्तर विषय-चिन्तन किया करता है, उसका चित्त विषयोंमें फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है, उसका चित्त मुझमें तल्लीन हो जाता है।'—भगवान् श्रीकृष्ण।

एक बारकी बात है। लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्मा अपनी दिव्य सभामें बैठे थे कि उनके मानस पुत्र सनकादि चारों कुमार दिगम्बर-वेषमें वहाँ पहुँच गये और उन्होंने अपने पिता श्रीब्रह्माजीके चरणकमलोंमें प्रणाम किया। फिर ब्रह्माजीके आदेशानुसार वे चारों कुमार पृथक्-पृथक् आसनोंपर बैठ गये। सभाके अन्य सदस्य तेजस्वी सनकादि कुमारोंके सम्मानमें सर्वथा मौन एवं शान्त हो गये थे।

'परम पूज्य श्रीपिताजी! चित्त गुणोंमें अर्थात् विषयोंमें प्रविष्ट रहता है।' कुमारोंने अत्यन्त विनयपूर्वक जिज्ञासा प्रकट की—'और गुण भी चित्तकी एक-एक वृत्तिमें समाये रहते हैं। इनका परस्पर आकर्षण है, स्थायी सम्बन्ध है। फिर मोक्ष चाहनेवाला अपना चित्त विषयोंसे कैसे हटा सकता है? उसका चित्त गुणहीन अर्थात् निर्विषय कैसे हो सकता है? क्योंकि यदि मनुष्य-जीवन प्राप्तकर मोक्षकी ही सिद्धि नहीं की गयी तो सम्पूर्ण जीवन ही व्यर्थ हो जायगा।'
~~~

दवशिरोमणि, स्वयम्भू एव प्राणियाक जन्मदाता हानपर भी विधाता प्रश्नम सदेहका बाज कहाँ है, इसका पता नहीं लगा सके, प्रश्नका मूल कारण नहीं समझ सक। वे आदिपुरुष परब्रह्म परमात्माका ध्यान करन लग।

सवक सम्मुख सहसा अत्यन्त सुन्दर, परमाज्ज्वल एव परम तजस्वी महाहसके रूपम श्रीभगवान् प्रकट हो गये। उक्त हसके अलौकिक तजस प्रभावित हाकर ब्रह्मा सनकादि तथा अन्य सभी सभासद् उठकर खडे हो गये। सबने हसरूपी श्रीभगवान्‌के चरणाम श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। इसके अनन्तर पाद्य-अर्घ्यादिसे सविधि पूजा कर उन्ह पवित्र और सुन्दर आसनपर बैठाया।

'आप कौन हें ?' उक्त महामहिम परमतजस्वी हसका परिचय प्राप्त करनके लिय कुमाराने उनसे पूछा।

'मैं क्या उत्तर दूँ ?' हसने विचित्र उत्तर दिया— 'इसका निर्णय ता आपलाग ही कर सकत हें। यदि इस पाञ्चभौतिक शरीरको आप 'आप' कहते हैं ता शरीरका दृष्टिस पृथिवी वायु, जल, तज आर आकाशसे निर्मित, रस, रक्त, मदा, मज्जा, अस्थि आर शुक्रवाला शरीर सबका है। अतएव देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी शरार पञ्चभूतात्मक होनक कारण अभिन्न ही हें और आत्माके सम्बन्धम आपलागाका यह प्रश्न ही नहीं बनता। वह ता सदा सवत्र समानरूपसे व्याप्त है ही।'

कुछ रुककर मुस्करात हुए भगवान् हसन कहा— 'अब आपलाग ही सोच आर निर्णय कर कि चित्तम गुण हें या गुणाम चित्त समाया हुआ है। स्वप्नका द्रष्टा, दखनेकी क्रिया और दृश्य—सब क्या पृथक् हाते हैं ?' भगवान् हसने सनकादिसे कहा।

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियै ।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥
गुणेष्वाविशते चेता गुणाश्चेतसि च प्रजा ।
जीवस्य देह उभय गुणाश्चेतो मदात्मन ॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।२४-२५)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियासे भी जा कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आपलोग तत्त्वविचारके द्वारा सरलतासे समझ लीजिये।'

'यह चित्त चिन्तन करते-करते विषयाकार हो जाता है और विषय चित्तम प्रविष्ट हो जाते हैं, यह बात सत्य है तथापि विषय आर चित्त—ये दोना ही मरे स्वरूपभूत जीवक दह हैं—उपाधि हें। अर्थात् आत्माका चित्त और विषयके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है।'

परमप्रभु हसके उत्तरसे सनकादि मुनियाका सदेह निवारण हो गया। उन्हाने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् हसकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर ब्रह्माजीक सम्मुख ही महाहसरूपधारी श्रीभगवान् अदृश्य होकर अपने पवित्र धामम चले गय।

~~o~~

(२१) भगवान् श्रीराम

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवन पद्मपद्भ्या प्रियाया
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्या मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्या प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतु खलदवदहन कोसलेन्द्रोऽवतान्न ॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।४)

अयोध्याका सिहासन शून्य होने जा रहा था। रघुकी सतति-परम्पराका इस प्रकार कहीं उच्छेद हो सकता है। महाराज दशरथने तीन विवाह किये, अवस्था अधिक हो गयी, किंतु उस चक्रवर्ती साम्राज्यका उत्तराधिकारी किसी रानीकी गादम न आया। रघुवशके परम रक्षक तो महर्षि वसिष्ठ हैं। महाराजने अपने उन कुलगुरुकी शरण ली। गुरुदेवके

आदेशसे शृंगी ऋषि आमन्त्रित हुए। पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान हुआ। साक्षात् अग्निदेवने प्रकट होकर चरु प्रदान किया। उस दिव्य चरको ग्रहणकर रानियाँ गर्भवती हुईं।

देवता लङ्काधिप पुलस्त्यके पौत्र राक्षसराज रावणसे सन्त्रस्त हो गये थे। अपने ऐश्वर्यमें मत्त वह कुबेरका छोटा भाई वेदज्ञ होनेपर भी राक्षस हो गया। दानवेन्द्र मयने अपनी पुत्री मन्दोदरीका उससे विवाह कर दिया। श्वशुरकुलसे ही उसकी प्रकृति एक हो गयी। ऋषियों, ब्राह्मणों, देवताओं तथा धर्मका वह शत्रु हो गया। यज्ञ बलपूर्वक रोक दिये गये, पूजन-स्थल ध्वस्त किये गये। तपोवन राक्षसोंने जला दिये। ऋषि-मुनि राक्षसोंके भक्ष्य हो गये। देवराज इन्द्र पराजित हो चुके थे। लोकपालगण रावणकी आज्ञा माननेपर विवश थे। अन्ततः धरा यह अधर्म-भार कहाँतक सहे! पृथ्वीकी आर्त पुकार, देवताओंकी प्रार्थना, स्रष्टाकी चिन्ता—सबने उन परात्पर प्रभुको आकृष्ट किया। अयोध्यानरेश चक्रवर्ती महाराज दशरथकी बड़ी रानी कौसल्याकी गोदमें चैत्रकी रामनवमीके मध्याह्नमें वे साकेताधीश शिशु बनकर आ गये। उनके अंश भी आये—माता सुमित्राकी गोद दो स्वर्ण-गौर कुमारोंसे भूषित हुई और कैकयीजीने भावमूर्ति नवजलधर वर्ण, रूपराशि भरतको प्राप्त किया।

चारों कुमार बड़े हुए। कुलगुरुसे शास्त्र एवं शस्त्रकी शिक्षा मिली। सहसा एक दिन महर्षि विश्वामित्र आ पहुँचे। उनके आश्रममें प्रत्येक पर्वपर राक्षस उपद्रव करते थे। महर्षिको राम-लक्ष्मणकी आवश्यकता थी। केवल दो कुमार—अवधकी चतुरङ्गिणी सेनाको तपोवनमें ले जाना इष्ट नहीं था। चक्रवर्ती महाराजकी चाहे जितनी अनिच्छा हो सृष्टि-समर्थ विश्वामित्रजीका आग्रह कैसे टले? श्रीरामने भाईके साथ प्रस्थान किया। राक्षसी ताड़का मार्गमें ही एक बाणकी भेंट हो गयी। मुनिवरका यज्ञ रक्षित हुआ। सदल सुबाहु मारा जा चुका था और उसका भाई मारीच रामके 'फल'-हीन बाणके आघातसे सौ योजन दूर समुद्र-तटपर जा गिरा था।

महर्षिको तपोवनमें ही विदेहराज जनकका आमन्त्रण मिला। उनकी अयोनिजा कन्या सीताका स्वयंवर हो रहा था। महर्षिके साथ दोनों अवध-कुमार मिथिलाको धन्य करने पधारे। गौतमाश्रममें पाषाणभूता अहल्या श्रीरामकी चरणरजका स्पर्श पाकर पतिके शापसे मुक्त हो गयी और अपने पति-धामको चली गयी। 'जनकपुत्री भूमिसुता उसे वरण करेगी, जो शंकरके महाधनुष पिनाकको तोड़ेगा।' मिथिलानरेशकी यह प्रतिज्ञा श्रीरामने पूर्ण की। श्रीपरशुरामजी अपने आराध्यदेवके धनुर्भंगसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए, परंतु श्रीरामके शील, शक्ति एवं तेजसे गर्वरहित होकर लौट गये। अयोध्यानरेशको आमन्त्रण मिला। उनके चारों कुमार जनकपुरमें विवाहित हुए।

महाराज चाहते हैं, प्रजा चाहती है, गुरुदेव चाहते हैं कि श्रीरामका राज्याभिषेक हो, परंतु राम राज्य करें तो धराका भार कौन दूर करे? देवताओंने प्रेरणा की। माता कैकेयीको मोह हुआ। 'भरत-शत्रुघ्न ननिहालमें हैं और चुपचाप रामको राज्य दिया जा रहा है!' संदेह स्वयं पापका मूल है। 'भरतको राज्य और रामको चौदह वर्षका वनवास!' छोटी रानीने महाराजको वचनबद्ध करके वरदान माँगा। पिताके सत्यके रक्षार्थ रघुवंशविभूषण वल्कलधारी होकर प्रातः वनको विदा हुए। लक्ष्मण और श्रीजानकीजी उनसे पृथक् कैसे रह सकते हैं!

श्रीराम भाई एवं पत्नीके साथ वन गये। महाराजने प्रिय पुत्रके वियोगमें शरीर छोड़ दिया। भरत—उनकी दशा, दुःख, वेदना कोन-कैसे कहे? गुरुका आदेश ननिहालमें चरने सुनाया था। अयोध्या आकर पिताकी अन्त्येष्टि करनी पड़ी। समस्त समाज लेकर श्रीरामको लौटाने चित्रकूट गये, पर वहाँसे भी चरण-पादुका लेकर लौटना पड़ा। भरत बड़े भाईकी चरण-पादुका लेकर लौटे। अयोध्याका चक्रवर्ती सिंहासन उन पादुकाओंसे भूषित हुआ। रामहीन अयोध्यामें भरत रहेंगे? उन्होंने नन्दिग्राममें *'महि खनि कुस साथरी सँवारी।'* और 'गोमूत्र-यावक' (गोबरमें निकले जौंको गोमूत्रमें पकाकर) उसके आहारपर तप करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत करना स्थिर किया।

श्रीराम चित्रकूटसे आगे चले। अयोध्यासे ही महर्षियोंके दर्शनकी सुलालसा थी। प्रयागमें भरद्वाजजी, आगे महामुनि वाल्मीकिके दर्शन हुए ही थे। चित्रकूटके तो महर्षि अत्रि ही कुलपति थे। आगे शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्यादिके दर्शन करके दण्डकारण्यको पवित्र किया उन्होंने। असुर विराध चित्रकूटसे निकलते ही मिला और मारा गया। पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनी। कुछ वर्ष वहाँ शान्तिसे व्यतीत हुए। गृध्रराज जटायुसे परिचय हुआ।

उस दिन रावणकी बहन कुलटा शूर्पणखा कहींसे घूमती-घामती आ पहुँची। मर्यादापुरुषोत्तम वासना एवं दुष्टोंका निग्रह तो करते ही। नाक-कान काटनेपर उसने

खर-दूषणसे पुकार की। वे असुर चौदह सहस्र सेनाके साथ आये और अकेले श्रीराघवेन्द्रके शरोंसे भाग हो गये। शूर्पणखा रावणके पास पहुँची। रावणने मारीचको साथ लिया। स्वर्ण-मृगके पीछे श्रीजानकीकी इच्छासे श्रीराम दौड़े। मारीचका छल सफल हुआ। वह शराघातसे मरा, किंतु रावण एकाकिनी जानकीको हरण करनेमें सफल हो गया। लङ्काके अशोकवनमें वे विश्वधातृ बंदिनी बनीं।

श्रीराम लौटे मृगको वञ्चनाका दण्ड देकर। आश्रम शून्य था। अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। आहत जटायु मिले। वे दशाननको रोकनेके प्रयत्नमें छिन्नपक्ष हुए थे। श्रीरामके चरणोंमें उनका शरीर छूटा। राघवने अपने करकमलोंसे उनकी अन्त्येष्टि की। कबन्ध असुरका वध और शबरीके बेरोंका आस्वादन करते वे पम्पासर पहुँचे। वालीसे निर्वासित सुग्रीवको शरण मिली और दूसरे ही दिन जब वाली श्रीरामके बाणसे परधाम पधारे, सुग्रीव किष्किन्धाधीश हो गये। ऋष्यमूकपर राघवने वर्षा-ऋतु व्यतीत की। शरदागममें वानर-भालु सीतान्वेषणके लिये निकले।

श्रीपवनकुमार शतयोजन सागर पार लङ्कामें विदेह-नन्दिनीका दर्शन कर आये। स्वर्णपुरी उनकी पूँछकी लपटोंमें जल चुकी थी। श्रीरामने ससैन्य प्रस्थान किया। मदान्ध रावणसे पादताडित विभीषण उन विश्व-शरणदकी शरणमें आ गये। सागरपर सेतु बना और वह सुरासुर-अगम्य पुरी वानर-भालुओंसे धर्षित होने लगी। राक्षस-सेनानी मारे जाने लगे। रणभूमिने रावणपुत्र इन्द्रजित् तथा कुम्भकर्णकी आहुति ले ली। अन्तमें दशाननका वध करके श्रीरामने सुरकार्य पूर्ण कर दिया।

भरत चौदह वर्षसे एक दिन अधिक प्रतीक्षा न करेंगे। उनके प्राण इस अवधिमें आबद्ध हैं। पुष्पक सज्जित हुआ। श्रीराम् भाई तथा श्रीजानकी एवं सुग्रीव, विभीषण, हनुमान्, अङ्गदादि प्रधान नायकोंके साथ उस दिव्य विमानसे अयोध्या पधारे। पुरवासियोंकी, माताओंकी, भरतकी चिरप्रतीक्षा सफल हुई। श्रीराम कोसलके चक्रवर्ति-सिंहासनपर वैदेहीके साथ विराजमान हुए।

'रामराज्य'—सुशासन, सुव्यवस्था धर्म, शान्ति, सदाचारादिकी पूर्णताके द्योतनके लिये आज भी मनुष्यके पास इससे सुन्दर शब्द नहीं। ग्यारह सहस्र वर्ष वह दिव्य शासन धराको कृतार्थ करता रहा। श्रीवाल्मीकीय रामायण और गोस्वामी तुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानस श्रीरामके मङ्गलमय चरितसे लोकमें कल्याणका प्रसार करते हैं। भगवान् व्यासके अतिरिक्त अनेक संस्कृत हिन्दी तथा अन्य भाषाओंके कवियों, विद्वानोंने अपनी वाणी राम-गुणगानसे पवित्र की है।

श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। हिन्दू-संस्कृतिकी पूर्ण प्रतिष्ठा उनके चरितमें हुई है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रके लिये उसमें आदर्श हैं। हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप 'श्रीरामचरित' के दर्पणमें ही पूर्णत प्रतिबिम्बित हुआ है। भारतका वह आदर्श आज विश्व-मानवका गेय-ध्येय बने, तभी मानव सुसंस्कृत बन सकेगा।

(२२) [क] भगवान् बलराम

श्रीकृष्णावतार तो पिछले द्वापरमें सत्ताईस कलियुगोंके पश्चात् हुआ था। द्वापरमें पृथ्वीका भार हरण करने तो भगवान् बलराम ही प्राय पधारते हैं। उन्हींको श्रुतियाँ द्वापरका युगावतार कहती हैं। माता देवकीके सप्तम गर्भमें वे पधारे। योगमायाने गोकुलमें नन्दबाबाके यहाँ स्थित रोहिणीजीमें उन्हें पहुँचा दिया। इस प्रकार वे सङ्कर्षण कहलाये। इनकी गोकुल मथुरा और द्वारकाकी कई लीलाएँ बड़ी ही अद्भुत और आनन्ददायिनी हैं।

श्रीकृष्ण-बलराम परस्पर नित्य अभिन्न हैं। उनकी चरित-चर्चा एक-दूसरेसे पृथक् जैसे कुछ है ही नहीं। गोकुलमें दोनोंकी संग-संग बालक्रीडा और वहाँसे वृन्दावन-प्रस्थान। बहुत थोड़े चरित हैं, जब श्यामसुन्दरके साथ

उनके अग्रज नहीं थे। ऐसे ही बलरामजी अपने अनुजसे पृथक् बहुत कम रहे हे।

वहाँ कस-प्रेरित असुर प्रलम्ब आया था। श्रीकृष्णको तो कोई साथी चाहिये खेलनेके लिये। एक नवीन गोप-बालकको देखा और मिला लिया अपने दलम। असुरने श्यामके दैत्य-दलन-चरित सुने थे। उसे उनसे भय लगा। अपने छद्मवेशमे वह दाऊको पीठपर वैठानेम सफल हुआ और भागा। जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका धारक है, उसे कोन ले जा सकता हे। दैत्यको अपना स्वरूप प्रकट करना पडा। एक घूसा पडा तत्क्षण उसके मस्तकपर, और फिर क्या सिर बच रहना था?

उस दिन सखा कह रहे थे कि उन्हे पक्व ताल-फलाकी सुरभि लुब्ध कर रही है। सखा कुछ चाहे तो वह अप्राप्य कैसे रहे। असुर—गर्दभ धेनुक और उसका गर्दभ-परिवार—सब क्रीडामे ही नष्ट हो गय। प्रकृतिका उन्मुक्त दान कानन है। इन दुष्ट गर्दभाने उसे पशुआतकके लिये अगम्य बना दिया था। भगवान् बलरामने सखाआको ताल-फल प्रदान करनेके बहाने सबके लिये निर्बाध कर दिया उसे।

कन्हैया तो महाचचल है, किंतु दाऊ भैया गम्भीर, परमोदार, शान्त हैं। श्याम उन्हींका सकोच भी करता है। वे भी अपने अनुजकी इच्छाको ही जैसे देखते रहते ह। व्रज-लीलाम जब श्यामने शङ्खचूडको मारा, तब उसने समस्त गोप-नारियोके सम्मुख उस यक्षका शिरोरत्न अपने अग्रजको उपहाररूपमे दिया। कुवलयापीड—कसका उन्मत्त गजराज दोनो भाइयाकी थप्पडा ओर घूसाकी भेट हुआ और मल्लशालामे चाणूरको श्यामने पछाडा तो मुष्टिक बलरामजीकी मुष्टिकाकी भेट हो गया।

दोनो भाइयाने गुरुगृहम साथ-साथ निवास किया। जरासन्धको बलरामजी ही अपने योग्य प्रतिद्वन्द्वी जान पडे और यदि श्रीकृष्णचन्द्रन अग्रजसे उसे छोड देनेकी प्रार्थना न की होती तो वह पकड लिया गया था तथा बलरामजी उसे मारने ही जा रहे थे। जिसे सत्रह युद्धाम पकडकर छोड दिया उसीके सामनेसे अठारहवीं वार भागना कोई अच्छी वात नहीं थी। किया क्या जाय? श्रीकृष्णने प्रात से वह दिन पलायनक लिये स्थिर कर लिया था। कालयवनके सम्मुख वे अकेले भागे। जरासन्धके सम्मुख भागनम इतना आग्रह किया कि अग्रजको साथ भागना ही पडा।

'यह भी कोई वात ह कि कवल हँसा जाय। जा बना-विगाड न सकता हो, वह हँसे या पश्चात्ताप करे?' बलरामजीका विवाह हुआ। रवतीजी सत्ययुगकी कन्या ठहरीं। स्वभावत वहुत लम्वी थीं। श्यामसुन्दर तो सदाक परिहासप्रिय हैं। बलरामजीने पत्नीको अपने अनुरूप ऊँचाईमें पहुँचा दिया।

'श्याम अकेला गया हे?' कुण्डिनपुरके राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीक विवाहम शिशुपालके साथ जरासन्धादि ससैन्य आ रहे हे, यह समाचार तो मिल ही चुका था। वहाँ अकेले श्रीकृष्ण कन्या-हरण करने गये, यह तो अच्छा नहीं हुआ। बलरामजीने यादवी सना सज्जित की। वे इतनी शीघ्रतासे चले कि श्रीकृष्ण मार्गम ही मिल गये। श्यामसुन्दरको केवल रुक्मिणीजीको लकर चल देना था। शिशुपाल और उसके साथी तो बलरामक सैन्यसमूहसे ही पराजित हुए।

'कृष्ण। सम्बन्धियाके साथ तुम्ह ऐसे व्यवहार नहीं करना चाहिये।' बलरामजी राजाआकी सनाको परास्त करके आगे बढे तो रुक्मीकी सेना आ गयी। उसक साथ उलझनेमे कुछ विलम्ब हुआ। आगे आकर देखा तो छाटे भाईने अपने ही साले रुक्मीको पराजित करके रथम बाँध रखा है। उसक केश, श्मश्रु आदि मुण्डित कर दिये हैं। बडी दया आयी। छुडा दिया उसको, परतु आगे चलकर रुक्मीने अपने स्वभाववश बलरामजीका अपमान किया, तब वह उन्हींके हाथो मारा गया।

दुर्योधन भी मदमत्त हो उठा था। क्या हुआ जो श्रीकृष्णक पुत्र साम्बने उसकी पुत्री लक्ष्मणाका हरण किया? क्षत्रियके लिये स्वयवरमे कन्या-हरण अपराध तो हे नहीं। अकल लडकेको छ महारथियाने मिलकर बदी किया, यह ता अन्याय ही था। श्रीकृष्णचन्द्र कितने रुष्ट हुए थे समाचार पाकर। यदि वे नारायणी सेनाके साथ आ जाते—बलरामजीने छोट भाईका शान्त किया। दुर्योधन उनका शिष्य था। सत्राजित्का वध करके शतधन्वा जब स्यमन्तकमणि लेकर भागा श्यामसुन्दरके साथ बलभद्रजीने उसका पीछा किया। वह मिथिलाके समीप पहुँचकर मारा जा सका। मणि उसक वस्त्राम मिली नहीं। बलरामजा इतने समीप आकर मिथिलानरेशस मिल विना लोट न सक। दो

[illegible] यहीं दुर्योधनने उनसे गदा-युद्ध सीखा था। यहाँ दुर्योधन [illegible] कृपाचार्य [illegible] और भगवान् बलरामके [illegible] महाभारत [illegible] कुछ [illegible] हल उठाया। हस्तिनापुर [illegible] लगा। [illegible] 'धर्मात्मा सद्गुरु यथा।' [illegible] हुए। [illegible] दण्डका [illegible] है। [illegible] है?

महाभारतमें [illegible] शिष्य दुर्योधन और [illegible] श्रीकृष्ण। [illegible] कौरव-पक्षमें [illegible] उन्होंने [illegible] आकुल किये था। उस विपत्तिमें उन [illegible] मिला। जब वे तीर्थयात्रासे लौटे तब महाभारत-युद्ध समाप्त हो चुका था। भीम-दुर्योधनका अन्तिम संग्राम चल रहा था। दोनोंमेंसे कोई समझानेसे माननेको उद्यत नहीं था।

यदुवंशका उपसंहार होना ही था। भगवान्‌की इच्छासे आभीर [illegible] परस्पर संग्राम कर रहे थे। भगवान् बलराम उन्हें समझाने—रोकने गये, पर मृत्युके वश हुए उन्होंने इनकी बात नहीं सुनी और नष्ट हो गये। अब लोक-संवरण करना था। समुद्र-तटपर उन्होंने आसन लगाया और अपने 'सहस्रशीर्षा' स्वरूपसे जलमें प्रविष्ट हो गये।

[ख] भगवान् श्रीकृष्ण

'तू जिसे इतने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा है, उसीका आठवाँ पुत्र तुझे मारेगा!' आकाशवाणीसे कंस चौंका। सचमुच वह अपने चाचाकी छोटी लड़की देवकीका विवाह होनेपर कितने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा था। दिग्विजयी कंस—मृत्युका भय शरीरासक्तको कायर बना देता है। वह अपनी बहनका वध करनेको ही उद्यत हो गया। वसुदेवजीने सद्योजात शिशु उसे देनेका वचन दिया। इतनेपर भी कंसने दम्पतिको रखा कारागारमें ही। विरोध करनेपर अपने ही पिता उग्रसेनको भी उसने बंदी बनाया और वह स्वयं मथुराका नरेश बन गया।

बच्चे होते, तत्काल वसुदेवजी कंसके सम्मुख लाकर रख देते। वह उठाकर शिलापर पटक देता। हत्यासे शिलातल कलुषित होता गया। छः शिशु मरे। सातवें गर्भमें भगवान् शेष पधारे। योगमायाने उन्हें आकर्षित करके गोकुलमें रोहिणीजीके गर्भमें पहुँचा दिया। अष्टम गर्भमें वह अखिलेश आया। धरा असुर-नरेशोंके अशुभ कर्मोंसे आकुल है, उसके आराधक उसीकी प्रतीक्षामें पीड़ित हो रहे हैं, तो वह आयेगा ही।

कंसका कारागार, भाद्रकृष्ण अष्टमीकी मेघाच्छन्न अर्धनिशा—जैसे प्रकृतिने सम्पूर्ण कलुषको मूर्ति दे दी हो। चन्द्रोदयके साथ श्रीकृष्णचन्द्रका प्राकट्य हुआ। वन्दियोंके नेत्र धन्य हो गये। वह चतुर्भुज देखते-देखते शिशु बना, शृङ्खलाएँ स्वतः शिथिल हुईं, द्वार उन्मुक्त हुआ, वसुदेवजी उस हृदयधनको गोकुल जाकर नन्दभवनमें रख आये। कंसको मिली यशोदाकी योगमायारूपी कन्या और जब कंस उन्हें शिलातलपर पटक रहा था, तब वे योगमाया गगनमें सायुधाभरण अष्टभुजा हो गयीं।

गोकुलमें गलियोंमें आनन्द उमगा। आनन्दघन नन्दरानीकी गोदमें जो उतर आया था। कंसके क्रूर प्रयास उस प्रवाहमें प्रवाहित हो गये। पूतना शकटासुर, वात्याचक्र

सब विफल होकर भी कन्हैयाके करासे सद्गति पा गये। मोहन चलने लगा, बड़ा हुआ और घर-घर धूम मच गयी—वह हृदयचोर नवनीतचोर जो हो गया था। गोपियोंके उल्लसित भाव सार्थक करने थे उसे। यह लीला समाप्त हुई अपने घरका ही नवनीत लुटाकर। मैयाने ऊखलमें बाँधकर दामोदर बना दिया। यमलार्जुनका उद्धार तो हुआ किंतु उन महावृक्षोंके गिरनेसे गोप शंकित हो गये। वे गोकुल छोड़कर वृन्दावन जा बसे।

वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन व्रज-युवराजकी मधुरिम क्रीडाके चलनेमें सबने ओर सहायता दी। श्रीकृष्ण वत्सचारक बने। कंसका प्रयत्न भी चलता रहा। बकासुर वत्सासुर, प्रलम्ब, धेनुक, अघासुर मयपुत्र व्योमासुर आदि आते रहे। श्यामसुन्दर तो सबके लिये मोक्षका अनावृत द्वार है। कालियके फणापर उस व्रजविहारीने रासका पूर्वाभ्यास कर लिया। ब्रह्माजी भी बछड़े चुराकर अन्तमें उस नटखटकी स्तुति ही कर गये। इन्द्रके स्थानपर गोवर्धन-पूजन किया गोपोंने और गोपालने। दव-कोपकी महावर्षासे गिरिराजको सात दिन अँगुलीपर उठाकर व्रजको बचा लिया। देवेन्द्र उस गिरिधारीको गोविन्द स्वीकार कर गये। कंसके प्रेषित वृषासुर, केशी आदि जब गोपालके करासे कर्मबन्धन-मुक्त हो गये, तब उसने अक्रूरको भेजकर उन्हें मथुरा बुलवाया। नन्दबाबा राम-श्याम तथा गोपोंके साथ मथुरापुरी पहुँचे।

राजाको संदेश मिला धोबीकी मृत्युसे श्यामके पधारनेका। उस दिनका उनका अङ्गराग मार्गमें ही उस चिर-चंचलने स्वीकार करके कुब्जाका कूबर दूर कर दिया। कंसका आराधित धनुष उसके गर्वकी भाँति तोड़ डाला गया। दूसरे दिन महोत्सव था कंसकी कूटनीतिका। रंगमण्डपके द्वारपर श्रीकृष्णचन्द्रने महागज कुवलयापीडको मारकर उसका श्रीगणेश किया। अखाड़ेमें उन सुकुमार-श्याम-गौर अङ्गोंसे चाणूर मुष्टिक शल, तोशल-जैसे मल्ल चूर्ण हो गये। कंसके जीवनकी पूर्णाहुतिसे उत्सव पूर्ण हुआ। महाराज उग्रसेन बन्दीगृहसे पुनः राज्यसिंहासनपर शुभासीन हुए।

श्रीकृष्ण व्रजमें कुल ग्यारह वर्ष तीन मास रहे थे। इस अवस्थामें उन्होंने जो दिव्य लीलाएँ कीं, वे भावुकोंका जीवनपथ तो प्रशस्त करती हैं पर आलोचककी कलुषित बुद्धि उनका स्पर्श नहीं कर सकती। वह इस वयके बालकमें या तो उन लीलाओंको समझ न पायेगा या अपने अन्तरके कलुषमें डूबेगा। अस्तु, फिर तो श्याम व्रज पधारे ही नहीं। उद्धवको भेज दिया एक बार आश्वासन देने। अवश्य हो बलरामजी द्वारकासे आकर एक मास रह गये एक बार।

अवन्ती जाकर श्यामसुन्दरने अग्रजके साथ शिक्षा प्राप्त की। गुरुदक्षिणामें गुरुका मृतपुत्र पुनः प्रदान कर आये। मथुरा लौटते ही कंसके श्वशुर जरासन्धकी चढाइयोंमें उलझना पड़ा। वह सत्रह बार ससैन्य आया और पराजित होकर लौटा। अठारहवीं बार उसके आनेकी सूचनाके साथ कालयवन भी आ धमका। कहाँतक इस प्रकार युद्धमय जीवन सहा जाय? समुद्रके मध्यमें दुर्गम दुर्ग द्वारकानगर बना। यादवकुलको वहाँ पहुँचाकर श्रीकृष्ण पैदल ही यवनके सम्मुखसे भागे। पीछा करता हुआ यवन गुफामें जाकर चिर-सुप्त मुचुकुन्दकी नेत्राग्निसे भस्म हो गया। उधरसे लौटते ही जरासन्ध सेना लेकर आ पहुँचा। श्रीकृष्ण आज 'रणछोड' हो रहे थे। बलरामजीको भी साथ भागना पड़ा। दोनों भाई प्रवर्षणपर चढ़कर भाग चले।

श्रीकृष्णके विवाह तो लोकप्रसिद्ध हैं। रुक्मिणीजीको उन्होंने हरण किया था। स्यमन्तकमणिकी खोजमें जाम्बवन्तसे युद्ध करके उपहारस्वरूप जाम्बवतीजीको ले आये। 'मणि'-के कारण कलंक लगानेके दोषसे लज्जित सत्राजित्ने अपनी पुत्री सत्यभामा स्वयं उन्हें प्रदान की। कालिन्दीजी उनके लिये तप ही कर रही थीं। लक्ष्मणाजीके स्वयंवरका मत्स्यभेद करनेमें दूसरा कोई समर्थ ही न हो सका और नग्नजित् नरेशके सातों साँड एक साथ नाथकर उनकी पुत्री सत्यासे दूसरा कौन विवाह कर पाता! मित्रविन्दाजीका उन्होंने स्वयं हरण किया और भद्राजीको उनके पिताने सादर प्रदान किया। यह तो आठ पटरानियोंकी बात है। पृथ्वीपुत्र भौमासुरने वरुणका छत्र अदितिका कुण्डल हरण किया था। उसका वध आवश्यक था। सत्यभामाजीके साथ गरुडारूढ होकर जब उसे निजधाम दे चुके, तब जो सोलह सहस्र नरेन्द्र-कन्याएँ उसने बंदी बना रखी थीं, उनका उद्धार भी आवश्यक था। उनको अपनाये बिना उद्धार-कार्य कैसे पूर्ण होता। इस यात्रामें अमरावतीसे बलात् कल्पतरु द्वारका ले आये। इन्द्रने युद्धकी धृष्टता की और वे पराजित हुए।

बाणासुरसे विवश होकर युद्ध करना पड़ा। अपनी

सहस्र भुजाओके मदमे वह अपने आराध्य भगवान् शंकरका अपमान करने लगा था। अनिरुद्धको बंदी बना लिया था उसने। भक्तवत्सल आशुतोषने फिर भी युद्धमें उसका पक्ष ग्रहण किया। चक्रने असुरके सभी हाथ काट डाले। केवल उसकी चार भुजाएँ शेष रहीं। पाण्ड्रक दन्तवक्त्र और शाल्व—ये सब मारे गये अपने ही अपराधसे। पौण्ड्रक वासुदेव ही बननेपर तुला था। युद्ध माँगा था उसने। दन्तवक्त्रने आक्रमण किया और शाल्व तो मयनिर्मित विमानसे द्वारका ही नष्ट करने आया था। शिशुपाल भरी सभामें गालियाँ देने लगा तो कहाँतक क्षमा की जाय? सौ गालियोंके पश्चात् चक्रकी भेंट हो गया वह।

पाण्डवोंका परित्राण तो श्रीकृष्ण ही थे। राजसूय यज्ञ युधिष्ठिरका होता नहीं, यदि जरासन्ध मारा न जाता। राजसूयका वह सभास्थल—उसे वनमालीके आदेशसे मयने बनाया। द्यूतमें हारे पाण्डवोंकी पत्नी राजसूयकी साम्राज्ञी द्रौपदी जब भरी सभामें दुःशासनद्वारा नग्नकी जाने लगी वस्त्रावतार धारण किया प्रभुने। दुर्योधनने दुर्वासाजीको वनमें भेजा ही था पाण्डवोंके विनाशके लिये, पर शाकका एक पत्र खाकर त्रिलोकीको तुष्ट करनेवाला वह पार्थप्रिय उपस्थित जो हो गया।

वह मयूरमुकुटी पाण्डवोंके लिये सन्धिदूत बनकर आया। विदुरपत्नीके केलेके छिलकोंका रसास्वाद कर गया। सुदामाके तन्दुलोंने प्रेमका स्वाद सिखा दिया था। युद्धारम्भ हुआ और वह राजसूयका अग्रपूज्य पार्थसारथि बना। संग्रामभूमिमें उस गीता-गायकने अर्जुनको अपनी दिव्य अमर वाणीसे प्रबुद्ध किया। भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामाके दिव्यास्त्रोंसे रक्षा की पाण्डवोंकी। युद्धका अन्त हुआ। युधिष्ठिरको सिंहासन प्राप्त हुआ। पाण्डवोंका एकमात्र वंशधर उत्तरापुत्र परीक्षित् मृत उत्पन्न हुआ। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रने उसे प्राणहीन कर दिया था। श्रीकृष्णने उसे पुनर्जीवन दिया।

'यादवकुल पृथ्वीपर रहेगा तो वह बलोन्मत्त होकर अधर्म करेगा।' श्रीकृष्णको यह अभीष्ट नहीं था। ऋषियोंका शाप तो निमित्त बना। समस्त यादव परस्पर कलहसे कट मरे और आप देखते रहे। व्याधने पादतलमें बाण मारा तो उसे सशरीर स्वर्ग भेजनेका पुरस्कार दिया। इस प्रकार लीला-संवरण की द्वारकेशने।

श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष लीलावतार कहे गये हैं। भगवान् व्यासकी वाणीने श्रीमद्भागवतमें उनकी दिव्य लीलाओंका वर्णन किया है। शुकदेवजी-से विरक्त उस रसाम्बुधिमें मग्न रहा करते थे। श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण-लीलाका अमृतपयोनिधि है। श्रीकृष्णका चरित पूर्णताका ज्वलन्त प्रतीक है। भगवत्ताके छः गुण—ऐश्वर्य धर्म यश, शोभा, ज्ञान और वैराग्य—सब उसमें पूर्ण हैं। त्याग, प्रेम, भोग और नीति—सब उन पूर्णपुरुषमें पूर्ण ही हैं। हिन्दू-संस्कृति निष्ठाकी पूर्णताको आदर्श मानती है। श्रीकृष्णमें समस्त निष्ठाओंकी पूर्णता होती है।

~~~o~~~

(२३) भगवान् बुद्ध

बौद्धधर्मके प्रवर्तक महाराज शुद्धोदनके यशस्वी पुत्र गौतम बुद्धके रूपमें ही श्रीभगवान् अवतरित हुए थे, ऐसी प्रसिद्धि विश्रुत है, परंतु पुराणवर्णित भगवान् बुद्धदेवका प्राकट्य गयाके समीप कीकट देशमें हुआ था। उनके पुण्यात्मा पिताका नाम 'अजन' बताया गया है। यह प्रसंग पुराणवर्णित बुद्धावतारका ही है।

दैत्योंकी शक्ति बढ़ गयी थी। उनके सम्मुख देवता टिक नहीं सके, दैत्योंके भयसे प्राण लेकर भागे। दैत्योंने देवधाम स्वर्गपर अधिकार कर लिया। वे स्वच्छन्द होकर देवताओंके वैभवका उपभोग करने लगे, किंतु उन्हें प्रायः चिन्ता बनी रहती थी कि पता नहीं, कब देवगण समर्थ होकर पुनः स्वर्ग छीन लें। सुस्थिर साम्राज्यकी कामनासे दैत्योंने सुराधिप इन्द्रका पता लगाया और उनसे पूछा—'हमारा अखण्ड साम्राज्य स्थिर रहे, इसका उपाय बताइये।'

देवाधिप इन्द्रने शुद्ध भावसे उत्तर दिया—'सुस्थिर शासनके लिये यज्ञ एवं वेदविहित आचरण आवश्यक है।'

दैत्योंने वैदिक आचरण एवं महायज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। फलतः उनकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। स्वभावसे ही उद्दण्ड और निरंकुश दैत्योंका उपद्रव बढ़ा। जगत्में आसुरभावका प्रसार होने लगा।

असहाय और निरुपाय दुःखी देवगण जगत्पति श्रीविष्णुके पास गये। उनसे करुण प्रार्थना की। श्रीभगवान्‌ने
~~~

उन्हे आश्वासन दिया।

श्रीभगवान्ने बुद्धका रूप धारण किया। उनके हाथम मार्जनी थी और वे मार्गको बुहारते हुए उसपर चरण रखते थे।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध दैत्याके समीप पहुँच और उन्ह उपदेश दिया—'यज्ञ करना पाप है। यज्ञसे जीवहिंसा होती है। यज्ञकी प्रज्वलित अग्निम ही कितने जीव भस्म हो जाते हैं। देखो, मैं जीवहिंसासे बचनेके लिये कितना प्रयत्नशील रहता हूँ। पहले झाड़ू लगाकर पथ स्वच्छ करता हूँ, तब उसपर पैर रखता हूँ।'

सन्यासी बुद्धदवके उपदेशसे दैत्यगण प्रभावित हुए। उन्हाने यज्ञ एव वैदिक आचरणका परित्याग कर दिया। परिणामत कुछ ही दिनाम उनकी शक्ति क्षीण हो गयी।

फिर क्या था, दवताआन उन दुर्बल एव प्रतिरोधहीन दैत्यापर आक्रमण कर दिया। असमर्थ दैत्य पराजित हुए और प्राणरक्षार्थ यत्र-तत्र भाग खड हुए। देवताओंका स्वर्गपर पुन अधिकार हो गया।

इस प्रकार सन्यासीक वेषम भगवान् बुद्धने त्रैलोक्यका मङ्गल किया।

~~~ ० ~~~

(२४) भगवान् कल्कि

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मन ।
धर्मत्राणाय साधूना जन्म कर्मापनुत्तय॥

(श्रीमद्भा० १२। २। १७)

'सर्वव्यापक भगवान् विष्णु सर्वशक्तिमान् हे। व सर्वस्वरूप हानेपर भी चराचर जगत्क सच्चे शिक्षक—सद्गुरु हैं। वे साधु—सज्जन पुरुषाके धर्मकी रक्षाके लिये उनके कर्मका बन्धन काटकर उन्ह जन्म-मृत्युके चक्करसे छुडानके लिये अवतार ग्रहण करते हैं।'

× × ×

अभी तो कलिका प्रथम चरण है। कलिके पाँच सहस्रसे कुछ ही अधिक वर्ष बीते हैं। इतन दिनाम मानवजातिका कितना मानसिक ह्रास एव नैतिक पतन हो गया है यह सर्वविदित हे। यह स्थिति उत्तरात्तर बढती जायगी। ज्या-ज्या कलियुग आता जायगा, त्या-त्या धर्म सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरणशक्ति—सबका उत्तरोत्तर लोप होता जायगा। व्यावहारिक सत्य और ईमानदारी समाप्त हा जायँगे, छल-कपट-पटु व्यक्ति ही व्यवहारकुशल समझा जायगा। अर्थहीन व्यक्ति ही असाधु माने जायँगे। घोर दाम्भिक और पाखण्डी ही सत्पुरुष समझे जायँगे। धर्म तीर्थ, माता-पिता और गुरुजन उपेक्षित और तिरस्कृत हागे। मनुष्य-जीवनका सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ होगा—उदर-भरण। धर्मका सेवन यशक लिये किया जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्य और शूद्राम जो शक्तिसम्पन्न हागा, वही शासन करेगा। उस समयके नीच राजा अत्यन्त दुष्ट एव निष्ठुर हागे। लोभी तो व इतने हागे कि उनम और लुटेराम कोई अन्तर नहीं रह जायगा। उनसे भयभीत होकर प्रजा वना और पर्वताम छिपकर तरह-तरहके शाक, कद-मूल, मास, फल-फूल और बीज-गुठली आदिसे अपनी क्षुधा मिटायेगी। समयपर वृष्टि नहीं होगी वृक्ष फल नहीं दगे। भयानक सूखा भयानक सर्दी और भयानक गर्मी पडेगी। तब भी शासक कर-पर कर लगाते जायँगे। प्राणिमात्र धर्मकी मर्यादा त्यागकर स्वच्छन्द मार्गका अनुसरण करेगे। मनुष्योकी परमायु बीस वर्षकी हा जायगी।

कलिके प्रभावस प्राणियाके शरीर छोटे-छोटे, क्षीण और रोगग्रस्त होने लगग। वदमार्ग प्राय मिट जायगा। राजा-महाराजा डाकू-लुटेराके समान हा जायँगे। वानप्रस्थी, सन्यासी आदि विरक्त-जीवन व्यतीत करनेवाले गृहस्थाकी भाँति जीवन व्यतीत करने लगगे। मनुष्याका स्वभाव गधा-जैसा दुस्सह कवल गृहस्थीका भार ढानवाला हो
~~~

जायगा। लोग विषयी हो जायँगे। धर्म-कर्मका लेश भी नहीं रहेगा। लाग एक-दूसरेको लूटेगे और मारेगे। मनुष्य जपरहित, नास्तिक और चार हागे।

पुत्र पितृवध कृत्वा पिता पुत्रवध तथा।
निरुद्वेगो बृहद्वादी न निन्दामुपलप्स्यते॥
म्लेच्छीभूत जगत् सर्वं भविष्यति न सशय ।
हस्तो हस्त परिमुषद् युगान्ते समुपस्थिते॥
(महा० वन० १९०। २८ ३८)

'पुत्र पिताका आर पिता पुत्रका वध करके भी उद्विग्न नहीं हागे। अपनी प्रशसाके लिये लोग बडी-बडी बात बनायगे, कितु समाजमे उनकी निन्दा नहीं हागी। उस समय सारा जगत् म्लेच्छ हो जायगा—इसमे सशय नहीं। एक हाथ दूसरे हाथको लूटेगा—सगा भाई भी भाईके धनको हडप लेगा।'

अधर्म बढेगा, धर्म विदा हो जायगा। स्त्रियाँ अपने पतियाकी सेवा छोड देगी। वे कठोर स्वभाववाली और सदा कटुवादिनी हागी। वे पतिकी आज्ञामे नहीं रहेगी। पतिको माँगनेपर भी कहीं अन्न-जल या ठहरनेके लिये स्थान नहीं मिलेगा। सर्वत्र पाप-पीडा, दु ख-दारिद्र्य, क्लेश-अनीति, अनाचार और हाहाकार व्याप्त हो जायँगे।

उस समय सम्भलग्राममे विष्णुयशा नामक एक अत्यन्त पवित्र, सदाचारी एव श्रेष्ठ ब्राह्मण हागे। वे सरल एव उदार हागे। वे श्रीभगवान्‌के अत्यन्त अनुरागी भक्त हागे। उन्हीं अत्यन्त भाग्यशाली ब्राह्मण विष्णुयशाके यहाँ समस्त सद्गुणाके एकमात्र आश्रय, निखिल सृष्टिके सर्जक, पालक एव सहारक परब्रह्म परमेश्वर भगवान् कल्किके रूपमे अवतरित होगे। उनके राम-रोमसे अद्भुत तेजोमयी किरण छिटकती रहगी। वे महान् बुद्धि एव पराक्रमसे सम्पन्न, महात्मा, सदाचारी तथा सम्पूर्ण प्रजाके शुभैषी हागे।

मनसा तस्य सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च॥
उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि कवचानि च।
स धर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति॥
स चेम सकुल लोक प्रसादमुपनेष्यति।
उत्थितो ब्राह्मणो दीप्त क्षयान्तकृदुदारधी ॥
(महा० वन० १९०। ९४—९६)

(विष्णुयशाके बालकके) चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन, अस्त्र-शस्त्र, योद्धा और कवच उपस्थित हो जायँगे। वह धर्मविजयी चक्रवर्ती राजा होगा। वह उदारबुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण दु खसे व्याप्त हुए इस जगत्‌को आनन्द प्रदान करेगा। कलियुगका अन्त करनेके लिये ही उसका प्रादुर्भाव होगा।

भगवान् शकर स्वय कल्किभगवान्‌को शस्त्रास्त्रकी शिक्षा दगे और भगवान् परशुराम उनके वेदोपदेष्टा हागे।

वे देवदत्त नामक शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ होकर राजाके वेषमे छिपकर रहनेवाले पृथ्वीमे सर्वत्र फैले हुए दस्युआ एव नीच स्वभाववाले सम्पूर्ण म्लेच्छाका सहार कर डालेगे। वे परम पुण्यमय भगवान् कल्कि भूमण्डलके सम्पूर्ण पातकिया, दुराचारिया एव दुष्टाका विनाश कर अश्वमेध नामक महान् यज्ञ करगे और उस यज्ञमे सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणाका दानमे दे दगे।

भगवान् कल्कि दस्युवधमे सदा तत्पर रहेगे। वे जिन-जिन देशापर विजय प्राप्त करगे, उन-उन देशामे काले मृगचर्म, शक्ति, त्रिशूल तथा अन्य अस्त्र-शस्त्राकी स्थापना करेगे। वहाँ उत्तमोत्तम ब्राह्मण उनका श्रद्धा-भक्तिपूर्ण स्तवन करगे और प्रभु कल्कि उन ब्राह्मणोका यथोचित सत्कार करेगे।

वीरवर कल्किभगवान्‌के करकमलासे पृथ्वीके सम्पूर्ण दस्युआका विनाश और अधर्मका नाश हो जायगा। फिर स्वाभाविक ही धर्मका उत्थान प्रारम्भ होगा।

स्थापयित्वा च मर्यादा स्वयम्भुविहिता शुभा ।
वन पुण्ययश कर्मा रमणीय प्रवेक्ष्यति॥
तच्छीलमनुवर्त्स्यन्ति मनुष्या लोकवासिन ।
(महा० वन० १९१। २-३)

'उनका यश तथा कर्म—सभी परम पावन हागे। वे ब्रह्माजीकी चलायी हुई मङ्गलमयी मर्यादाआकी स्थापना करके (तपस्याके लिये) रमणीय वनमे प्रवेश करगे। फिर इस जगत्‌के निवासी मनुष्य उनके शील-स्वभावका अनुकरण करेगे।'

मङ्गलमय भगवान् कल्किके अङ्गरागको स्पर्शकर बहनेवाली वायु ग्राम, नगर जनपद एव देशकी सारी प्रजाके मनमे पवित्रताके भाव भर देगी। उनमे सहज सात्त्विकता उदित हो जायगी। फिर उनकी सतति पूर्ववत् हृष्ट-पुष्ट, दीर्घायु एव धर्मपरायण होने लगेगी।

इस प्रकार सर्वभूतात्मा सर्वेश्वर भगवान् कल्किके अवतरित हानेपर पृथ्वीपर पुन सत्ययुग प्रतिष्ठित होगा।

मत्स्यावतार—एक दृष्टि

(श्रीसुजीतकुमारजी सिह)

भारतीय धार्मिक इतिहासम अवतारवादके एक विशिष्ट सिद्धान्तने भारतीयाका एक विशिष्ट जीवनी-शक्ति तथा आशावादिता भी प्रदान की, जिसके कारण वे विभिन्न सकटा तथा विपत्तियाको यह विश्वास रखते हुए झेल सक कि वर्तमान विपत्तिकी घडी कुछ ही कालके लिये हे और उपयुक्त समयपर कोई दैवी-सत्ता उत्पन्न होनेवाली ह। यह विश्वास प्रचलित है कि देश-कालकी विषम परिस्थितियामे लोक-मङ्गलहेतु, साधु-सज्जनो ओर ऋषिया-मुनियाके परित्राणहेतु तथा धर्मके समुत्थानके लिय भगवान् विष्णु विभिन्न रूपामे अवतरित हाते रहते ह।

विभिन्न रूपामे अवतार लेकर भगवान् विष्णु जागतिक सकटाको दूर करत ह। धर्मशास्त्राम विष्णुके चोबीस अवताराका परिगणन हुआ हे। एसे ही जेनधर्मम चोवीस तीर्थङ्करा तथा बोद्धधर्मम चोवीस बोधिसत्त्वाकी अवधारणा प्रकट हुई। अवतारवादको कतिपय भौतिक विकासवादी विद्वानोने सृष्टिके विकासक्रमकी दृष्टिसे भी देखा हे।

विष्णुक चौबीस अवताराम मत्स्यावतारका विशप महत्त्व है। मत्स्यका सम्बन्ध एक प्राचीन जल-प्लावनकी कथासे हे, जा भारतीय ही नहीं लगभग सभी प्राचीन आर्य तथा सेमेटिक दशाके साहित्य (वाइबिल आदि)-म प्राप्त होती है। सम्भवत यही एक ऐसी कथा हे जो आर्य तथा समटिक—दाना देशाकी कथा-परम्पराआम प्राय समान है। कुछ विद्वान् इस कथाका समेटिक उद्गम माननेक पक्षमे हें, उनका कहना है कि आर्योने इस कथाका बादम आर्येतर जातियासे ग्रहण किया, किंतु इस धारणाका सशक्त शब्दाम खण्डन हुआ ह कि बैबीलानिया तथा इजराइलम मिलनवाले विवरण भारतीय साहित्यमे प्राप्य प्राचीनतम विवरण (शतपथब्राह्मण १।८।१।१—१९)-स परवर्ती हें आर दाना दशाका कथाआकी विभिन्न प्रकृति यह सिद्ध करती ह कि दोना स्वतन्त्र रूपसे अपन-अपने देशकी तत्कालीन भोगोलिक स्थिति तथा परम्पराआके आधारपर विकसित हुई हे।

शतपथब्राह्मणम मत्स्यावतारकी कथा इस प्रकार है—एक दिन विवस्वान्‌के पुत्र वैवस्वत मनुके पास उनके सेवक आचमन करनेके लिये जल लाये। जब मनुने आचमनके लिये अञ्जलिम जल लिया ता एक छोटा-सा मत्स्य उनके हाथम आ गया। उसने कहा—'मेरा पालन करो, में तुम्हारी रक्षा करूँगा।' 'कैसे मेरी रक्षा कराेगे?' एसा मनुक पूछनपर मत्स्य बोला—'थोडे ही दिनाम एक भयङ्कर जल-प्लावन होगा, जा प्रजावर्गको नष्ट कर देगा, उससे मं तुम्हारी रक्षा करूँगा।' मनुने पुन उसस पूछा—'तुम्हारी रक्षा केसे हो सकती है?' उसने कहा—'जब तक हम छोटे रहते हैं, तबतक हमारे अनेक विनाशक होते हैं—बडा मत्स्य ही छोटे मत्स्यको खा जाता हे। अभी तुम मुझे एक घडेम रख दो, जब उससे बढ जाऊँ तो एक गड्ढेमें रख देना ओर उसके बाद मुझे समुद्रम छाड दना, तब मेरा कोई विनाश नहीं कर सकगा।' मनुने ऐसा ही किया और अन्तम समुद्रम छोडे जानपर वह मत्स्य मनुको जल प्लावनका समय बताकर तथा उनको उस दिन एक नाव लकर तयार रहनेका आदश देकर जलम विलीन हो गया। जल-प्लावन हानेपर मनु नावम चढ गय। वह मत्स्य एक सींगवाल विशालकाय महामत्स्यके रूपम प्रकट हुआ। मनुने नावकी रस्सी उसके सींगम बाँध दी। नाव लकर वह महामत्स्य उत्तरपवत (हिमालय)-की आर गया। उसने वहाँ नावका एक वृक्षस बाँधनका आदेश दिया आर कहा कि जलक उत्तरनपर नीच आ जाना। जल-प्लावनसे सम्पूर्ण प्रजा नष्ट हा गयी, कवल मनु बचे रह।*

जल घटनपर मनु नाच आय आर उन्हान घृत दधि

* मनव ह वै प्रात । अवनेग्यमुदकमाजहु । तस्यावनेनिजानस्य मत्स्य पाणाऽआपद॥ स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमा सर्वा प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति कथ त भृतिरिति॥ स हावाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्य गिलति कुम्भ्या माग्रे बिभरासि स यदा तामतिवर्धा॰अथ कर्षूं खात्वा तस्या मा बिभरासि स यदा तामतिवर्धा॰अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा॰अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति। शश्वद्ध झष आस। स हि ज्येष्ठ वर्धतेऽथेतिथी समा तदौघ आगन्ता

आदिसे जलमे ही हवन किया। एक वर्ष बाद जलसे इडा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। उसने मनुसे कहा—'तुम मुझसे यज्ञ करो, इससे तुम्हें धन, पशु तथा अन्य अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त होगी।' मनुने ऐसा ही किया और उसके द्वारा यह सारी प्रजा उत्पन्न की।

मत्स्यावतार-कथाका यही अश सबसे प्राचीन तथा मुख्य है। मूल कथामे किसी भी देवताविशेषकी कोई भूमिका नहीं है। शतपथब्राह्मणके इस आख्यानको हिन्दी साहित्यके कविवर प्रसादने अपने अद्वितीय महाकाव्य *कामायनी*द्वारा अमर कर दिया है।

शतपथब्राह्मणके बाद यह कथा विविध पुराणो तथा महाभारत (वनपर्व, अ० १८७)-मे प्राप्त होती है। महाभारतमे स्पष्ट कहा गया है कि यह मत्स्य प्रजापति या ब्रह्माका रूप था। ठीक भी है, प्रलयकालीन जलसे मानव जातिके आदि पूर्वज मनुकी रक्षा करके सृष्टिके अकुरोको सुरक्षित रखनेका प्रयास प्रजापतिके अतिरिक्त और कौन कर सकता है? और जल-प्लावनका पूर्वज्ञान, अतुलित विस्तारसे विवर्धन तथा समुद्रमे नौवाहन आदि अतिमानुषिक कार्य भी सर्वोच्च दैवशक्ति प्रजापतिके द्वारा ही सम्भव है।

चीरिणी नदीके तटपर स्नान करते हुए वैवस्वत मनुके हाथोमे एक छोटा-सा मत्स्य आ जाता है और दीनतापूर्वक मनुसे अपनी रक्षा करनेकी प्रार्थना करता है—

भगवन् क्षुद्रमत्स्योऽस्मि बलवद्भ्यो भय मम।
मत्स्येभ्यो हि ततो मा त्व त्रातुमर्हसि सुव्रत॥

(महाभारत वनपर्व १८७।७)

भगवन्! मैं एक छोटा-सा मत्स्य हूँ। मुझे (अपनी जातिके) बलवान् मत्स्योसे बराबर भय बना रहता है। अत उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षे! आप उससे मेरी रक्षा करे।

मत्स्य पुन बोला—मैं भयके महान् समुद्रमे डूब रहा हूँ, आप विशेष प्रयत्न करके मुझे बचानेका कष्ट करे, आपके इस उपकारके बदले मै प्रत्युपकार करूँगा। मत्स्यकी यह बात सुनकर वैवस्वत मनुको बडी दया आयी और उन्होने चन्द्रमाकी किरणोके समान श्वेत रगवाले उस मत्स्यको उठा लिया। तदनन्तर पानीसे बाहर लाकर उसे

मटकेमे डाल दिया।

वह मत्स्य इतनी तेजीसे बढने लगा कि क्रमश घट, तालाब तथा नदी आदि भी उसके लिये छोटे पड गये। अन्तमे मनुने उसे समुद्रमे छोड दिया। वह महामत्स्य अपनी लीलासे उनके वहन करनेयोग्य हो गया। उस समय उस मुस्कराते हुए महामत्स्यने मनुसे कहा—

भगवन् हि कृता रक्षा त्वया सर्वा विशेषत ।
प्राप्तकाल तु यत् कार्यं त्वया तत् श्रूयता मम॥
अचिराद् भगवन् भौममिद स्थावरजङ्गमम्।
सर्वमेव महाभाग प्रलय वै गमिष्यति॥
× × ×
त्रसाना स्थावराणा च यच्चेङ्ग यच्च नेङ्गति।
तस्य सर्वस्य सम्प्राप्त काल परमदारुण ॥

भगवन्! आपने विशेष मनोयोगके साथ सब प्रकारसे मेरी रक्षा की है, अब आपके लिये जिस कार्यका अवसर प्राप्त हुआ है वह बताता हूँ, सुनिये—भगवन्! यह सारा-का-सारा चराचर पार्थिव जगत् शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है।

तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघऽउत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति। तमेव भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। स यतिथीं तत्समा परिदिदेश ततिथीं* समा नावमुपकल्प्योपासा चक्रे स औघऽउत्थिते नावमापेदे त* स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नाव पाश प्रतिमुमोच तनैतमुत्तर गिरिमतिदुद्राव॥ स होवाच। अपीपर वै त्वा वृक्षे नाव प्रतिबध्नीष्व त तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्साद्यावदुदक* समवायात्तावदन्ववसर्पासीति। औघो ह ता सर्वा प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैक परिशिशिषे॥ (श० ब्रा० १।८।१।१—६)

महाभाग! सम्पूर्ण जगत्‌का प्रलय हो जायगा। सम्पूर्ण जङ्गमा तथा स्थावर पदार्थोंमे जा हिल-डुल सकते ह और जा हिलने-डुलनवाले नहीं हे, उन सबके लिय अत्यन्त भयकर समय आ पहुँचा हे।

—यह सूचना देनेक पश्चात् उस मत्स्यने मनुसे एक दृढ नाव बनवानक लिय कहा और बताया कि उसम मजबूत रस्सी लगी हो, आप सम्पूर्ण आपधिया एव अन्नाक बीजाको लकर सप्तर्पियाके साथ उस नावम बैठ जाना। मैं एक सींगवाले महामत्स्यके रूपम आऊँगा आर तुम्ह सुरक्षित स्थानपर ल जाऊँगा—

नौश्च कारयितव्या ते दृढा युक्तवटारका।
तत्र सप्तर्षिभि सार्धमारुहेथा महामुन॥
× × ×
आगमिष्याम्यह शृङ्गी विज्ञयस्तेन तापस॥

कालान्तरम ऐसा ही हुआ। उस दिन सागर अपनी मर्यादा भग करके पृथ्वी-मण्डलको डुबाने लगा। मनुकी नाव प्रलय-जलमे तैरने लगी। मनु भगवान् मत्स्यका स्मरण करने लगे। स्मरण करते ही शृङ्गधारी भगवान् मत्स्य वहाँ आ पहुँचे। मनुने नावकी रस्सी उनके सींगम

बाँध दी और भगवान् मत्स्य नाव खींचने लगे। वे नावको हिमालयतक ले गये और उन्हाने उन ऋषियासे पर्वतशिखरमे नावकी रस्सी बाँधनेके लिये कहा—

'अस्मिन् हिमवत शृङ्ग नाव बध्नीत मा चिरम्।

इसक पश्चात् भगवान् मत्स्यन अपना परिचय दत उन ऋषियासे कहा—मैं प्रजापति ब्रह्मा हूँ। मुझसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है। मत्स्यरूपम मैंने मनु तथा आपलागा (सप्तर्षिगण)-की रक्षा की ह, क्याकि मनु हा (इस प्रलयक उपरान्त) दवता, असुर तथा मानवाकी सृष्टि करग। तपस्याक बलस मनुका प्रतिभा अत्यन्त विकसित हा जायगा और प्रजाकी सृष्टि करत समय इनकी बुद्धि माहको प्राप्त नहीं हागी सदा जागरूक रहगी—

अह प्रजापतिर्ब्रह्मा मत्पर नाधिगम्यत।
मत्स्यरूपेण यूय च मयास्मान्मोक्षिता भयात्॥
मनुना च प्रजा सर्वा सदेवासुरमानुषा।
स्त्रष्टव्या सर्वलाकाश्च यच्चेङ्ग यच्च नेङ्गति॥
तपसा चापि तीव्रण प्रतिभास्य भविष्यति।
मत्प्रसादात् प्रजासर्गे न च मोह गमिष्यति॥

ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य क्षणभरम अदृश्य हो गये और मनुजी भी तपस्या करके सृष्टिकार्यमें प्रवृत हो गय।

मत्स्यपुराणम यह कथा सम्पूर्ण पुराणकी आधार-भूमि है। मत्स्यरूपधारी भगवान् प्रलय-कालम मनुको जिस पुराणका उपदेश देत हैं वही 'मत्स्यपुराण' नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीमद्भागवतम यह कथा और अधिक क्रमबद्धरूपमें आयी है। कथाका प्रारम्भ श्रीमद्भागवतमहापुराणके मुख्य श्रोता राजा परीक्षित्‌के प्रश्नसे होता है कि भगवान् विष्णुने मत्स्य-जैसे तुच्छ एव विगर्हित प्राणीका रूप क्यो धारण किया? श्रीशुकदेवजी उत्तर देत ह कि राजन्! या तो भगवान् सबके एकमात्र प्रभु हैं, फिर भी गो, ब्राह्मण देवता, साधु, वद, धर्म तथा अथकी रक्षाके लिये वे शरीर धारण किया करते हैं—

गोविप्रसुरसाधूना छन्दसामपि चेश्वर।
रक्षामिच्छस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थ तथेव हि॥
(श्रीमद्भा० ८।२४।५)

महाभारतमे प्रजापतिके मत्स्यरूपका कारण केवल मनु आदिकी रक्षा ह किंतु श्रीमद्भागवतमहापुराणम हयग्रीव दैत्यसे वेदाके उद्धारका महत्त्वपूर्ण कार्य भी इस अवतारके साथ जुडा हे।

गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक भगवान् परशुराम

(डॉ० श्रीदेवदत्तजी आचार्य, एम्०डी०)

असावसक्तपरशुं जटावल्कलधारिणम्॥
गौरमग्निशिखाकारं तेजसा भास्करोपमम्।
(हरिवंश २।३९।२१-२२)

महाभारतमें कहा गया है कि त्रेतायुग एवं द्वापरयुगके सन्धिकालमें वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया)-के शुभ दिन उत्तम नक्षत्र और उत्तम मुहूर्तमें भृगुकुलोत्पन्न महर्षि जमदग्नि एवं काशिराजसुता भगवती रेणुकाके माध्यमसे भगवान् विष्णुका भार्गवराम (परशुराम)-के रूपमें पृथ्वीपर अवतार हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता (४।७-८) कहती है कि 'जब-जब धर्मका ह्रास होता है और अधर्मकी अभिवृद्धि होती है, तब-तब साधु (सज्जनों)-की रक्षाहेतु और असाधु (दुराचारियों, पापाचारियों)-के विनाशहेतु, धर्मके संस्थापनार्थ भगवान्‌का पृथ्वीपर 'अवतार' होता है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

महर्षि जमदग्निका आश्रम रेवा—नर्मदानदीके तटपर था। वहाँपर भगवान् परशुरामका आविर्भाव हुआ था। उनके पितामह महातपस्वी ऋचीकका विवाह क्षत्रिय गाधिराजकी सुपुत्री (ऋषि विश्वामित्रकी बहिन) सत्यवतीके साथ हुआ था। उन दिनों विशेष कारणोंसे कुछ ब्राह्मण ऋषियोंके विवाह क्षत्रिय राजकन्याओंके साथ हुए हैं। ऐसे विवाहोंमें संतति ब्राह्मण ही मानी जाती है। महर्षि जमदग्नि एवं भगवती रेणुकाको पाँच पुत्र हुए—(१) रुमण्वान्, (२) सुषेण, (३) वसु, (४) विश्वावसु तथा (५) भार्गवराम (परशुराम)। परशुराम सबसे छोटे थे तथापि सबसे वीर एवं वेदज्ञ थे।* पाँच वर्षकी अवस्थामें उनका सविधि यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ, तत्पश्चात् माता-पिताकी सम्मति लेकर वे शालग्रामक्षेत्रमें जाकर गुरु महर्षि कश्यपके समक्ष उपस्थित हुए और शास्त्र तथा शस्त्रका ज्ञान प्रदान करनेके लिये उनसे प्रार्थना की। गुरु महर्षि कश्यपने परशुरामको सविधि दीक्षा दी और शास्त्र एवं शस्त्रविद्या सिखाना प्रारम्भ किया। कुशाग्रबुद्धिसम्पन्न एवं अदम्य उत्साही होनेसे परशुराम अल्प समयमें ही चारों वेद और धनुर्विद्यामें निपुण हो गये। गुरुकी आज्ञा तथा आशीर्वाद लेकर परशुराम अपने माता-पिताके पास आये और उनका भी आशीर्वाद प्राप्त किया।

परशुराम अपने घरसे प्रस्थान कर गन्धमादनपर्वतपर गये और उत्कट तपस्याद्वारा उन्होंने भगवान् शंकरको प्रसन्न कर उनसे उच्चकोटिकी धनुर्विद्या प्राप्त की— **'शिवो भार्गवरामाय धनुर्विद्यामदात् पुरा।'** परशुरामने भगवान् शंकरसे ४१ अस्त्र भी प्राप्त किये जो भयंकर तथा महाविनाशक थे जैसे कि ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र इत्यादि। इन महान् अस्त्रोंकी प्राप्तिसे परशुराम महाधनुर्धर एवं मन्त्रविशारद हुए। वाल्मीकिरामायण (बालकाण्ड ७४।१७—१९)-में वर्णन है कि परशुराम महापुरुष, भीमकाय जटावल्कलधारी, अनाचारी-पापाचारी राजाओंके विनाशक भार्गवकुलोत्पन्न महर्षि जमदग्निके वीरपुत्र थे, जिन्हें अयोध्यानरेश दशरथने देखा और पूज्यभावसे उनका वन्दन किया। परशुराम कैलासपर्वत-जैसे अपराजित थे, प्रलयाग्नि-जैसे दुःसह थे। उनकी देह तेज पुञ्ज-सदृश होनेसे सामान्यजन उनके सामने दृष्टिक्षेप करनेमें भी असमर्थ होते थे। उनके एक स्कन्धपर बड़ा भारी अतितीक्ष्ण परशु (फरसा) रहता था और दूसरे स्कन्धपर विद्युत्-सा अमोघ धनुष रहता था। वे त्रिपुरघ्न—त्रिपुरके विध्वंसक महाबली शिवसदृश थे।

हरिवंश (२।३९।२१-२२)-में उनके विषयमें वर्णन है कि एक बार जब बलराम और श्रीकृष्णने दक्षिणापथकी यात्रा की तो सह्याचलकी पर्वतश्रेणियोंके समीप वे वेणा नदीके तटपर पहुँचे, वहाँ एक विशाल बरगदका वृक्ष था, उसी वृक्षके नीचे विराजमान भृगुनन्दन परशुरामजीको

* रामस्तेषां जघन्योऽभूदजघन्यैर्गुणैर्युतः। सर्वशस्त्रेषु कुशलः क्षत्रियान्तकरो वशी॥ (महा०आदि० ६६।४८)

उन्होने देखा, जिनके एक कन्धेपर फरसा था और जो जटा और वल्कल धारण किये हुए थे। उनके शरीरका वर्ण गौर तथा अग्निशिखाके समान प्रकाशमान था। वे सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देते थे। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले परशुराम किसीसे क्षुब्ध होनेवाले नहीं थे। वे मूर्तिमान् समुद्रके समान गम्भीर प्रतीत होते थे। वे देवताओंके आदिगुरु बृहस्पतिके समान जान पडते थे और मन्दराचलके शिखरपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान चमक रहे थे।

प्रणामनिवेदन एव कुशलक्षेमके अनन्तर मगधराज जरासधके साथ किस प्रकार युद्ध किया जाय और विजय मिले, इस विषयमे श्रीकृष्णने महाबली परशुरामसे मार्गदर्शन प्राप्त किया था।

धर्मग्रन्थोमे एक विशेष प्रसग वर्णित है कि एक बार परशुरामकी माता रेणुका यज्ञकार्यार्थ समीपस्थ नदीसे जल लाने गयी थी। उस समय नदीमे गन्धर्व चित्ररथ स्वपत्नीके साथ जल-विहार कर रहा था। उस गन्धर्वका रूप एव विलास देखकर रेणुकाका चित्त क्षुब्ध हुआ। वह कुछ अधिक समयपर्यन्त जलक्रीडा देखती रही। जब सचेत हुई तब जलभरा घट लेकर वह झटपट आश्रमम वापस आयी। अन्तर्ज्ञानी महर्षि जमदग्नि स्वपत्नी रेणुकाके चित्तकी विक्षिप्तता समझ गये। अत इस घोर अपराधके लिये उसको मृत्युदण्ड देना चाहा। इस निर्णयको कार्यान्वित करनेके लिये महर्षि जमदग्निने अपने क्रमश चार पुत्रोको आज्ञा दी किंतु मातृवध करनेको चारोने अस्वीकार कर दिया। यह देखकर पिता जमदग्निने अपने पॉचवे सबसे छोटे, पितृभक्त वीरपुत्र परशुरामको मातृवध करनेके लिये आदेश किया। परशुरामने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके अपनी माता रेणुकाका खड्गद्वारा शिरच्छेद कर दिया। आज्ञाधारक परशुरामपर पिता महर्षि जमदग्नि प्रसन्न हुए और वर मॉगनेको कहा। परशुरामने पूज्य पिता जमदग्निसे कहा कि मेरी माता रेणुका पुनर्जीवित हो और उनको इस मातृवधका जघन्य-प्रसग सदाके लिये विस्मृत हो। पितृभक्त परशुरामकी विनती सुनकर प्रसन्न होकर महर्षि जमदग्निने सञ्जीवनी-मन्त्रशक्तिके सामर्थ्यसे मृत रेणुकाको जीवित कर दिया।

उन दिनो रेवा (नर्मदा)-तटके उत्तरके प्रदेशमे हैहयवशका प्रतापी राजा कार्तवीर्य राज्य करता था। वह भगवान् दत्तात्रेयका बडा भक्त था। गुरु दत्ताचार्यको प्रसन्न करके उसने उनसे हजार भुजाएँ तथा अपरिमित शक्ति प्राप्त की थी और भगवान्के अवतारसे ही अपनी मृत्यु होनेका वरदान माँगा था। हजार बाहुओके प्राप्त होनेसे वह 'सहस्रबाहु' नामसे प्रसिद्ध हुआ। लोग उसको सहस्रार्जुन भी कहते थे। उसने रेवानदीके उद्गमस्थान (अमरकण्टक)-से लेकर हिमालयकी उपत्यकापर्यन्तके प्रदेशपर विजय प्राप्त की। इतने विशाल प्रदेशका शासक होनेपर वह अभिमानी और मदान्ध बन गया।

एक दिन राजा कार्तवीर्य महर्षि वसिष्ठके आश्रममे पहुँचा और उनके आश्रमको उसने जला दिया। यह देखकर महर्षि वसिष्ठने उसे शाप दिया कि भार्गवकुलोत्पन्न महाबली परशुराम तुम्हारी सहस्र बाहुओका सामर्थ्य नष्ट कर देगे और तुम्हारा वध करेगे। महर्षि वसिष्ठका ऐसा शाप सुनकर राजा कार्तवीर्यने सोचा कि महाबली परशुरामके सामर्थ्यकी परीक्षा करनी चाहिये। तब एक बार मदान्मत्त राजा कार्तवीर्य महर्षि जमदग्निके आश्रमम आया और आश्रमकी सवत्सा कामधेनुका उसने अपहरण कर लिया। उस समय महाबली परशुराम वनमे यज्ञकाष्ठ लेने गये थे। जब वे आश्रमम वापस आये तब उन्हे सब वृत्तान्त विदित हुआ। उन्होने मदोन्मत्त राजा कार्तवीर्यका वध करनेकी भीषण प्रतिज्ञा कर ली। महर्षि जमदग्निको पुत्र परशुरामकी राजाके वधकी प्रतिज्ञा रुचिकर प्रतीत न हुई, किंतु परशुरामने निश्चय बदला नहीं।

तब महर्षि जमदग्निने परशुरामसे कहा कि 'तुम ब्रह्मदेवके पास जाकर उनकी आज्ञा ले आओ।' यह सुनकर परशुराम ब्रह्मलोकमे गये और ब्रह्मदेवको सब वृत्तान्त सुनाकर कार्तवीर्यवधकी आज्ञा माँगी। ब्रह्मदेवने उन्हे कैलासमे जाकर शिवजीकी आज्ञा लेनेको कहा। परशुराम वहाँसे प्रस्थान कर कैलासपर्वतपर पहुँचे और शिवजीको सारा वृत्तान्त सुनाया। शिवजीने प्रसन्न होकर परशुरामको पापाचारी राजा कार्तवीर्यका वध करनेकी आज्ञा दे डाली। तब परशुराम भगवान् शिवको प्रणामकर वहाँसे वापस लौटे। वे रेवातटस्थ हैहयपुरमे आये और

उन्हाने वहाँके राजा कार्तवीर्यका युद्धके लिये आह्वान किया। फिर तो दोनाके बाच तुमुल द्वन्द्वयुद्ध हुआ। महावली परशुरामने मदोन्मत्त सहस्रबाहु राजा कार्तवीर्यकी प्रचण्ड शक्तिको नष्ट करके उसको यमसदन पहुँचा दिया। यह दखकर राजाके कतिपय पुत्राने परशुरामपर आक्रमण कर दिया। महाबली परशुरामन उन लोगाको भी मृत्युका ग्रास बना दिया। उन पुत्रामसे पाँच पुत्र भयसे आक्रान्त हाकर हिमालयकी ओर पलायन कर गये।

युद्धम विजय प्राप्त कर ओर अपनी अपहृत प्रिय सवत्सा कामधेनुको मुक्त करवाकर महाबली गोभक्त परशुराम अपने आश्रमम लोट आये। उन्ह देखकर पिता जमदग्निने उन्ह क्षत्रियवधके लिय दोपी ठहराया ओर पापके प्रायश्चित्तहेतु बारह वर्षपर्यन्त तीर्थाटन करनेकी आज्ञा की। पितृभक्त परशुरामने आज्ञाको स्वीकार किया और तीर्थाटन करते हुए महेन्द्रपर्वतपर जाकर उत्कट तपस्या प्रारम्भ की।

परशुराम सुदूरके महेन्द्रपर्वतपर तपस्यारत हैं, ऐसा समाचार मिलनपर राजा कार्तवीर्यके पलायन हुए पाँच पुत्राने पितृवधका प्रतिशाध लेनेके लिये अपने राज्यमे वापस आकर जमदग्निके आश्रमपर आक्रमण किया आर यज्ञशाला ध्वस्त कर ध्यानस्थ महर्षि जमदग्निका शिरच्छेद कर सिर (मुण्ड)-का लकर वे दुष्ट राजपुत्र अपनी महिष्मती नगरीम वापस चल आये।

महर्पि जमदग्निके शिरच्छेद होनेका अति जघन्य प्रसग जब महेन्द्रपर्वतपर तपस्यारत परशुरामको विदित हुआ, तब व क्षुब्ध हो उठे। वे तपस्या छोडकर प्रलयानलकी तरह यथाशीघ्र अपने आश्रमम वापस आये। वहाँका क्रूर एव अमानुपी दृश्य दखकर वे अतीव कुपित हुए। उन्हाने अपन मृत पिता महर्षि जमदग्निकी देहपर इक्कीस घाव देख। उन्होने उसी समय प्रतिज्ञा की कि ऐसी जघन्य ब्रह्महत्याके परिणामस्वरूप मैं आततायी हैहयवशी क्षत्रिया और उनके दुष्ट समर्थकाको मारकर इस पृथ्वीको इक्कीस बार नि क्षत्रिय करूँगा तथा उनके रक्तसे अपने महातपस्वी पिता महर्षि जमदग्निका तर्पण करूँगा।

तत्पश्चात् परशुरामने काँवडके एक पलडेमे स्वपिता महर्षि जमदग्निका धड रखा तथा दूसरे पलडेम विधवा माता रेणुकाको बैठाया, फिर काँवडको अपने कन्धेपर उठाकर तीर्थाटनको चल पड आर सह्याद्रिपर्वतपर माहुरगढ नामक तीर्थक्षेत्रमे पहुँचे। उस समय आकाशवाणी सुनायी पडी कि इस पवित्र क्षेत्रमे तुम अपने पिता महर्षि जमदग्निके धडका अग्नि-सस्कार करो। तव परशुरामने वैसा ही किया। वहाँपर रेणुका स्वपतिकी दहके साथ अग्निमे प्रविष्ट होकर सती हुई, ऐसी कथा 'रेणुका-माहात्म्य' नामक मराठी भाषाके ग्रन्थम वर्णित ह। तत्पश्चात् महिष्मतीके हैहयवशी दुष्ट राजपुत्राके साथ परशुरामने घार युद्ध किया तथा स्वपितृशिर प्राप्तकर उसका सविधि अग्नि-सस्कार किया।

महाभारतमे आया है कि भगवान् परशुरामने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियासे सूनी करके उनके रक्तसे समन्तपञ्चकक्षेत्रम पाँच रुधिरकुण्ड भर दिये और रक्ताञ्जलिके द्वारा उन कुण्डाम पितराका तर्पण किया—

त्रि सप्तकृत्व पृथिवीं कृत्वा नि क्षत्रिया प्रभु ।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान्॥
स तेपु तर्पयामास भृगून् भृगुकुलोद्वह ।

(महा०वन० ११७।९-१०)

तर्पणक समय उन्होने अपने पितामहका साक्षात् दर्शन किया। ऋचीक आदि पितृगण परशुरामजीक पास आकर बोले—महाभाग राम! तुम्हारी पितृभक्ति और पराक्रमसे हम बहुत प्रसन्न हैं, तुम्ह जिस वरकी अभिलाषा हो, माँग लो। इसपर परशुरामजीने कहा—पितृगणो! मने जो क्रोधवश क्षत्रियवशका विध्वस किया है, इस पापसे मैं मुक्त हो जाऊँ और मेरे बनाये ये सरोवर पृथ्वीमे प्रसिद्ध तीर्थ हो जायँ। ऐसा ही होगा—'**एव भविष्यति**' (महा०आदि० २।१०) यह कहकर पितरोने उन्ह वरदान दिया और इस घोर कर्मसे उन्ह रोका।

महाबली परशुरामने दुष्ट क्षत्रियोकी जिस भूमिको हस्तगत किया था उस भूमिको अश्वमेधयज्ञके आचार्य महर्षि कश्यपको दानम द दिया। महाभारतम आया है कि शक्तिशाली परशुरामजीने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियासे हीन करक अश्वमेधयज्ञ किया और उसकी दक्षिणाके रूपम यह सारी पृथ्वी महर्षि कश्यपको दे दी—

त्रि सप्तकृत्व पृथिवीं कृत्वा नि क्षत्रिया प्रभु ॥
दक्षिणामश्वमधान्ते कश्यपायाददत् तत ।

(महा०शान्ति० ४९। ६३-६४)

'केरलात्पत्ति' नामक ग्रन्थम एसा वर्णन है कि परशुरामने अपना दिव्य अस्त्र मन्त्रासे पुष्टकर समुद्रम फेका ओर रत्नाकरके जलका शोषण करवाया। वह नूतन निर्मित भूमि काकण-प्रदेश कहलायी। वहाँपर उन्हाने ब्राह्मणाको वसाया, अत वे ब्राह्मण कोकणस्थ ब्राह्मण कहलाये। ये भगवान् परशुरामको अपना आराध्य मानते हैं। वीर पेशवा लाग महाराष्ट्रके काकण-प्रदेशके ही ब्राह्मण थे।

मुम्बई-समीपका सोपारा नामक स्थान प्राचीन शूर्पारक कहा जाता है, जहाँपर महाबली परशुरामका निवासस्थान था। इसी स्थानपर शाक्यमुनि बुद्धदेवने तीन चातुर्मास किये थे, ऐसा बौद्धग्रन्थाम लिखा है।

महाभारतादि धर्मग्रन्थाम कथा वर्णित हे कि एक बार भीष्मपितामहने अपने भाई विचित्रवीर्यके लिये काशिराजकी तीन कन्याओ—(१) अम्बा, (२) अम्बिका ओर (३) अम्बालिकाका स्वयवरम जाकर हरण किया था। उनमसे अम्बाने कहा कि उस राजा शाल्वके साथ प्रेम है। ऐसा सुनकर भीष्मने उसे मुक्त कर दिया। अम्बा जब शाल्वके पास गयी तो उसने भीष्मद्वारा अपहृत हुई जानकर उसका त्याग कर दिया। इससे वह क्रुद्ध हुई और भीष्मको पाठ सिखानेके लिये महाबली परशुरामकी सहायता प्राप्त करनहेतु जमदग्नि ऋषिके आश्रमम पहुँची। उसने सारा वृत्तान्त परशुरामजीको सुनाया ओर भीष्म उसे स्वीकार कर, ऐसा करनकी विनती की। अम्बा काशिराजकी पुत्री थी आर परशुरामकी माता रेणुका भी काशीसे सम्बन्धित थीं। इस घनिष्ठ सम्बन्धस परशुरामजीन अम्बाका सहायता दनका वचन दिया। फिर परशुरामने दूत भेजकर अपने शिष्य भीष्मका अपन पास बुलवाया आर अम्बाको स्वीकार करनको कहा। आजीवन ब्रह्मचर्यव्रतधारी भीष्मने गुरु परशुरामका प्रस्ताव अमान्य कर दिया। शिष्यकी अवज्ञा देखकर परशुराम क्रुद्ध हुए आर युद्धक लिये आह्वान किया। गुरु-शिष्यका भीषण युद्ध तईस दिनपर्यन्त चला आखिर ब्रह्मचर्यव्रतकी प्रतिज्ञा पालन करनेवाल शिष्य भीष्मका प्रशसा करके गुरु परशुराम युद्धभूमिसे विदा हुए।

सप्त चिरञ्जीवी महापुरुषाम परशुरामकी गणना हुई है। भगवान् शिवसे इन्हे निष्पाप, अजय तथा अजर-अमर होनेका वर प्राप्त था—

पाप च त न भविता अजेयश्च भविष्यसि।
न ते प्रभविता मृत्युरजरश्च भविष्यसि॥

(महा०अनु० १८।१४)

भारतदेशकी दक्षिण दिशाम स्थित केरल प्रदेशमें परशुराम-शक वर्ष प्रचलित है। इस शकका वर्ष सौर होनेसे उसका वर्षारम्भ सिंह माससे होता है। इस वर्षका सवत्सर-चक्र सहस्रवर्षका होनेसे वर्तमान सवत्सरचक्रका क्रमाङ्क चार है। उस शकको कोल्लमशक कहते हैं।

केरल प्रदेशके धर्मग्रन्थम लिखा है कि भगवान् विष्णुका एक अवतार भार्गवराम (परशुराम) नामसे है। अवतारके उस पुण्यकाल वैशाख शुक्ल तृतीया एव पुनर्वसुनक्षत्रम रात्रिके प्रथम प्रहरम छ ग्रह उच्चके और राहु मिथुन राशिम उच्चका था। इसलिये केरलमें अक्षय-तृतीयाकी रात्रिम प्रथम प्रहरम परशुराम-जयन्ती सोल्लास मनायी जाती हे। भक्तजन दिनम उपवास रखते हैं और रातम भगवान् परशुरामकी सविधि पूजा करते हैं। वैदिक ब्राह्मणाद्वारा विविध रगवाले धान्यसे सर्वतोभद्रमण्डल बनवाकर वैदिक मन्त्राका उच्चारण करते हुए उस मण्डलमें ब्रह्मादि देवताका आवाहन कर मण्डलके मध्यभागम कलश-स्थापन कर उसके ढक्कनपर भगवान् परशुरामकी सुवर्ण या रजतकी मूर्ति स्थापित करवाते हैं। तत्पश्चात् वैदिक किवा पौराणिक मन्त्राका उच्चारण करते हुए षोडशोपचार पूजा-विधिसे मूर्तिकी पूजा करवाते हैं। यज्ञकुण्डम अग्निस्थापन करवाकर प्रधान होम करनेके बाद गोघृतमिश्रित पायसस वेदमन्त्राका उच्चारण करते हुए १००८ आहुतियाँ यज्ञाग्निम प्रदान करते हैं। यज्ञकी पूर्णाहुति हो जानेके बाद ब्रह्मभोजन, कुमार एव कुमारिका-भोजन करवानेके बाद घरके लोग भोजन करते हैं। रात्रिम भजन-कीर्तन होता है। इस प्रकारसे महाराष्ट्र प्रदेशम भक्तजन परशुराम-जयन्ती मनाते हैं।

महाराष्ट्रम सतारा जिलेके पासम चिपलून नामक शहरके समीपके पहाडपर भगवान् परशुरामका मन्दिर है जिसका निर्माण पेशवा राजाओंने करवाया था। परशुराम

सप्त कोकणके देव माने जाते हैं।

सह्याद्रि पर्वतके उत्तरभागम साल्हर पहाड है जहाँपर गढमे भगवान् परशुरामका प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिरके समीप परशुरामके चरण-चिह्न शिलापर अकित हैं।

दक्षिण भारतमे सह्याद्रि प्रदेशम तिरुविताङ्कुर नामक जिलेम महन्द्रपर्वत है, जहाँपर परशुरामका तपस्यास्थल है। त्रिपुरारहस्य नामक ग्रन्थमे वर्णन है कि परशुरामन भगवान् दत्तात्रेयसे षोडशीमन्त्रकी दीक्षा ग्रहण कर साधनाहेतु महेन्द्रपर्वतपर जाकर भगवती त्रिपुरसुन्दरीदेवीकी सविधि आराधना की और उनसे चिरञ्जीवी पद प्राप्त किया था। भगवतीकी कृपासे वे सिद्ध पुरुष वन गये थे।

गुजरातमे नर्मदातटस्थ भृगुक्षेत्र (भडोच)-मे तथा पजाबके कागडा जिलेम, आसामम डिब्रूगढके समीप, महाराष्ट्रके माहुरगढम परशुरामके निवासस्थान—मन्दिर हैं।

महाबली भगवान् परशुरामने अपन सामर्थ्यके विषयमे दुष्ट राजा कार्तवीर्यसे गर्जना करते हुए कहा था—

अग्रतश्चतुरो वद पृष्ठत सशर धनु ।
इद ब्राह्म इद क्षात्र शापादपि शरादपि॥

मरे अग्रभागमे चारा वेदाका दिव्य महातेज है और मेरे पृष्ठभागम मन्त्रयुक्त महाशक्तिशाली शिवधनुष है, मैं वदमन्त्राके शापसे भी और अमोघ बाणसे भी पृथ्वीको ध्वस कर सकता हूँ।

ऐसे महाबली, भगवानूक अवतार एव गो-ब्राह्मणरक्षक परशुरामको कोटिश वन्दन है।

~~~o~~~

अवधूतश्रेष्ठ भगवान् श्रीदत्तात्रेय

(स्वामी श्रीदत्तपादाचार्य भिषगाचार्य)

अवतार शब्द '**अव**' उपसर्गपूर्वक '**तॄ**' धातुसे बना है। अपने मूलस्थानसे नीचे (पृथ्वीपर) आना—अवतार शब्दका अर्थ है। इस शब्दका दूसरा अर्थ है— साधुजनोको भवसागरसे तारनेक लिये (पार करनेहेतु) अवतीर्ण होना। वायुपुराण (९८)-मे अवतारके दो भाग कहे गय हैं—(१) दिव्यसम्भूति जैसे—नारायण, नृसिह आदि (२) मानवसम्भूति जैसे—दत्तात्रेय, परशुराम, दाशरथी राम, कृष्ण आदि। धर्मग्रन्थामे अवतारके कई प्रकार वर्णित हैं, जैसे— पूर्णावतार, विभवावतार कलावतार, अशावतार, आवेशावतार, अर्चावतार, हार्दावतार आदि।

श्रीमद्भागवत (२।७), मत्स्यपुराण (४७।२४२) इत्यादि धर्मग्रन्थाम विष्णुके अवताराम 'दत्तात्रेय' का त्रेतायुगका अवतार कहा गया है।[१] ब्रह्मपुराणम दत्तात्रेयको भार्गवरामसे पूर्वका अवतार कहा गया है। तन्त्रग्रन्थाम दत्तात्रेयको महेश्वरावतार कहा गया है। ब्रह्माण्डपुराण (२।३।८।८४)-म दत्तात्रय-माहात्म्य वर्णित है।[२] दत्तात्रेय साक्षात् भगवान् हैं—'**दत्तस्तु भगवान् स्वयम्।**' वे पूर्णकलायुक्त परमेश्वर हैं। दत्तात्रेयको भगवान् कहा गया है, क्याकि वे षडैश्वर्ययुक्त पूर्ण पुरुष हैं। ये ऐश्वर्य हैं—(१) पूर्ण ज्ञान, (२) पूर्ण वैराग्य, (३) पूर्ण यश, (४) पूर्ण श्री, (५) पूर्ण ऐश्वर्य और (६) पूर्ण वीर्य (धर्म)।

ब्रह्मपुराणमे भगवान् दत्तात्रेयके अवतारका प्रयोजन इस प्रकारसे वर्णित है—'सर्वभूताके अन्तरात्मा, विश्वव्यापी भगवान् विष्णु विश्वकल्याणहेतु पुन अवतीर्ण हुए और दत्तात्रेय नामसे विख्यात हुए।' वहाँपर आगे कहा है कि जब वेद नष्टप्राय हो गये थे, सत्ययुग होनेपर भी कलियुगकी कला मानो आ गयी थी, चातुर्वर्ण्य सकीर्ण हो गये थे, अपन-अपने धर्म (कर्तव्यकर्म)-म शिथिलता आ गयी थी अधर्मकी अभिवृद्धि एव धर्मका ह्रास होने लगा था, ब्राह्मणान नित्य-नैमित्तिक कर्म अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ-यागादि छोड दिये थे, वैसे विषम समयम वेदका पुनरुद्धार करनेहेतु एव धर्मक पुन स्थापन करनेहेतु भगवान्

१ दत्तात्रेयजोके नामसे एक उपपुराण 'दत्तपुराण' भी उपलब्ध है। इसमे भगवान् दत्तात्रेयक माहात्म्य-परिचयके साथ उनका आराधना-विधि भी विस्तारसे वर्णित है। इस पुराणमें वैष्णवधर्म योगसिद्धियाँ एव उनके साधन सप्तद्वीपाका परिचय भुवनकोश सूर्य-चन्द्रवशों एव मन्वन्तरोंक वर्णन आदिकी कथाएँ हैं। वर्णाश्रमधर्म गृहस्थाक कर्तव्य श्राद्धपद्धति कर्मविपाक दशावताराका कथाएँ, प्रह्लादचरित्र कार्तवीर्यचरित्र परशुरामचरित्र तथा देवी मदालसा आदिक अनेक श्रेष्ठ उपाख्यान वर्णित हैं। ऋग्वेदकी भाँति यह पुराण भी अष्टक तथा काण्डोंमें विभक्त है। इस पुराणकी श्लोक-सख्या लगभग चार हजार है और इसमे वर्णित योगचर्या अत्यन्त महत्त्वका है।

२ अत्रे पुत्र महात्मान शान्तात्मानमकल्मषम्। दत्तात्रेय तनु विष्णो पुराणना प्रचक्षते॥
~~~

विष्णुने दत्तात्रेयरूपमे अवतार लिया। ब्रह्माके मानसपुत्र महर्षि अत्रि एव प्रजापति कर्दमसुता महासती अनसूयाके माध्यमसे दत्तात्रेय पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। उन्होने श्रुतियाका उद्धार किया, वैदिकधर्मकी स्थापना की, लोगाको अपने-अपने कर्तव्यकर्मका उपदेश दिया, सामाजिक वैमनस्यका निवारण किया तथा भक्ताको त्रितापसे मुक्तिका—सच्चे सुख-शान्तिका मार्ग दिखलाकर आवागमनस मुक्त करवाया।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणम ऐसा उल्लेख हे कि विष्णु, महेश्वर और ब्रह्मा (त्रिदेव) महर्षि अत्रि एव अनसूयाके पुत्ररूपमे दत्तात्रेय, दुर्वासा तथा चन्द्र (प्रजापति) नामसे अवतीर्ण हुए।

मार्कण्डेयपुराण (अध्याय १७)-मे कहा गया है कि अत्रि-अनसूयाके पुत्रामे प्रथम पुत्र 'सोम' ब्रह्माजीके अवतार रजोगुणप्रधान थे, द्वितीय पुत्र 'दत्तात्रेय' विष्णुके अवतार सत्त्वगुणप्रधान थे और तृतीय पुत्र 'दुर्वासा' महेश्वरके अवतार तमागुणप्रधान थे।

मत्स्यपुराणमे वर्णित भगवान्‌की वारह विभूतियामे दत्तात्रेयका समावेश हे। उनके जन्मके विषयमे विस्तृत एव सक्षिप्त वर्णन शिवपुराण, स्कन्दपुराण भविष्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण, श्रीमद्भागवत, वायुपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण आदिमे है।

भगवान् दत्तात्रयके अवतार-स्थानके विषयमे स्कन्दपुराण (माहेश्वर खण्ड, अध्याय २२, श्लोक १७-१८) म ऐसा वर्णन आया हे कि 'महर्षि अत्रि एव महासती अनसूया' गुजरात-प्रदेशके स्तम्भतीर्थ (खभात)-के समीपक महीसागर-सगम स्थानपर आश्रम बनवाकर दीर्घ कालतक तपस्या करते थे। उसी पवित्र स्थानम भगवान् दत्तात्रेयका आविर्भाव हुआ। महर्षि अत्रिने वहाँपर अत्रीश्वर नामक शिवलिङ्गकी सविधि स्थापना की थी। स्कन्दपुराणम ऐसा भी कहा गया हे कि 'भृगुकच्छ (भडोच)-के समीपके रेवा-सागर सङ्गमके सन्निकटम सुवर्णशिला-स्थानम दत्तात्रेयका अवतार हुआ था।' गुजरातक नर्मदातटस्थ अनसूया-तीर्थको भी दत्तात्रेय-अवतार-स्थान माना जाता हे। नारदपुराणक अनुसार महाराष्ट्र प्रदेशम वर्धाके समीपस्थ माहुरगढ दत्तात्रेयजीका जन्मस्थान है। 'शुचिन्द्रम्-माहात्म्य' नामक धर्मग्रन्थम करल प्रदेशक त्रिवन्द्रम्‌के समीपस्थ शुचिन्द्रम् तीर्थम दत्तात्रेयका अवतार होनेका वृत्तान्त है। वहाँपर भगवान् दत्तात्रेयकी मूर्ति भव्य मन्दिरम स्थापित हे। मलयालम भाषाम त्रिमूर्ति दत्तात्रयको 'थानूमल्लायम्' कहत हैं। उनके चमत्कारकी अनेक कथाएँ ग्रन्थाम वर्णित हैं।

रेवातटस्थ अनसूयातीर्थमें त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर)-ने भगवती अनसूयाके सतीत्वकी परीक्षा ली थी, फलत अनसूयाने अपने पातिव्रत्यकी महाशक्तिसे त्रिदेवाको शिशु बना दिया था।

विविध धर्मग्रन्थाका अध्ययन करनपर एसा प्रतीत होता है कि 'भगवान् दत्तात्रेयका अवतार सत्ययुगक प्रारम्भम स्वायम्भुव मन्वन्तर' के मार्गशीर्ष पूर्णिमा सोम्यवासर, सायकाल शुभ मुहूर्तम हुआ था।

कुछ पुराणग्रन्थोसे ऐसा भी प्रमाण मिलता है कि दत्तात्रय अयोनिज सतान थे अर्थात् अनसूयागर्भसम्भूत नहीं थे। मराठी भाषाके प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ 'श्रीगुरुचरित्र' म 'त्रिमूर्ति दत्तात्रेय' के विषयम लिखा है कि साम, दत्तात्रय एव दुर्वासाका यज्ञोपवीत-सस्कार होनेके वाद साम और दुर्वासाने अपना स्वरूप तथा तेज दत्तात्रेयको प्रदानकर तपस्याहतु अरण्यके लिये प्रस्थान किया। अत दत्तात्रेय तीन स्वरूपवाले (त्रिमूर्ति) ओर तीन तेजासे युक्त (त्रिशक्तिसम्पन्न) हुए—*'त्रयमूर्ति एक्य होऊन, दत्तात्रेय राहिला आपण, दुर्वासा चन्द्र निरोप घेऊन, गेले स्वस्थाना अनुष्ठानासी॥'*

श्रीगुरुचरित्रम दत्तात्रेयजाके आविर्भाव (अवतार)-के समयका स्वरूप-वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे त्रिगुणात्मक त्रिमूर्ति, ब्रह्मा, विष्णु, महश्वर—त्रिदेवका एकीभूतरूप थे। वे त्रिमुख, षड्भुज मस्तकपर जटामुकुटसे युक्त भस्मभूषित अङ्गवाले, ग्रीवाम रुद्राक्ष-मालासे शाभित दाहिने हाथम अक्षमाला तथा अन्य हाथाम डमरु शङ्ख, त्रिशूल, कमण्डलु और चक्र धारण किये हुए हैं। योगमार्गक प्रवर्तक दत्तात्रेय शाम्भवीमुद्राम शाभित हैं।

दत्तात्रेयके विषयम वहाँ आगे कहा गया है—

भक्तानुग्रहकृन्नित्य पापतापार्तिभञ्जन ।
बालोन्मत्तपिशाचाभ स्मर्तृगामी दयानिधि ॥

अर्थात् श्रीदत्तात्रेयजी भक्तापर नित्य अनुग्रह (कृपा) करनकी प्रवृत्तिवाले भक्तजनाक पाप एव त्रितापका निवारण करनेवाले अदरसे बालकक समान सरल एव शुद्ध और वाहरसे उन्मत्त तथा पिशाच (भूत)-से दिखायी पडनवाले हैं, सच्चे हृदयसे उनका स्मरण करनेपर वे तुरत प्रकट हो जानवाले और दयाक सागर हैं।

दत्तात्रयक त्रिमूर्तिस्वरूपक विषयम कहा गया है कि

'एका मूर्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥'

दत्तात्रेयके त्रिमूर्तिस्वरूपकी प्रार्थनाम कहा गया है—

जगदुत्पत्तिकर्त्रे च स्थितिसहारहेतवे।
भवपाशविमुक्ताय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते॥

कवि दासोपन्तलिखित ग्रन्थ 'दत्तात्रेयसर्वस्व' म दत्तात्रेयक त्रिमूर्तिस्वरूपक विषयमे लिखा है कि '**शीर्षत्रयेणसहित शीर्षवेदत्रयस्य**' साराश यह हे कि त्रिमूर्तिके तीन मस्तक तीन वेदका प्रतिपादन करते हें।

महाकवि कालिदास कुमारसम्भव (२।४)-मे त्रिमूर्ति दत्तात्रेयकी प्रार्थना करते हैं—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्य प्राक् सृष्टे केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे॥

सृष्टिकी उत्पत्तिसे पहले केवल '**एकमेव अद्वितीय**' परब्रह्म था, बादमे त्रिगुणात्मक-सृष्टिका निर्माण करनके लिये सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोका भेद हुआ, तत्पश्चात् गुणानुभेदरूप ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर हुए। ऐसे त्रिमूर्तिस्वरूप दत्तात्रेय! आपको मेरा नमस्कार ह।

कवि बाण, कवि शूद्रक, कवि मल्लिनाथ आदिने अपने-अपने ग्रन्थाम त्रिमूर्तिस्वरूप दत्तात्रेयके प्रति आदरभाव अभिव्यक्त किया है। मलयालम भाषाके ग्रन्थ 'शुचिन्द्रम्-माहात्म्य' म दत्तात्रेयक त्रिमूर्तिस्वरूपको प्रणव (ॐ)-का आद्यस्वरूप कहा है और अश्वत्थवृक्षमसे त्रिमुख दत्तात्रेयका स्वयभू महाज्यातिर्लिङ्ग रूपम प्रकट होनेका वर्णन हे। 'दत्तात्रेय-अवतार' के विषयम ऐसा वृत्तान्त हे कि जव त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर) महर्षि अत्रिके उत्कट तपसे तथा मती अनसूयाकी उच्चकोटिकी भक्तिसे अति प्रसन्न हुए तब उन्हाने '**वर ब्रूहि**' (वर माँगो) ऐसा कहा। तब अत्रिने त्रिमूर्ति-स्वरूपके दर्शनकी इच्छा अभिव्यक्त की। अनसूयाने तो तीना देवाको अपने पुत्ररूपम प्रकट हानेकी महेच्छा जतायी। त्रिदवाने अत्रि एव अनसूयाकी इच्छा पूर्ण करनेका सहर्ष स्वीकार किया ओर वेसा ही किया। अत्रिका त्रिदेवके दर्शनसे उत्तम ज्ञानलाभ हुआ कि '**एको दवस्त्रिधा स्मृत**' (तीन दव भिन्न-भिन्न हानेपर भी वस्तुत वे एक ही हें)। अनसूयाने त्रिदवको अपने पुत्र (१) साम (२) दत्तात्रेय (३) दुर्वासाके रूपम प्राप्तकर मातृवात्सल्य प्राप्त किया दवमाता एव महासती बननका दिव्य आनन्द-लाभ किया। इस कथाका तात्पर्य यह हुआ कि त्रिदवके दिव्य दर्शनसे अत्रि महाज्ञानी हुए और देवी अनसूया पराभक्तिसम्पन्ना हुईं। वस्तुत परमज्ञान एव पराभक्ति अभिन्न ही है।

शिवपुराण (शतरुद्रसहिता अध्याय १९), श्रीमद्भागवत (४।१)-म एसी कथा वर्णित हे कि महर्षि अत्रि स्वपत्नी अनसूयाके साथ पिता ब्रह्माकी आज्ञा लेकर त्र्यक्षकुलपर्वत (चित्रकूट)-मे सुपुत्रकी कामनासे उत्कट तपस्या करनेहेतु चल पड, 'जो एक अविकारी महाप्रभु हैं, परमेश्वर हैं, वे हमे पुत्ररूपमे प्राप्त हो।'—ऐसा महर्षि अत्रिका सकल्प था। अत्रिके दीर्घकालीन उत्कट तपस त्रिदेव प्रसन्न हुए और उनके सम्मुख प्रकट हुए। अत्रिने शका व्यक्त की कि मेंने तो एक अविकारी, निराकार ईश्वरके लिये तपस्या की थी, किंतु आप तीन अलग-अलग देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर) साकाररूपमे मरे समक्ष क्या उपस्थित हुए हैं? यह सुनकर तानो देवोने कहा कि 'हम जगत्की सृष्टि, स्थिति एव लयके तीन देव एक ही निर्गुण ब्रह्मके स्वरूप हैं।'

स्कन्दपुराणकी एक कथाम ऐसा वर्णन है कि एक बार अत्रि एव अनसूया अपने आश्रममे वैठे थे, तब महातपस्वी अत्रिके चक्षुआमसे भी तपका दिव्य तेज निकला और उसी समय महासती अनसूयाके चक्षुआमसे भक्तिका दिव्य तेज निकला। दोना तेज मिलकर घनीभूत हुआ और तेजस्वी दत्तात्रेयका प्राकट्य हुआ। अत दत्तात्रेय अयोनिज सतान हैं।

'दत्तात्रय-सर्वस्व' नामक ग्रन्थम दत्तात्रेय-त्रिमूर्तिका आध्यात्मिक रहस्य इस प्रकारसे बताया गया है—भगवान् दत्तात्रेय प्रणव (ॐ)-स्वरूप हें, उनके तीन मस्तक प्रणवकी तीन मात्राएँ (अ उ, म्) ह, जो उनका व्यक्तस्वरूप है। प्रणवकी अर्धमात्रा एव विन्दु उनका अव्यक्तस्वरूप है। प्रणवकी विस्ताररूपा वेदमाता गायत्री गायके रूपम दत्तात्रेयके समीप खडी हैं। गायत्रासाधनासे प्राप्त (१) धर्म (२) अर्थ, (३) काम, (४) मोक्ष—ये चार श्वान (कुत्ते) दत्तात्रेयके चरणाक समीप रहत है। दत्तात्रेयके छ हाथ षडैश्वर्यके प्रतीक हें ओर दा पैर श्रेय एव प्रेयके द्योतक हैं। एसा दत्तात्रयमूर्तिका गूढ रहस्य है।

आधिदविक दृष्टिसे दत्तात्रेय भगवान् विष्णुके अवतार हें गाय पृथ्वी ह ओर चार श्वान गुण-कर्महान चार वण हें।

अत्रिका अर्थ ह त्रिगुणातात चैतन्य और अनसूयाका अर्थ है पराप्रकृति। इन दानाका सृजन हे भगवान् दत्तात्रयका प्रादुभाव। अत श्रादत्तात्रय आदिगुरु एव विश्वगुरु हैं।

अवधूत-उपनिषद्म दत्तात्रयका अति वर्णाश्रमी यागा

किवा पञ्चमाश्रमी कहा गया हे। उनको अवधूतश्रेष्ठ एव अवधूतकुलशिरोमणि कहा गया हे। अवधूत शब्दके चार अक्षराका अर्थ इस प्रकार हैं—(१) **अ—'अक्षरत्वात्'** अर्थात् अक्षरपरब्रह्मको प्राप्त अथवा कायासिद्धिप्राप्त (२) **व—'वरण्यत्वात्'** अर्थात् सबके द्वारा वरणीय (पूजनीय) (३) **धू—'धूतससारवन्धनात्'** अर्थात् जिनके सभी सासारिक बन्धन अपने-आप छूट गये ह तथा (४) **त—'तत्त्वमस्या-दिलक्ष्यत्वात्'** अर्थात् जिनका लक्ष्य निरन्तर ही **'तत् त्वम् असि'** महावाक्य हे। इन चारा अक्षरा (अ, व, धू, त)-के गुणासे युक्त महात्माको अवधूत कहते ह। भगवान् दत्तात्रेयको तन्त्र-ग्रन्थामे परमावधूत कहा गया है। वे अवधूतकुलशिरामणि हैं। दत्तात्रय-तन्त्रम कहा ह कि—

कदा यागी कदा भोगी कदा नग्नपिशाचवत्।
दत्तात्रेयो हरि साक्षाद् भुक्तिमुक्तिप्रदायक ॥

साराश यह ह कि दत्तात्रेय हरि (विष्णु)-के अवतार होनेसे साक्षात् हरि हे आर भक्ताको भुक्ति (सासारिक सुख) एव मुक्ति (पारमार्थिक सुख) प्रदान करनेवाले हैं। आद्यशङ्कराचार्यने जीवन्मुक्तानन्दलहरी ग्रन्थम दत्तात्रेयको त्रिभुवनजयी परमावधूत कहा हे।

दत्तात्रय-सर्वस्व नामक ग्रन्थमे दत्तात्रेयको यतिश्रेष्ठ, योगिराज, जगद्गुरु इत्यादि कहा गया है।

त्रिपुरारहस्यम महामुनि दत्तात्रयजीको भगवान् विष्णुका अशावतार आर यागीश्वर माना गया है, साथ ही तन्त्रमार्गका श्रेष्ठ पथिक भी कहा गया है—

श्रीविष्णोरशयोगीशो दत्तात्रेयो महामुनि ।
गूढचर्यां चरँल्लाक भक्तवत्सल एधते॥

(त्रिपुरारहस्य मा०ख० ३)

विष्णुके रूपम अवतरित होकर भगवान् दत्तने जगत्का बडा ही उपकार किया हे। इनकी प्रकृति शान्त थी। इन्हाने चोवीस* गुरुआसे दिव्य भावपूर्ण शिक्षा ग्रहण कर अन्तम विरक्ति ली थी ओर कार्तिकेय, श्रीगणश प्रह्लाद यदु, अलर्क राजा पुरूरवा आयु, परशुराम तथा हैहयाधिपति कार्तवीर्य आदिको यागविद्या एव अध्यात्मविद्याका उपदश दिया था। ये जीवन्मुक्त हाकर यावज्जीवन सद्गुरुक रूपम अपने भक्ताका अनुगृहीत करते हुए विचरण करते रहे (भाग० २।७)। भगवान् शकराचार्य गोरक्षनाथ तथा सिद्धनागार्जुनादि इन्हींकी कृपापात्रताको प्राप्त हुए। ये परम भक्तवत्सल कहे गये हैं। भक्तके स्मरण करते ही ये तत्क्षण उनके पास पहुँच जाते हैं, इसीलिये इन्हे—'स्मृतिगामी' तथा 'स्मृतिमात्रानुगन्ता' कहा गया है।

पुराणोम इनका जो स्वरूप प्राप्त होता हे, उससे यह निश्चित होता हे कि य अवधूत-विद्याके आद्य आचार्य थे। इनक अवधूत हानेका इसस प्रबल प्रमाण आर क्या हो सकता है कि ये प्रात काल वाराणसीम स्नान करते हैं, कोल्हापुरके देवी-मन्दिरम जप-ध्यान करते हैं, माहुरीपुर (मातापुर)-में भिक्षा ग्रहण करते हे तथा सह्याद्रिमे विश्राम करते हैं—

वाराणसीपुरस्नायी कोल्हापुरजपादर ।
माहुरीपुरभिक्षाशी सह्यशायी दिगम्बर ॥

(दत्तात्रेय-वज्रकवच ३)

पद्मपुराण-भूमिखण्डके वर्णनसे ज्ञात होता है कि दत्तात्रेयजीको भगवान् धर्मका साक्षात्कार हुआ था। इसीलिये ये 'धर्मविग्रही' भी कहलाते हैं। य श्रीविद्याके परम आचार्य हे। परशुरामजीको इन्हाने अधिकारी जानकर श्रीविद्याका उपदेश *किया था।* उनकी परा-विद्याका उपदेश त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य-खण्डक नामसे प्रसिद्ध है। ये सिद्धाके परम आचार्य कहे गये हे। दासोपन्त महानुभाव, गोसाईं तथा गुरुचरित्र इनके नामपर अनेक सम्प्रदाय हैं। इनका दत्त-सम्प्रदाय दक्षिण भारतम विशप प्रसिद्ध है। 'गिरनार' श्रीदत्तात्रेयजीका सिद्धपीठ हे। त्रिपुरारहस्यके अनुसार इनका एक आश्रम गन्धमादनपर्वतपर भी है। इनकी गुरुचरण-पादुकाएँ वाराणसी तथा आबूपर्वत आदि कई स्थानाम हैं। इनका बीजमन्त्र **'द्राँ'** है। चिरजीवी होनेके कारण इनके दर्शन अब भी भक्ताको होते हैं। ऐसे विष्णुके अवतार भगवान् दत्तात्रयको कोटिश वन्दन है।

~~०~~

* इनके चौबीस गुरुआके नाम भागवतमें इस प्रकार आये हैं—पृथ्वी वायु, आकाश जल अग्नि चन्द्रमा सूर्य कबूतर, अजगर, समुद्र पतग भौंरा या मधुमक्खी हाथी शहद निकालनवाला हरिन मछली पिङ्गला वेश्या कुरर पक्षी बालक कुँआरी कन्या बाण बनानेवाला सर्प मकड़ी और भृङ्गी कीट (११।७।३३-३४)।

श्रीकृष्णावतार-मीमासा

(डॉ० श्रीवीरेन्द्रकुमारजी चौधरी एम्०ए० (सस्कृत), पी-एच्०डी०)

भक्तवत्सल भगवान् विष्णुके लीलावताराम श्रीकृष्णावतारकी बडी महिमा है। भगवान् भक्ताको अभय करनेवाले हैं। वे सर्वत्र सब रूपम हे, उन्ह कहीं आना-जाना नहीं पडता हे, इसलिय वे वसुदेवजीके मनम अपनी समस्त कलाआक साथ प्रकट हो गये। उनमे विद्यमान रहनेपर भी भगवान्ने अपनेको अव्यक्तसे व्यक्त कर दिया। उनकी दिव्य ज्योतिको धारण करनेके कारण वसुदेवजी सूर्यके समान तेजस्वी हो गये। अब उन्ह कोई भी अपने बल, वाणी या प्रभावस दबा नहीं सकता था—

> भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्कर ।
> आविवशाशभागेन मन आनकदुन्दुभे ॥
> स बिभ्रत् पौरुष धाम भ्राजमानो यथा रवि ।
> दुरासदाऽतिदुर्धर्षो भूताना सम्बभूव ह॥
>
> (श्रीमद्भा० १०।२।१६-१७)

भगवान् श्रीहरिक दिव्य ज्योतिर्मय अशको जो जगत्का परम मङ्गल करनेवाला है वसुदेवजीक द्वारा आधान किये जानपर देवी देवकीने ग्रहण किया। जैसे पूर्व दिशा चन्द्रदेवको धारण करती हे, वेसे ही शुद्धसत्त्वसे सम्पन्न देवी देवकीन विशुद्ध मनस सर्वात्मा एव आत्मस्वरूप भगवान् श्रीविष्णुको धारण किया—

> ततो जगन्मङ्गलमच्युताश
> समाहित शूरसुतेन देवी।
> दधार सर्वात्मकमात्मभूत
> काष्ठा यथाऽऽनन्दकर मनस्त ॥
>
> (श्रीमद्भा० १०।२।१८)

भगवान् सारे जगत्क निवासस्थान ह, किंतु माता देवकी उनका भी निवासस्थान बन गयीं। भाद्रमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीतिथिकी अधरात्रिमे जब रोहिणी नक्षत्र था और चारा ओर अन्धकारका साम्राज्य था, उसी समय सबक हृदयम विराजमान रहनेवाल तथा जन्म-मृत्युके चक्रसे छुडानेवाल जनार्दन भगवान् विष्णु पूर्वदिशामे सालहा कलाआसे पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति देवी देवकीक गर्भसे प्रकट हुए—

> निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने।
> देवक्या देवरूपिण्या विष्णु सर्वगुहाशय ।
> आविरासीद् यथा प्राच्या दिशीन्दुरिव पुष्कल ॥
>
> (श्रीमद्भा० १०।३।८)

उस समय बालक श्रीकृष्णक नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल थे। वे चार सुन्दर हाथाम शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए थे। उनके वक्ष स्थलपर श्रीवत्सका चिह्न था। गलमे कौस्तुभमणि झिलमिला रही थी। वर्षाकालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीरपर मनोहर पीताम्बर फहरा रहा था। बहुमूल्य वैदूर्यमणिके किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे उनके सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणाक समान चमक रहे थे। कमरमे चमचमाती करधनाकी लडियाँ लटक रही थीं। बाँहाम बाजूबद और कलाइयाम कङ्कण शोभायमान हा रहे थे। इन सब आभूषणास सुशाभित उनके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही थी—

> तमद्भुत बालकमम्बुजेक्षण
> चतुर्भुज शङ्खगदार्युदायुधम्।
> श्रीवत्सलक्ष्म गलशोभिकौस्तुभ
> पीताम्बर सान्द्रपयोदसौभगम्॥
> महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल-
> त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
> उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि-
> विरोचमान वसुदेव ऐक्षत॥
>
> (श्रीमद्भा० १०।३।९-१०)

विश्वात्मा भगवान् विष्णुने अनेक कारणास श्रीकृष्णावतार लिया, जिनमे कुछका उल्लेख अवतार-रहस्याके उद्घाटनके लिये समासत अपेक्षित हे। उदाहरणार्थ—

१-स्वायम्भुवमन्वन्तरम जब माता देवकीका पहला जन्म हुआ था, उस समय उनका नाम पृश्नि था और वसुदेव सुतपा नामक प्रजापति थे। दोनाके हृदय बडे ही शुद्ध थे। दोनान सतान-प्राप्तिकी अभिलाषासे इन्द्रियाका दमन करक उत्कृष्ट तपस्या की। दोनाने वर्षा, वायु, धूप, उष्णता, शीत आदि कालके विभिन्न गुणाको सहन किया और प्राणायामक द्वारा अपने मनके मल धो डाले। दोनो कभी सूखे पत्ते खाकर और कभी हवा पीकर ही रह जाते थे। दोनाने भगवान् देवेश श्रीहरिम अपना निर्मल चित्त लगाकर परम दुष्कर और घोर तप किया। एसा करत हुए दोनान देवताआके बारह हजार

वर्ष व्यतीत कर दिये। उनकी परम तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्तिसे प्रसन्न होकर विश्वरूप भगवान् श्रीविष्णु उनकी अभीष्ट अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये उनके सामने प्रकट हुए। जब भगवान्ने उन दोनासे कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो' तब उन दोनाने महामायापतिकी मायासे मोहित होकर भगवान् श्रीहरि-जैसा पुत्र माँगा। कृपानिधान भगवान् श्रीविष्णु उन्हे मनोवाञ्छित वर देकर अन्तर्धान हो गये। इधर भगवान्ने ससारमे शील, स्वभाव, उदारता तथा अन्य गुणामे अपने-जैसा दूसरे किसीको नही देखा। ऐसी स्थितिमे भगवान्ने विचार किया कि मैंने उनको वर तो यह दे दिया कि मेरे-सदृश पुत्र होगा, परतु इसको में पूरा नहीं कर सकता, क्योंकि ससारमे वैसा कोई है ही नहीं। किसीको कोई वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा करके पूरी न कर सके तो उसके समान तिगुनी वस्तु देनी चाहिये। मेरे सदृश पदार्थके समान मैं ही हूँ। ऐसा विचार कर भगवान्ने स्वय उन दोनाके पुत्रके रूपमे तीन बार अवतार लेनेका निर्णय लिया। इसलिये भगवान् जब प्रथम बार उन दोनाके पुत्र हुए, उस समय वे पृश्निगर्भके नामसे जाने गये। फिर दूसरे जन्मम माता पृश्नि 'अदिति' हुईं और सुतपा 'कश्यप' हुए। उस समय भी भगवान् श्रीहरि उनके पुत्रके रूपमे प्रकट हुए। उस समय भगवान्का नाम उपेन्द्र था। शरीर छोटा होनेके कारण लोग उन्हे 'वामन' भी कहते थे। फिर द्वापरमे उन दोनाका तीसरा जन्म हुआ। इस जन्मम वही अदिति 'देवकी' हुईं और कश्यप 'वसुदेवजी' हुए। अपनी वाणीको सत्य करनेके लिये उन दोनाके पुत्रके रूपमे भगवान् लक्ष्मीपतिने द्वापरमे श्रीकृष्णावतार लिया।

२-भगवान् श्रीविष्णुके जय और विजय नामक दो द्वारपाल थे। वे दोना वैकुण्ठधाममे अपने उत्तरदायित्वके निर्वहणमे लगे हुए थे। एक दिन ब्रह्माके मानस पुत्र सनकादि ऋषि तीनो लोकामे स्वच्छन्द विचरण करते हुए वैकुण्ठधाममे जा पहुँचे। वे सनकादि ऋषि पाँच-छ वर्षके बच्चे प्रतीत हो रहे थे। वे वस्त्र भी नहीं पहने हुए थे। उन्हे साधारण बालक समझकर दोना द्वारपालाने उन्हे भीतर जानेसे रोक दिया। इसपर वे क्रोधित-से हो गये और उन्हाने उन दोना द्वारपालाको यह शाप दिया कि 'मूर्खो! भगवान् विष्णुके चरण तो रजोगुण और तमोगुणसे रहित हैं। तुम दोना इनके समीप निवास करनेयोग्य नहीं हो। इसलिये शीघ्र ही तुम दोना यहाँसे पापमयी असुरयोनिमे जाओ।' उनके इस प्रकार शाप देते ही जब वे दोना वैकुण्ठसे नीचे गिरने लगे तब उन कृपालु महात्माओने कहा—'अच्छा, तीन जन्मामे इस शापको भोगकर तुम दोना फिर इसी वैकुण्ठमे आ जाना। तदनन्तर वे दोना दितिके गर्भसे उत्पन्न हुए। उनमे बडेका नाम हिरण्यकशिपु था और उससे छोटेका हिरण्याक्ष। उन दोना भाइयाने ब्राह्मण सनकादि ऋषिके शापसे असुराका तामसी शरीर पाया। देवराज इन्द्रके गर्वको छुडानेवाले वे दोना सारे जगत्मे प्रसिद्ध हुए—

विप्र श्राप ते दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥
(रा०च०मा० १।१२२।५ ६)

भगवान् विष्णुने नरसिहावतार लेकर हिरण्यकशिपुको और वराहावतार ग्रहण करके पृथ्वीका उद्धार करनेके समय हिरण्याक्षको मारा—

हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिहरूपिणा।
हिरण्याक्षो धराद्धारे बिभ्रता सौकर वपु ॥
(श्रीमद्भा० ७।१।४०)

भगवान्के द्वारा मारे जानेपर भी वे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष इसलिये मुक्त नहीं हुए कि ब्राह्मणके शापका प्रमाण तीन जन्मके लिये था—

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥
(रा०च०मा० १।१२३।१)

अत वे ही दोना असुर त्रेतामे विश्रवा मुनिके द्वारा केशिनी (कैकसी)-के गर्भसे पुन राक्षसाके रूपमे पैदा हुए, उनमे बडेका नाम रावण था और उससे छोटेका कुम्भकर्ण। वे दोना भाई देवताओको जीतनेवाले, बडे बलवान् और महावीर योद्धा थे। उनके उत्पातासे सब लोकामे आग-सी लग गयी थी। भक्तप्रेमी भगवान् श्रीहरिने उन दोना भाइयाके कल्याणके लिये फिर श्रीरामावतार ग्रहण कर उनका वध किया—

'तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये।'
(श्रीमद्भा० ७।१।४४)

एक बार तिन्ह के हित लागी। धरउ सरीर भगत अनुरागी॥
(रा०च०मा०१।१२३।२)

फिर वे ही रावण और कुम्भकर्ण द्वापरमे युधिष्ठिरकी मासीके पुत्र बनकर शिशुपाल और दतवक्त्रके रूपमे उत्पन्न हुए। भगवान् श्रीहरिने उन दोनाके कल्याणके लिये श्रीकृष्णावतार ग्रहण किया। भगवान् श्रीकृष्णके चक्रका स्पर्श प्राप्त हो

जानसे उनके सारे पाप नष्ट हो गये और वे सनकादि ऋषियोंके शापसे मुक्त हो गये। वैरभावके कारण निरंतर ही वे भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन किया करते थे। उसी तीव्र तन्मयताके फलस्वरूप वे भगवान्‌को प्राप्त हो गये और पुनः उनके पार्षद होकर उन्हींके समीप चले गये—

वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम्।
नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ॥
(श्रीमद्भा० ७।१।४६)

३-द्वापरमें लाखों असुरोंके दलने अपने पापभारसे पृथ्वीको आक्रान्त कर रखा था। उनके अत्याचारसे माता पृथ्वी बहुत दुःखी और कातर हो गयी थीं। उनसे त्राण पानेके लिये वह ब्रह्माजीकी शरणमें गयीं। पृथ्वीने उस समय गौका रूप धारण कर रखा था। उसके नेत्रोंसे आँसू बह-बहकर मुँहपर आ रहे थे। उसका मन तो खिन्न था ही, शरीर भी बहुत कृश हो गया था। वह बड़े करुण स्वरमें रँभा रही थी। ब्रह्माजीके पास जाकर उसने उन्हें अपनी पूरी कष्ट-कहानी सुनायी—

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः।
उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत॥
(श्रीमद्भा० १०।१।१८)

तदनन्तर ब्रह्माजी भगवान् शंकर और अन्यान्य प्रमुख देवताओं तथा गोरूपमें आयी हुई पृथ्वीको अपने साथ लेकर उसके निदानके लिये क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ ब्रह्मादि देवताओंने पुरुषसूक्तके द्वारा परमपुरुष सर्वान्तर्यामी प्रभुकी स्तुति की। पृथ्वी और देवताओंकी करुण पुकारपर करुणायतन जगदीश्वर भगवान् श्रीविष्णुने पृथ्वी और साधुजनोंके कष्टको दूर करनेके लिये तथा विविध लीलाओंद्वारा धर्मकी संस्थापना करनेके लिये श्रीकृष्णावतार लिया।

४-राजा बलिकी कन्या थी रत्नमाला। जब भगवान्‌ने वामन-अवतार लिया, उस समय राजा बलिकी यज्ञशालामें भगवान् वामनके दिव्य रूपको देखकर रत्नमालाके हृदयमें उनके प्रति पुत्रस्नेहका भाव उदय हो आया। वह मन-ही-मन [illegible] लगी। [illegible] भगवान् वामनने उसके इस मनोरथका मन-ही-मन [illegible] किया। [illegible] पूतना हुई। उसको [illegible] [illegible] भगवान् श्रीकृष्णने [illegible] किया।

५-कंस अत्याचारी और महापापी था। प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, पूतना केशी और धेनुक कंसके साथी थे। ये सारे असुर किसी-न-किसी शापसे ग्रसित थे। भगवान् तो कृपासागर हैं। वे देवताओं और असुरोंके प्रति समान कृपाभाव रखते हैं। उन्होंने इन सारे दुष्ट असुरोंका उद्धार करनेके लिये श्रीकृष्णावतार लिया। भगवान् श्रीकृष्णने इन असुरोंको मारकर इनका ही कल्याण किया। कंस नित्य-निरंतर बड़ी घबड़ाहटके साथ श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता रहता था। वह खाते-पीते, चलते-फिरते, बोलते और साँस लेते—सब समय अपने सामने चक्रधर भगवान् श्रीकृष्णको ही देखता रहता था। इस नित्य चिन्तनके फलस्वरूप उसे सारूप्य मुक्ति मिल गयी, जिसकी प्राप्ति बड़े-बड़े तपस्वी योगियोंके लिये भी कठिन है—

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं
पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपञ्श्वसन्।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यत-
स्तदेव रूपं दुरवापमाप॥
(श्रीमद्भा० १०।४४।३९)

जैसे भृङ्गी कीड़ेको लाकर भीतपर अपने छिद्रमें बंद कर देता है, वह भय और उद्वेगसे भृङ्गीका चिन्तन करते-करते उसके जैसा ही हो जाता है, वैसे ही ये असुरादि भगवान् श्रीकृष्णसे वैर करके उनका चिन्तन करते-करते उनमें तन्मय हो गये और लीलावश उनसे युद्धके क्रममें उनके करकमलोंके पावनस्पर्शसे पापरहित होकर उन्हींको प्राप्त हो गये—

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन्।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्स्वरूपताम्॥
एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे।
वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया॥
(श्रीमद्भा० ७।१।२७-२८)

[illegible]

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो॥
(श्रीमद्भा० ७।१।३०)

[illegible]

परमेश्वर हे। वे ही सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वातीत, सर्वमय, निर्गुण-सगुण निराकार-साकार सौन्दर्य-माधुर्य ओर ऐश्वर्यक समुद्र एव परम प्रेमस्वरूप हें।

भगवान् श्रीकृष्णका जन्म आर मरण कभी नहीं होता है। वे अपनी योगमायासे नाना प्रकारके रूप धारण करके लोगाक सम्मुख प्रकट होते हैं। भगवान्की यह योगमाया उनकी अत्यन्त प्रभावशालिनी ऐश्वर्यमयी शक्ति है। भगवान्का अवतार जीवाके जन्मकी भाँति नहीं होता हे। वे अपन भक्तापर अनुग्रह करके उन्ह अपनी शरण प्रदान करनेके लिये तथा अनेक दिव्य लीला-कार्य करनेके लिये अपनी योगमायासे जन्म-धारणकी केवल लीलामात्र करते हैं। जब भगवान् अवतार लेते ह तब उनके अवतारतत्त्वको न समझनेवाले अज्ञानीलोग उनका जन्म हुआ मानते हं और जब वे अन्तर्धान हो जाते हैं, उस समय उनका विनाश समझ लते हैं। भगवान्का अवतारी शरीर प्राणियाक शरीरकी भाँति प्राकृत उपादानासे वना हुआ नहीं हाता है। उनका शरीर दिव्य, चिन्मय, प्रकाशमान, शुद्ध आर अलौकिक होता ह। मनुष्य भगवान्क जन्म-कर्मोंकी दिव्यताका जिस समय पूर्णतया समझ लेता हे, उसी समयसे वह आसक्ति, अभिमान अहकार आर समस्त कामनाआ तथा राग-द्वेषादि समस्त दुर्गुणाका त्याग करके समभाव, अनन्यभाव और निष्कामभावसे भगवान्की भक्ति करन लगता है और मरनक बाद उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह भगवान्के परमधामको चला जाता हैं। भगवान् श्रीकृष्ण स्वय कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नेति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

बुद्धावतार

(साहित्यवाचस्पति डॉ० श्रीरजनसूरिदेवजी)

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धक तृतीय अध्यायम भगवान्के अवताराका विशद वर्णन हुआ हे, जिसम बुद्धावतारका भी उल्लख हुआ हे। तदनुसार कलियुगका आरम्भ होनपर कीकटाकी भूमिपर (विहारके मगधदेशमें) देवद्वपियाको विमाहित करनके लिये मायादेवीक गर्भसे अजनसुत—बुद्धभगवान्के अवतारकी चर्चा हे, जो भगवान् विष्णुके इक्कीसव अवतारक रूपम पूजित हुए—

तत कलो सम्प्रवृत्त सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धा नाम्नाजनसुत कीकटेषु भविष्यति॥

(श्रीमद्भा० १।३।२४)

भगवान् विष्णु स्वय बुद्धके अवतार हुए, इसीलिये उन्ह बुद्ध भी कहा गया है—

'नमा बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमाहिने।'

(श्रीमद्भा० १०।४०।२२)

अर्थात् ह भगवन्! दत्य-दानवाको विमाहित करनेवाले शुद्ध अहिसामार्गक प्रवर्तक आप बुद्धरूपको नमस्कार है।

भागवतपुराणक अनुसार किसी दवताका मनुष्य आदि अथवा ससारी प्राणियाक रूपम शरार धारण करना ही अवतार है। पुराणानुसार विष्णुक चावास अवतार हें, जिनम दस अवतार प्रमुख हैं। व हें—मत्स्य कच्छप वराह, नृसिह वामन परशुराम राम कृष्ण बुद्ध और कल्कि। आचार्य क्षेमेन्द्रन भी इन्हीं दस अवतारापर महाकाव्यकी रचना की है।

आचार्य क्षेमेन्द्र (११वीं शती)-के परवर्ती जयदेव कवि (१२वीं शती)-न क्षेमेन्द्रके ही अनुसार भगवान् विष्णुके दस अवताराम बुद्धावतारकी परिगणना की है जिनकी मालवराग आर रूपकतालम आवद्ध अष्टपदि छन्दम प्रार्थना करत हुए वे कहते हें—

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ।
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हर॥

(दशावतारस्तोत्र ९)

अर्थात् हे केशव! आपने अपने दयापूर्ण आर कोमल हृदयके कारण पशुहिसावाले यज्ञाकी निन्दा की है। हे बुद्धशरीरधारी जगदीश! आपकी जय हो।

कवि जयदवने विष्णुके दशावतारके गुणवैशिष्ट्यका आकलन करत हुए लिखा है—

वदानुद्धरत जगन्निवहते भूगालमुद्बिभ्रते
दैत्यान् दारयते बलि छलयते क्षत्रक्षय कुर्वते।
पौलस्त्य जयते हल कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लच्छान्मूर्च्छयत दशाकृतिकृत कृष्णाय तुभ्य नम ॥

अर्थात् दस अवतार धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है जिन्हान मत्स्यावतारम वदाका उद्धार किया

कच्छपरूप धारण कर पृथ्वीका वहन किया, वराहरूप लेकर समस्त भूगोलका उद्धार किया—समुद्रमें मग्न समग्र पृथ्वीको जलसे बाहर निकाला, नृसिंहरूप धारण कर हिरण्यकशिपु दैत्यका हृदयविदारण किया, वामनरूप धरकर बलिका छलनके व्याजसे उसके अहंकारको दूर किया, परशुरामका अवतार लेकर दुष्ट क्षत्रियोंका क्षय किया, रामावतारमें रावणका वध किया, बलरामका रूप लेकर हलास्त्रसे लोकभयका विनाश किया, बुद्धरूपमें अवतार लेकर कारुण्य—जीवदयाका विस्तार किया और वही आप अब कल्कि-अवतारमें म्लेच्छोंका क्षय करनेवाले हैं।

संस्कृतके महाकाव्योंकी परम्परामें आचार्य क्षेमेन्द्रके दशावतारचरित महाकाव्यका बहुत महत्त्व है। यों तो समग्र पौराणिक वाङ्मय ही दशावतारकी स्तुतियोंसे मुखरित है।

नवें बुद्धावतारके विषयमें आचार्य क्षेमेन्द्रने लिखा है कि अन्तमें भगवान् बुद्धने भी विष्णुत्वको प्राप्त किया था—

अथ स भगवान्कृत्वा सर्वं जगज्जिनभास्कर-
स्तिमिररहितं ज्ञानालोकं क्रमाद् गुणियान्धय।
जनकरुणया सद्धर्माख्यं निधाय परं वपु-
स्तरणशरणं संसाराब्धावभूत् पुनरच्युत॥

अर्थात् भगवान् बुद्धने सूर्यकी तरह अपने ज्ञानके प्रकाशसे सभी जीवोंके अज्ञानान्धकारको दूर कर दिया और उन्हें दुःख दैन्य पाप आदिसे मुक्त कर दिया। वे भगवान् भवसागरमें मग्न मनुष्योंके प्रति करुणाकी भावनासे सद्धर्म नामक उद्धारके रूपको धारण करके अन्तमें विष्णुस्वरूप हो गये।

आचार्य क्षेमेन्द्रने बुद्धावतारके हेतुका निर्देश करते हुए लिखा है—

कासे प्रयाते कलिविप्लवेन
राजगृहाग्रे भगवान् भयाब्धौ।
मज्जत्सु सम्मोहजले जनेषु
जगत्प्रियासे करुणान्वितोऽभूत्॥

अर्थात् कुछ समय बीत जानेपर कलियुगके उत्पात [illegible] गया। [illegible] और अज्ञानके [illegible] उमड़ आनेसे [illegible] डूबने लगे। [illegible] भगवान्‌को यह दुर्गति देखकर दया आ गयी।

[illegible] भगवान् [illegible] उत्पन्न [illegible] बुद्धके रूपमें (राजगृह) में [illegible] आते हुए—

स [illegible]

कृपाकुले शाक्यकुले विशाले।
शुद्धोदनाख्यस्य नराधिपस्य
धन्यस्य गर्भेऽवततार पत्न्याः॥

आचार्य शंकरने भगवान् बुद्धकी स्तुति दशावतारस्तुतिके क्रममें इस प्रकार की है—

धरावद्धपद्मासनस्थाङ्घ्रियष्टि-
र्नियम्यानिलं न्यस्तनासाग्रदृष्टिः।
य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती
स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु मच्चित्तवर्ती॥

अर्थात् भगवान् बुद्ध कलियुगमें योगियोंके चक्रवर्ती सदृश हैं। विधिवत् पद्मासनमें बैठकर प्राणवायुको संयत कर और नासिकाके अग्रभागपर दृष्टिको स्थिरकर तपोलीन वे (बुद्ध) हमारे चित्तमें प्रकाशित रहें।

इस प्रकार आदिशंकराचार्यने भगवान् बुद्धको योगस्थ महायोगीके रूपमें स्तवन किया है। आचार्य लक्ष्मणदेशिकेन्द्रने नगरवासी राक्षसोंको जीतनेके लिये चीवर धारण करनेवाले बुद्धरूपधारी विष्णुको प्रणाम किया है—

पुरा पुराणामसुरान् विजेतुं
सम्भावयन् चीवरचिह्नवेषम्।
चकार यः शास्त्रममोघकल्पं
तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम्॥
([illegible])

अर्थात् प्राचीन कालमें राक्षसोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये चीवर धारण करनेवाले एवं अमोघ शास्त्रकी रचना करनेवाले मूलस्वरूप बुद्धरूपधारी विष्णुको नमस्कार है।

[illegible] बुद्धका स्मरण किया गया है—

दुष्टयज्ञविघाताय [illegible]।
यो बुद्धरूपं दधौ [illegible] दयायै [illegible] ॥
([illegible])

[illegible] है—

पूर्वाह्ने विधि[illegible]
[illegible]
[illegible] बुद्ध[illegible]।

[illegible]

विलासमय चतुराईसे ब्रह्म मानकर, जिस ब्रह्मकी स्वाभाविक रूपसे अवमानना की गयी है, उसका खण्डन सासारिक कर्मके परित्यागकी विधिसे करनेम सदा तत्पर बुद्धके रूपम अवतार लेनेवाले आप (भगवान् विष्णु) ही हैं।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी विनय-पत्रिकामे दशावतारकी स्तुतिके क्रमम भगवान् बुद्धकी पशुवधमूलक यज्ञहिसाके निन्दकक रूपम स्तुति की है—

प्रबल पाखड महि-मडलाकुल देखि,
निद्यकृत अखिल मख कर्म-जाल।
शुद्ध बोधैकघन, ज्ञान-गुणधाम, अज
बौद्ध-अवतार वदे कृपाल॥
(विनय-पत्रिका ५२।८)

अर्थात् हे देव। समस्त पृथ्वीको प्रबल पाखण्ड (बलिके रूपम निरीह पशुआके वध)-से जकडी हुई देखकर यज्ञ-प्रक्रियाकी आपने निन्दा की। बुद्धावतारके रूपम आप शुद्ध रूप, ज्ञान-गुणक आश्रय, अजन्मा एव करुणाके सागर हैं। मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

बारहवीं शतीके वीरगाथाकालीन कवि चन्दवरदाईने भी अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' म भगवान् बुद्धको अवतारकी श्रेणीमे परिगणित किया है। उनके द्वारा उपस्थापित दशावतारका क्रम इस प्रकार है—

मच्छ कच्छ वाराह प्रनम्मिय।
नारसिह वामन फरसम्मिय॥[1]
सुअ दसरथ्थ हलद्धर नम्मिय।
बुद्ध कलक[2] नमो दह नम्मिय॥

ज्योतिषशास्त्रक प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहत्पाराशरहोराशास्त्रक द्वितीय अवतारक्रम-वर्णनाध्यायम विष्णुके दस अवताराके साथ ग्रहाके तादात्म्य स्थापित करनेके क्रमम बुद्धको बुधग्रहका अवतार कहा गया है—

रामोऽवतार सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायक।
नृसिहो भूमिपुत्रस्य बुद्ध सोमसुतस्य च॥

अठारहवीं शतीके पण्डित काशीनाथोपाध्यायद्वारा प्रणीत धर्मसिन्धुके दशावतारजयन्तीनिर्णयप्रकरणमे आश्विनशुक्ल दशमी तिथिको सन्ध्याम बुद्धावतार होनेकी बात लिखी गयी है—'**आश्विनशुक्लदशम्या साय बुद्धोऽभूत्।**'

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध सनातन-धर्मके अवतारी देवोम ही एक थे। वे कृपा और करुणाके अवतार थे। धर्मकी सस्थापनाके लिये जैसे भगवान् विष्णु राम और कृष्ण बनकर अवतरित हुए, वैसे ही पशुहिसाको रोकनक लिये वे बुद्धका अवतार लेकर आये। उनकी पूजा-वन्दनामे बौद्ध-वाङ्मयक बोधिचर्यावतार, दिव्यावदान ललितविस्तर एव बुद्धचरित-जैसे ग्रन्थ मुखर हैं।

~~ 0 ~~

कल्कि-अवतार

(डॉ० श्रीभानुशकरजी मेहता)

[कल्कि-अवतारकी पारम्परिक शास्त्रीय व्याख्यासे अलग विद्वान् लेखककी अपनी दृष्टि आधुनिक सन्दर्भोमे यहाँ व्यक्त की गयी है। लेखको उसी परिप्रेक्ष्यमे पढा जाना चाहिये—सम्पादक]

भारतीय इतिहास-पुराणकालके दस या चौबीस अवताराकी कथा पूरी होनेको है और उसमे केवल 'कल्कि-अवतार'-का अवतरण शेष है।

यह अवतार कब होगा कोई नहीं जानता, पर प्रतीक्षा सबको है। भगवान्का वचन है कि जब धर्मकी ग्लानि होती है तब 'अवतार' होता है। अपना युग देखे तो धर्मकी अपार ग्लानि हो चुकी है, अस्तु शीघ्र ही अवतार होना चाहिये।

देखे अन्य धर्मावलम्बी तथा विद्वान् क्या कहते हैं? एक साहित्यकार हैं—गार विडाल और उन्होने एक उपन्यास लिखा है 'कल्कि'। भारतीय पुराणस प्रेरित हो लिखे इस उपन्यासम एक वैज्ञानिक अपनेको कल्कि-अवतार घोषित करता है और असाध्य जीवाणुआकी वर्षा करके समस्त प्राणिजगत्का विनाश कर देता है। केवल उसके कुछ साथी बच जाते हैं जो क्रमश मर जाते हैं। पृथ्वी जीवविहीन हो जाती है। यहाँ दुष्टदलनकी बात नहीं है—प्राणिमात्रक विनाशकी कल्पना की गयी है। वैज्ञानिक लेखक एच्०जी० वेल्स कुछ अधिक कृपालु हैं। वे अपने उपन्यास 'शेप ऑफ थिंग्स टु कम' म त्वरित मृत्युकारक रोगकी कल्पना करते हैं और जो बच जाते हैं, वे नयी दुनिया बसाते हैं। दार्शनिक लेखक आल्डस हक्सले परमाणु युद्धक बादकी विभीषिकाका वर्णन करता है

१ फरसम्मिय—परशुराम २ कलक—कल्कि।

और नय सुखद युगकी—'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' की कल्पना करता है। यहाँ अवतारकी बात नहीं हे। मुझे याद हे एक बार मुम्बईके प्रसिद्ध निदेशक स्व० वासु भट्टाचार्यसे 'अवतार'-की चर्चा हो रही थी, तब सहसा भावी अवतारकी बात आयी और समस्या बनी कि यह अवतार कैसा होगा? प्रलयपयोधिमे मत्स्यावतार हुआ, भूखण्डको आधार देने कच्छपभगवान् पधारे। जलसे धरतीको निकालनेका काम वाराहने किया। पुनः विचार आया कि आज पीताम्बरधारी, धनुर्धर या हलधरभगवान् शायद स्वीकार नहीं होंगे। न गेरुआ चीवरधारी बुद्ध ही। तब भगवान् कैसे होंगे? एक समस्या यह भी हे कि आज दुनिया छोटी हो गयी है और उसमें सैकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं, अस्तु संस्कृत पाली या हिन्दीसे काम नहीं चलेगा। तब क्या वे कम्प्यूटर या टी०वी० पर प्रकट होंगे तथा सर्वभाषामें सुने पड़ेंगे? अवतार तो होना है, पर कैसे?

एक बात और ध्यानमें आयी कि पुराण अपने युगके दस या चौबीस अवतारोंकी चर्चा करते हैं, पर अर्वाचीन युगमें अनेक बार धर्मकी ग्लानि हुई और अवतार हुए या कहें महापुरुष आये, जिन्होंने नये युगकी स्थापना की। इनकी सूची बड़ी लम्बी है, फिर भी कुछ नाम देखें। हजरत मूसा आये और मिस्री शासकके अत्याचारसे जनताको मुक्त कराया तथा दस धर्मादेश दिये। आगे हज़रत इसा आये और यहूदी पुरोहितोंके अत्याचारसे मुक्ति दिलानेहेतु आत्म-बलिदान किया। हजरत मोहम्मदने अरबके पुरोहितोंके अनाचारसे लोगोंको मुक्त कराया, एक धर्मग्रन्थ दिया और भाइचारेका नया युग आरम्भ किया।

मुगल-साम्राज्य जड़ जमा चुका था और सम्राट् अकबरने 'दीन-इलाही' की स्थापना की और शायद इस समन्वयवादी धर्ममें वैदिक धर्म लुप्त हो जाता, पर ऐसे संक्रमण कालमें तुलसीका आविर्भाव हुआ और सनातन-धर्म बच गया। आज भी श्रीरामचरितमानस सनातनी लोगोंकी आधारशिला बना हुआ है। यही नहीं, तुलसीने देखा भारतवासी दुर्बल हो रहे हैं, अस्तु, अखाड़ोंकी स्थापना की, जहाँ बजरंगबलीकी पूजा होती है। एक बात ध्यान देनेकी है कि तुलसी सम्प्रदायवादी नहीं हैं—वे मसातमें सानेको तत्पर हैं। उनका रामद्रोही रावण भी वास्तवमें विष्णुभक्त है, वे सगुण-निर्गुणका समन्वय करते हैं।

जब देशमें धर्म-परिवर्तनकी आँधी चल रही थी, धर्म-परिवर्तित लोगोंके स्वधर्ममें लौटनेका मार्ग बन्द था, तब 'दयानन्द' का आगमन हुआ। वैदिक धर्मकी पुनः स्थापना हुई। ऐसे ही श्रीरामकृष्णदेव, स्वामी विवेकानन्दप्रभृति संत पधारे। भक्त-संतोंकी पूरी परम्परा है और उसमें अद्वैत वेदान्त-प्रवर्तक आदिशंकरसे लेकर रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्क, वल्लभाचार्य, चैतन्यतक सभी अवतार ही तो थे। मीरा, सूर कबीर और अष्टछापके कवि अवतारपुरुष ही हैं।

मुगल-साम्राज्यके पतनके बाद देश अराजकतासे जूझ रहा था—तब व्यापार करने कुटिल अंग्रेज आये और देशके राजा बन बैठे। बँटे हुए देशमें शस्त्र-युद्ध व्यर्थ सिद्ध हुआ, तब गाँधीका आगमन हुआ। वे आये सुदर्शन चक्रके स्थानपर 'चरखा' लेकर, वे आये तलवारके बदले 'अहिंसा' का अमोघ अस्त्र लेकर। भारत आजाद हुआ, पर चमत्कार यह कि 'अहिंसा' के प्रभावसे संसारके अनेक पराधीन राष्ट्र मुक्त हो गये।

अवतार देवभूमि भारतमें ही हो—ऐसा कुछ जरूरी नहीं हे। हमने रूसका मुक्ति-संग्राम देखा है। चीनमें माओत्से तुंगका स्वतन्त्रता-संग्राम देखा है और देखी है होचीमिन्हकी लड़ाई। पर सबसे अद्भुत थी अमरिकामें मार्टिन लूथर किंग जूनियरकी अहिंसक लड़ाइ, जिसका अश्वेत जातियोंकी मुक्तिमें अद्भुत योगदान है।

संक्षेपमें यह कि युग विकृत होता हे। धर्मका क्षय होता है, तो पुनः धर्मसंस्थापनार्थाय अवतार होता है। संत-महापुरुष आते हैं, नेतृत्व करनेवाले आते हैं, बलिदानी वीर आते हैं और पुनः धरती चैनकी साँस लेती है।

आज जब धरती काँप रही हे, समुद्र उद्विग्न हे, आदमी भगवान् बननेकी कुचेष्टा कर रहा हे। उन्नत विज्ञान उसे जड़ और निष्क्रिय बना रहा है, तब असंयमित कीट-पतंगा-सी बढ़ती आबादीको संयमित करनेहेतु अवतारकी प्रतीक्षा है।

पैगम्बर मोहम्मद साहबने कहा था '१४०० वर्ष बाद कयामत आ जायगी। एक नया मसीहा आयगा।' ईसाई धर्म कहता है—डूम्सडे होगा और तब नयी व्यवस्था स्थापित करने प्रभु ईसा पुनः पधारेंगे। सनातनधर्म कहता है कि कलियुग अपना समय पूरा कर लेगा, पापका घड़ा भर जायगा, तब महाविनाश होगा और उसके बाद पुनः सत्ययुग आयगा। भाषाएँ भिन्न हैं, पर बात एक ही है। वह श्वेत अश्वपर [illegible] आ रहा है—'विनाशाय च दुष्कृताम्' [illegible] और नवयुग स्थापित करने। वर्तमानके [illegible] करनेपर लगता है कि वह समय [illegible] गया है। शीघ्र ही कुछ होगा। [illegible] इष्टदेवचिन्तन, प्रभु[illegible], [illegible] ही रहे [illegible]

बहुधा [illegible] है, [illegible] सूर्योदयसे [illegible] नवोदय [illegible] भगवान् आ रहे हैं [illegible]

~~~o~~~
~~~

श्रीहरिके कलावतार भगवान् वेदव्यास

(डॉ० श्रीवदप्रकाशजी शास्त्री एम्०ए०, पी एच्०डी० डी०लिट्० डी०एस्-सी०)

पाराशर्यं परमपुरुष विश्ववेदैकयोनि
विद्याधार विमलमनस वेदवेदान्तवेद्यम्।
शश्वच्छान्त शमितविषय शुद्धबुद्धि विशाल
वदव्यास विमलयशस सर्वदाह नमामि॥
(पद्म० उ० २१९। ४२)

महर्षि पराशरके पुत्र, परम पुरुष सम्पूर्ण वैदिक शाखाआके उत्पत्तिस्थान, सम्पूर्ण विद्याआक आधार, निर्मल मनवाल, वेदवेदान्ताके द्वारा परिज्ञेय, सदा शान्त, रागशून्य, विशाल, विशुद्ध-बुद्धि तथा निर्मल यशवाले महात्मा वेदव्यासजीको म सर्वदा नमस्कार करता हूँ।

भगवान् वेदव्यास भारतीय ज्ञानगङ्गाक भगीरथ माने जाते हैं। इन्हाने राजर्षि भगीरथकी ही भाँति भारतीय लोकसाहित्यके आदि युगम हिमालयके बदरिकाश्रमम अखण्डसमाधि लगाकर अध्यात्म, धर्मनीति ओर पुराणकी त्रिपथयात्राका पहले स्वय साक्षात्कार कर फिर साहित्य-साधनाद्वारा देशक आर्य वाङ्मयको पवित्र बनाया एव लाकसाहित्यको गति प्रदान की। अनन्तके अशावतार भगवान् वेदव्यासजीकी साहित्य-साधनाने उन्हे भारतीय ज्ञानराशिका अनन्त महिमान्वित प्रतीक बना दिया है। उनक प्रणयनकी प्रचुरता उन्हे अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुष सिद्ध करती है। विद्वानाकी परीक्षाभूमि श्रीमद्भागवत-महापुराण[1] तथा समुज्ज्वल भावरत्नाकी निधि महाभारत, ब्रह्मसूत्र अष्टादश पुराण आदि उनकी उपर्युक्त महत्ताके प्रबल समर्थक हैं।[2] भगवान् व्यासकी गरिमाकी स्तुतिम कहा गया है कि जावनक धर्म, अर्थ, काम तथा माक्ष—चतुर्विध पुरुषार्थोंस सम्बन्ध रखनेवाला जा कुछ ज्ञान महाभारतम है, वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं है, कहीं और भी नहीं है—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥
(महा० आदि० ६२।५३)

हिमालयके रम्य शिखरपर जहाँ नर-नारायण नामके दो पर्वत हैं। भागीरथीके समीप विशाला बदरी नामक स्थानम भगवान् व्यासजीका आश्रम था। यहीं आकाशगङ्गाके निकट भगवान् व्यासके चक्रमणका स्थान था। इस स्थानकी पवित्रताका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि आज भी यहाँ पहुँचकर भावुक जनके मनम सात्त्विक भाव जाग उठते हैं। यहाँ भगवान् व्यासने वेदसहिताको चार भागाम विभक्त कर अपने प्रमुख शिष्याको उन सहिताआका अध्ययन कराया था। वेदाके इस विभाजनके कारण ही वे वेदव्यास नामसे प्रसिद्ध हुए।[3] पैलने ऋग्वेद, वैशम्पायनने यजुर्वेद, जैमिनिने सामवद तथा सुमन्तुने अथर्ववेदसहिताका सर्वप्रथम पारायण किया था।[4] इसी आश्रममे महाभारतयुद्धके पश्चात् तीन वर्षके उत्कृष्ट अध्यवसायसे श्रेष्ठ काव्यात्मक इतिहास—महाभारतकी रचना हुई।[5] इस पञ्चमवेद कहलानेका

---

१ इद भागवत नाम पुराण ब्रह्मसम्मितम्। उत्तमश्लोकचरित चकार भगवानृषि ॥ (श्रीमद्भा० १।३।४०)

२ यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरुर्महागिरि । उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते॥ (महा० आदि० ६२।४८)

३ विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद् व्यास इति स्मृत ॥ (महा० आदि० ६३।८८)

४ वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्। सुमन्तु जैमिनि पैल शुक चैव स्वमात्मजम्॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च। सहितास्तै पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिता ॥ (महा० आदि० ६३।८९-९०)

५ त्रिभिर्वर्षै सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनि । महाभारतमाख्यान कृतवानिदमद्भुतम्॥ (महा० आदि० ६२।५२)
वेदव्यासजीने कलिकालीन मानवको अल्पबुद्धि अल्पायु तथा कर्मविपाकम लिप्त देखकर उसके सार्वकालिक कल्याणके लिये वदाका विभाजन चार शाखाआमे किया था। (श्रीमद्भा० १।४।१५—२२) तथा महाभारतके व्याजसे वेदाका रहस्य सर्वसाधारणके लिये अनावृत किया था—'भारतव्यपदेशन ह्याम्नायार्थश्च दर्शित ।' (श्रीमद्भा० १।४।२९)
दुर्भगाश्च जनान् वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुपा। सर्ववर्णाश्रमाणा यद्दध्यौ हितममाघदृक्॥
ऋग्यजु सामाथवाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृता । इतिहासपुराण च पञ्चमो वेद उच्यते॥
स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूना त्रयी न श्रुतिगाचरा। कर्मश्रेयसि मूढाना श्रेय एव भवेदिह।
'इति भारतमाख्यान कृपया मुनिना कृतम्॥' (श्रीमद्भा० १।४। १८ २० २५)

गौरव प्राप्त है। इसे उन्होंने अपने पाँचवें शिष्य लोमहर्षणको पढ़ाया था। इस ग्रन्थरत्नकी विलक्षणताको लक्षित कर कहा गया है—

'दशार्थो सर्ववेदेषु भारत तु शतार्थकम्'

अर्थात् वेदकी प्रत्येक ऋचाके दस अर्थ हैं, परंतु महाभारतके प्रत्येक श्लोकके सौ अर्थ हैं।

भगवान् व्यासका वास्तविक नाम कृष्ण था। महाभारतकालीन दो कृष्ण प्रसिद्ध हुए हैं—वासुदेव कृष्ण और द्वैपायन कृष्ण। दोनों ही चन्द्रवंशके भूषण थे। इनकी माताका नाम सत्यवती था, जो चेदिराज वसु उपरिचरके वीर्यसे यमुनाके किसी द्वीपमें उत्पन्न हुई थी। उनका लालन-पालन यमुनातीरवासी दाशराजने किया था। ये ही सत्यवती कालान्तरमें पराशरमुनिके संयोगसे भगवान् व्यासकी माता बनीं। व्यासजी श्रीहरिके कलावतारके रूपमें हैं। श्रीमद्भागवत-महापुराणमें इस सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख है।[1]

व्यासजीका जन्म भी यमुनाके ही किसी द्वीपमें हुआ था। इसीलिये इन्हें द्वैपायन, कृष्णवर्ण शरीरके कारण कृष्ण या कृष्णद्वैपायन, बदरीवनमें निवासके कारण बादरायण तथा वेदोंका विस्तार करनेके कारण वेदव्यास कहा जाता है। ये अतीव कर्मठ, तत्त्वज्ञ एवं प्रतिभाशाली थे।[2] इनकी असीम प्रभविष्णुताके कारण महाभारतमें इन्हें त्रिदेवोंका समन्वित रूप प्रतिपादित किया गया है।[3] भागवतकारके रूपमें इनका उल्लेख करते हुए जयाशीके लिये इनका अभिवादन आवश्यक माना गया है।[4] महाभारत-कर्तृत्वके कारण इन्हें 'विशालबुद्धि' प्रतिपादित किया गया है।[5] इस पुराणपुरुषकी परम्परा ब्रह्मासे आरम्भ होती है और फिर क्रमशः वसिष्ठ, शक्ति, पराशर और व्यासका नाम आता है।[6] इस परम्पराके अनुसार ये महर्षि वसिष्ठके प्रपौत्र, महर्षि शक्तिके पौत्र, पराशरमुनिके पुत्र तथा महामुनि श्रीशुकदेवके जनक थे। ये अतीव पुण्यशील, निष्पाप एवं तपोनिधि थे।

व्यासजीकी माता सत्यवती ही कालान्तरमें राजा शान्तनुकी पत्नी और गाङ्गेय भीष्मकी माँ (विमाता) बनीं। अतएव भगवान् व्यास और पितामह भीष्मका सम्बन्ध अत्यन्त निकटका था।

सत्यवतीके पुत्र विचित्रवीर्यकी निःसंतान-मृत्यु हो जानेपर जब कुरुवंश अनपत्यताके कारण समाप्तिके कगारपर जा पहुँचा था, तब माता सत्यवतीकी आज्ञासे भगवान् व्यासने अपनी दिव्यशक्तिसे विचित्रवीर्यकी पत्नियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डुको तथा उनकी दासीसे विदुरको उत्पन्न कर कुरुकुलकी वंशवेलको बचाया था। आम्बिकेय—धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनादि सौ कौरव तथा पाण्डुके युधिष्ठिरादि पाँच पाण्डव हुए। कुरुकुलके अभिवर्धक भगवान् व्यास आजीवन हस्तिनापुरके राजनीतिक उतार-चढ़ावसे घनिष्ठरूपसे सम्बद्ध रहे।

धृतराष्ट्र, पाण्डु आदिके जन्मके पश्चात् भगवान् व्यास हस्तिनापुरसे नातिदूर (यमुनानगर, हरियाणाके निकट) सरस्वती-तटपर आश्रम बनाकर रहने लगे। वहाँसे वे प्रायः हस्तिनापुर आते रहते थे। पाण्डुके विविध संस्कार-सम्पादनके समय वे पाण्डवोंके साथ हस्तिनापुरमें विद्यमान रहे। पाण्डुकी और्ध्वदैहिक क्रियाके समय उन्होंने दुःखी माता सत्यवतीको हस्तिनापुरका परित्यागकर काशी जाकर

---

१ (क) द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये। जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः॥ (श्रीमद्भा० १।४।१४)

अर्थात् इस वर्तमान चतुर्युगीके तीसरे युग द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा वसुकन्या सत्यवतीके गर्भसे भगवान्‌के कलावतार योगिराज व्यासजीका जन्म हुआ।

(ख) कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः।
आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म॥ (श्रीमद्भा० २।७।३६)

अर्थात् समयके फेरसे लोगोंकी समझ कम हो जाती है, आयु भी कम होने लगती है। उस समय भगवान् जब देखते हैं कि अब ये लोग मेरे तत्त्वको बतलानेवाली वेदवाणीको समझनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं, तब प्रत्येक कल्पमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमें प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्षका विभिन्न शाखाओंके रूपमें विभाजन कर देते हैं।

२ जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः। यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥ (वायुपु० १।१।२)

३ अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः। अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः॥

४ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ (श्रीमद्भा० १।२।४)

५ नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र। येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥ (ब्रह्मपु० २४५।११)

६ व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्। पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्॥

योगम चित्त लगानेका परामर्श दिया था। कौरव-पाण्डवाकी अस्त्रपरीक्षाके समय भी व्यासजी हस्तिनापुरम थे। वनवासक समय पाण्डवाको एकचक्रानगरीम आयोजित द्रौपदी-स्वयवरमें भाग लेनेकी प्रेरणा व्यासजीने ही दी थी। पाण्डवाकी प्रत्येक विपदाम व्यास और उनका अमोघ मन्त्र पाण्डवाके साथ रहा। राज्य-प्राप्ति हो जानपर व्यासजीने ही पाण्डवाको राजसूययज्ञ करनेके लिये प्रेरित किया था। इस यज्ञम ईर्ष्या, द्वेष और व्यग्यासे ऐसा वानक बना कि महाभारतयुद्ध अवश्यम्भावी हो गया। स्थितिकी विषमताको देखकर व्यासजी युधिष्ठिरको क्षत्रियाके भावी विनाशकी सूचना दे, कैलासयात्रापर चले गये।[१] कुछ समय बाद पाण्डवाकी दशाम पुन परिवर्तन आया, उन्हे द्यूतम सर्वस्व हारकर वनकी राह लेनी पडी। व्यासजीने समाचार पाते ही शीघ्र आकर धृतराष्ट्रको पाण्डवाके साथ न्याय करनेके लिये समझाया और स्वय द्वैतवनम जाकर पाण्डवासे भेट की। वहाँ उन्हाने युधिष्ठिरको प्रतिस्मृति नामक सिद्ध विद्या देकर अन्यत्र रहनेकी सम्मति दी। परामर्शानुसार पाण्डवाने सरस्वतीतटवर्ती काम्यक वनम अपना आवास बनाया। पाण्डवोंक वनवासके बारह वर्ष समाप्त हानेके पश्चात् व्यासजीने पुन एक बार उनके पास आकर धर्म और नीतिसे परिपूर्ण आत्मसयमका उपदेश दिया, जिसके कारण वे अज्ञातवासका तेरहवाँ वर्ष विषम स्थितियामे रहकर भी सफलतापूर्वक बिता सके। तेरहवे वर्षके बाद जब युधिष्ठिरने अपना राज्य वापस माँगा, तब व्यासजीने फिर धृतराष्ट्रको समझाया, परतु बली-क्रूर कालके सामने मनीषी व्यास और वयोवृद्ध प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रकी एक न चली। त्रिकालज्ञ व्यास कालकी महिमासे सुपरिचित थे। कालकी सत्ताम विश्वास उनके दर्शनका अभिन्न अङ्ग था, जिसे उन्होने अनेकश महाभारतमे प्रकट किया है—'काल सबका मूल है, काल ससारके उत्थानका बीज है काल ही अपने वशम करके उसे हडप लेता है। यही काल समय आनेपर बलवान् बनकर पुन दुर्बल बन जाता है।'[२] कुरुक्षेत्रके सर्वक्षत्रियक्षयकारी युद्धको स्वय देखकर भगवान् व्यासने कालकी अमित महिमाके ध्यानसे अपने चित्तका धैर्य बँधाया। जिस समय कुरुक्षेत्रम दोना ओरसे कौरव-पाण्डवाकी सेनाएँ उपस्थित हुईं, तब भी व्यासजीने धृतराष्ट्रको समझाकर युद्ध रोकनेका प्रयत्न किया, पर उनकी एक न चली। युद्धकालम भी वे सदैव स्थितिको सँभालते रहे और युद्धके अन्तम शोकमग्न धृतराष्ट्रको तथा करुणाविगलित युधिष्ठिरको समझा-बुझाकर धैर्य बँधाया, शोकसन्तप्त, तप काम युधिष्ठिरको राज्यके लिये तैयारकर धर्म और अध्यात्मकी शिक्षाके लिये पितामह भीष्मके पास भेजा और अश्वमेध करनेकी प्रेरणा दी। युद्धके सोलह वर्ष पश्चात् पुन धृतराष्ट्रसे हिमालयपर जाकर भेट की और उनके राग-द्वेषाभिभूत मनको अपनी सुधासिक्त वाणीसे आप्लावित कर तपस्याभिमुखी बनाया। जब सरस्वती तीरवासी आभीराने वृष्णिवशकी स्त्रियाको अर्जुनके देखते-देखते लूट लिया, तब शोक और अपमानसे भग्नहृदय अर्जुन अन्तिम बार भगवान् वेदव्यासके दर्शनके लिये गये। व्यासजीने उन्हे कालचक्रके उत्थान और पतनका उपदेश देकर विदा किया।

जन्म और कार्यस्थल—भगवान् वेदव्यासके जन्म और कार्यस्थलके सम्बन्धम यद्यपि विभिन्न किवदन्तियाँ प्रचलित हैं तथापि श्रीमद्भागवत, महाभारत और देवीभागवतके अनुसार यमुनाके अज्ञात द्वीपको महर्षि व्यासका जन्मस्थान मानकर उनका आश्रम प्रमुखत सरस्वतीतटवर्ती बदरीवनको ही विद्वानोने माना है। इस मान्यताका आधार व्यासकृत श्रीमद्भागवतादि रचनाएँ ही हैं। श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धम इस बातका प्रबल प्रमाण विद्यमान है कि भगवान् व्यासने अपना साधनारत जीवन सरस्वती-तटपर ही बिताया और देवर्षि नारदकी प्रेरणासे वहीं श्रीमद्भागवतकी रचना कर आत्मतोष प्राप्त किया।[३] यह स्थान कहाँ किस स्थितिमे है, इसका यत्किञ्चित् परिचय यहाँ देना असगत न होगा—

---

१ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कैलास पर्वत प्रति। अप्रमत्त स्थिरो दान्त पृथिवीं परिपालय॥ (महा० सभा० ४६।१७)

२ कालमूलमिद सर्वं जगद्बीज धनजय॥
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया। स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बल ॥ (महा० मौसल० ८।३३।३४)

३ स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जल शुचि। विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले॥ (श्रीमद्भा० १।४।१५)

व्यासपुरम सरस्वतीतटपर व्यासाश्रम—हरियाणा-प्रान्तके अम्बाला मण्डलवर्ती जगाधरी (यमुनानगर) नामक स्थानस लगभग पचीस किलोमीटर उत्तरमे बिलासपुर नामक समृद्ध गाँव है। इसीका प्राचीन नाम व्यासपुर है। राजकीय अभिलेखाके अनुसार यह छ सौ वर्षसे निरन्तर बसा हुआ है। इसी ग्रामके दक्षिणमे व्याससरोवर है, जिसे यहाँकी जनता परम्परागत रूपमे भगवान् व्यासका आश्रमस्थल मानती आ रही है। इस स्थानसे लगभग दो फर्लांग दूर द्वादशमासप्रवाहिणी नदीके रूपमे ब्रह्मनदी सरस्वतीके दर्शन होते हैं। इसी व्यासाश्रम अथवा व्याससरोवरके उत्तरमे एक कोसकी दूरीपर तीर्थराज कपालमोचन तथा ऋणमोचन नामक दा सरोवर हैं, जहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमापर विशाल मेला लगता है। यहाँसे लगभग पचीस किलोमीटर उत्तरमे आदिबदरी नामक प्राचीनतम देवमन्दिर पर्वतशिखरपर विद्यमान है। यहीं नगाधिराज हिमालयकी यात्रा पूर्ण कर ब्रह्मनदी सरस्वती मैदानी क्षेत्रम उतरकर पूर्वोक्त व्यासाश्रमके पार्श्वम प्रवाहित होती हुई कुरुक्षेत्रमे पहुँचती है। यहाँ सरस्वतीनदीके तटपर ही अगस्त्याश्रम, मुद्‌गलाश्रम आदि ऋषियाके स्थान हैं, जहाँ आज भी अनेकानेक साधक तपस्वी साधनारत दीख पडते हैं।[1]

व्यासपुर एव इस समस्त क्षेत्रकी जनता सनातन परम्परासे ही व्याससरोवरको भगवान् वेदव्यासका आश्रम मानती आ रही है।

राजकीय अभिलेखोमे व्यासाश्रम—आग्ल-शासन-कालके प्रारम्भिक अभिलेख (सन् १८८७-८८), जो भारतीय भू-सरक्षणका आदिम अभिलेख माना जाता है, मे स्पष्ट लिखा है—हिन्दूधर्मके सर्वश्रेष्ठ महर्षि वेदाक सम्पादक श्रीवदव्यासका आश्रम यही बिलासपुरका दक्षिणदिगस्थ व्याससरोवर है। इसी व्याससरोवरके नामपर यह गाँव पहले व्यासपुरके नामसे बसा था और फिर प्रयोगादिवश बिगडकर उच्चारणमे बिलासपुर हो गया है।

स्कन्दपुराण, हिमाद्रिखण्ड, आदिबदरीक्षेत्र-माहात्म्यम भी व्याससरोवरका स्पष्ट उल्लेख है।[2] कुछ लोग उत्तराञ्चलीय बदरीनारायण-धामकी ओर बदरीवन मानते हैं। यद्यपि शास्त्र और लोकमान्यताके अनुसार यह भी बदरीवन ही है, परतु जहाँ व्यासाश्रमकी स्थिति स्वीकार की गयी है, वह बदरीवन नहीं है। वह बदरीवन तो व्याससरोवरका पार्श्ववर्ती क्षेत्र ही है।

इतना होनेपर भी व्यासजीके अनेक आश्रमोका परिचय आज प्राप्त होता है, जो विभिन्न प्रान्तोमे स्थित हैं। बिलासपुरके व्यासाश्रमके अतिरिक्त विभिन्न स्थानाम स्थित उनके आश्रमाका अद्यतन विवरण इस प्रकार है—

१ **व्यासाश्रम**—भावुक जनाका आस्थाकेन्द्र—यह आश्रम 'माना' ग्रामम बदरीनारायणसे दो मील आगे, भारतकी उत्तरी सीमाके अन्तिम ग्रामम स्थित है।

२ **व्यासगुफा**—भढौचके निकट विद्यमान इस गुफाको भगवान् व्यासकी तपस्थली मानकर भावुक जन इसके दर्शनार्थ प्राय यहाँ आया करते है।

३ **व्यासटीला**—नैमिषारण्यम विद्यमान यह टीला श्रद्धालु यात्रियाके लिये विशेष आकर्षणका केन्द्र है। प्रतिवर्ष गुरुपूर्णिमाको यहाँ उत्सव भी मनाया जाता है। यहाँ व्यासगद्दी भी है, जहाँ शौनकादि अट्ठासी हजार ऋषि-मुनियाद्वारा पुराणपारायण हुआ था।

४ **बासम**—व्यासाश्रमका अपभ्रशरूप यह स्थान आन्ध्रप्रदेशम नान्देडसे पहले धर्मानादके निकट है। यहाँ गोदावरीतटपर प्राचीन सरस्वती और शिवके मन्दिर हैं। इस स्थानको व्यासजीकी तपोभूमि माना जाता है। यहाँके शिवमन्दिरको व्यासजीद्वारा स्थापित और विशेष चमत्कारयुक्त माना जाता है।

५ **वेदव्यास वारासेय**—रामपुरमे यह स्थान नगरसे बाहर चबूतरेके रूपमे है। सिद्धपीठके रूपम मान्यताप्राप्त यह स्थान श्रद्धालुआका पूजास्थान है।

६ **व्यासस्थली**—हरियाणाप्रान्तके करनाल मण्डलके अन्तर्गत यह स्थल कौल ग्रामक निकट विद्यमान है और विकृत होकर बस्तली बन चुका है। यहाँसे थोडी दूरपर सरस्वतीनदी भी विद्यमान है। कहते हैं कभी यहाँके हृदम नीलोत्पल हुआ करते थे।

७ **व्यासाश्रम**-गुजरातम अहमदाबादके निकट मातृगया

---

१ आदिबदरी व्यासपुर आदि जानेके लिये यमुनानगरसे सदैव बस ताग़ा आदि सवारियाँ सुलभ रहती हैं।

२ व्यासाश्रम इति ख्यातो नाम्ना व्याससरावर । (स्कन्दपुराण)

सिद्धपुरके पार्श्वस्थ ग्रामम भी व्यासाश्रम बताया जाता हे।

८ मथुरा-आगराके मध्य, महाकवि सूरके साधनास्थल रुणकतागाँवसे ६ मील दूर वेदव्यासजीका आश्रम ह, जहाँ उनका मन्दिर भी बना हुआ हे।

इस प्रकार विभिन्न दिशाआ, क्षेत्रा और प्रान्तासे उपलब्ध व्यासाश्रमाके आधारपर कहा जा सकता है कि श्रीवेदव्यासजीका क्षेत्र सम्पूर्ण भारतवर्ष था।

भारतीय पारम्परिक मान्यता उन्ह अजरामर मानती है। आज भी वर्षगाँठके अवसरपर जिन सप्त चिरञ्जीवियाका स्मरण किया जाता है, उनम व्यासजी भी प्रमुख घटक ह।*

महाभारत-जेसे बृहद् व्यापक इतिहास, अष्टादश पुराण, ब्रह्मसूत्रादि ग्रन्थरत्नाके प्रदाता भगवान् वेदव्यासजीका लोगापर महान् अनुग्रह हे। आज भी योगीराज, नारायणाशभूत वेदव्यास अनन्तरूपम विश्वम विद्यमान हैं।

इस प्रकार साक्षात् नारायण ही अपन अशके रूपम वेदव्यासजीक नामसे आविर्भूत हुए। इनके आविर्भावके विषयम महाभारत (आदि० ६०।३ ५)-म कहा गया है कि ये जन्मते ही बढकर युवा हो गये स्वत बिना किसीक द्वारा पढाये ही समस्त अङ्गासहित वेदादिशास्त्रम तथा परमात्मतत्त्वके ज्ञानमे निष्णात हो गये तथा प्रकट होते ही वेदपाठ करने लगे—

जातमात्रश्च य सद्य इष्ट्या देहमवीवृधत्।
वेदाश्चाधिजग साङ्गान् सेतिहासान् महायशा ॥
परावरज्ञो ब्रह्मर्षि कवि सत्यव्रत शुचि ॥

वेदव्यासजीका अवतार ही ज्ञानमूर्तिके रूपमे हुआ। लोकम वेदज्ञानकी प्रतिष्ठा करना तथा पुराण और इतिहास (महाभारत)-के माध्यमसे उसे जन-जनम स्थापित करना इनके अवतरणका मुख्य उद्देश्य रहा है। लोग सदाचारी बन धर्माचरण कर, अपने-अपने वर्णाश्रमका परिपालन करे तथा सदा भावचिन्तनम निमग्न रह, इसके लिये उन्हाने महत्त्वपूर्ण बात बतायी हैं जो श्रीमद्भागवतादि पुराणा तथा व्याससमृति आदिम उल्लिखित हैं। व्यासजी सदाचारकी प्रतिष्ठाम मातृ-पितृभक्तिको मुख्य मानत हैं। वे बताते हैं कि माता सर्वतीर्थमयी है, पिता सम्पूर्ण दवताआका स्वरूप है, इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताका पूजन करना चाहिये—

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदवमय पिता।
मातर पितर तस्मात् सर्वयत्नन पूजयत्॥

(पद्म० सृष्टि० ४७।११)

वेदव्यासजी वताते हें कि गङ्गाजीक नामके स्मरणमात्रसे पातक, कीर्तनसे अतिपातक आर दर्शनसे भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हा जाते ह—

गङ्गेति स्मरणादेव क्षय याति च पातकम्।
कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद् गुरुकल्मषम्॥

(पद्म०, सृष्टि० ६०।५)

सयत एव सत्य वाणीकी महिमाम व्यासजी कहत हैं—सत्यसे पवित्र हुई वाणी बाले तथा मनसे भी जो पवित्र जान पडे, उसीका आचरण कर—

'सत्यपूता वदेद् वाणी मन पूत समाचरत्।'

(पद्म० स्वर्ग० ५९।२०)

अपनी प्रशसा न कर तथा दूसरेकी निन्दाका त्याग कर दे। वेदनिन्दा आर देवनिन्दाका यत्नपूर्वक त्याग करे—

न चात्मान प्रशसेद्वा परनिन्दा च वर्जयत्॥
वदनिन्दा दवनिन्दा प्रयत्नेन विवर्जयेत्।

(पद्म० स्वर्ग० ५५।३५-३६)

भगवान् वदव्यास लोगाको शिक्षा दते हुए अपने एक महत्त्वपूर्ण उपदेशम बतात हैं कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान ओर दानका एकमात्र प्रयोजन यही हे कि पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णक गुणा ओर लीलाआका वर्णन किया जाय—

इद हि पुसस्तपस श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयो ।
अविच्युतोऽर्थ कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥

(श्रीमद्भा० १।५।२२)

युग-युगम आविर्भूत हानेवाले भगवान् वदव्यासजाका नमस्कार है।

---

* अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमाश्च विभीषण । कृप परशुरामश्च सप्तैत चिरजाविन ॥

भगवान् सदाशिवके विविध अवतार

[भगवान् सदाशिवका लीला-विलास ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोमे विराजमान है। लीलाभिनयके लिये प्रभु जब इस जगत्की सृष्टि करते हे तो अन्तर्यामीरूपसे स्वय भी इसमे प्रविष्ट हो जाते ह—व्याप्त हो जाते है—'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' और जब आवश्यकता समझते है तो स्वय भी व्यक्तरूपसे प्रकट हो जाते है। वेदोमे भगवान् शिवकी महिमा और उनकी करुणाका विशेष गान हुआ है। रुद्र, शिव, मृड, भव आदि ये सभी उन्हीके नाम हे। उनका घोर तथा अघोर—दो रूपोमे विशेष वर्णन आया है। भगवान् शिवकी सहारलीलाकी मूर्ति घोर एव रक्षण तथा पालन-पोषणकी मूर्ति अघोर कहलाती है। वेदामे जहाँ एक रुद्रकी चर्चा है, वहीं 'असख्यातरुद्र' पदसे अनन्तानन्त रुद्रोका निर्वचन किया गया है। एकादश रुद्र तो प्रसिद्ध हे ही, ऐसे ही भगवान् शिव सृष्टिके मूलतत्त्व लिङ्गके रूपमे प्रकट हे और पूजित होते हे। द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग, बाणलिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग आदि भगवान् शिवके लिङ्गरूपमे प्राकट्यके द्योतक है। ऐसे ही अष्टमूर्तियाके रूपमे भी उनकी उपासना होती है। सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष आदि उनके पञ्च स्वरूप प्राप्त होते ह। पुराणोमे तो भक्तोके कल्याणके लिये भगवान् शिवके विभिन्न रूपोमे अवतरणका वर्णन प्राप्त होता है। महाकाल, भैरव, यक्ष, दुर्वासा, हनुमान्, पिप्पलाद, हस आदि लीलावतारोकी कथाएँ अत्यन्त कल्याणकारिणी है। उनका अर्धनारीश्वर तथा हरिहरके रूपमे अवतरण विश्वको शिक्षा देनेके लिये ही हुआ। ऐसे ही प्रणवके रूपमे उनका ही अवतरण होता है। मृत्युञ्जय, दक्षिणामूर्ति, नटराज, भिक्षुक, महाकाल, पञ्चमुख, नीलकण्ठ, पशुपति, त्र्यम्बक तथा योगेश्वरावतार आदि अनेक नाम-रूपोमे प्रकट होकर भगवान्ने विविध लीलाएँ की है, जो भक्तोके लिये अतीव मङ्गलदायिनी हे। यहाँ सक्षेपमे भगवान् सदाशिवकी कुछ अवतार-कथाओको प्रस्तुत किया जा रहा है—सम्पादक]

महादेवका नन्दीश्वरावतार

(आचार्य प० श्रीरामदत्तजी शास्त्री)

वन्दे महानन्दमनन्तलील
महेश्वर सर्वविभु महान्तम्।
गौरीप्रिय कार्तिकविघ्नराज-
समुद्भव शङ्करमादिदेवम्॥

'जा परमानन्दमय है, जिनकी लीलाएँ अनन्त हं, जो ईश्वराके भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीके प्रियतम तथा कार्तिकेय और विघ्नराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शङ्करकी मैं वन्दना करता हूँ।'

प्राचीन कालम एक बार सनत्कुमारजीने नन्दीश्वरजीसे पूछा कि ह नन्दीश्वर! आप महादेवके अशसे कैसे उत्पन्न हुए तथा आपने शिवत्व कैसे प्राप्त किया? यह सब में सुनना चाहता हूँ, आप कहिये—

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! शिलाद नामके एक ऋषि थे। पितरोके उद्धारकी इच्छासे उन्होने इन्द्रके उद्देश्यसे बहुत समयतक कठोर तप किया। तपसे सतुष्ट होकर इन्द्र उनको वर देनेका गये। इन्द्रने शिलादसे कहा—मं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। तब इन्द्रको प्रणामकर आदरपूर्वक स्तोत्रासे स्तुतिकर शिलाद हाथ जाडकर बोले—हे देवेश! आप प्रसन्न हा तो मुझे मृत्युहीन अयोनिज पुत्रकी प्राप्ति हो। इन्द्र बोले—हे मुने! मैं तुमको मृत्युहीन अयोनिज पुत्र नहीं दे सकता, क्याकि विष्णुभगवान्से ब्रह्मातक सब मृत्युवाले हैं औरकी तो बात ही क्या है! यदि भगवान् शिव प्रसन्न हो जायँ तो वह तुम्हारे लिये मृत्युहीन अयोनिज पुत्र प्रदान कर सकते हैं अत आप शिवजीको प्रसन्न करे। इतना कहकर इन्द्र अपने लोकको चले गये।

इन्द्रके जानके बाद शिलादने दिव्य सहस्रवर्षतक महादेवजीकी आराधना की। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट हुए तथा शिलादसे कहा—हे शिलाद! मैं तुम्हे वर देने आया हूँ। भगवान् शिवके ध्यानम मग्र ओर समाधिमे लीन शिलादमुनिने शिवकी वाणीको नही सुना। तब शिवने उन मुनिका हाथसे स्पर्श किया, जिसस उनकी समाधि छूट गयी और अपन नेत्राके सम्मुख अपने आराध्य उमासहित भगवान् शम्भुको देखकर वे मुनि आनन्दपूर्वक उनके चरणाम गिर पड।

वडे हर्षसे गद्गदवाणीमे वे शिवजीकी स्तुति करने लगे। तब देवदेवेश भगवान् शिवजीने शिलादसे कहा कि हे तपोधन! मैं तुम्हें वर देने आया हूँ। शिवजीके ऐसे वचन सुनकर शिलाद बोले—हे महेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप मुझको अपने समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र प्रदान करें।

शिवजी बोले—हे विप्र! मैं स्वयं ही तुम्हारे यहाँ नन्दी नामक अयोनिज पुत्ररूपसे प्रकट होऊँगा। हे मुने! तुम मुझ लोकत्रयीके पिताके भी पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त करोगे। इस प्रकार शिलादको वर देकर शिव पार्वतीसहित अन्तर्धान हो गये। शिलादमुनिने अपने आश्रमपर आकर यह सारा वृत्तान्त अन्य मुनियोंसे कहा तो सभी मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए।

हे सनत्कुमार! कुछ समय बीतनेपर एक दिन शिलाद यज्ञ करनेके निमित्त यज्ञक्षेत्रको जाते रहे थे। मैं उसी समय उन शिवकी आज्ञासे उनका पुत्ररूप होकर प्रलयाग्निके समान देदीप्यमानरूपमे प्रकट हुआ। उस समय देवताओंने फूल बरसाये तथा ऋषिगण भी चारो तरफसे पुष्पवृष्टि करने लगे। हे मुने! उस समय मेरा स्वरूप प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान प्रकाशित तथा त्रिनेत्र, चतुर्भुज और जटामुकुटधारी था। साथ ही वह त्रिशूल आदि शस्त्रोंको धारण किये हुए था। मेरा ऐसा स्वरूप देखकर मेरे पिताने मुझे प्रणाम किया और बोले—हे सुरेश्वर! तुमने मुझे महान् आनन्द दिया है, इस कारण तुम्हारा नाम 'नन्दी' हुआ। तदनन्तर मेरे पिता मुझे अपनी पर्णकुटीमे ले गये। पर्णकुटीमे पहुँचकर मैंने अपना वह रूप त्यागकर मनुष्यशरीर धारण कर लिया।

हे सनत्कुमार! मुझपर अत्यधिक स्नेह करनेवाले उन शालकायनके पुत्र शिलादने मेरे सम्पूर्ण जातकर्म आदि संस्कार किये। पाँच वर्षकी अवस्थामे ही मेरे पिताने मुझे साङ्गोपाङ्ग वेदोको और शास्त्रोंको पढाया। सातवे वर्षमे मित्रावरुणसंज्ञक दो मुनि शिवजीकी आज्ञासे मुझे देखनेको आये, तब मेरे पितासे सत्कारको प्राप्त होकर वे मुनि अच्छी प्रकार बैठे और मुझे बारम्बार देखकर वे महात्मा बोले कि हे तात! सम्पूर्ण शास्त्रोंमे पारगामी ऐसा बालक हमने नहीं देखा, परंतु यह तुम्हारा पुत्र नन्दी थोडी अवस्थावाला है। इसकी आयु एक वर्षकी ही और होगी। उन ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर मेरे पिता शिलाद उच्च स्वरमे रोने लगे। मैंने अपने पिताको रोते हुए देखकर कहा—हे पिता! आप क्यों रोते हैं यह मैं तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूँ? पिता बोले—हे पुत्र! मैं तुम्हारी अल्पमृत्युके दुःखसे दुःखी हूँ। मैंने कहा—हे पिता! देवता दानव, यमराज काल तथा मनुष्य भी मुझे मारें तो भी मेरी अल्पमृत्यु नहीं होगी इस कारण आप दुःखी मत होइये। हे पिता! यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ, आपकी शपथ खाता हूँ। पिता बोले—हे पुत्र! तुम्हारी अल्पमृत्युको कौन दूर करेगा? तब मैंने कहा—हे तात! मै तपसे अथवा विद्यासे मृत्युको दूर न करूँगा केवल महादेवजीके भजनसे मैं इस मृत्युको जीतूँगा, इसमे संदेह नहीं है। नन्दीश्वर बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर पिताके चरणोमे सिरसे प्रणामकर और उनकी प्रदक्षिणा करके मैं श्रेष्ठ वनको चला गया।

नन्दिकेश्वर बोले—हे मुने! वनमे जाकर मैं एकान्तस्थलमें स्थित होकर अति कठिन तथा श्रेष्ठ मुनियोंके लिये भी दुष्कर तप करने लगा। मैं पञ्चमुख सदाशिवके परम ध्यानमे मग्न हो पवित्र नदीके उत्तर भागमे एकाग्रचित्तसे सावधान हो रुद्रमन्त्र जपने लगा। तब प्रसन्न होकर सदाशिव पार्वतीसहित प्रकट होकर बोले—हे शिलादनन्दन! तुम्हारे तपसे मैं संतुष्ट हूँ, तुम अभीष्ट वर माँगो। सामने शिव-पार्वतीको देखकर अपने सिरको उनके चरणोमे झुकाकर मैं उनकी स्तुति करने लगा। तब उन परमेश वृषभध्वजने दोनो हाथोसे मुझे पकडकर स्पर्श किया तथा बोले—हे वत्स! हे महाप्राज्ञ! तुम्हें मृत्युसे भय कहाँ? उन दोनो ब्राह्मणोंको मैंने ही भेजा था, तुम मेरे ही समान हो, इसमे कुछ संशय नहीं है। तुम पिता और सुहृज्जनोसहित अजर, अमर दुःखरहित अविनाशी, अक्षय और मेरे प्रिय होगे। इस प्रकार कहकर उन्होने अपनी कमलोंसे बनी शिरोमाला उतारकर शीघ्र मेरे कण्ठमे डाल दी। हे मुने!

उस सुन्दर मालाको कण्ठमे पहनते ही तीन नेत्र, दस

भुजाओंवाला मानो मैं दूसरा शिव ही हो गया। परमेश्वरने कहा और क्या श्रेष्ठ वर दूँ? इतना कहकर वृषभध्वजने अपनी जटाओंसे हारके समान निर्मल जल ग्रहणकर 'नदी हो' ऐसा कहकर उसको मेरे ऊपर छिड़का। उस जलसे पाँच शुभ नदियाँ—१-जटोदका, २-त्रिस्रोता, ३-वृषध्वनि, ४-स्वर्णोदका और ५-जम्बूनदी उत्पन्न होकर बहने लगीं। यह पञ्चनद नामक परम पवित्र शिवका पृष्ठदेश जपेश्वरके समीप वर्तमान है। शिवजी पार्वतीजीसे बोले कि मैं नन्दीको गणेश्वरपदमें अभिषिक्त करता हूँ, तुम्हारा इसमें क्या सम्मति है? पार्वतीजी बोलीं—हे देवेश! यह शिलादपुत्र नन्दी आजसे मेरा महाप्रिय पुत्र हुआ।

तदनन्तर शिवजीने अपने सभी गणोंको बुलाकर कहा कि यह नन्दीश्वर मेरा पुत्र, सब गणोंका अधिपति तथा प्रियगणोंमें मुख्य हुआ, सभीको मेरे इस वचनका पालन करना चाहिये। तुम सब प्रीतिपूर्वक नन्दीको स्नान कराओ और आजसे यह नन्दी तुम सबका स्वामी हुआ। शिवजीके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण गणपति 'बहुत अच्छा' कहकर सब अभिषेककी सामग्री ले आये। तदनन्तर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता तथा नारायण, सम्पूर्ण मुनि प्रसन्न हो सब लोकोंसे आये। शिवके नियोगसे ब्रह्माजीने सावधान हो नन्दीका अभिषेक किया, तब विष्णुने फिर इन्द्रने इसके पश्चात् लोकपालोंने अभिषेक किया। तब सभीने नन्दीश्वरजीकी स्तुति की।

नन्दीश्वरने कहा—हे विप्र! इस प्रकार गणाध्यक्षपदपर अभिषिक्त होनेके उपरान्त मुझ नन्दीने ब्रह्माजीकी आज्ञासे सुयशा नामवाली मरुत्की परम मनोहर कन्यासे विवाह किया। विवाहके समय जब मैं उस रूपवती सुन्दरी सुयशाके साथ मनोहर सिंहासनपर बैठा तब महालक्ष्मीने मुझे मुकुटसे सजाया, देवीने अपने कण्ठका दिव्य हार मुझे दिया। श्वेत वृषभ, हाथी तथा सिंहका ध्वजा, सुवर्णका हार इत्यादि वस्तुएँ मुझे मिलीं। विवाहके पश्चात् मैंने ब्रह्माजी विष्णुजीके चरणोंमें नमस्कार किया, तभी शिवजीने मुझे सपत्नीक देख परम प्रीतिसे कहा—हे सत्पुत्र! तुम पति और यह सुयशा तुम्हारी पत्नी है। मैं तुमको वही वर दूँगा जो तुम्हारे मनमें है। तुम मेरे सदा प्रिय होगे, तुम अजेय, महाबली होकर पूजनीय होगे। जहाँ मैं रहूँगा वहाँ तुम होगे, जहाँ तुम होगे वहाँ मैं रहूँगा। इस प्रकार कहकर शिवजी उमासहित कैलासको चले गये। नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! जिस प्रकार मैंने शिवत्व प्राप्त किया, वह कथा मैंने आपको सुना दी। (शिवपुराण)

~~~ 0 ~~~

'पूर्ण शिव धीमहि'

या धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्रष्टा रजःसंश्रयः संहर्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः ।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि॥

जो रजोगुणका आश्रय लेकर संसारकी सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो सातों भुवनोंका धारण-पोषण करते हैं, तमोगुणसे युक्त हो सबका संहार करते हैं तथा त्रिगुणमयी मायाको लाँघकर अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्दस्वरूप अनन्त बोधमय निर्मल एवं पूर्णब्रह्म शिवका हम ध्यान करते हैं। वे ही सृष्टिकालमें ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहारकालमें रुद्र नाम धारण करते हैं तथा सदैव सात्त्विकभावको अपनानेसे ही प्राप्त होते हैं।

~~~ 0 ~~~

शङ्करके पूर्णावतार—कालभैरव

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी 'रत्नमालीय')

देवराजसेव्यमानपावनाङ्घ्रिपङ्कज
व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखर कृपाकरम्।
नारदादियोगिवृन्दवन्दित दिगम्बर
काशिकापुराधिनाथकालभैरव भजे॥
भानुकोटिभास्वर भवाब्धितारक पर
नीलकण्ठमीप्सितार्थदायक त्रिलोचनम्।
कालकालमम्बुजाक्षमक्षशूलमक्षर
काशिकापुराधिनाथकालभैरव भजे॥

देवराज इन्द्र जिनके पावन चरणकमलाकी भक्तिपूर्वक निरन्तर सेवा करते है, जो व्यालरूपी विकराल यज्ञसूत्र धारण करनेवाले है, जिनके ललाटपर चन्द्रमा शोभायमान है, जो दिगम्बरस्वरूपधारी हे, कृपाकी मूर्ति हैं, नारदादि सिद्ध योगिवृन्द जिनकी सेवामे लगे रहते हैं, उन काशीपुरीके अभिरक्षक स्वामी कालभैरवकी मे चरण-वन्दना करता हूँ। जो करोडो सूर्यके समान दीप्तिमान् हैं, जो भयावह भवसागर पार करानेवाले परम समर्थ प्रभु ह, जो नीले कण्ठवाले, अभीष्ट वस्तुको देनेवाले और तीन नेत्रोवाले हैं, जो कालके भी काल, कमलके समान सुन्दर नयनोवाले, अक्षमाला और त्रिशूल धारण करनेवाल अक्षरपुरुष हैं, उन काशीपुरीके प्रभु कालभैरवकी मे आराधना करता हूँ।

अधर्ममार्गको अवरुद्ध कर, धर्म-सतुकी प्रतिष्ठापना करनेवाले, स्वभक्ताको अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेवाले, कालका भी कँपा देनेवाले, प्रचण्ड तेजामूर्ति अघटितघटन-सुघट-विघटन-पटु कालभैरवजी भगवान् शङ्करके पूर्णावतार* हैं, जिनका अवतरण ही पञ्चानन ब्रह्मा एव विष्णुके गर्वापहरणके लिये हुआ था। भैरवी-यातना-चक्रमे तपा-तपाकर पापियाके अनन्तानन्त पापाको नष्ट कर देनेकी विलक्षण क्षमता उन्ह प्राप्त ह। देवमण्डलीसहित दवराज इन्द्र आर ऋषिमण्डलासहित देवर्षि नारद उनकी स्तुति कर अपनेको धन्य मानत हैं। उनकी महिमा अद्भुत ह। उनकी लीलाएँ विस्मयकारिणी हैं। उन महामहिमावान्के चरणाम शीश नवाते हुए यहाँ उनका सक्षिप्त आख्यान शिवपुराणके आधारपर प्रस्तुत किया जा रहा है—

अति प्राचीन कालम एक बार सुमेरुपर्वतके मनोरम शिखरपर ब्रह्मा ओर शिवजी बेठे हुए थे। उसी कालम परम-तत्त्वकी जिज्ञासासे प्रेरित होकर समस्त देव और ऋषिगण वहाँ आ पहुँचे। उन्हाने श्रद्धा-विनयपूर्वक शीश झुकाकर, हाथ जोडकर ब्रह्माजीसे निवेदन किया—'हे देवाधिदेव! प्रजापति! लोकपिता! लोकपालक! कृपाकर हमे परम अविनाशी तत्त्वका उपदेश द। हमारे मननें उस परम-तत्त्वको जाननेकी प्रबल अभिलाषा है।'

भगवान् शङ्करकी विश्वविमोहिनी मायाके प्रभावसे मोहग्रस्त हो ब्रह्माजी यथार्थ तत्त्वबोध न कराकर आत्मप्रशसामे प्रवृत्त हो गये। वे कहने लगे—

जगद्योनिरह धाता स्वयम्भूरज ईश्वर।
अनादिभागह ब्रह्म ह्येक आत्मा निरञ्जन॥
प्रवर्तको हि जगतामहमेव निवर्तक।
सवर्तका मदधिको नान्य कश्चित् सुरोत्तमा॥
(शिवपुराण शतरुद्रसहिता ८।१३-१४)

हे समुपस्थित देव एव ऋषिगण! आदरपूर्वक सुनें—मैं ही जगच्चक्रका प्रवर्तक, सवर्तक और निवर्तक हूँ। मैं धाता स्वयम्भू, अज अनादि ब्रह्म तथा एक निरञ्जन आत्मा हूँ। मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है।

सभामे विद्यमान भगवान् विष्णुको उनकी आत्मश्लाघा नहीं रुची। अपनी अवहेलना किसे अच्छी लगता हे? अमर्षभरे स्वरम उन्हाने प्रतिवाद किया—हे धाता! आप कैसी मोहभरी बात कर रहे हैं? मेरी आज्ञासे ही तो आप सृष्टिकार्यमे प्रवृत्त हैं। मेरे आदेशकी अवहेलना कर किसाकी प्राणरक्षा सम्भव नहीं। कदापि सम्भव नहीं—

* 'भैरव पूर्णरूपा हि शङ्करस्य परात्मन।' (शिवपुराण शतरुद्र० ८।२)

ममाज्ञया त्वया ब्रह्मन् सृष्टिरेषा विधीयते।
जगता जीवन नैव मामनादृत्य चेश्वरम्॥

(शिवपुराण शतरुद्रसहिता ८। १८)

पारस्परिक विवाद-क्रमम आरोप-प्रत्यारोपका स्वर उत्तरोत्तर तीखा होता गया। विवाद-समापन-क्रमम जब वेदोका साक्ष्य माँगा गया तो उन्होने शिवको परमतत्त्व अभिहित किया। मायाविमोहित ब्रह्मा तथा विष्णु—किसीको भी वेद-साक्ष्य रास नहीं आया। वे बोल पडे—अरे वेदो! तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो गया है क्या? भला अशुभ वेशधारी, धूलिधूसर, पीतवर्ण, दिगम्बर, रात-दिन शिवाके साथ रमण करनेवाले शिव कभी परमतत्त्व कैसे हो सकते हैं? वाद-विवादके कटुत्वको समाप्त करने हेतु प्रणवने मूर्तरूप धारणकर भगवान् शिवकी महिमा प्रकट करते हुए कहा—लीलारूपधारी भगवान् शिव अपनी शक्तिके बिना कभी रमण नहीं कर सकते। वे परमेश्वर शिवजी स्वय सनातन ज्योतिस्वरूप हैं और उनकी आनन्दमयी यह 'शिवा' नामक शक्ति आगन्तुकी न होकर शाश्वत है। अत आप दोनो अपने भ्रमका परित्याग करे। ॐकारके निर्भ्रान्त वचनोको सुनकर भी प्रबल भवितव्यताविवश ब्रह्मा एव विष्णुका मोह दूर नहीं हुआ तो उस स्थलपर एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई, जो भूमण्डलसे लेकर आकाशतक परिव्याप्त हो गयी। उसके मध्यम दोनोने एक ज्योतिर्मय पुरुषको देखा। उस समय ब्रह्माके पाँचवे मुखने कहा—'हम दोनोके बीचमे यह तीसरा कौन है जो पुरुषरूप धारण किये है?' विस्मयको और अधिक सघन करते हुए उस ज्योतिपुरुषने त्रिशूलधारी, नीललोहित स्वरूप धारण कर लिया। ललाटपर चन्द्रमासे विभूषित उस दिव्य स्वरूपको देखकर भी ब्रह्माजीका अहङ्कार पूर्ववत् रहा। पहलेकी तरह ही वे बोल पडे—

'आओ, आओ वत्स चन्द्रशेखर आओ। डरो मत। मैं तुम्हे जानता हूँ। पहले तुम मेरे मस्तकसे पैदा हुए थे। रोनेके कारण मैंने तुम्हारा नाम 'रुद्र' रखा है। मेरी शरणमे आ जाओ। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

ब्रह्माजीकी गर्वमयी बात सुनकर भगवान् शिव कुपित हुए और उन्होने भयङ्कर क्रोधमे आकर 'भैरव' नामक पुरुषको पैदा किया, जिन्हे ब्रह्माको दण्डित करनेका प्रथम कार्य सौंपा गया—

'प्राक्च पङ्कजजन्मासौ शास्यस्ते कालभैरव।'

(शिवपुराण शतरुद्रसहिता ८। ४६)

उनका नामकरण करते हुए भगवान् शिवने व्यवस्था दी—**'त्वत्तो भेष्यति कालोऽपि ततस्त्व कालभैरव।'** (शिवपुराण, शतरुद्रसहिता ८। ४७)

हे महाभाग! काल भी तुमसे डरेगा, इसलिये तुम्हारा विख्यात नाम 'कालभैरव' होगा। उसके अपर नामोका उल्लेख करते हुए उन्होने कहा—हे वत्स! तुम कालके समान शोभायमान हो इसलिये तुम्हारा नाम 'कालराज' रहेगा। तुम कुपित होकर दुष्टोका मर्दन करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम 'आमर्दक' होगा। भक्तोके पापोका तत्काल भक्षण करनेकी सामर्थ्यसे युक्त होनेके कारण तुम्हारा नाम 'पापभक्षण' होगा। तदनन्तर भगवान् शिवने उसी क्षण उन्हे काशीपुरीका आधिपत्य भी सौंप दिया और कहा—मेरी जो मुक्तिदायिनी काशीनगरी है, वह सभी नगरियोसे श्रेष्ठ है, हे कालराज! आजसे वहाँ तुम्हारा सदा ही आधिपत्य रहेगा—

या मे मुक्तिपुरी काशी सर्वाभ्योऽपि गरीयसी।
आधिपत्य च तस्यास्ते कालराज सदैव हि॥

(शिवपुराण शतरुद्रसहिता ८। ५०)

भगवान् शिवसे इस प्रकार वरदान प्राप्त कर कालभैरवने अपनी बायीं उँगलीके नखसे शिवनिन्दामे प्रवृत्त ब्रह्माजीके पाँचवे मुखको काट दिया, यह विचार कर कि पापी अङ्गका ही शासन अभीष्ट है।

'यदङ्गमपराध्नोति कार्य तस्यैव शासनम्।'

वह पाँचवाँ मुख (कपाल) उनके हाथमे आ चिपका। इस घटनासे भयभीत विष्णु और ब्रह्माजी शतरुद्रीका पाठ कर भगवान् शिवसे कृपायाचना करने लगे। दोनोका *अभिमान नष्ट हो गया। उन्हे यह भलीभाँति ज्ञात हो गया* कि साक्षात् शिव ही सच्चिदानन्द परमेश्वर गुणातीत परब्रह्म हैं। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर शिवजीने भैरवजीको ब्रह्मा-विष्णुके प्रति कृपालु होनेकी सलाह दी—

'त्वया मान्यो विष्णुरसो तथा शतधृति स्वयम्।'

(शिवपुराण शतरुद्रसहिता ८। ६१)

हे नीललाहित! तुम ब्रह्मा और विष्णुका सतत सम्मान करना। ब्रह्माजीको दण्ड देनेके क्रमम हे भैरव! तुम्हारे द्वारा उन्ह कष्ट पहुँचा है, अत लोकशिक्षार्थ तुम प्रायश्चित्तस्वरूप ब्रह्महत्यानिवारक कापालिकव्रतका आचरण कर भिक्षावृत्ति धारण करो—

'चर त्व सतत भिक्षा कपालव्रतमाश्रित ।'

(शिवपुराण शतरुद्रसहिता ८। ६२)

भगवान् भैरव प्रायश्चित्ताचरण-लीलाम तत्काल प्रवृत्त हो गये। ब्रह्महत्या विकराल स्त्रीरूप धारणकर उनका अनुगमन करने लगी।

त्रैलोक्यभ्रमण करते हुए जब भगवान् भैरव वैकुण्ठ पहुँचे तो भगवान् विष्णुने उनका स्वागत-सत्कार करत हुए भगवती लक्ष्मीसे उन्ह भिक्षा दिलवायी।

तदनन्तर भिक्षाटन करते हुए भगवान् भैरव वाराणसीपुरीके 'कपालमोचन' नामक तीर्थपर पहुँच, जहाँ आते ही उनके हाथमे ससक्त कपाल छूटकर गिर गया और वह ब्रह्महत्या पातालम प्रविष्ट हो गयी। अपना प्रायश्चित्त पूरा कर वे वाराणसीपुरीकी पूर्ण सुरक्षाका दायित्व सँभालने लगे। वटुकभैरव, आसभैरव, आनन्दभैरव आदि उनके विविध अश-स्वरूप ह। उनकी महिमा वर्णनातीत है। वे भगवान् शिवके आदेश—'**तत्र (वाराणस्या) ये पातकिनरास्तेषा शास्ता त्वमेव हि।**' का अनुपालन कर रहे हैं। उनकी महिमाके विषयम भगवान् विष्णु कहते ह—

अय धाता विधाता च लोकाना प्रभुरीश्वर ।
अनादि शरण शान्त पुर षड्‌विशसम्मित ॥
सर्वज्ञ सर्वयोगीश सर्वभूतैकनायक ।
सर्वभूतान्तरात्माय सर्वेषा सर्वद सदा॥

(शिवपुराण शतरुद्रसहिता ९। ११-१२)

ये धाता, विधाता, लोकाके स्वामी और ईश्वर हैं। ये अनादि सबके शरणदाता, शान्त तथा छब्बीस तत्त्वासे युक्त हैं। ये सर्वज्ञ सब योगियाके स्वामी, सभी जीवाके नायक, सभी भूतोकी अन्तरात्मा और सबको सब कुछ देनवाले हैं।

भगवान् भैरवका अवतरण अगहन मासकी अष्टमी तिथि (कृष्णपक्ष)-का हुआ था, अत उक्त तिथिको उनकी जयन्ती धूम-धामपूर्वक मनायी जाती है—

कृष्णाष्टम्या तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वर ।
आविर्बभूव सल्लीला भैरवात्मा सता प्रिय ॥

(शिवपुराण शतरुद्रसहिता ९। ६३)

उपर्युक्त मास तथा तिथिको भक्तिभावपूर्वक उनकी पूजा करनसे जन्म-जन्मान्तरके पाप नष्ट हा जाते हैं। स्वय भगवान् शिवने भैरव-उपासनाकी महिमा बताते हुए पार्वतीजीसे कहा है—ह देवि! भैरवका स्मरण पुण्यदायक है। यह स्मरण समस्त विपत्तियाका नाशक, समस्त कामनाआकी पूर्ति करनेवाला तथा साधकोंको सुखी रखनेवाला है, साथ ही लम्बी आयु प्रदान करता है और यशस्वी भी बनाता है।

मगलवारयुक्त अष्टमी और चतुर्दशीको कालभैरवके दर्शनका विशेष महत्त्व है। वाराणसीपुरीकी अष्ट दिशाआमें स्थापित अष्टभैरवो—रुरुभैरव, चण्डभैरव, असिताङ्गभैरव, कपालभैरव, क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव तथा सहारभैरवका दर्शन-आराधन अभीष्ट फलप्रद है। रोली, सिन्दूर, रक्तचन्दनका चूर्ण, लाल फूल, गुड, उडदका बडा, धानका लावा, ईखका रस, तिलका तेल, लोहबान, लाल वस्त्र भुना केला सरसाका तेल—ये भैरवजाकी प्रिय वस्तुएँ हैं, अत इन्ह भक्तिपूर्वक समर्पित करना चाहिये।

भगवान् भैरव शाक्त साधकाके भी परमाराध्य हैं। ये ही भक्ताकी प्रार्थना भगवती दुर्गाके पास पहुँचाते हैं। देवीके प्रसिद्ध ५१ पीठाकी रक्षामे ये भिन्न-भिन्न नाम-रूप धारण कर अहर्निश साधकाकी सहायताम तत्पर रहते हैं। प्रतिदिन भैरवजीकी आठ बार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्याके सर्वविध पाप विनष्ट हो जाते हे—

अष्टौ प्रदक्षिणीकृत्य प्रत्यह पापभक्षणम्।
नरो न पापैर्लिप्येत मनोवाक्कायसम्भवै ॥

(काशीखण्ड ३१। १५१)

ऐस महाप्रभु भैरव समस्त जनाके पाप-तापका शमन कर।

यक्षावतार

भगवान् शिवने यक्षरूपसे अवतार धारण किया था। भगवान्का यह यक्षावतार अभिमानियोके अभिमानको दूर करनेवाला तथा साधु पुरुषोके लिये भक्तिको बढानेवाला है। एक बारकी बात है, समुद्र-मन्थनके बाद जब अमृत निकला तो उसका पानकर देवताओने असुरोपर विजय प्राप्त कर ली और इस खुशीमे वे उन्मत्त हो उठे तथा शिवाराधनाको भूल बैठे। उन्हे यह अभिमान हो आया कि हम ही सर्वशक्तिमान् हैं। भक्तको अपनी भक्तिका—साधनाका मिथ्याभिमान हो जाय तो भगवान्को भला कैसे सहन हो। यह तो पतनका ही मार्ग ठहरा, अत उन्होने देवताओके मिथ्या गर्वको दूर करनेके लिये 'यक्ष' नामक अवतार धारण किया और वे लीला करनेके लिये इसी यक्षरूपसे देवताओके समीप जा पहुँचे। वहाँ भगवान्ने पूछा कि आप सब लोग एकत्र होकर यहाँ क्या कर रहे हैं, तो सभी देवता समुद्र-मन्थनके सदर्भमे अपना-अपना पराक्रम बढ-चढकर सुनाने लगे और कहने लगे कि हमारी ही शक्तिसे असुर पराजित होकर भाग गये।

देवताओके उन अभिमान-भरे वचनोको सुनकर यक्षरूपी महादेवने कहा—'देवताओ! आपको गर्व करना ठीक नहीं, कर्ता-हर्ता तो कोई दूसरा ही देव है, आप लोग उन महेश्वरको भूलकर व्यर्थ ही अपने बलका अभिमान कर रहे हैं। यदि आप अपनेको महान् बली समझते हो तो यह एक 'तृण' है, इसे आप तोडकर दिखाये, ऐसा कहकर यक्षावतारी शिवने लीला करते हुए अपने तेजसे सम्पन्न एक तृण (तिनका) उनके पास फेका और उसे तोडनेके लिये कहा।

इन्द्रादि सभी देवताओने प्रथम तो पृथक्-पृथक् और फिर मिलकर अनेक अस्त्र-शस्त्रोका प्रयोग कर अपनी पूरी शक्ति लगा दी, पर उस रुद्रतेज-सम्पन्न तृणको तोडनेमे वे समर्थ न हो सके। भला, जब स्वय शिव ही लीला कर रहे थे तो उस लीलाको उनकी कृपाके बिना कौन समझ सके? देवता हतप्रभ हो गये।

उसी समय आकाशवाणी हुई, जिसे सुनकर देवताओको बडा विस्मय हुआ। आकाशवाणीमे कहा गया—'अरे देवो! भगवान् शकर ही परम शक्तिमान् हैं, वे ईश्वरोके भी ईश्वर हैं। उनके बलसे ही सभी बलवान् हैं, उनकी लीला अपरम्पार है, उनकी लीलासे ही आप लोग मोहित हैं, आप सभी उन्हींकी शरण ग्रहण करे।' यह सुनकर देवता लोग यक्षावतारी शिवको पहचान सके और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् शिवने अपने यक्षरूपका परित्याग करके शिव-रूप धारण किया, जिसका दर्शनकर देवताओको बडा आनन्द हुआ। **(शिवपुराण)**

दुर्वासावतार

महातपस्वी तथा धर्मात्मा महर्षि दुर्वासा भगवान् शकरके ही अवतार-रूप हैं। श्रेष्ठ धर्मका प्रवर्तन करने भक्तोकी धर्मपरीक्षा करने तथा भक्तिकी अभिवृद्धि करनेके लिये साक्षात् भगवान् शकरने ही दुर्वासामुनिके रूपमे अवतार धारणकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं। इस अवतारकी सक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

ब्रह्मज्ञानी अत्रि ब्रह्माजीके पुत्र थे। वे ब्रह्माजीके मानसपुत्र कहलाते हैं। इनकी अनसूया नामकी सती-साध्वी धर्मपत्नी थीं। अनसूयाका पातिव्रत-धर्म विश्व-विश्रुत ही है। पुत्रकी आकाक्षासे महर्षि अत्रि तथा देवी अनसूयाने ऋक्षकुल नामक पर्वतपर जाकर निर्विन्ध्या नदीके पावन तटपर सौ वर्षतक दुष्कर तप किया। उनके तपका ऐसा प्रभाव हुआ कि एक उज्ज्वल अग्निमयी ज्वाला प्रकट हुई, जिसने तीनो लोकोको व्याप्त कर लिया। देवता, ऋषि, मुनि सभी चिन्तित हो उठे। तब ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—ये तीनो देव उस स्थानपर गये, जहाँ महामहर्षि अत्रि तथा देवी अनसूया तप कर रहे थे। तदनन्तर प्रसन्न होकर तीनो देवोने उन्हे अपने-अपने अशसे एक-एक पुत्र (इस प्रकार तीन पुत्र) प्राप्त करनेका वर प्रदान किया।

वरदानके प्रभावसे ब्रह्माजीके अशसे चन्द्रमा, विष्णुके अशसे दत्तात्रेय तथा भगवान् शकरके अशसे मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाका आविर्भाव हुआ। ये तीनो अत्रि और अनसूयाके पुत्र कहलाये। दुर्वासाके रूपमे अवतार लेकर भगवान् शकरने अनेक लीलाएँ की हैं, जो अति प्रसिद्ध है। भगवान् शकरके रुद्ररूपसे महर्षि दुर्वासा प्रकट हुए थे, इसीलिये उनका रूप अति रौद्र था, इसी कारण वे अति क्रोधी भी थे, किंतु महर्षि दुर्वासा दयालुताकी मूर्ति है, अत्यन्त करुणासम्पन्न है। भक्तोका दु ख दूर करना तथा रौद्ररूप धारणकर दुष्टोका दमन करना ही उनका स्वभाव रहा है। शिवपुराणमे कथा आयी है कि एक बार नदीमे स्नान करते समय महर्षि दुर्वासाका वस्त्र नदीके प्रवाहमे प्रवाहित हो गया। कुछ दूरीपर देवी द्रौपदी भी स्नान कर रही थीं, उस समय द्रौपदीने अपने अचलका एक टुकडा फाडकर उन्हे प्रदान किया, इससे प्रसन्न होकर शकरावतार महर्षि दुर्वासाने उन्हे वर दिया कि यह वस्त्रखण्ड वृद्धिको प्राप्तकर तुम्हारी लज्जाका निवारण करेगा और तुम सदा पाण्डवोका प्रसन्न रखोगी। इसी वरका प्रभाव था कि जब कौरवसभामे दु शासनके द्वारा द्रौपदीकी साडी खीची जाने लगी तो वह बढती ही गयी। वरके प्रभावसे द्रौपदीकी लाज बच गयी। इसी प्रकारसे इनके द्वारा अनेक भक्तोकी रक्षा हुई।

पिप्पलादावतार

जहाँ महान् त्याग, तपस्या, दान, परोपकार एव लोककल्याणके लिये आत्मदानकी बात आयगी वहाँ महर्षि दधीचिका नाम बडे ही आदरसे लिया जायगा। महर्षि दधीचि भृगुवशमे उत्पन्न हैं। वेदोमे दध्यङ्ङाथर्वण भी इनका नाम आया है। भगवान् शिवमें इनकी अनन्य निष्ठा रही है। इसीलिये ये महाशैव भी कहलाते हैं। शिवजीके आशीर्वादसे ही इनकी अस्थियाँ वज्रके समान कठोर हुई थीं। इनकी पत्नीका नाम सुवर्चा था, ये सदाचार-सम्पन्न, महान् साध्वी, पतिव्रता तथा भगवान् शिवमे विशेष भक्तिसम्पन्न थीं। इन दोनोकी शिवभक्तिसे ही प्रसन्न होकर भगवान् शिवने महासाध्वी सुवर्चाके गर्भसे 'पिप्पलाद' नामसे अवतार धारणकर जगत्का कल्याण किया और अनेक लीलाएँ कीं—

तस्मात् तस्या महादेवो नानालीलाविशारद ।
प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामत ॥

(शिवपु०, शतरुद्रस० २४।५)

भगवान् शिवके पिप्पलादावतार धारण करनेकी बडी ही रोचक कथा पुराणोमे मिलती है जिसका सक्षिप्त सार इस प्रकार है—

देवकार्यकी सिद्धि तथा वृत्रासुर आदि दैत्योसे जगत्की रक्षाके लिये महर्षि दधीचिद्वारा अपनी अस्थियोके दान तथा शिवकृपासे उनके लोककी प्राप्तिकी बात सर्वविश्रुत ही है। हुआ यो कि जब इन्द्र, बृहस्पति आदि देवता दधीचिसे उनकी अस्थियोकी याचना करनेके लिये उनके आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ देवोका महर्षि दधीचि और सुवर्चाके दर्शन हुए। देवताओने अत्यन्त विनम्रतासे उन्हे प्रणाम किया। महर्षि दधीचि सर्वज्ञ थे। वे अपने पास आये हुए देवताओका अभिप्राय समझ गये। तब उन्होने अपनी धर्मपत्नी देवी सुवर्चाको किसी कार्यके बहाने दूसरे आश्रममे भेज दिया। देवी सुवर्चा उस समय गर्भवती थीं।

देवताओने देखा कि देवी सुवर्चा चली गयी हैं तो उन्होने प्रार्थना करते हुए महर्षिसे कहा—'महामुने! आप सब कुछ जानते ही हैं कि हम क्यो आये हैं तथापि प्रभो! आप महान् शिवभक्त हैं, दाता हैं तथा शरणागतरक्षक है वृत्र आदि दैत्योने महान् उपद्रव मचा रखा है, सारी सृष्टि पीडित है हमलोग भी अपने स्थानोसे च्युत हो गये है, इस समय आप ही रक्षा करनेमे समर्थ हैं आपकी अस्थियोमे शिव-तेज तथा हमारे अस्त्र-शस्त्रोका दिव्य शक्ति समाहित है अत आप अपनी अस्थियोका हमे दान कर दे इनसे वज्रका निर्माण करके वृत्रासुर आदि दैत्योका नाश करनेमे हम सक्षम हो पायगे।

अन्य किसी अस्त्र-शस्त्रमे एसी शक्ति नहीं है कि वह दैत्योका नाश कर सके, क्योकि वरदानके प्रभावसे वृत्रासुर इस समय अजय हो गया है।' ऐसा कहकर देवता कातर-दृष्टिसे मुनिकी ओर देखने लगे।

महर्षि दधीचि देवताओके आगमनको समझ ही रहे थे। दानका मौका आये, फिर महात्मा दधीचि कैसे चूक सकते थे। आज तो सारे ब्रह्माण्डकी रक्षा करनी है, फिर इसके लिये एक शरीर तो क्या कई जन्मोतक शरीर-त्याग करना पडता तब भी महर्षिके लिये कम ही बात थी। सत तो थे ही, परहितके लिये उन्होने प्राणोके उत्सर्गको कम ही समझा। देवताओकी याचनाको उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दधीचिमुनिने अपने आराध्य भगवान् शकरका ध्यान किया और ध्यान-समाधिसे अपने प्राणोको खींचते हुए शिवतेजमे समाहित कर लिया। महर्षिका प्राणहीन शरीर पार्थिवकी तरह स्थित हो गया। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। उसी समय इन्द्रने सुरभि गौको बुलाया और महर्षिके शरीरको चटवाया। तब उनकी अस्थियोसे विश्वकर्माने वज्रादि अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोको बनाया। देवराज इन्द्रद्वारा वज्रके प्रयोगसे वृत्रासुर मारा गया और देवता विजयी हुए। ससारमे सुख-शान्तिका साम्राज्य छा गया।

देवताओके आश्रम-प्रदेशसे जानेपर जब महर्षिपत्नी सुवर्चा आश्रममे वापस आयीं तो देवताओकी नीति उन्हे समझमे आ गयी। उन्हे समझते देर नहीं लगी कि उनके परोक्षमें देवताओने उनके प्राणाराध्यसे अस्थियोकी याचना की और महामतिने अपनी अस्थियोका दानकर अपने प्राणोका उत्सर्ग कर दिया। वे कुपित हो उठीं और उन्होने देवताओको पुत्रहीन होनेका शाप दे डाला तथा उसी समय अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो उन्होने लकडियाँ एकत्रकर एक चिताका निर्माण किया और पतिका ध्यान करते हुए वे ज्यो ही चितापर आरूढ होनेको उद्यत हुईं, उसी समय लीलाधारी भगवान् शकरकी प्रेरणासे आकाशवाणी हुई—

'हे देवि! तुम इस प्रकारका साहस न करो, क्योकि तुम्हारे गर्भमे महर्षि दधीचिका ब्रह्मतेज है, जो भगवान् शकरका अवतार-रूप है। उसकी रक्षा आवश्यक है। सगर्भाके लिये देह-त्याग करना शास्त्रविरुद्ध है'—

'सगर्भा न दहेद् गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम्।'

(शिवपु० शतरुद्रस० २४।४३)

आकाशवाणी सुनकर सुवर्चाको अत्यन्त विस्मय हुआ और वे पास ही स्थित एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठ गयीं। वहीं उन्होने एक दिव्य बालकको जन्म दिया, जो साक्षात् शिवका अवतार ही था। उस समय उसके दिव्य तेजसे दसो दिशाएँ आलोकित हो उठीं। देवी सुवर्चाने उसे साक्षात् रुद्रावतार समझकर प्रणाम किया और रुद्रस्तवसे उसकी स्तुति की और कहा—'हे परमेशान! तुम इस पीपल (अश्वत्थ)-वृक्षके निकट चिरकालतक स्थित रहो। महाभाग! तुम समस्त प्राणियोके लिये सुखदाता और अनेक प्रकारकी लीला करनेमे समर्थ होओ। अब इस समय पतिलोकमे जानेकी मुझे आज्ञा प्रदान करो।' ऐसा कहकर अपने पुत्रको वहीं पीपलके समीप छोडकर पतिका ध्यान करती हुई सुवर्चा सती हो गयीं और उन्होने पतिके साथ शिवलोक प्राप्त किया।

इसी समय सभी देवता तथा ऋषि-महर्षि वहाँ आये और दधीचि एव सुवर्चाके उस पुत्रको साक्षात् रुद्रावतार जानकर अनेक स्तुतियोसे उनकी प्रार्थना करने लगे तथा इसे भगवान् शिवकी ही कोई लीला समझकर आनन्दित हो गये। वहाँपर देवताओने महान् उत्सव किया। आकाशसे पुष्पवृष्टि भी होने लगी। विष्णु आदि देवताओने उस दिव्य बालकके सभी सस्कार कराये। ब्रह्माने प्रसन्न होकर उस बालकका 'पिप्पलाद' यह नाम रखा—

'पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधी।'

(शिवपु० शतरुद्रस० २४।६१)

चूँकि शिवावतार वह बालक पीपलके वृक्षके नीचे आविर्भूत हुआ था और माताकी आज्ञासे पीपल-वृक्षके समीप रहा तथा उसने पीपलके मुलायम पत्तोका भक्षण भी किया इसलिये उसका पिप्पलाद यह नाम सार्थक ही हुआ। कुछ समय बाद देवता तथा ऋषि-महर्षि सब अपने स्थानोको चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल-वृक्षके मूलमे स्थित रहकर तपस्यामें स्थित हो गये। ऐसे ही तप करते

हुए उन्हे बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक दिन पिप्पलाद मुनि पुष्पभद्रा नामक नदीमे स्नान करनेके लिये गये। वहाँ उन्हे राजा अनरण्यकी कन्या राजकुमारी पद्मा दिखलायी दी। वह पार्वतीके अशसे प्रादुर्भूत हुई थी तथा दिव्य रूप एव गुणासे सम्पन्न थी। उसे प्राप्त करनकी आकाक्षासे महात्मा पिप्पलाद उसके पिता अनरण्यके पास गये आर विवाहके लिये कन्याकी याचना की। प्रथम तो राजा अनरण्य महर्षिकी वृद्धावस्था और जर्जर शरीरका देखकर चिन्तित हुए, कितु फिर उन्हाने उनके अलौकिक तेज और प्रभावको समझते हुए अपनी कन्या उन्हे सौंप दी।

पद्मा अपने वृद्ध पति महात्मा पिप्पलादकी अनन्य मनसे सेवा करने लगी। वह महान् पातिव्रत्य-गुणसे सम्पन्न थी।

एक बार पद्मा नदीमे स्नान करने गयी हुई थी, उसी समय उसके पातिव्रत्य-धर्मकी परीक्षा करनके लिये साक्षात् धर्मदेवता दिव्य रूप एव रमणीय दिव्याभरणाको धारणकर पद्माके पास आये ओर पिप्पलादकी जरावस्थाका ध्यान दिलाते हुए अपनको वरण करनेके लिये बार-बार आग्रह करने लगे, परतु पद्मा तनिक भी डिगी नहीं। महात्मा पिप्पलाद उसके प्राणाधार भी थे। मन-वाणी तथा कर्मसे उसकी पतिमे अनन्य भक्ति थी। उसने धर्मदेवकी बडी भर्त्सना की आर उसे क्षीण हो जानेका शाप दे दिया। धमदेव भयभीत हो अपने वास्तविक रूपमे प्रकट हो हाथ जोडकर खडे हो गये और बोले—'देवि। मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुम्हारी पतिभक्ति देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ कितु तुम्हारे शापसे मैं भयभीत हूँ।' देवी पद्मा बाली—'धर्मदेव। मैंने अज्ञानमे ही यह सब किया है, कितु शाप तो मिथ्या हो नहीं सकता, इसलिये तीनो युगामे चतुष्पाद धर्मके एक-एक पाद क्षीण रहगे। सत्ययुगमे तुम चारा पादासे स्थित रहोगे त्रेतामे तीन पादासे रहोगे, द्वापरमे दो पादासे स्थित रहोगे तथा कलियुगमे केवल एक पादसे स्थित रहोगे। इस तरह प्रत्येक चतुर्युगीमे ऐसी ही व्यवस्था रहेगी। इसके साथ ही शापका परिहार बताकर पद्मा पुन पतिसेवामे जानेको उद्यत हुई। तब प्रसन्न हुए धर्मदेवने वृद्ध महात्मा पिप्पलादको रूपवान्, गुणवान्, स्थिर यौवनसे युक्त पूर्ण युवा हो जानेका वर प्रदान किया और पद्माको भी चिरयौवना होकर अखण्ड सुख-सौभाग्य प्राप्त करनेका वर दिया।

वरदानके प्रभावसे पिप्पलाद तथा देवी पद्माने बहुत समयतक धर्माचरणपूर्वक गृहस्थ-जीवनका आचरण किया। इस प्रकार महाप्रभु शकरके लीलावतार पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं—

एव लीलावतारो हि शकरस्य महाप्रभो।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकर प्रभु॥

(शिवपु० शतरुद्रस० २५।१४)

जब महात्मा पिप्पलादका अवतार हुआ था, उस समय उन्हाने देवताओसे प्रश्न किया था कि 'हे देवगणो। क्या कारण है कि मेरे जन्मसे पूर्व ही पिता (दधीचि) मुझे छोडकर चले गये और जन्म होते ही माता भी सती हो गयीं?' तब देवताओने बताया कि शनिग्रहकी दृष्टिके कारण ही ऐसा कुयोग बना। इसपर क्रुद्ध हो पिप्पलादने शनिको नक्षत्र-मण्डलसे गिरनेका शाप दिया। तत्क्षण ही शनि आकाशसे गिर पडे। पुन देवताओकी प्रार्थनापर पिप्पलादने उन्हे पूर्ववत् स्थिर हो जानेकी आज्ञा दे दी। इसीलिये महर्षि पिप्पलादके नाम-स्मरण तथा पीपल (जो भगवान् शकरका ही रूप है)-के पूजनसे शनिकी पीडा दूर हो जाती है। महामुनि गाधि, कौशिक तथा पिप्पलाद—इन तीनोका नाम-स्मरण करनेसे शनिग्रहकृत पीडा नष्ट हो जाती है। शकरावतार महामुनि पिप्पलाद तथा देवी पद्माके चरित्रका श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पाठ अथवा श्रवण शनिग्रहद्वारा किये गये अनिष्ट—पीडा आदिको दूर करनेके लिये श्रेष्ठतम उपाय है—

गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनि।
शनैश्चरकृता पीडा नाशयन्ति स्मृतास्त्रय॥
पिप्पलादस्य चरित पद्माचरितमयुतम्।
य पठेच्छृणुयाद् वापि सुभक्त्या भुवि मानव॥
शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम्।

(शिवपु० शतरुद्रस० २५।२०—२२)

~~~०~~~
~~~

द्विजेश्वरावतार

प्राचीन कालमे भद्रायु नामक एक महाप्रतापी राजा थे, वे शिवके परम भक्त थे। देवी कीर्तिमालिनी भद्रायुकी साध्वी पत्नी थीं। अपने स्वामीके समान ही कीर्तिमालिनीकी भी शिवमें परम श्रद्धा एवं निष्ठा थी। एक बार वसन्तकालमें राजा-रानी दोनों वन-विहारके लिये वनमें गये। भगवान् शिवने उनकी भक्ति तथा धर्मकी परीक्षा करनेके लिये द्विज-दम्पतीका रूप धारणकर लीला करनेकी इच्छा प्रकट की, उस समय वे स्वयं द्विज-रूपमें हो गये तथा माँ पार्वती ब्राह्मणी बन गयीं। द्विज-दम्पती उस वनमें उसी स्थानपर आये, जहाँ राजा भद्रायु और रानी कीर्तिमालिनी सुखपूर्वक बैठे हुए थे। भगवान् शंकरने अपनी लीलासे वहाँ एक मायामय व्याघ्रकी भी रचना कर ली—

अथ तद्धर्मदृढतां परीक्षन् परमेश्वरः ।
लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शंकरः ॥
शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती।
व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया॥

(शिवपु० शतरुद्रसं० २७।८-९)

अब भगवान् शंकरने लीला दिखानी प्रारम्भ की। भगवान् शंकर तथा पार्वती द्विज-दम्पतीके रूपमें व्याघ्रके भयसे भाग रहे थे और उनके पीछे व्याघ्र भयंकर गर्जना करते हुए आ रहा था। वे दोनों 'अरे कोई है, बचाओ-बचाओ'—इस प्रकार चिल्लाते-चिल्लाते, रोते-रोते वहाँ पहुँचे जहाँ राजा भद्रायु स्थित थे। वे दोनों राजासे अपने प्राणोंकी रक्षाकी प्रार्थना करने लगे। उनके आर्त स्वरको सुनकर तथा भयंकर व्याघ्रको उनके पीछे आते देखकर जबतक राजा धनुषपर बाण चढाते, उतने ही समयमें उस तीक्ष्ण दाँतोंवाले व्याघ्रने ब्राह्मणी (पार्वती)-को दबोच लिया। ब्राह्मणी रोती-चिल्लाती रह गयी। राजाने अनेक अस्त्रोंसे व्याघ्रपर प्रहार किया, किंतु उसे कुछ भी असर नहीं हुआ। होता भी कैसे, उसे तो लीलाधारी भगवान्‌ने अपनी मायासे लीलाके लिये ही बनाया था। वह व्याघ्र ब्राह्मणीको दूरतक घसीटता चला गया। राजाके सभी अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ साबित हुए।

ब्राह्मण राजाके क्षत्रियत्वको बहुत प्रकारसे धिक्कारने लगा कि उनके रहते उनकी पत्नीको व्याघ्र हर ले गया। 'जो शरणागतकी रक्षा न कर सके उसका जीना व्यर्थ है।' यह सुनकर राजाके मनमें अत्यन्त ग्लानि हुई। उन्हें अपना जीवन व्यर्थ लगने लगा। अतः उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गका निश्चय किया और वृद्ध ब्राह्मणके चरणोंमें गिरकर वे क्षमा-याचना करते हुए कहने लगे—'ब्रह्मन्! अब मेरा जीवन बेकार ही है। मेरा बल, पराक्रम सब व्यर्थ गया। मैं देवी ब्राह्मणीको छुडा नहीं सका, अतः अब मुझे राज्य तथा समस्त वैभव आदिसे कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिये उसे आप स्वीकारकर मुझे क्षमा करें।'

इसपर लीलारूप वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'अरे राजन्! मेरी प्रिया ब्राह्मणी नहीं रही, इसलिये मेरे लिये सारा सुखोपभोग व्यर्थ ही है, यह तो वैसा ही है जैसे अंधेके लिये दर्पण निष्प्रयोजन ही होता है। यदि आपको देना ही है तो मेरी स्त्री नहीं रही, इसलिये आप अपनी स्त्री मुझे प्रदान करें। अन्यथा मेरे प्राण शरीरमें नहीं रह सकते।'

वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुनकर पहले तो राजा भद्रायु बडे ही संकटमें पड गये। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। वे कुछ निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हुए, किंतु दूसरे ही क्षण उन्होंने निश्चय किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महान् पाप होगा। अतः उन्होंने पत्नीका दान करके अग्निमें प्रवेश कर जानेका निर्णय लिया। ऐसा निश्चय करके उन्होंने लकडियाँ एकत्र कीं तथा अग्नि प्रज्वलितकर ब्राह्मणको बुलाकर अपनी पत्नी उन्हें दे दी और फिर भगवान् शिवका स्मरण-ध्यान करके ज्यों ही राजा भद्रायु अग्निमें प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुए, त्यों ही लीलाधारी भगवान् शंकर जो द्विजरूपमें थे, वे साक्षात् शिवरूपमें सामने प्रकट हो गये। उनके पाँच मुख थे, मस्तकपर चन्द्रकला सुशोभित थी, जटाएँ लटकी हुई थीं। वे हाथोंमें त्रिशूल, खट्वाङ्ग, ढाल, कुठार पिनाक तथा वरद और अभय-मुद्रा धारण किये थे। वे वृषभपर आरूढ थे। उनका मुखमण्डल अद्भुत दिव्य प्रकाशको

आभासे प्रकाशित हो रहा था। उनका वह रूप अत्यन्त मनोरम तथा सुखदायी था।

अपने आराध्य लीलाधारी भगवान् शिवको अपने सामने पाकर राजा भद्रायुके आनन्दकी सीमा न रही। वे बार-बार प्रणाम करते हुए अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। देवी उमा भी वहाँ प्रकट हो गयीं।

राजाके महान् त्याग और दृढभक्तिसे प्रसन्न होकर शिवने भद्रायुको लीलाका रहस्य समझाते हुए कहा— 'राजन्! मैं ही तुम्हारे शिव-भावकी परीक्षा लेनेके लिये द्विजरूपमें अवतरित हुआ था और वह वृद्ध ब्राह्मणी भी और कोई नहीं मेरी प्रिया ये देवी पार्वती ही थीं। वह व्याघ्र भी मैंने लीलासे ही रचा था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था। तुम्हारी पत्नी कीर्तिमालिनी और तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं कोई वर माँगो।' फिर शिवभक्तिका वरदान प्राप्तकर अन्तमें राजा भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीने शिवसायुज्य प्राप्त किया। भद्रायुने अपने माता-पिता एवं कुल-परम्परा और कीर्तिमालिनीने भी अपने माता-पिता एवं कुल-परम्पराको शिव-भक्त होनेका वरदान प्राप्त किया।

इस प्रकार भगवान् शिवने अपने भक्तके कल्याणके लिये द्विजरूप होकर लीला की और वे द्विजेश्वर कहलाये।

भगवान् शिवका यतिनाथ एवं हंसावतार

(श्रीआनन्दीलालजी यादव)

प्राचीन समयमें अर्बुदाचल नामक पर्वतके पास आहुक नामका एक भील रहता था। उसकी पत्नीका नाम आहुका था। पति-पत्नी दोनों ही शिवभक्त थे। वे दोनों अपने गृहस्थधर्मका पालन करते हुए अपनी दिनचर्याका अधिकांश समय शिवोपासनामें ही व्यतीत करते थे। उस भील-दम्पतीका जीवन भोलेभण्डारी शिवकी पूजा-अर्चनाके लिये पूर्णतया समर्पित था।

एक दिन सन्ध्याके समय जब भगवान् भास्कर अस्ताचलकी ओर बढ रहे थे, उस समय भगवान् शंकर भीलकी शिवभक्तिकी परीक्षाके लिये सन्यासीका वेष धारण कर उसकी कुटियापर पहुँचे। उस समय केवल आहुका ही वहाँ थी उसने सन्यासीको प्रणाम करके उनका स्वागत किया। आहुक आहारकी खोजमें वनमें गया हुआ था, लेकिन थोडी ही देरमें वह भी कुटियापर पहुँच गया और उसने भी घर आये सन्यासीको प्रणाम किया।

सन्यासी बोले—'भील! मुझे आजकी रात बितानेके लिये जगह दे दो। मैं कल प्रात काल यहाँसे चला जाऊँगा।' आहुकने कहा—'यतिनाथ! हमारी यह झोपडी छोटी है। इसमें केवल दो व्यक्ति ही रातमें ठहर सकते हैं। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है और कुछ रोशनी है। अत आप रात बितानेके लिये किसी अन्य स्थानकी तलाश कर लें।'

इस बातको सुनकर आहुका बोली—'प्राणनाथ! देखिये, ये यतिनाथ हमारे अतिथि हैं। हम गृहस्थ हैं। गृहस्थ-धर्मानुसार हमें इनकी सेवा करनी चाहिये। इन्हें किसी अन्य स्थानपर जानेके लिये नहीं कहना चाहिये। अत रातमें आप दोनों झोपडीमें अंदर रहियेगा और मैं शस्त्र लेकर बाहर पहरा दूँगी।'

पत्नीकी बात सुनकर आहुकने कहा—'तुम ठीक कहती हो कि हमें घर आये अतिथिका सत्कार करना चाहिये। अत आज रात यति महाराज हमारे यहाँ रहेंगे। मेरे होते हुए तुम्हें बाहर पहरा देनेकी जरूरत नहीं है। आप दोनों झोपडीमें अंदर रहना और मैं शस्त्र लेकर बाहर पहरा देते हुए आपलोगोंकी रक्षा करूँगा।'

भोजन करनेके बाद यतिनाथ और भीलकी पत्नी तो कुटियामें अंदर सो गये तथा आहुक शस्त्र लेकर बाहर पहरा देने लगा।

रातके समय जंगली हिंसक पशुओंने आहुकको आहार बनानेका यत्न शुरू कर दिया। वह अपनी शक्तिके अनुसार पशुओंसे अपना बचाव करता रहा, लेकिन प्रारब्धानुसार जंगली पशु उसे मारकर खा गये। प्रात काल

आहुकाने कुटियासे बाहर निकलकर अपने पतिको मृत देखा। वह बहुत दु खी हुई। यति भी जब कुटियासे बाहर निकले तो आहुकको मृत देखकर उन्होंने भीलनीसे कहा कि यह सब उसके कारण हुआ है।

भीलनी आहुका बोली—'यतिनाथ! आप दु खी मत होइये। मेरे पतिकी मृत्युका प्रारब्धवश ऐसा ही विधान था। गृहस्थधर्मका पालन करते हुए इन्होंने प्राण त्याग दिये हैं। इनका कल्याण ही हुआ है। आप मेरे लिये एक चिता तैयार कर दें, जिससे मैं पत्नीधर्मका पालन करते हुए अपने पतिका अनुसरण कर सकूँ।'

आहुकाकी बात सुनकर सन्यासीने उसके लिये एक

चिता तैयार कर दी। आहुकाने ज्यों ही चितामे प्रवेश किया, त्यों ही भगवान् शिव साक्षात् अपने रूपमे उसके समक्ष प्रकट हो गये और उसकी प्रशसा करते हुए बोले—'तुम धन्य हो। मैं तुमपर अति प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

भगवान् शकरको अपने सामने प्रत्यक्ष देखकर और उनकी वाणी सुनकर आहुका आत्मविभोर हो गयी। उसके मुखसे वचन नहीं निकले। उसकी उस स्थितिको देखकर देवाधिदेव महादेव अतिप्रसन्न होकर बोले—'मेरा जो यह यतिरूप है यह भविष्यमे हसरूपमे प्रकट होगा। मेरे कारण तुम पति-पत्नीका बिछोह हुआ है। मेरा हसस्वरूप तुम दोनोका मिलन करायेगा। तुम्हारा पति निषधदेशमे राजा वीरसेनका पुत्र 'नल' होगा और तुम विदर्भनगरमे भीमराजकी पुत्री 'दमयन्ती' होओगी। मैं हसावतार लेकर तुम दोनोका विवाह कराऊँगा। तुम दोनो राजभोग भोगनेके पश्चात् वह मोक्षपद प्राप्त करोगे, जो बड़े-बड़े योगेश्वरोके लिये भी दुर्लभ है'—इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और भीलनी आहुकाने अपने पतिके मार्गका अनुसरण किया।

कालान्तरमे आहुक नामक भील निषधदेशके राजा वीरसेनका पुत्र 'नल' हुआ और निषधदेशका राजा बना। उस समय नलके समान सुन्दर और गुणवान् व्यक्ति पृथ्वीपर नहीं था। आहुका भीलनी विदर्भके राजा भीमकी पुत्री 'दमयन्ती' हुई। उस समय दमयन्तीके समान पृथ्वीपर सुन्दरी और गुणवती स्त्री नहीं थी। दोनोके रूप और गुणोकी चर्चा सर्वत्र होती थी।

नल और दमयन्तीके पूर्वजन्मके अतिथि-सत्कारजनित पुण्य एव शिवाराधनासे प्रसन्न होकर यतिनाथ भगवान् शिव अपने वचनोको सत्य प्रमाणित करनेके लिये हसरूपमे प्रकट हुए। हसावतारधारी शिव मानववाणीमे कुशलतासे बात करने एव सदेश पहुँचानेमे निपुण थे।

भगवान् शकरने हसरूपमे दमयन्तीको नलके और नलको दमयन्तीके रूप और गुणोको बताकर उन्हे विवाह करनेकी प्रेरणा दी। विदर्भराजने दमयन्तीके विवाहके लिये स्वयवर आयोजित किया। स्वयवरमे दमयन्तीने नलके गलेमे वर-माला पहना दी और दोनोका विवाह हो गया।

भगवान् शिव ही यतिनाथके वेषमे आहुक और आहुकाकी परीक्षा लेने गये थे। उनके कारण ही उनका बिछोह हुआ था और उन्होंने ही उन्हे फिर मिला दिया। भोलेभण्डारी महादेव शीघ्र ही प्रसन्न होकर अपने भक्तोको वर देनेके लिये प्रसिद्ध हैं। शिवकी सर्वत्र पूजा-उपासना होती है। सर्वत्र शिवालय प्रतिष्ठित हैं। जहाँ 'हर-हर महादेव'की ध्वनि गूँजती है। कल्याणकारी भगवान् शिव सबका भला ही करते हैं। (शिवपुराण)

अर्धनारीश्वर भगवान् शिव

(सुश्री उषारानी शर्मा)

सकलभुवनभूतभावनाभ्या
जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम्।
नरवरयुवतीवपुर्धराभ्या
सततमह प्रणतोऽस्मि शङ्कराभ्याम्॥

अथात् जा समस्त भुवनाके प्राणियोका उत्पन्न करनवाल ह, जिनका विग्रह जन्म ओर मृत्युसे रहित है तथा जो श्रेष्ठ नर और सुन्दर नारी (अर्धनारीश्वर) रूपम एक ही शरीर धारण करके स्थित हैं, उन कल्याणकारी भगवान् शिव ओर शिवाको मैं प्रणाम करता हूँ।

भगवान् शिवका अर्धनारीश्वररूप परम परात्पर जगत्पिता और दयामयी जगन्माताके आदि सम्बन्धभावका द्योतक हे। सृष्टिके समय परम पुरुप अपने ही अर्द्धाङ्गसे प्रकृतिको निकालकर उसमे समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं—

द्विधा कृतात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्या स विराजमसृजत्प्रभु ॥

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप हे। ईश्वरका सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चित्स्वरूप पितृस्वरूप है। उनका तीसरा आनन्दरूप वह स्वरूप है, जिसम मातृभाव और पितृभाव दोनाका पूर्णरूपेण सामजस्य हो जाता है, वही शिव और शक्तिका सयुक्त रूप अर्धनारीश्वररूप है। सत्-चित् दो रूपाके साथ-साथ तोसरे आनन्दरूपक दशन अर्धनारीश्वररूपम ही होते हैं, जो शिवका सम्भवत सर्वोत्तम रूप कहा जा सकता है।

सत्-चित् और आनन्द—ईश्वरके इन तीन रूपाम आनन्दरूप अर्थात् साम्यावस्था या अक्षुब्धभाव भगवान् शिवका है। मनुष्य भी ईश्वरसे उत्पन्न उसीका अश है, अत उसके अदर भी ये तीना रूप विद्यमान हैं। इसमस स्थूल शरीर उसका सदश है तथा बाह्य चतना चिदश है। जब ये दोना मिलकर परमात्माके स्वरूपकी पूर्ण उपलब्धि कराते हैं, तब उसके आनन्दाशकी अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार मनुष्यम भी सत्-चित्की प्रतिष्ठासे आनन्दकी उत्पत्ति हाती है।

स्त्री और पुरुप दोना ईश्वरकी प्रतिकृति हैं। स्त्री उनका सद्रूप है और पुरुप चिद्रूप, परतु आनन्दक दर्शन तब होते हैं, जब ये दोना मिलकर पूर्ण रूपसे एक हो जाते हे। शिव गृहस्थाके ईश्वर हैं, विवाहित दम्पतीक उपास्य देव हैं। शिव स्त्री ओर पुरुपकी पूर्ण एकताकी अभिव्यक्ति हैं इसीसे विवाहित स्त्रियाँ शिवकी पूजा करती हैं।

भगवान् शिवक अधनारीश्वर-अवतारकी कथा— पुराणाके अनुसार लोकपितामह ब्रह्माजीने पहले मानसिक सृष्टि उत्पन्न की थी। उन्हाने सनक-सनन्दनादि अपने मानसपुत्राका सृजन इस इच्छास किया था कि ये मानसी सृष्टिको ही वढाये, परतु उन्हे सफलता नहीं मिला। उनके मानसपुत्रामे प्रजाकी वृद्धिकी ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती थी। अपनी मानसी सृष्टिकी वृद्धि न होते देखकर ब्रह्माजी भगवान् त्र्यम्बक सदाशिव और उनकी परमा शक्तिका हृदयम चिन्तन करते हुए महान् तपस्याम सलग्न हो गये। उनकी इस तीव्र तपस्यासे भगवान् महादव शीघ्र ही प्रसन्न हा गये ओर अपने अनिर्वचनीय अशसे अर्धनारीश्वरमूर्ति धारण कर वे ब्रह्माजीके पास गये—

तया परमया शक्त्या भगवन्त त्रियम्बकम्।
सञ्चिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परम तप ॥
तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिन ।
अचिरेणैव कालेन पिता सम्प्रतुतोष ह॥

तत केन चिदशेन मूर्तिमाविश्य कामपि।
अर्धनारीश्वरो भूत्वा ययो देवस्स्वय हर ॥

(शिवपुराण, वायवीय सहिता पूर्वार्द्ध १५।७—९)

ब्रह्माजीने भगवान् सदाशिवको अर्धनारीश्वररूपमे दखकर विनीत भावसे उन्ह साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। इसपर भगवान् महादवने प्रसन्न होकर कहा—हे ब्रह्मन्! आपने प्रजाजनोकी वृद्धिके लिये तपस्या की हे, आपकी इस तपस्यासे में बहुत सतुष्ट हूँ और आपको अभीष्ट वर दता हूँ। यह कहकर उन देवाधिदेव ने अपने वामभागसे अपनी शक्ति भगवती रुद्राणीको प्रकट किया। उन्ह अपने समक्ष प्रकट दखकर ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की और उनसे कहा—हे सर्वजगन्मयि देवि! मेरी मानसिक सृष्टिसे उत्पन्न देवता आदि सभी प्राणी बारबार सृष्टि करनेपर भी बढ नहीं रहे हें। मैथुनी सृष्टिहेतु नारीकुलकी सृष्टि करनेकी मुझमे शक्ति नहीं है, अत ह दवि! अपने एक अशसे इस चराचर जगत्‌की वृद्धिहेतु आप मेरे पुत्र दक्षकी कन्या बन जायँ।

ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार याचना किय जानेपर दवी रुद्राणीने अपनी भौंहोके मध्य भागसे अपने ही समान एक कान्तिमती शक्ति उत्पन्न की, वही शक्ति भगवान् शिवकी आज्ञासे दक्षकी पुत्री हो गयी आर देवी रुद्राणी पुन महादेवजीके शरीरमे ही प्रविष्ट हो गयीं।

इस प्रकार भगवान् सदाशिवके अर्धनारीश्वररूपसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। उनका यह रूप यह सदेश देता है कि समस्त पुरुष भगवान् सदाशिवके अश और समस्त नारियाँ भगवती शिवाकी अशभूता हैं, उन्हीं भगवान् अर्धनारीश्वरसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है—

पुँल्लिङ्ग सर्वमीशान स्त्रीलिङ्ग विद्धि चाप्युमाम्।
द्वाभ्या तनुभ्या व्याप्त हि चराचरमिद जगत्॥

~~~ ० ~~~

देवाधिदेव महादेव—नटराज शिव

(डॉ० सुश्री कृष्णाजी गुप्ता)

हिन्दूधर्मके त्रिदेवामे शिवका स्थान महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि शिव सहारक तथा प्रलयकर्ता माने गये हैं, परतु उनके अनन्य उपासक उन्हे ब्रह्मा एव विष्णुसे सम्बन्धित कार्य—सृष्टि एव स्थितिके कर्ता भी मानते हैं। शिवको अनुग्रह, प्रसाद एव तिरोभाव करनेवाला माना गया है। शिवके ये सम्पूर्ण कृत्य पञ्चकृत्यके परिचायक हैं। ससारके लय, विलय, सरक्षण अनुग्रह प्रसाद, तिरोभाव आदि कृत्यासे उनके पञ्चकृत्याका उद्भव होता है। शिवके विविध रूप ही उनके विविध कृत्योके परिचायक हैं। भारतीय सस्कृतिके लगभग प्रत्येक अङ्गपर शिवमहिमाकी छाप है। दर्शन, कला, नृत्य एव साहित्यमे शिवकी व्यापकता द्रष्टव्य है। विभिन्न शास्त्रोम शिवके रहस्यात्मक स्वरूप चर्चाके विषय रह हैं तथा उन्ह अनेक नामासे विभूषित किया गया है।

शास्त्राम जितना अधिक शिवके स्वरूपाका वर्णन है, उतना ही शिल्पियाने उनके स्वरूपाकी प्रतिमाएँ शिल्पित की हैं। कलाकी दृष्टिसे शिवको तीन प्रमुख रूपाम प्रस्तुत किया गया है—प्रतीक रूपम (शिवलिङ्ग), वृषरूपम (नन्दीप्रतिमा) तथा मानवीय स्वरूपमे (उग्र एव सौम्य)। उग्र स्वरूपमे शिवको भैरव, घार, रुद्र, पशुपति, वीरभद्र विरूपाक्ष तथा ककाल मूर्तियाम दर्शाया गया है। शिवकथानकोमें इस स्वरूपका अङ्कन सहारमूर्तियाके रूपमे मिलता है। शैवागमामे शिवकी सौम्य मूर्तियाका वर्णन चन्द्रशखर, वृषवाहन उमामहेश्वर, सोम, स्कन्द
~~~

आदि रूपाम किया गया है। शिवका विशुद्ध स्वरूप महेश, सदाशिव ओर पञ्चमुखी प्रतिमा—सद्योजात, वामदव, अघोर, तत्पुरुष तथा ईशानके माध्यमसे निरूपित किया गया हे। शिवकी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति तो शिल्पमे बहुत अङ्कित की गयी है, साथ ही शैव, शाक्त, वेष्णव एव सौर आदि सम्प्रदायाका समन्वय सहारमूर्तियाद्वारा प्रस्तुत किया गया है। दक्षिण भारतके देवालयाम शिवके अनुग्रह-रूपकी गङ्गाधर तथा कल्याणसुन्दर (शिव-पार्वतीपरिणय) मूर्तियाँ अत्यन्त रोचक भगिमाआम शास्त्रानुरूप प्रस्तुत की गयी हैं।

शिवका एक अन्य अत्यन्त लोकप्रिय रूप 'नटराज' दक्षिणम चोलकालीन मदिराको कास्य-प्रतिमाओमे प्रकट होता ह। शिवका सगीत, नृत्य, नाट्ययाग, व्याख्यान आदि विद्याआम पारङ्गत कहा गया हे।

प्रतिमाविज्ञानकी दृष्टिसे शिवका अङ्कन सश्वास है सजीव हे तथा शिल्पीकी तूलिकाका उन्मीलन दवाधिदेव महादेवके उन्मेपकारी रूपामे मुखर हुआ है।

हिन्दू देवताआम शिव ही ऐसे एकमात्र देव हैं जो सभी नृत्योम पारङ्गत माने गये हें। भरतमुनिने अपने नाट्यशास्त्रम नृत्यकी १०८ मुद्राआका वर्णन किया है। शैवागमाम शिवको १०१ मुद्राआसे भी अधिक मुद्राआम नृत्य करते हुए वर्णित किया गया हे। चिदम्बरम्‌क नटराज मन्दिरक गापुरक दोना ओर १०८ मुद्राआम शिवके नृत्यका अङ्कन है आर प्रत्यक मुद्राको शिल्पीने भरतमुनिके नाट्यशास्त्रके अनुसार प्रस्तरपर उत्कीर्ण किया है। गोपुरम प्रत्येकक नीच नाट्यशास्त्रके श्लाक लिखे हुए हैं।

शिवका नटराज-स्वरूप सम्पूर्ण भारतम लोकप्रिय रहा ह, परतु इस स्वरूपम शिल्पकी दृष्टिसे उत्तर एव दक्षिण भारतम कुछ अतर है। दक्षिण भारतक नटराज अपनी बार्यी भुजाम अग्नि लिय हुए रहते हैं एव उनके पेराक समीप झुका हुआ अपस्मार पुरुष मुयलक रहता है, परतु उत्तर भारतम ललितमुद्राम बहुभुजी नटराजके पैराके समीप नन्दी अथवा नर्तनका अनुसरण करता सहचर रहता है। दक्षिण भारतम नटराज शिवकी कास्य प्रतिमाएँ बहुतायतस मिलती हैं। ये प्रतिमाएँ अधिकाशत १४-१५वीं सदी तथा उसक बादकी हैं। चोल शैलीम नटराज शिव विशाल प्रभामण्डलम अधकारके प्रताक अपस्मार-पुरुषपर चरण रखकर नृत्य कर रहे हें। नृत्यम शिवको पाचों क्रियाओ—सृष्टि, निर्माण, स्थिति, सहार एव तिराभावका समावेश हे।

विभिन्न पुराणाम नटराज शिवका उल्लख मिलता हे। विष्णुधर्मोत्तरपुराणम उल्लेख है कि जिस प्रकार प्रजापति, शतक्रतु, धन्वन्तरि, मही, सकर्षण एव रुद्र क्रमश इतिहास, धनुर्वेद, आयुर्वेद, फलवेद पाञ्चरात्र, पाशुपतमतके प्रवर्तक हें, उसी प्रकार महश्वर शिव नृत्यविज्ञानके प्रवर्तक हैं। इसीम उल्लेख है—**'यथा चित्र तथा नृत्ये त्रैलोक्यानुकृति स्मृता।'** इसम नृत्यके विभिन्न करणके विभिन्न सुझाव दिये गय हैं। मत्स्यपुराण (२५९।१०-११)-म नटराज शिवका दशभुजी मूर्तिका विवरण इस प्रकार आया है—

वैशाखस्थानक कृत्वा नृत्याभिनयसस्थित ॥
नृत्यन् दशभुज कार्यो गजचर्मधरस्तथा।

अर्थात् दस भुजाआवाली शिवकी नटराज-मूर्तिको विशाखस्थान मुद्रा (नृत्य या युद्धमे खडे होनेकी वह मुद्रा जिसमे दोना पेराके बीच एक हाथ जगह खाली रहती है)-म बनाया जाना चाहिये। वह नाचती हुई तथा गजचर्म धारण किये हुए हो।

शिवकी नृत्यप्रतिमाएँ भारतके विभिन्न क्षेत्रा—एलारा एलीफेण्टा बादामी, काञ्चीवरम्, भुवनेश्वरके लिङ्गराज एव खजुराहो तथा मध्यक्षेत्रम पूरे वैभवके साथ अङ्कित हैं, परतु इनके सुन्दर स्वरूप दक्षिण भारतकी कास्यप्रतिमाआम मिलते हैं। इन प्रतिमाआम नटराज शिवम विशप प्रकारकी उन्नति हुई है, जो कलाके क्षेत्रम उत्कृष्ट दन हें। दक्षिण भारतक शिल्पियान शिवको विश्वनतकक रूपम व्यक्त किया हे।

शिवका ताण्डव-नृत्य मात्र नृत्य ही नहीं सम्पूर्ण शैवदशन हे। श्रीमद्भागवत (१०।६२।४)-म वर्णित हे कि एक बार बाणासुरन अपनी हजार भुजाआसे वाद्य बजाकर ताण्डव-नृत्य करत शिवको प्रसन्न किया था—

'सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम्॥'

ताण्डव-नृत्यमे शिवकी बिखरी हुई जटाएँ ब्रह्माण्ड हैं, फुफकारता हुआ सर्प वासना है, गङ्गा ज्ञान है, चन्द्र ज्योति है तथा तीसरा नेत्र अग्नि है, मुण्डमाला संसारकी निस्सारता है, पैरोंके नीचे अपस्मार-पुरुष अज्ञानका प्रतीक है। ताण्डव श्मशानका नृत्य है, भैरव या वीरभद्रकी रूपसज्जा इस नृत्यहेतु की जाती है। ताण्डवके पाँच रूप हैं—सृष्टि, (जन्म), स्थिति (सुरक्षा), तिरोभाव (माया), अनुग्रह (क्षमा) एवं संहार (विनाश), जो क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सदाशिव एवं रुद्रके कार्य हैं और जिन्हें महादेव शिव ताण्डव-नृत्यमें क्रियान्वित करते हैं। कभी-कभी उनके साथ नन्दी, शृङ्गी, ऋषि, गणेश, कार्तिकेय एवं समस्त परिवार भी नृत्य करता है। उनकी जटाएँ फैली हुई होती हैं और जटाके बायीं ओर गङ्गा तथा दायीं ओर चन्द्रमा विराजमान रहता है—**'सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरम्'** शिव संसारके क्रमबद्ध जीवनके प्रतिपादनके लिये नृत्य करते हैं। उनका नृत्य पञ्चाक्षर 'न म शि व य' (पाँच अक्षरों)-का समुदाय है। उनके पगमें 'न', मध्यभाग (नाभि)-में 'म', स्कन्धमें 'शि', मुखमें 'व' एवं मस्तकमें 'य' है। शिवके चार हाथोंमें डमरुसे निर्माणका उदय होता है। आशाके हाथसे (अभय) रक्षा प्रवृत्त होती है, अग्निलिये हाथसे विध्वंस प्रवृत्त होता है, चौथा हाथ जो पैरकी ओर उठा हुआ रहता है, आत्माका शरणस्थल है तथा ऊपरकी ओर उठा हुआ पैर मुक्ति प्रदान करता है। तमिलसाहित्यमें 'उन्मैय-विलक्कम्' में शिवके नृत्यकी अलौकिक व्याख्या की गयी है।

यद्यपि शिव महान् नर्तकके रूपमें बहुत पहलेसे साहित्यमें वर्णित किये गये हैं तथापि उनका प्रतिमासम्बन्धी वर्णन केवल शैवागमोंमें ही मिलता है। एक सर्वोच्च नर्तकके रूपमें शिव कई स्वरूप ग्रहण करते हैं और उनकी विभिन्न मुद्राएँ नृत्यके विभिन्न स्वरूपोंको दर्शाती हैं। प्रत्येक नृत्यमें जीव-निकायके आत्यन्तिक कल्याणका लाक्षणिक अर्थ समाहित रहता है।

~~ ० ~~
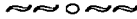
भगवान् शिवका राधावतार और भगवती महाकालीका कृष्णावतार

(सुश्री निशीजी द्विवेदी, एम्०ए०)

[यह कथा 'महाभागवत (देवीपुराण)' से ली गयी है। विभिन्न पुराणोंमें कथाओंमें भिन्नता मिलती है। इन कथाओंकी सार्थकता कल्पभेदके अनुसार मानी जाती है अर्थात् एक कथा एक कल्पकी तथा दूसरी कथा दूसरे कल्पकी है—सम्पादक]

एक बारकी बात है देवर्षि नारदजीने भगवान् शिवजीसे निवेदन किया—प्रभो! अनेक तत्त्वज्ञानी लोग बताते हैं कि परात्पर विद्यास्वरूपिणी भगवती काली हैं। उन्होंने ही स्वयं पृथ्वीपर श्रीकृष्णरूपमें अवतार ग्रहणकर कंसादि दुष्टोंका संहार कर पृथ्वीका भार दूर किया, अतः आप बतानेकी कृपा करें कि महेश्वरीने पुरुषरूपमें क्यों अवतार धारण किया—

वदन्त्यनेकतत्त्वज्ञा काली विद्या परात्परा।
या सैव कृष्णरूपेण क्षिताववातरत्स्वयम्॥
अभवच्छ्रोतुमिच्छामि कस्माद्देवी महेश्वरी।
पुरूपेणावतीर्णाभूत्क्षितौ तन्मे वद प्रभो॥
(महाभागवतपुराण ४९। १, ३)

इसपर भगवान् महादेवजीने नारदजीकी जिज्ञासाको शान्त करनेके लिये उनके द्वारा पूछे गये प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा—

वत्स! एक समयकी बात है—कौतुकी भगवान् शिव कैलासशिखरपर मन्दिरमें पार्वतीके साथ एकान्तमें विहार कर रहे थे। भगवती पार्वतीकी अचिन्त्य सुन्दरता देखकर शम्भु सोचने लगे कि 'नारी जन्म तो अत्यन्त शोभन है'—

'चेतसा चिन्तयामास नारीजन्मातिशोभनम्॥'

तदनन्तर उन्होंने पार्वतीजीसे अनुरोध किया कि मेरी इच्छा है कि पृथ्वीपर आप पुरुषरूपसे एवं मैं आपकी पत्नीके रूपमें अवतीर्ण होऊँ—

यदि मे त्व प्रसन्नासि तदा पुस्त्वमवाप्नुहि।
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे यास्येऽह स्त्रीस्वरूपताम्॥

(महाभागवतपुराण ४९। १६)

भगवती पार्वतीजीने भगवान् शिवजासे कहा कि हे महादेव! मैं आपकी प्रसन्नताके लिय पृथ्वीपर वसुदेवके घरम पुरुपरूपम श्रीकृष्ण हाकर अवश्य जन्म लूँगी आर हे त्रिलोचन! मेरी प्रसन्नताके लिये आप भी स्त्रीरूपम जन्म ग्रहण कर—

भविष्येऽह त्वत्प्रियार्थं निश्चित धरणीतले॥
पुरूपेण महादेव वसुदेवगृहे प्रभो।
कृष्णाऽह मत्प्रियार्थं स्त्री भव त्व हि त्रिलोचन॥

इसपर श्रीशिवजीने कहा—हे शिवे! आपके पुरुपरूपसे श्रीकृष्णके रूपम अवतरित हानेपर मैं आपकी प्राणसदृश वृपभानुपुत्री राधारूप होकर आपके साथ विहार करूँगा। साथ ही मेरी आठ मूर्तियाँ भी रुक्मिणी सत्यभामा आदि पटरानियाके रूपम मृत्युलोकमे अवतरित हागी—

पुरूपेण जगद्धात्रि प्राप्ताया कृष्णता त्वयि।
वृपभानो सुता राधास्वरूपाह स्वय शिवे॥
तव प्राणसमा भूत्वा विहरिष्ये त्वया सह।
मूर्तयोऽष्टौ तथा मर्त्ये भविष्यन्त्युत योपित ॥

देवीने यह भी कहा कि मेरी दो सखियाँ—विजया एव जया उस समय श्रीदाम एव वसुदामके नामसे पुरुपरूपम जन्म लगी। पूर्वकालम विष्णुजीके साथ की गयी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मेरे कृष्ण हानेपर श्रीविष्णु मेरे अग्रज बलरामके रूपम अवतार ग्रहण करगे। पूर्वकालम भगवती एव विष्णुजीने युद्धम जिन राक्षसाका सहार किया था, वे कस, दुर्योधन आदिके रूपम जन्म लगे। पूर्वकालम जो महान् राक्षस मारे गये थे वे राजाके रूपम जन्म ग्रहण करगे। मेरी भद्रकालीकी मूर्ति वसुदेवके घरमे पुरुपरूपमें 'श्याम' के नामसे अवतार लेगी—

किंतु मे भद्रकाली या मूर्तिर्नवघनद्युति।
वसुदेवगृहे ब्रह्मन् पुरूपेण भविष्यति॥

भगवान् विष्णु भी अपने अशरूपसे पाण्डुपुत्र अर्जुनके रूपमे, धर्मराज अपने अशरूपसे युधिष्ठिरके रूपम पवनदेव अपने अशसे भीमसेनके रूपम, अश्विनीकुमार अपने अशसे माद्रीपुत्र नकुल-सहदेवके रूपम जन्म लगे एव मेरे अशसे कृष्णा—द्रौपदीका जन्म होगा। मैं पाण्डुपुत्राकी विशेष सहायता करके युद्धके लिये उत्सुक रहूँगी। मैं युद्धम महान् माया फैलाकर समरक्षेत्रमे सम्मुख उपस्थित होकर परस्पर मारनेकी इच्छावाले वीराका सहार करूँगी। मेरी ही मायासे मोहित होकर दुष्ट राजा एक-दूसरेको मार डालगे। इस युद्धमें धर्मनिष्ठ पाँच पाण्डव, बालक एव वृद्धमात्र शेष रह जायगे। मैं पृथ्वीको भारसे मुक्त करके पुन यहाँ लौट आऊँगी—

'निर्भारा वसुधा कृत्वा पुनरेष्यामि चात्र तु॥'

(महाभागवतपुराण ४९। ६२)

ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर साक्षात् भगवती ही देवकार्यसिद्ध्यर्थ अपने अशसे वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णके रूपम तथा भगवान् विष्णु वसुदेवके घर बलराम एव पाण्डुपुत्र अर्जुनके रूपमें अवतीर्ण हुए—

विधिना प्रार्थिता देवी वसुदेवसुत स्वयम्।
निजाशेनाभवत्कृष्णो देवाना कार्यसिद्धये॥
विष्णुश्चापि द्विधा भूत्वा जन्म लेभे महीतले।
वसुदेवगृहे रामो महाबलपराक्रम ॥
तथापर पाण्डुसुतो धन्विश्रेष्ठो धनञ्जय ।

(महाभागवतपुराण ५०। १—३)

~~○~~

कस न दीनपर द्रवहु उमाबर। दारुन बिपति हरन करुनाकर॥
बेद-पुरान कहत उदार हर। हमरि बेर कस भयहु कृपिनतर॥
कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतगहु पावहिं॥
देहु काम-रिपु! राम-चरन-रति। तुलसिदास प्रभु! हरहु भेद-मति॥

(विनय पत्रिका)

~~○~~

रुद्रावतार श्रीहनुमान्

(श्रीवासुदेवजी त्रिपाठी हिन्दू)

महावीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

(रा०च०मा० १।१७।१०, ५।१६।८)

सृष्टिके संहारक भगवान् रुद्र ही अपने प्रिय श्रीहरिकी सेवाका पर्याप्त अवसर प्राप्त करने तथा कठिन कलिकालमें भक्तोंकी रक्षाकी इच्छासे ही पवनदेवके औरस पुत्र और वानरराज केसरीके क्षेत्रज पुत्र हनुमान्के रूपमें अवतरित हुए—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

(दोहावली १४२)

फिर उनके बल, बुद्धि पराक्रम तथा भक्ति आदि गुणोंका पार पा ही कौन सकता है?

असीम बल एवं पराक्रमके निधान रुद्रावतार केसरीपुत्रने बाललीला करते हुए उदयकालीन सूर्यको फल समझकर भक्षण करनेके लिये शून्यमें छलाँग लगा दी जिससे समस्त लोकोंमें हाहाकार मच गया तब देवराज इन्द्रने आवेशमें आकर वज्रसे इनपर प्रहार कर दिया जिससे इनकी ठोढ़ी टेढ़ी हो गयी और ये बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिरकर अचेत हो गये, जिससे कुपित होकर पवनदेवने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें अपना सचरण रोककर त्राहि-त्राहि मचा दी।

तब पवनदेवको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मादि समस्त देवोंने हनुमान्को समस्त दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंके प्रभावसे मुक्तकर इच्छामृत्युका वरदान दिया—

प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ।
अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रम॥
वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च।
सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम्॥
स्वच्छन्दतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो।

(वा०रा० ४।६६।२७—२९)

तत्पश्चात् विद्याध्ययनके लिये कपिवर हनुमान्जीने सूर्यदेवको अपना गुरु मानकर जिस आश्चर्यपूर्ण तरीकेसे विद्याग्रहण किया, वह तो समस्त लोकोंको चकित कर देनेवाला है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन-
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेर-फारसो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन,
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥
कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो।
बल कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस कै,
तुलसी सरीर धरे सबनिको सार सो॥

(हनुमानबाहुक ४)

बल, बुद्धि, ओज, शौर्यादि गुणोंमें अप्रतिम पवनपुत्र हनुमान्जीका श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें जो प्रेम एवं भक्ति है वह महर्षियोंके लिये भी अत्यल्प अंशमें ही गम्य है अन्यत्र ऐसा उदाहरण असम्भव है। सुग्रीवके कार्यहेतु जब बुद्धिनिधान हनुमान्जी ब्राह्मणवेषमें श्रीरामके पास गये तो अत्यल्प समयमें अपने प्रभुको पहचानकर प्रेमरसमें डूबकर दास्यभावसे बोल पड़े—

मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥

(रा०च०मा० ४।२।८)

तदनन्तर भक्तिरसका पूर्ण आनन्द लेनेके लिय तथा अपने अवतारका यथेच्छ लाभ उठानेके लिये शङ्करावतार हनुमान्‌जी एक साधारण वानरकी भाँति अज्ञ वनकर भगवान्‌के चरणकमलाम गिर पडे और अतिसंक्षिप्त शब्दासे ही उन्हाने पूरी बात कह दी—

सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसे॥
(रा०च०मा० ४।३।४)

अपने प्रेमके वशीभूत कर उन्हाने भगवान् श्रीरामको नरलीला छोड अपना स्वरूप प्रकट करनेपर विवश कर दिया। हनुमान्‌जीके हृदयम वह प्रेम देखकर जिसके वशमे वे सदा रहते हैं, प्रभु श्रीराम बाल ही पड—

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तै मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥
(रा०च०मा० ४।३।७-८)

इसी प्रकार समुद्र लाँघते समय मैनाकपर्वतद्वारा विश्रामकी प्रार्थना करनेपर हनुमान्‌जीने जो शब्द कहे, वे उनके कठोर सेवकत्वको भलीभाँति दर्शाते हैं—

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥
(रा०च०मा० ५।१)

श्रीरामजीकी दास्यभक्तिके रसमे कपिवर हनुमान्‌जी इस तरह डूबे रहते हैं कि उन्हे अपने अस्तित्व, बल, स्वरूपका किञ्चित् भी बोध नहीं रहता, जैसा कि समुद्रतटपर वानराके विचार-मन्थनके समय द्रष्टव्य है और वे जब भी अपने स्वरूपके विषयमे सोचते तो केवल भगवान् श्रीरामके दासके रूपमे।

भगवद्भक्त विभीषणसे मिलनेपर उन्हाने अपना नाम बताकर शेष परिचय इस प्रकार दिया—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥
(रा०च०मा० ५।७।६—८ दो० ७)

उनकी प्रगाढ दास्यभक्तिके कारण स्वय भगवान् श्रीराम हनुमान्‌जीके इस प्रकार कृतज्ञ हो गये कि स्वयको उनका आजीवन ऋणी मान लिया—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥
बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥
(रा०च०मा० ५।३२।५—७ दो० ३२ ३३।१ २)

और कुछ सावधान होनेपर शङ्करजीके मुखसे निकल ही पडा—

यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाद्यैः
सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति।
तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती
रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः॥
(अध्यात्मरा० ५।५।६४)

अर्थात् हे पार्वति! जिनके चरणारविन्दयुगलका तुलसीदल आदिसे पूजन कर भक्तजन अतुलनीय विष्णुपदको प्राप्त कर लते हैं उन्हीं श्रीरामने जिनके शरीरका आलिङ्गन किया, उन पवित्र कर्म करनेवाले पवनपुत्रके विषयमे क्या कहा जाय?

कपिकेसरीकी उपाधिसे विभूषित हनुमान्‌जी श्रीरामके भक्त तो हे ही, साथ ही अतुलित बलके धाम भी हैं।

वाल्मीकिरामायण (किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ६७)-मे हनुमान्‌जीके उस स्वरूपका विस्तारके साथ बहुत प्रभावशाली चित्रण किया गया हे, जिसका भाव इस प्रकार है—

जैसे पर्वतकी विस्तृत कन्दराम सिंह अँगडाई लेता है, उसी प्रकार वायुदेवताके ओरस पुत्रने उस समय अपने शरीरको अँगडाइ ले-लेकर बढाया। वे वानराके बीचसे उठकर खडे हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरमे रोमाञ्च हो आया। इस अवस्थाम हनुमान्‌जीने बडे-बूढे वानराको प्रणाम करके इस प्रकार कहा—

श्रेष्ठ वानरो! उदयाचलसे चलकर अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए सूर्यदेवको मैं अस्त होनेसे पहले ही छू सकता हूँ

और वहाँसे पृथ्वीपर आकर यहाँ पैर रखे विना ही पुन उनके पासतक वडे भयकर वेगसे जा मकता हूँ। समुद्रको लाँघते समय मरा वही रूप प्रकट होगा, जो तीना पगाको बढाते समय वामनरूपधारी भगवान् विष्णुका हुआ था। वज्रधारा इन्द्र अथवा स्वयम्भू ब्रह्माजीके हाथसे भी मैं वलपूर्वक अमृत छीनकर सहसा यहाँ ला सकता हूँ। समूची लङ्काको भी भूमिसे उखाडकर हाथपर उठाये चल सकता हूँ—एसा मेरा विश्वास है।

अपने इस स्वरूपके साथ युद्ध करनेपर समस्त राक्षसाके नाशम हनुमान्‌जीको कितना समय लगता ? किंतु रावण-कुम्भकर्णादि योद्धाआको क्षणमात्रम जीत सकनेकी सामर्थ्यसे युक्त हानेपर भी श्रीरामकी मर्यादाम बँधे हुए हनुमान्‌जीने उन्हे पूर्णरूपसे कहीं नहीं जीता, वल्कि कहीं-कहीं क्रोधमे आकर अपना लेशमात्र बल दिखलाया। वाल्मीकिरामायणम कुम्भकर्णद्वारा सुग्रीवको काँखमे दबा लिये जानेपर महावली हनुमान्‌जी साचने लगे—

मर लिय जा भी करना उचित होगा, उसे मैं नि सदेह करूँगा। पर्वताकार रूप धारण करके उस राक्षसका नाश कर डालूँगा। युद्धस्थलम अपने मुक्कोसे मार-मारकर महाबली कुम्भकर्णके शरीरका चूर-चूर कर दूँगा। इस प्रकार जब वह मरे हाथसे मारा जायगा तथा वानरराज सुग्रीवको उसकी कैदसे छुडा लिया जायगा, तब सारे वानर हर्षसे खिल उठगे।

परतु फिर हनुमान्‌जीने सोचा कि इसके बादमे सुग्रीव दु खी हागे एव उनके यशका सदाके लिये नाश हो जायगा, अत मैं एक मुहूर्ततक इनके छूटनेकी प्रतीक्षा देखता हूँ। इसस स्पष्ट है कि पवनपुत्र हनुमान्‌जी अपने स्वरूपको न सँभालकर सुग्रीव तथा राम-लक्ष्मणके यशकी रक्षाको ध्यानम रखकर ही युद्ध करते रह। वे ऐसा कोई भी पराक्रम प्रकट नहीं करना चाहते थे जिससे प्रभु श्रीरामके यश-कीर्तिका क्षय हो। इसी कारणसे वे महाबलवान् कपिश्रेष्ठ रावणके साथ काफी समयतक जूझते रहे, उसके एव कुम्भकर्णके प्रहारसे कुछ व्याकुल होनेकी उन्हाने लीला की, जिससे कि उनके प्रभुकी कीर्तिका विस्तार हो सके।

श्रीहरिकी प्रममूर्तिरूप भगवान् शङ्करके अवतार हनुमान्‌जीके अतिरिक्त ऐसा कौन भक्त हो सकता हे, जो अपरिमित शक्ति-सामर्थ्यका भण्डार होकर भी अपने प्रभुके कार्य एव उनके सुयशके लिये स्वयको बन्धनमे डालकर ऐसा कह सके कि—

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

(रा०च०मा० ५।२२।६)

देवताआके लिये भी दुर्जय वानरामे हनुमान्‌जी उसी प्रकार श्रेष्ठ थे जैसे गजराजाम सिह। पवनपुत्रके अतिरिक्त कान वानरवीर समुद्र लाँघने, लकासे गृहसहित सुषेणको लाने तथा अत्यल्प समयम ही सजीवनी लाकर लक्ष्मणका पुनर्जीवन देनेमे सक्षम था ? जाम्बवान्‌ने समस्त वानरोक दु खी होनेपर हनुमान्‌जीसे जो वचन कहे, उसस उनकी श्रेष्ठताका बोध होता है।*

वानरजगत्‌के वीर। तथा सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताआमे श्रेष्ठ हनुमान्‌जी! तुम एकान्तमे आकर चुप क्यो बैठे हो ? कुछ बोलते क्यो नहीं ? हनूमन्! तुम तो वानरराज सुग्रीवके समान पराक्रमी हो तथा तेज एव बलम श्रीराम और लक्ष्मणके तुल्य हा। कश्यपजीके महाबली पुत्र और समस्त पक्षियामे श्रेष्ठ जो विनतानन्दन गरुड हैं उन्हींके समान तुम भी विख्यात एव तीव्रगामी हो। महाबली महाबाहु पक्षिराज गरुडको मैंने समुद्रमे कई बार देखा है, जो बड-बड सर्पोको वहाँसे निकाल लाते हैं। उनक दोना पखामे जा बल है, वही बल पराक्रम तुम्हारी इन दोना भुजाआम भी है। इसीलिये तुम्हारा वेग एव विक्रम भी उनसे कम नहीं है। वानरशिरोमण! तुम्हारा बल, बुद्धि तेज ओर धैर्य भी

* वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदा वर। तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् कि न जल्पसि॥
हनूमन्हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि। रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च वलेन च॥
अरिष्टनेमिन पुत्रो वैनतेयो महावल। गरुत्मानिव विख्यात उत्तम सर्वपक्षिणाम्॥
बहुशो हि मया दृष्ट सागरे स महाबल। भुजङ्गानुद्धरन् पक्षी महाबाहुर्महावल॥
पक्षयार्यद् बल तस्य भुजवीर्यबल तव। विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनापहीयते॥
बल बुद्धिश्च तजश्च सत्त्व च हरिपुङ्गव। विशिष्ट सर्वभूतेपु किमात्मान न सज्जसे॥ (वा०रा० ४।६६।२—७)

समस्त प्राणियासे बढकर है। फिर तुम अपने-आपको ही समुद्र लाँघनेके लिये क्या नहीं तैयार करते?

कपिप्रवर वीरवर हनुमान्जी अपने बलके साथ विशाल बुद्धिविज्ञानके भी सागर हैं, जैसा कि तुलसीदासजीने कहा है—

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर। जय कपीस तिहुँ लोक उजागर॥

वाल्मीकिरामायण (४।३।२८—३०)-मे सुग्रीवके कार्यहेतु जब हनुमान्जी रामजीके पास जाते हैं, तब उनकी भाषा-शैली देखकर श्रीरामजी इतने प्रभावित हुए कि लक्ष्मणजीसे उनकी बडाई स्वय अपने श्रीमुखसे करते हुए कहने लगे—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिण ।
नासामवेदविदुष शक्यमेव विभाषितुम्॥
नून व्याकरण कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोष सविदित क्वचित्॥

अर्थात् जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेदका विद्वान् नहीं, वह इस प्रकार सुन्दर भाषामे वार्तालाप नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका कई बार स्वाध्याय किया है, क्योंकि बहुत-सी बाते बोल जानेपर भी इनके मुखसे कोई त्रुटि नहीं हुई। सम्भाषणके समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंहे तथा अन्य सभी अङ्गोसे भी कोई दोष प्रकट हुआ हो, ऐसा कहीं ज्ञात नहीं हुआ।

एवगुणगणैर्युक्ता यस्य स्यु कार्यसाधका ।
तस्य सिद्ध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिता ॥

(वा०रा० ४।३।३५)

अर्थात् जिसके कार्यसाधक दूत ऐसे उत्तम गुणासे युक्त हो, उस राजाके सभी मनोरथ दूताकी बातचीतसे ही सिद्ध हो जाते हैं।

अध्यात्मरामायण (४।१।१७—१८)-मे भी ऐसा लिखा है—

श्रीरामो लक्ष्मण प्राह पश्यैन वटुरूपिणम्।
शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुत नूनमनेकधा॥
अनेन भाषित कृत्स्न न किञ्चिदपशब्दितम्।

अर्थात् तब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा—लक्ष्मण! इस ब्रह्मचारीको देखो। अवश्य ही इसने सम्पूर्ण शब्दशास्त्र कई बार भलीभाँति पढा है। देखो इसने इतनी बात कहीं, किंतु इसके बोलनेमे कहीं कोई एक भी अशुद्धि नहीं हुई।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हनुमान्जीमे अनन्त बल पराक्रमके साथ-साथ जो अनन्त बुद्धि, ज्ञान है वह अलौकिक है।

इन गुणाको धारण करनेवाले हनुमान्जी बालब्रह्मचारी रहकर आजीवन जिस ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते रहे, वह उच्च कोटिके तपोनिष्ठ योगियामे भी दुर्लभ है।

रावणके अन्त पुरमे सीताजीकी खोज करते समय अस्त-व्यस्त स्थितिमे पडी हुई स्त्रियाको देखकर हनुमान्जी विचार करने लगे कि—

इद खलु ममात्यर्थं धर्मलोप करिष्यति।

(वा०रा० ५।११।८)

अर्थात् दूसराकी स्त्रियोंको इस अवस्थामे देखनेसे तो मेरे धर्मका ही लोप हो जायगा।

परतु उन्हाने फिर विचार किया—

काम दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रिय ।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥
मनो हि हेतु सर्वेषामिन्द्रियाणा प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्॥

(वा०रा० ५।११।४१-४२)

अर्थात् इसमे सदेह नहीं कि रावणकी स्त्रियाँ नि शङ्क सो रही थीं और उसी अवस्थामे मैंने उन्हे अच्छी तरह देखा तथापि मेरे मनमे कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। सम्पूर्ण इन्द्रियोको शुभ और अशुभ अवस्थाआमे लगनेकी प्रेरणा देनेमे मन ही कारण है, किंतु मेरा मन पूर्णत स्थिर है।

इतना महान् और अखण्ड ब्रह्मचर्य सुर, नर, नाग, गन्धर्व आदि कौन धारण कर सकता है? निश्चय ही हनुमान्जीमे बल, बुद्धि ओज ब्रह्मचर्य एव भक्ति आदि समस्त गुणाका जो महानतम सङ्गम विराजमान है, वह रुद्रावतारके अतिरिक्त और कोई नहीं धारण कर सकता है।

वाल्मीकीय रामायण (७।३६।४४)-मे स्पष्ट कहा गया है—

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमत कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥

अर्थात् ससारमे ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चातुर्य, उत्तम बल और धैर्यमे हनुमान्जीसे बढकर हो।

अपने इन्हीं गुणाके कारण भक्तराज हनुमान्जी श्रीरामजीके सर्वाधिक प्रिय रहे एव अन्त समयतक अपने साथ रखनेके पश्चात् भगवान् श्रीरामने इन्हे धर्म एव भक्तोके रक्षार्थ सदेह पृथ्वीपर रुकनेके लिये कहा—

मत्कथा प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।
(वा०रा० ७।१०८।३३-३४)

अर्थात् हरीश्वर! जबतक ससारमे मेरी कथाका प्रचलन रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।

तभीसे रुद्रावतार हनुमान्जी सर्वव्यापक रूपसे पृथ्वीपर विराजमान रहते हुए भक्ताका कल्याण करते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तन
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचन
मारुति नमत राक्षसान्तकम्॥

श्रीमद्भागवतमे वेदव्यासजीने बताया है कि किम्पुरुषवर्षमे रहते हुए श्रीहनुमान्जी अपने आराध्य श्रीरामके मन्त्रका जप करते हुए भक्ताके कल्याणके लिये सदा ही तत्पर रहते हैं।

कलियुगमे आज भी पवनकुमारकी कृपासे अनेक भक्त सर्वस्वतन्त्र एव निर्भीक रहते हैं। तन्त्रग्रन्थोमे हनुमान्जीके पञ्चमुखी, सप्तमुखी एव एकादशमुखी स्वरूपका भी वर्णन है तथा उसकी साधना-सामग्रीसे तन्त्रशास्त्राका एक बृहत् भाग भरा हुआ है।

हनुमान्जीकी कृपा होनेपर समस्त व्याधियासे छुटकारा प्राप्त होता है एव असम्भव कार्य भी सुगम होते देखे जाते है। भयकर-से-भयकर तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, भूत-प्रेतादि भी हनुमान्जीके आनके सम्मुख टिक नहीं पाते—

भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥

इस कलियुगमे समस्त सिद्धियाके दाता हनुमान्जी ही है। अपने भक्तोके रक्षक हनुमान्जीकी शरण प्राप्त कर लेनेपर ससारकी कोई भी व्याधि तथा कर्मसिद्धान्तका जाल आडे नहीं आता।

प्रलयकालमे जिनके कोपसे सम्पूर्ण सृष्टि नष्ट हो जाती है, जिनकी क्रोधाग्नि त्रैलोक्यको दग्ध कर देती है, ऐसे रुद्रके अवतार उन हनुमान्जीसे बढकर हो ही कौन सकता है?

जाके गति है हनुमानकी।
ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषानकी॥
× × ×
ताकिहै तमकि ताकी ओर को।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोरको॥
(विनय-पत्रिका पद ३०-३१)

भगवान् मृत्युञ्जय

हस्ताभ्या कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्त शिरो द्वाभ्या तौ दधत मृगाक्षवलये द्वाभ्या वहन्त परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघट कैलासकान्त शिव स्वच्छाम्भोजगत नवेन्दुमुकुट देव त्रिनेत्र भजे॥

त्र्यम्बकदेव अष्टभुज हैं। उनके एक हाथमे अक्षमाला और दूसरेमे मृगमुद्रा है दो हाथोसे दो कलशोमे अमृतरस लेकर उससे अपने मस्तकको आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथोसे उन्हीं कलशोको थामे हुए हैं। शेष दो हाथ उन्होंने अपने अङ्कपर रख छोडे हैं और उनमे दो अमृतपूर्ण घट हैं। वे श्वेत पद्मपर विराजमान हैं मुकुटपर बालचन्द्र सुशोभित है मुखमण्डलपर तीन नेत्र शोभायमान हैं। ऐसे देवाधिदेव कैलासपति श्रीशकरकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

श्रीहनुमदवतारमें सेवा, चरित्र और प्रेमका आदर्श

(प० श्रीविष्णुदत्तरामचन्द्रजी दुबे)

श्रीहनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं। गोस्वामीजीने दोहावली (दोहा १४२)-में लिखा है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

अर्थात् चतुर लोग उसी शरीरका आदर करते हैं, जिस शरीरसे श्रीरामजीमें प्रेम होता है। इस प्रेमके कारण ही श्रीशंकरजी अपने रुद्रदेहको त्यागकर वानररूप हनुमान् बन गये।

चैत्र शुक्ल १५, मंगलवार शुभ मुहूर्तमें भगवान् शिव अपने अंश ग्यारहवें रुद्रसे माता अञ्जनीके गर्भसे पवनपुत्र हनुमान्‌के रूपमें इस धरापर अवतरित हुए। अञ्जनी केसरी नामक वानरकी पत्नी थीं। कुछ लोग इनका प्राकट्यकाल कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी और कुछ चैत्र शुक्ल पूर्णिमा मानते हैं। कल्पभेदसे एवं भक्तकी भावनासे सब सत्य है।

श्रीहनुमान्‌जी नवधा-भक्तिमें दास्यभक्तिके आचार्य माने जाते हैं। स्वामीकी आज्ञाका पालन कर उन्हें सुख पहुँचाना सेवकका परम धर्म है। उसीके आदर्श हैं श्रीहनुमान्‌जी।

कहते हैं साधनाके द्वारा सभी सिद्धियाँ इनके वशमें हैं तथा ये *'अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता'* भी हैं। ये ज्ञानियोंमें अग्रगण्य तथा चारों वेदोंके ज्ञाता हैं।

हनुमान्‌जीकी माता परम तपस्विनी सद्‌गुणोंसे युक्त एवं सदाचारिणी थीं। दिनमें वे पूजनके पश्चात् एवं रात्रिमें शयनके पूर्व हनुमान्‌जीको पुराणोंकी कथाएँ एवं महापुरुषोंके चरित्र सुनातीं और बार-बार बालक हनुमान्‌जीसे पूछतीं। रामकथा सुनते-सुनते हनुमान्‌जी भावविभोर हो जाते और उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगती। प्रभु श्रीरामका ध्यान करनेके लिये वे कभी अरण्य, पर्वतकी गुफा, नदी-तटपर चले जाते। ये बचपनमें ही सूर्यको निगल गये— *'बाल समय रबि भक्षि लियो।'*

हनुमान्‌जीके गुणोंके सम्बन्धमें श्रीराम महर्षि अगस्त्यजीसे कहते हैं—

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालया॥
(वा०रा० ७।३५।३)

शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम तथा प्रभुत्व—इन सभी सद्‌गुणोंने श्रीहनुमान्‌जीके भीतर घर कर रखा है।

इसीका समर्थन करते हुए महर्षि अगस्त्य कहते हैं—संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो?

युद्धभूमिमें जब रामानुज लक्ष्मणको अमोघ शक्ति लगी तब हनुमान्‌जी लङ्कासे सुषेण वैद्यको उनके भवनसहित ले आये, पुनः उनकी आज्ञासे द्रोणपर्वतके सहित सञ्जीवनी बूटी ले आये जिसे सुँघानेसे लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा दूर हुई। यह हनुमान्‌जीके अतुलित बलका द्योतक है।

रावणके कहनेसे अहिरावण श्रीराम-लक्ष्मणको लेकर देवीके सम्मुख बलि चढ़ानेके लिये पाताललोक चला गया जब यह बात हनुमान्‌जीको ज्ञात हुई वे उसी क्षण पातालमें पहुँचे और अहिरावणका वधकर राम-लक्ष्मणको लेकर वानर-भालुओंकी सभाके बीच उपस्थित हो गये। यह हनुमान्‌जीका अपने स्वामीके प्रति अनन्य प्रेम एवं कर्तव्यनिष्ठा थी।

समुद्र पारकर जब हनुमान्‌जीने लङ्कामें प्रवेश किया उस समय अतिलघुरूप धारण कर अशोकवाटिकामें अशोकवृक्षके पत्तोंमें छिपकर जगज्जननी सीताजीके दर्शन किये और अपने इष्ट श्रीरामका सारा वृत्तान्त सुनाकर मुद्रिका उन्हें दी। सीताजीने भक्तप्रवर हनुमान्‌जीको अजर-अमर, गुणनिधान होने तथा प्रभुकी प्रसन्नताप्राप्तिके अनेक आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् बृहदाकार रूप धारण कर उन्होंने सारी सोनेकी लङ्का जलाकर भस्म कर दी, किंतु विभीषणके भवन एवं सीताजीपर आँचतक नहीं आयी।

उन्होंने भगवान् श्रीराम एवं सुग्रीवकी प्रत्येक आज्ञाका पालन किया। श्रीरामकी सेवामें प्रधानरूपसे सहायता की और अनेक राक्षसोंका संहार किया।

श्रीरामके अभिषेकके लिये ये चारों समुद्रों और पाँच सौ नदियोंसे जल ले आये थे। यह इनकी असाधारण

शक्तिका द्योतक है।

लङ्काके राजमहलम माँ सीताका अनुसन्धान करते हुए हनुमान्जीको अनेक सुपुप्त स्त्रियाको देखना पडा, किंतु उनके मनम किसी भी प्रकारका विकार नहीं आया।

एक समयकी बात है—माता जानकीजीने उपहाररूपम बहुमूल्य मणियाकी एक माला हनुमान्जीको दी। उसम प्रभु रामकी मूर्ति दिखायी न देनेसे उन्होने सब मणियाको फोड दिया, इसपर विभीषणजीने पूछा—क्या आपकी विशाल कायाम भी प्रभुकी झाँकीके दर्शन होते ह ? तत्क्षण पवनपुत्र हनुमान्जीने अपने तीक्ष्ण नखासे वक्ष स्थलको विदीर्णकर वहाँ विराजित सीता-रामकी मूर्तिके दर्शन
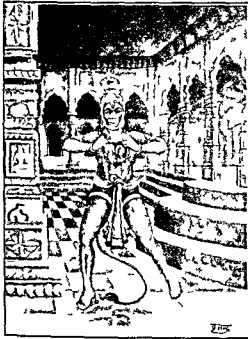
सबको करा दिये। उनके रोम-रोमसे 'राम' नामकी ध्वनि हो रही थी। भगवान् रामन उनको हृदयसे लगा लिया और भगवान्क करस्पर्शसे उनका शरीर पूर्ववत् हो गया। हनुमान्जी प्रभुके अन्तरङ्ग पार्षद हं।

जहाँ श्रीरघुनाथजीकी कथा होती है, वहाँ व तत्क्षण उपस्थित हो जाते हैं। जीवमात्रको प्रभुके पादपद्माम पहुँचाकर उनका कल्याण करनेके लिये व आतुर रहते हैं। हनुमान्जीक वीर और दास—दोनो रूपोकी उपासना होती है विपत्तिनिवारणार्थ वीररूपकी और सुख-शान्तिप्राप्त्यर्थ दासरूपकी। उनकी उपासनासे सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वे दु खी आर्तकी पुकार सुनकर उसका दु ख दूर कर देते हैं। व चाहते हैं कि प्राणी आधि-व्याधि, दु ख-दारिद्र्यसे मुक्ति प्राप्तकर प्रभुके चरणकमलोका चञ्चरीक बने। अपने आराध्य श्रीरघुनाथजीकी विशुद्ध प्रीति, उनके मङ्गलमय नामोका कीर्तन और उनकी लीलाका श्रवण—इसके अतिरिक्त इन्ह दूसरा कुछ अभीष्ट नहीं। श्रीहनुमान्जीका निश्चित सिद्धान्त है कि जीव चाहे बैठा हो, खडा हो, लेटा हो—जिस किसी भी दशामे हो, श्रीराम-नामका स्मरण करके वह भगवान्के परमपदको प्राप्त हो जाता है। राम-नामकी महिमा देखिये—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

आत्मकल्याणके लिये, प्रभुप्राप्तिके लिये जो उनका आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हे उनकी कृपासे अपने अभीष्टकी यथाशीघ्र प्राप्ति हो जाती है। उनके हृदयम भगवान् श्रीराम नित्य रमणशील हैं। रामायणपाठ, सुन्दरकाण्डपाठ, हनुमानचालीसा-पाठसे हनुमान्जी प्रसन्न रहते हैं। हनुमान्जी सदाचार, धर्मपालन, ब्रह्मचर्यपालन, सतसेवा, भक्त-भगवान्क प्रति श्रद्धा-विश्वास और प्रीतिसे प्रसन्न होकर उनपर कृपा करते है।

श्रीरामजीके द्वारपर श्रीहनुमान्जी सतत विराजमान रहते हे और बिना उनकी आज्ञाके कोई रामजीकी ड्योढीमे प्रवेश नही कर सकता, अत प्रभु श्रीरामके दर्शनाभिलाषीको सर्वप्रथम श्रीहनुमान्जीकी कृपा प्राप्त करना आवश्यक है। ***'राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥'*** इसी प्रकार सीतामाताकी कृपाके बिना श्रीरामरूपका दर्शन होना सम्भव नहीं। अत श्रीरामजीक साक्षात्कार करनेक लिये माँ जानकी एव श्रीहनुमान्जीकी उपासना सोपानस्वरूप हे।

श्रीहनुमान्जी श्रीरामजीक अङ्ग बतलाये गये हैं। इसलिये हनुमान्जीकी पूजा किये बिना श्रीरामजीकी पूजा पूर्ण फलदायी नहीं होती।

आजके समयम बालब्रह्मचारी श्रीहनुमान्जीकी उपासना परमावश्यक हे, क्योकि उनक चरित्रस ब्रह्मचर्यव्रतधारणकी, स्वामिभक्तिकी, बलवुद्धिके विकासकी तथा अपन इष्ट भगवान् श्रीरामके प्रति निष्काम भक्तिकी शिक्षा प्राप्त होती ह। विशेषकर बालको, विद्यार्थियो, युवको तथा जो सन्मार्ग-सदाचारसे भटक गय हो, उनक लिय हनुमान्जीकी उपासना परमावश्यक हे। भूत-प्रेत पिशाच राक्षस आदि उनक नामोच्चारणमात्रस

ही भाग जात ह। *'भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महावीर जब नाम सुनावै॥'* भयकर विष तथा व्याधि, भय या गृहसकटके अवसरपर हनुमद्विग्रहके सम्मुख दीपदानका विधान हे। उनके स्मरणमात्रसे अनेक रागाका प्रशमन हाता है। व्याधिनाशक लिय तथा दुष्ट ग्रहाकी दृष्टिसे रक्षाके लिये चौराहेपर भी दीपदानकी परम्परा ह।

जो सदा स्नेहपूर्वक श्रीरामनाम जप करत हैं उनके ऊपर हनुमान्‌जी विशेष कृपा करते ह। उनके लिय व कल्पवृक्ष बनकर उनके सभी मनारथाको सफल करत रहत हैं। उन्हाने स्वय कहा है—

> ये जपन्ति सदा स्नेहान्नाम माङ्गल्यकारणम्।
> श्रीमता रामचन्द्रस्य कृपालोर्मम स्वामिन ॥
> तेषामर्थे सदा विप्रा प्रदाताह प्रयत्नत ।
> ददामि वाञ्छित नित्य सर्वदा सौख्यमुत्तमम्॥

विप्रवर! जो मानव मेरे स्वामी दयासागर श्रीमान् रामचन्द्रजीके मङ्गलकारी नामका प्रेमपूर्वक सदा जप करते हैं, उनके लिये मैं सदा प्रयत्नपूर्वक प्रदाता बना रहता हूँ। मैं नित्य उनकी अभिलाषापूर्ति करते हुए उन्हे उत्तम सुख देता रहता हूँ। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी स्वय ता नाम-कीर्तनमे सदा निरत रहते ही हैं, अन्य कीर्तन-प्रेमियाकी भी सदा सहायता करते रहते हैं।

हनुमान्‌जीके निम्नलिखित बारह नामाका जो रात्रिमे सोनेके समय या प्रात काल उठनेपर अथवा यात्रारम्भके समय पाठ करता है, उस व्यक्तिके समस्त भय दूर हो जाते हैं, वह व्यक्ति युद्धके मैदानमे, राजदरबारमे या भीषण सकटमे—जहाँ कहीं भी हो, उसे कोई भय नहीं हाता। इसलिये हनुमान्‌जीको सकटमोचन कहा जाता है।

> हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबल ।
> रामेष्ट फाल्गुनसख पिङ्गाक्षोऽमितविक्रम ॥
> उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशन ।
> लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥
>
> (आनन्दरामायण ८।१३।८ ९)

किम्पुरुषवर्ष एव साकेतमे इनका नित्य निवास है।

प्रभु श्रीरामकी आज्ञासे पुष्पकविमान जब काञ्चनगिरिपर हनुमान्‌जीकी माँ अञ्जनीके दर्शनार्थ उतरा, सभीने अञ्जनाके चरणामे प्रणाम किया। माता अञ्जनीको अपने भाग्यपर गर्व हुआ कि जगदीश्वर प्रभु श्रीराम और जगदम्बा सीता माँको मेरा पुत्र हनुमान् मेरे द्वारपर ले आया, मैं ही यथार्थ पुत्रवती हूँ। फिर उन्हाने हनुमान्‌जीसे कहा—बेटा, कहते हैं कि पुत्र मातासे कभी उऋण नहीं हो पाता, किंतु तू मुझसे उऋण हो गया, तूने अपना जीवन और जन्म सफल कर लिया।

प्रत्येक मगलवार और शनिवारको श्रीहनुमान्‌जीके दर्शन करने तथा हनुमानचालीसाका पाठ करनेसे साधकका परम कल्याण होता हे। श्रीहनुमान्‌जीका शुद्ध घृतमिश्रित सिन्दूरके अनुलेपनकी और चोला चढानेकी परम्परा है। रामभक्त श्रीपवनकुमारको प्रणाम है—

> प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
> जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

भगवान् शिवके 'कृष्णदर्शन' अवतारकी कथा

महाराज नभग श्राद्धदेव मनुके पुत्र और परम वैष्णव राजर्षि अम्बरीषके पितामह थे। ये बडे विद्वान् और जितेन्द्रिय थे। इन्हीं महाराज नभगको सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान देनेके लिये भगवान् सदाशिवने 'कृष्णदर्शन' नामक अवतार लिया। यह कथा शिवपुराणमे प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है—

नभग जब विद्याध्ययन करते हुए गुरुकुलमे निवास कर रहे थे, तब इक्ष्वाकु आदि उनके भाइयाने उन्हे नैष्ठिक ब्रह्मचारी मानकर उनको पैतृक सम्पत्तिमे भाग न देकर समस्त सम्पत्ति आपसमे बाँट ली और अपना-अपना भाग लेकर वे उत्तम रीतिसे राज्य करने लगे। गुरुकुलसे वेदाका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करके वापस लौटनेपर नभगने भाइयासे अपना हिस्सा माँगा तो भाइयाने कहा कि बँटवारेके समय हम तुम्हारा हिस्सा लगाना भूल गये हैं, अत तुम पिताजीको ही अपने हिस्सेमे ले लो।

नभगने हिस्सेके विषयमे भाइयाद्वारा कही बात पितासे कही तो श्राद्धदेव मनुने कहा—'बेटा! भाइयाने तुम्हे यह बात ठगनेके लिये कही है, मैं तुम्हारे लिये भोगसाधक उत्तम दाय नहीं बन सकता, तथापि मैं तुम्हारी जीविकाका एक उपाय बताता हूँ, सुनो। इस समय

आङ्गिरस गोत्रीय ब्राह्मण एक बहुत बडा यज्ञ कर रहे हैं, उस कर्ममे प्रत्येक छठे दिनका कार्य वे ठीक-ठीक नहीं समझ पाते—उसम उनसे भूल हो जाती है। तुम वहाँ जाओ और उन ब्राह्मणाको विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्त बतला दिया करो, इससे वह यज्ञ शुद्धरूपसे सम्पादित होगा। वह यज्ञ समाप्त होनेपर वे ब्राह्मण जब स्वर्गको जाने लगगे, उस समय सतुष्ट होकर अपने यज्ञसे बचा हुआ सारा धन तुम्हे द दगे।'

पिताके कथनानुसार नभगने यज्ञम जाकर विश्वेदवसम्बन्धी दाना सूक्ताका शुद्ध-शुद्ध उच्चारण किया। यज्ञकर्म समाप्त हानपर आङ्गिरस ब्राह्मण यज्ञसे बचा हुआ अपना-अपना सारा धन नभगको दकर स्वर्ग चले गये। परतु उस यज्ञावशिष्ट धनको जब नभग ग्रहण करने लगे, तब उसी समय भगवान् सदाशिव वहाँ 'कृष्णदर्शन' रूपसे प्रकट हो गये। उनक सार अग बहुत सुन्दर, परतु नत्र कृष्णवर्ण के थे। उन्हाने नभगस पूछा—'तुम कौन हो, इस धनको क्या ले रहे हा? यह ता मेरी सम्पत्ति है।'

नभगने कहा—यह ता यज्ञसे बचा हुआ धन है, इसे ऋषिगण मुझे दकर स्वर्ग चले गय हैं। इस लेनेसे आप मुझ क्या रोक रहे हैं? इसपर कृष्णदर्शनने कहा—'तात! हम दानाके इस झगडेमे तुम्हारे पिता ही निर्णायक हागे, वे जैसा कहे, वैसा ही करना चाहिय।'

नभगने कृष्णदर्शनकी बात अपने पितासे कही इसपर श्राद्धदेव मनुने भगवान् सदाशिवके चरणकमलाका ध्यान किया और पुत्र नभगका समझाते हुए कहा—'तात! वे पुरुष जो तुम्हे धन लेनेसे रोक रहे हैं, वे कोई और नहीं बल्कि स्वय भगवान् सदाशिव ही हैं। वैसे तो ससारकी समस्त सम्पत्ति उन्हीं परमात्मा की है, परतु यज्ञावशिष्ट धनपर उनका विशेष अधिकार है। अत तुम्हे उनके पास जाकर अपने द्वारा हुए अपराधके लिये उनसे क्षमा माँगनी चाहिये।'

पिताकी बात सुनकर नभग कृष्णदर्शन भगवान् शिवके पास वापस आये और उनसे अनजानेम हुए अपराधके लिये क्षमा माँगी। उनके चरणाम मस्तक रखकर प्रणाम किया तथा सुन्दर स्तुतियासे उनका स्तवन किया। लीलाधारी भगवान्ने प्रसन्न होकर नभगपर कृपादृष्टि डाली और मुस्कराते हुए कहा—'नभग! तुम्हारे पिताने धर्मानुकूल निर्णय दिया है और तुमने भी साधु-स्वभावके कारण सत्य ही कहा है, अत मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। यह सारा धन मैं तुम्हे देता हूँ, साथ ही तुम्हे सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान भी प्रदान करता हूँ। तुम इस लोकम निर्विकार रहकर सुख भोगो, अन्तम तुम्हे मेरी कृपासे सद्गति प्राप्त हागी।' ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये।

इस प्रकार यह भगवान् सदाशिवक 'कृष्णदर्शन' नामक अवतारकी कथा है, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलाको दनवाली है।* (शिवपुराण)

भगवान् शिवका किरातावतार

भगवान् शिव निर्गुण, निराकार, निरजन, परब्रह्म परमात्मा हैं फिर भी भक्ताके कल्याणके लिये अवतार लेकर विभिन्न प्रकारकी लीलाएँ करते हे। उन्हाने अपने भक्त राजा सत्यरथके नवजात शिशुकी रक्षाके लिये **भिक्षुका** अवतार लिया तो धौम्यके बडे भाई उपमन्युका हित-साधन करनेक लिये **सुरेश्वरावतार** धारण किया। पार्वतीके विवाह-प्रसङ्गम उन्हाने **जटिल, नर्तक** तथा **द्विज** अवतार धारण किये। द्वापरमे **अश्वत्थामा** उनका अशावतार हुआ, जो द्रोणाचार्यका पुत्र ओर महाभारतका विशिष्ट पात्र है। महाभारतकी ही एक अन्य घटनामे उनका **किरातावतार** हुआ जिसम उन्होने अपने भक्त नरश्रेष्ठ अर्जुनकी 'मूक' नामक देत्यसे रक्षा की ओर उनसे युद्ध-लीलामे प्रसन्न होकर अपना अमोघ पाशुपतास्त्र प्रदान किया। भगवान्क इस अवतारका पावन कथा इस

* यह कथा किञ्चित् अन्तरके साथ श्रीमद्भागवतमे भी प्राप्त होती है।

प्रकार है—

पाण्डवाके वनवास-कालकी बात है। अर्जुन शस्त्रास्त्राकी प्राप्तिके लिये इन्द्रकीलपर्वतपर भगवान् शकरकी तपस्या कर रहे थे। वे भगवान् सदाशिवके पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए तपम सन्नद्ध थे। उनकी घोर तपस्या तथा अपना हितकारी उद्देश्य देखकर देवताआने भगवान् शकरसे उन्हे वर देनेकी प्रार्थना की। उधर जब दुर्योधनको अर्जुनकी तपस्याकी बात ज्ञात हुई, तो उस दुरात्माने मूक नामक एक मायावी राक्षसको उनका वध करनेके लिये भेजा।

वह दुष्ट असुर शूकरका वेश धारण कर अर्जुनके समीप पहुँचा और वहाँके पर्वतशिखरो और वृक्षाको ढहाने लगा। उसकी भयकर गुर्राहटसे दसा दिशाएँ गूँज रही थीं। यह देखकर भक्तहितकारी भगवान् शकर किरातवेश धारणकर प्रकट हुए।

शूकरको अपनी ओर आते देखकर अर्जुनन उसपर शर-सधान किया, ठीक उसी समय किरातवेशधारी भगवान् शकरने भी अपने भक्त अर्जुनकी रक्षाहेतु उस शूकररूपधारी दानव मूकपर अपना बाण चलाया। दोना बाण एक ही साथ उस शूकरके शरीरम प्रविष्ट हो गये और वह वहीं गिरकर मर गया। उसे मारकर अर्जुनने अपने आराध्य भगवान् शकरका ध्यान किया और अपने बाणको उठानेके लिये उस शूकरके पास पहुँचे। इतनेमे ही किरातवेशधारी शिवका एक गण भी वनेचरके रूपम बाण लेनेके लिये आ पहुँचा और अर्जुनको बाण उठानेसे रोककर कहने लगा कि यह मरे स्वामीका बाण है जिसे उन्हाने तुम्हारी रक्षाके लिये चलाया था परतु तुम तो इतने कृतघ्न हो कि उपकार माननेकी वजाय उनके बाणको ही चुराय ले रहे हो। यदि तुझे बाणकी ही आवश्यकता है तो मर स्वामीस माँग ल, वे ऐसे बहुतसे बाण तुझ दे सकते हैं।

अर्जुनने कहा—यह मरा बाण है इसपर मेरा नाम अकित है। इस बाणको मैं तुझ ले जाने दकर अपन कुलकी कीर्तिमे दाग नहीं लगवा सकता। भगवान् शकरकी कृपासे मे स्वय अपनी रक्षा करनेम समर्थ हूँ। अगर तेरे स्वामीम बल है तो वे आकर मुझसे युद्ध करे।

दूतने अर्जुनकी कही हुई सारी बाते जाकर अपने स्वामीसे विशेषरूपसे निवदन कर दीं, जिसे सुनकर किरातवेशधारी भगवान् शिव अपने भीलरूपी गणाको महान् सेना लेकर अर्जुनके सम्मुख आ गय। उन्हे आया हुआ देखकर अर्जुनने भगवान् शिवका ध्यानकर अत्यन्त

भीषण सग्राम छेड दिया। उस घोर युद्धमे अर्जुनने शिवजीका ध्यान किया जिससे उनका बल बढ गया। तदनन्तर उन्होने किरातवेशधारी शिवके दोना पैर पकडकर उन्हे घुमाना शुरू कर दिया। लीलास्वरूपधारी लीलामय भगवान् शिव भक्तपराधीन होनेके कारण हँसते रहे। तत्पश्चात् उन्होने अपना वह सौम्य एव अद्भुत रूप प्रकट किया, जिसका अर्जुन चिन्तन करते थे।

किरातके उस सुन्दर रूपको देखकर अर्जुनको महान् विस्मय हुआ। वे लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। उन्हाने मस्तक झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया और खिन्नमन हा अपनको धिक्कारने लग। उन्हे पश्चात्ताप करते देखकर भक्तवत्सल भगवान् महेश्वरका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्हाने कहा—पार्थ! तुम तो मरे परम भक्त हा यह ता मैंने तुम्हारी परीक्षा लेनेक लिये एसी लीला रची थी। उन्हाने प्रमपूर्वक अर्जुनका

आलिङ्गन किया और बोले—हे पाण्डवश्रेष्ठ! मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो।

यह सुनकर प्रसन्नमन अर्जुनने अपने आराध्य भगवान् शिवकी वेदसम्मत स्तुति की और भगवान् शिवके पुनः 'वर माँगो' कहनेपर नतमस्तक हो उन्हें प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें कहा—हे विभो! मेरे संकट तो आपके दर्शनसे ही दूर हो गये हैं, अब जिस प्रकार मुझे परासिद्धि प्राप्त हो सके, वैसी कृपा कीजिये।

पाण्डुपुत्र अर्जुनमें अपनी अनन्य भक्ति देखकर भगवान् महेश्वरने उन्हें अपना पाशुपत नामक महान् अस्त्र प्रदान किया और समस्त शत्रुओंपर विजय-लाभ पानेका आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार लीलामय परम कौतुकी भगवान् शंकरके किरातावतारकी यह कथा है, जो सुनने अथवा सुनानेसे समस्त मनोकामनाओंकी पूर्ति करनेवाली है। (शिवपुराण)

भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारकी कथा

परब्रह्म परमात्मा भगवान् शिव गर्वापहारी हैं। उनका अवधूतेश्वरावतार देवराज इन्द्रके गर्वापहरणके लिये हुआ। इस दिव्य अवतारकी कथा पापोंका निवारण करनेवाली, यश, स्वर्ग, भोग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त करानेवाली है, यह पुण्य कथा शिवपुराणमें प्राप्त है, जो इस प्रकार है—

पूर्वकालकी बात है, एक बार देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं और बृहस्पतिजीको लेकर कैलासपर्वतपर गये। उस समय इन्द्रके मनमें अपने ऐश्वर्य और अधिकारका अहङ्कार था। भगवान् शिव तो अन्तर्यामी हैं, उन परमात्मासे इन्द्रका अहङ्कार छिपा न रहा। अतः उन्होंने इन्द्रके कल्याणके लिये अवधूतका स्वरूप धारण किया और उनके रास्तेमें खड़े हो गये। इन्द्रने उन अवधूतरूपधारी सदाशिवसे पूछा—'तुम कौन हो? भगवान् शिव अपने स्थानपर हैं या कहीं अन्यत्र गये हैं?' परंतु बार-बार पूछनेपर भी शिवजीने इन्द्रको कोई उत्तर न दिया। इस प्रकार उस दिगम्बर अवधूतद्वारा अपनी अवहेलना होते देख इन्द्र क्रोधित हो गये और उन अवधूतरूपधारी सदाशिवको फटकारते हुए बोले—'अरे मूढ! दुर्मते! तू बार-बार पूछनेपर भी उत्तर नहीं देता, अतः मैं तुझपर वज्र-प्रहार करता हूँ। देखता हूँ, तुझे कौन बचाता है।'

इन्द्रको वज्र-प्रहारहेतु उद्यत देखकर भगवान् शिवने उन्हें वज्रसहित स्तम्भित कर दिया, फिर तो इन्द्रकी बाँह ही अकड़ गयी और वे मन्त्रसे अभिमन्त्रित सर्पकी भाँति क्रोधसे जलने लगे।

उधर उन अवधूतेश्वरस्वरूप भगवान् शिवके ललाटसे एक तेज निकला। उस प्रज्वलित तेजको इन्द्रकी ओर बढ़ते देखकर देवगुरु बृहस्पतिने यह समझ लिया कि ये और कोई नहीं, अवधूतरूपधारी साक्षात् परमात्मा भगवान् शिव ही हैं, तो उन्होंने भगवान् शिवकी स्तुति की और इन्द्रको उनके शरणागत कर दिया तथा उस प्रज्वलित तेजसे उनकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की।

भगवान् शिवने प्रसन्न होकर हँसते हुए कहा—देवगुरो! रोषवश निकली इस अग्निको मैं पुनः कैसे धारण कर सकता हूँ, कहीं सर्प अपनी छोड़ी हुई कंचुल पुनः धारण करता है? फिर भी मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुमने इन्द्रको जीवनदान दिलाया, अतः आजसे तुम्हारा नाम 'जीव' प्रसिद्ध होगा। मेरे ललाटवर्ती नेत्रसे निकली इस अग्निको देवता सह नहीं सकते, अतः मैं इनके कल्याणके लिये इसे अन्यत्र प्रक्षिप्त करता हूँ—यह कहकर अवधूतवेशधारी भगवान् शंकरने उस भयंकर तेजको क्षार-समुद्रमें फेंक दिया, वहाँ गिरते ही वह तत्काल एक बालकके रूपमें परिणत हो गया, जो सिन्धुपुत्र जलंधरके नामसे विख्यात हुआ।

इस प्रकार अवधूतेश्वरावतार धारणकर इन्द्रके गर्वका भञ्जन करके लीलावपुधारी भगवान् सदाशिव अन्तर्धान हो गये।

भगवान् शंकरके 'गृहपति' नामक अग्न्यवतारकी कथा

पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके रमणीय तटपर अवस्थित नर्मपुर नामक नगरमे विश्वानर नामक एक जितेन्द्रिय, पुण्यात्मा और शिवभक्त ब्राह्मण निवास करते थे। एक दिन उनकी पतिव्रता भार्याने उनसे महेश्वर-सदृश पुत्रकी याचना की। पत्नीकी इच्छाको भगवान् शिवकी प्रेरणा मानकर वे ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वानर उसे आश्वासन देकर अपने आराध्य भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरीके लिये चल दिये। वहाँ पहुँचकर वे वीरेश लिङ्गकी त्रिकाल अर्चना करते हुए तप करने लगे। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत होनेपर एक दिन वे जब गङ्गाजीसे स्नानकर वापस आये तो उन्हे उस वीरेश लिङ्गके समीपमे एक अष्टवर्षीय बालक दिखायी दिया। उसके शरीरपर भस्म लगी हुई थी तथा सिरपर पीले रंगकी सुन्दर जटा थी। वह लीलापूर्वक हँसता हुआ श्रुति-सूक्तोका पाठ कर रहा था। उसे देखकर विश्वानरके हृदयमे रोमाञ्च हो आया। उन्होने उसे साक्षात् परमेश्वर शिव जानकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उसकी स्तुति की।

तब बालरूपधारी शिवने कहा—हे विप्रश्रेष्ठ विश्वानर! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभिलषित वर माँग लो।

विश्वानरने कहा—हे महेशान! आप अन्तर्यामी हैं, अतः मेरे हृदयकी अभिलाषा जानते हुए आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये। पावनव्रती विश्वानरकी यह बात सुनकर बालरूपधारी महादेवने हँसते हुए कहा—हे शुचे! मैं तुम्हारी पत्नी शुचिष्मतीके गर्भसे तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट होऊँगा, मेरा नाम 'गृहपति' होगा—

तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्या महामते।
ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिस्सर्वामरप्रियः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १३।५७)

तदनन्तर तारागणोके अनुकूल होनेपर, जब बृहस्पति केन्द्रवर्ती हुए और शुभ ग्रहोका योग आया, तब शुभ लग्नमे भगवान् शंकर शुचिष्मतीके गर्भसे विश्वानरके पुत्रके रूपमे प्रकट हुए। भगवान् शिवके इस अवतारकी बात जानकर ब्रह्माजीसहित सभी देवगण उनका दर्शन करने आये। ब्रह्माजीने उनका 'गृहपति' नामकरण करते हुए चारो वेदोके आशीर्वादात्मक मन्त्रोसे अभिनन्दन कर सबके साथ प्रस्थान किया।

विश्वानरने समय-समयपर बालक गृहपतिके सभी संस्कार सम्पन्न कराकर वेदाध्ययन कराया। जब गृहपति नौ वर्षके हुए तो एक दिन देवर्षि नारद उन गृहपतिरूपधारी परमेश्वरका दर्शन करने आये। गृहपतिने माता-पितासहित नारदजीको प्रणाम किया। नारदजीने बालक गृहपतिकी हस्तरेखा और लक्षणोको देखकर कहा—'विश्वानर! तुम्हारा यह पुत्र सर्वगुणसम्पन्न, समस्त शुभ लक्षणोसे समन्वित है, परंतु इसके बारहवे वर्षमे इसे अग्नि और विद्युत्‌से भय है।' यो कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे ही देवलोकको चले गये।

नारदजीका कथन सुनकर विश्वानर-दम्पतीपर मानो वज्रपात हो गया। वे शोकसे मूर्च्छित हो गये। तब माता-पिताको इस प्रकार शोकग्रस्त देखकर भगवान् शंकरका अंशावतार वह बालक गृहपति बोला—आपलोग क्यो चिन्तित हैं? मैं भगवान् मृत्युञ्जयकी आराधना करके कालको भी जीत लूँगा फिर मृत्यु क्या चीज है!

गृहपतिके ऐसे वचन सुनकर शोकसंतप्त द्विज-दम्पतीको राहत मिली। उन्होने कहा—बेटा! तू उन शिवकी

शरणम जा, जो ब्रह्मा आदिके भी कर्ता और विश्वकी रक्षा करनेवाले हैं।

माता-पिताकी आज्ञा पाकर गृहपतिने उनके चरणाम प्रणाम किया। उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन देकर वे काशीपुरी चले आये और शिवलिङ्गकी स्थापना कर उसे १०८ कलशाके जलसे अभिषिक्तकर नियमपूर्वक पूजन-अर्चनमे सलग्न हो गये। जब जन्मसे बारहवाँ वर्ष आया तो वज्रधारी इन्द्र उनके पास पधारे और उनसे वर माँगनेको कहा। इसपर गृहपतिने कहा कि मैं भगवान् शिवके अतिरिक्त अन्य किसी दवसे प्रार्थना नहीं करना चाहता।

गृहपतिकी बात सुनकर इन्द्र क्रोधसे लाल हो गये, उन्होंने अपना भयङ्कर वज्र उठाया। विद्युत्-ज्वालाआसे व्याप्त वज्रको देखकर गृहपति भयसे व्याकुल हो गये। उसे भयभीत होते देखकर गिरिजासहित भगवान् शकर प्रकट हो गये। उन्होने कहा—वत्स! तुम भयभीत न हो, मेरे भक्तपर इन्द्र या वज्र कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। मैने ही इन्द्रका रूप धारणकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। मैं तुम्हें वर देता हूँ—आजसे तुम अग्निपदके भागी होगे। तुम समस्त प्राणियोके अन्दर जठराग्निरूपसे विचरण करोगे। तुम्हारेद्वारा स्थापित यह शिवलिङ्ग 'अग्नीश्वर' नामसे प्रसिद्ध होगा।

इस प्रकार परमात्मा भगवान् शकरका गृहपति नामक अग्न्यवतार हुआ, जो दुष्टोको पीडित करनेवाला है—

> इत्थमग्न्यवतारस्ते वर्णितो म जनार्दन ।
> नाम्ना गृहपतिस्तात शङ्करस्य परात्मन ॥
> (शिवपुराण शतरुद्रसहिता १५।५८)

भगवान् शिवके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान अवतार

> वन्दे महानन्दमनन्तलील महेश्वर सर्वविभु महान्तम्।
> गौरीप्रिय कार्तिकविघ्नराजसमुद्भव शङ्करमादिदेवम्॥

जो परमानन्दमय हे, जिनकी लीलाएँ अनन्त हैं, जो ईश्वरोक भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीक प्रियतम तथा कार्तिकेय और विघ्नराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शकरकी मैं वन्दना करता हूँ।

सर्वव्यापी सर्वेश्वर भगवान् शिवके कल्प-कल्पान्तराम असख्य अवतार हुए हैं, उनमसे पाँच अवतार अन्यतम है। यहाँ उनका विवरण सक्षेपम प्रस्तुत है—

१-सद्योजात—श्वेतलोहित नामक उन्नीसव कल्पम उन परमप्रभुका 'सद्योजात' नामक अवतार हुआ था। यह उनका प्रथम अवतार कहलाता है। उस कल्पमे जब ब्रह्मा परमब्रह्मका ध्यान कर रहे थे, उसी समय एक श्वेत और लोहितवर्णवाला शिखाधारी कुमार उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ब्रह्माने उसके विषयमे मन-ही-मन विचार किया। जब उन्हे यह ज्ञात हो गया कि यह कुमार ब्रह्मरूपी परमेश्वर है, तब उन्हाने हाथ जाडकर उसकी वन्दना की। सद्योजात कुमारको शिव जानकर उन्ह महान् हर्ष हुआ। वे अपनी सद्बुद्धिसे उन परब्रह्मका चिन्तन कर ही रहे थे कि वहाँ श्वेतवर्णवाले चार यशस्वी कुमार और प्रकट हुए। वे परमोत्कृष्ट ज्ञानसम्पन्न तथा परब्रह्मके स्वरूप थे। उनके नाम थे—सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द ओर उपनन्दन। ये सब-के-सब महात्मा ब्रह्माजीके शिष्य हुए ओर इनसे वह ब्रह्मलोक व्याप्त हो गया। तदनन्तर सद्योजात रूपसे प्रकट हुए परमेश्वर शिवने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको ज्ञान तथा सृष्टि-रचनाकी शक्ति प्रदान की। इस प्रकार यह 'सद्योजात' नामक भगवान् शिवके पहले अवतारकी कथा है।

२-वामदेव—भगवान् सदाशिवके 'वामदेव' नामक दूसरे अवतारकी कथा इस प्रकार है—रक्त नामक बीसव कल्पम पितामह ब्रह्माजीने रक्तवर्ण का शरीर धारण किया था। वे पुत्रकी कामनासे परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे उसी समय उनसे एक पुत्र प्रकट हुआ। उसके शरीरपर लाल रगकी माला और लाल रगके ही वस्त्र सुशोभित हो रहे थे। उसके नेत्र लाल थे और उसने आभूषण भी लाल रगके ही धारण कर रख थे। उस महान् आत्मबलसे सम्पन्न कुमारका देखकर ब्रह्माजी ध्यानस्थ हो गये। जब ब्रह्माजीको

यह ज्ञात हुआ कि कुमाररूपधारी ये वामदेव शिव हैं तो उन्होंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनके विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामके चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी लाल वस्त्र धारण किये हुए थे। तदनन्तर उन वामदेवरूपधारी सदाशिवने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको ज्ञान तथा सृष्टि-रचनाकी शक्ति दी।

३-तत्पुरुष—भगवान् शिव का 'तत्पुरुष' नामक तीसरा अवतार पीतवासा नामक इक्कीसवें कल्पमें हुआ। उस कल्पमें महाभाग ब्रह्माजी पीतवस्त्रधारी हुए। जब वे पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे थे, उस समय उनसे एक महातेजस्वी कुमार उत्पन्न हुआ। उस कुमारकी भुजाएँ विशाल थीं और उसके शरीरपर पीताम्बर झलमला रहा था। उसे देखकर ब्रह्माजीने अपने बुद्धिबलसे यह जान लिया कि ये परब्रह्म परमात्मा शिव ही 'तत्पुरुष' रूपमें उत्पन्न हुए हैं। तब उन्होंने ध्यानयुक्त चित्तसे शाङ्करी गायत्रीका जप करते हुए उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर उनके पार्श्वभागसे पीतवस्त्रधारी दिव्य कुमार प्रकट हुए, वे सब-के-सब योगमार्गके प्रवर्तक हुए।

४-अघोर—'शिव' नामक कल्पमें भगवान् शिवका 'अघोर' नामक चौथा अवतार हुआ। उस अवतारकी कथा इस प्रकार है—जब एकार्णवकी स्थितिमें एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेकी इच्छासे दुःखी हो विचार करने लगे। उस समय ब्रह्माजीके समक्ष एक कुमार प्रकट हुआ। उस कुमारके शरीरका रंग काला था, वह अपने ही तेजसे उद्दीप्त हो रहा था तथा काला वस्त्र, काली पगड़ी और काला यज्ञोपवीत धारण किये हुए था। उसका मुकुट भी काला था और स्नानके पश्चात् अनुलेपन-चन्दन भी काले रंगका ही था। उन महाभयङ्कर पराक्रमी, महामनस्वी, देवदेवेश्वर, अलौकिक कृष्णपिङ्गल-वर्णवाले 'अघोर' को देखकर ब्रह्माजीने उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् उनके पार्श्वभागसे कृष्णवर्णवाले काले रंगका अनुलेपन धारण किये हुए चार महामनस्वी कुमार उत्पन्न हुए। वे सब-के-सब परम तेजस्वी, अव्यक्तनामा तथा शिव-सरीखे रूपवाले थे। उनके नाम थे—कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य और कृष्णकण्ठधृक्। इस प्रकार उत्पन्न होकर इन महात्माओंने ब्रह्माजीकी सृष्टि-रचनाके निमित्त महान् अद्भुत 'घोर' नामक योगका प्रचार किया।

५-ईशान—ब्रह्माजीके विश्वरूप नामक कल्पमें भगवान् शिवका 'ईशान' नामक पाँचवाँ अवतार हुआ। इस अवतारकी कथा इस प्रकार है—ब्रह्माजी पुत्रकी कामनासे मन-ही-मन शिवजीका ध्यान कर रहे थे, उसी समय महान् सिंहनाद करनेवाली विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुई तथा उसी प्रकार परमेश्वर भगवान् ईशान प्रादुर्भूत हुए, जिनका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल था और जो समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे। उन अजन्मा, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सब कुछ प्रदान करनेवाले, सर्वस्वरूप, सुन्दर रूपवाले तथा अरूप ईशानको देखकर ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया। तब शक्तिसहित विभु ईशानने भी ब्रह्माको सन्मार्गका उपदेश देकर चार सुन्दर बालकोंकी कल्पना की। उनके नाम थे—जटी, मुण्डी, शिखण्डी और अर्धमुण्ड। वे योगानुसार सद्धर्मका पालन करके योगगतिको प्राप्त हो गये।

इस प्रकार जगत्के माङ्गल्यकी कामनासे भगवान् सदाशिवके ये अवतार विभिन्न कल्पोंमें हुए हैं। कल्याणकामी मनुष्योंको भगवान् शंकरके इन स्वरूपोंकी सदा प्रयत्नपूर्वक वन्दना करनी चाहिये, क्योंकि ये श्रेय प्राप्तिमें एकमात्र हेतु हैं। जो मनुष्य इन सद्योजातादि अवतारोंके प्राकट्यकी कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह जगत्में समस्त काम्य भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगतिको प्राप्त होता है—

इमे स्वरूपाः शम्भोर्हि वन्दनीयाः प्रयत्नतः ।
श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सद्यादीनां समुद्भवम्।
स भुक्त्वा सकलान्कामान् प्रयाति परमां गतिम्॥

(शिवपुराण शतरुद्रसंहिता १।४९-५०)

भगवान् शिवके स्थिति, पालन, संहार, निग्रह (तिरोभाव) और अनुग्रह—ये पञ्चकृत्य सभी आगमोंमें प्रसिद्ध हैं। इन पाँचोंमें पूर्वके जो चार कृत्य हैं—सृष्टि, पालन, संहार और तिरोभाव—वे संसारका विस्तार करनेवाले हैं और अन्तिम पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह है, जो मोक्षका हेतु है, वह सदाशिवमें स्थिर रहता है। भगवान् शिव स्वयं कहते हैं कि ये पाँचों कृत्य मेरे पाँच मुखोंद्वारा धारित हैं, चारों दिशाओंमें चार मुख और पाँचवाँ मुख मध्यमें है—

पञ्चकृत्यमिदं वोढुं ममास्ति मुखपञ्चकम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रं तन्मध्ये पञ्चमं मुखम्॥

भगवान् शिवका जो पञ्चाननस्वरूप है, उसमें पश्चिम दिशाका मुख 'सद्योजात' है। '**ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि०**' यह उनकी आराधनाका वैदिक मन्त्र है। उत्तर दिशाका मुख 'वामदेव' है, उसका मन्त्र '**वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः ०**' है। दक्षिण मुख 'अघोर' है, उसका मन्त्र '**ॐ अघोरेभ्यो०**' इत्यादि है। भगवान् शिवके पूर्वमुखका नाम 'तत्पुरुष' है, उसका वैदिक मन्त्र '**ॐ तत्पुरुषाय विद्महे०**' इत्यादि है। ऊर्ध्वमुख 'ईशान' नामवाला है, इनकी आराधनाका वैदिक मन्त्र '**ॐ इशानः सर्वविद्यानामीश्वर ०**' इत्यादि है।

पञ्चमुख सदाशिवका एक ध्यान-स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥

अर्थात् जिन भगवान् शंकरके पाँच मुखोंमें क्रमशः ऊर्ध्वमुख गजमुक्ताके समान हलके लाल रंगका, पूर्वमुख पीतवर्णका, दक्षिणमुख सजल मेघके समान नीलवर्णका, पश्चिममुख मुक्ताके समान कुछ भूरे रंगका और उत्तरमुख जवापुष्पके समान प्रगाढ़ रक्तवर्णका है, जिनकी तीन आँखें हैं और सभी मुख-मण्डलोंमें नीलवर्णके मुकुटके साथ चन्द्रमा सुशोभित हो रहे हैं, जिनके मुखमण्डलकी आभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य आह्लादित करनेवाली है, जो अपने हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टङ्क (परशु), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अंकुश, पाश तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं एवं जो अनन्त कल्पवृक्षके समान कल्याणकारी हैं उन सर्वेश्वर भगवान् शंकरका ध्यान करना चाहिये।

~~०~~

भगवान् शिवके एकादश रुद्रावतार

पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवता दैत्योंसे पराजित और भयभीत होकर अमरावतीपुरीसे भागकर अपने पिता महर्षि कश्यपके आश्रममें आये। वहाँ उन्होंने अपनी कष्ट-कथा कश्यपजीको सुनायी। भगवान् सदाशिवमें आसक्त-बुद्धिवाले कश्यपजीने देवताओंको आश्वासन दिया और स्वयं परम हर्षपूर्वक भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरीकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजीमें स्नान किया और अपना नित्य-नियम पूरा किया। तदनन्तर शम्भुदर्शनके उद्देश्यसे एक शिवलिङ्गकी स्थापना करके वे भगवान् शिवके चरणकमलोंका ध्यान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक तप करने लगे। जब कश्यपजीको इस प्रकार तप करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया तो सत्पुरुषोंके गतिस्वरूप दीनबन्धु भगवान् शंकर उनके समक्ष प्रकट हुए।

भक्तवत्सल भगवान् शिव परम प्रसन्न तो थे ही, अतः वे अपने भक्त कश्यपजीसे बोले—मुने! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो। भगवान् महेश्वरको देखते ही कश्यपजी हर्षमग्न हो गये, फिर विविध प्रकारसे उन देवाधिदेवकी स्तुति कर उन्होंने कहा—हे नाथ! महाबली दैत्योंने देवताओं और यक्षोंको पराजित कर दिया है, इसलिये शम्भो! आप मेरे पुत्ररूपसे प्रकट होकर देवताओंके लिये आनन्ददाता बनिये—

भूत्वा मम सुतो नाथ देवा यक्षाः पराजिताः।
दैत्यैर्महाबलैश्शम्भो सुरानन्दप्रदो भव॥

(शिवपुराण शतरुद्रसंहिता १८।२०)

कश्यपजीके ऐसा कहनेपर सर्वेश्वर भगवान् शंकर 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। तब कश्यपजी भी प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रममें वापस लौट आये। वहाँ उन्होंने सारा वृत्तान्त देवताओंसे कह सुनाया। भगवान् शंकरके अवतार लेनेकी बात जानकर देवताओंका मन प्रसन्नतासे भर गया। वे उन अशरणशरण दीनबन्धु भक्तवत्सल भगवान् शिवके अवतार-धारणकी प्रसन्नतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

तदनन्तर भगवान् शंकर ने अपना वचन सत्य करनेके लिये कश्यपद्वारा सुरभीके गर्भसे ग्यारह रुद्रोंके रूपमें अवतार धारण किया। भगवान्के इन रुद्रावतारोंसे

सारा जगत् शिवमय हो गया। कश्यपमुनिके साथ-साथ सभी देवता हर्षविभार हो गये। उन एकादश रुद्राक नाम हैं—कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलाहित शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव। ये एकादश रुद्र सुरभीक पुत्र कहलाते हैं। य सुखक आवास-स्थान हैं तथा देवताआकी कार्यसिद्धिक लिये शिवरूपस उत्पन्न हुए हैं—

एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीतनया स्मृता ।
देवकार्यार्थमुत्पन्नाशिवरूपास्सुखास्पदम् ॥

(शिवपुराण शतरुद्रसहिता १८। २७)

कश्यपके पुत्ररूपम उत्पन्न ये एकादश रुद्र महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे, इन्हाने सग्रामम दैत्याका सहारकर इन्द्रको पुन स्वर्गका अधिपति बना दिया। य शिवरूपधारा एकादश रुद्र अव भी दवताआकी रक्षाक लिय स्वर्गमें विराजमान रहत हैं।

भगवान् रुद्र मूलत ता एक ही हैं तथापि जगत्के कल्याणक हतु अनक नाम-रूपाम अवतरित हाते हैं। मुख्य रूपसे ग्यारह रुद्र हैं। विभिन्न पुराणाम इनक नामर्म भा अन्तर मिलता है। रुद्राके साथ रुद्राणियाका भी वर्णन आता है। श्रीमद्भागवत (३। १२। १२)-में ग्यारह रद्राके नाम इस प्रकार आय हैं—

१-मन्यु, २-मनु, ३-महिनस, ४-महान्, ५-शिव, ६-ऋतध्वज ७-उग्ररेता, ८-भव, ९-काल, १०-वामदेव आर ११-धृतव्रत।

भगवान् शिवके योगेश्वरावतार

प्रत्येक मन्वन्तरके प्रत्यक द्वापरयुगमे भगवान् नारायण स्वय वेदव्यासके रूपम अवतार लेकर मनुष्याके हितके लिये वेदाका विभाजन करते है, उसी प्रकार भगवान् सदाशिव प्रत्यक कलियुगम योगेश्वरावतारके रूपम अवतार लेते हैं। ये अवतार कलियुगके मनुष्योको ध्यानयोगकी शिक्षा दनेके लिये होते हैं, क्याकि उस समय मनुष्य ध्यानक अतिरिक्त दान, धर्म आदि कर्महेतुक साधनाद्वारा उन भगवान् सदाशिवका दर्शन नहीं पा सकता। प्रत्येक योगेश्वरावतारके साथ उनके चार अविनाशी शिष्य भी होत हैं जो महान् शिवभक्त और यागमार्गकी वृद्धि करनेवाले हाते हैं। इनक शरीरपर भस्म रमी रहती है, ललाट त्रिपुण्ड्रस सुशाभित रहता है, रुद्राक्षकी माला ही उनका आभूषण होता है। य सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् और लिङ्गार्चनम तत्पर रहनेवाले हाते हैं। ये शिवजीम भक्ति रखकर योगपूर्वक ध्यानम निष्ठा रखते हैं।

वाराहकल्पके सातव मन्वन्तरम भगवान् शिवद्वारा लिये गये अट्ठाईस यागेश्वरावतारा और उनक शिष्याकी नामावली इस प्रकार है—

क्र०	चतुर्युगी	योगेश्वरावतार	शिष्य
१	पहली	महामुनि श्वेत	श्वेत श्वतशिख श्वेताश्व और श्वेतलाहित
२	दूसरी	सुतार	दुन्दुभि शतरूप हृपीक तथा केतुमान्
३	तीसरी	दमन	विशाक विशेष विपाप और पापनाशन
४	चौथी	सुहोत्र	सुमुख, दुर्मुख दुर्दम और दुरतिक्रम
५	पाँचवीं	कङ्क	सनक सनातन सनन्दन और सनत्कुमार
६	छठीं	लाकाक्षि	सुधामा विरजा सजय तथा विजय
७	सातवीं	जैगीषव्य	सारस्वत योगीश मेघवाह और सुवाहन
८	आठवीं	दधिवाहन	कपिल आसुरि पञ्चशिख और शाल्वल
९	नौवीं	ऋषभ	पराशर गर्ग, भार्गव तथा गिरिश
१०	दसवीं	उग्र*	भृङ्ग बलबन्धु, नरामित्र और कतुशृङ्ग
११	ग्यारहवीं	तप	लम्बोदर लम्बाक्ष कशलम्ब और प्रलम्बक
१२	बारहवीं	अत्रि	सर्वज्ञ समबुद्धि, साध्य और शर्व

* लिङ्गपुराण ७। ३२

क्र०	चतुर्युगी	योगेश्वरावतार	शिष्य
१३	तेरहवीं	महामुनि बलि	सुधामा काश्यप, वसिष्ठ और विरजा
१४	चौदहवीं	गौतम	अत्रि वशद, श्रवण और श्रविष्कट
१५	पद्रहवीं	वेदशिरा	कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक
१६	सोलहवीं	गोकर्ण	काश्यप उशना, च्यवन और बृहस्पति
१७	मत्रहवीं	गुहावासी	उतथ्य, वामदेव महायाग और महाबल
१८	अट्ठारहवीं	शिखण्डी	वाच श्रवा रुचीक श्यावास्य और यतीश्वर
१९	उन्नीसवीं	माली	हिरण्यनामा कौसल्य लाकाक्षि और प्रधिमि
२०	बोसवीं	अट्टहास	सुमन्तु, वर्वरि, कम्बन्ध और कुलिकन्धर
२१	इक्कीसवीं	दारुक	प्लक्ष दार्भायणि, केतुमान् तथा गोतम
२२	बाईसवीं	लाङ्गली भीम	भल्लवी मधु, पिङ्ग और श्वेतकेतु
२३	तेइसवीं	श्वेत	उशिक, बृहदश्व देवल और कवि
२४	चोबीसवीं	शूली	शालिहोत्र अग्निवेश, युवनाश्व और शरद्वसु
२५	पच्चीसवीं	मुण्डीश्वर	छगल कुण्डकर्ण कुम्भाण्ड और प्रवाहक
२६	छब्बीसवीं	सहिष्णु	उलूक, विद्युत्, शम्बूक और आश्वलायन
२७	सत्ताईसवीं	सोमशर्मा	अक्षपाद कुमार उलूक और वत्स
२८	अट्ठाईसवीं	लकुली	कुशिक गर्ग मित्र और तौरुष्य

इस प्रकार भगवान् सदाशिव प्रत्येक चतुर्युगीके कलियुगमे अवतार लकर योगमार्गका प्रवर्तन, व्यासजीका सहयोग आर ससार-सागरसे भक्तोका उद्धार करते हैं। कलियुगके प्रवृत्त होनेपर जब निवृत्तिमार्गका लोप होने लगता है, उस समय भगवान् शिव इन योगेश्वरावतारोके द्वारा निवृत्तिमार्गको सुदृढ करते हैं।

भगवान् शिवके महाकाल आदि दस अवतार

परब्रह्म परमात्मा भगवान् सदाशिव और उनकी शक्ति भगवती शिवाने भक्ताके कल्याण और उनको भोग-मोक्ष प्रदान करनेके लिये दस अवतार धारण किये हैं। यद्यपि भगवान् शिव तथा भगवती शिवा अभिन्न हैं परतु भक्तोकी मनोवाञ्छापूर्तिके लिये वे अवतार ग्रहण करते हैं। जिस रूपमे भगवान् शिवका प्राकट्य होता है, उसी रूपसे उनकी शक्ति भगवती शिवा भी प्रकट होती हैं। तन्त्र-ग्रन्थोमे तथा पुराणोंमें भगवती शिवाके काली, तारा आदि दस महाविद्यारूपोका वर्णन आया है उसी प्रकार भगवान् शिवके भी महाकाल आदि दस रूप हैं। शिवपुराणमे प्राप्त इनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

भगवान् सदाशिवका पहला अवतार 'महाकाल' है, इस अवतारकी शक्ति 'महाकाली' हैं। दूसरा 'तार' नामक अवतार हुआ जिनकी शक्ति 'तारादेवी' हैं। 'बाल भुवनेश' नामक भगवान्का तीसरा अवतार हुआ, जिनकी शक्ति 'बाला भुवनेशी' हुईं। चौथा अवतार 'षोडश श्रीविद्येश' हुआ जिनकी शक्ति 'षोडशी श्रीविद्या' हुईं। भगवान् शिवका पाँचवाँ अवतार 'भैरव' नामसे प्रसिद्ध हुआ, इस अवतारकी शक्तिका नाम 'भैरवी गिरिजा' है। छठा शिवावतार 'छिन्नमस्तक' नामसे जाना जाता है, इनकी शक्ति 'छिन्नमस्ता' हैं। सम्पूर्ण मनोरथोके दाता शम्भुका सातवाँ अवतार 'धूमवान्' नामसे विख्यात हुआ उनकी शक्ति 'धूमावती' हैं। शिवजीका आठवाँ अवतार 'बगलामुख' है, उनकी शक्ति 'बगलामुखी' नामसे विख्यात हुईं। नवाँ शिवावतार 'मातङ्ग' नामसे प्रसिद्ध है, इनकी शक्ति 'मातङ्गी' हैं। भगवान् शिवके दसवे अवतारका नाम 'कमल' है इनकी शक्ति 'कमला' हैं।

शिवजीके ये दसो अवतार भक्तो तथा सत्पुरुषोके लिये सुखदायक तथा भोग-मोक्षके देनेवाले हैं।

शिवकी अष्टमूर्तियाँ

(श्री के०पी० मिश्र)

'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थु०।'

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।२)

केवल एक रुद्र ही ता है अर्थात् जगत्का नियमन करनेवाली शक्तियाँ अनक होनेपर भी वे सभी रुद्रकी शक्ति हैं। यही कारण है कि ब्रह्मज्ञानी किसी दूसरेका आश्रय नहीं लेते। यह भी निश्चित किया गया है कि एक परमात्मा ही इस जगत्के मूल कारण हैं। वे प्रभु ही इन समस्त लोकाकी रचना करके रक्षा करते हैं तथा प्रलयकालमे अपनेमे समेट लेत हैं। श्रुति कहती है—

तमीश्वराणा परम महश्वर
त देवताना परम च दैवतम्।
पति पतीना परम परस्ताद्
विदाम देव भुवनेशमीड्यम्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।७)

ईश्वराके परम महान् ईश्वर, देवताआक परमदेव, पतियाके परमपति, अव्यक्तादि परसे पर तथा विश्वके अधिपति उस स्तवनीय देवको हम जानते हैं।

भगवान्की पराशक्ति तीन भागाम विभक्त ह। सत्-अशको सन्धिनी, चित्-अशको सवित् ओर आनन्द-अशको ह्लादिनी कहते हैं। इसी कारण भगवान् सच्चिदानन्द कहलाते हैं। इन शक्तियामे हर शक्तिका विलास-वैचित्र्य अनन्त है। जब तीना शक्तियाँ समरूपमे हो जाती हैं तो मूर्ति कहलाती हैं। भगवान् एव उनके परिकरका विग्रह इसी अवस्थामे प्रकाशित होता है।

यह जगत् पञ्चमहाभूता (पृथ्वी जल, अग्नि वायु एव आकाश)-से सगठित हे। इसक अतिरिक्त चन्द्रमा सूर्य ओर जीवात्मा कुल मिलाकर आठ मूर्तियाद्वारा समस्त चराचर जगत् व्याप्त हे। शिवका एक नाम 'अष्टमूर्ति' भी है।

शिवपुराणके अन्तर्गत ब्रह्माजीद्वारा शिवकी स्तुति इस प्रकार की गयी है। वस्तुत यह शिवकी आठ मूर्तियोकी स्तुति हे—

नमस्त भगवन् रुद्र भास्करामिततजसे।
नमो भवाय दयाय रसायाम्बुमयात्मने॥
शर्वाय क्षितिरूपाय नन्दासुरभय नम।
ईशाय वसव तुभ्य नम स्पर्शमयात्मन॥
पशूना पतय चैव पावकायातितजस।
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नम॥
उग्रायाग्रस्वरूपाय यजमानात्मन नम।
महाशिवाय सामाय नमस्त्वमृतमूर्तये॥

(शिवपुराण वायवायसहिता पू०ख० १२।४१–४४)

हे भगवन्! रुद्र! आपका तज असख्य सूर्योंके समान अनन्त है। आपको नमस्कार है। रसस्वरूप और जलमय विग्रहवाल आप भवदेवताको नमस्कार है। नन्दा और सुरभि (कामधेनु) ये दाना आपक स्वरूप हैं। आप पृथ्वीरूपधारी शवको नमस्कार है। स्पर्शमय वायुरूपवाले आपको नमस्कार हे। आप ही वसुरूपधारी ईश हैं। आपको नमस्कार है। अत्यन्त तेजस्वी अग्निरूप आप पशुपतिको नमस्कार है। शब्द तन्मात्रासे युक्त आकाशरूपधारी आप भामदेवको नमस्कार हैं। उग्ररूपवाले यजमानमूर्ति आपको नमस्कार है। सोमरूप आप अमृतमूर्ति महादेवजीको नमस्कार है।

शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीम पशो पति।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्टविश्रुता॥

(शिवपुराण शतरुद्रसहिता २।३)

भगवान् शिवकी इन अष्टमूर्तियोका नाम शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान है।

शास्त्राने ऐसा निश्चय किया है कि कल्याणकर्ता शिवके विश्वात्मक रूपने ही चराचर जगत्को धारण किया हे। ये ही शर्व आदि अष्टमूर्तियाँ क्रमश पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश जीवात्मा सूर्य और चन्द्रमाको अधिष्ठित किये हुए हैं। किसी एक मूर्तिकी पूजा-अर्चनासे सभी मूर्तियाकी पूजा-अर्चनाका फल मिल जाता है।

श्रीवेदव्यासजीका कथन है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखा ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणा तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥

(श्रीमद्भा० ४।३१।१४)

भाव यह है कि जिस प्रकार वृक्षकी जड सींचनेस उसके तने, शाखा, उपशाखा आदि सभीका पाषण हो जाता हे और जैसे भोजन करनेवालेको प्रत्येक ग्रासके साथ तृप्ति मिलती है, शरीर पुष्ट हाता है आर क्षुधाकी निवृत्ति होती है, वैसे ही भक्तको भगवत्तत्त्वका अनुभव, भगवान्‌की भक्ति तथा विपयासे वैराग्य—ये तीना एक साथ ही प्राप्त हो जाते हैं।

'अष्टमूर्तिया' की आराधना इन मन्त्रोसे की जाती है—

ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नम । ॐ भवाय जलमूर्तये नम । ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नम । ॐ उग्राय वायुमूर्तये नम । ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नम । ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नम । ॐ महादेवाय सोममूर्तये नम । ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नम ।

यह जीवात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। यही यजमानरूपसे यज्ञकर्ता है। इस कारण ही यह यजमान कहलाता है। मायाके पाशस बँधे जीव ही पशु हैं। जीवक पति (रक्षक) होनेके कारण ही शिवको पशुपति कहते हैं।

ब्रह्माद्या स्थावरान्ताश्च दवदेवस्य शूलिन ।
पशव परिकीर्त्यन्ते ससारवशवर्तिन ॥
तेषा पतित्वाद्देवेश शिव पशुपति स्मृत ।
मलमायादिभि पाशे स बध्नाति पशून् पति ॥
स एव मोचकस्तेषा भक्त्या सम्यगुपासित ।

(शिवपुराण वायवीय स०उत्तरभाग २।११—१३)

अर्थात् ब्रह्मासे लेकर स्थावर-जङ्गमतक जितने भी जाव हैं, सभी देवाधिदेव शूलपाणि शिवक पशु कहे जाते हैं। उनके पति होनेके कारण वे पशुपति कहे जाते हं। वे ही ब्रह्मा आदि सभी पशुआको मल, माया आदि अविद्याके पाशम जकडकर रखते हैं तथा भक्ताद्वारा उपासित होनपर वे ही उन पाशास मुक्त भी करते हैं।

सभी प्राणियाके प्रति अनुग्रह, सबकी सेवा, सभी प्राणियासे प्रेम—यही शिवकी आराधना है। यदि कोई किसी जीवको कष्ट देता है तो वस्तुत वह शिवकी अष्टमूर्तियाको ही कष्ट देता है।

अष्टमूर्तियोके तीर्थ—

१-सूर्य—सूर्य ही दृश्यमान प्रत्यक्ष देवता हैं—

आदित्य च शिव विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
उभयोरन्तर नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

सूर्य और शिवम कोई अन्तर नहीं है। सभी सूर्यमन्दिर वस्तुत शिवमन्दिर ही हैं। फिर भी काशीस्थ गभस्तीश्वर लिङ्ग सूर्यरूप शिवका स्वरूप है।

२-चन्द्र—सोमनाथका मन्दिर।

३-यजमान—नेपालका पशुपतिनाथ मन्दिर।

४-क्षितिलिङ्ग—तमिलनाडुक शिवकाञ्चीमे स्थित आम्रकेश्वर।

५-जललिङ्ग—तमिलनाडुके त्रिचिरापल्लीम जम्बुकेश्वर मन्दिर।

६-तेजोलिङ्ग—अरुणाचलपर्वतपर।

७-वायुलिङ्ग—आन्ध्रप्रदेशके अरकाट जिलेमे कालहस्तीश्वर वायुलिङ्ग है।

८-आकाशलिङ्ग—तमिलनाडुके चिदम्बरमृम स्थित।

शिवकी अष्टमूर्तियामे पहली 'रुद्र' नामक मूर्ति आँखाम प्रकाशरूप है, जिससे प्राणी देखता है। दूसरी 'भव' नामक मूर्ति अन्न-पान करके शरीरकी वृद्धि करती है। यह स्वधा कहलाती है। तीसरी 'शर्व' नामक मूर्ति अस्थिरूपसे आधारभूता है। यह आधारशक्ति ही गणश कहलाती है। चौथी 'ईशानशक्ति' प्राणापान-वृत्तिसे प्राणियाम जीवनीशक्ति है। पाँचवीं 'पशुपति' मूर्ति उदरमे रहकर अशित-पीतको पचाती हे, जिसे जठराग्नि कहा जाता है। छठी 'भीमामूर्ति' देहमे छिद्राका कारण है। सातवीं 'उग्र' नामक मूर्ति जीवात्माक ऐश्वर्यरूपम रहती ह। आठवीं 'महादेवमूर्ति' सकल्परूपसे प्राणियाके मनम रहती है। इस सकल्परूप चन्द्रमाके लिये '**नवो नवो भवति जायमान** ' कहा गया है अर्थात् सकल्पाक नय-नय रूप बदलते हैं।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंकी अवतरण-मीमांसा

(आचार्य डॉ० श्रीनरेन्द्रनाथजी ठाकुर, एम्०ए० (गोल्ड मैडलिस्ट), पी-एच्०डी० (संस्कृत))

अखिल विश्वब्रह्माण्डमें भूलोक, भूलोकमें भी जम्बू, प्लक्ष तथा क्रौञ्च आदि द्वीपोंमें जम्बूद्वीप, पुनः जम्बूद्वीपान्तर्गत किम्पुरुष, कुरुमाल आदि वर्षोंमें भारतवर्ष श्रेष्ठ माना जाता है। भारतवर्षका माहात्म्य यहाँकी सभ्यता, संस्कृति और संस्कृतको लेकर है। यही वह भूमि है, जहाँ भगवान्के समस्त अवतार हुए। अंशावतार, कलावतार एवं पूर्णावतार इत्यादि अवतार धारण कर भगवान् अपने आर्त भक्तोंका भवसागरसे उद्धार करते हैं, कभी रामकृष्णरूपसे तो कभी शिवरूपसे। वे भगवान् अनन्त गुणराशिसे युक्त अनन्तानन्त वैभवादिसे विलसित अनन्तस्वरूप हैं, इसलिये भगवती श्रुतिने भी 'नेति'-'नेति' शब्दोंके द्वारा अन्योंसे भगवत्तत्त्वकी पृथक्ता बतलायी है।

भगवान्का अवतरण आप्तकाम पुरुषोंको निःश्रेयस-प्रदानार्थ ही हुआ करता है। अण्ड-पिण्ड-सिद्धान्तानुसार जो अण्डमें है, वही पिण्डमें भी है अर्थात् सर्वज्ञ भगवान् विराट् पुरुषरूप होकर अनन्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी बन जाते हैं तथा वे ही पुनः एक शिवलिङ्गमें भी समाहित हो जाते हैं।

'ज्योति' शब्द प्रकाशका वाचक है एवं 'लिङ्ग' शब्द चिह्नका।

'लीनं प्रच्छन्नस्वरूपं प्रकटयति यत् तत् लिङ्गम्।'

अर्थात् जो चिह्न परब्रह्म परमात्माके स्वरूपका अवबोधन करा दे, वह लिङ्ग है। ब्रह्मसूत्र—वेदान्तदर्शन (१।१।२४)-में **'ज्योतिश्चरणाभिधानात्॥'** सूत्रद्वारा 'ज्योति' शब्दको परब्रह्मका अभिव्यञ्जक माना गया है, क्योंकि छान्दोग्योपनिषद्में उस ज्योतिर्मय ब्रह्मके चार पाद बतलाये गये हैं।

न्यायशास्त्रने तो **'लिङ्गात् लिङ्गिनो ज्ञानम् अनुमानम्'** के द्वारा अनुमान प्रमाणके लिये लिङ्गका होना ही आवश्यक बतलाया है। यहाँ लिङ्ग हुआ चिह्न एवं लिङ्गी हुए परब्रह्म परमात्मा, जिसे तैत्तिरीयोपनिषद्में **'रसो वै सः'** इत्यादि महावाक्योंद्वारा सङ्केतित किया गया है। ध्यातव्य हो कि नैयायिकोंने अनुमान प्रमाणके द्वारा ही ईश्वरसिद्धि की है। इसके प्रमाण न्यायकुसुमाञ्जलिकार उदयनाचार्यप्रभृति विद्वान् हैं। लिङ्गपुराणमें तो **'लिङ्गे सर्वं प्रतिष्ठितम्'** कहकर चराचर जगत्की प्रतिष्ठा लिङ्गमें ही बतलायी है। तर्कसंग्रहादि ग्रन्थोंमें लिङ्गकी त्रिविधता कही गयी है—(१) अन्वयव्यतिरेकि, (२) केवलान्वयि तथा (३) केवलव्यतिरेकि।

व्याकरणके अनुसार लिङ्ग शब्दमें 'अच्' प्रत्ययके योगसे 'लिङ्गम्' शब्द बना है। 'द्वादश' शब्द बारह संख्याका वाचक है एवं 'ज्योतिः' शब्द सूर्यका। **'सूर्यो ज्योतिः स्वाहा'**—इस वचनसे ज्योतिका प्रादुर्भाव सूर्यसे माना जाता है और सूर्य द्वादश आदित्यके रूपमें शास्त्रविश्रुत हैं। अतः द्वादश आदित्यके रहनेके कारण उनकी ज्योति भी तदनुसार बारह ही हुई, इस कारण ज्योतिर्लिङ्ग भी बारह ही माने गये। इन द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका प्रमाण शिवपुराण, पद्मपुराण, मत्स्यपुराणादिमें विस्तृतरूपमें है एवं प्रस्थानत्रयी-भाष्यकार आद्य जगद्गुरु भगवान् शङ्कराचार्यने अपने 'द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्' में देश, दिशा एवं स्थानादिके प्रमाणोंद्वारा इसे प्रमाणित किया है।

श्रीशिवमहापुराणमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका प्रमाण उपलब्ध होता है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं तु शिवालये॥

(कोटिरुद्रसंहिता १।२१—२३)

अर्थात् सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन उज्जैनमें महाकाल, ओङ्कारमें परमेश्वर, हिमवत्पृष्ठमें केदारनाथ,

डाकिनीम भीमशङ्कर, वाराणसीम विश्वनाथ, गोतमीतटपर त्र्यम्बकनाथ चिताभूमिम वेद्यनाथ, दारुकावनम नागेश, सेतुबन्धम रामश्वर एव शिवालयम घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग विराजमान हैं।

श्रीशिवमहापुराणकी ही शतरुद्रसहिता (४२।५)-म इन बारह अवताराको परमात्मा शिवका 'अवतारद्वादशक' कहा गया है और इनक दर्शन तथा स्पर्शसे सब प्रकारके आनन्दप्राप्तिकी बात बतलायी गयी है—

अवतारद्वादशकमेतच्छम्भा परमात्मन ।
सर्वानन्दकर पुसान्दर्शनात्स्पर्शनान्मुने॥

शिवपुराणकी कोटिरुद्रसहिता (१।९-१०)-मे सम्पूर्ण जगत्‌को ही लिङ्गभूत माना गया है—

सर्वं लिङ्गमयी भूमि सर्वलिङ्गमय जगत्॥
लिङ्गमयानि तीर्थानि सर्वं लिङ्ग प्रतिष्ठितम्।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोका विवरण

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गाका परिचयात्मक विवरण सक्षेपम इस प्रकार दिया जा रहा है—

१-सोमनाथ—आद्य जगद्गुरु शङ्कराचायने 'द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र' म सोमनाथ ज्योतिर्लिङ्गकी स्तुति इस प्रकार की है—

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये
ज्योतिर्मय चन्द्रकलावतसम्।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं
त सोमनाथ शरण प्रपद्ये॥

अर्थात् जो अपनी भक्ति प्रदान करनेके लिय अत्यन्त रमणीय तथा निर्मल सौराष्ट्र प्रदेश (काठियावाड)-मे दयापूर्वक अवतीर्ण हुए हैं, चन्द्रमा जिनके मस्तकका आभूषण है, उन ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप भगवान् सोमनाथकी शरणम में जाता हूँ।

महात्मा प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याआको चन्द्रमाके लिये दान किया। उन पत्नियोमे रोहिणी नामकी पत्नी चन्द्रमाको विशेष प्रिय थी। शेष कन्याआने अपनी वेदना प्रजापति दक्षको सुनायी किंतु शिवमायासे विमोहित चन्द्रने उनकी बातापर तनिक भी ध्यान न दिया। फलस्वरूप प्रजापति दक्षने उसे क्षयी होनका शाप दे दिया। चन्द्रमाकी क्षीणतासे हाहाकार मच गया। सभी दवता ब्रह्माकी शरणम गये। ब्रह्माजीने प्रभासक्षेत्रम जाकर शिवाराधनाकी बात कही। चन्द्रदेव प्रभासक्षेत्रम जाकर शिवार्चन करने लगे। भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये तथा उन्होने वर माँगनेका कहा। चन्द्रमाने अपना मनोभिलषित क्षयनाशक वर माँगा। भगवान् आशुतोषने चन्द्रमाको एक पक्षम प्रतिदिन बढनेका वर दिया। पुन चन्द्रमाने कहा कि प्रभो! आप गिरिजासहित यहाँ स्थित रह। इस क्षेत्रकी महिमा

बढानेक लिये तथा चन्द्रमाके यशके लिये भगवान् शिव वहाँ सोमेश्वर (सोमनाथ)-क नामसे विख्यात हुए। वर्तमानमे यह काठियावाड प्रदशके अन्तर्गत प्रभासक्षेत्रम विराजमान है।

२-मल्लिकार्जुन—भगवत्पाद शङ्कराचार्यने इनकी वन्दना इस प्रकार की है—

श्रीशैलशृङ्गे विबुधातिसङ्गे
तुलाद्रितुङ्गेऽपि मुदा वसन्तम्।
तमर्जुन मल्लिकपूर्वमेक
नमामि ससारसमुद्रसेतुम्॥

अर्थात् जा ऊँचाईके आदर्शभूत पर्वतासे भी बढकर ऊँचे श्रीशैलके शिखरपर, जहाँ दवताआका अत्यन्त समागम होता रहता हे प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं तथा जो

ससारसागरसे पार करानेके लिये पुलके समान हैं, उन एकमात्र प्रभु मल्लिकार्जुनको मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रीशिवमहापुराणमें ऐसा प्रसंग आया है कि पार्वतीपुत्र कुमार कार्तिकेय जब पृथ्वीकी परिक्रमा कर कैलासपर आये और नारदजीने गणेशके विवाहादिका वृत्तान्त उन्हें सुनाया, तो वे क्रुद्ध होकर क्रौञ्चपर्वतपर चले गये। भगवान् शिव और भगवती पार्वती स्नेहसहित कुमार कार्तिकेयके पास गये, किंतु उस स्थानमें अपने पुत्रके न मिलनेपर पुत्रस्नेहसे व्याकुल होकर उन्होंने वहाँ अपनी ज्योति स्थापित कर दी तथा वहाँसे अपने पुत्रको देखनेके लिये वे अन्य पर्वतोंपर जाने लगे, परंतु अमावास्याके दिन शिवजी तथा पूर्णिमाके दिन माता पार्वती वहाँ निश्चय ही जाती रहती हैं। इसी दिनसे मल्लिकार्जुनमें शिवजीका ज्योतिर्लिङ्ग प्रसिद्ध हुआ। सम्प्रति यह ज्योतिर्लिङ्ग मद्रास प्रान्तके कृष्णा जिलेमें कृष्णानदीके तटपर श्रीशैल (पर्वत)-पर है। इसे दक्षिणका कैलास भी कहते हैं।

३-महाकाल—श्रीशङ्कराचार्य महाराजने उक्त ज्योतिर्लिङ्गकी वन्दना करते हुए कहा है—

अवन्तिकायां विहितावतारं
मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं
वन्दे महाकालमहासुरेशम्॥

अर्थात् संतजनोंको मोक्ष देनेके लिये जिन्होंने अवन्तिपुरी (उज्जैन)-में अवतार धारण किया है, उन महाकाल नामसे विख्यात महादेवजीको मैं अकाल-मृत्युसे बचनेके लिये नमस्कार करता हूँ।

अवन्ति (अवन्ती-अवन्तिका) नामक शिवजीकी एक प्रिय नगरी है, जो बड़ी ही पवित्र और संसारको पवित्र करनेवाली है। उस नगरीमें एक वेदपाठी श्रेष्ठ ब्राह्मण निवास करता था। उसके चार पुत्र थे— देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत। उस समय रत्नमाल पर्वतपर दूषण नामक दैत्योंका एक महाबली राजा रहता था। वह वैदिक धर्मका विरोधी था। कालक्रमानुसार दैत्योंने उस नगरीको घेर लिया। ब्राह्मणोंने कोई अन्य उपाय न देखकर शिवजीकी शरण ली और उनका पार्थिव लिङ्ग बनाकर पूजन प्रारम्भ किया। इसी समय दूषण नामक दैत्य ससैन्य उनपर टूट पड़ा किंतु उन ब्राह्मणोंने दैत्योंका वचन सुना ही नहीं, क्योंकि वे महादेवके ध्यानमें मग्न थे। ज्यों ही वह दुष्टात्मा दूषण उन ब्राह्मणोंको मारने चला, त्यों ही उस पार्थिव मूर्तिके स्थानमें एक भयानक शब्द करके गड्ढा हो गया और उसी गर्तसे विकटरूपधारी महाकाल नामक शिव प्रकट

हुए और उन्होंने अपने हुङ्कारमात्रसे सेनासहित दूषणको तत्काल भस्म कर दिया।

प्रकृत लिङ्ग मालवाप्रदेशमें शिप्रानदीके तटपर उज्जैन नगरमें विराजमान है, जो अवन्तिकापुरीके नामसे विख्यात है। यह राजा भोज, उदयन, विक्रमादित्य, भर्तृहरि एवं महाकवि कालिदासकी साधना-स्थली रही है।

४-ओङ्कारेश्वर—भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं—

कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे
समागमे सज्जनतारणाय।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्त-
मोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे॥

अर्थात् जो सत्पुरुषोंको संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये कावेरी और नर्मदाके पवित्र संगमके निकट मान्धाताके पुरमें सदा निवास करते हैं, उन अद्वितीय कल्याणमय भगवान् ओङ्कारेश्वरका मैं स्तवन करता हूँ।

श्रीशिवमहापुराणमें ऐसा प्रसंग आया है कि किसी

समय देवर्षि नारदजीने गोकर्णतीर्थम जाकर वहाँ उन गोकर्ण नामक शिवजीकी वडी पूजा की तथा पुन विन्ध्याचलपर्वतपर उनकी आराधना का। तव विन्ध्यपर्वतको यह अहङ्कार हो गया कि मुझम सव कुछ है तथा किसी भी प्रकारको न्यूनता नहीं है। इसस विन्ध्यपर्वत नारदजीके समक्ष आकर खडा हा गया तथा उसने मनुष्यरूपम अपनी अहमन्यता प्रकट की, तव उसके ऐसे भावको दखकर नारदजीन कहा—तुम अवश्य ही सभी गुणाके आकर हा, परतु सुमरुपर्वत सबसे ऊँचा ह, यह सुनकर विन्ध्याचल दु खी हुआ एव वडे प्रेमसे ॐकार नामक शिवकी पार्थिव मूर्ति वनाकर पूजा करने लगा। शिवजी प्रसन्न होकर प्रकट हुए आर उसस वर माँगनेको

कहा। भगवान् शिवका प्रकट हुआ देखकर ऋषियो, मुनिया और दवताआने उनसे वहीं निवास करनेकी प्रार्थना की। फलस्वरूप भगवान् शिव वहाँ ओङ्कारेश्वर नामस प्रसिद्ध हुए। यह स्थान आजकल मालवाप्रान्तमे नर्मदानदीके तटपर स्थित है। यहाँ ओङ्कारेश्वर और अमलेश्वर (अमरेश्वर)-के दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग हैं, परतु ये एक ही लिङ्गके दो स्वरूप हैं।

५-केदारेश्वर—शिवपुराणके अनुसार धर्मपुत्र नर-नारायण जब बदरिकाश्रमम जाकर पार्थिव पूजन करने लगे तो उनसे प्रार्थित शिवजी वहाँ प्रकट हुए। कुछ समय पश्चात् एक दिन शिवजीने प्रसन्न होकर उनसे वर

माँगनेको कहा तो लोककल्याणार्थ नर-नारायणने उनसे प्रार्थना की कि ह देवेश! यदि आप हमसे प्रसन्न हैं तो स्वय अपने रूपसे पूजाके निमित्त सर्वदा यहाँ स्थित रह। तब उन दोनाके ऐसा कहनेपर हिमाश्रित केदार नामक स्थानमे साक्षात् महेश्वर ज्योति स्वरूप हो स्वय स्थित हुए। उनका वहाँ केदारेश्वर नाम पडा। वर्तमान समयमे श्रीकदारनाथ हिमालयके केदार नामक शृङ्गपर स्थित हैं।

६-भीमशङ्कर—श्रीशिवमहापुराणमे ऐसी कथा है कि पूर्व समयमे भीम नामक एक बडा ही वीर राक्षस था। वह कुम्भकर्ण और कर्कटी नामक राक्षसीसे उत्पन्न हुआ था। वह श्रीहरि विष्णुका विराधी था, क्योकि उसके पिता कुम्भकर्णका वध श्रीरामने किया था। अतएव वह श्रीहरिको पीडा देनेके निमित्त उग्र तप करने लगा। ब्रह्माजीसे वर पाकर उसने समस्त पृथ्वीका अपने अधीन कर लिया। समस्त देवता शिवजीकी शरणमे गये एव अपनी वेदना प्रकट की। उधर राक्षस भीमने कामरूप देशके राजा सुदक्षिणपर आक्रमण किया। कामरूपेश्वर सुदक्षिणका शिवम पूर्ण विश्वास था। उन्होने भगवान् सदाशिवकी शरण ली और पार्थिव लिङ्ग बनाकर उसका पूजन प्रारम्भ किया। उस राक्षस भीमने कामरूपेश्वरपर प्रहार करना चाहा, परतु उसकी तलवार पार्थिव लिङ्गतक पहुँची भी न थी कि उस लिङ्गसे साक्षात्

शिव प्रकट हो गये और उन्होने हुङ्कारमात्रसे राक्षस भीमका सेनासहित सहार कर दिया। वे वहाँ भीमशङ्कर नामक ज्योतिर्लिङ्गके रूपमे प्रतिष्ठित हुए। सम्प्रति यह स्थान मुम्बईसे पूर्व ओर पूनासे उत्तर भीमानदीके किनारे सह्यपर्वतपर हे। कुछ लोग इसे आसाममे बतलाते हैं। श्रीशङ्कराचार्यजीने इनकी स्तुति करते हुए कहा है—

य डाकिनीशाकिनिकासमाजे
निषेव्यमाण पिशिताशनैश्च।
सदेव भीमादिपदप्रसिद्ध
त शङ्कर भक्तहित नमामि॥

अर्थात् जो डाकिनी और शाकिनीवृन्दमे प्रेताद्वारा सदैव सेवित होते हैं, उन भक्तहितकारी भगवान् भीमशङ्करको मे प्रणाम करता हूँ।

७-विश्वेश्वर—सभी देवताओकी साधना-स्थली है काशी। आद्य भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्यजीने भगवान् विश्वेश्वरकी स्तुतिमे कहा है—

सानन्दमानन्दवने वसन्त-
मानन्दकन्द हतपापवृन्दम्।
वाराणसीनाथमनाथनाथ
श्रीविश्वनाथ शरण प्रपद्ये॥

अर्थात् जो स्वय आनन्दकन्द हे ओर आनन्दपूर्वक आनन्दवन (काशीक्षेत्र)-मे वास करते हैं जो पापसमूहका नाश करनेवाले हैं उन अनाथोंके नाथ काशीपति श्रीविश्वनाथकी शरणमे मे जाता हूँ।

भगवान् शिवने अपनी प्रेरणासे समस्त तत्त्वोंके सारस्वरूप पाँच कोशोका एक सुन्दर नगर निर्माण किया। जहाँपर भगवान् विष्णुने सृष्टि रचनेकी इच्छासे शिवजीका चिरकालतक ध्यान किया किंतु शून्य छोड उन्हे कुछ भी भान न हुआ। इस अद्भुत दृश्यको देखकर उन्होने अपने शरीरको जोरसे हिलाया तो उनके कर्णसे एक मणि गिरी, जिससे उस स्थानका नाम 'मणिकर्णिका' तीर्थ पडा। फिर मणिकर्णिकाके उस पञ्चक्रोश विस्तारवाले सम्पूर्ण मण्डलको शिवजीने अपने त्रिशूलपर धारण किया। उन्होने इस पञ्चक्रोशीको ब्रह्माण्डमण्डलसे पृथक् रखा। यहींपर उन्होने अपने मुक्तिदायक विश्वेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गको स्वय स्थापित किया है। सम्प्रति यह स्थान उत्तरप्रदेशमे वाराणसी (काशी)-मे स्थित है।

८-त्र्यम्बकेश्वर—एक समय जब गौतमऋषिने अपने शिष्योको जल लानेके लिये भेजा तब वे पात्र लेकर गर्तपर गये। उसी समय जल लेनेके लिये आयी हुई ऋषिपत्नियोने उन शिष्योको देखकर जल लेनेका विरोध किया और कहा कि पहले हमलोग भर लेंगी तब तुम दूरसे भरना। तब उन शिष्योने लौटकर सारा हाल ऋषिपत्नीसे कहा। ऋषिपत्नी शिष्योको समझाकर स्वय उनके साथ जल लेनेको गयीं और गौतमऋषिको दिया। ऋषि-पत्नियोने क्रोधवशात् उपर्युक्त सम्पूर्ण वृत्तान्त असत्य रूपमे अपने-अपने पतियोसे कहा। फलस्वरूप ऋषियोने गणेशार्चन कर गौतमऋषिको आश्रमसे बहिष्कृत करनेका वर माँगा। भक्तपराधीन गणेशजीको उनकी बात माननी पडी। गौतमजी इस वृत्तान्तसे अज्ञात थे। गणेशजीने केदारतीर्थपर जो-भक्षण करनेके लिये एक दुर्बल गौका रूप धारण किया। गौतमजीने एक तृणके स्तम्भसे उस गायका निवारण किया जिससे वह गाय मृत्युको प्राप्त हुई। फलस्वरूप गोहत्याका आरोप लगाकर उन ऋषियोने सपरिवार गोतममुनिको वहाँसे बहिष्कृत किया। गोहत्या-निवारणार्थ अन्य ऋषियोने गङ्गाजीको लाकर स्नान करने एव कोटि सख्यामे पार्थिव लिङ्ग बनाकर शिवार्चन करनेकी बात कही। उक्त क्रिया करनेपर शिवजी वहाँ प्रकट हुए, तब गोतमने पापनिवारणार्थ गङ्गासहित महादेवजीसे वहाँ निवास करनेका आग्रह किया। यह

सुनकर शिवजी तथा गङ्गाजी वहाँ स्थित हुए। गङ्गाजी 'गोतमी' नामसे तथा शिवजीका लिङ्ग 'त्र्यम्वक' नामसे विख्यात हुआ। सम्प्रति यह ज्योतिर्लिङ्ग महाराष्ट्र प्रान्तक नासिक जिलेम ब्रह्मगिरिके निकट गादावरीनदीके तटपर है। श्रीशङ्कराचार्यजीने त्र्यम्वकेश्वरकी स्तुति करते हुए कहा है—

> सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्त
> गोदावरीतीरपवित्रदेशे ।
> यद्दर्शनात्पातकमाशु नाश
> प्रयाति त त्र्यम्बकमीशमीड॥

जा गोदावरीतटके पवित्र देशमे सह्यपर्वतके विमल शिखरपर वास करते हैं, जिनके दर्शनसे तुरत ही पातक नष्ट हा जाता है, उन श्रीत्र्यम्बकश्वरका मे स्तवन करता हूँ।

९-वैद्यनाथ—हार्दपीठ वेद्यनाथधाम तो द्वादश ज्यातिर्लिङ्गाम सर्वश्रेष्ठ माना गया हे। पद्मपुराणम कहा गया है—

> 'हार्दपीठस्य सदृशो नास्ति ब्रह्माण्डमण्डले।'

आद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्यजीने वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्गकी स्तुति करते हुए कहा है—

> पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधान
> सदा वसन्त गिरिजासमेतम्।
> सुरासुराराधितपादपद्म
> श्रीवैद्यनाथ तमह नमामि॥

अर्थात् जो पूर्वोत्तर दिशामे चिताभूमि (वैद्यनाथधाम)-के भीतर सदा ही गिरिजाके साथ वास करते ह, देवता और असुर जिनके चरणकमलाकी आराधना करते हैं, उन श्रीवैद्यनाथको मैं प्रणाम करता हूँ।

ऐसा प्रसङ्ग आया है कि राक्षसाधिप रावणने कैलास-पर्वतपर जाकर शिवजीकी आराधना की और शीतकालम आकण्ठ जलमे तथा ग्रीष्मकालमे पञ्चाग्निके वीच कठोर तप करना प्रारम्भ किया। रावणने शिवजीको प्रसन्न करनेक लिये अपने एक-एक कर नौ सिर काट डाले, जब एक सिर बचा रहा तब शिवजी प्रसन्न हो गये। शिवजीको प्रसन्न हुआ जानकर रावणने उनसे यह प्रार्थना की कि हे प्रभो। मैं आपको अपनी नगरी लङ्कामे ले चलना चाहता हूँ। मैं आपकी शरणमे हूँ। भगवान् शिवने कहा—अच्छा तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम मेरे लिङ्गको परम भक्तिके साथ अपने साथ ले चलो, पर यह ध्यान रखना कि यदि तुम कहीं वीचम इसे पृथ्वीपर रख दोगे तो यह वहीं स्थिर हा जायगा। तदनन्तर जब रावण ज्योतिर्लिङ्ग लेकर लङ्काके लिये चला तो वह प्रवल लघुशङ्काके वेगसे पीडित होने लगा। एक गोप वालकको महालिङ्ग देकर वह लघुशङ्का करने लगा परतु उस बालकने भी अधिक देरतक लिङ्गका भार न सह सकनेक कारण उस पृथ्वीपर रख दिया आर उसा समयसे वह लिङ्ग वैद्यनाथ ज्यातिर्लिङ्ग नामसे विख्यात हुआ। सम्प्रति यह महालिङ्ग झारखण्ड प्रान्तके सथाल परगनाम स्थित है, यहींपर भवानी सतीका हृदय भी गिरा है, अत यह ५१ शक्तिपीठाम एक है। ससारमे किसी मन्दिरके ऊपरम पञ्चशूल विराजमान नहीं है लेकिन यहाँ यह विशेपता पायी जाती हे। यहाँ ज्यातिका वाचक चन्द्रकान्तमणि आज भी विद्यमान है।

१०-नागेश—पश्चिम समुद्रतटपर स्थित एक वनम दारुक नामका एक वलवान् राक्षस अपनी पत्नी दारुका तथा अन्य राक्षसाके साथ रहता था। एक वार वहुत-सी नाव उधर आ निकलीं, जो मनुष्यासे भरी थीं। राक्षसाने उनम वेठे हुए सव लोगाको पकड लिया और वेडियास वाँधकर कारागारम डाल दिया। उनम सुप्रिय नामसे प्रसिद्ध एक वैश्य था जा उस दलका मुखिया था। वह वडा सदाचारी, भस्म-

रुद्राक्षधारी तथा भगवान् शिवका परम भक्त था। एक समय दारुक राक्षसके सेवकने उस वैश्यके आगे शिवजीका सुन्दर रूप देखा तो दौड़कर उसने सब चरित्र अपने स्वामीको सुनाया। वृत्तान्त सुनकर दारुक वैश्यसे समाचार पूछने लगा और कहने लगा कि सत्य-सत्य बतलाओ नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा। वैश्यने कहा—मैं कुछ नहीं जानता। इसपर क्रुद्ध होकर दारुकने उसे मारनेकी आज्ञा दी। वैश्य शिवजीका स्मरण कर उनके नामको रटने लगा, उससे प्रसन्न हो सदाशिव पाशुपत अस्त्रसे स्वयं राक्षसोंको मारने लगे। दारुककी सेना मारी गयी। इस प्रकार राक्षसोंको मारकर शिवजीने उस वनमें चारों वर्णोंको रहनेका अधिकार दिया और यह भी कहा कि यहाँ राक्षस न रहें। यह देखकर दारुका नामवाली राक्षसीने वंश-रक्षार्थ माँ भवानीकी वन्दना की पुनः पार्वतीजीने शिवजीसे आग्रह किया तो शिवजीने भी सहमति प्रकट की। फिर उन्होंने शिवजीसे कहा—इस युगके

अन्ततक तामसिक सृष्टि रहेगी। दारुका राक्षसी मेरी शक्ति है। यह राक्षसोंमें वरिष्ठ होकर राज्य करेगी। इस प्रकार शिव-पार्वती परस्पर वार्तालाप करते हुए वहीं स्थित हो गये भगवान्‌का वहाँ 'नागेश्वर' नाम पड़ा। वर्तमानमें यह स्थान बड़ौदा राज्यान्तर्गत गोमती द्वारकासे ईशानकोणमें बारह-तेरह मीलकी दूरीपर है। कोई-कोई निजाम हैदराबाद राज्यान्तर्गत औढा ग्राममें स्थित लिङ्गको ही 'नागेश्वर' ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं। कुछ लोगोंके मतसे अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर-पूर्वमें स्थित योगेश ('जागेश्वर) शिवलिङ्ग ही नागेश ज्योतिर्लिङ्ग है।

११-रामेश्वर—त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीताहरणके पश्चात् सीताकी खोज करनेके क्रममें सुग्रीव-हनुमानादिके सहयोगसे लङ्कापर चढ़ाई करनेके पूर्व वानरी सेना लेकर समुद्रके किनारे पहुँचे। उसी समय उन्हें प्यास लगी। उन्होंने अनुज लक्ष्मणसे जल माँगा। लक्ष्मणने वानरोंको जल लानेकी आज्ञा दी। वानर जल लेकर आये। श्रीरामने ज्यों ही जल पीना चाहा, त्यों ही उन्हें स्मरण हो आया कि मैंने अभीतक शिवार्चन नहीं किया है फिर उन्होंने पार्थिव लिङ्ग बनाकर षोडशोपचारविधिसे शिवपूजन किया। शिवजी प्रसन्न हुए एवं वर माँगनेको कहा। श्रीरामने

लोककल्याणार्थ शिवजीको इस स्थानपर निवास करनेके लिये कहा। तब वहाँ शिवजी 'रामेश्वर' नामसे विख्यात हुए। वर्तमान समयमें यह ज्योतिर्लिङ्ग तमिलनाडु (मद्रास) प्रान्तके रामनद जिलेमें है। श्रीशङ्कराचार्यजीने रामेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी स्तुतिमें कहा है—

सुताम्रपर्णीजलराशियोगे
निबध्य सेतुं विशिखैरसङ्ख्यैः।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं
रामेश्वराख्यं नियतं नमामि॥

अर्थात् जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा ताम्रपर्णी और सागरके संगममें अनेक बाणोंद्वारा पुल बाँधकर स्थापित किये गये हैं, उन श्रीरामेश्वरको मैं नियमसे प्रणाम करता हूँ।

१२-घुश्मेश्वर (घृष्णेश्वर)—दक्षिण दिशामे देव नामक पर्वत है। उसपर सुधर्मा नामक वेदज्ञ ब्राह्मण सपत्नीक निवास करते थे। दुर्भाग्यवश उनकी प्रथम पत्नी सुदेहासे उनको कोई पुत्र न हुआ। कालक्रमानुसार घुश्मासे विवाह कर उन्हे पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। सुदेहा दुःखित रहने लगी। कुछ समय बाद सुदेहाने पुत्रमारणरूप पैशाचिक कर्म किया, किंतु शिवभक्ता घुश्माने शोक रहनेपर भी नित्य पार्थिव पूजन नहीं त्यागा। पूजनके पश्चात् जब वह पार्थिव लिङ्गका विसर्जन करने तालाबपर गयी तो शिवकृपासे उसका पुत्र जीवित मिला। भगवान् शिवने घुश्माके इस भक्तिभावसे प्रसन्न होकर कहा—हे घुश्मे! वर माँगो। किंतु नतमस्तक, करबद्ध घुश्माने कहा—हे देवेश! सुदेहा मेरी बहन है, अतः आप उसकी रक्षा करे। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप यहाँ लोककल्याणार्थ सर्वदा निवास करे। इसपर वहाँ भगवान् शिव 'घुश्मेश्वर' के नामसे प्रख्यात हुए। सम्प्रति यह ज्योतिर्लिङ्ग दौलताबादसे बारह मील दूर बेरूल नामक ग्रामके पास है। श्रीशङ्कराचार्यजीने इनकी स्तुतिमे कहा है—

इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन्
समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम्।

वन्दे महोदारतरस्वभावं
घृष्णेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये॥

अर्थात् जो इलापुरके सुरम्य मन्दिरमे विराजमान होकर समस्त जगत्के आराधनीय हो रहे हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही उदार है, उन घृष्णेश्वर नामक ज्योतिर्मय भगवान् शिवकी शरणमे मैं जाता हूँ।

रुद्राष्टक

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं॥
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं॥
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा॥
चलत्कुण्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं॥
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी॥
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। भजंतीह लोके परे वा नराणां॥
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं॥
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥
रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति॥

आदिशक्ति श्रीजगदम्बाके विविध लीलावतार

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी सभी प्राणियोंमें शक्तिरूपसे स्थित हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है।

[यह सम्पूर्ण जगत् सच्चिदानन्दमयी आदिशक्ति पराम्बा भगवतीका ही लीला-विलास है। वे ही इसे अपनी लीलासे उद्भूत करती हैं, इसकी रक्षा करती हैं, पालन-पोषण करती हैं और अन्तमें पुनः लीलाका संवरण कर सब कुछ अपनेमें लीन कर लेती हैं। सृष्टि और तिरोधानका यह क्रम अनन्त काल से इसी प्रकार चलता आया है और आगे भी चलता रहेगा। पराम्बा श्रीजगदम्बा भक्तोंके कल्याणके लिये अनेक नाम-रूपोंमें अवतार धारण करती हैं और दुष्टोंसे जगत्की रक्षा करती हैं। उनका स्वयंका कहना है—'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥' भगवतीकी महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि तीन अवतार-लीलाएँ तो अतिप्रसिद्ध ही हैं, साथ ही वे कभी सती बन जाती हैं और जीवके अहंकारका विनाश करती हैं। कभी वे पार्वती बनकर भगवान् शिवकी अर्धाङ्गिनी बनकर कृपाशक्तिका विस्तार करती हैं। एक बार घोर अकाल पड़ गया, सर्वत्र हाहाकार छा गया, तब भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिये उन्होंने अपनी सौ आँखें बना लीं और वे 'शताक्षी' कहलायीं। उन आँखोंसे करुणाकी अजस्र धारा प्रवाहित होने लगी। एक बार उन्होंने शाककी वर्षा करके अकाल दूर किया और वे 'शाकम्भरी' कहलायीं। ऐसे ही अरुण नामक असुरसे छुटकारा दिलानेके लिये वे 'भ्रामरी' बन गयीं। देवताओंको अपने बलका बड़ा अभिमान था। उसी अभिमानको दूर करनेके लिये उन्होंने ज्योतिरूपमें अवतार धारण किया। 'रक्तदन्तिका' और 'भीमा' भी उन्हींके लीलाविग्रह हैं, काली, तारा आदि दस महाविद्याओंके रूपमें देवीका ही प्राकट्य हुआ है। नवदुर्गा, नवगौरी तथा मातृकाओंके रूपमें देवीने ही अवतार लिया है। उनकी अवतार-कथाएँ अत्यन्त मनोरम, करुणासे परिपूर्ण तथा श्रवण करनेसे कल्याण करनेवाली हैं। यहाँ संक्षेपमें भगवतीके कुछ लीला-चरित्र प्रस्तुत हैं—सम्पादक]

(१) अद्भुत उपकर्त्री सती

(श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

आदिशक्ति 'सद्'-रूप 'ज्ञान'-रूप और 'आनन्द'-रूप हैं। जैसे अन्धकार सूर्यपर कभी कोई प्रभाव नहीं डाल सकता, वैसे ही आदिशक्तिमें अणुमात्र भी अज्ञान सम्भव नहीं है, फिर भी दयामयी आदिशक्तिने जीवोंको भगवान् और उनके प्रेमकी ओर उन्मुख करनेके लिये सती-अवतारमें अज्ञताका अभिनय किया। उन्होंने वह लीला विश्वको 'श्रीरामचरितमानस' प्रदान करने और ब्रह्मकी प्रमुखता दिखलानेके लिये की है। इसीके लिये उन्होंने सती-अवतारमें लाञ्छन सहा, प्रताडना सही और शरीरको त्यागकर प्रियतमका असह्य बिछोह भी सहन किया। यह है माताकी बच्चोंके प्रति दयालुता, ममता और वत्सलता।

दक्षप्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्र थे। वे पिताकी आज्ञासे सृष्टिके क्रमको बढ़ानेमें व्यस्त रहते थे। इसी बीच उन्हें पिताकी दूसरी आज्ञा मिली कि वे शक्तिके अवतारके लिये तप करें। दक्षने ब्रह्माकी इस आज्ञाको भी शिरोधार्य किया। वे कठिन तपमें संलग्न हो गये—कभी सूखा पत्ता चबा लेते कभी जल पी लेते और कभी हवा पीकर ही रह जाते। प्रत्येक परिस्थितिमें जगदम्बाकी पूजा निरन्तर चलती रहती थी। तीन हजार दिव्य वर्ष बीतनेपर आदिशक्तिने दक्षको दर्शन दिया।

वे सिंहपर बैठी थीं और उनके शरीरकी कान्ति श्याम थी। उनके चार भुजाएँ थीं। उनका श्रीमुख अत्यन्त मनोरम था। वे आह्लादक प्रकाशसे प्रकाशित हो रही थीं। उस समय कण-कण आह्लादसे थिरक रहा था। अद्भुत छटा थी।

जगदम्बाका दर्शन पाकर दक्षने अपनेको धन्य माना और भलीभाँति प्रणाम कर उनकी स्तुति की। जगदम्बाने कहा—'दक्ष! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहे माँग लो।' दक्षने कहा—'देवि! मेरे स्वामी शकर हैं। वे रुद्ररूपसे अवतार ले चुके हैं। आप उनकी शक्ति हैं, अत अवतार ग्रहण कर अपने रूप-लावण्यसे उन्हे मोहित कर।' आदिशक्तिने कहा—'मैं तुम्हारी पत्नीके गर्भसे पुत्रीके रूपमे अवतार लूँगी, किंतु एक शर्त है, जिसे तुम ध्यानमे रखना। वह यह है कि जब मेरे प्रति तुम्हारा आदर घट जायगा, तब मे अपना शरीर त्याग दूँगी।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गयीं।

जब आदिशक्ति दक्षप्रजापतिकी पत्नीके गर्भमे आयीं तब उनके शरीरसे पुण्यमय आभा निकलने लगी और चित्तमे निरन्तर प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता छायी रहती थी। वीरणीमे आदिशक्तिका आवास जानकर वहाँ ब्रह्मा और विष्णु आये। उनके साथ सम्पूर्ण देव और ऋषि-मुनि भी थे। सभीने प्रेमार्द्र-वाणीसे भगवती शक्तिकी स्तुति की और उन्हे प्रणाम किया। उन लोगोने दक्ष और वीरणीकी भी भूरि-भूरि प्रशसा की। जब गुणोसे युक्त सुहावना समय आया, तब शक्तिने अपनेको प्रकट किया। उस समय दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं, शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा बहने लगी, आकाश स्वच्छ हो गया और पुष्पवृष्टि होने लगी। सब जगह सुख-शान्ति छा गयी। दक्षने शक्तिका वही रूप देखा, जिसे वरदानके समय देखा था। उन्होने हाथ जोडकर देवीको प्रणाम किया और स्तुति की।

तब स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवती शक्ति इस प्रकार बोलीं—'प्रजापति दक्ष! तुमने मेरे अवतारके लिये तप किया था, अत मैं तुम्हारी पुत्रीके रूपमे अवतीर्ण हो गयी हूँ। अब तुम तपस्याके फलको ग्रहण करो।' ऐसा कहकर शक्ति नवजात शिशु बनकर रोने लगीं। शिशुका रोना सुनकर चारो ओर हर्ष छा गया। स्त्रियाँ दौडी आयीं। बच्चीका लुभावना रूप देखकर सब ठगी-सी रह गयीं। जय-जयकारकी ध्वनिसे सारा नगर गूँजने लगा। बाजे बजने लगे। कलकण्ठाकी स्वर-लहरियाँ वातावरणमे तरने लगीं। दक्षने कुलोचित वैदिक आचरण सम्पन्न किया। गौ घोडे, हाथी, सोना, वस्त्र आदिका दान दिया गया।

दक्षने कन्याका नाम 'सती' रखा। लोगोने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उसके अलग-अलग नाम रखे। जो देखता, उसके मनमे अपनापन जाग उठता। वह शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी तरह बढती हुई सबके चित्तको आह्लादित करने लगी। जैसे-जैसे बच्ची बढती गयी, वैसे-वैसे शिवके प्रति उसका अनुराग भी बढता गया। सखियोके बीच भी वह छिपाये न छिपा। उसके ओठोपर शकरके नाम थे, तो अन्तरमे उनकी करुण पुकार थी। शिवके प्रेममे डूबी हुई वह, कभी रोती तो कभी हँसती। सखियाँ उसपर श्रद्धा रखने लगीं। इतना प्यार करने लगीं कि वे अपने शरीरको भुलाकर सतीके शरीरको ही अपना शरीर मानने लगीं।

एक दिन ब्रह्माजी नारदके साथ प्रजापति दक्षके घर पधारे। उस समय सती विनम्र-भावसे पिताके पास ही खडी थीं। उनके उत्कट सौन्दर्यसे वहाँका वातावरण उद्भासित हो रहा था। वे तीनो लोकोके सौन्दर्यका सार प्रतीत हो रही थीं। जब आदर-सत्कारके पश्चात् ब्रह्मा और नारद बैठ गये, तब उन्होने सतीसे कहा कि 'तुम शकर भगवान्‌को चाहती ही हो, अत उन्हींको पति बनाओ। भगवान् शकर भी तुम्हारे सिवा और किसीको कभी पत्नी नहीं बना सकते।'

यह सुनकर सतीकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। दक्ष भी प्रसन्न हुए, परतु उन्हे यह चिन्ता व्याप्त हो गयी कि शकरको ढूँढा कहाँ जाय वे कहाँ मिल सकेगे? मिलनेपर भी उन्हे विवाहके लिये राजी कर सकना कठिन था। वे इसी उधेड-बुनमे पडे रहते। इसी बीच एक दिन सतीने पितासे शकरकी प्राप्तिके लिये तपस्याकी आज्ञा माँगी।

सतीका अनुराग अब मीठी वेदना बनकर उन्हे बेचैन करने लगा था। वे प्रतिक्षण शंकरका सानिध्य चाहने लगी थीं। तपस्यासे मानसिक सानिध्य तो मिल ही सकता था, साथ ही शारीरिक सानिध्य भी सम्भव था। जिनके लिये तिल-तिलकर जला जा रहा था, वे औढरदानी कबतक उदासीन बने रह सकते थे?

माता-पिता स्वयं चिन्तित तो थे ही। कोई अन्य मार्ग न देखकर उन्होने अपनी लाडली बेटीको तपस्याके कठोर मार्गपर चलनेकी आज्ञा दे दी। घरपर ही सारी सामग्री जुटा दी गयी। अब सती संसारसे दूर हो गयी थीं, केवल वे थीं और थीं उनकी सखियाँ। उन्होने नन्दाव्रतका प्रारम्भ कर दिया। अब पूज्य था, पूजा थी और पुजारिन थी। सखियाँ तो पुजारिनकी ही अङ्ग थीं। वे अनुरागके बहावमें पूजाका क्रम सँभालती थीं। नन्दाव्रतके समाप्त होते-होते त्रिपुटी भी समाप्त हो गयी। अब न पूजा थी और न पुजारिन, बस, पूज्य-ही-पूज्य रह गया था। सती आराध्यके ध्यानमें सब कुछ भुला बैठी थीं। वे निष्कम्प दीपकी लौकी भाँति प्रदीप्त हो रही थीं। पल बीता, घडी बीती, दिन बीता, रात बीती, मास बीते, वर्ष बीते, किंतु सती निश्चल बैठी रहीं। काल उनके लिये सापेक्ष हो गया था।

यह पवित्र चर्चा तीनों लोकोंमें फैल चुकी थी। सभी देवता एवं ऋषि विष्णु और ब्रह्माको आगे कर इस अद्भुत कर्मको देखनेके लिये सतीके पास पहुँचे। देवताओं और ऋषियोंने हाथ जोडकर सतीकी स्तुति की। विष्णु और ब्रह्माके हृदयमें प्रीति उमड आयी। सभी आश्चर्यचकित थे तथा सतीका सहयोग करना चाहते थे। वे सतीको माथा टेककर जैसे आये थे, वैसे लौट गये और भगवान् शंकरके पास पहुँचे। सतीने न तो उनका आना जाना और न जाना। वे वैसे ही निश्चेष्ट बैठी रहीं। उनके अङ्ग-अङ्गसे प्रेमका प्रभावक रस वैसे ही झर रहा था।

देवता और ऋषि जब शंकरके पास पहुँचे तब उनके आगे लक्ष्मीके साथ विष्णु और सरस्वतीके साथ ब्रह्मा थे। वहाँ सामूहिक स्तुति की, ... क्ष्मी और सरस्वतीको

आगे देख शंकरने सबको यथोचित सम्मान दिया और आनेका कारण पूछा। विष्णुका निर्देश पाकर ब्रह्माने कहा—'आप, विष्णु और मैं वस्तुतः एक ही हैं। सदाशिवने कार्यके भेदसे हम तीन रूपोंमें व्यक्त किया है। यदि कार्यके भेदोंको हम निष्पन्न न करेंगे तो हमारे रूपके भेद भी व्यर्थ हो जायँगे। अतः लोक-हितका एक ऐसा कार्य आ पडा है, जिसकी सिद्धिके लिये आप भी तदनुरूप कन्याके साथ विवाह कर लें। विष्णु भी सपत्नीक हैं और मैं भी। विश्वके हितके लिये आप भी सशक्तिक हो जायँ।'

ब्रह्माकी बात सुनकर भगवान् शिवके मुखपर मुसकराहट बिखर गयी और वे बोले—'तुम दोनो मेरे बहुत ही प्रिय हो, किंतु मेरे लिये विवाह उपयुक्त नहीं है, क्योंकि मैं निवृत्ति-मार्गपर चल रहा हूँ। इसीलिये मैंने अपवित्र और अमङ्गल वेष भी बना रखा है। ऐसी स्थितिमें विवाह कैसे उपयुक्त हो सकता है? फिर भी तुम्हारी बात तो रखनी ही पडेगी। इसके लिये मैं कुछ शर्तें रख रहा हूँ, जिससे मेरी आत्मारामता भी चलती रहे और वैवाहिक जीवनका भी उपभोग हो। पहली शर्त यह है कि कन्या मेरी ही तरह निवृत्तिमार्गकी पथिक हो, योगिनी हो, आत्माराम हो। विश्वके हितके लिये विवाहका उपयोग करनेवाली हो। दूसरी शर्त यह है कि उस कन्याका जब मुझपर या मेरे वचनपर अविश्वास हो जायगा तब मैं उसे त्याग दूँगा।'

शर्ते सुनकर विष्णु और ब्रह्माको प्रसन्नता हुई, क्योंकि सती इन शर्तोके अनुकूल थीं। वे अन्तरङ्गा शक्तिका अवतार थीं बहिरङ्गा-जैसी शक्ति उनका स्पर्श भी नहीं कर सकती थी। सूर्यके सामने अन्धकार कभी नहीं आ सकता। तब ब्रह्माने बतलाया कि 'उनकी शर्तके अनुकूल कन्या उन्होंने खोज रखी है। परब्रह्मकी पराशक्ति उमाका सतीके रूपमें अवतार हो गया है और वे आपके साथ विवाह करनेके लिये घोर तप कर रही हैं। अब आवश्यकता यह है कि आप उन्हें वरदान दे आयें, क्योंकि तप पराकाष्ठापर पहुँच चुका है।'

शंकरसे आश्वासन पाकर सभी लोग प्रसन्नताके साथ अपने-अपने लोकमें पधारे। भगवान् शंकरने सतीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे अपने इष्टदेवको सामने पाकर प्रेमसे विह्वल हो गयीं। सतीने अनुभव किया कि उनमें सैकड़ों चन्द्रमाओंसे बढ़कर आह्लादकता और करोड़ों कामदेवोंसे बढ़कर सुन्दरता है। भगवान्‌ने वर माँगनेको कहा, किंतु लज्जाने उन्हें बोलने न दिया। उनका मुख ऊपर उठ नहीं रहा था, किंतु भगवान् सतीकी बोली सुनना चाहते थे, अतः वे फिर बोले—'सती! मैं तुम्हारे व्रतसे प्रसन्न हूँ। अब तुम इच्छानुसार वर माँग लो।' भगवान् बार-बार अपने वचन दोहरा रहे थे। उन्हें सुन-सुनकर सतीमें प्रेम-विह्वलता अत्यधिक बढ़ती जा रही थी। उनका मुँह खुल नहीं रहा था। इधर सतीके वचन सुने बिना भगवान्‌को भी कल नहीं पड़ रही थी। वे बोले—'सती! कुछ तो बोलो।' तब सती यह सोचकर घबरा गयीं कि अब कुछ न बोलना, उनका अनादर करना है। पर लाजवश अभिलषित वर माँग न सकीं। वे इतना ही बोलीं—'प्रभो! ऐसा वर दीजिये, जो टल न सके।' वे बार-बार इसे ही दोहराती रहीं। इस शालीनतासे भगवान् और रीझ गये। उनकी विह्वलता अब भगवान्‌पर ही आरूढ़ होती जा रही थी। वे बोले—'सती! तुम मेरी भार्या बन जाओ।' भगवान्‌ने सतीका अन्तर्द्वन्द्व मिटा दिया था, अतः अभिलषित वर पाकर उनका हृदय आनन्दके उल्लाससे भर गया। तब वे बोलीं—'प्रभो! आपने महती अनुकम्पा की है किंतु मेरे पिताजीसे कहकर शास्त्रीय विधिके अनुसार मेरा पाणिग्रहण करनेकी कृपा करें।' शिवने प्रेमभरी दृष्टिसे सतीको देखा और कहा—'प्रिये! ऐसा ही होगा।'

भगवान् शंकर जब आश्रममें लौटे, तब अपनेको अनमना पाया। वे सतीके प्रेम-पाशमें बँध चुके थे, अतः सतीका वियोग उन्हें पीडित कर रहा था, विवाह व्यवधान-सा प्रतीत होने लगा था। उन्होंने ब्रह्माका स्मरण किया। तत्क्षण सरस्वतीके साथ ब्रह्मा आ उपस्थित हुए। भगवान्‌ने कहा—'ऐसा प्रयत्न करो कि विवाह शीघ्रतासे सम्पन्न हो जाय।'

ब्रह्माने कहा—'सब काम पहलेसे ही तैयार है। दक्ष तो कन्यादानके लिये तैयार ही बैठे हैं, फिर भी आपकी ओरसे उन्हें सूचित कर देता हूँ।' इधर दक्ष सतीकी सफलता सुनकर आनन्द और चिन्ता दोनोंके झूलेमें झूल रहे थे। चिन्ता यह थी कि शंकरको ढूँढ़ा कहाँ जाय और कैसे उन्हें प्रसन्न किया जाय। इसी बीच ब्रह्मा दक्षके पास पहुँचे। डूबतेको सहारा मिल गया। ब्रह्माने बतलाया कि 'जिस तरह सती शंकरकी आराधना कर रही थीं, वैसे ही शंकर भी सतीकी आराधना करते रहे हैं। इसलिये शीघ्र ही विवाहका शुभ कार्य सम्पन्न कर लिया जाय।'

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी रविवारको पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्रमें विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र एवं समस्त देवताओं तथा ऋषियोंके साथ भगवान् शंकरने विवाहके लिये यात्रा की। उस समय भगवान् शंकरकी इच्छासे वृषभ, व्याघ्र, सर्प आदि तरह-तरहके अलंकार बन गये। उनकी छटा निराली थी। देवताओं और प्रमथगणोंने रास्तेमें उत्सवोंका ताँता लगा दिया। प्रजापति दक्षने उत्साह और हर्षके साथ बारातकी आगवानी की। स्वयं ब्रह्माने विवाह कराया। जब दक्षने सतीका हाथ भगवान्‌के हाथमें दिया तो सारा वातावरण उत्फुल्ल हो उठा। नृत्यों और गीतोंकी अटूट परम्परा चल पड़ी। आनन्द-ही-आनन्द बरसने लगा। सारा विश्व मङ्गलका निकेतन बन गया।

विदाईके समय दक्षने विनय-विनम्र होकर भगवान्‌की स्तुति की। सतीके साथ शंकरकी शोभा देखकर लोग ठगे-से

सतीका अनुराग अब मीठी वेदना बनकर उन्हे बेचैन करने लगा था। व प्रतिक्षण शकरका सानिध्य चाहने लगी थीं। तपस्यासे मानसिक सानिध्य तो मिल ही सकता था, साथ ही शारीरिक सानिध्य भी सम्भव था। जिनके लिये तिल-तिलकर जला जा रहा था, व औढरदानी कबतक उदासीन बने रह सकते थे?

माता-पिता स्वय चिन्तित तो थे ही। कोई अन्य मार्ग न देखकर उन्हाने अपनी लाडली बेटीको तपस्याके कठोर मार्गपर चलनेकी आज्ञा दे दी। घरपर ही सारी सामग्रा जुटा दी गयी। अब सती ससारसे दूर हा गयी थीं, केवल वे थीं ओर थीं उनकी सखियाँ। उन्हाने नन्दाव्रतका प्रारम्भ कर दिया। अब पूज्य था, पूजा थी ओर पुजारिन थी। सखियाँ तो पुजारिनकी ही अङ्ग थीं। वे अनुरागक बहावम पूजाका क्रम सँभालती थीं। नन्दाव्रतके समाप्त होते-होते त्रिपुटी भी समाप्त हो गयी। अब न पूजा थी ओर न पुजारिन, बस पूज्य-ही-पूज्य रह गया था। सती आराध्यके ध्यानम सब कुछ भुला बैठी थीं। व निष्कम्प दीपकी लौकी भाँति प्रदीप्त हो रही थीं। पल बीता, घडी बीती, दिन बीता रात बीती, मास बीते, वर्ष बीते, किंतु सती निश्चल बैठी रहीं। काल उनके लिये सापेक्ष हो गया था।

यह पवित्र चर्चा तीना लाकाम फैल चुकी थी। सभी देवता एव ऋषि विष्णु और ब्रह्माको आगे कर इस अद्भुत कर्मको दखनेके लिये सतीके पास पहुँचे। देवताआ ओर ऋषियाने हाथ जोडकर सतीकी स्तुति की। विष्णु आर ब्रह्माके हृदयमे प्रीति उमड आयी। सभी आश्चर्यचकित थे तथा सतीका सहयोग करना चाहते थे। वे सतीको माथा टेककर जैसे आये थे वैसे लोट गये और भगवान् शकरके पास पहुँच। सतीने न तो उनका आना जाना ओर न जाना। वे वैसे ही निश्चेष्ट बैठी रहीं। उनक अङ्ग-अङ्गसे प्रेमका प्रभावक रस वैसे ही झर रहा था।

देवता ओर ऋषि जब शकरके पास पहुँचे, तब उनके आगे लक्ष्मीके साथ विष्णु और सरस्वतीके साथ ब्रह्मा थे। वहाँ सामूहिक स्तुति की गयी। लक्ष्मी ओर सरस्वतीका

आगे देख शकरने सबको यथोचित सम्मान दिया और आनेका कारण पूछा। विष्णुका निर्देश पाकर ब्रह्माने कहा—'आप, विष्णु और मैं वस्तुत एक ही हैं। सदाशिवने कार्यके भेदसे हम तीन रूपाम व्यक्त किया है। यदि कार्यके भेदाको हम निष्पन्न न करगे तो हमारे रूपके भेद भी व्यर्थ हो जायँगे। अत लाक-हितका एक ऐसा कार्य आ पडा है, जिसकी सिद्धिके लिये आप भी तदनुरूप कन्याके साथ विवाह कर ले। विष्णु भी सपत्नीक हैं और मैं भी। विश्वके हितके लिये आप भी सशक्तिक हो जायँ।'

ब्रह्माकी बात सुनकर भगवान् शिवके मुखपर मुसकराहट बिखर गयी और वे बोले—'तुम दोनो मेरे बहुत ही प्रिय हो, किंतु मेरे लिये विवाह उपयुक्त नहीं है, क्याकि मैं निवृत्ति-मार्गपर चल रहा हूँ। इसीलिये मैंने अपवित्र और अमङ्गल वेष भी बना रखा है। ऐसी स्थितिम विवाह कैसे उपयुक्त हो सकता है? फिर भी तुम्हारी बात ता रखनी ही पडेगी। इसके लिये मैं कुछ शर्ते रख रहा हूँ, जिससे मेरी आत्मारामता भी चलती रहे और वैवाहिक जीवनका भी उपभोग हो। पहली शर्त यह है कि कन्या मेरी ही तरह निवृत्तिमार्गकी पथिक हो योगिनी हो, आत्माराम हो। विश्वके हितके लिये विवाहका उपयोग करनेवाली हो। दूसरी शर्त यह है कि उस कन्याका जब मुझपर या मेरे वचनपर अविश्वास हो जायगा तब मैं उसे त्याग दूँगा।'

र्तें सुनकर विष्णु और ब्रह्माको प्रसन्नता हुइ, क्याकि शर्तोके अनुकूल थीं। वे अन्तरङ्गा शक्तिका अवतार रङ्गा-जैसी शक्ति उनका स्पर्श भी नहीं कर सकती र्यके सामन अन्धकार कभी नहीं आ सकता। तव वतलाया कि 'उनका शर्तक अनुकूल कन्या उन्हाने खी है। परब्रह्मकी पराशक्ति उमाका सतीके रूपमे हो गया है आर व आपके साथ विवाह करनेके र तप कर रही हैं। अव आवश्यकता यह है कि ह वरदान दे आय, क्याकि तप पराकाष्ठापर पहुँच ।'

करसे आश्वासन पाकर सभी लाग प्रसन्नताक साथ अपन लाकम पधारे। भगवान् शकरन सतीका दर्शन दिया। वे अपन इष्टदेवका सामने पाकर विह्वल हो गयीं। सतीने अनुभव किया कि उनम चन्द्रमाआसे वढकर आह्लादकता ओर करोडा स बढकर सुन्दरता है। भगवान्ने वर माँगनेको कितु लज्जाने उन्हे बोलन न दिया। उनका मुख ठ नहीं रहा था, कितु भगवान् सतीकी बोली चाहत थे, अत वे फिर वाले—'सती! मैं तुम्हार प्रसन्न हूँ। अव तुम इच्छानुसार वर माँग लो।' वार-बार अपन वचन दोहरा रहे थे। उन्हे सुन- सतीम प्रेम-विह्वलता अत्यधिक बढती जा रही नका मुँह खुल नहीं रहा था। इधर सतीके वचन ना भगवान्को भी कल नहीं पड रही थी। वे 'सती। कुछ तो बोलो।' तब सती यह सोचकर गयीं कि अव कुछ न बालना, उनका अनादर है। पर लाजवश अभिलषित वर माँग न सकीं। वे ही बोलीं—'प्रभो। एसा वर दीजिये, जो टल न वे बार-वार इसे ही दोहराती रहीं। इस तासे भगवान् ओर रीझ गये। उनकी विह्वलता अब पर ही आरूढ होती जा रही थी। वे बोले— तुम मेरी भार्या बन जाओ।' भगवान्ने सतीका द्व मिटा दिया था, अत अभिलषित वर पाकर हृदय आनन्दके उल्लासस भर गया। तब वे —'प्रभो! आपने महती अनुकम्पा की है, कितु मेरे पिताजीसे कहकर शास्त्रीय विधिके अनुसार मेरा पाणिग्रहण करनेकी कृपा कर।' शिवने प्रेमभरी दृष्टिसे सतीको देखा और कहा—'प्रिये। ऐसा ही होगा।'

भगवान् शकर जब आश्रमम लाटे, तब अपनेको अनमना पाया। वे सतीके प्रेम-पाशम बँध चुके थे, अत सतीका वियोग उन्ह पीडित कर रहा था, विवाह व्यवधान-सा प्रतीत हाने लगा था। उन्होने ब्रह्माका स्मरण किया। तत्क्षण सरस्वतीके साथ ब्रह्मा आ उपस्थित हुए। भगवान्ने कहा—'ऐसा प्रयत्न करो कि विवाह शीघ्रतासे सम्पन्न हा जाय।'

ब्रह्माने कहा—'सव काम पहलेसे ही तैयार है। दक्ष तो कन्यादानके लिये तयार ही बैठे हैं, फिर भी आपकी आरसे उन्ह सूचित कर देता हूँ।' इधर दक्ष सतीकी सफलता सुनकर आनन्द और चिन्ता दोनाके झूलेम झूल रहे थे। चिन्ता यह थी कि शकरको ढूँढा कहाँ जाय और कैसे उन्ह प्रसन्न किया जाय। इसी बीच ब्रह्मा दक्षके पास पहुँचे। डूबतेको सहारा मिल गया। ब्रह्माने बतलाया कि 'जिस तरह सती शकरकी आराधना कर रही थीं, वैसे ही शकर भी सतीकी आराधना करते रहे हैं। इसलिये शीघ्र ही विवाहका शुभ कार्य सम्पन्न कर लिया जाय।'

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी रविवारको पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्रम विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र एव समस्त देवताआ तथा ऋषियाक साथ भगवान् शकरने विवाहके लिये यात्रा की। उस समय भगवान् शकरकी इच्छास वृषभ, व्याघ्र, सर्प आदि तरह-तरहके अलकार बन गये। उनकी छटा निराली थी। देवताओ और प्रमथगणोने रास्तेमे उत्सवोका ताँता लगा दिया। प्रजापति दक्षने उत्साह और हर्षके साथ बारातकी आगवानी की। स्वय ब्रह्माने विवाह कराया। जब दक्षने सतीका हाथ भगवान्के हाथम दिया तो सारा वातावरण उत्फुल्ल हो उठा। नृत्या और गीताकी अटूट परम्परा चल पडी। आनन्द-ही-आनन्द बरसने लगा। सारा विश्व मङ्गलका निकेतन बन गया।

विदाईके समय दक्षने विनय-विनम्र होकर भगवान्की स्तुति की। सतीके साथ शकरकी शाभा देखकर लाग ठगसे

रह गये। कैलास लोटकर भगवान् शकरने बारातियाका सम्मानके साथ बिदा किया। अबतक शक्ति अलग थी और शक्तिमान् भी। माता सतीका लोक-कल्याणके लिये ही अवतार हुआ था। दाम्पत्यजावनका आदर्श प्रस्तुत कर उन्हाने ज्ञान-विज्ञानसे विश्वको आलोकित करना चाहा। एक दिन सती बोर्ली—'अब में परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूँ, अत आप जिससे जीवका परम हित हो, वह बतलाइये।'

भगवान् शकरने ज्ञान, विज्ञान, नवधा भक्ति, भक्तकी महिमा आदि विषयाका प्रतिपादन किया। इस तरह सतीने तन्त्र, मन्त्र, योग आदि साधनाको जीवोके लिये सुलभ करा दिया, किंतु उनके अवतारका मुख्य उद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ था। उन दिनो सतीके पिता दक्ष तथा भृगु आदि महर्षि यागको ही प्रमुख स्थान देते थे। याग वैदिक कर्म हे, अत आवश्यक है। इस तरह ज्ञानकाण्ड भी वैदिक है, अत वह भी आवश्यक है। प्रवृत्तिमार्ग ओर निवृत्तिमार्ग—दाना वेदोक्त ह। अधिकार-विशपसे दोनो आवश्यक हैं। वर्णधर्ममे दोनाकी उपयोगिता है। पर प्रवृत्तिमार्गको ही मार्ग मानना ओर निवृत्तिमार्गपर रोक लगाना बुरा है। दक्ष आदि एकदेशी विचारके हो गये थे। वे वेदके दूसरे अङ्गापर कुठाराघात कर रहे थे। नारदने उनके कुछ अधिकारी पुत्राको निवृत्तिमार्गपर लगा दिया था। दक्ष इस बातको सहन न कर सके ओर उन्हाने देवर्षिको शापतक दे डाला। सबसे बडी बात थी भगवत्प्रेमकी उपेक्षा। भगवान् प्रेमस्वरूप हैं ओर इसी प्रेमके लिये वे सृष्टिकी रचना करते हैं, सगुण बनते हैं अवतार लेते हैं। इस तथ्यको समझानेके लिये सतीका अवतार हुआ था। आत्मदान देकर और दूसरा जन्म धारणकर उन्हाने यह प्रकाश हम दिया। धन्य ह उनकी दयालुता। वे इसके लिय इतना अज्ञ बन गर्यी, उन्हाने जडताका इतन नीचे स्तरका अभिनय किया, जा कोई करुणामयी माँ ही कर सकती हे।

शिवपुराणमे वह घटना इस प्रकार है। भगवान् शकर सतीके साथ देशाटन कर रहे थ। विश्वके हितके लिये सतीके प्रश्न आर शकरभगवान्के द्वारा उनका उत्तर सतत चलता जा रहा था। दण्डकारण्य पहुँचनेपर एक नया दृश्य सामने आया। रावणद्वारा हरी गया सीताके वियोगमे भगवान् राम शोकविह्वल हो गये थे। उनकी आँखासे आँसूकी अजस्र धाराएँ वह रही थीं। वे पड-पाधासे सीताका पता पूछ रहे थे। लक्ष्मण भी श्रीरामके दु खमे साथ दे रहे थे। दोना ही शोककी मूर्ति बने हुए थे। भगवान् शकरने जब श्रीरामको देखा, तब उनके हृदयमे इतना आनन्द उमडा कि वह रोके रुक न रहा था। उनकी आँखामे प्रेमाश्रु भर आये थे और रोम-रोम पुलकित हो उठा था। चाल डगमगा रही थी। उन्हाने 'सच्चिदानन्दकी जय हो' कहकर श्रीरामको प्रणाम किया,

किंतु अनवसर जानकर जान-पहचान नहीं की ओर दूसरी ओर चल दिये। श्रीरामके दर्शनका आनन्द अब भी उमडता ही जा रहा था।

आदिशक्तिका स्वरूप ही 'ज्ञान' है फिर इनमे अज्ञान कैसे आ सकता है? पर उन्हाने हम जीवापर दया कर हमारी-जैसी अज्ञताका अभिनय किया। उधर 'आनन्द'-रूप श्रीराम 'शोक' का अभिनय कर रह थे तो इधर हमारी चरितनायिका 'ज्ञानरूपा' होकर 'अज्ञान' का अभिनय करने लगीं। वे एसी 'अज्ञ' बन गर्यी जैस कोई निकृष्ट जीव हो। उन्हाने घार सशयालु बनकर पूछा—'नाथ! आप तो सबके लिये प्रणम्य हैं सबसे ऊँचे हैं, पूर्ण परब्रह्म हैं? फिर आपने इस मनुष्यको प्रणाम क्या किया और इस सच्चिदानन्द

कैसे कहा? सेव्य सेवकको प्रणाम करे, यह उचित नहीं है। इसी तरह किसी मनुष्यको 'सच्चिदानन्द' कहना अनुचित जान पडता है?'

भगवान् शकरने कहा—'देवि! ये दोनो दशरथके पुत्र हैं। छोटेका नाम लक्ष्मण और श्याम रगवाले भाईका नाम श्रीराम है। ये साक्षात् परब्रह्मके अवतार हैं। उपद्रव इनसे दूर रहते हैं। ये केवल लीला कर रहे है। हमलोगोके कल्याणके लिये इनका अवतार हुआ है।'

सती भगवान् शकरके प्रत्येक वचनको ब्रह्मवाक्य मानती थीं, परतु आज तो अभिनय करना था, अत उन्होने उनके कथनपर विश्वास नहीं किया। तब भगवान्को कहना पडा कि 'यदि विश्वास न होता हो तो जाकर परीक्षा कर लो।' सती सीताका रूप धारण कर श्रीरामके पास पहुँचीं। उन्हे देखते ही श्रीरामने प्रणाम किया और पूछा—'सतीजी!

इस समय शिवजी कहाँ हैं, आप अकेले इस वनमे कैसे घूम रही हैं? अपना रूप छोडकर यह रूप क्या धारण कर रखा है?' यह सुनते ही सतीजी पानी-पानी हो गयीं और बोलीं—'मैं आपकी प्रभुता देखना चाहती थी।' श्रीरामने सतीजीका बहुत सम्मान किया और उनकी आज्ञा लेकर वे पुन अपने अभिनयमे लग गये। दोनो अभिनय ही तो कर रहे थे।

लौटते समय सती चिन्तित थीं और सोच रही थीं कि 'मैंने आज अपने स्वामीके वचनपर अविश्वास कैसे कर लिया?' वे अप्रसन्न-मनसे भगवान् शकरके पास पहुँचीं। शोकने उन्हे व्याकुल बना दिया था। भगवान्ने पूछा—'सती! तुमने किस प्रकार परीक्षा ली थी?' सती मस्तक झुकाये उनके पास खडी हो गयीं। वे शोक और विषादसे भर गयी थीं। भगवान् शकरने ध्यान लगाकर सारी बाते जान लीं। उन्हे दु ख तो हुआ, परतु पूर्व-प्रतिज्ञाके अनुसार उन्होने सतीका मनसे त्याग कर दिया, किंतु सतीको दु ख होगा, इसलिये त्यागवाली बात उन्हे बतलायी नहीं। उनका पहले-जैसा मीठा व्यवहार बना रहा। इतनेमे आकाशवाणी हुई—'परमेश्वर! तुम धन्य हो और तुम्हारी प्रतिज्ञा भी धन्य है।'

आकाशवाणी सुनकर सतीकी कान्ति मलिन हो गयी। उन्होने पूछा—'मेरे स्वामी! आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है? बतलाइये।' भगवान् अप्रिय वचन कहकर सतीको दु खित करना नहीं चाहते थे, अत उन्होने कहा—'देवि! इसे मत पूछो।' किंतु सतीने ध्यानसे सब बात जान ली। वे सिसकने और लम्बी-लम्बी साँस खींचने लगीं। भगवान् शकरने उन्हे ढाढस बँधाया तथा विभिन्न कथाओंद्वारा उनका मनबहलाव किया। कैलास पहुँचकर भगवान् ध्याननिष्ठ हो गये। जब ध्यान टूटा, तब सतीको सामने प्रणाम करते पाया। भगवान्ने सतीको प्रेमसे आसन देकर सामने बैठाया और मनोरम कथाएँ

सुनायीं। उन्होने इतना अच्छा व्यवहार किया कि सतीका सारा शोक दूर हो गया। वे पहलेकी तरह सुखी हो गयीं, पर शिवने अपनी प्रतिज्ञा न छोडी।

एक बार दक्ष सभी प्रजापतियाके पति एव समग्त ब्राह्मणाके अधिपति वनाय गये थे। उन्ह बहुत वडा पद मिला था। वे तजस्वी ता थे ही। सब थे पर व आत्मज्ञानी न थ। जा आत्माका ही न जानगा, वह परमात्माका कस जान सकेगा? फलत वे घार अहकारी वन गय थे। एक वार मुनियाने प्रयागम महान् यज्ञ किया था। इसम ब्रह्माजी भी उपस्थित थे। भगवान् शिव भी यहाँ आ पहुँचे। उनके साथ सती भी थीं। ब्रह्मा आदिन उठकर उन्ह प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। भगवान् शकरका दर्शन पाकर सब लागाने अपनेका धन्य माना। वहाँ प्रजापतियाक पति दक्ष भी आ पहुँचे। सबने उठकर उनका अभ्युत्थान किया। वे ब्रह्माको प्रणाम कर बठ गये, किंतु शकरको दखकर क्रूरतासे भर गये। अभिमानक कारण उनकी बुद्धि मारी गयी थी। अपनी कन्याके विवाहके अवसरपर उन्हान भगवान् शकरको प्रणाम किया था, स्तुति की थी अपना प्रभु माना था किंतु अहकारवश वे इस बार पुरानी बात भूल गय। उन्हाने भगवान् शकरको बहुत ही बुरा-भला कहा और शापतक दे डाला कि 'आजसे तुम देवताआके साथ भाग नहीं पाआगे।'

भृगु आदि कुछ महर्षि जा ब्रह्माके स्थानपर कर्मकाण्डके निमित्त बैठाये गये थे, दक्षकी हाँ-म-हाँ मिलाकर भगवान् शकरकी निन्दा करन लगे। इधर नन्दीका क्रोध अपने स्वामीके अपमानसे भडक उठा, उन्हाने भी शाप देते हुए

कहा कि 'दक्ष! तुम्हारा सिर नष्ट हा जाय, कर्म भ्रष्ट हो जाय और तुम बकरेका मुख प्राप्त करा।' इस घटनाके बाद दक्ष शकरक कट्टर द्रोही हा गये। वे शिवक विरुद्ध सदा रापम भर रहत थ।

एक बार दक्षन यज्ञ किया। उसम विश्वकमाने अत्यन्त दीप्तिमान्, विशाल और बहुमूल्य भवन बनाया था। यह यज्ञ कनखलम हुआ था। सभी दवता, ऋषि, मुनि वहाँ आवे थ। सभी बुलाय गय थ, किंतु दक्षने भगवान् शकरका नहीं बुलाया था। श्रीमद्भागवत-कल्पम विष्णु और ब्रह्मा बुलानपर भी नहीं गय थे, क्याकि वे दाना उसकी दुर्बुद्धिताका असहयाग कर रह थे। महान् शिव-भक्त दधीचन जब दखा कि इस यज्ञम भगवान् शकर उपस्थित नहीं हैं, तब उन्हाने पूछा कि 'यहाँ भगवान् शकर क्या नहीं आय हैं? शास्त्रका कहना है कि सभी मङ्गलकार्य भगवान् शकरकी कृपा-दृष्टिसे ही सम्पन्न होते हैं। जिनके स्वीकार करनेपर अमङ्गल भी मङ्गल हा जाता है, उनका पदार्पण इस यज्ञमें आवश्यक है। आदिशक्ति सती भा यहाँ नहीं दीखतीं। उन्ह भी साथ ही बुलाना चाहिये। यदि ये नहीं आये तो यज्ञ कैसे पूरा होगा?'

यह सुनकर दक्षने भगवान् शकरक सम्बन्धम कुत्सित शब्दाका प्रयोग करत हुए कहा—'ब्रह्माक कहनेसे मैंने अपनी कन्या उसे दी। नहीं तो उस अकुलीन, माता-पितासे रहित, भूत-प्रेताके स्वामी, अभिमानी और कपालीको कौन पूछता? वह यज्ञ-कर्मके अयोग्य है। इसलिये उसे नहीं बुलाया और आगे भी नहीं बुलायेंगे। अत दधीचजी! आप फिर कभी ऐसी बात मत कहियेगा। आपलोग इस यज्ञको सफल बनाव।'

दधीचने कहा—'दक्ष! शिवके बिना यह यज्ञ ही अयज्ञ हो गया। तुम चेत जाओ, नहीं तो इससे तुम्हारा विनाश हो जायगा।' ऐसा कहकर वे अकेले ही यज्ञशालासे बाहर निकल गये। भगवान् शकरके तत्त्वको जाननेवाले अन्य लोग भी धीरे-धीरे यज्ञशालासे खिसक गये। दक्षने उनका उपहास किया और कहा कि 'अच्छा हुआ कि ये लोग चले गये। मैं इन बहिष्कृताको अपने यज्ञम चाहता ही नहीं था।'

सती प्रिय सखियाके साथ गन्धमादनपर्वतपर धारागृहमें

स्नान कर रही थीं। उन्होने चन्द्रमाको रोहिणीके साथ कहीं जाते देखा। तब उन्होने विजयास पुछवाया कि वे लोग कहाँ जा रहे हैं? चन्द्रमाने विजयाको आदरके साथ बताया कि वे दक्षके यज्ञम जा रहे हैं। सतीको विजयाक मुखसे अपने पिताके यहाँ होते हुए यज्ञका समाचार सुनकर बहुत विस्मय हुआ। वे सोचने लगीं कि अपने यहाँ आमन्त्रण क्या नहीं आया? उन्होने भगवान् शकरसे सब समाचार कह सुनाया और प्रार्थना भी की कि हमे वहाँ चलना चाहिये, क्योकि सम्बन्धियाका धर्म है कि वे अपने सम्बन्धियासे मिलते-जुलते रह। इससे परस्पर प्रेम बढता है।

भगवान् शकरने मधुर वाणीसे कहा—'देवि! तुम्हारे पिता मेरे द्रोही बन गये हैं। अत वहाॅं जानेसे सम्बन्ध और बिगड सकता हे। उन्हींकी तरह जा अनात्मज्ञ ऋषि-मुनि हैं, व तुम्हारे पिताके यज्ञम गये हैं।' पिताकी दुष्टता सुनकर सतीको रोप हो आया। उन्होने कहा—'जिनके जानेसे यज्ञ सफल हाता है, उन्ही आपको मरे पिताने नही बुलाया है। मैं दुरात्मा पिता और ऋषियाके मनोभावोका पता लगाना चाहती हूँ। मुझे जानेकी आज्ञा दे द।' भगवान्ने प्यारस कहा—'देवि! यदि तुम्हारी रुचि हो ही गयी हे तो जाओ, किंतु रानाकी तरह सज-धजकर जाना।' ऐसा कहकर भगवान्न स्वय सतीको आभूषण छत्र, चामर आदि राजाचित वस्तुएँ प्रदान कीं और साठ हजार रुद्रगणाको साथ कर दिया।

सती उस स्थानपर जा पहुँचीं, जहाॅं प्रकाशयुक्त यज्ञ हो रहा था। वह यज्ञमण्डप आश्चर्यजनक वस्तुआ, देवताआ और ऋषियोसे भरा हुआ था। माता एव बहनोने तो सतीका उचित आदर-सत्कार किया, किंतु दक्षने कुछ भी आदर नहीं किया, अपितु उपेक्षा की। दक्षके डरसे अन्य किसीने भी सतीका काई सम्मान नहीं किया। सब लोगाके द्वारा तिरस्कृत होनेस वे विस्मित हईं। फिर भी उन्होने माता-पिताक चरणोम मस्तक झुकाया किंतु वे हृदयसे दु खी थीं, क्याकि वहाँ भी देवताआके भाग ता दाख पडे, किंतु भगवान् शकरका भाग नहीं दिखायी दिया। तब उन्ह रोप हो आया और वे पूछ बैठीं—'पिताजी! आपने यज्ञमे मङ्गलकारी भगवान् शिवका क्यो नहीं बुलाया? जो स्वय यज्ञ, यज्ञक अङ्ग, यज्ञकी दक्षिणा और यजमानस्वरूप हैं, उनके बिना यज्ञकी सिद्धि कैसे होगी? क्या आपने भगवान् शिवको सामान्य देवता समझ रखा है?' इसके बाद उन्होने यज्ञमे सम्मिलित देवताओ और ऋषियाको फटकारा। वे सभी चुप रह गये।

दक्षने कहा—'तुम यहाॅं आयी ही क्या? इस समय यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। तुम्हारे पति अमङ्गलस्वरूप ह, वेदसे बहिष्कृत हैं। वे शास्त्रका अर्थ नहीं जानते, उद्दण्ड और दुरात्मा हैं। मैंने ब्रह्माके बहकावेम आकर मूर्खतावश तुम्हारा विवाह उनके साथ कर दिया था।' सतीने कहा—'जो महादेवकी निन्दा करता या सुनता हे, वे दोनो नरकमे जाते हैं। अत पिताजी! अब मैं इस शरीरको त्याग दूँगी। जो शिव साक्षात् परमश्वर हैं, उन्ह कर्मकाण्डी क्या जानगा? ये स्वार्थी देवता और कर्मवादी मुनि शिवकी निन्दा सुनकर भी चुप हैं। इसका फल इन्ह भोगना पडेगा।'

तदनन्तर सती शान्त हो गयीं और प्राणवल्लभ पतिका स्मरण करने लगीं। उन्होने उत्तरकी ओर भूमिपर बेठकर आचमन किया और वस्त्र आढ लिया तथा पतिका चिन्तन करते हुए प्राणायामके द्वारा प्राण और अपानको एकमं मिलाकर नाभिचक्रमे स्थित किया फिर बुद्धिके साथ हृदयम स्थापित किया, पुन कण्ठस्थित वायुको भृकुटियोके बीच ले जाकर केवल पतिका स्मरण करते हुए चित्तको योगमार्गमे स्थित कर दिया। इस प्रकार

योगाग्निसे उनका शरीर जल गया। यह दखकर सब लाग

हाहाकार करने लगे। शिवके कुछ पार्षद तो इतने दु:खी हुऐ कि वे अपने ही ऊपर हथियार चलाकर मर मिटे। उनकी सख्या बीस हजार थी। वे सतीके दु:खसे अत्यन्त कातर हो गये थे। कुछ रुद्रगण शस्त्र उठाकर दक्षपर टूट पडे। यह देखकर भृगुने रक्षोघ्न-मन्त्रसे दक्षिणाग्निमें आहुति दी। आहुति देते ही हजारोंकी सख्यामें महान् बलशाली ऋभुदेवता प्रकट हो गये। उन्होंने प्रमथगणोंको मार भगाया।

इसी बीच चेतावनीसे भरी हुई आकाशवाणी हुई—'दुर्बल ज्ञानवाले दक्ष! तुम्हें घमण्ड हो गया है जिससे तुम्हारी बुद्धि मोहसे ढक गयी है। सती आदिशक्तिकी अवतार हैं। वे परात्पर शक्ति हैं, सृष्टि, स्थिति एव लय करनेवाली परमेश्वरी हैं। ऐसी सती जिनकी धर्मपत्नी हैं, उन शकरको तुमने यज्ञमें भाग नहीं दिया? तुम मूढ और कुविचारी हो। तुम्हारा गर्व दूर हो जायगा। जो तुम्हारी सहायता करेगा, वह भी नष्ट हो जायगा। सभी देवता, नाग और मुनि यज्ञमण्डपसे निकल जायँ, नहीं तो सबका विनाश हो जायगा।'

उधर भृगुके मन्त्रबलसे प्रताडित प्रमथगण भगवान् शिवके पास पहुँचे। उन्होंने सारी दुर्घटनाएँ कह सुनायीं। भगवान् शकरने नारदका स्मरण किया, जिससे वे सत्य समाचार विस्तारपूर्वक सुना सकें। नारदसे सारी घटनाएँ सुनकर रुद्रने भयानक क्रोध प्रकट किया। उन्होंने एक जटा उखाडकर उस शिलापर पटक दिया। उसके दो टुकडे हो गये। उस समय महाप्रलयके समान भयंकर

शब्द हुआ। एक भागसे प्रलयाग्निके समान दहकते हुए वीरभद्र प्रकट हुए और दूसरे भागसे महाकाली प्रकट हुईं। रुद्रके नि:श्वाससे सौ प्रकारके ज्वर पैदा हुए। सबने भगवान् शिवको प्रणाम किया। वीरभद्रको भगवान्‌ने आज्ञा दी कि 'दक्षके यज्ञका विध्वस कर दो। जो वहाँ ठहरे हुए हैं उन्हें भी भस्म कर डालना। किसीकी स्तुति मत सुनना।'

वीरभद्र जब दक्षके यज्ञका विध्वस करनेके लिये प्रस्थित हुए तब भगवान् शकरने करोडों गणोंको उनके साथ कर दिया। वीरभद्रका रथ बहुत लम्बा-चौडा और ऊँचा था। उसे दस हजार सिंह खींच रहे थे। काली, कात्यायनी आदि शक्तियाँ भी उनके साथ थीं। वीरभद्र जब यज्ञमण्डपमें पहुँचे, तब अहकारी देवता इन्द्रको आगे कर उनसे भिड गये। वीरभद्रने कुछ ही क्षणमें सब देवताओंको भगा दिया। यज्ञ मृगका रूप धारणकर भाग खडा हुआ। वीरभद्रने उसका सिर काट डाला। मणिभद्रने भृगुको पटककर छातीपर पैर रखकर उनकी दाढी उखाड ली। चण्डने पूषाके दाँत उखाड लिये, क्योंकि शिवके अपमानके समय वे हँसे थे। दक्ष वेदीके भीतर जा छिपे थे। वीरभद्रने उनका सिर मरोडकर तोड डाला और अग्निकुण्डमें डाल दिया। इस तरह दक्षका यज्ञ विध्वस

कर वीरभद्र सेनाके साथ कैलास लौटे। ब्रह्माको जब पता चला कि दक्ष मार डाला गया, तब वे बहुत क्षुब्ध हुए। वे चाहते थे कि दक्ष जीवित हो जाय और उसका यज्ञ भी पूरा हो जाय। उस समय भगवान् विष्णुने राय दी कि सभी देवता भगवान् शकरकी शरण ग्रहण करे। यदि वे प्रसन्न न हागे तो प्रलय हो जायगा। देवताओने शकरकी स्तुति की और वे उनके चरणोमे लेट गये। भगवान् शकरने सभीको क्षमा प्रदान किया। इसके बाद तीना देव दक्षकी यज्ञशालामे आये। वहाँ स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति, ऋषि, पितर, गन्धर्व आदि पडे हुए थे। स्वामीका आदेश पाकर वीरभद्र दक्षके मृत शरीरको वहाँ ले आये। यज्ञनिमित्तक बकरेका सिर लेकर भगवान् शकरने दक्षके धडपर जोड दिया और ज्यो ही उनकी ओर कृपादृष्टिसे देखा, त्यो ही वे जीवित हो गये। अब दक्षकी बुद्धि स्वस्थ हो गयी थी। उन्होने शिवजीकी स्तुति की। उसके बाद इन्द्र आदि दिक्पालाने भी स्तवन किया। इस प्रकार शिवजीकी कृपासे उनका यज्ञ पूर्ण हुआ।

~~०~~

(२) माता पार्वतीके अवतार-कार्य

[तारक-वध और मानस-प्रचार]

(१)

कर्मकाण्डका अबाधित महत्त्व है। इससे अभ्युदय तो होता है, किंतु यह ब्रह्मका स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। प्रकृति ब्रह्मकी बहिरङ्गा शक्ति है। वह जब स्वय ब्रह्मके सम्मुख नहीं जा सकती, तब अपने उपासकोको ब्रह्मके सम्मुख कैसे पहुँचा सकती है? उन दिनो भृगु आदि ऋषि वेदके कर्मकाण्ड-भागसे सर्वात्मना प्रभावित होकर 'ब्रह्मवाद'को भूल बैठे थे। शिवपुराण-कल्पमे त्रिदेवामे भगवान् शकर परमात्माके अवतार थे, उस पदपर कोई जीव न था। वे सगुण ब्रह्म थे। फिर भी उन दिना अधिकाश लोग न ता उन्हे ब्रह्म और न उनके निस्त्रैगुण्य मार्गको सन्मार्ग ही समझ रहे थे। सतीने आत्मोत्सर्ग कर इस अन्धकारको हटाया। यह इनके प्रथम अवतारका एक प्रयोजन था। दूसरा प्रयोजन था—प्रेमरूप सगुण ब्रह्मसे प्रेम करना, जिसका सूत्रपात तो उन्हाने सती-अवतारमे किया, किंतु इसकी पूर्णता पार्वती-अवतारमे हुई। इसकी पूर्तिके लिये उन्हे फिर आना था।

विष्णु, ब्रह्मा और नारद आदि इसकी भूमिका तैयार करनेमे तत्पर थे। वे हिमालयके पास पहुँचे। सभी देवता और ऋषि उनके साथ थे। अपने द्वारपर समस्त देवा और ऋषियाको आया देख हिमालयको महान् हर्ष हुआ। वे अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उन्हे साष्टाङ्ग प्रणाम कर गद्गद वाणीसे बोले—'मैं आप लोगाका सेवक हूँ, आज्ञा प्रदान करे, कौन-सी सेवा करूँ?'

देवाकी ओरसे ब्रह्माने कहा—'महाभाग! महासती सतीके सम्बन्धमे तुम जानते ही हो। वे आदिशक्तिकी अवतार थीं। पितासे अनादृत होकर अपने धाम चली गयी हैं। यदि वे शक्ति तुम्हारे घर पुत्रीके रूपमे प्रकट हो जायँ, तो विश्वका कल्याण हो जाय।'

यह सुनकर हिमालयका हर्ष अत्यधिक बढ गया। वे बोले—'इससे बढकर सौभाग्यकी बात और क्या होगी? एतदर्थ जो कुछ करना हो, उसे मैं प्राणपणसे करूँगा।'

देवताआने उन्हे तपस्याकी विधि बतला दी और ढाढस दिया कि 'तुम तो तप करो ही हमलोग भी मिलकर भगवतीसे प्रार्थना करेगे कि वे तुम्हारे यहाँ पुत्रीके रूपमे अवतार ले।'

देवताआने अपने वचनको पूर्ण किया। वे एकजुट होकर आदिशक्तिको पुकारने लगे। विष्णुकी पुकार थी, ब्रह्माकी पुकार थी और नारद आदि सताकी पुकार थी, इसलिये शक्तिको प्रकट होना ही पडा। उनका श्रीविग्रह करोडा सूर्योके समान प्रकाशित हो रहा था। उस प्रकाशमे आह्लादकता थी। उनके रूप-लावण्यकी कोई तुलना नहीं थी। अद्भुत ममतामयी झाँकी थी। सब सतृप्त हो उठे।

प्रणाम ओर स्तुतिके बाद देवताआने कहा—'आपने सतीका अवतार लेकर विश्वका कल्याण किया था। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार दक्षसे अनादृत हाकर आप अदृश्य हो गयीं। हमलाग पुन आपका अवतार चाहते ह क्याकि एक तो भगवान् शकर आपके वियोगसे व्यथित रहते हैं, दूसरे विश्वका कल्याण अवरुद्ध हो गया है। आप माँ हैं, बालकोपर कृपा कर।'

शक्तिने कहा—'में अपने वालकाके हितार्थ अवश्य अवतार लूँगी। में यह भी जानती हूँ कि जवस मेंने शरीरका त्याग किया है, तबसे भगवान् शकर मेरी स्मृतिम निमग्न रहते हैं। दिगम्बरतक बन गय हैं। हिमालय मेरे लिये तपस्या कर रहे हं, मे उन्हींके यहाँ अवतार लूँगी। आपलोग निश्चिन्त रह।'

(२)

समय आनेपर आदिशक्तिने अपना वचन पूरा किया, वे मेनाके गर्भम आ गयीं। जवसे वे गर्भम आयीं तबसे मेना दिव्य तेजसे घिरी रहन लगीं। सभी दवता मेनाके यहाँ उपस्थित हुए। बडे उत्साहके साथ उन्हाने शक्तिकी स्तुति करके उन्हे प्रणाम किया। नवाँ महीना बीतनेपर शक्तिका प्राकट्य हुआ। उस समय उनका *अपना ही स्वरूप था। सभी देवताआने प्रत्यक्ष दर्शन* किया। वे हर्षोत्फुल्ल हाकर स्तुति करने लगे। माता मेनाको भी प्रत्यक्ष दर्शन हुए। वे आनन्दसे विह्वल हो उठीं। तत्पश्चात् शक्तिने शिशुका रूप धारण कर लिया। मेनाने जब शिशुको गोदम लिया तव उससे प्रसृत किरणासे वे खिल उठीं। जिस तरह शुक्लपक्षम चन्द्रमाकी कला और उसकी चाँदनी दिन-दिन बढती जाती है, उसी तरह पार्वती बढ रही थीं ओर उनका सोन्दर्य भी स्फुट हो रहा था। पार्वतीन जव पढना-लिखना प्रारम्भ किया, तब सभी विद्याएँ उन्ह अपने-आप स्मरण हा आयीं।

एक दिन देवर्षि नारद हिमालयके घर आये। पार्वती पिताके पास ही वेठी थीं। नारदने भविष्यवाणी की—'यह कन्या अपने प्रमसे शिवके आधे अङ्गकी स्वामिनी बन जायगी।' देवर्षि नारदके इस वचनने हिमालयका वहुत कुछ निश्चिन्त कर दिया। उन्होने दूसरा वर खोजना ही छाड दिया। वालिका वयस्क हो चुकी थी। इसी वीच भगवान् शकर हिमालयक गङ्गोत्तरी तीर्थम तपस्या करने लगे थे। सतीसे वियुक्त होनेपर व सब विपयाका परित्याग कर निरन्तर ब्रह्मानन्दम लीन हो लम्वी-लम्बी समाधि लगाये रहते। प्रमथगण चारा ओर वैठकर पहरा देते थे। उनमसे भी कुछ समाधि लगाते, शप पहरा देते।

हिमालयको जब पता चला कि भगवान् शकर गङ्गोत्तरीम आये हैं, तब अवसर देखकर पुत्रीके साथ

बहुमूल्य पूजाकी सामग्री लेकर वे वहाँ जा पहुँचे ओर

विधि-विधानसे उनकी पूजा की तथा पुत्रीको आदेश दिया कि सखियाके साथ निरन्तर भगवान्की सेवाम उपस्थित रहो। पार्वती फूल चुनकर कुश और जल लाकर, वेदीको अच्छी तरह धो-पाछकर तत्परतासे भगवान्की सेवा करने लगीं।

इधर तारकासुरसे त्रस्त देवताआको पता था कि उसका सहार भगवान् शकरके वीर्यसे उत्पन्न पुत्रस ही सम्भव है। अत वे पहलेसे ही इस प्रयत्नम लगे थे कि शकरका विवाह शीघ्र-से-शीघ्र हो जाय। पार्वतीको सेवा करते देख उन्ह अपने प्रयत्नकी सफलतापर विश्वास हो

गया। देवताआन कामदेवको समझाया कि तुम ऐसा उपाय करो कि शकरके मनमे पार्वतीके प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाय।

कामदेव इस कार्यमे तत्परतासे जुट गया। वह वसन्तके साथ भगवान्क स्थानपर आ धमका। अनवसर ही वसन्त पूर वैभवके साथ वहाँ शोभित होने लगा। इधर कामदेवने पूरी शक्ति लगाकर अपनी माया फैला रखी थी। अवसर पाते ही उसने भगवान् शकरपर अपने पञ्चकुसुम-बाण चला दिय। भगवान्क मनम पार्वतीके प्रति आकर्षण होने लगा। वे झट समझ गये कि यहाँ काई विघ्न करनेवाला आ गया है। इधर-उधर दृष्टि दौडानेपर उन्ह कामदेव दीख पडा। उसका वह अमाघ बाण माघ हो गया। उसकी दुश्चेष्टासे भगवान्को रोष हो

आया ओर उनक तीसरे नेत्रसे निकली लपटसे कामदेव तुरत जलकर भस्म हो गया। कामपत्नी रति मूर्च्छित हो गयी। देवता हाहाकार करने लगे। व भगवान्की स्तुति करते हुए बोले—'कामने तारकासुरके वधक लिये और समस्त दवताओक कष्ट मिटानेके लिये ही यह कार्य किया है, क्षुद्रबुद्धिसे नहीं, अत इसे क्षमा कर द। रति भी सज्ञाशून्य हो रही हे, उसे सान्त्वना द।'

भगवान् शकर ता आशुतोष ठहरे। उन्हाने रतिको यह कहकर शम्बरासुरके नगरमे भेज दिया कि वहाँ कामदेव 'प्रद्युम्न' बनकर उससे सदेह मिलेगा। पार्वती हतप्रभ हो गयीं। एक तो यह भयानक घटना उनके सामने घटी थी, दूसर देखते-देखते उनके प्रियतम अदृश्य हो गये थे। वे विवश हो रोती हुई घर लौटीं। प्रियतमके विरहसे वे बहुत ही व्याकुल हो उठी थीं। उन्ह कही न तो सुख मिल रहा था, न शान्ति। हृदयम हाहाकार उठ रहा था। समझानेपर समझ न पाती थीं। वे अपने रूप, जन्म ओर कर्मको कोसतीं। भगवान् शकरकी प्रत्यक चेष्टा उन्ह स्मरण हो आती आर उनक हृदयको मथ देती। वे बार-बार मूर्च्छित हो जाया करतीं।

(३)

इस विषम परिस्थितिम आशाकी किरण बनकर देवर्षि नारद उनके निकट पधार आर समझाने लगे—'तुमने शकरकी सवा ता अवश्य की किंतु इसम त्रुटियाँ रह गयीं। तुम्ह गर्व न करना था। उस नष्ट कर भगवान्ने तुमपर दया ही दिखलायी है। प्रमम गर्व कसा? अब तुम

तपस्या करो। सब ठीक हो जायगा। मैं उसका प्रकार बतला देता हूँ।'

गङ्गोत्तरीके शृङ्गितीर्थमें पार्वतीने घोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। पहला वर्ष तो उन्होंने फलाहारपर बिताया, फिर वे केवल पत्ता चबाकर रहने लगीं। इसके बाद उन्होंने पत्ता खाना भी छोड़ दिया। वे निरन्तर शिवका चिन्तन करती

रहतीं। इस प्रकार तीन हजार वर्ष बीत गये। पार्वतीकी तपस्या मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी। हिमालय और मेना अत्यन्त उद्विग्न हो गये। सभी पर्वत इकट्ठे हुए और पार्वतीको तपस्यासे विरत करने लगे। पार्वतीने बड़ी ही नम्रतासे उन्हें लौटाया। वे अपनी तपस्याको उग्र-से-उग्रतर और उग्रतर-से-उग्रतम बनाती चली गयीं। फलतः उस तपस्यासे सारा विश्व संतप्त हो उठा। सभी प्राणी बेचैन हो गये। तब विष्णु और ब्रह्मा अन्य देवों एवं ऋषियोंके साथ भगवान् शंकरके पास पहुँचे, किंतु वे समाधिमें लीन थे। तब नन्दिकेश्वरकी सहायता ली गयी। उन्होंने प्रभुसे बहुत धीरे-धीरे विश्वको संतापसे बचानेकी प्रार्थना की। प्रभुकी समाधि टूटी। भगवान्ने देवोंसे पूछा—'आपलोग कैसे आये हैं?' देवोंके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भगवान् शंकर विवाहके लिये तैयार हुए।

तदनन्तर परीक्षाओंका दौर चल पड़ा। सप्तर्षियोंको पार्वतीकी परीक्षाके लिये भेजा गया। तत्पश्चात् स्वयं भगवान् शंकरने जटिल ब्रह्मचारी बनकर उनकी कठोर परीक्षा ली। पार्वतीकी परीक्षा हो जानेके बाद उनके माता-पिताकी परीक्षा वैष्णव ब्राह्मणके वेषमें ली गयी। पार्वती तो परीक्षामें उत्तीर्ण होती गयीं, किंतु माता और पितापर उस परीक्षाने गहरा असर डाला। विवाहमें भयानक विघ्न उपस्थित हुआ था। सप्तर्षियोंके प्रभावसे वह विघ्न टल गया।

(४)

मङ्गलाचार आरम्भ हो गया। विश्वकर्माने दिव्य मण्डप और देवताओंको ठहरानेके लिये दिव्य अद्भुत भवनोंका निर्माण किया। मङ्गलपत्रिका पाकर भगवान् शंकरने देवर्षि नारदका स्मरण किया। देवर्षिने देवताओंको आमन्त्रित किया। समग्र ऐश्वर्यके साथ देवता आ उपस्थित हुए। ऋषि-मुनि, नाग, यक्ष, गन्धर्व सभी सजधज कर आये। शुभ मुहूर्तमें मङ्गलाचार एवं ग्रहपूजनके साथ बारातका प्रस्थान हुआ। विश्वका कल्याण करनेवाले बाबा विश्वनाथका वह विवाह धूमधामसे सम्पन्न हुआ। आज भी प्रत्येक हिन्दू प्रतिवर्ष इस विवाहके उपलक्ष्यमें व्रत रहते हैं और उत्सव मनाते हैं।

बहुत दिनोंके बाद शिव और शिवाका मिलन हुआ। पार्वतीसे छः मुखवाले कार्तिकेयजीका जन्म हुआ। कृत्तिका नामकी छः स्त्रियोंके द्वारा पाले जानेसे उनकी संतुष्टिके लिये उन्होंने छः मुख धारण किये और अपना नाम 'कार्तिकेय' (कृत्तिकाके पुत्र) रखा। इन्होंने देवताओंद्वारा अवध्य तारकासुरका उद्धार किया। पार्वतीके दूसरे पुत्र गणेश हैं। उबटन लगानेसे जो मैल गिरा, उसे हाथमें लेकर पार्वतीने एक बालककी प्रतिमा बनायी। बालक बड़ा सुन्दर बना था। देवीने उसमें प्राणका संचार कर दिया। वही प्रथम पूजनीय 'गणेश' हुए। पराम्बाने कार्तिकेयके द्वारा देवताओंके संकट दूर किये तथा गणाधीशके पदपर गणेशको नियुक्त कर दिया।

(५)

पार्वतीजीके अवतारका मुख्य प्रयोजन अभी पूरा नहीं हुआ था। सती-जन्ममें आत्मदान कर इन्होंने भगवान् शंकरसे 'श्रीरामचरितमानस' का निर्माण करा लिया था। 'लोमश' आदि विशिष्ट लोगोंको परम्परया वह प्राप्त भी हो

चुका था। अभी उसका व्यापक प्रचार न हो पाया था। अब उसे सबको सुलभ कराना शेष था, क्योंकि अवतारवादका रहस्य उनके दो जन्मोके अवतार और प्रश्नोत्तरद्वारा इसी ग्रन्थसे स्पष्ट होता है।

अतः सती-जन्मवाला अज्ञताका अभिनय पार्वतीने भी प्रारम्भ कर दिया। वे अवसर पाकर बोलीं—'नाथ! कल्प-वृक्षकी छायामे जो रहता है, वह दरिद्र नहीं रह जाता। आप ज्ञानके कल्पवृक्ष हैं और आपकी छायामे मैं रहती हूँ। मैं ज्ञानकी दरिद्रा हूँ। गरीबी मुझे सता रही है। उसे दूर कर दीजिये। मैं पृथ्वीपर माथा टेककर आपको प्रणाम कर रही हूँ और हाथ जोडकर विनती कर रही हूँ। पहले जन्मसे ही मैं आर्त हूँ और उस भ्रमसे आज भी आर्त हूँ। नाथ! मेरी इस आर्तिको दूर कीजिये। मैं आपकी दासी हूँ, मेरी अज्ञतापर क्रोध न कीजियेगा।'

'आपने बतलाया था कि दशरथनन्दन श्रीराम 'ब्रह्म' हैं। मैंने परीक्षा कर उन्हे ब्रह्म ही पाया, किंतु कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनसे बुद्धिको सतोष नहीं होता। जैसे—

(क) ब्रह्मको अज (अजन्मा) कहा जाता है, किंतु दशरथनन्दन श्रीरामका तो पितासे जन्म हुआ था, फिर वे 'अज' कैसे हुए?

(ख) ब्रह्मको 'ज्ञानरूप' कहा जाता है, किंतु दशरथनन्दन श्रीरामको यह भी ज्ञान नहीं था कि पेड-पौधे उनके प्रश्नका उत्तर दे सकगे या नहीं?

(ग) ब्रह्मको निराकार कहा जाता हे, किंतु दशरथनन्दन श्रीराम हाड-मास-चामके बने हुए स्पष्ट दिखलायी देते थे।

(घ) ब्रह्म 'अमर' होता है, किंतु दशरथनन्दन श्रीराम तब पृथ्वीपर थे, किंतु आज तो नहीं हैं?

(ङ) ब्रह्म 'व्यापक' माना जाता है, किंतु वे प्रायः एक जगह ही रहते थे, आँखसे ओझल होते ही फिर न दिखलायी पडे तो उन्हे व्यापक कैसे कहा जाय? यदि व्यापक होते तो दशरथका उनके वियोगमे मरना नहीं चाहिये था?

भगवतीने 'अज्ञता'का ऐसा सच्चा अभिनय किया कि लाख हाथ जोडनेपर भी भगवान् शकरको इनकी अज्ञतापर तरस आ ही गया। उन्होंने मीठी फटकार सुना ही दी—

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥
कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥
(रा०च०मा० १।११४।७-८, ११४)

इन्हीं प्रश्नोका उत्तर 'श्रीरामचरितमानस' है, जिन्हे बडी तपस्यासे भगवतीने प्राप्त किया। (ला०वि०मि०)

(३) महाकालीका अवतार

स्वारोचिष मन्वन्तरके समयकी बात है। चैत्रवशमे सुरथ नामके एक वीर राजा हुए थे, जो विरथके पुत्र थे। वे दानी, धार्मिक और सत्यवादी थे। पिताकी मृत्युके बाद राज्यके शासनकी बागडोर उनके हाथोमे आयी। वे योग्यतापूर्वक प्रजाका पालन और राज्यका सचालन करने लगे। एक बार नौ राजाओने पूरी तैयारीके साथ सुरथकी राजधानी कोलापुरीको चारो ओरसे घेर लिया। राजाने बडी वीरतासे शत्रुका सामना किया, किंतु उनकी सख्या न्यून होनेपर भी सयोगवश इन्हे पराजित होना पडा। शत्रुओने सुरथके राज्यको अपने अधिकारमे लेकर उन्हे कोलापुरीसे निकाल दिया। राजा अपने दूसरे नगरमे शत्रुओको खदेडनेके लिये सेनाका सगठन करने लगे, किंतु इनके मन्त्री आदिने इनके साथ विश्वासघात किया। वे क्षुद्र स्वार्थकी पूर्तिके लिये शत्रुओसे जा मिले। शत्रुओने यहाँ भी आक्रमण कर राजाको भगा दिया। विवश होकर सुरथको वनकी शरण लेनी पडी। वनमे उन्होंने मेधा मुनिका आश्रम देखा। मुनिके तपके प्रभावसे वहाँके हिंसक जीव अपनी हिंसा-वृत्तिको छोडकर परस्पर भाईचारेके भावसे रहते थे। मुनिके सुशासित शिष्य आश्रमकी शोभामे चार चाँद लगा रहे थे। राजा सुरथको वह आश्रम बहुत अच्छा जान पडा। अतः वे उस आश्रममे चले गये। मुनिवर मेधाने मीठे वचन आसन जल और भोजनसे

राजाका सुन्दर आतिथ्य किया। व वहाँ कुछ दिन रह गये।

एक दिन वे अपने दौभाग्यपर दु खी हो चिन्ता कर रहे थे। उस समय वे माहसे आविष्ट हाकर बहुत दु खी हो रहे थे। ठीक उसी समय उनके पास समाधि नामक एक वैश्य पहुँचा जो बहुत उदास था। राजान उससे पूछा—'भाई। तुम कौन हो? बहुत ही दु खी दिखायी दते हो। अपने दु खका कारण तो बताओ।' वेश्यने कहा—

'राजन्। मे धनाढ्य-कुलम उत्पन्न समाधि नामका वैश्य हूँ। अपने ही पुत्रा और स्त्री आदिने धनक लोभसे मुझे घरसे निकाल दिया है। विवश होकर म यहाँ चला आया हूँ, कितु यहाँ आनेपर भी पुत्र आदिका स्नेह मुझे पीडित कर रहा है। सोचता हूँ कि वे किस तरह रहते हागे? इच्छा होती है कि कोइ कह देता कि वे सब सकुशल हैं। उनका कुशल समाचार न पानसे मुझ रुलाई आ रही है।'

राजाने पूछा—'जिन लोगाने शत्रुताका व्यवहार किया, धन छीन लिया ओर घरसे बाहर निकाल दिया उनके प्रति तुम्हारा इतना स्नेह क्या हो रहा है?' वश्यन उत्तर दिया—'आपक इस प्रश्नका उत्तर मर पास नहीं है। आपका कहना यथार्थ है कि जो मरे प्रति शत्रुता कर रह हैं उनके प्रति मुझ स्नह नहीं करना चाहिय। उनकी आसक्ति त्यागकर भगवान्‌की ओर लगना चाहिये, कितु उलटे मेरा चित्त उधर ही लगा हुआ है, इसका क्या कारण ह, यह में नहीं जानता। साथ ही यह भी जाननकी इच्छा है कि उधरसे मरा मन किस प्रकार हट जाय इसके लिय क्या करूँ?'

इस प्रश्नका उत्तर न राजाके पास था और न वैश्यके पास। अत दोना मुनिक समीप उपस्थित हुए। दोनाका

समस्या एक ही थी। दोनो स्वजनाद्वारा उपेक्षित थे फिर भी दोना उन्हींकी ममतासे दु ख पा रहे थे। मुनिने कहा—'भगवान् विष्णुकी योगनिद्रारूपी जो महामाया हैं, उन्हींके द्वारा यह सारा ससार मोहित हो रहा है। वे ज्ञानियाके चित्तको भी बलपूर्वक खींचकर मोहमे डाल दिया करती ह, कितु विद्यारूपसे वे ही मुक्ति भी प्रदान करती हैं। उनकी शरणम जानेसे ही माहसे छुटकारा मिल सकता है।' राजाने पूछा—'ये महामाया कोन हैं? उनका आविर्भाव कसे हुआ? उनके चरित कान-कोन हैं?'

मुनि बाले—'प्रलयका समय था। एकार्णवक जलम सव कुछ डूबा हुआ था। शपशय्यापर भगवान् विष्णु यागनिद्राका आश्रय लेकर शयन कर रहे थे। उस समय उनके कानाक मेलस मधु और कैटभ नामके दा असुर उत्पन्न हुए। व दाना ब्रह्माजीको मारनक लिये तैयार हो गय। ब्रह्माजान देखा कि भगवान् तो सो रहे हैं मुझ बचावे

कौन? वे झट उस शक्तिकी स्तुति करने लगे, जो विष्णुभगवान्‌को सुला रही थीं। उन्होंने माता शक्तिसे विष्णुभगवान्‌को जगाने और असुरोंको मोहित करनेके लिये प्रार्थना की। ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर महामाया प्रकट हो गयीं। ये ही महामाया महाकाली नामसे प्रसिद्ध हैं। ये भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा हैं। ये तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इनका आविर्भाव भगवान् विष्णुके नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्ष:स्थलसे हुआ था। योगनिद्रासे मुक्त होते ही भगवान् विष्णु शय्यासे उठ बैठे। उनकी दृष्टि दोनों असुरोंपर पड़ी। वे दोनों ब्रह्माजीको खानेके लिये तैयार थे। भगवान् विष्णुने उन्हें रोका। फिर तो उनके साथ पाँच हजार वर्षतक युद्ध होता रहा, किंतु वे हारते नहीं दीखते थे। तब महामायाने उन्हें मोहित कर दिया। उनकी बुद्धि बदल गयी। वे सोचने लगे कि 'हम दोनों मिलकर जी-जानसे लड़ रहे हैं और यह अकेला है, फिर भी हार नहीं रहा है।' इस तरह उन दोनोंकी बुद्धिमें प्रतिस्पर्धाके बदले विष्णुके प्रति 'श्रद्धा' उत्पन्न हो गयी। तब उन्होंने विष्णुसे कहा—'हम दोनों तुम्हारे पराक्रमसे प्रसन्न हैं। अब तुम उचित वर माँग लो।' भगवान् विष्णुने कहा—'यदि तुम वर देना चाहते हो तो यह वर दो कि तुम दोनों मेरे हाथों मारे जाओ।' दैत्योंको अब अपनी भूल मालूम पड़ी, किंतु उन्होंने चालाकीसे काम लिया। उन्होंने देखा कि यहाँ कहीं स्थल तो है नहीं। सब जगह पानी-ही-पानी है। अतः कहा—'तुम हमें ऐसी जगहपर मारो, जहाँ जल न हो।' उन्होंने सोचा था कि यहाँ कहीं पृथ्वी है ही नहीं, ये मारेंगे कैसे? तबतक इन्होंने हम दोनों ही दबोच लिये। भगवती महामाया शक्ति तो 'श्रद्धा'के साथ-साथ 'बुद्धि' रूपमें भी स्थित हैं। वे भगवान् विष्णुकी बुद्धिमें स्थित हो गयीं, जिससे उन्होंने उन्हें अपनी विशाल जाँघोंपर पटककर उनके मस्तक काट गिराये। जाँघें तो जल

नहीं थीं। इस तरह ब्रह्माजीकी स्तुतिसे संतुष्ट हुई महाकाली, जो तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रारूपा हैं, प्रकट हुई थीं। (ला०बि०मि०)

(४) महालक्ष्मीका अवतार

महामुनि मेधाने राजा सुरथसे कहा—'राजन्! आदिशक्ति निर्विकार और निराकार हैं, फिर भी अपने दुःखी पुत्रोंका दुःख दूर करनेके लिये अवतार लिया करती हैं। उनके भक्तजन उनकी लीलाओंका गान करते रहते हैं।'

प्राचीनकालमें महिष नामक एक महापराक्रमी असुर उत्पन्न हुआ था, जो रम्भ नामक असुरका पुत्र था। वह दैत्योंका सम्राट् था। उसने युद्धमें सभी देवताओंको हराकर इन्द्रके सिंहासनपर अधिकार कर लिया। वह वहींसे तीनों लोकोंपर शासन करने लगा। पराजित देवता ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्माजी उन सभीको साथ लेकर वहाँ गये, जहाँ विष्णु और शंकर उपस्थित थे। उन्होंने महिषके अत्याचारोंको कह सुनाया, जिसे सुनकर विष्णु और शंकर दैत्योंपर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। क्रोधमें भरे विष्णुके मुखसे महान् तेज उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार शंकर, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवोंके शरीरोंसे भी तेज प्रकट हुआ। वह सब तेज मिलकर एकीभूत हो गया। उससे सारी दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। अन्तमें वह एक नारीके रूपमें परिणत हो गया।

वह नारी साक्षात् महिषमर्दिनी थीं। देवताओंने प्रसन्न होकर

उनकी स्तुति की और उन्हें आभूषण तथा अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। इसके बाद देवीने अट्टहासपूर्वक गर्जना की। इस गर्जनासे सम्पूर्ण आकाश प्रतिध्वनित हो उठा, तीनों लोकोंमें हलचल मच गयी पृथ्वी काँप उठी और समुद्र उछलने लगे। देवताओंने देवीके जयकारका नारा लगाते हुए गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति की।

उस अद्भुत शब्दको सुनकर दैत्योंने अपने-अपने हथियार उठा लिये। महिषासुर सभी दैत्योंको साथ लेकर उस शब्दको लक्ष्य करके दौड़ा। वहाँ पहुँचकर दैत्योंने देवीको इस रूपमें देखा कि उनके चरणोंके भारसे पृथ्वी दब रही है और उनके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित हो रहे हैं। फिर तो दैत्योंने युद्ध छेड़ दिया। महिषासुरका सेनापति चिक्षुर देवीपर टूट पड़ा। उधर चतुरङ्गिणी सेना लेकर चामर भी चढ़ आया। उदग्र महाहनु, बाष्कल और असिलोमा—ये सभी रथी सैनिकोंके अग्रणी थे। इनमें असिलोमाका प्रत्येक रोम तलवारके समान तीखा था। ये सभी युद्धस्थलमें आकर लोहा लेने लगे। इस तरह हाथीसवार और घुड़सवार सैनिक भी देवीपर चारों ओरसे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। देवीने खेल-खेलमें ही सभी अस्त्र-शस्त्रोंको काट गिराया। उस समय देवीके निःश्वास गण बनकर दैत्योंपर चढ़ धाये। तदनन्तर देवीने त्रिशूल, गदा और शक्तिकी वर्षा कर बहुत-से महादैत्योंका संहार कर डाला। दैत्योंकी सेनामें हाथी, घोड़े और असुरोंके शरीरसे इतना रक्त गिरा कि कई कुण्ड बन गये। जैसे आग तिनकेके ढेरको जला देती है, वैसे ही देवीने थोड़ी ही देरमें सारी दैत्य-सेनाका सफाया कर दिया। देवगण हर्षित होकर पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे।

अपनी सेनाका विनाश देखकर सेनापति चिक्षुर क्रोधसे तिलमिला उठा। फिर तो वह देवीपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। देवीने अपने बाणोंसे उसके बाणोंको काटकर उसके रथके घोड़ों और सारथियोंको भी मार गिराया। साथ ही उसके धनुष और ध्वजाको भी काट दिया। चिक्षुरने तलवारसे देवीपर प्रहार किया किंतु देवीके पास पहुँचते ही उस तलवारके टुकड़े-टुकड़े हो गये। चिक्षुरको अपने शूलपर बड़ा गर्व था। उसने उसे देवीपर चला दिया। वह आकाशमें प्रज्वलित हो उठा किंतु देवीने अपने शूलके प्रहारसे उसके सैकड़ों टुकड़े

कर दिये और चिक्षुरको भी यमलोकका पथिक बना दिया। देवीके शस्त्रप्रहारसे चामर और उदग्र भी धराशायी हो गये।

अब महिषासुर भैंसेका रूप धारण कर देवीके श्वाससे उत्पन्न हुए गणोंको त्रास देने लगा। तत्पश्चात् वह सिंहपर भी झपटा। यह देखकर देवीका क्रोध बढ़ गया।

महिषासुर उग्रसे उग्रतर होता जा रहा था। वह खुरोसे पृथ्वीको खोद रहा था और सींगोसे पहाडोको उखाड-उखाडकर देवीकी ओर फेक रहा था, साथ-ही-साथ गरज भी रहा था। उसके वेगसे पृथ्वीमे दरार पडने लगीं और सींगोके झटकेसे बादलोके टुकडे-टुकडे हो गये। उसने बडे वेगसे देवीपर आक्रमण किया। देवीने उसे पाशसे बाँध लिया। बँध जानेपर उसने भैंसेका रूप त्याग कर सिहका रूप धारण कर लिया। जब परमेश्वरीने उसका मस्तक काटना चाहा, तब वह तलवार लिये हुए पुरुषके रूपमे दौडा। देवीने बाण-वृष्टि कर पाशसे उसे बाँध लिया। तब वह हाथीका रूप धारण कर भगवतीके सिहको पकडकर खींचने लगा। भगवतीने उसकी सूँड काट डाली। तब उस दैत्यने पुन भैंसेका रूप धारण कर लिया। उसे पहलेकी तरह पैंतरेबाजी करते देख सारा जगत् त्रस्त हो गया। देवी देवताओको भयभीत देखकर उछलीं और उस महिषासुरपर चढ गयीं तथा उसे पैरसे दबाकर उसके कण्ठपर शूलसे आघात किया। महिषासुर पुन दूसरा रूप धारण कर आधा निकला ही था कि देवीने उसका आगे निकलना रोक दिया। जब वह उस दशामे भी पैंतर बदलने लगा तब देवीने उसका मस्तक तलवारसे काट गिराया। बची सेना सिरपर पैर रखकर भाग खडी हुई।

इस प्रकार देवताओको सताप देनेवाला महिषासुर नष्ट हो गया। देवगण स्तुति करने लगे। गन्धर्व जयगान गाने लगे। अप्सराएँ प्रसन्नतासे नाचने लगीं। सबने चन्दन, अक्षत, दिव्य पुष्प और धूप आदिसे प्रेमपूर्वक देवीकी पूजा की। तदनन्तर देवताओको वरदान देकर जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। (ला०बि०मि०)
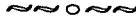
(५) महासरस्वतीका अवतार

महामुनि मेधाने राजा सुरथ और समाधि वैश्यको महासरस्वतीका चरित्र इस प्रकार सुनाया—

प्राचीनकालमे शुम्भ और निशुम्भ नामक दो परम पराक्रमी दैत्य उत्पन्न हुए थे। तीनो लोकोमे उनका भय व्याप्त हो गया था। उनके अत्याचारोसे प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। उन दोनो भाइयोने इन्द्रके राज्यको तो हथिया ही लिया था, यज्ञ-भागका भी अपहरण कर लिया था, सूर्य, चन्द्र, कुबर, यम और वरुणके अधिकार भी छीन लिये थे तथा देवताओको अपमानित कर स्वर्गसे निकाल दिया था। तब देवताओने भगवतीकी शरण ली। हिमालयपर जाकर उन्होने रुँधे कण्ठसे भगवतीकी स्तुति की। उनकी स्तुतिसे पार्वतीदेवी प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—'आपलोग किसकी

स्तुति कर रहे हैं?' इसी बीच उनके शरीरसे सुन्दर कुमारी प्रकट हो गयीं। वे बोलीं—'माँ! ये लोग मेरी ही प्रार्थना कर रहे हैं। ये शुम्भ और निशुम्भ दैत्योंसे अतिशय प्रताडित और अपमानित हैं, अत: अपनी रक्षा चाह रहे हैं।'

पार्वतीके शरीरकोशसे वे कुमारी निकली थीं, इसलिये उनका नाम कौशिकी पड़ गया। ये ही शुम्भ और निशुम्भका नाश करनेवाली महासरस्वती हैं। इन्हींके अन्य नाम उग्रतारा और महेन्द्रतारा भी हैं। माता पार्वतीके शरीरसे उत्पन्न होनेके कारण उनका नाम मातङ्गी भी है। उन्होंने समग्र देवताओंसे प्यारभरे शब्दोंमें कहा—'तुमलोग निर्भय हो जाओ। मैं स्वतन्त्र हूँ। अत: किसीका सहारा लिये बिना ही तुम लोगोंका कार्य कर दूँगी। तुमलोग अब निश्चिन्त हो जाओ।' इतना कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं।

एक दिन शुम्भ और निशुम्भके विश्वस्त सेवक चण्ड और मुण्डने कुमारी देवीको देखा। इतनी सुन्दरता उन्होंने इसके पहले कभी नहीं देखी थी। वे मोहित और आनन्दके कारण चेतनाहीन हो गये। चेतना आनेपर उन्होंने शुम्भ और निशुम्भसे कहा—'महाराज! हम दोनोंने एक कुमारीको देखा है। वह सिंहपर सवारी करती है और अकेले रहती है। उसमें इतना अधिक सौन्दर्य है जो आजतक कहीं नहीं देखा गया, वह तो नारीरत्न ही है।'

यह सुनकर शुम्भने सुग्रीव नामक असुरको दूत बनाकर देवीके पास भेजा। वह कुशल संदेशवाहक था। देवीके पास पहुँचकर उसने कहा—'देवि! शुम्भासुरका नाम विश्वमें विख्यात है। उन्हें कौन नहीं जानता? सम्पूर्ण विश्व आज उनके चरणोंमें है। उन्होंने जो संदेश भेजा है, उसे आप सुननेका कष्ट करें। उन्होंने कहा है—'मैं जानता हूँ कि तुम नारियोंमें रत्न हो और मैं रत्नोंकी खोजमें रहता हूँ। इसलिये तुम मुझे या मेरे भाईको अपना पति बना लो।'

देवी बोलीं—दूत! तुम्हारा कथन सत्य है, किंतु विवाहके सम्बन्धमें मेरी एक प्रतिज्ञा है। पहले उसे तुम सुन लो—'युद्धमें जो मुझे जीत ले, जो मेरे अभिमानको चूर कर दे, उसीको मैं पति बनाऊँगी।' तुम मेरी इस प्रतिज्ञाको उन्हें सुना दो। फिर इस विषयमें वे जैसा उचित समझें, करें। अच्छा तो यह होगा कि वे स्वयं यहाँ पधारें और मुझे जीतकर मेरा पाणिग्रहण कर लें।

सुग्रीवने कहा—'देवि! मालूम पड़ता है तुम्हारा गर्व तुम्हारी बुद्धिपर आरूढ हो गया है। भला, जिससे इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता हार गये, दानव, मानव, नाग हार गये, उससे तुम सुकुमारी अकेले कैसे लड़ सकोगी? जरा बुद्धिपर बल देकर सोचो। मैं तुम्हारे हितकी बात कह रहा हूँ। तुम मेरे साथ चली चलो। अपना अपमान मत कराओ।'

देवीने कहा—'दूत! तुमने अपनी समझसे मेरे हितकी बात कही है, परंतु इस बातपर भी तो विचार करो कि प्रतिज्ञा कैसे तोड़ी जाय? यद्यपि यह प्रतिज्ञा मैंने बिना सोचे-समझे की है, तथापि दूत! प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा होती है। अत: तुम लौट जाओ और आदरपूर्वक मेरा संदेश उन्हें सुना दो।'

असुर सुग्रीव देवीकी वक्तृत्व-शक्तिसे अत्यन्त विस्मयमें पड़ गया। फिर भी उसे 'छोटे मुँह बड़ी बात' समझकर अमर्ष हो आया और लौटकर उसने दैत्यराजसे सब बातें कह सुनायीं। दैत्यराज तो अमर्षका पुतला था ही। वह देवीका संदेश सुनकर एँड़ीसे चोटीतक क्रोधके मारे काँप

उठा और सेनापतिसे बोला—'धूम्रलोचन! तुम शीघ्र जाओ और उस दुष्टाको केश पकड़कर घसीटते हुए यहाँ ले आओ। वह संसारमें रहकर मेरा गौरव नहीं जानती। इसका यही दण्ड है। मालूम पड़ता है, वह कुछ देवताओंपर भरोसा कर बैठी है, अत: उसको मार-पीटकर घसीट

लाओ।' धूम्रलोचन साठ हजार सेनाके साथ वहाँ पहुँचा और सुकुमार अङ्गोवाली उस कुमारीको देखकर उसके बचपनेसे चिढकर बोला—'अरी! शुम्भके पास प्रसन्न मनसे चली चल, नहीं तो मैं झोटा पकडकर घसीटकर ले जाऊँगा, फिर आगे क्षमा न करूँगा।' देवी बोलीं—'सेनापति! तुम बलवान् हो, तुम्हारे पास सेना भी है। यदि तुम बलपूर्वक ले जाओगे, तो मैं क्या कर सकती हूँ।'

धूम्रलोचन आग-बबूला होकर झपटा, किंतु देवीके हुंकारते ही वह जलकर भस्म हो गया। सेनाका सफाया

सिंहने कर डाला। यह समाचार पाकर दैत्यराजकी क्रोधाग्नि भभक उठी। उसने चण्ड और मुण्डको देवीको लानेके लिये भेजा। वहाँ पहुँचकर उन दैत्योंने देवीको मुसकराती हुई पाया। फिर तो चारों ओरसे आक्रमण कर दिया गया। यह देखकर भयंकर क्रोधके कारण भगवतीका रंग काला हो गया और उनकी भृकुटीसे महाकाली प्रकट हो गयीं। वे चीतेके चर्मकी साडी और नरमुण्डोंकी माला पहने थीं। उनका शरीर हड्डियोंका ढाँचामात्र था। इस तरह वे बहुत ही भयानक दीख रही थीं। उन्हें देखकर दैत्योंके रोंगटे खडे हो गये। वे दैत्योंपर टूट पडीं। दैत्य-सेनामें भगदड मच गयी। वे घोडा-हाथीसहित योद्धाओंको मुखमें डालने लगीं, सभी अस्त्र-शस्त्रोंको चबाने लगीं तथा तलवारकी एक चोटसे सेनाकी पंक्तियोंका सफाया करने लगीं। इस प्रकार क्षणभरमें सारी सेना समाप्त हो गयी। उसके बाद उन्होंने चण्डको तलवारके एक ही आघातसे काट गिराया। मुण्ड भी उनके

रोषका शिकार हुआ। शेष सेना भयसे भाग खडी हुई। तत्पश्चात् महाकाली चण्ड और मुण्डके कटे मस्तकको हाथमें लेकर भगवतीके पास आयीं और विकट अट्टहास करती हुई बोलीं—'चण्ड-मुण्डको तो मैंने मार गिराया, अब शुम्भ-निशुम्भका वध तुम करोगी।' भगवतीने कहा—'तुमने चण्ड और मुण्डका संहार किया है, अतः तुम्हारा नाम 'चामुण्डा' भी होगा।'

चण्ड और मुण्डके मारे जानेपर शुम्भके क्रोधका ठिकाना न रहा। उसने उदायुध नामक छिआसी सेनापतियों, कम्बु नामवाले दैत्योंके चौरासी सेनापतियों, कोटिवीर्य कुलके पचास और धौम्रकुलके सौ सेनापतियोंको अपनी-अपनी सैनिक-टुकडियोंके साथ भेजा। कालक, दौर्हद, मौर्य और कालकेय भी भेजे गये। असंख्य सेनाओंद्वारा देवी चारों ओरसे घेर ली गयीं। तब देवीने माहेश्वरी, वैष्णवी, कार्तिकेयी, ऐन्द्री आदि शक्तियोंको अपने-अपने विशेष अस्त्र-शस्त्रोंके साथ प्रकट कर सेनाके संहारमें लगा दिया। थोडी ही देरमें सेनाका सफाया हो गया। शेष दैत्य प्राण लेकर भाग खडे हुए। तब अद्भुत पराक्रमी रक्तबीज युद्धके लिये आया। उसमें यह विशेषता थी कि उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरतीं, उतने नये रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। वह अपनेको अजेय समझता था, अतः बडे गर्वके साथ आकर युद्ध करने लगा। ऐन्द्रीके वज्र-प्रहार और वैष्णवीके चक्र-प्रहारसे उसके शरीरसे बहुत

अधिक मात्रामे रक्त पृथ्वीपर गिरा जिसस सारा जगत् रक्तबीजोसे भर गया। वे सब-क-सब मातृगणासे जूझ रहे थे। जितने मारे जाते थे उससे कई गुने वढ रहे थे। यह दृश्य देखकर देवतालाग घबरा गये। देवताओंको घबराया देखकर दवीने कालीसे कहा—'चामुण्ड! तुम गिरते हुए इनके रक्तकणोका चाटती जाओ ओर रक्तबीजोको उदरस्थ करती जाओ।' चामुण्डान थोडी ही देरम रक्तबीजाको समाप्त कर दिया। अन्तम दवीने रक्तबीजका मारा ओर चामुण्डाने उसक सार रक्तको पृथ्वीपर गिरनेस पहले ही मुखम डाल लिया।

कालीके मुँहम भी बहुत-से रक्तबीज उत्पन्न हुए परतु मॉ सबको चबा गयीं। इस तरह उस दुष्टकी सारी क्रियाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई और वह मारा गया। इधर मातृगणाका उद्धत नृत्य होने लगा।

निशुम्भ यह दृश्य देखकर क्रोधसे तिलमिला उठा। मातृगणासे युद्ध करते हुए उसन दवीको अपना लक्ष्य बनाया। शुम्भने भी निशुम्भका साथ दिया। दानो मिलकर देवीपर चढ आये। निशुम्भने तीक्ष्ण तलवारस दवीके वाहन सिहके मस्तकपर प्रहार किया। दवान क्षुरप्रसे उसकी तलवार और ढालका काट दिया। इसके बाद निशुम्भने शूल गदा और शक्ति नामक हथियार चलाय किंतु दवीन सबको काट गिराया। अन्तमे निशुम्भ फरसा लकर दौडा। देवीने बाणासे मारकर उसे धराशायी कर दिया।

भाईका गिरत दख शुम्भ क्रोधसे विह्वल हा गया। उसने अपन आठा हाथाम आठ दिव्यास्त्र लकर दवापर आक्रमण किया। देवीने शङ्ख और घटा बजाये। इनके शब्दने दैत्याके तेजका हर लिया। सिहकी दहाड भी दैत्याको दहला रही थी। उधर महाकालीने आकाशमें उछलकर पृथ्वीपर दोना हाथासे चाट की। इससे इतना भयानक शब्द हुआ कि दैत्य थर्रा उठे। शिवदूताने घार अट्टहास करके उस शब्दका और भी भयावना बना दिया।

शुम्भ इन कार्यकलापासे और क्षुब्ध हो उठा। उसने पूरी शक्ति लगाकर देवीपर शक्तिस प्रहार किया। देवीने उसे उल्कासे शान्त कर दिया। पुन देवीके चलाये बाणाको शुम्भने और शुम्भक चलाये बाणोका देवीने टुकडे-टुकडे कर दिये। तदुपरान्त देवाने एक प्रचण्ड शूलसे शुम्भपर आघात किया जिससे वह मूर्छित होकर गिर पडा।

इस बीच निशुम्भ होशम आ चुका था। उसने दस हजार हाथ उत्पन्न कर उनसे एक साथ दस हजार चक्र चलाय। उस समय देवी चक्रासे ढक-सी गयीं। क्षणमात्रमें ही उन्होने सभी चक्राको बाणासे काटकर धूलम मिला दिया। इसी तरह उसकी गदाएँ और तलवारे भी काट डाली गयीं। अब निशुम्भने शूल लेकर देवीपर धावा किया। दवीने झट अपने शूलसे उसे बींध दिया ओर वह पछाड खाकर पृथ्वीपर गिर पडा। शीघ्र ही उसकी छातीसे दूसरा महाकाय दैत्य 'खडी रह, खडी रह' कहते हुए निकला। देवी ठहाका मारकर हँस पडीं ओर तलवारके एक ही वारसे उसके दा टुकडे कर दिये।
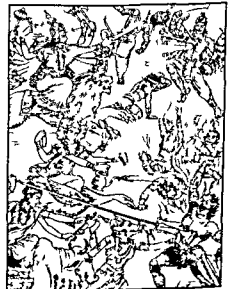
निशुम्भक मरनसे शुम्भको महान् दु ख हुआ, क्याकि वह उसका प्राणसे बढकर प्यारा भाई था। तत्पश्चात् वह अत्यन्त कुपित होकर बाला—'तू घमण्ड मत कर। तरा अपना काई बल नहीं है। तूने तो दूसराका सहारा ले रखा है।' जगदम्बान कहा—'मैं ता एक ही हूँ। मुझसे भिन्न दूसरी कोन है? ये जा और दिखायी दे रही हैं, वे मेरी ही भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं। देखा मैं अपनी शक्तियाका समेट रही हूँ।' इसक

बाद सब शक्तियाँ भगवतीम लीन हो गयीं। उस समय कवल देवी ही रह गयीं। तदनन्तर पुन दानाम युद्ध प्रारम्भ हो गया।

शुम्भने बहुत-से अस्त्र-शस्त्र चलाय किंतु उन्ह खेल-खेलम ही दवीने नष्ट कर दिया। दवीके द्वारा छोडे गये अस्त्राका शुम्भने भी काट डाला। फिर शुम्भने बाणाकी झडी लगा दी। दवीने उन्ह काटकर उसक धनुषका भी काट दिया। तब वह शक्ति लकर दौडा। भगवतीने उसकी शक्तिको भी नष्ट कर दिया। पुन वह ढाल और तलवार लेकर दौडा। दवीने बाणासे उन दानाके टुकड-टुकड कर दिये और उसक घोडे आर रथको भी ध्वस्त कर दिया। अब उसने मुद्गर लकर धावा किया। देवीने झट मुद्गरको काटकर चूर-चूर कर दिया। तब शुम्भने झपटकर देवीकी छातीम मुक्का मारा। बदलेम देवीने उसे एसा थपेडा जमाया कि वह भूतलपर जा गिरा। थोडी देर बाद वह फिर झपट्टा मारकर देवीको आकाशम उठा ले गया। फिर ता दानो निराधार आकाशम ही लडने लग। अन्तमे दवीने शुम्भका पकडकर चारा ओर घुमाकर बडे वगसे पृथ्वीपर पटक दिया। वह पुन उठकर दवीको मारने दौडा। तबतक देवीने शूलसे एसा वार किया कि उसक आघातसे उसके प्राणपखरू उड गये। उसक मरते ही चारा ओर प्रसन्नता छा

गयी। पहल जो उत्पातसूचक उल्कापात आदि हो रहे थे वे सब शान्त हा गये। दवगण हर्षित होकर पुष्प-वृष्टि करने लगे, गन्धर्व बाजे बजाने लगे आर अप्सराएँ नाचन लगीं।

मधामुनिने राजा सुरथ और समाधि वैश्यका शक्तिक अवतारक ये तीन चरित सुनाये तथा अन्तम बतलाया कि वे देवी नित्य, अज, अमर ओर व्यापक हैं, फिर भी अवतार लेकर विश्वका त्राण करती रहती हैं। वे ही सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और सहार करती हैं तथा विश्वको मोहित भी करती हैं, किंतु पूजा करनेपर धन पुत्र, बुद्धि दती हैं और मोहको दूर करती हैं। तुम दाना उन्हींकी शरणम जाओ।

तब दानान मुनिको प्रणाम किया और वे तपस्याके लिये तत्पर हो गये। एक नदीके तटपर जाकर दोनो महानुभावाने भगवताक दर्शनार्थ तपस्या प्रारम्भ कर दी। साथ ही मिट्टीकी मूर्ति बनाकर वे षोडशोपचार पूजा भी करने लगे। वे पहले भाजनकी मात्रा कम करते गये। फिर निराहार रहकर ही आराधना करने लगे। तीन वर्षोके बाद भगवतीने दर्शन दिया और उन्हे मुँहमाँगा वरदान प्रदान किया। उसके प्रभावसे सुरथने अपना राज्य प्राप्त किया और मरणोपरान्त यही सावर्णि मनु हुए। वैश्य महादयको ज्ञान प्राप्त हुआ जिससे उनकी मुक्ति हा गयी। (ला०बि०मि०)

(६) ज्योति-अवतार

एक बार देवताओ और दैत्यामे युद्ध छिड गया। इस युद्धम देवता विजयी हुए। देवताआके हृदयम अहकार उत्पन्न हो गया। प्रत्येक कहता कि 'यह विजय मेरे कारण हुई है। यदि में न होता तो विजय नहीं हो सकती थी।' माता बडी दयालु हैं। वे समझ गयीं कि यह अहकार देवताआको देवता न रहने देगा। इसी अहकारके कारण असुर असुर कहलाते हैं और वही अहकार इनम जड जमा रहा है। इसके कारण विश्वको फिर कष्टका सामना करना पडेगा। इसलिये वे एक तेज पुञ्जके रूपमे उनके सामने प्रकट हो गयीं। वैसा तेज आजतक किसीने देखा न था। सबका हक्का-बक्का बद हो गया। वे रुँधे गलेसे एक-दूसरेसे पूछने लगे—'यह क्या है ?' देवराज इन्द्रकी भी बुद्धि भ्रममे पड गयी थी।

इन्द्रने वायुको भेजा कि तुम जाकर उस तेज पुञ्जका पता लगाओ। वायुदेवता भी तो घमण्डसे भरे हुए थे। वे तेज पुञ्जके पास गये। तेजने पूछा—'तुम कौन हो ?' वायुने अभिमानके साथ कहा—'मैं वायुदेवता हूँ, प्राणस्वरूप हूँ। सम्पूर्ण जगत्का सचालन करता हूँ ?' तेजन वायुदवताक सामने एक तिनका रख दिया और कहा कि 'यदि तुम सब कुछ सचालन कर सकते हो तो इस तिनकेको चलाओ।' वायुदेवताने अपनी सारी शक्ति लगा दी, किंतु तिनका टस-से-मस न हुआ। वे लजाकर इन्द्रके पास लौट आये और कहने लगे कि 'यह कोई अद्भुत शक्ति है, इसक सामने तो में एक तिनका भी न उडा सका ?' फिर अग्नि भेजे गये। वे भी उस तिनकेको जला न सक और पराजित होकर लौट आये। तब इन्द्र स्वय उस तेजके पास पहुँचे। इन्द्रके पहुँचते ही वह तेज लुप्त हो गया। यह दखकर इन्द्र अत्यन्त लज्जित हो गये। उनका गर्व गल गया। फिर वे इसी तथ्यका ध्यान करने लगे ओर उस शक्तिकी शरणम गये, तब महाशक्तिने अपना स्वरूप अभिव्यक्त किया। वे अद्भुत सुन्दरी थीं, लाल साडी पहने थीं। उनके अङ्ग-अङ्गसे नवयौवन फूट रहा था। करोडा चन्द्रमाआसे बढकर उनम आह्लादकता थी। करोडो कामदेव उनके सौन्दर्यपर निछावर हो रहे थे। श्रुतियाँ उनकी सेवा कर रही थीं।

देवी बोलीं—'वत्स! मैं ही परब्रह्म हूँ, मैं ही परम ज्योति हूँ, मैं ही प्रणवरूपिणी हूँ, मैं ही युगलरूपिणी हूँ। मेरी ही कृपा और शक्तिसे तुमलोगाने असुरापर विजय पायी है। मेरी शक्तिसे ही वायुदेवता बहा करते हैं और अग्निदेव जलाया करते हैं। तुमलाग अहकार छाडकर सत्यको ग्रहण करो।' इस प्रकार देवता असुर होनेसे बच गये। उन्हे अपनी भूल मालूम हो गयी। तब उन्होने प्रार्थना की कि 'माँ! क्षमा करे, प्रसन्न हो जायँ और ऐसी कृपा कर, जिससे हमम अहकार न आवे। आपके प्रति हमारा प्रेम बना रहे।' (ला०बि०मि०)
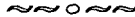
~~~ ० ~~~

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके! सकलशब्दमयी किल ते तनु।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसिजासु बहिःप्रसरासु च॥
इति विचिन्त्य शिवे! शमिताशिवे! जगति जातमयत्नवशादिदम्।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे॥

'हे जगदम्बिके! ससारम कोन-सा वाङ्मय ऐसा है जो तुम्हारी स्तुति नहीं है क्योंकि तुम्हारा शरीर तो सकलशब्दमय है। हे दवि! अब मेरे मनम सकल्पविकल्पात्मक रूपसे उदित होनेवाली एव ससारम दृश्यरूपसे सामने आनेवाली सम्पूर्ण आकृतियोम आपके स्वरूपका दर्शन होने लगा है। ह समस्त अमङ्गलध्वसकारिणि कल्याणस्वरूपे शिवे! इस बातको सोचकर अब बिना किसी प्रयत्नके ही सम्पूर्ण चराचर जगत्‌म मेरी यह स्थिति हो गयी है कि मेरे समयका क्षुद्रतम अश भी तुम्हारी स्तुति जप पूजा अथवा ध्यानसे रहित नहीं है। अर्थात् मेरे सम्पूर्ण जागतिक आचार-व्यवहार तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूपाके प्रति यथोचित रूपसे व्यवहृत होनेक कारण तुम्हारी पूजाके रूपम परिणत हो गये हैं।' [आचार्य अभिनवगुप्त]

~~~ ० ~~~

(७) शताक्षी, शाकम्भरी और दुर्गा-अवतारकी कथा

प्राचीन समयकी वात है, दुर्गम नामका एक महान् दैत्य था। उसका आकृति वडी ही भयकर थी। उसका जन्म हिरण्याक्षके वशम हुआ था तथा उसक पिताका नाम रुरु था। ब्रह्माजीक वरदानस दुर्गम महावली हा गया था। अपनी तपस्यासे ब्रह्माजीको प्रसन्नकर उसने चारा वेदाको अपने हाथम कर लिया और भूमण्डलपर अनक उत्पात शुरू कर दिये। वदाक अदृश्य हो जानपर सारी धार्मिक क्रियाएँ नष्ट हा गयीं, सभा यज्ञ-यागादि वद हा गये तथा देवताआको यज्ञभाग मिलना वद हो गया। मन्त्र-शक्तिक अभावम ब्राह्मण भी अपन पथसे च्युत हो गये। नियम, धर्म, जप, तप सन्ध्या पूजन तथा दवकार्य एव पितृकार्य—सभा कुछ लुप्त-स हो गय। धर्म-मर्यादाएँ विच्छृखलित हा गयीं। न कहीं दान होता था, न यज्ञ होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीपर सौ वर्षोतकके लिये वर्षा वद हा गया। तीना लोकाम हाहाकार मच गया। सब लाग दु खी हो गय। सवका भूख-प्यासका महान् कष्ट सताने लगा। कुआँ, वावली, सरोवर, सरिताएँ आर समुद्र भी जलस रहित हा गये। समस्त वृक्ष आर लताएँ भी सूख गयीं। प्राणी भूख-प्याससे वेचैन होकर मृत्युको प्राप्त होन लग।

दवताआ तथा भूमण्डलक प्राणियाकी एसी दशा दखकर दुर्गम वहुत खुश था, परतु इतनपर भी उसे चेन न था। उसन अमरावतीपर अपना अधिकार जमा लिया। देवता उसके भयस भाग खडे हुए, पर जायँ कहाँ, सब आर तो दुर्गमका उत्पात मचा हुआ था। तब उन्ह शक्तिभूता सनातनी भगवती महश्वरीका स्मरण आया—'**क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति।**' वे सभी हिमालयपर्वतपर स्थित महेश्वरी यागमायाकी शरणम पहुँचे। ब्राह्मण लाग भी जगत्-कल्याणार्थ देवीकी उपासना तथा प्रार्थना करनेक लिये उनकी शरणम आ गये।

देवता कहन लगे—'महामाये। अपनी सारी प्रजाकी रक्षा करो रक्षा करा। माँ। जैसे आपने शुम्भ, निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड, मधु-कैटभ तथा महियासुरका वधकर ससारकी रक्षा की ह—देवताआका कल्याण किया है, उसी प्रकार जगदम्बिक। इस दुर्गम नामक दुष्ट देत्यस हम सवकी रक्षा करा। माँ! घार अकाल पड गया हे, हम आपकी शरणम हैं। हे दवि। आप कोई लीला दिखाय, नहीं तो यह सारा ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जायगा। महेशानि। आप शरणागताकी रक्षा करनेवाली हैं, भक्तवत्सला हैं समस्त जगत्की माता हैं। माँ! आपम अपार करुणा है आपक एक ही कृपा-कटाक्षस प्रलय हो जाता हे, आपके पुत्र महान् कष्ट पा रह हैं, फिर ह मातेश्वरि। आज आप क्या विलम्ब कर रही हैं, हम दर्शन द।' एसी ही प्रार्थना ब्राह्मणाने भी की।

अपन पुत्राकी यह हालत माँसे देखी न गयी। भला पुत्र कष्टम हा ता माँको कसे सहन हो सकता ह, फिर देवी तो जगन्माता हैं, माताआकी भी माता हैं। उनके कारुण्यकी क्या सीमा? करुणासे उनका हृदय भर आया। वे तत्क्षण ही वहाँ प्रकट हा गयीं। उस समय त्रिलोकोकी ऐसी व्याकुलताभरी स्थिति दखकर कृपामयी माँकी आँखासे आँसू छलछला आये। भला दो आँखास हृदयका दु ख कैसे प्रकट होता, माँने सैकडा नेत्र बना लिये, इसीलिये आप शताक्षी (शत-अक्षी) कहलायीं। नीली-नीली कमल-जैसी दिव्य आँखाम माँकी ममता आँसू बनकर उमड आयी। इसी रूपम मातान सवको अपने दर्शन कराये। उनका मुखारविन्द अत्यन्त ही मनोरम था, वे अपने चारा हाथाम कमल-पुष्प तथा नाना प्रकारके फल-मूल लिये हुई थीं। करुणार्द्रहृदया भगवती भुवनेश्वरा प्रजाका कष्ट देखकर लगातार नौ दिन ओर नौ रात रोती रहीं। उन्हाने अपने सैकडा नेत्रोसे अश्रुजलकी सहस्रो धाराएँ प्रवाहित कीं।

देवी शताक्षीके सैकडा नेत्रासे जो अश्रुजलकी सहस्रा धाराएँ प्रवाहित हुईं, उनसे नो दिनातक त्रिलोकीम महान् वृष्टि होती रही। इस अथाह जलसे पृथ्वीकी सारी जलन मिट गयी। सभी प्राणी तृप्त हो गये। सरिताओ और समुद्रामे अगाध जल भर गया। सम्पूर्ण औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं। उस समय भगवतीने अनेक प्रकारक शाक तथा

स्वादिष्ट फल देवताओ तथा अन्य सभीको अपने हाथसे बाँटे तथा खानेके लिये दिये और भाँति-भाँतिके अन्न सामने उपस्थित कर दिये। उन्होने गौओके लिये सुन्दर हरी-हरी घास और दूसरे प्राणियोके लिये उनके योग्य भोजन दिया।

अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाको (भोज्य-सामग्रियो)-द्वारा उस समय देवीने समस्त लोकोका भरण-पोषण किया, इसलिये देवीका 'शाकम्भरी' यह नाम विख्यात हुआ।

देवी शाकम्भरीकी कृपासे देवता, ब्राह्मण और मनुष्योसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सतुष्ट हो गया। सबकी भूख-प्यास मिट गयी, उन सभीको अपनी माताके दर्शन हो गये। जीवलोक हर्षमे भर गया।

उस समय देवीने पूछा—'देवताओ! अब तुम्हारा कौन-सा कार्य मैं सिद्ध करूँ?' सभी देवता समवेत स्वरमे बोले—'देवि! आपने सब लोगोको सतुष्ट कर दिया है। अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहृत वेद लाकर हमे दे दीजिये।'

देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—'देवताओ! आपलोग अपने-अपने स्थानको जायँ, मैं शीघ्र ही उस दुर्गम दैत्यका वधकर वेदोको ले आऊँगी।'

यह सुनकर देवता बडे प्रसन्न हुए और वे देवीको प्रणामकर अपने-अपने स्थानोको चले गये। सब ओरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। तीनो लोकोमे महान् कोलाहल मच गया। इधर अपने दूतोसे दुर्गम दैत्यने सारी स्थितिको समझ लिया। उसके विपक्षी देवता फिर सुखी हो गये है, यह देखकर उस दैत्यने सेना लेकर न केवल स्वर्गलोकको बल्कि पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्षलोकको भी घेर लिया। एक बार पुन देवता सकटमे पड गये। उन्होने पुन मातासे रक्षाकी गुहार लगायी। माँ तो सब देख ही रही थीं, वे इसी अवसरकी प्रतीक्षामे थीं।

शीघ्र ही भगवतीने अपने दिव्य तेजोमण्डलसे तीनो लोकोको व्याप्तकर एक घेरा बना डाला और देवता, मनुष्य आदि उस घेरेमे सुरक्षित हो गये। स्वय देवी घेरेसे बाहर आकर दुर्गमके सामने खडी हो गयीं। दुर्गम भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये सनद्ध था। क्षणभरमे ही लडाई ठन गयी। दोनो ओरसे दिव्य बाणोकी वर्षा होने लगी। इसी बीच देवीके श्रीविग्रहसे काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी तथा मातङ्गी नामवाली दस महाविद्याएँ उत्पन्न हुईं, जो अस्त्र-शस्त्र लिये हुई थीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असख्य मातृकाएँ उत्पन्न हुईं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था तथा वे दिव्य आयुधोसे सुसज्जित थीं। उन मातृगणोके साथ दैत्योका भयकर युद्ध हुआ। मातृकाओने दुर्गम दैत्यकी सेनाको तहस-नहस कर दिया। दस दिन यह युद्ध चलता रहा। दैत्य-सेनाका विनाश देखकर ग्यारहवे दिन स्वय दुर्गम सामने आ डटा। वह लाल रगकी माला और लाल वस्त्र धारण किये हुए था। एक विशाल रथमे बैठकर वह महाबली दैत्य क्रोधके वशीभूत हो देवीपर बाणोकी बौछार करने लगा। इधर देवी भी रथपर आरूढ हो गयीं। उन्होने भी बाणोका कौशल दिखाना प्रारम्भ किया। युद्ध तो भयकर हुआ, किंतु भगवती कालरात्रिके सामने दुर्गम कबतक टिका रहता? देवीने एक ही साथ पद्रह बाण छोडे। चार बाणोसे रथके चारो घोडे गिर पडे। एक बाणने सारथीका प्राण ले लिया। दो बाणोने दुर्गमके दोनो नेत्रोको तथा दो बाणोने उसकी भुजाओको बींध डाला।

एक बाणने रथकी ध्वजाको काट डाला। शेष पाँच तीक्ष्ण बाण दुर्गमकी छातीमे जाकर घुस गये। रुधिर वमन करता हुआ वह दैत्य परमेश्वरीके सामने ही अपने

प्राणासे हाथ धो बैठा। उसके शरीरसे एक दिव्य तेज निकला जो भगवतीके शरीरमे प्रविष्ट हो गया। देवीके हाथसे उसका उद्धार हो गया। देवी भुवनेश्वरीने दुर्गम दैत्यका वध किया था, इसीलिये वे 'दुर्गा' इस नामसे प्रसिद्ध हो गयीं।

उन्होने वेदाको पुन देवताओं तथा ब्राह्मणाको समर्पित कर दिया। उस दैत्यके मर जानेपर त्रिलोकीका सकट दूर हो गया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी।

~~०~~

(८) देवी रक्तदन्तिकाकी लीला-कथा

देवी भुवनेश्वरीने विविध प्रकारकी अवतार-लीलाओंके द्वारा दुष्ट दैत्योका वध करके ससारको विनाशसे बचाया। वे देवी आर्तजनाका कष्ट दूर करनेवाली हैं। शुम्भ आदि महान् दैत्यासे त्राण पानेके बाद देवता लोग भगवती कात्यायनीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—हे देवि! तुम्हीं इस जगत्का एकमात्र आधार हो। सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। नारायणि! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो, कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोवाली एव गौरी हो, तुम्हे नमस्कार है—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।१०)

हे जगन्मात! हे अम्बिके! तुम अपने रूपको अनेक भागोमे विभक्त कर नाना प्रकारके लीला-रूप धारण करती हो, वैसा क्या अन्य कोई कर सकता है?

रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।३०)

इसलिये हे परमेश्वरि! आप सबके लिये वरदान देनेवाली होओ—

'लोकाना वरदा भव॥'

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।३५)

स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवीने अनेक लीला-रूपामे आविर्भूत होकर दुष्टासे त्राण दिलानेका वर देवताओंको प्रदान किया। उस समय देवीने अपने रक्तदन्तिका नामक लीला-अवतारके विषयमे बताया—

अत्यन्त भयकर-रूपसे पृथ्वीपर अवतार लेकर मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवोका वध करूँगी। उन भयकर महादैत्याको भक्षण करते समय मेरे दाँत दाडिम (अनार)-के फूलकी भाँति लाल हो जायँगे, तब स्वर्गमे देवता और मर्त्यलोकमे मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेगे—

स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सतत रक्तदन्तिकाम्॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।४५)

देवी रक्तदन्तिकाका स्वरूप यद्यपि बहुत भयकर है किंतु वह केवल दुष्टोके लिये ही है। भक्ताके लिये तो उनका सौम्य शान्त एव मनोरम लीला-रूप ही प्रकट होता है। वे सब प्रकारके भयाको दूर करनेवाली हैं। वे लाल रगके वस्त्र धारण करती हैं। उनके शरीरका रग भी लाल ही है और अङ्गाके समस्त आभूषण भी लाल रगके हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र नेत्र, सिरके बाल, तीखे नख और दाँत—सभी रक्तवर्णके हैं। इसीलिये उन्हे रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तकेशा, रक्तायुधा, रक्तनेत्रा, रक्तदशना तथा रक्तदन्तिका आदि नामासे कहा जाता है।

~~०~~

(९) देवी भीमाका आख्यान

देवी भगवतीने हिमालयपर रहनवाले मुनियाकी रक्षा करनेके लिय अपना 'भीम' नामक लीला-रूप धारण किया और राक्षसाका वध किया। उस समय मुनियाने भक्तिपूर्वक बड ही विनम्र-भावसे देवीकी स्तुति की। 'भीम'-रूप धारण करनेके कारण दवीका वह लीला-विग्रह 'भीमा' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने लीला-रूपके विषयम देवीने देवताआस कहा—

पुनश्चाह यदा भीम रूप कृत्वा हिमाचले॥
रक्षासि भक्षयिष्यामि मुनीना त्राणकारणात्।
तदा मा मुनय सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तय॥
भीमा देवीति विख्यात तन्म नाम भविष्यति।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।५०—५२)

भीमादवीका वर्ण नीला है। उनकी दाढे और दात चमकत रहते हैं। उनक नत्र बड-बड हैं। वे अपन हाथामें चन्द्रहास नामक खड्ग डमरु, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं व ही एकवीरा, कालरात्रि तथा कामदा भी कहलाती है।

~~~o~~~

(१०) भगवती भ्रामरीदेवीकी लीला-कथा

पूर्व समयकी बात है, अरुण नामका एक पराक्रमी दैत्य था। देवताआसे द्वेष रखनेवाला वह दानव पातालमे रहता था। उसके मनमे देवताआका जीतनेकी इच्छा उत्पन्न हा गयी अत वह हिमालयपर जाकर ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगा। कठिन नियमाका पालन करते हुए उसे हजारा वर्ष व्यतीत हो गय। तपस्याके प्रभावसे उसके शरीरसे प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं जिससे देवलोकक दवता भी घबरा उठे। वे समझ ही न सके कि यह अकस्मात् क्या हो गया। सभी देवता ब्रह्माजीके पास गय और सारा वृत्तान्त उन्ह निवेदित किया। देवताआकी बात सुनकर ब्रह्माजी गायत्री देवीको साथ ल हसपर बैठे आर उस स्थानपर गय जहाँ दानव अरुण तपम स्थित था। उसकी गायत्री-उपासना बडी तीव्र थी। उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो ब्रह्माजीने वर माँगनेक लिये कहा। देवी गायत्री तथा ब्रह्माजीका आकाशमण्डलम दर्शन करके दानव अरुण अत्यन्त प्रसन्न हो गया। वह वहीं भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम करन लगा—

उसने अनक प्रकारसे स्तुति की और अमर हानेका वर माँगा। परतु ब्रह्माजीन कहा—'वत्स! ससारम जन्म लेनेवाला अवश्य मृत्युको प्राप्त हागा अत तुम काई दूसरा वर माँगो।' तब अरुण बाला—'प्रभा! यदि एसी बात हैं तो मुझे यह वर दनेकी कृपा कर कि—'मैं न युद्धम मरूँ न किसी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, न किसी भी स्त्री या पुरुषसे ही मेरी मृत्यु हो आर दो पैर तथा चार परावाला कोई भी प्राणी मुझे न मार सक। साथ ही मुझे एसा बल दीजिये कि मै देवताआपर विजय प्राप्त कर सकूँ।'

'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और इधर अरुण दानव विलक्षण वर प्राप्तकर उन्मत्त हो गया। उसने पातालसे सभी दानवाको बुलाकर विशाल सेना तैयार कर ली आर स्वर्गलाकपर चढाई कर दी। वरक प्रभावसे देवता पराजित हा गये। दवलाकपर दानव अरुणका अधिकार हो गया। वह अपनी मायासे अनेक प्रकारक रूप बना लता था। उसने तपस्याक प्रभावसे इन्द्र सूर्य, चन्द्रमा, यम अग्नि आदि दवताआका पृथक्-पृथक् रूप बना लिया और सबपर शासन करने लगा।

दवता भागकर अशरणशरण आशुतोष भगवान् शकरको शरणम गये और अपना कष्ट उन्ह निवेदित किया। उस समय भगवान् शकर बडे विचारम पड गये। वे सोचने लगे कि ब्रह्माजीके द्वारा प्राप्त विचित्र वरदानसे यह दानव अजेय-सा हो गया है यह न तो युद्धम मर सकता है न किसी अस्त्र-शस्त्रसे, न तो इसे कोई दो पैरवाला मार सकता है न कोई चार पैरवाला, यह न स्त्रीसे मर सकता है आर न किसी पुरुषसे। व बडी चिन्ताम पड गय और उसक वधका उपाय सोचने लग।
~~~

उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम लोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो, वे ही तुम लोगोंका कार्य करनेमें समर्थ हैं। यदि दानवराज अरुण नित्यकी गायत्री-उपासना तथा गायत्री-जपसे विरत हो जाय तो शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जायगी।'

आकाशवाणी सुनकर सभी देवता आश्वस्त हो गये। उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिजीको अरुणके पास भेजा ताकि वे उसकी बुद्धिको मोहित कर सकें। बृहस्पतिजीके जानेके बाद देवता भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करने लगे।

इधर भगवती भुवनेश्वरीकी प्रेरणा तथा बृहस्पतिजीके उद्योगसे अरुणने गायत्री-जप करना छोड़ दिया। गायत्री-जपके परित्याग करते ही उसका शरीर निस्तेज हो गया। अपना कार्य सफल हुआ जान बृहस्पति अमरावती लौट आये और इन्द्रादि देवताओंको सारा समाचार बताया। पुनः सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे।

उनकी आराधनासे आदिशक्ति जगन्माता प्रसन्न हो गयीं और विलक्षण लीला-विग्रह धारणकर देवताओंके समक्ष प्रकट हो गयीं। उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। असंख्य कामदेवोंसे भी सुन्दर उनका सौन्दर्य था। उन्होंने रमणीय वस्त्राभूषणोंको धारण कर रखा था और वे नाना प्रकारके भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी मालासे शोभायमान थीं। वे चारों ओरसे असंख्य भ्रमरोंसे घिरी हुई थीं। भ्रमर 'ह्रीं' इस शब्दको गुनगुना रहे थे। उनकी मुट्ठी भ्रमरोंसे भरी हुई थी।

उन देवीका दर्शनकर देवता पुनः स्तुति करते हुए कहने लगे—सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली भगवती महाविद्ये! आपको नमस्कार है। भगवती दुर्गे! आप ज्योतिःस्वरूपिणी एवं भक्तिसे प्राप्य हैं, आपको हमारा नमस्कार है। हे नीलसरस्वती देवि! उग्रतारा, त्रिपुरसुन्दरी, पीताम्बरा, भैरवी, मातंगी, शाकम्भरी, शिवा, गायत्री, सरस्वती तथा स्वाहा-स्वधा—ये सब आपके ही नाम हैं। हे दयास्वरूपिणी देवि! आपने शुम्भ-निशुम्भका दलन किया है, रक्तबीज और वृत्रासुर तथा धूम्रलोचन आदि राक्षसोंको मारकर संसारको विनाशसे बचाया है। हे दयामूर्ते! धर्ममूर्ते! आपको हमारा नमस्कार है। हे देवि! भ्रमरोंसे वेष्टित होनेके कारण आपने 'भ्रामरी' नामसे यह लीला-विग्रह धारण किया है, हे भ्रामरीदेवि! आपके इस लीलारूपको हम नित्य प्रणाम करते हैं—

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या ततः स्मृता॥
तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः॥

(श्रीमद्देवीभागवत १०।१३।९९)

इस प्रकार बार-बार प्रणाम करते हुए देवताओंने ब्रह्माजीके वरसे अजेय बने हुए अरुण दैत्यसे प्राप्त पीडासे छुटकारा दिलानेकी भ्रामरीदेवीसे प्रार्थना की।

करुणामयी माँ भ्रामरीदेवी बोलीं—'देवताओ! आप सभी निर्भय हो जायँ। ब्रह्माजीके वरदानकी रक्षा करनेके लिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अरुण दानवने वर माँगा है कि मैं न तो दो पैरवालोंसे मरूँ और न चार पैरवालोंसे, मेरा यह भ्रमररूप छः पैरोंवाला है, इसीलिये भ्रमर षट्पद भी कहलाता है। उसने वर माँगा है कि मैं न युद्धमें मरूँ और न किसी अस्त्र-शस्त्रसे। इसीलिये मेरा यह भ्रमररूप उससे न तो युद्ध करेगा और न अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग करेगा। साथ ही उसने मनुष्य, देवता आदि किसीसे भी न मरनेका वर माँगा है, मेरा यह भ्रमररूप न तो मनुष्य है और न देवता ही। देवगणो! इसीलिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अब आप लोग मेरी लीला देखिये।' ऐसा कहकर भ्रामरीदेवीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको तथा अपने चारों ओर स्थित भ्रमरोंको भी प्रेरित किया, असंख्य भ्रमर 'ह्रीं-ह्रीं' करते उस दिशामें चल पड़े जहाँ अरुण दानव स्थित था।

उन भ्रमरोंसे त्रैलोक्य व्याप्त हो गया। आकाश, पर्वत-

शृग, वृक्ष वन जहाँ-तहाँ भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगाचर हान लगे। भ्रमराके कारण सूर्य छिप गया। चारा आर अन्धकार-ही-अन्धकार छा गया। यह भ्रामरीदेवीकी विचित्र लाला थी। बडे ही वेगसे उडनेवाले उन भ्रमराने दैत्याकी छाती छेद डाली। वे दैत्याके शरीरमे चिपक गये ओर उन्ह काटन लगे। तीव्र वेदनासे दैत्य छटपटाने लग। किसा भी अस्त्र-शस्त्रसे भ्रमराका निवारण करना सम्भव नहीं था। अरुण दैत्यन वहुत प्रयत्न किया, किंतु वह भा असमर्थ हा रहा। थाडे ही समयम जो दैत्य जहाँ था, वहीं भ्रमराके काटनसे मरकर गिर पडा। अरुण दानवका भी यही हाल रहा। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र विफल रह। देवाने भ्रामरी-रूप धारणकर ऐसी लाला दिखायी कि ब्रह्माजाके वरदानकी भी रक्षा हा गयी और अरुण दैत्य तथा उसकी समूची दानवा सेनाका सहार भी हो गया।

~~~ o ~~~

(११) देवी नन्दा (विन्ध्यवासिनी)-की लीला-कथा

श्रीमद्भागवतम वर्णित है कि कसक भयसे त्रस्त वसुदवजी भगवान् श्रीकृष्णको लेकर नन्दगोपक घरम गय। यहाँ बालकको यशोदाके समीप सुलाकर दवी यशादाकी कोखस आविर्भूत कन्याको लेकर मथुराम चल आये ओर पूर्व-प्रतिज्ञानुसार कसको सौंप दिया। उस समय क्रूर कस उस कन्याका जब मारनेके लिये उद्यत हुआ तब वह दिव्य कन्या उसक हाथसे छूटकर आकाशमे विराट्रूपम स्थित हा गयी। विराट्रूपा उन देवी योगमायाने दिव्य वस्त्रालकाराको धारण कर रखा था। उनके आभूषण रत्नासे जटित थे। उनकी आठ भुजाएँ थीं, जिनम वे धनुष बाण त्रिशूल ढाल, तलवार शख, चक्र तथा गदा धारण की हुई थीं। आकाशमे व एक दिव्य तेजोमण्डलस

व्याप्त थीं जिससे सभी दिशाएँ प्रकाशमान हा रही थीं। समस्त देवता सिद्ध गन्धर्व, विद्याधर एव ऋषि-महर्षि उनकी स्तुति करत हुए उनपर पुष्पवृष्टि कर रह थ। उनका वह विराट्रूप वसुदव-दवकीक लिय ता अत्यन्त साम्य तथा वरद था, किंतु कसका वे साक्षात् कालरूपा ही दिखलायी पड रही थीं।

उन योगमायान आकाशवाणीमे कहा—'अरे मूर्ख कस! तू मुझे क्या मारेगा? तुझे मारनवाला ता दूसरी जगह पैदा हो गया है अपना भला चाहता है तो भगवान्की शरण ले और अब निर्दोष बालकाकी हत्या न किया कर।' यह कहकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं और विन्ध्यपर्वतपर जाकर स्थित हो गयीं।

भगवती नन्दा अथवा विन्ध्यवासिनीदेवा भक्ताका सब प्रकारसे कल्याण करनेवाली हैं, इन्हे 'कृष्णानुजा' भी कहा गया है। वस्तुत ये भगवान्की साक्षात् योगमाया हैं। सम्पूर्ण योगैश्वर्योसे सम्पन्न हैं। इनकी करुणाकी कोई सीमा नहीं है। इनका वाहन सिह समग्र धर्मका ही विग्रह-रूप है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका राजराजेश्वरी भगवती विन्ध्यवासिनीका स्थान विन्ध्यपर्वतपर है। यह देवीका जाग्रत् शक्तिपीठ है। यहाँ दवी अपने समग्र रूपसे प्रतिष्ठित हैं और महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीके त्रिकोणक रूपम पूजित होती हे। इनकी भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा करनवालाके अधीन तीनो लोक हो जाते हैं, ऐसी कृपामयी दवी नन्दाका बार-बार नमन है—

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याजगत्त्रयम्॥

(श्रीदुर्गामूर्तिरहस्य १)

~~~ o ~~~

(१२) भगवती सरस्वतीकी अवतार-कथा

पूर्वकालमें भगवान् नारायणकी तीन पत्नियाँ थीं—लक्ष्मी गङ्गा और सरस्वती। तीनों ही बड प्रमस रहतीं और अनन्यभावसे भगवान्का पूजन किया करती थीं। एक दिन भगवान्की ही इच्छासे एसी घटना हो गयी जिससे लक्ष्मी, गगा और सरस्वतीको भगवान्क चरणोसे कुछ कालके लिये दूर हट जाना पडा। भगवान् जब अन्त पुरम पधारे उस समय तीना देवियाँ एक ही स्थानपर बेठी हुई परस्पर प्रमालाप कर रही थीं, भगवान्को आया देखकर तीना उनके स्वागतक लिये खडी हा गयीं। उस समय गङ्गाने विशष प्रेमपूर्ण दृष्टिस भगवान्की आर दखा। भगवान्ने भी उनका दृष्टिका उत्तर वैसी ही स्नेहपूर्ण दृष्टिम हँसकर दिया फिर व किसी आवश्यकतावश अन्त पुरस बाहर निकल गय। तब दवी सरस्वतीने गगाक उस बर्तावको अनुचित बताकर उनके प्रति आक्षेप किया। गगाने भी कठार शब्दाम उनका प्रतिवाद किया। उनका विवाद बढता देख लक्ष्माजीन दानाको शान्त करनकी चष्टा की। सरस्वतीने लक्ष्मीक इस बर्तावको गगाजीके प्रति पक्षपात माना आर उन्ह शाप दे दिया 'तुम वृक्ष और नदीके रूपमे परिणत हा जाआगी।' यह दख गगाने भा सरस्वतीको शाप दिया, 'तुम भी नदी हा जाआगा।' यही शाप सरस्वतीकी आरसे गगाको भी मिला। इतनहीमे भगवान् पुन अन्त पुरम लौट आये। अब दवियाँ प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं। उन्ह अपनी भूल मालूम हुई तथा भगवान्क चरणास विलग होनेक भयसे दुखी हाकर रोने लगीं।

इस प्रकार उनका सब हाल सुनकर भगवान्का खद हुआ। उनकी आकुलता दखकर वे दयासे द्रवीभूत हो उठे। उन्हाने कहा—'तुम सब लोग एक अशसे ही नदी हाओगी अन्य अशासे तुम्हारा निवास मरे ही पास रहेगा। सरस्वती एक अशसे नदी हागा। एक अशसे इन्ह ब्रह्माजीकी सेवाम रहना पडगा तथा शष अशास ये मेरे ही पास निवास करेगी। कलियुगक पाँच हजार वर्ष बीतनेके बाद तुम सबके शापका उद्धार हो जायगा। इसक अनुसार सरस्वती भारतभूमिम अशत अवतीर्ण होकर 'भारती' कहलायीं। उसी शरीरसे ब्रह्माजीकी प्रियतमा पत्नी हानेक कारण उनकी 'ब्राह्मी' नामसे प्रसिद्धि हुई। किसी-किसी कल्पम सरस्वती ब्रह्माजीकी कन्याके रूपम अवतीर्ण होती हैं ओर आजीवन कुमारीव्रतका पालन करती हुई उनकी सेवामे रहती हैं।

एक बार ब्रह्माजीने यह विचार किया कि इस पृथ्वीपर सभी देवताआके तीर्थ हैं, केवल मेरा ही तीर्थ नहीं है। ऐसा सोचकर उन्हाने अपन नामस एक तीर्थ स्थापित करनेका निश्चय किया और इसी उद्दश्यसे एक रत्नमयी शिला पृथ्वीपर गिरायी। वह शिला चमत्कारपुरक समीप गिरी, अत ब्रह्माजीने उसी क्षेत्रम अपना तीर्थ स्थापित किया। एकार्णवम शयन करनवाले भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल निकला जिससे ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ, वह स्थान भी वही माना गया है। वही पुष्करतीर्थक नामसे विख्यात हुआ। पुराणाम उसकी बडी महिमा गायी गयी है। तीर्थ स्थापित होनेके बाद ब्रह्माजीने वहाँ पवित्र जलसे पूर्ण एक सरावर बनानेका विचार किया। इसके लिये उन्हाने सरस्वतीदेवीका स्मरण किया। सरस्वतीदवी नदीरूपम परिणत होकर भी पापीजनाक स्पर्शके भयसे छिपी-छिपी पातालम बहती थीं। ब्रह्माजीके स्मरण करनपर वे भूतल आर पूर्वोक्त शिलाको भी भेदकर वहाँ प्रकट हुईं। उन्ह दखकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम सदा यहाँ मेरे समीप ही रहो मैं प्रतिदिन तुम्हारे जलम तर्पण करूँगा।'

ब्रह्माजीका यह आदश सुनकर सरस्वतीको बडा

भय हुआ । वे हाथ जोडकर बोलीं—'भगवन्! मैं जन-सम्पर्कके भयसे पातालमे रहती हूँ। कभी प्रकट नहीं होती, किंतु आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी मेरी शक्तिके बाहर है, अत आप इस विषयपर भलीभाँति सोच-विचारकर जो उचित हो, वैसी व्यवस्था कीजिये।' तब ब्रह्माजीने सरस्वतीके निवासके लिये वहाँ एक विशाल सरोवर खुदवाया। सरस्वतीने उसी सरोवरमे आश्रय लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने बडे-बडे भयानक सर्पोको बुलाकर कहा—'तुम लोग सावधानीके साथ सब ओरसे इस सरोवरकी रक्षा करते रहना जिससे कोई भी सरस्वतीके शरीरका स्पर्श न कर सके।'

एक बार भगवान् विष्णुने सरस्वतीको यह आदेश दिया कि 'तुम बडवानलको अपने प्रवाहमे ले जाकर समुद्रमे छोड दो।' सरस्वतीने इसके लिये ब्रह्माजीकी भी अनुमति चाही। लोकहितका विचार करके ब्रह्माजीने भी उन्हे उस कार्यके लिये सम्मति दे दी। तब सरस्वतीने कहा—'भगवन्! यदि मैं भूतलपर नदीरूपमे प्रकट होती हूँ, तो पापीजनोके सम्पर्कका भय है और यदि पातालमार्गसे इस अग्निको ले जाती हूँ तो स्वय अपने शरीरके जलनेका डर है।' ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हे जैसे सुगमता हो, उसी प्रकार कर लो। यदि पापियोके सम्पर्कसे बचना चाहो तो पातालके ही मार्गसे जाओ, भूतलपर प्रकट न होना, साथ ही जहाँ तुम्हे बडवानलका ताप असह्य हो जाय, वहाँ पृथ्वीपर नदीरूपमे प्रकट भी हो जाना। इससे तुम्हे शरीरपर उसके तापका प्रभाव नहीं पडेगा।'

ब्रह्माजीका यह उत्तर पाकर सरस्वती अपनी सखियो—गायत्री, सावित्री और यमुना आदिसे मिलकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं और वहाँसे नदीरूप होकर धरतीपर प्रवाहित हुईं। उनकी जलराशिमे कच्छप और ग्राह आदि जल-जन्तु भी प्रकट हो गये। बडवानलको लेकर वे सागरकी ओर प्रस्थित हुईं। जाते समय वे धरतीको भेदकर पाताल मार्गसे ही यात्रा करने लगीं। जब वे अग्निके तापसे सतप्त हो जातीं तो कहीं-कहीं भूतलपर प्रकट भी हो जाया करती थीं। इस प्रकार जाते-जाते वे प्रभासक्षेत्रमे पहुँचीं। वहाँ चार तपस्वी मुनि कठोर तपस्यामे लगे थे। इन्होने पृथक्-पृथक् अपने-अपने आश्रमके पास सरस्वतीको बुलाया। इसी समय समुद्रने भी प्रकट होकर सरस्वतीका आवाहन किया। सरस्वतीको समुद्रतक तो जाना ही था ऋषियोकी अवहेलना करनेसे भी शापका भय था अत उन्होने अपनी पाँच धाराएँ कर लीं। एकसे तो वे सीधे समुद्रकी ओर चलीं और चारसे पूर्वोक्त चारो ऋषियोको स्नानकी सुविधा देती गयीं। इस प्रकार वे 'पञ्चस्रोता' सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं और मार्गके अन्य विघ्नोको दूर करती हुई अन्तमे समुद्रसे जा मिलीं।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीने सरस्वतीसे कहा—'तुम किसी योग्य पुरुषके मुखमे कवित्वशक्ति होकर निवास करो।' ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर सरस्वती योग्य पात्रकी खोजमे बाहर निकलीं। उन्होने ऊपरके सत्यादि लोकोमे भ्रमण करके देवताओमे पता लगाया तथा नीचेके सातो पातालोमे घूमकर वहाँके निवासियोमे खोज की किंतु कहीं भी उनको सुयोग्य पात्र नहीं मिला। इसी अनुसधानमे पूरा एक सत्ययुग बीत गया। तदनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमे सरस्वतीदेवी भारतवर्षमे भ्रमण करने लगीं। घूमते-घूमते वे तमसानदीके तीरपर पहुँचीं। वहाँ महातपस्वी महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्योके साथ रहते थे। वाल्मीकि उस समय अपने आश्रमके इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेमे ही उनकी दृष्टि एक क्रौञ्च पक्षीपर पडी, जो तत्काल ही एक व्याधके बाणसे घायल हो पख फडफडाता हुआ गिरा था। पक्षीका सारा शरीर लहूलुहान हो गया था। वह पीडासे तडप रहा था और उसकी पत्नी क्रौञ्ची उसके पास ही गिरकर बडे आर्तस्वरमे 'चे-चे' कर रही थी। पक्षीके उस जोडेकी यह दयनीय दशा देखकर दयालु महर्षि अपनी सहज करुणासे द्रवीभूत हो उठे। उनके मुखसे तुरन्त ही एक श्लोक निकल पडा, जो इस प्रकार है—

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम्॥

यह श्लोक सरस्वतीकी ही कृपाका प्रसाद था। उन्होने महर्षिको देखते ही उनकी असाधारण योग्यता और प्रतिभाका परिचय पा लिया था, उन्हींके मुखमे

उन्होने सर्वप्रथम प्रवेश किया। कवित्वशक्तिमयी सरस्वतीकी प्ररणासे ही उनके मुखकी वह वाणी, जो उन्होने क्रौञ्चीकी सान्त्वनाक लिये कही थी, छन्दोमयी बन गयी। उनक हृदयका शाक ही श्लोक बनकर निकला था—'**शोक श्लोकत्वमागत ।**' सरस्वतीक कृपापात्र होकर महर्षि वाल्मीकि ही 'आदिकवि' क नामसे ससारम विख्यात हुए।

इस तरह सरस्वतीदेवी अनेक प्रकारकी लीलाआसे जगत्का कल्याण करती हैं। बुद्धि, ज्ञान और विद्यारूपसे सारा जगत् इनकी कृपा-लीलाका अनुभव करता है। ये मूलत भगवान् नारायणकी पत्नी हैं तथा अशत नदी और ब्राह्मीरूपम रहती हैं। ये ही गौरीके शरीरसे प्रकट होकर 'कौशिकी' नामसे प्रसिद्ध हुईं और शुम्भ-निशुम्भ आदिका वध करके इन्हाने ससारमे सुख-शान्तिकी स्थापना की। तन्त्र और पुराण आदिम इनकी महिमाका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

~~०~~

(१३) जगज्जननी लक्ष्मीका अवतरण

पद्मालया पद्मकरा पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्द पद्ममुखीं दवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥

देवीकी जितनी शक्तियाँ मानी गयी हैं, उन सबका मूल महालक्ष्मी ही हैं। य ही सर्वोत्कृष्ट पराशक्ति है। ये ही समस्त विकृतियाकी प्रधान प्रकृति हैं। सारा विश्वप्रपञ्च महालक्ष्मीस ही प्रकट हुआ है। चिन्मयी लक्ष्मी समस्त पतिव्रताआकी शिरोमणि हैं। एक बार उन्हाने भृगुकी पुत्रीरूपम अवतार लिया था इसलिये इन्ह 'भार्गवी' कहते है। समुद्र-मन्थनके समय ये ही क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं, इसलिये इनका नाम 'क्षीरोदतनया' अथवा 'क्षीरसागर-कन्या' हुआ। भगवान् जब-जब अवतार लेत हैं, तब-तब उनक साथ लक्ष्मीदेवी भी अवतीर्ण हो उनकी सेवा करती और उनकी प्रत्यक लीलाम योग दती हैं। इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—

महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी भुवनमोहिनी कन्या उत्पन्न हुई। वह समस्त शुभ लक्षणासे सुशाभित थी, इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। अथवा साक्षात् लक्ष्मी ही उस कन्याक रूपमे अवतीर्ण हुई थीं इसलिये वह लक्ष्मी कहलाया धारे-धारे बडी हानपर लक्ष्मीन भगवान् नारायणके गुण और प्रभावका वर्णन सुना। इसस उनका हृदय भगवान्म अनुरक्त हो गया। वे उन्हं पतिरूपम प्राप्त करनेकी इच्छासे समुद्रक तटपर जाकर घोर तपस्या करन लगीं। तपस्या करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये। तब इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करके लक्ष्मीदेवीके समीप आये और वर माँगनेको कहा। लक्ष्मीन कहा—'आप अपने विश्वरूपका मुझे दर्शन कराइये।' इन्द्र इसके लिये असमर्थ थे, अत लज्जित हाकर वहाँसे लौट गये। इसके बाद और कई देवता पधारे, परतु विश्वरूप दिखानेकी शक्ति न होनेके कारण उनकी भी कलई खुल गयी।

यह समाचार पाकर साक्षात् भगवान् नारायण वहाँ देवीको दर्शन देने और उन्हे कृतार्थ करनके लिये आये। भगवान्ने दवीसे कहा—'वर माँगो।' यह आदेश सुनकर देवीने भगवान्का गारव बढानके लिय ही कहा—'देवदेव! यदि आप साक्षात् भगवान् नारायण हैं तो अपने विश्वरूपका दर्शन दकर मेरा सदेह दूर कर दीजिये।' भगवान्ने विश्वरूपका दर्शन कराया और लक्ष्मीजीकी इच्छाके अनुसार उन्ह पत्नीरूपम ग्रहण किया। इसक बाद व वाले—'देवि! ब्रह्मचर्य ही सब धर्मोका मूल तथा सर्वोत्तम तपस्या है। तुमन ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक इस स्थानपर कठार तपस्या की है, इसलिय में यहाँ 'मूलश्रीपति' के नामसे विख्यात हाकर रहूँगा तथा तुम भी ब्रह्मचर्यरूपिणा 'मूलश्री' क नामसे यहाँ प्रसिद्धि प्राप्त कराागी।'

लक्ष्मीजोक प्रकट हानका दूसरा इतिहास इस प्रकार है—एक बार भगवान् शकरक अशभूत महर्षि दुर्वासा भूतलपर विचर रहे थे। घूमत-घूमत व एक मनाहर वनमे गय। वहाँ एक विद्याधर-सुन्दरी हाथमे पारिजात-पुष्पाकी

माला लिये खडी थी वह माला दिव्य पुष्पाकी बनी थी। उसकी दिव्य गन्धसे समस्त वन-प्रान्त सुवासित हो रहा था। दुर्वासाने विद्याधरीसे वह मनोहर माला माँगी। विद्याधरीन उन्ह आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला दे दी। माला लेकर उन्मत्त वषधारी मुनिन अपने मस्तकपर डाल ली और पुन पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे।

इसी समय मुनिको देवराज इन्द्र दिखायी दिये, जो मतवाले एरावतपर चढकर आ रहे थे। उनके साथ बहुत-से देवता भी थे। मुनिन अपने मस्तकपर पडी माला उतारकर हाथम ल ली। उसके ऊपर भौंरे गुजार कर रहे थे। जब दवराज समीप आये ता दुर्वासान पागलाकी तरह वह माला उनके ऊपर फक दी। देवराजने उसे लेकर ऐरावतके मस्तकपर डाल दिया। एरावतने उसकी तीव्र गन्धसे आकर्षित हो सूँडसे माला उतार ली और सूँघकर पृथ्वीपर फेक दी। यह दख दुर्वासा क्राधसे जल उठे और देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले—'अरे इन्द्र! ऐश्वर्यके घमण्डसे तुम्हारा हृदय दूपित हो गया है। तुमपर जडता छा रही है, तभी तो मरी दी हुई मालाका तुमने आदर नहीं किया है। वह माला नहीं, लक्ष्मीका धाम थी। माला लेकर तुमने प्रणामतक नहीं किया। इसलिये तुम्हारे अधिकारमे स्थित तीना लाकाकी लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायगी।' यह शाप सुनकर देवराज इन्द्र घबरा गये और तुरत ही ऐरावतसे उतरकर मुनिके चरणोम पड गये। उन्हाने दुर्वासाको प्रसन्न करनकी लाख चेष्टाएँ कीं, किंतु वे महर्षि टस-से-मस न हुए। उलटे इन्द्रको फटकारकर वहाँसे चल दिये। इन्द्र भी एरावतपर सवार हा अमरावतीको लोट गये। तव तीना लाकाकी लक्ष्मी नष्ट हो गयी।

इस प्रकार त्रिलाकीके श्रीहीन एव सत्त्वरहित हो जानपर दानवाने देवताआपर चढाई कर दी। देवताआमे अव उत्साह कहाँ रह गया था? सबने हार मान ली। फिर सभी देवता ब्रह्माजीकी शरणम गये। ब्रह्माजीने उन्ह भगवान् विष्णुकी शरणम जानकी सलाह दी तथा सवके साथ वे स्वय भा क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा आदि दवताआने वडी भक्तिस भगवान् विष्णुका स्तवन किया। भगवान् प्रसन्न होकर देवताआक सम्मुख प्रकट हुए। उनका अनुपम तजस्वी मङ्गलमय विग्रह देखकर देवताआने पुन स्तवन किया, तत्पश्चात् भगवान्ने उन्ह क्षीरसागरको मथनेकी सलाह दी आर कहा—'इससे अमृत प्रकट होगा। उसके पान करनेसे तुम सब लोग अजर-अमर हो जाओगे, किंतु यह कार्य है बहुत दुष्कर, अत तुम्ह दत्याको भी अपना साथी बना लेना चाहिये। में तो तुम्हारी सहायता करूँगा ही।'

भगवान्की आज्ञा पाकर देवगण दैत्यासे सन्धि करके अमृत-प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। वे भाँति-भाँतिकी ओपधियाँ लाये और उन्हे क्षीरसागरम छाड दिया, फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकिको नेती (रस्सी) बनाकर बड वेगसे समुद्रमन्थनका कार्य आरम्भ किया। भगवान्ने वासुकिकी पूँछकी ओर देवताआको और मुखकी ओर दैत्याको लगाया। मन्थन करते समय वासुकिकी नि श्वासाग्निसे झुलसकर सभी दैत्य निस्तेज हो गये और उसी नि श्वासवायुसे विक्षिप्त होकर बादल वासुकिकी पूँछकी आर बरसते थे, जिससे देवताआकी शक्ति बढती गयी। भक्तवत्सल भगवान् विष्णु स्वय कच्छपरूप धारण कर क्षीरसागरमे घूमते हुए मन्दराचलके आधार बने हुए थे। वे ही एक रूपसे देवताआम और एक रूपसे दैत्योमे मिलकर नागराजको खींचनेम भी सहायता देते थे तथा एक अन्य विशाल रूपसे, जो देवताओ ओर दैत्याको दिखायी नहीं देता था, उन्होने मन्दराचलको ऊपरसे दबा रखा था। इसके साथ ही वे नागराज वासुकिमे भी वलका सचार करते थे और देवताआकी भी शक्ति बढा रहे थे।

इस प्रकार मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे क्रमश कामधेनु, वारुणीदेवी, कल्पवृक्ष और अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसके बाद चन्द्रमा निकले जिन्ह महादेवजीने मस्तकपर धारण किया। फिर विप प्रकट हुआ जिस नागान चाट लिया। तदनन्तर अमृतका कलश हाथम लिय धन्वन्तरिका प्रादुभाव हुआ। इससे देवताआ और दानवाका भी वडी प्रसन्नता हुई। सवक अन्तम क्षीरसमुद्रसे भगवती लक्ष्मादेवी प्रकट हुईं। व खिले हुए

कमलके आसनपर विराजमान थीं। उनके श्रीअङ्गोकी दिव्य कान्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थी। उनके हाथमे कमल शोभा पा रहा था। उनका दर्शन करके देवता और महर्षिगण प्रसन्न हो गये। उन्होने वैदिक श्रीसूक्तका पाठ करके लक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। फिर देवताओने उनको स्नानादि कराकर दिव्य वस्त्राभूषण अर्पण किये। वे उन दिव्य वस्त्राभूषणोसे विभूषित होकर सबके देखते-देखते अपने सनातन स्वामी श्रीविष्णुभगवान्‌के वक्ष स्थलमे चली गयीं। भगवान्‌को लक्ष्मीजीके साथ देखकर देवता प्रसन्न हो गये। दैत्योको बडी निराशा हुई। उन्होने धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका कलश छीन लिया किंतु भगवान्‌ने मोहिनी स्त्रीके रूपसे उन्हे अपनी मायाद्वारा मोहित करके सारा अमृत देवताओको ही पिला दिया। तदनन्तर इन्द्रने बडी विनय और भक्तिके साथ श्रीलक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। उससे प्रसन्न होकर लक्ष्मीने देवताओको मनोवाञ्छित वरदान दिया। इस प्रकार ये लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी अनन्य प्रिया हैं। भगवान्‌के साथ प्रत्येक अवतारमे ये साथ रहती हैं। जब श्रीहरि विष्णु नामके आदित्यके रूपमे स्थित हुए तब ये कमलोद्भवा 'पद्मा' के नामसे विख्यात हुईं। ये ही श्रीरामके साथ 'सीता' और श्रीकृष्णके साथ 'रुक्मिणी' होकर अवतीर्ण हुई थीं। भगवान्‌के साथ इनकी आराधना करनेमे *अभ्युदय और नि श्रेयस दोनोकी सिद्धि होती है।*

~~~ ० ~~~

(१४) दस महाविद्याओके आविर्भावकी कथा

आद्यशक्ति भगवती जगदम्बा 'विद्या' और 'अविद्या'—दोनों ही रूपोमे विद्यमान हैं। अविद्यारूपमे वे प्राणियोके मोहकी कारण है तो विद्यारूपमे मुक्तिकी। भगवती जगदम्बा विद्या या महाविद्याके रूपमे प्रतिष्ठित हैं और भगवान् सदाशिव विद्यापतिके रूपमे।

दस महाविद्याओका सम्बन्ध मूलरूपसे देवी सती, शिवा और पार्वतीसे है। ये ही अन्यत्र नवदुर्गा चामुण्डा तथा विष्णुप्रिया आदि नामोसे पूजित और अर्चित होती हैं। दस महाविद्याओका अवतरण क्यो हुआ और कैसे हुआ, इस सम्बन्धमे महाभागवत (देवीपुराण)-मे एक रोचक कथा प्राप्त होती है, जो सक्षेपमे इस प्रकार है—

पूर्वकालकी बात है प्रजापति दक्षने एक विशाल यज्ञ-महोत्सवका आयोजन किया जिसमे सभी देवता ऋषिगण निमन्त्रित थे, किंतु भगवान् शिवसे द्वेष हो जानेके कारण दक्षने न तो उन्हे आमन्त्रित किया और न अपनी पुत्री सतीको ही बुलाया। देवर्षि नारदजीने देवी सतीको बताया कि तुम्हारी सब बहने यज्ञमे *आमन्त्रित हैं*, अत तुम्हे भी वहाँ जाना चाहिये। पहले तो सतीने मनमे कुछ देर विचार किया, किंतु फिर वहाँ जानेका निश्चय किया। जब सतीने भगवान् शिवसे उस यज्ञमे जानेकी अनुमति माँगी तो भगवान् शिवने वहाँ जाना अनुचित बताकर उन्हे जानेसे रोका, पर सती अपने निश्चय पर अटल रहीं। वे बोलीं—मैं प्रजापतिके यज्ञमे अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेवके लिये यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञको ही नष्ट कर दूँगी—

प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥'

(महाभागवतपुराण ८।४२)
~~~

—ऐसा कहते हुए सतीके नेत्र लाल हो गय। उनके अधर फडकने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया। क्रोधाग्निसे उद्दीप्त शरीर महाभयानक एव उग्र दीखन लगा। उस समय महामायाका विग्रह प्रचण्ड तेजसे तमतमा रहा था। शरीर वृद्धावस्थाको सम्प्राप्त-सा हो गया। उनकी केशराशि बिखरी हुई थी, चार भुजाआसे सुशोभित व महादेवी पराक्रमकी वर्षा करती-सी प्रतीत हो रही थीं। कालाग्निके समान महाभयानक रूपम देवी मुण्डमाला पहने हुई थीं और उनकी भयानक जिह्वा बाहर निकली हुई थी, सिरपर अर्धचन्द्र सुशोभित था और उनका सम्पूर्ण विग्रह विकराल लग रहा था। वे बार-बार भीषण हुकार कर रही थीं। इस प्रकार अपने तजसे देदीप्यमान एव भयानक रूप धारणकर महादवी सती घोर गर्जनाके साथ अट्टहास करती हुई भगवान् शिवके समक्ष खडी हो गयीं। देवीका यह भीषण स्वरूप साक्षात् महादेवके लिये भी असह्य हो गया। भगवान् शिवका धैर्य जाता रहा। वे भयभीत होकर सभी दिशाआमे इधर-उधर भागने लगे। देवीने 'मत डरो', 'मत डरो' कई बार कहा किंतु शिव एक क्षण भी वहाँ नहीं रुक। इस प्रकार अपने स्वामीको भयाक्रान्त देखकर दयावती भगवती सतीने उन्ह रोकनेकी इच्छासे क्षण भरम अपने ही शरीरस अपनी अङ्गभूता दस देवियाको प्रकट कर दिया, जा दसा दिशाआम उनक समक्ष स्थित हो गयीं। भगवान् शिव जिस-जिस दिशामे जाते थे भगवतीका एक-एक विग्रह उनका मार्ग अवरुद्ध कर देता था।

दवीकी ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ हैं, इनक नाम है—काली, तारा कमला, भुवनेश्वरी छिन्नमस्ता, षाडशी, त्रिपुरसुन्दरी, बगलामुखी, धूमावती तथा मातङ्गी।

जब भगवान् शिवने इन महाविद्याआका परिचय पूछा तो देवी बाली—

यय ते पुरत कृष्णा सा काली भीमलोचना।
श्यामवर्णा च या देवी स्वयमूर्ध्वं व्यवस्थिता॥
सय तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी।
सव्यतरेय या दवी विशीर्षातिभयप्रदा॥
इय दवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते।
वाम तवेय या दवी सा शम्भो भुवनेश्वरी॥
पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदिनी।
वह्निकोणे तवेय या विधवारूपधारिणी॥
सेय धूमावती देवी महाविद्या महश्वरी।
नैर्ऋत्या तव या दवी सय त्रिपुरसुन्दरा॥
वायौ यत्ते महाविद्या सेय मातङ्गकन्यका।
ऐशान्या षोडशी देवी महाविद्या महश्वरा॥
अह तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्व भय कुरु।
एता सर्वा प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु॥
भक्त्या सम्भजता नित्य चतुर्वर्गफलप्रदा।
सर्वाभीष्टप्रदायिन्य साधकाना महेश्वर॥

(महाभागवतपुराण ८।६५—७२)

कृष्णवर्णा तथा भयानक नेत्रावाली ये जो देवी आपके मामने स्थित हैं, वे भगवती '**काली**' हैं और जो ये श्यामवर्णवाली देवी आपके ऊर्ध्वभागम विराजमान हैं, वे साक्षात् महाकालस्वरूपिणी महाविद्या '**तारा**' हैं। महामते! आपके दाहिनी आर ये जो भयदायिनी तथा मस्तकविहीन देवी विराजमान हैं व महाविद्यास्वरूपिणी भगवती '**छिन्नमस्ता**' हैं। शम्भो! आपके बायीं ओर ये जो देवी हैं, वे भगवती '**भुवनेश्वरी**' हैं। जो देवी आपके पीछे स्थित हैं वे शत्रुनाशिनी भगवती '**बगला**' हैं। विधवाका रूप धारण की हुई ये जा देवी आपके अग्निकाणमें विराजमान हैं वे महाविद्यास्वरूपिणी महेश्वरी '**धूमावती**' हैं आर आपके नैर्ऋत्यकोणमे ये जो देवी हैं, वे भगवती '**त्रिपुरसुन्दरी**' हैं। आपके वायव्यकोणम जा देवी हैं, वे मातङ्गकन्या महाविद्या '**मातङ्गी**' हैं और आपक ईशानकोणम जो देवी स्थित हैं वे महाविद्यास्वरूपिणी महेश्वरी '**षोडशी**' हैं। मैं तो भयकर रूपवाली '**भैरवी**' हूँ। शम्भो! आप भय मत कीजिये। ये सभी रूप भगवतीके अन्य समस्त रूपासे उत्कृष्ट हा। महेश्वर! य दवियाँ नित्य भक्तिपूर्वक उपासना करनवाले साधक पुरुषाको चारा प्रकारके पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ काम और मोक्ष) तथा समस्त वाञ्छित फल प्रदान करती हैं।

भगवान् सूर्य और उनके लीलावतार

[भुवनभास्कर भगवान् सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता है—प्रकाशस्वरूप हे। छान्दोग्योपनिषद् (३। ३। १)-मे उन्हे ब्रह्म कहा गया है—'आदित्यो ब्रह्मति।' ये ब्रह्म लीलाभिनयके लिये देवमाता अदितिके पुत्र बनते है और अदितिके पुत्र होनेसे आदित्य भी कहलाते है। भगवान् सूर्य नित्य प्रात उदित होते है और नित्य साय अस्ताचलमे तिरोहित हो जाते है—अदृश्य हो जाते ह—'देवो याति भुवनानि पश्यन्' (ऋग्वेद १। ३५। २)। अन्य देवता तो यथासमय आवश्यकतानुसार प्रकट होते है और कार्य पूर्ण होनेपर लीला-सवरण कर लेते है, किंतु भगवान् सूर्यनारायण नित्य ही अवतरित होते हे और जीवोके शुभाशुभ कर्मोके साक्षी बनते हे। सन्ध्योपासना ओर भगवान् सूर्यका अभेद सम्बन्ध है। सूर्यरश्मियोमे प्राणशक्ति है, जीवनीशक्ति है, उसीके आश्रयसे इस चराचर जगत्की सत्ता बनी हुई है, कदाचित् भगवान् सूर्य नित्य अवतरित होकर प्रकाश न फैलाते तो सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार छा जाता, इससे बड़ी उनकी कृपा और क्या हो सकती है ? भगवान् सूर्य आरोग्यके अधिष्ठाता देव है। भगवान् सूर्यके लीलापरिकर-परिच्छदोका विस्तार बहुत है। राज्ञी (सज्ञा) और निक्षुभा (छाया)—ये उनकी शक्तिरूपा दो पत्नियाँ है। गरुडके छोटे भाई अरुण उनके रथके सारथि है। सूर्यलोकमे भगवान् सूर्यके समक्ष इन्द्रादि देवगण तथा ऋषिगण उपस्थित रहते ह। उनका रथ सप्त छन्दोमय अश्वोसे युक्त है। भगवान् सूर्यके साथ पिङ्गल नामक लेखक, दण्डनायक नामके द्वाररक्षक तथा कल्माष नामके दो पक्षी उनके द्वारपर खड़े रहते हे। दिण्डि उनके मुख्य सेवक ह, जो उनके सामने खड़े रहते हे। भगवान् सूर्यकी दस सताने है। सज्ञा नामक पत्नीसे वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छाया नामक पत्नीसे शनि, तपती, विष्टि (भद्रा) और सावर्णि मनु हुए। भगवान् सूर्यकी अवतरण-लीलाएँ बड़ी ही मनोरम तथा कल्याणप्रद ह। अदितिके पुत्रके रूपमे द्वादश आदित्योके अवतरणकी कथा प्रसिद्ध ही हे। वेदमे जो ३३ मुख्य देवता बताये गये है, उनमे द्वादशादित्य परिगणित ह। पुराणोमे सूर्यरथके वर्णन-प्रकरणमे बारह महीनोमे बारह आदित्य ही बारह नामोसे अभिहित किये गये है—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंश, भग, त्वष्टा तथा विष्णु—ये इनके नाम है। कहीं-कहीं इन नामोमे अन्तर भी मिलता है। काशीमे भी द्वादश आदित्य प्रतिष्ठित ह, जिनके नाम है—लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, खखोल्कादित्य, अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गङ्गादित्य तथा यमादित्य। ये सभी अवतार भक्तोके कल्याणके लिये भगवान्ने धारण किये थे। कभी द्रौपदीपर कृपा करनेके लिये उन्होने अवतरित होकर उन्हे अक्षयपात्र प्रदान किया तो कभी वे हनुमान्जीके गुरु बन गये। ग्रहोके रूपमे प्रतिष्ठित होकर वे आत्मतत्त्वका प्रतिनिधित्व करते है। सूर्यार्घ्यदान, सूर्योपस्थान तथा सूर्य-नमस्कारके रूपम वे पूजकके समक्ष रहते ह। इस प्रकार भगवान् सूर्यनारायण नित्य नूतन लीलाएँ करते रहते है। यहाँ आगे सक्षेपमे उनक कुछ लीलास्वरूपोका दिग्दर्शन प्रस्तुत है—सम्पादक]

द्वादशादित्य-अवतरणमीमांसा

(प० श्रीगौतमकुमारजी राजहस)

'अवतार' शब्द 'अव' उपसर्गपूर्वक 'तॄ' धातुम 'घञ्' प्रत्ययके सयोगसे निष्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है—अपनी स्थितिसे नीचे उतरना। इसके विभिन्न अर्थ भी ह, जैसे—उतार, उदय, प्रारम्भ, प्रकट होना इत्यादि। जैसे कोई अध्यापक किसी छात्रको पढाता है तो वह अध्यापक उस छात्रकी स्थितिम ही आकर पढाता है, तो यह छात्रके प्रति शिक्षकका अवतार हुआ। इसी प्रकार भगवान् मनुष्याको शिक्षा-दीक्षा सत्-असत् एव माक्षादिके ज्ञानके लिय उनकी रक्षाके लिये अवतार लेते हैं। उनका अवतार मानवावतारसे भिन्न होता हे। वे केवल लीला करते हैं अर्थात् मनुष्योका तरह माँके गर्भम आते हैं। गीताम भगवान् श्रीकृष्ण कहते ह कि मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूपवाला हाते हुए भी एव समस्त प्राणियाका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करक अपनी योगमायासे प्रकट हाता हूँ।

आदिगुरु शकराचार्य भी कहते हैं कि जब ससारको

क्षुब्ध कर देनेवाली धर्मकी ग्लानि होती है, उस समय जो लोकमर्यादाकी रक्षा करनेवाले लोकेश्वर, सतप्रतिपालक वेदवर्णित, शुद्ध एव अजन्मा भगवान् उनकी रक्षाके लिये शरीर धारण करते हैं, वे ही शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर व्रजराज श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्राके विषय हो—

यदा धर्मग्लानिर्भवति जगता क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपु सेतुधृगज ।
सता धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपति
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णाऽक्षिविषय ॥

(कृष्णाष्टक ८)

नित्य उदीयमान भगवान् भुवनभास्कर तो पोषणी शक्तिसे सम्पृक्त होकर नित्य ही जीवनमे प्राणाका सचार करते हैं और अन्धकारसे प्रकाशकी ओर चलनेकी प्रेरणा देते हैं। भगवान् सूर्य तो प्रत्यक्ष अवतार हैं। इसीलिये सन्ध्योपासनामे मूलरूपसे भगवान् सविताकी ही उपासना होती है। भगवान् सूर्यको ब्रह्मका साकार रूप कहा गया है—'**ॐ असावादित्यो ब्रह्म।**' (सूर्योपनिषद्)। ये ही प्रत्यक्ष अवतार सवितादेव स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण भूताकी आत्मा हैं—'***सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।***' सृष्टिके आदिदेव तथा आदि अवतार भगवान् सूर्य ही हैं। सूर्यसे ही वृष्टि होती है वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है और अन्न ही प्राणियोका जीवनाधार है—

'आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्न तत प्रजा ।'

(मनुस्मृति ३।७६)

इस प्रकार नित्य अवतरित होनेवाले भगवान् सूर्य सारी सृष्टिका पालन करते हैं।

जब सृष्टिक्रममे जगत्के समस्त प्राणी उस विराट् पुरुषसे उत्पन्न हुए, उसी क्रमम उनके नेत्रासे भगवान् सूर्यका प्रादुर्भाव हुआ—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो सूर्यो अजायत।'

(शु०यजु० ३१।४२)

यहाँपर एक प्रश्न उठता है कि भगवान् सूर्यका प्रादुर्भाव नेत्रसे ही क्यो हुआ, किसी और अङ्गसे क्यो नहीं हुआ?

कारण यह है कि वैशेषिक दर्शनानुसार तेजका लक्षण '**उष्णस्पर्शवत्तेज**' बतलाया गया है और यह दो प्रकारका होता है—नित्य एव अनित्य। परमाणुरूपसे तेज नित्य है और कार्यरूपसे अनित्य। पुन कार्यरूपसे शरीर, इन्द्रिय और विषयके भेदसे तीन प्रकारका है। तैजस शरीर सूर्यलोकमे है। रूपका प्रत्यक्ष ज्ञान करानेवाली चक्षु इन्द्रिय नेत्रके अदर काली पुतलीके अग्रभागमे रहती है अर्थात् उसमे तेज रहता है, इसीलिये भगवान् सूर्यका प्रादुर्भाव विराट् पुरुषके नेत्रासे हुआ। व्याकरणशास्त्रने 'आदित्य' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—'**अदितेः अपत्य पुमान्—आदित्य**'। यह बारह आदित्यो (सूर्यके भाग)-का समुदायवाचक नाम है। ये बारह आदित्य केवल प्रलयकालमे एक साथ उदित होते हैं। कलियुगका प्रलय इन्हीं बारह आदित्योके उदयसे होगा—

'दग्धु विश्व दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का ।'

(वर्णी० ३।६)

सूर्यका प्रादुर्भाव विराट् पुरुषके नेत्रोसे होनेके बाद लोकमर्यादाकी रक्षाके लिये उन्होने अदितिके गर्भसे जन्म लिया। ब्रह्मपुराणसे उद्धृत इनकी कथा सक्षिप्तरूपमे दी जा रही है—

प्रजापति दक्षकी साठ कन्याएँ हुईं जो श्रेष्ठ और सुन्दरी भी थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमसे तेरह कन्याओका विवाह दक्षने कश्यपजीके साथ किया था। अदितिने तीनो लोकोके स्वामी देवताओको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे बलाभिमानी दानव उत्पन्न हुए। विनता आदि अन्य स्त्रियोने भी स्थावर-जङ्गम भूतोको जन्म दिया। कश्यपके पुत्रोमे देवता प्रधान हैं, वे सात्त्विक हैं। इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओको यज्ञका भागी बनाया गया, किंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे। उन सबने मिलकर देवताओको खूब सताया और उनके राज्यादि नष्ट कर दिये। तब अदिति भगवान् सूर्यकी आराधना करने लगीं। भगवान् सूर्यने उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा—देवि!

आपकी जो इच्छाएँ हा, उनके अनुसार एक वर माँग लो। अदिति बोलीं—देव! अधिक बलवान् दैत्याने मेरे पुत्राके हाथस त्रिलोकीका राज्य छीन लिया है। गोपते! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा कर। अपने अशस मेरे पुत्राके भाई होकर आप उनके शत्रुओका नाश करे। भगवान् बोल—देवि! मैं अपन हजारव अशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्राके शत्रुआका नाश करूँगा।

—यो कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्हित हो गय और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेक कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं।

वर्षक अन्तम भगवान् सूर्यने अदितिके गर्भसे जन्म लिया और अपनी दृष्टिमात्रसे समस्त दैत्याका नाश किया। फिर तो देवताओके हर्षकी सीमा न रही। भगवान् सूर्य भी अपने स्थानपर अधिष्ठित होकर जीवाका आप्यायन करने लगे। ग्रह और नक्षत्राके अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाशसे नाना लोकाको प्रकाशित करते रहते हैं। य ज्योतिश्चक्रके अधिपति हैं और ग्रहाधिपतिके रूपम प्रतिष्ठित हैं। भगवान् सूर्य अपन सात अश्वासे सुशोभित एक चक्रवाल रथपर आरूढ होकर साता द्वीपा तथा साता समुद्रासमत निखिल पृथ्वीमण्डलपर भ्रमण करत हैं। अरुण इनका सारथि है। इनके रथके आगे बालखिल्यादि साठ हजार ऋषि इनकी स्तुति करते रहते हैं। भगवान् सूर्यका रथ प्रतिमास भिन्न-भिन्न आदित्य, ऋषि, गन्धर्व अप्सरा, यक्ष आदि गणासे अधिष्ठित रहता है। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण इन्द्र विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अश, भग, त्वष्टा तथा विष्णु—य द्वादश आदित्याके नाम हैं। यहाँपर प्रत्येकका विवरण सक्षिप्त रूपम दिया जा रहा है—

१-चैत्रमासम सूर्यक रथपर '**धाता**' नामक आदित्य निवास करते हैं।

२-वैशाखमासम '**अर्यमा**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर निवास करते हैं।

३-ज्येष्ठमासमे '**मित्र**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर रहते है।

४-आषाढमासम '**वरुण**' नामक आदित्य भगवान् भास्करके रथपर वास करत हैं।

५-श्रावणमासम '**इन्द्र**' नामक आदित्य भगवान् सूर्यके रथपर वास करते हैं।

६-भाद्रपदमासम '**विवस्वान्**' नामक आदित्य सूर्यक रथपर निवास करते हैं।

७-आश्विनमासम '**पूषा**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर निवास करत हैं।

८-कार्तिकमासम '**पर्जन्य**' नामक आदित्य सूर्यक रथपर वास करत हैं।

९-मार्गशीर्षमासम '**अश**' नामक आदित्यका सूर्यरथमे वास होता है।

१०-पौषमासम '**भग**' नामक आदित्य उनक रथपर निवास करते हैं।

११-माघमासम '**त्वष्टा**' नामक आदित्य उनक रथपर निवास करते हैं।

१२-फाल्गुनमासमे उनक रथपर '**विष्णु**' नामक आदित्य निवास करत हैं और य हो आदित्य अपन-अपन समयपर उपस्थित होकर वसन्त ग्रीष्म वर्षा तथा शरद् आदि षड् ऋतुओ के कारण बनत हैं।

चराचरके आत्मा—भगवान् सूर्य

(डॉ० श्रीआ३म् प्रकाशजी द्विवदी)

भगवान् सूर्यकी स्तुतिम भक्त प्रात काल प्राथना करते हुए कहता है कि हे भगवान् सूर्य! में आपक उस श्रेष्ठ रूपका स्मरण करता हूँ, जिसका मण्डल ऋग्वद है, तनु यजुर्वेद हे, किरण सामवद ह तथा जो ब्रह्मा आर शकरका रूप हे, जगत्की उत्पत्ति रक्षा आर नाशका कारण हें तथा अलक्ष्य और अचिन्त्य है। आप ब्रह्मा इन्द्रादि देवताआसे स्तुत आर पूजित हें वृष्टिक कारण एव अवृष्टिक हतु, ताना लोकाक पालनम तत्पर और सत्त्व आदि त्रिगुणरूप धारण करनवाले तथा गोआक कण्ठ-बन्धनको छुडानेवाले हं एस अनन्त शक्तिसम्पन्न आदिदेव सविताको मैं प्रात काल प्रणाम करता हूँ।

भगवान् सूर्यनारायण! आप प्रत्यक्ष दव ह। आप तीना लोका तथा चोदहा भुवनाके स्वामी हैं। चारा युगाम आपकी महिमा, गरिमा, प्रताप विश्वविदित है। **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च'** वेदवचनस आपकी प्रसिद्धि हे। आप चराचरकी आत्मा हैं। आप अन्धकारका नाश करनेवाले, राक्षसाका नाश करनेवाले, दु खा एव रोगासे छुटकारा दिलानेवाले, नेत्रज्यातिको बढानेवाले तथा आयुकी वृद्धि करनेवाले हें। आप हृदयरोग क्षयरोग एव पीलिया आदि रोगाको दूर करनवाले हैं। रोगाका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यका ऋग्वेद (१।५०।११)-म मन्त्र है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरा दिवम्।
हृद्रोग मम सूर्य हरिमाण च नाशय॥

अर्थात् हे हितकारी तेजवाले सूर्य! आप आज उदित होते हुए तथा ऊँचे आकाशम जाते समय मेरे हृदयके रोग तथा पाण्डुरोगको नष्ट कीजिये। आरोग्यकी कामना भगवान् सूर्यसे करनी चाहिय—**'आरोग्य भास्करादिच्छेत्'** यह मत्स्यपुराणका वचन सर्वविदित है। **'नमस्कारप्रियो भानुर्जलधाराप्रिय शिव '** भगवान् सूर्य नमस्कारप्रिय हैं। भगवान् शिवका जलधाराप्रिय होना प्रसिद्ध ही है।

सन्ध्या-गायत्रीका जप नित्य किया जाता है। गायत्रीमन्त्र मूलरूपसे सूर्यभगवान्‌की ही उपासना है। गायत्री वेदाकी माता हैं पापनाशिनी हैं। गायत्री सर्वदवमयी एव सर्ववदमयी हें।

भगवान् सूर्यका, उपासनाक वहुत-स मन्त्र प्रसिद्ध हें। सूर्यक १२ नाम, २१ नाम १०८ नाम और सहस्रनामका जप चाक्षुषोपनिषद्का पाठ तथा अष्टाक्षर-मन्त्र इत्यादि अनक मन्त्र शास्त्राम प्रसिद्ध हैं। गायत्रीमन्त्रसे सध्या करते समय सूर्यका अर्घ्य दनेका विधान है, लकिन जो गायत्रासे जलार्घ देनक अधिकारी नहीं हैं, व इस मन्त्रसे जल दे सकते ह—**'सूर्याय नम , आदित्याय नम , भास्कराय नम ।'** आदित्यहृदयस्तोत्रका पाठ भी प्रसिद्ध हे। किसी भी प्रकारसे भगवान् सूर्यका उपासना मनोवाञ्छित फल प्रदान करनवाली हे, परम कल्याणप्रद हे। भगवान् रामने आदित्यहृदयका पाठ कर रावणपर विजय प्राप्त की। आदित्यहृदयम कहा गया है कि भगवान् सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव महेन्द्र, वरुण काल, यम, सोम आदि अनेक रूपाम प्रतिष्ठित हैं। इनकी अर्चना-प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये, इसस मङ्गल होता है।

भगवान् सूर्य उदित हाते ही मृतप्राय अचेतन जगत्‌को चेतन बना देते हें। वे इष्टकी प्राप्ति तथा अनिष्टकी निवृत्तिके उपायाको प्रकाशित करनेवाले हैं। *'आत्मान विद्धि'* अपनको जानो—यह वेदका आदर्श है। सूर्यकी उपासना आत्माकी उपासना है। देवोपासककी अपेक्षा आत्मोपासक श्रेष्ठ कहा गया है। (शत०ब्रा०) सूर्योपासक ज्योतिष्मान् होता है।

सध्याम प्रार्थना की जाती है—**'पश्येम शरद शत जीवेम शरद शत शृणुयाम शरद शत प्रब्रवाम शरद शतमदीना स्याम शरद शत भूयश्च शरद शतात्।'** इसम सूर्यनारायणसे दीर्घ आयुके लिये प्रार्थना की गयी है तथा इन्द्रियाको सत्प्रेरणा देनेकी प्रार्थना की गयी है। भगवान् सूर्य ऊष्माके भण्डार है। अगर सूर्य न होते तो सारा जगत् ठण्डसे सिकुड जाता, चारो ओर वर्फ-ही-वर्फ हो जाती। अन्न जलका अभाव हो जाता और प्राणी जीवित न रहते।

सूर्य निष्कामभावसे कर्म करते हुए स्थावर-जङ्गम

सृष्टिका बिना भेदभावके मित्रके रूपम प्रकाशित एव पालन-पोषण करत हैं। सूर्यस बढकर कोई मित्र नहीं है। देहस्थित हमारी आत्माके विकासका मूल स्रोत अथवा उद्गम-स्थान सूर्यमण्डल ही है। बच्चा जब जन्म लता है तो उसे सूर्यदर्शन कराया जाता है ताकि उसक शरीरका ताप नियन्त्रित रह और उसकी बाह्यज्योति तथा अन्तर्ज्योति ठीक रहे। यह हमारा सस्कार है। सूर्य-उपासनासे तेज बल एव बुद्धि सुरक्षित रहते हैं।

भगवान् सूर्यसे प्रेरित होकर हमे निष्काम कर्म करत हुए ही जीवनयापन करना चाहिये।

मनुष्यका जीवन श्वासपर निर्भर है। इसीलिये सध्याम प्राणायामका विशेष महत्त्व है। प्रात सूर्यरश्मियोसे भावित शुद्ध प्राणवायु हमारे तेज-बलकी वृद्धि करता है, हम रोगरहित बनाता है।

प्रात काल सूर्यरश्मियोका सेवन करना चाहिये। इसस इच्छाशक्ति बलवती होती है। हम भगवान् सूर्यके सम्मुख प्रार्थना करनी चाहिय कि ह भगवन्! हम आपकी कृपास स्वस्थ हो रह हैं, शक्ति प्राप्त कर रहे हैं। आपकी कृपास हम सदा पूर्ण स्वस्थ रहगे। इसस हमारे हृदयम शुभ शिवसकल्प जागेगा, शुभ तरङ्ग हृदयम उठगी, हमारा जीवन सुन्दर बनगा। मनोविज्ञानका नियम है—जैसा हम सोचते ह, तरङ्गोके प्रभावस वैसा हो बन जात हैं। जो विचार हम करत हैं, व ही विचार लौटकर हमारे पास आते हैं। अत शुभप्रेरणादायी मङ्गल विचार ही समाजम वितरित करने चाहिय। शाश्वत नियम है कि जैसा बीज हम बोते हैं वे वैसा ही फल दते हैं। अन्तरके शुभ विचार हम जाग्रत् एव चैतन्य बना दगे। हम सत्, चित्, आनन्दका अनुभव होगा। वर्तमानको सुधारगे तो लोकम सुयश और परलोकम सद्गतिकी प्राप्ति होगी। हमारा आचरण दिव्य बनेगा। हमारा सकल्प दृढ होगा। भगवान् सूर्यनारायण! आप नित्य अवतरित होकर अमृतका दान देनेवाले हैं। आपको कोटिश नमस्कार ह प्रणाम ह। प्रार्थना है—'असतो मा सद् गमय।' 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' 'मृत्योर्मा अमृत गमय।'

~~o~~

प्रत्यक्ष अवतार—भुवनभास्कर

(आचार्य प० श्रीबालकृष्णजी कौशिक, पचाधिस्नातक धर्मशास्त्राचार्य, एम्०ए० (सस्कृत, हिन्दी) एम्०कॉम० एम्०एड्०)

शुक्लयजुर्वेद (७।४२)-म प्रत्यक्ष दव भगवान् भुवनभास्करकी महिमाके विषयम कहा गया ह—

चित्र देवानामुदगादनीक चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष* सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

अर्थात् जो तेजोमयी किरणाके पुञ्ज हैं, मित्र वरुण अग्नि आदि देवताओ एव समस्त जगत्के प्राणियोके नेत्र ह और स्थावर तथा जङ्गम—सबके अन्तर्यामी आत्मा ह, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकको अपने प्रकाशस प्रकाशित करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हो रहे हैं।

भगवान् सूर्यनारायण सम्पूर्ण विश्वम प्रत्यक्ष देवता हैं। सूर्यदेवसे ही इस सृष्टिके भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं और उन्हींसे प्राणिमात्र अपनी जीवन-प्रक्रियाको गतिशील रखते हैं।*

ऋषियोकी यज्ञ-प्रक्रियाके अनुशास्ता सूर्यदेव ही है। सूर्यसे यज्ञ, यज्ञस मेघ, मेघोस वर्षा, वर्षासे अन्न-फल-जल तथा ओषधि आदि उत्पन्न होते हैं। अन्नसे अन्नमयकोश, बल-वीर्य एव चेतना, आत्माका आविर्भाव होता है। बिना सूर्यके सृष्टिचक्र जीवचक्र (जीवन-मरण), ऋतुचक्र दैनिक चक्र वनस्पति, ओषधि पेड-पौधे अन्न फल, फूल आदिकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। माता अदितिके पुत्र ही आदित्य कह गये हैं—'अदितिपुत्र आदित्य ।' आदित्यसे वायु, भूमि, जल प्रकाश-ज्योति, दिशाएँ, अन्तरिक्ष, दव वेद आदि उत्पन्न होते हैं।

* सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते। सूर्याद्यज्ञ पर्जन्योऽन्नमात्मा' । आदित्याद्वायुर्जायते। आदित्याद्भूमिर्जायते। आदित्यादापो जायन्त। आदित्याज्ज्योतिर्जायते। आदित्याद् व्योम दिशो जायन्ते। आदित्याद्देवा जायन्ते। आदित्याद्वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डल तपति।' (सूर्योपनिषद्)

भगवान् भास्कर तमसाच्छन्न अन्धकारमय भूमण्डलपर अमृतमय किरणासे प्रकाश करते हुए देदीप्यमान स्वर्णिम रथपर आरूढ हाकर चोदह भुवनोको देखनेके लिये आते हैं—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृत मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

(यजु० ३३।४३)

ऋषिलोग सूर्योदय, सूर्यास्त तथा मध्याह्नके समय त्रिकाल-सन्ध्याद्वारा सूर्यदेवताकी सतत उपासना करते रह हैं। गायत्रीमन्त्र वस्तुत सूर्यदेवकी ही आराधना है। सविता दवताकी उपासना ही इसमे मुख्य है।

सूर्यगायत्री-मन्त्रम भी सहस्ररश्मिप्रवाहक सूर्यदेवस कल्याणकी प्रार्थना की गयी है—

आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि। तन्न सूर्य प्रचोदयात्॥

ऋषिगण दीर्घायुष्य-प्राप्ति, दृष्टि, श्रवणशक्ति, वाक्-शक्ति ओर धन-धान्यकी सम्पन्नताके लिये भी सूर्यदेवसे ही प्रार्थना करते हैं—

ॐ तच्चक्षुर्देवहित पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरद शत जीवेम शरद शत॰ श्रृणुयाम शरद शत प्र ब्रवाम शरद शतमदीना स्याम शरद शत भूयश्च शरद शतात्॥

(यजु० ३६।२४)

पञ्चदेव-उपासनामे भी सूर्यदेवकी आराधना होती है। सूर्यनारायणकी अमृतमय किरण आरोग्यदायक, जीवाणु-कीटाणु-विषाणु आदिकी नाशक हैं। आजकल वैज्ञानिक भी सूर्य-किरणोसे विटामिन-डी प्राप्त होना स्वीकारत हैं। आयुर्वेदमे सूर्यस्नान या धूपस्नान, सूर्यकिरणस्नान प्रशस्त है। सूर्य-किरणासे रग-चिकित्सा भी की जाती है।

भगवान् सूर्यनारायणके एक ध्यान-स्वरूपमे बताया गया है कि सविता-मण्डलक मध्यम स्थित रहनेवाले भगवान् सूर्यनारायण कमलासनपर विराजमान हैं। वे केयूर, मकराकृत कुण्डल, किरीट तथा हार धारण किये हैं। उनका शरीर स्वर्णिम कान्तिसे सम्पन्न है और वे हाथामे शङ्ख तथा चक्र धारण किये हुए हैं—

ध्येय सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायण सरसिजासनसनिविष्ट।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्र॥

मनुष्यमात्रको सूर्यनारायणदेवकी नित्य आराधना करनी चाहिये। सूर्यदेवको प्रात जलार्घ्य या दुग्धार्घ्य लाल पुष्प, लाल चन्दन एव अक्षतस दना चाहिय। आदित्यहृदयस्तोत्र-पाठ, रविवारका व्रत एव सन्ध्योपासना सूर्यदवताको अत्यन्त प्रिय हैं। अर्घ्य प्रदान करनका एक मन्त्र इस प्रकार है—

एहि सूर्य सहस्राशो तेजाराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मा भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

अर्थात् सहस्र किरणावाले, तेजकी अनन्तराशिरूप जगत्के स्वामी ह सूर्यदेव! आप मेरे समक्ष आइये। हे दिवाकर! मुझपर कृपा कीजिय और मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक प्रदत्त इस अर्घ्यको स्वीकार कीजिये।

सूर्यदेवको भगवान्‌ने अपना स्वरूप बताया है। अदितिपुत्र आदित्य सूर्यदेवके नामसे नवग्रहांके अधिपति हैं। प्रकृतिविज्ञान, खगोलविज्ञान, ज्योतिषविज्ञानम सूर्य प्रमुख ग्रह है। ज्योतिषमे सूर्यको आत्मकारक, आत्मबलदायक ग्रह माना गया है। द्वादश राशियाम प्रथम मेष राशि ही इनकी उच्च राशि तथा सिह राशि स्वगृही होती है। आजकल ज्योतिषविज्ञानमे लग्नकुण्डली एव चन्द्रकुण्डलीकी तरह सुदर्शन-चक्रमे सूर्य-कुण्डली भी बनायी जाती है। माणिक इनका प्रिय रत्न है। उत्तरायण सूर्यका विशेष महत्त्व है। भीष्म आदिने इच्छामृत्युके लिय इसे ही ध्यानम रखा। सूर्यग्रहण एव सक्रान्तिपर्वका धर्मशास्त्रीय व्रतोत्सवपर्वोम स्नान-दान-कर्महेतु विशेष महत्त्व है। मकरसक्रान्ति तो मुख्य धार्मिक पर्व है। भगवान् सूर्यदेवकी एक प्रार्थनामे कहा गया है—

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्र तन्न आ सुव॥ (ऋक्० ५।८२।५, शु०य० ३०।३)

भाव यह ह कि समस्त ससारको उत्पन्न करनेवाले, सृष्टि, पालन, सहार करनेवाले किवा विश्वम सर्वाधिक देदीप्यमान एव जगत्को शुभ कर्मोम प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सवितादेव! आप हमारे आधिभौतिक, आधिदविक, आध्यात्मिक दुरिताको हमसे बहुत दूर ले जायँ—दूर करे। जो कल्याण है श्रेय है मङ्गलमय है उसे विश्वके समस्त प्राणियाक लिय चारा आरस सम्यक् प्रकारसे ले आय।

मूर्तब्रह्म भगवान् भास्कर

(चक्रवर्ती श्रीरामाधानजा चतुर्वेदी)

सर्वव्यापक निगुण-निराकार ब्रह्म अनुभवगम्य है। उसका प्रत्यक्ष दशन नहीं होता किंतु उसक साकाररूप सूयका नित्य आकाशमण्डलम दशन हाता है। यह सूर्य उसी परम प्रकाश अव्यक्त ब्रह्मका प्रत्यक्ष प्रकाश है। शतपथब्राह्मणम कहा गया है कि 'असौ या आदित्या ब्रह्म अहरह पुरस्ताज्जायते' (७।४।१।१४)। अथात् यह आदित्य सूर्यब्रह्म प्रतिदिन सामने प्रकट होता है। भाव यह ह कि व्यापक अमूत ब्रह्म ही मूर्त सूयक रूपम प्रतिदिन प्रात सवक समक्ष उदित होता है। प्रश्नापनिषद्म भी कहा गया है कि 'प्राण प्रजानामुदयत्यष सूर्य ॥'(१।८)। अथात् प्रजाआका प्राणरूप यह सूय उदित हो रहा है। प्राणिमात्रकी चष्टा सूर्योदयसे हो हाती है। इसलिय श्रुतिम सूर्यका चराचर जगत्का आत्मा कहा गया है—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुपश्च' (यजु० ७।४२)। सूयसे हा जगत्की सृष्टि स्थिति तथा लय हाता है, जिसका निर्देश सूर्योपनिषद्म इस प्रकार है—

सूयाद्भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लय प्राप्नुवन्ति य सूर्य सोऽहमव च॥

जा सूर्य है, वह मैं हा हूँ। इस कथनसे आत्मरूप सूर्य ब्रह्मका उपासना व्यक्त हाता है।

तैत्तिरायापनिषद्म कहा गया है कि 'आदित्यन वाव सर्वे लाका महीयन्ते' (१।५।१)। इसका भाव यह है कि 'भू, भुव, स्व' य व्याहृतियाँ पृथ्वो, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलाकक नामस विख्यात हैं। इनके ऊपर एक चौथी व्याहृति 'मह' है, जिसके अधिष्ठाता सूर्य हैं। इनस ही ताना लाकाकी महत्ता है। महर्लोक सात लोकाक मध्यम हैं, नीचके 'भूर्भुव स्व' तथा ऊपरक 'जन, तप, सत्यम्' क बीच दिनमणि रूप महर्लोकसे सभी लाक प्रभावित हैं।

सूर्यके ब्रह्मरूपका निर्देश शतपथब्राह्मणम अनेक बार हुआ है जैसा कि 'असौ वा आदित्या ब्रह्म असौ वा आदित्यो बृहज्ज्याति' (६।३।१।१५), 'असौ वा आदित्य सूर्य' (९।४।२।२३) 'असौ सूर्यो वै सर्वेषा देवानामात्मा।' इस प्रकार सूर्यविषयक अनेक सूक्तियाके द्वारा सूर्यक महत्त्वको बताते हुए यह भा कहा गया है—'आदित्यस्त्वेव सर्व ऋतव। यदैवादऽत्यथ वसन्तो यदा सङ्गवोऽथ ग्रीष्मो यदा मध्यन्दिनोऽथ वर्षा यदापराह्णोऽथ शरद्यदैवास्तमेत्यथ हेमन्त। तर्हि एष अस्य लोकस्य नेदिष्ठम अन्तिकतमो भवति।'—इनका भाव यह है कि सूर्यकी सत्तासे ही वसन्त ग्रीष्म आदि ऋतुएँ प्रतिदिन अनुभूत हाती हैं। सूर्योदयस दो घट चौबीस मिनटतक वसन्त ऋतु, इसके बाद सङ्गव—गोदाहनकालतक ग्रीष्म, फिर क्रमश वर्षा शरद् तथा हेमन्त—इन ऋतुआका सक्रमणकाल है। इस प्रकार दिनके बारह घटाम इन पाँच ऋतुआका विभाग है, जो सूयक कारण ही हाता है। सूर्यकी प्रखर किरणाका अनुभव हमें मध्याह्नम ही क्यों हाता है? इसका कारण यह है कि उस समय सूर्य इस लाकके अत्यन्त सन्निकट रहता है। सूर्यकी दूरी और निकटता ही सूर्यकी अतप्त तथा तप्त किरणाके अनुभवका कारण है। मध्याह्नम सूर्यक भीतर अधिक प्रखर किरणाका सन्निवश हाना कारण नहीं है, क्याकि सूयब्रह्म सदा एकसमान रहता है, इसम कमी-बशी नहीं हाती है।

वैज्ञानिकाकी मान्यताके अनुसार पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी ९ करोड ७० लाख मील है। इसालिय सूर्यकी किरण पृथ्वीतलपर सूर्योदयक ८ मिनट १८ सेकण्ड बाद पहुँचती हैं। यह दूरी प्रात कालकी है। मध्याह्नकालम कुछ कम हो जाती है, जिससे सूर्यकी प्रखर किरणाका प्रभाव पृथ्वीपर अधिक पडता है। फिर प्रात कालके समान सायकालम भी सूर्यकी दूरी अधिक होती है। यही कारण है कि प्रात उदय तथा साय अस्तके समय सूर्य लालवणका ही दिखायी दता है, वही उसका अपना रूप है। उदयके कुछ समय बाद सूर्यमे शुक्लवर्णकी प्रतीति तो द्रष्टाके नत्राम सूर्यकी किरणाक चाकचिक्यसे होती है। स्वरूपत सूर्य लाल ही है। तभी तो अन्यत्र भी जब कभी सूर्य उदित होता है तो लाल ही दिखायी देता है।

मूर्तरूप दृश्य-पदार्थोंम सबसे बडा प्रकाशपुञ्ज ज्योतिष्मान् सूर्य ही है, दूसरा नहीं। वैज्ञानिकाने सूर्यका व्यास आठ लाख अस्सी हजार मील बताया है, जो पृथ्वीसे लगभग एक सौ दस गुना बडा है। अमूर्त, व्यापक, परमप्रकाश ब्रह्मका मूर्तरूप सूर्य भी ब्रह्म ही है। मैत्रायण्युपनिषद् (५।३)-मे मूर्त और अमूर्त रूपसे ब्रह्मका निर्देश इस प्रकार हुआ है—'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तम्।' अमूर्त निराकार ब्रह्मका यह विश्वब्रह्माण्ड मूर्तरूप है इसमे ज्योतिरूप मूर्त सूर्य है। इसके समान दूसरा कोई दृश्य नहीं है। ब्रह्माण्डके भीतर सभी ग्रह-उपग्रह सूर्यसे ही सचारित होते हैं। सूर्य मूलभूत अमूर्त परब्रह्मका ज्योतिरूप ठोस प्रकाश है, अत यह भी उस परमप्रकाशसे सदा आकृष्ट रहता है।

इस प्रकार यह मूर्तरूप सूर्य प्रत्यक्ष ब्रह्म ही है। इसकी उपासना सगुण ब्रह्मकी आराधना है। अत जो व्यक्ति सूर्यनारायणकी श्रद्धापूर्वक आराधना करता है उसे भुक्ति-मुक्ति—दोनोकी उपलब्धि अवश्य होती है यह बात अनुभव-सिद्ध है।

अवतार-दर्शन

(एकराट् प० श्रीश्यामजीतजी दुबे आथर्वण)

जिसका अवतार होता है, वह क्या है? अवतारसे पूर्व क्या होता है? अवतार क्या है? अवतारका कारक क्या है? इन सब बातोंपर विचार करनेके लिये हम वेदोंकी ऋचाओंपर दृष्टिपात करते हैं। ऋग्वेद (१०।१२९।१)-में कहा गया है—

'नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।'

अर्थात् अवतार या सृष्टिके पूर्व न असत् था, न सत् था, न रज था, इनसे परे जो था उसका कोई माप नहीं था। (व्योम=वि+ओम=मापहीन=अनादि एवं अनन्त=आकाश)

'न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।'

उस समय न मृत्यु थी न अमृत (जीवन) था न रात्रि थी न दिन था तथा न कोई ठौर (प्रकेत) ही था।

'को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।'

कौन इस प्रकृतिका भक्षण कर अपने पास रखे हुए है इसको कहने या बतानेवाला भी तो कोई नहीं था। यह सृष्टि कहाँसे आयी? या किसने इसे उत्पन्न किया? इसे बतानेवाला भी कोई नहीं था।

'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥'

जो इस सृष्टिका अध्यक्ष परम व्योममें बसता है वह इसके विषयमें जानता है अथवा नहीं भी जानता है इसे कौन कहे?

सर्वप्रथम शून्य (कुछ नहीं) था। महाकाश ही शून्य है। विष्णुके सहस्रनामोंमें एक नाम शून्य भी है। इसलिये कहना चाहिये कि पहले-पहल विष्णुतत्त्व था। वेदवचन है—

'असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम्। भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितम्'

(अथर्व० १७।१।१९)

असत्में सत् विद्यमान है। सत्में भूतकालकी घटनाएँ विद्यमान होती हैं। जो कुछ भविष्यमें घटित होनेवाला है वह भूतकालमें हो चुका होता है। इसीको कहते हैं—भव्यमें भूत स्थित होता है। भूतकालमें भविष्य प्रतिष्ठित होता है अर्थात् जो भूतकालमें घटा है वह सब भविष्यमें भी होगा। इस मन्त्रसे प्रकट है कि असत्से सत् होता है। अर्थात् अव्यक्त मूलप्रकृति, जिसमें तीनों गुण साम्यावस्थामें होते हैं, उससे व्यक्त प्रकृति—गुणोंकी विकृति होती है। यह सृष्टिका आरम्भ है या अव्यक्तका व्यक्तमें अवतरण है। प्रकृति (असत्)-का प्रथम अवतार महत्तत्त्व (सत्) है। सृष्टिका अभाव असत् है। अभावसे भावकी उत्पत्ति है। सृष्टिका भाव सत् है। उपनिषद्का उद्घोष है—

'असद् वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत।'

(तैत्तिरीयोपनिषद् २।७।१) सृष्टिके पूर्व यह असत् तत्त्व ही था। इसीसे सत् उत्पन्न हुआ। असत्का अर्थ अन्धकार भी है। असत्से सत् हुआ, इसका अर्थ है—अन्धकारसे प्रकाशकी उत्पत्ति हुई। यह प्रकट सत्य है—रात्रिके गर्भसे प्रकाश (सूर्योदय) होता है। महाकाशमेंसे एक साथ असंख्य ज्योतियाँ अनेक रूपोंमें प्रकट हुईं। यह ज्योतिर्मय ब्रह्मका प्रथम अवतार है। इसे हिरण्यगर्भ कहते हैं। यह सूर्य ही हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) है। असंख्य हिरण्यगर्भ हैं। ये ही भगवान् हैं। 'भा', भाति—चमकता है तथा 'गम्' गच्छति—चलता है इससे मतुप् प्रत्यय लगानेपर भगवत् शब्द बनता है। भगवत्+सु=भगवान्—जो चलता हुआ चमकता है अथवा चमकता हुआ चलता है। भगवान्में इच्छा हुई। मन्त्र है—'सोऽकामयत्। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदꣳ सर्वमसृजत यदिदं किं च। तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्।' (तैत्ति०उप० २।६।४)

उसने चाहा। बहुत प्रजावाला होऊँ यह। उसने तप (उद्योग) किया। उसने तप करके। यह सब विश्व रचा। यह जो कुछ भी (दृश्यमान) है। उसे रच कर उसमें ही अनुप्रविष्ट हुआ—अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हुआ।

वास्तवमें भगवान्ने अपनेको ही नाना रूपोंमें प्रकट किया। यह सृष्टि भगवान्से भिन्न नहीं है। पदार्थ अलग हैं भगवान् अलग हैं—ऐसा मानना अज्ञान है, क्योंकि भगवान्के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। 'ब्रह्मैव इदं सर्वम्' (नृसिंहोत्तर० उप० ७)। अव्यक्तावस्थामें प्रकृति और पुरुष दोनों एक हैं, विष्णुरूप हैं। वामनपुराणके गजेन्द्रमोक्षमें स्तुति की गयी

है—'ॐ नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मन।' इसस प्रकृति-पुरुपका एक्य या ब्रह्मत्व सिद्ध होता है। सबसे पहले कामका अवतार हुआ। 'काम तदग्रे समवर्तत' (ऋक्० १०।१२९।४)। भगवान् विष्णुक सहस्रनामोंमसे एक नाम हे—काम। यह भगवान्का अमूर्तरूप हे। यह हृदयगत भाव हे।

ज्यातिमय ब्रह्मन अपनेको ग्रहाक रूपम व्यक्त किया। पृथ्वी, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि—ये सूर्यके पार्थिव (विकृत) रूप हें। य ता दृश्य ग्रह हें। ऐस अनक अदृश्य ग्रह हें। इस परिवारका सौरमण्डल कहत ह। एस असख्य सौरमण्डल हें। प्रत्यकम एक-एक पृथ्वी है। पृथ्वीपति परमात्मा सूर्य है जा पृथ्वापर नाना जावाके रूपम प्रकट (अवतरित) होता रहता हे।

प्रकृतिक विकार या विकासका नाम भी अवतार है। अवतारका सरल एव सुस्पष्ट अर्थ है—आगमन, प्राकट्य, इन्द्रियगम्य होना। अगुण अकिञ्चन पुरुपने अपनेको प्रधान बनाया। प्रधानसे अहङ्कार उत्पन्न हुआ। अहङ्कारक सात्त्विक-रूपसे मन, राजसरूपसे पाँच ज्ञानन्द्रियाँ एव पाँच कर्मेन्द्रियाँ, तामसरूपसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाक विपय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका प्राकट्य हुआ। पाँच विपय पाँच तन्मात्र कहलाते हैं। इन तन्मात्रासे पाँच महाभूत उत्पन्न हुए। शब्दसे आकाश, स्पशसे वायु, रूपस तज, रसस जल, गन्धसे पृथ्वीका उद्भव हुआ। ये २४ प्रकृतियाँ (१ प्रधान+१ अहङ्कार+१ मन+१महत्तत्त्व+५ ज्ञानन्द्रियाँ+५ कर्मेन्द्रियाँ+५ तन्मात्रा+५ भूत) ही परमात्माके २४ अवतार हें। यह भगवान्का प्राकृतिक अवतार है। ये अवतार नित्य हें सूक्ष्म हैं। अवतारक पुरुपको हमारा प्रणाम।

चौदह प्रकारकी प्राणिसृष्टि ह। इसे १४ भुवनक नामस जाना जाता है। 'चतुर्दशविधो भूतसर्ग ' (साख्यसूत्र १८)। चौदह प्रकारकी प्राणिसृष्टिम आठ प्रकारकी देवासृष्टि है, पाँच प्रकारकी तिर्यक् योनियाकी सृष्टि हे तथा एक प्रकारकी मानुपसृष्टि है। सक्षेपमे यही भातिक सृष्टि ह। कथन ह—

अष्टविकल्पो दवस्तैर्यग्योनिश्च पञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविध समासता भौतिक सर्ग ॥

(साख्यकारिका ५३)

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र दव, गान्धर्व पित्र्य विदह और प्रकृतिलय—य आठ दैव-सर्ग हें। यह सत्त्वप्रधान सृष्टि है और सबसे ऊपर ह। नौवाँ मानुप-सर्ग हे जो रजोगुण प्रधान है। इसकी मध्य-स्थिति है। मनुष्यसे नीच पशु, पक्षी सरीसृप, कीट तथा स्थावर (वृक्षादि)—यह पाँच प्रकारका तिर्यक्-सर्ग ह। मनुष्य-सर्ग एव तिर्यक्-सग तो प्रत्यक्ष दृष्टिगाचर हें, किंतु दैव-सर्ग सूक्ष्म हानक कारण इन्द्रियगाचर नहीं हे। इसे देखनेक लिय दिव्य नत्र चाहिय।

जितना भी यानियाँ हें, वे भगवान्की हैं। उनम भगवान् गर्भस्थापन (जीवरचनाका कार्य) करत हें, जिससे प्राणी उत्पन्न हात हें। भगवान् श्रीकृष्ण अजुनके प्रति यही कहते हें—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भव सर्वभूताना तता भवति भारत॥

(गीता १४।३)

शास्त्रानुसार यानियाँ ८४ लाख हे। बृहद् विष्णुपुराणके मतस ९ लाख जलज, २० लाख स्थावर, १० लाख पक्षी, ३० लाख पशु, ११ लाख कृमिकीट तथा ४ लाख मनुष्य हें। ये यानियाके प्रकार, भेद या जातियाँ हें। कर्मविपाकके अनुसार ३० लाख प्रकारक स्थावर, ९ लाख प्रकारके जलज, १० लाख प्रकारक कृमि, ११ लाख प्रकारके पक्षी, २० लाख प्रकारके पशु तथा ४ लाख प्रकारके मनुष्य हैं। इन चौरासी लाख प्रकारकी यानियाक माध्यमसे भगवान् ही आविर्भूत हो रह हैं। एक साथ इतने अवतार धारण करनवाले ईशका हमारा प्रणाम।

८४ लाख यानियाका सक्षेपीकरण किया जाय तो ८+४=१२=१+२=३ यानियाँ हैं। ये योनियाँ हैं—तमोगुणी राक्षस, रजागुणी मनुष्य तथा सात्त्विक देवता। ज्योतिप-शास्त्रकी इन तीन यानियाम परमात्मा सर्वत्र वर्त रहा है—त्रियोनय परमात्मने नम ।

भगवान्का लिङ्गावतार लोकमान्य है। द्वादश ज्यातिर्लिङ्गाके रूपम कौन इनकी अर्चना नहीं करता ? १२ राशियाँ—मप, वृप, मिथुन कर्क सिह, कन्या तुला, वृश्चिक धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन ही १२ ज्योतिर्लिङ्ग हैं। पूर्वी क्षितिजपर लग्नके रूपम इनका उदय होता रहता ह। इन ज्योतिर्लिङ्गाका प्रभाव मासक रूपम दिखायी पडता है। ये १२ ज्यातिर्लिङ्ग विष्णुक स्वरूप हें। इनका कभी नाश नहीं होता। वचन हे—

'द्वादशार नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्र परि द्यामृतस्य।'

(अथर्व० ९।९।१३)

परमात्मा अपनी प्रकृति (माया)-का आश्रय लेकर नाना रूपा (अवतारो)-की सृष्टि करता है। श्रुतिवाक्य है—

'इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते' (बृह०उप० २।५।१९)—इसी बातको गीताम इस प्रकार कहा गया है—

'मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयत सचराचरम्।' (९।१०)

भगवान्‌की अध्यक्षतामे प्रकृति स्वय चराचर विश्वका सृजन करती हे अर्थात् अवताराकी कारक यह प्रकृति है। प्रकृतिका आश्रय लेकर परमात्मा शरीर धारण करता है, नाना यानियाके रूपम आविर्भूत होता हे।

भगवान्‌की शाश्वत योनि आकाश (शून्य) है। भगवान्‌का स्वरूप आकाश हे। भगवान्‌के माता-पिता, बन्धु, सखा सन्तति—सब कुछ यह आकाश हे। भगवान् इस आकाशमेसे अपनको प्रकट करते रहते हैं। आकाशगङ्गाएँ, नीहारिकाएँ, नक्षत्रमण्डल, धूमकेतु, ग्रहगण आदि भगवान्‌के रूप हैं। इस प्रकार भगवान् अगुणसे सगुण, अरूपसे सरूप तथा शून्यसे अशून्य बनत ह। यह भगवान्‌की लीला (माया) है। इस मायाको हमारा नमस्कार।

परमात्मा समस्त विरोधाभासाका आश्रय है, अस्ति-नास्तिमय है, अग्नीषोमात्मक हे अर्धनारीश्वर है। इसलिये वह पूर्ण है। पूर्ण परमात्माके समस्त अवतार पूर्ण हैं। अजायमान ईश्वर नाना प्रकारस जायमान होता है—अपने अप्रकट रूपको प्रकट करता है—अवतार लेता है। मन्त्र है—'**अजायमानो बहुधा वि जायते**' (यजु० ३१।१९)। जा ईश भीतर है, वही बाहर है जो बाहर हे वही भीतर है। मन्त्र है—'**यदन्तर तद् बाह्य यद् बाह्य तदन्तरम्।**' (अथर्व० २।३०।४) परोक्ष परमात्मा ही प्रत्यक्ष परमश है। जीवको समाधिम इसकी अनुभूति होती है। '**योऽसावादित्ये पुरुष सोऽसावहम्।**' (यजु० ४०।१७) सूर्यमण्डलमे जो ईश्वर विद्यमान ह, वही मैं हूँ।

भगवान् अवतार लेनेक लिये हर क्षण सन्नद्ध रहते हैं। भगवान्‌का एक अवतार है—यज्ञरूप। प्रज्वलित अग्निमें आहुतियाको स्वाहायुक्त मन्त्रासे डालना यज्ञ है—'**यज्ञो वै स्वाहाकार**' (शतपथब्राह्मण ३।१।३।२७)। काष्ठको मथकर उसमसे अग्निको प्रज्वलित करना ही भगवान्‌को प्रकट करना हे। प्रज्वलित अग्नि साक्षात् परमदेव है। पार्थिव अग्नि, पार्थिव भगवान् हे। दिव्य अग्निका यह अवतार है। दिव्य अग्नि धूमरहित हे, पार्थिव अग्नि सधूम होती है। जो अन्तर निर्गुण एव सगुण ईश्वरम या अशरीरी एव शरीरधारी भगवान्‌म है वही अन्तर दिव्याग्नि (सूर्य) एव पार्थिवाग्नि (यज्ञ)-मे है। अग्नि पवित्र करनेवाला होनेसे पावक है, पवित्र होनेसे शुचि है प्रकाशसे युक्त होनेके कारण शुक्र है पापनाशक होनसे शाचि हे अविनाशी होनेसे अमर्त्य हे। यह अग्नि राक्षसासे हमारी रक्षा करता ह। इसलिये यह स्तुत्य, ईड्य है। मन्त्र है—

'**अग्नी रक्षासि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्य । शुचि पावक ईड्य ॥**' (अथर्व० ८।३।२६)

यह अग्निरूपी भगवान्‌की कथा है। इससे दुर्बुद्धिका नाश होता है सद्बुद्धिकी प्राप्ति होती हे, जीवन चमकता है, अभय होता हे, आनन्दका आगम होता है—जन्म सार्थक होता हे।

वेदादि धर्मग्रन्थोमें अवतार-रहस्य

(दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

अव उपसर्गपूर्वक तृ धातुसे 'अवतार' शब्द बना है। उच्च स्थानस नीचे स्थानपर उतरना—इस 'अवतार' कहते हैं। अवतार किसका ? कब ? और किसलिय होता है ? इन प्रश्नाके प्रत्युत्तर भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गाता (४।७-८)-मे इस प्रकार दिय हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युग॥

हे अर्जुन! जब-जब धर्मकी ग्लानि (हानि) होती है और अधर्मकी वृद्धि हाती है तव-तव मैं जन्म (अवतार) धारण करता हूँ। साधुजन (सत्पुरुषा)-के रक्षणहेतु दुर्जनाके विनाशार्थ तथा धर्मकी स्थापनाके लिये में (भगवान्) युग-युगमे अवतीर्ण (प्रकट) होता हूँ।

इससे स्पष्ट होता हे कि भगवान्‌के अवतारका प्रथम प्रयोजन साधुस्वभावके सत्पुरुषाका परित्राण (रक्षण) करना ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नेति मामेति साऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

हे अर्जुन! मेरे दिव्य जन्म एव कर्मको जो व्यक्ति तत्त्वत जानता है, वह देहत्याग करनेके बाद पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

वेदादि धर्मग्रन्थामे प्रतिपादित अवतारतत्त्व हिन्दूधर्मका एक प्रमुख तत्त्व है। वैकुण्ठधाम छोडकर अपने विशेष कार्य पूर्ण करनेके लिये भगवान्‌के भूलोकमे पधारनेको 'अवतार' कहा जाता है। भगवान् जब प्राणीका अथवा मनुष्यका देह धारण कर कुछ समयपर्यन्त अथवा जीवनपर्यन्त उस देहम निवास करते हैं, तब उस देहधारणको अवतार कहते हैं।

उत्पत्ति स्थिति एव लय—ये सृष्टिके स्वभावधर्म हे और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—ये तीन देव धर्मके कारक माने गये हैं। उनम सृष्टिपालनका उत्तरदायित्व विष्णुपर हे। अत जब-जब सृष्टिमे उपद्रव प्रारम्भ होता है और विनाशकी प्रक्रिया वृद्धि करने लगती हे, मानव-समाजमे धर्मकी हानि होती है, तब-तब धर्मसस्थापनहेतु भगवान् विष्णु युग-युगमे अवतार लेते हैं। ऐसी धारणा भारतीय श्रद्धावन्ताकी है। सनातनमतके सभी धर्मग्रन्थ इस धारणाको परिपुष्ट करते हैं।

मनुष्यका जन्म होता हे, जबकि *भगवान्‌का अवतार* होता है। मनुष्य अपना जन्म लेनेमे परतन्त्र है, जबकि भगवान् अपना अवतार लेनेमे स्वतन्त्र हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (४।६)-मे स्वय भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

हे अर्जुन! में अज (अजन्मा) हूँ, अव्यय (अविनाशी) हूँ, समस्त प्राणियोका ईश्वर हूँ तथापि में अपनी प्रकृतिका अधीन करके अपनी मायाद्वारा जन्मता हूँ। में जन्म लनेमे स्वतन्त्र हूँ।

वेदामे अवतारतत्त्वके जा बीज प्राप्त होते हैं पुराणाम उनका उपबृहण कर आख्यानरूपम विस्तार हुआ है। वैदिक वाङ्मयम अवतारोका जो मूल प्राप्त होता है, उसका सक्षपमे कुछ वणन यहाँ प्रस्तुत है—

(१) शतपथब्राह्मण (१।८।१।१—६)-मे कथा आयी है कि प्रलयकालम मनुने अपनी नौकाकी रस्सी एक महामत्स्यके शृगके साथ बाँधी थी। उस मत्स्यराजने महाप्रलयसे मनुका रक्षण किया था। शतपथब्राह्मणकी इस सूक्ष्म कथासे आगे मत्स्यावतारकथाका विस्तार हुआ।

(२) तैत्तिरीय आरण्यकम कथा है कि प्रजापतिका शरीर कूर्मरूपमे जलमे फिरता था, वही '**सहस्रशीर्षा पुरुष**' इस स्वरूपमे प्रजापतिके समक्ष प्रकट हुआ। तब प्रजापतिने उन्हे विश्वनिर्माण करनेके लिये कहा। उसने प्रत्येक दिशामे जल फेककर आदित्यादि सृष्टिका निर्माण किया। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।१।३।६)-मे कथा हे कि प्रजापतिने वराहरूप धारणकर समुद्रतलमेसे पृथ्वीको जलसे बाहर निकाला। यह कथा वराह-अवतारकी सूचक है।

(३) ऋग्वेद (८।१४।१३)-म कथा है कि नमुचि दैत्यका मस्तक इन्द्रने जलका फेन फककर उडाया था। इस कथासे नृसिह-अवतारकी कथा विकसित हुई। नृसिहका प्रथम उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यकम आया है।

(४) ऋग्वद (१।२२।१७)-मे है कि '**इद विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।**'

इस विश्वको तीन पाद (चरण) रखकर विष्णुने आक्रान्त किया।

इससे वामनने बलिराजके पास जाकर त्रिपादभूमि *माँगकर आखिरम त्रिभुवन व्याप्त किया,* ऐसी वामन-अवतारकी कथाकी सूचना है।

शतपथब्राह्मण (१।२।५।५)-मे कहा है कि विष्णु ही प्रथम वामन (ठिगु) था—'**वामनो ह विष्णुरास।**' विष्णुका अर्थ यज्ञ भी हे। इसके यागसे देवाने अर्चा और श्रम करके सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त कर डाली।

(५) अथर्ववेद (५।१९।१-११)-म कथा है कि '**सृञ्जय वेतहव्य**' नामक राजा भृगु एव ब्राह्मणाकी हिसा करनेपर पराभूत हुए। इस कथासे परशुराम अवतारकी कथा सूचित होती हे।

(६) छान्दोग्योपनिषद् (३।१७।६)-म देवकीपुत्र कृष्णका उल्लेख मिलता है।

द्वापरयुगमे यदुनन्दन श्रीकृष्णका भगवान् विष्णुका अवतार कहा गया है—'**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥**'

श्रीकृष्णका बालचरित्र गोकुल और वृन्दावनम गोप-गोपियाके साथ व्यतात हुआ। उन्हाने बालपनम दैत्योका

सहार किया कालियदमन एव कसका वध किया इत्यादि। वे बड होकर वृष्णियाके राजा माने गय, यद्यपि वे मूलत यादवा और सात्वताके देवके रूपम प्रसिद्ध थे।

(७) रामायणादि धर्मग्रन्थाक अनुसार रामावतार त्रतायुगके अन्तमे हुआ। महर्षि वाल्मीकिकृत रामायणद्वारा राम (दाशरथी राम) लाकविश्रुत हुए। वे सत्यवादी, निर्भीक, दृढप्रतिज्ञ, पितृभक्त, बन्धुवत्सल, महापराक्रमी होनेसे अगणित लाकोमे आदरणीय हुए।

रामभक्तिसाहित्यम अध्यात्मरामायण तथा श्रीरामचरितमानसका उच्च स्थान है। वेष्णव-सम्प्रदायमे विष्णुकी अपेक्षा उनके अवतार राम एव कृष्ण किवा अन्य अवतारको विशेष महत्त्व देकर पूजा की जाती है। विष्णुक अनन्त अवतार हे। विविध ग्रन्थामे विविध नाम-रूपोम अवतारका वर्णन हुआ है।

महाभारत शान्तिपव (अ० ३३९)-मे नारायणी-उपाख्यानम मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिह, वामन, भार्गवराम (परशुराम), दाशरथी राम एव वासुदेव कृष्ण—इन छ अवताराकी चर्चा है, आगे हस और कल्कि आदि अवतार लेकर दस अवताराका उल्लेख है। कहीं-कहीं यह सख्या बारह है। श्रीमद्भागवत (६। २। ७)-मे २४ अवताराका निर्देश हुआ हे।

ये सभी अवतार लालावतार नामसे प्रसिद्ध हें। इनमे भी दस अवतार प्रसिद्ध हैं, जो इस प्रकार हैं—

१ मत्स्य, २ कूर्म, ३ वराह, ४ नृसिह, ५ वामन, ६ परशुराम, ७ दाशरथी गम, ८ कृष्ण, ९ बुद्ध और १० कल्कि।

बौद्ध साहित्यम बुद्धका दाशरथी रामका अवतार माना गया हे। हिन्दुओके अवतार-सिद्धान्तका बोद्धाक महायान-पन्थने स्वीकार किया आर उसको अपन पन्थम प्रविष्ट किया। बाधिसत्त्वका बुद्धका अवतार माना गया। महायानपन्थने ऐसा घाषित किया कि बुद्ध निर्वाण-प्राप्तिक बाद भी पुन अवतार लेनकी क्षमता रखते हें। भविष्यम व (बुद्ध) मत्रेय बुद्धरूपम पुन अवतार ग्रहण करनवाल हें।

धर्मग्रन्थोम अवतारक दो प्रकार कहे गये हें—(१) अशावतार (२) पूर्णावतार। थाडे-थाडे उपद्रवाकी शान्तिके लिये उतने समयपर्यन्त भगवान् अवतार लेत हैं और अपना वह कार्य समाप्त कर वे अन्तधान हा जात हैं। इस प्रकारक अवतारका अशावतार कहते हें। नीतिधर्मका उच्छेद करनेवाल एव भूमिके भारभूत होनवाले रावण, कसादि विरोधी विग्रहाके निर्दलनके लिये भगवान् जब अपने शक्तिसमूहसहित अवतार लेते हे और वह कार्य पूर्ण हो जानेक बाद भी कुछ समयपर्यन्त इस पृथ्वीपर रहते हैं, ऐसे अवतारको पूर्णावतार कहते हं। इस दृष्टिसे राम-कृष्णादिको पूर्णावतार कहा गया हे। रामके लघु बन्धु लक्ष्मणको तथा कृष्णके ज्यष्ठ बन्धु बलरामको शषावतार माना गया ह, रुक्मिणीको लक्ष्मीका अवतार तथा गाप-गोपियाको देव-देवियाका अवतार कहा गया है।

किन-किन देवाने कोन-कौन अशावतार लिये, इस विषयमे महाभारत आदिपर्व (अध्याय ५४—६८)-मे कहा गया है। उसम कतिपय अवतार इस प्रकार वर्णित हैं—नित्यावतार, गुणावतार, विभवावतार, तत्त्वावतार, अर्चावतार, अन्तर्यामी-अवतार, लीलावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार, आवेशावतार आदि।

अवतारका मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार है—

(१) परमेश्वरका एक रूपमे नित्य-लोकमे नित्य-विहार होता है और दूसरे रूपम जगत्प्रवृत्ति हाता है।

(२) परमेश्वर एक होनेपर भी स्वत को अनेक रूपमें प्रकट कर सकता है।

(३) अवतार नित्य रूप है, मायिक नहीं।

(४) सभी अवतार सच्चिदानन्दविग्रह हैं।

(५) कतिपय अवतार मनुष्यरूपम हाते हैं तो कुछ परिस्थितिवश एव कुछ अवतार भक्तकी इच्छावश होते हैं।

(६) अवतारका मानुषतन ही दिव्य होता है और उसमे दिव्य शक्तिका निवास होता है।

(७) प्रत्येक अवतारकी विशिष्ट देहलीला हाती है आर विशिष्ट लोक भी होता है।

(८) परमेश्वर अवताररूपमे पृथ्वीपर आनपर भा अपने दिव्य एव पूर्णरूपम निजधाममे विराजमान रहते हैं।

विष्णुकी तरह ही भगवान् शिवने भी विविध प्रसगमें अनेक अवतार लेकर साधुपरित्राण और दुष्टविनाश किया। इस विषयम शिवपुराणम वर्णन है। कालभैरव, शरभ यज्ञेश्वर महाकाल, एकादश रुद्र हनुमान्, नर्तक नट (नटराज), अवधूतेश्वर, वृषश आदि। शिवकी प्रथम भार्या दक्षकन्या सती ही बादम हिमालय-सुताक रूपम अवतरित हाकर 'पार्वती' नामस शिवकी अर्धाङ्गिनी हुईं। पार्वतीको आदिमाया किवा आदिशक्ति भी कहते हें। उन्हाने भी असुरमर्दनके लिये अनेक

अवतार लिये हैं। मुख्य देवताके कुछ परिवार देवता भी हाते हैं। वे भी अपने स्वामीकी अनुज्ञासे किवा विशिष्ट कार्योक लिये मानव-अवतार धारण करते हैं। गणपतिके भी युग-युगम गणेश, विघ्नेश, मयूरेश, सिद्धिविनायक इत्यादि अनेक अवतार धारण करनके वृत्तान्त गणश तथा मुद्‌गलपुराणम हें। दत्तात्रेय मूलत विष्णुके ही अवतार हैं, इनके अवतार श्रीपादवल्लभ नृसिह सरस्वतीकी लीला-कथा 'श्रीगुरुचरित्र' नामक ग्रन्थम सविस्तृत वर्णित है। दक्षिण भारतके १२ आलवार विष्णुक आयुधाके अवतार माने गये हैं। महाराष्ट्र प्रदेशके भागवत-सम्प्रदायमे ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वर)-को विष्णुका अवतार, नामदेवको उद्धवका अवतार मानते हैं। मध्यकालके सभी सम्प्रदायाम अवताराकी चर्चा वर्णित है।

महाभारत, शान्तिपर्व (३४६। १०। ११, ३४८। ६। ८)-म नारायणीय धर्मका विवेचन है। इस धर्मको सर्वप्रथम भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है, बादम नारदजीको भी उपदेश दिया है। नारदजीने आगे जाकर नारायणीयधर्मक अन्तर्गत व्यूह-सिद्धान्त स्थापित किया है। वासुदेव, सकर्पण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार मिलकर चतुर्व्यूह हाता हे। इस व्यूहमे वासुदेवको परमात्मा तथा सम्पूर्ण सृष्टिका कर्ता माना गया हे। सकर्षण उनका दूसरा रूप है। वे प्राणिमात्रके प्रतिनिधि माने गये हे। सकर्पणसे प्रद्युम्नकी उत्पत्ति हुई। प्रद्युम्न माने मन, उनसे अनिरुद्ध हुए। वे अहकारके प्रतिनिधि हैं। ये चारो ही नारायणकी मूर्तियाँ हैं। उनमेसे आगे महाभूत और उसके गुण उत्पन्न होते हैं। उसी समय ब्रह्माकी भी उत्पत्ति होती है और तत्त्वोकी सामग्रीसे वे भूतसृष्टिकी रचना करते हैं।

नारायणीय-आख्यानम व्यूहवादके अनुषगम भगवान्‌के अवतारकी चर्चा आयी हे। उसम भगवान्‌क कवल छ अवताराका उल्लेख है।

वैदिक साहित्यम मित्र, वरुण, अग्नि, इन्द्र इत्यादि देवताको एक ही देवाधिदेवका भिन्न-भिन्न स्वरूप माना गया है। इस प्रकार नारायणीय-उपाख्यानम कथित मूल भागवत किवा एकान्तिकधर्म आगे वैष्णवधर्ममे परिणत हुआ। व्यूहवादमे नारायणके केवल सृष्टिकारक गुणाको ही प्राधान्य दिया गया है, ता अवतारवादम भगवान्‌के षड्‌गुणैश्वर्य एव उनकी अनन्त लीलाको महत्त्व प्राप्त हुआ है। राम, कृष्णादि अवतार विशेपत पूजनीय, भजनीय हुए।

इस प्रकार वेद तथा अन्य धर्मग्रन्थाम अवताररहस्यका विस्तृत वर्णन हुआ हे।

अवतार-सिद्धान्तके वैदिक निर्देश

(प्रो० डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र वेदाचार्य)

अवतार-सिद्धान्त भारतीय सनातन धर्मकी मूलभूत विशिष्टताआमे अन्यतम है। भगवान् घट-घटमे व्याप्त हे, पर अन्तर्हित होनेके कारण योगियोकी ही योगदृष्टिसे गम्य हैं। स्थूलदृष्टिसे उन्हं नहीं देख मकते, परतु वे दुष्टोके शासन और भक्ताके दु खनाशके लिये स्थूलदृष्टि पुरुपाक दृष्टिगम्य सासारिक पाञ्चभौतिक शरीरसे इस जगतीतलपर आविर्भूत हाते हैं। इसी आविर्भावको अवतार कहते हैं।

वेदम भगवान्‌के अवतार-सिद्धान्तका बोधक मन्त्र इस प्रकार है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य यानि परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

(यजु० मा०स० ३१। १९ शब्दान्तरके साथ अथर्व १०। ८। १३)

इसका अर्थ है कि ('प्रजापति ') विश्वकी प्रजाके पालक जगदीश्वर पुरुषोत्तम ('अन्त ') मध्यमे ('चरति') विचरते हें अर्थात् सकल प्राणीमात्रके मध्यमे वर्तमान हैं। (गर्भे) गर्भम ('अजायमान ') नहीं होते हुए भी अर्थात् अजन्मा होते हुए भी ('बहुधा') बहुत प्रकारसे राम, कृष्ण आदि अनेक रूपासे ('वि जायते') उत्पन्न होते हैं। ('तस्य') अवताराके लीला-विग्रहम उस प्रजापतिकी ('योनिम्') मूल ब्रह्मरूपताको ('धीरा ') धीर तत्त्वदर्शी भक्त ही ('परिपश्यन्ति') देखते हैं। ('तस्मिन् ह') उस प्रजापतिम ही सम्पूर्ण ('भुवनानि') लोक ('तस्थु ') अवस्थित हैं।

गीता (४। ६)-मे इसी भावको स्पष्ट किया गया है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

अजन्मा, अविनाशी तथा सब भूतोका स्वामी होता हुआ भी मैं आत्ममायासे उत्पन्न हाता हूँ।

यही तथ्य श्रीतुलसीदासजीने भी श्रीरामचरितमानसम

गम्भीर शब्दामे कहा है—

चिदानदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु सत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥

अवतार प्राय सभी देवताआका होता है। जिस समय जिस देवताका कार्य होता है, उस समय वह देवता अवतार ग्रहण करता है।

अवतार-ग्रहण मनुष्यरूपमे ही होता हे, यह नियम नहीं है, क्याकि भगवान् श्रीविष्णुदेवका हिरण्याक्षको मारनेके लिये वराहावतार शूकररूपमे हुआ था तथा भक्त प्रह्लादको बचानेके लिये नृसिहावतार मनुष्य और सिहके मिले हुए शरीररूपमे हुआ था। इसी प्रकार कूर्मावतार तथा मत्स्यावतार क्रमश कछुआ ओर मछलीके रूपम हुआ था। जिस समय जसा रूप धारण करना उचित होता है, उस समय भगवान् वैसा ही रूप धारण करते हं। श्रीमद्भागवतमहापुराणमे पशु-पक्षी आदिके रूपम भी अवतार-ग्रहणका प्रयोजन लोकपालनको बतलाया गया है—

भावयत्येष सत्त्वन लाकान् वै लोकभावन।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥

अवतार-धारणका प्रयोजन श्रीमद्भगवद्गीता (४।७-८)-म श्रीकृष्णजीने अर्जुनको उपदेश देते हुए बतलाया हे—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थात् हे अर्जुन! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, उस समय मैं रूप धारण करता हूँ। मैं युग-युगम साधुजनाको रक्षाके लिये, दुष्टाके सहारके लिये तथा धर्मके सस्थापनके लिये अवतार लेता हूँ।

गीताके इन दोनो श्लोकोम यह भाव सकेतित है कि अधर्मके निराकरण तथा धर्मकी स्थापनाके लिये भगवान् जगतीतलपर अपने अशोका सृजन करते हें। परतु भक्ताकी रक्षा ओर दुष्टाके विनाशके लिये भगवान् समय-समयपर स्वय अवतरित होते हें। वस्तुत भक्तवत्सलता ही अवतारका विशिष्ट हेतु हे। श्रीदुर्गासप्तशती (११।५४-५५)-म भी भगवताने भक्ताक रक्षणार्थ अवतरणकी स्वय प्रतिज्ञा की है—

इत्थ यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति॥
तदा तदावतीर्याह करिष्याम्यरिसक्षयम्॥

विविध रूपाम भगवदवतारका प्रयोजन भक्ताका विविध कामनाआकी पूर्तिके लिये होता हें तथा भक्ताकी अनन्य प्रार्थना एतदर्थ आवश्यक है। इस सिद्धान्तका निर्देश भी वैदिक मन्त्रमे प्राप्त हाता हे—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयः स्याम पतयो रयाणाम्॥

(ऋक्० १०।१२१।१० अथर्व० ७।७९।४ ७।८०।३ यजु०मा०स० १०।२० २३।६५ तै०स० १।८।१४।२)

वस्तुत अचिन्त्य, अव्यक्त तथा अनन्त परब्रह्म भगवान् भक्तप्रजाआके पालनहेतु चिन्त्य-सान्त अवतारके रूपम व्यक्त हाते हं। इस कारण वदम उनको 'प्रजापति' सज्ञासे वर्णित किया गया हे।

इस भावके साथ गास्वामी श्रीतुलसीदासजीने अवतारकी लीलाआका प्रयोजन भी सुन्दर शब्दामे सकलित किया है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

सोइ जस गाइ भगत भव तरही। कृपासिधु जन हित तनु धरहीं॥
राम जनम के हेतु अनका। परम बिचित्र एक त एका॥

भगवान्के अवतार अनक है। उनम भी श्रीराम तथा श्रीकृष्णका अवतार तो बहुत प्रसिद्ध है। मुख्य अवताराकी कथा प्राय सभी पुराणाम उपलब्ध है। वेदधर्मानुयायियाके लिय पुराण अथवा इतिहासकी प्रामाणिकता वेदमूलक होनेके कारण मानी गयी है। यद्यपि वेद ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है कि राम या अन्य अवताराका पूर्ण चरित्र मिले, फिर भी अनुसन्धाता भक्तगण अपनी प्रियताकी अटूट निष्ठाके कारण वेदक आश्रयमे जाकर वहाँ भी अपनी प्रिय वस्तुको ढूँढते हैं। वेद कल्पवृक्ष है, कामधेनु है। भक्ति एव निष्ठासे आश्रय लेनेपर इच्छाकी पूर्ति करना वेदका स्वाभाविक धर्म है। इसी कारण विद्वान् श्रद्धालु भक्तजनाको वैदिक मन्त्राम भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका स्पष्ट वर्णन दिखायी पडता हैं।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीक चरित्र-सम्बन्धी वैदिक मन्त्राका व्याख्याके साथ स्पष्ट सकलन गाविन्दपण्डितके पुत्र आचार्य नालकण्ठने 'मन्त्ररामायण' तथा श्रीकृष्णचरितका सकलन

'मन्त्रभागवत'के नामसे सस्कृतमे किया है।

वाल्मीकीय रामायणम जिस प्रकार प्रथम सर्गम श्रीरामचरितका सक्षेपमे वर्णन मूलरामायणके रूपसे है, वैसे ही आचार्य नीलकण्ठने वेदके चार मन्त्राम वैदिक मूल रामायणका सकलन किया है। प्रसङ्गत यहाँ यह भी स्पष्ट कर दना आवश्यक है कि वेदमन्त्राके देवचरितपरक अर्थसे वेदाके गौरव या अपौरुषेयताम बाधाकी आशका नहीं करनी चाहिये, क्याकि प्रधानरूपसे किसी कार्य, परिस्थिति या भावसे प्रयोग किये हुए शब्द भी विवचक बुद्धिमानक पास दूसर भावको भी दर्शित कर दते हैं। इसका लोकम अनुभव प्राय सभीको समय-समयपर हाता हे। सत श्रीतुलसीदासजीने रामायणकी रचना किसी शास्त्रीय तत्त्वको सग्रथित करनेके लिये नहीं की है। जेसे वेदान्ततत्त्वको समझानेके लिये यागवासिष्ठ, व्याकरणके प्रयागाको बतानके लिये भट्टिकाव्यकी रचना है, वैसी मानसकी रचना नहीं है। वस्तुत यह मानस-रचना वाल्मीकिके मर्यादापुरुषात्तम श्रीरामचन्द्रजीका भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके रूपमे तथा श्रीमद्भागवतक पाँचव स्कन्धके उन्नीसव अध्यायके किंपुरुषवर्षमे उपासनीय श्रीरामचन्द्रजीको भारतवर्षकी आराधनामें भी महत्त्वपूर्ण बतलानेके लिये है। श्रीतुलसीदासजीका 'श्रीरामचरितमानस' मानस अर्थात् मनोभावसे प्रस्फुटित है। इसी प्रकार शास्त्रविचारकाने वेदमन्त्राके जो विभिन्न अर्थ किये हैं, वह वेदाकी महत्ता ओर जनसाधारणकी आस्था वढानेक साथ अपने विचाराको श्रुतिसम्मत बतानके लिये है। उन अर्थोसे प्रधानतया वेदप्रतिपाद्य यज्ञतत्त्वका विराध नहीं है तथा वदकी अनित्यता या पौरुषेयता सिद्ध नहीं होती है।

अत **'यज्ञो वै विष्णु'** तथा **'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य'** इत्यादि श्रुति-स्मृतिवचनाके अनुसार भगवद्गुणानुवर्णनकी दृष्टिसे स्वामो श्रीकरपात्रीजीका वेदार्थपारिजातभाष्य स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजीका समन्वयभाष्य, वेदापदेशचन्द्रिका, भगवदाचार्यस्वामीका वेदभाष्य आचार्य गोपालचन्द्रमिश्रजी-कृत मन्त्रभाष्य आचार्य नीलकण्ठकृत मन्त्ररामायण, मन्त्रभागवत एव मन्त्रार्थदीपिका मन्त्रार्थचन्द्रोदय आदि विविध देवपरक अर्थोका प्रतिपादन करते हैं।

उपर्युक्त विविध आचार्योके द्वारा प्रणीत वेदभाष्यामे भगवान्के अनेक अवताराके प्रतिपादक मन्त्रार्थ उपलब्ध होत हैं। परतु महाविष्णुके दस मुख्य अवताराका विशेष निरूपण इन मन्त्रार्थोम दृष्टिगोचर होता है। दस अवतारोकी मुख्यताका निर्देश भी ऋग्वेदकी इस ऋचाम सकेतित है—

रूप रूप प्रतिरूपा बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शता दश॥

अर्थात् भक्ताकी प्रार्थनाक अनुसार प्रख्यात होनेके लिय भगवान् मायाके सयागसे अवतारमे अनेक रूप धारण करते हे। उनक शत-शत रूप ह, पर उनम भी दशावताराक दस रूप मुख्य हैं।

भगवान्के मुख्य अवताराके मूलसकेत वेदसहिताआम दृष्टिगोचर होते हैं तथा ब्राह्मणग्रन्थामे तो विस्तृत आख्यान भी उपलब्ध हैं। सक्षेपम मुख्य अवताराका श्रुतिसकेत यहाँ प्रस्तुत है—

१-मत्स्यावतार—**'मनुमत्स्यकथा'** (शत० १।८।१।१—६)।

२-कूर्मावतार—**'अन्तरत कूर्मभूत'** (तै०आ० १।२३।३)।

३-वराहावतार—**'वराहेण पृथिवी'** (अथर्व० १२।१।४८), (शत० १४।१।२।११), **उद्धृतासि वराहेण** (तै० १।१।३०)।

४-नृसिहावतार—**'मृगो न भीम'** (ऋक्० १।१५४।२), **'नरसिह प्रचोदयात्'** (तै० १।१।३१), नृसिहतापिन्युपनिषद्।

५-वामनावतार—**'इद विष्णुर्विचक्रमे'** (ऋक्० १।२२।१७), **'त्रीणि पदा वि चक्रमे'** (यजु०मा०स० ३४।४३), *'वामनो ह विष्णुरास'* (*शत० १।२।५।५*)।

६-परशुरामावतार—**'इद मे ब्रह्म च क्षत्र चोभे'** (यजु०मा०स० ३२।१६), **'रामो भार्गवेय'** (ऐ० ७।५।३४)।

७-रामचन्द्रावतार— **'रामे कृष्णो'** (अथर्व० १।२३।१), **'सीते वन्दामहे त्वा'** (ऋक्० ४।५७।६), **'देवाना पूरयोध्या'** (अथर्व० १०।२।३१) (मन्त्ररामायण)।

८-श्रीकृष्णावतार—**'कृष्ण ते'** (ऋक्० ४।७।९) **'कृष्ण नियान हरय सुपर्णा'** (ऋक्० १।१६४।४७, अथर्व० ६।२२।१), **'रामे कृष्णो'** (अथर्व० १।२३।१), **'वासुदेवाय धीमहि'** (तै०आ० १०।१।६), **'देवकीपुत्राय'** (छा०उ० ३।१७।६) आदि।

अत वैदिक सिद्धान्तक अनुसार भगवान्की अवतारलीलाआका वर्णन, पठन, श्रवण, चिन्तन आदि सर्वथा अपूर्व पुण्यप्रद हे।

भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन

(शास्त्रार्थपञ्चानन श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

यद्यपि अकारणकरुण करुणावरुणालय अनन्तरूप श्रीभगवान्‌ने समय-समयपर अनन्त अवतार धारण किये हैं, जिनके प्रयाजन भी अनन्त ही ह आर फिर उनमसे एक-एक प्रयाजनक अभिप्राय भी असीम ह अनन्त ह उनकी इयत्ताका निर्धारण करना सर्वथा असम्भव है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
(रा०च०मा० १। १२१। २)

तथापि भगवदवतारक कुछ प्रयोजन अताव हृदयावर्जक हैं और उनकी अपार करुणाक परिचायक ह। उनमसे कुछेकका यहाँ दिग्दशन कराया जा रहा है।

उपनिषदाक अनुसार आँख कान, नासिका जिह्वा आदि समस्त ज्ञानन्द्रियाका श्रीभगवान्‌न वहिमुख वनाया ह अर्थात् आँख बाहरका ही सब कुछ दखती ह कान बाहरके ही शब्द सुन पात ह आर जिह्वा भी वाहरक ही पदार्थोका रसास्वादन कर पाता ह किंतु श्रीभगवान्? व सर्वसमर्थ स्वयम्भू पुरुष ता समस्त प्राणियाक शरारम भीतर—अन्त करणम ही विराजमान रहत ह। फलत ज्ञानन्द्रियाँ श्रीभगवान्‌क अतीव सन्निकट होते हुए भी उनके दिव्य दर्शन आदि लाकोत्तर आनन्दको प्राप्त करनसे सर्वदा वञ्चित ही रह जाती ह। कभी लाखाम कोई एक बिरला धार पुरुष ही अन्तर्मुख होकर भीतर सुप्रतिष्ठित उस अमृत-तत्त्वका साक्षात्कार कर पाता है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयभू-
स्तस्मात् पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद् धीर प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥
(कठोपनिषद् २। १। १)

इसलिये अपनी इस दुस्सह व्यथासे उपतप्त हाकर ज्ञानन्द्रियान श्रीभगवन्‌का उपालम्भ दने प्रारम्भ किये और कहा कि हे भगवन्! दूसर जीवाके ऊपर सम्भव है आपने करुणा की हागी परतु हम तो आपने वहिर्मुख बनाकर एव अपने दशनास भी वञ्चित करक एक प्रकारसे मार ही डाला है। जब काई विरला धार पुरुष हा **'आवृत्तचक्षु'** (अन्तर्मुख) हाकर आपके दिव्य दर्शन प्राप्त कर सकगा, तब आपके **'सर्वसौलभ्य'** अर्थात् सभीक लिये सर्वदा सुलभ रहनवाले गुणका क्या हागा? उसकी सार्थकता किस प्रकार हागी? क्या आपका यह महनीय गुण वन्ध्य नहीं हा जायगा? अतएव ह नाथ! आप हमार लिये भी सुलभ हा जाइये।

ज्ञानेन्द्रियाकी इस उपालम्भपूर्ण प्रार्थनास श्रीभगवान् द्रवित हो उठे तथा करुणार्द्र होकर उनके सम्यक् परितोषक लिय एव *'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'* अपने इस वचनकी सार्थकताके लिय अनुपम सौन्दर्य-शौर्यादि गुणगणासे सम्पन्न लाकोत्तर दिव्य कलवरसे वे अवतार धारण करने लग।

उक्त उपनिषद् मन्त्रम **'व्यतृणत्'** क्रिया-पद अत्यन्त साभिप्राय है जा व्याकरणकी **'तृहू हिंसी हिंसायाम्'** धातुसे निष्पन्न हुआ है आर इसका अर्थ है—हत्या कर दी अथवा मार डाला। श्रीभगवान्‌क द्रवित होनेम इस क्रियापदने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही ह।

इस औपनिषद-प्रसङ्गक परिप्रेक्ष्यम कतिपय अभिज्ञाकी मान्यता है कि श्रीभगवान् अपने सौशील्य, औदार्य, वात्सल्य आदि गुणगणाकी चरितार्थताके लिये इस मर्त्यलोकमें अवतीर्ण होत हैं। यदि ऐसा न हो तो उनके क्षमाशीलता, पतितपावनत्वादि गुणगण निरर्थक एव वन्ध्य हो जायँगे। इस सदर्भम श्रीशुकदेवजीका कथन अत्यन्त सारगर्भित है। वे कहते हैं कि अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण, निराकार, निर्विकार एव निखिल गुणागार श्रीभगवान् साधारण जनाके कल्याणके लिये अवतार धारण किया करते हैं—

नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमयस्य निर्गुणस्य गुणात्मन ॥
(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

उक्त कथनका स्वारस्य यही है कि अपने महनीय गुणाके कारण असाधारण माने जानेवाले श्रीभगवान्‌का सर्वसाधारणके कल्याणार्थ, साधारण बन जाना ही उनका अवतार धारण करना है। इसीलिये भगवदीय गुणाके चरम विकासक अनेक मनोरम-स्थल हम यत्र-तत्र दखनेको मिलत हैं। विभीषण-शरणागतिके समय श्रीभगवान्‌के शरणागतवात्सल्यको दखकर कौन आनन्दस गद्गद नहीं हो जाता है? *'रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड'* कहकर जिन्हं अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकके रूपमे सुप्रतिष्ठित

किया गया हो, उनका अपने समस्त ऐश्वर्यको भुलाकर वानराको अपना अन्तरङ्ग, सुहृद् बनाना सौशील्यगुणकी पराकाष्ठा है। तभी तो गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भगवद्गुणसे मुग्ध होकर कहा है—

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥
(दाहावली ५०)

आलवन्दारस्तात्रम श्रीयामुनाचार्यस्वामी कहते हैं कि हे प्रभो! मेरे लिये तो आपके अतिरिक्त अन्य काई दयालु नहीं है। इसलिये दीन और दयालुका यह अद्भुत सयाग विधाताने उपस्थित कर दिया ह। कृपया इसे छोडिय मत। इस सम्बन्धका निर्वाह करते हुए मेरा उद्धार कीजिये—

तदह त्वदृते न नाथवान्
मदृते त्व दयनीयवान्न च।
विधिनिर्मितमेतदन्वय
भगवन् पालय मा स्म जीहप ॥

वेदादि शास्त्र जिन्हे सर्वदा *अजित अर्थात्* कभी न हारनेवाले कहते हा, उन्हींका खेलम हार जानपर श्रीदामाको अपने कन्धेपर बिठाना—**'उवाह भगवान् कृष्ण श्रीदामान पराजित '** छछियाभर छाछके लिये गापाङ्गनाआको नाचकर दिखाना—**'गोधूलिधूसराङ्गो नृत्यति वदान्तसिद्धान्त '**, रावणवधके अनन्तर उसक ओर्ध्वदेहिक सस्कारके लिये विभीषणको प्रेरित करना—**'क्रियतामस्य सस्कारस्तवाप्येष यथा मम'**, निकृष्ट समझे जानेवाल वनचर कोल, भील, किराताको मित्रकी भाँति गले लगाना इत्यादि कुछ ऐसे कार्य हैं जो अवतार धारण करक ही सम्पन्न किये जा सकते थे। वैकुण्ठ, साकेत, गोलोक आदि दिव्य लोकाम तो इन कार्योंका किया जाना सर्वथा असम्भव ही था।

अवतारके मूलमे करुणा होती है वही श्रीभगवान्को अज्ञानावच्छिन्न सामान्यजनोके उद्धारक लिये प्ररित करती है। गुरुदेव श्रीरवीन्द्रनाथठाकुरक एक पूजागीतम इसी आशयकी कुछ पक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'ताइ तोमार आनन्द आमार पर। तुमि ताइ एसेछ नीचे। अमाय नइले त्रिभुवनेश्वर! तोमार प्रेम हत ये मिछे।'

हे त्रिलोकीनाथ! तू (अवतार लेकर) नीचे उतरता हे क्याकि तेरा आनन्द हमपर ही निर्भर है। यदि हम न होते ता तुम्हे प्रेमका अनुभव कहाँसे होता ? (तुम किसके साथ हिल-मिलकर बात करते, खेलते, खात-पीते ?)

श्रीभगवान्की क्षमाशीलताको लक्ष्य करके किसी क्षुद्रजनका यह कथन भी कम मनोरञ्जक नहीं है कि हे भगवन्! यदि हमारे-जैसे अहर्निश पाप करनेवाले लोग न हो तो आप क्षमा किसे करग ? आपकी क्षमाशीलता वन्ध्य न हो जायगी ? आपकी अदालत हमार कारण ही ता चल रही हे—

गुनाहा का होतीं न आदत हमारी
तो सूनी ही रहती अदालत तुम्हारी।

अन्तम भगवती कुन्तीकी एक अतिशय महत्त्वपूर्ण उक्तिपर भी दृष्टिपात कर ल, जिसम भगवदवतारक एक विलक्षण प्रयाजनकी ओर सकेत किया गया है। अखण्ड सच्चिदानन्द परमात्मा श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए व कहती हैं—

तथा परमहसाना मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थ कथ पश्येम हि स्त्रिय ॥
(श्रीमद्भा० १।८।२०)

अमलात्मा परमहस महामुनीन्द्राको भक्तियागका विधान करनेक लिये श्रीभगवान्का अवतार होता है।

इस कथनका ललित निष्कर्ष यह है कि ब्रह्माद्वैत-भावनाम निष्ठा रखनेवाले अथ च निर्विकल्प समाधिके द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार सुखानुभूति प्राप्त करनेवाले परमहस महात्माओको भक्तियोगद्वारा सरस बनानेके प्रयोजनसे श्रीभगवान् अवतार धारण करते हैं। वास्तवमे अद्वैततत्त्व तो अव्यवहार्य होनेसे व्यवहारमे अनुपादेय ही है। व्यावहारिक सत्य तो द्वैतम ही परिनिष्ठित है। नैष्कर्म्यविधिसे समुत्पन्न उत्तमोत्तम ज्ञानकी भी भगवद्भक्तिके बिना काई शाभा नहीं है। वह सर्वथा शुष्क है। उसम सरसता भक्तिके सस्पर्शसे ही आती है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जित
न शाभते ज्ञानमल निरञ्जनम्।
(श्रीमद्भा० १।५।१२)

इतना ही नहीं, भक्तिके माहात्म्यमे यहाँतक कहा गया है कि जो महानुभाव निखिल कल्याणामृतनिष्यन्दिनी भगवद्भक्तिकी उपेक्षा करके कवल शुष्क ज्ञानकी उपलब्धिमे ही श्रमशील रहते हैं और काय-क्लेश अनुभव किया करते है, उनका यह प्रयास चावलकी आशाम भूसीको पीटते रहनेकी तरह सर्वथा व्यर्थ ही है। अन्तम केवल क्लेश ही उनक हाथ लगा करता है, चावल नहीं—

श्रेय स्रुति भक्तिमुदस्य त विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।४)

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीभगवान्के अवतारधारणका प्रयोजन अपने निर्गुण-निराकार स्वरूपका परित्याग करके सगुण-साकार विग्रहमे अनन्तकन्दर्पदपदमनशील, परम सुन्दर स्वरूपसे प्रकट होकर एक ओर परमहस योगीन्द्र-मुनीन्द्रोके शुष्क ज्ञानसे भरे जीवनमे भक्तियोगकी सरसता उत्पन्न करना है तो दूसरी ओर ज्ञानेन्द्रियोसे लेकर साधारण-जनोतकके लिये सुलभ होकर अपने सौशील्य, शरणागत-वात्सल्य, औदार्य, पतितपावनत्वादि सद्गुणोका ससारमे विस्तार करना है।

~~~ ० ~~~

भगवान्‌के अवतारका रहस्य

(श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)

या लीला गोकुलान्तर्मधुपुरिरचिता या कृता द्वारवत्या
क्षित्या नित्यावतारे प्रतियुगमुचिता सूचिता प्राङ्मुनीन्द्रै-
स्तास्ता विस्तारयन्यो वसति शितिगिरौ वेदवेद्योऽवतारी
नित्ये धाम्नि स्वनाम्नि स्फुरतु मुररिपु सोऽयमन्त सदा न ॥

वृन्दावन, मथुरा एव द्वारकापुरीमे जो-जो अवतार-लीलाएँ हुई हैं तथा प्राचीन मुनि-ऋषियोके द्वारा सूचित प्रतियुगोचित जो-जो लीलावतारसमूह इस धरतीपर हुए हैं, उनके विस्तार-प्रसारपूर्वक जो वेदवेद्य अवतारी भगवान् अपने नित्यधाम श्रीपुरुषोत्तमपुरी-क्षेत्रमे समुपविष्ट हैं, वे ही श्रीनीलाचलविहारी मुरारि सदैव हमारे अन्त करणमे स्फुरित हो।

अखण्ड, सत्-चित्-आनन्द, इन्द्रियोसे अग्राह्य एव एक अद्वितीय, त्रिगुणातीत, निराकार, परब्रह्म, परमात्मा ही सत्पुरुषोकी रक्षा तथा दुष्ट जनोका सहार करनेके निमित्त युग-युगान्तरसे सगुण-साकारस्वरूपमे अवतारग्रहणपूर्वक सनातन धर्मका सस्थापन करते आ रहे हैं। भगवान्के अवतारका प्रयोजन भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचारपूर्ण दिव्य लीलाओसे अपने भक्तोको अपनी ओर आकृष्ट करके उनको अनुप्राणित करना और ससारसागरसे उनका समुद्धार करना है।

भगवान्की अवतार-कथाओके तत्त्व-रहस्यका जानना, समझना केवल भगवत्कृपासे ही साध्य है। जब ससारके लोग विषयोके मोहमे पडकर भगवान्को भूल जाते हैं और उनकी स्वाभाविक विषमताके कारण पाप-तापसे झुलसने लगते हैं तब उन्हे दु खसे बचानेके लिये अनन्त शान्ति देनेके लिये और उनका महान् अज्ञान मिटाकर अपने स्वरूपका बोध कराने एव अपनेमे मिला लेनेके लिये स्वय भगवान् आते हैं और अपने आचरणो उपदेशो तथा अपने दर्शन स्पर्श आदिसे जगत्के लोगोको मुक्तहस्तसे कल्याणका दान करते हैं। यदि वे स्वय आकर जीवोकी रक्षा-दीक्षाकी व्यवस्था नहीं करते जीवोको अपनी बुद्धिके बलपर सत्य-असत्यका निर्णय करना होता और अपने निश्चयके बलपर चलकर उद्धार करना होता तो ये करोडो कल्पोमे भी अपना उद्धार कर सकते या नहीं, इसमे सदेह है परतु भगवान् अपने इन नन्हे-नन्हे शिशुओको कभी ऐसी अवस्थामे नहीं छोडते, जब वे भटककर गड्ढेमे गिर जायँ। जब कभी ये अपने हाथमे कुछ जिम्मेदारीका काम लेना चाहते हैं और इसके लिये उनसे प्रार्थना करते हैं तब बहुत समझा-बुझाकर सृष्टिका रहस्य स्पष्ट करके उन्हे अपने सामने कुछ काम दे देते हैं।

भगवान्के जन्म-कर्मकी दिव्य अलौकिक अवतार-लीला-कथाओको जो तत्त्वत जानता है अथवा भगवत्-स्मरणपूर्वक इस ससारमे पद्मपत्रकी भाँति रहता है, वह अन्तत भगवान्को ही प्राप्त होता है।

यह स्थूल जगत् भगवदीय बहिरङ्गलीलाका एक रूप है। उनकी अन्तरङ्ग अवतार-लीलाएँ भी उसमे निहित हैं, जो दिव्यातिदिव्य एव गुह्यतम भी हैं। अपने परिकरोके साथ भगवान् नित्य लीला-विहार करते हैं, भगवान्के अनन्य भक्त ही भगवदीय अन्तरङ्ग-अवतार-कथाओको जानते हैं।

भगवान्की नित्य अवतार-लीला अब भी चल रही है, उसका कहीं विराम नहीं होता। वैकुण्ठ साकेत गोलोक तथा कैलास आदि परमधामोमे उनकी मधुरातिमधुर अवतार-कथाओका रसास्वादन उनके अनन्य भक्तोको सुलभ होता रहता है। भगवत्कथा-चिन्तन अवतारोका निदिध्यासन ही भगवत्प्राप्तिका अमोघ साधन है।

सचराचर विश्व-ब्रह्माण्डके स्वामी श्रीभगवान्की
~~~

त्रिगुणात्मिका अवतार-कथा अपरम्पार है। तत्वत सृष्टिके प्रत्येक कणम अनुक्षण उनकी अवतार-लीला चल रही है। भगवान्‌की योगमायाका यह जादू है कि जो हम प्रतिक्षण नचा रहा है और हम समझते हैं कि अपनी प्रसन्नता और स्वानन्दके लिये हम स्वय नृत्यरत हैं। सृष्टिके प्रशस्त रङ्गमञ्चपर सर्वत्र ही विस्मयोत्पादक-लीला चल रही है।

श्रीरामायण, महाभारत, पुराणादि सर्वशास्त्राने यह प्रमाणित किया है कि भगवान् अधर्मकी अभिवृद्धि होनेपर धराभारनिवारणार्थ मनुष्यलाकम अवतार-ग्रहणपूर्वक अधर्मका नाश करते हैं।

आज हिंसा-प्रतिहिसा, अधर्म-अत्याचार, छल-कपटाचार तथा प्राणियाम परस्पर वैर-विरोधस पृथ्वीदेवी भयाक्रान्त हो रही हैं। अधर्माचार, कलह, विद्वेषाग्नि, युद्ध और भोग-तृष्णाकी पैशाचिक-ताण्डवलीलास सारा ससार विनाशकी आर गति कर रहा है। अत इस समय भगवान्‌की अवतार-कथाआका प्रचार-प्रसार अपरिहार्य है। सच्चिदानन्द ईश्वर ही जगत्‌क अहर्निश रक्षक हैं एव उनकी अवतार-कथा ही कलियुगक समस्त पापोका विध्वस करनेवाली है—

अवति याऽनिश विश्व सच्चिदानन्द ईश्वर।
अवतारकथा तस्य कलिकल्मषनाशिनी॥

जो मानव दुस्तर ससार-सागरसे पार जाना चाहते हैं, उनके निमित्त भगवान्‌की अवतार-कथाके रसास्वादनको छोडकर अन्य कोई अवलम्ब नहीं।

एक बार देवान दानवापर विजय पा ली। विजय तो भगवान्‌की ही थी, परतु अभिमानवश देवाने उसे स्वीय विजय समझा। अत भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन आवश्यक था। श्रीभगवान्‌ने यक्षरूपसे देवाके समक्ष प्रकट होकर देवताआके विजय-अभिमानको चूर्ण किया। यह जगत् भी भगवान्‌का आद्य अवतार है। द्वापरयुगमे सती द्रौपदीके लज्जानिवारणार्थ भगवान्‌की वस्त्रावतार-कथा प्रसिद्ध है। सृष्टिसृजनमे चतु सन, वराह, देवर्षि नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञपुरुष, ऋषभदेव, हस, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिह, वामन, व्यास, हयग्रीव, हरि, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि आदि अनेक अवतार हुए हैं।

श्रीभगवान्‌की इन अवतार-कथाआका कीर्तन, श्रवण एव स्मरण करके हृदयको शुद्ध करना चाहिये। अन्त स्थित परमपिता परमात्माको शीघ्र पहचानकर परस्पर प्रेम और विमल मैत्रीका सम्पादन करना ही परम श्रेयस्कर है। वस्तुत हमारे हित-साधनके निमित्त ही भगवान् आप्तकाम होते हुए भी अवतार धारण करते हैं—

'नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।'

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

अवतार-कथाएँ हम भगवान्‌की ओर उन्मुख कराती हैं तथा हमारा सर्वविध कल्याण करनेमे समर्थ हैं।

~~~ ० ~~~

जीवोपर अनुग्रह करना ही श्रीभगवान्‌के अवतारका हेतु है

(श्रीशिवरतनजी मोरोलिया शास्त्री)

अवतारका अर्थ है—उतरना। सच्चिदानन्दस्थितिसे जब परमात्मा भक्तवात्सल्यके कारण मायाके क्षेत्रमे उतर आते हैं तब इसे 'अवतार' कहते हैं। भगवान्‌का अवतार महान् ज्ञानीमे रसोल्लास लानेके लिये, अद्वैतनिष्ठके ब्रह्मानन्दमे उल्लास लानेके लिये तथा परमहसाका श्रीपरमहस बनानेके लिये हुआ करता है।

जगत्‌मे धर्मकी स्थापना, ज्ञानके सरक्षण, भक्तोके परित्राण तथा आततायी असुराके दलन एव प्रेमी भक्तोकी प्रेमोत्कण्ठा पूर्ण करनेके लिये प्रभु बार-बार अवतीर्ण होते हैं। ईश्वरका अवतरण इस तथ्यका स्मरण कराता है कि आसुरी शक्तियाँ सृष्टिमे व्याप्त देवत्व तथा सारभूत अच्छाइयापर विजय नहीं प्राप्त कर सकतीं। इसलिये जब धर्मकी अवनति और अधर्मकी उन्नति होती है, तब दुष्टोका नाश करने, सज्जनाकी रक्षा करने तथा न्याय (धर्म)-की स्थापनाके लिये ईश्वर धरतीपर आते हैं।

जब धार्मिक एव ईश्वरप्रेमी सदाचारी पुरुषो तथा निरपराध एव निर्बल प्राणियापर बलवान् और दुराचारी मनुष्याका अत्याचार बढ जाता है तथा उसके कारण लोगोमे सद्गुण और सदाचारका अत्यन्त ह्रास होकर दुर्गुण तथा अनाचार अधिक फल जाता है, तब यह धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धिका स्वरूप कहलाता है। ऐसी अवस्थामे परम दयालु भगवान् अपने प्रेमी भक्ताका उद्धार करने,
~~~

उनकी इच्छाके अनुसार उन्हे परम आनन्दित करने तथा अपने दिव्य गुण, प्रभाव, नाम, रूप, लीला, धाम, तत्त्व और रहस्यका विस्तार करनेके लिये लीलाविग्रह धारण करते हैं। इसके साथ ही मनुष्योंके अन्तःकरणमें वेद, शास्त्र, धर्म और परलोकके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराकर संसार-सागरसे उनका उद्धार करानेके लिये अनेक स्वरूपोंमें प्रकट होते हैं।

भगवान्‌के निर्गुण, सगुण—दोनों ही रूप नित्य और दिव्य हैं। अपनी अत्यन्त दयालुता और शरणागतवत्सलताके कारण जगत्‌के प्राणियोंको अपनी शरणागतिका सहारा देनेके लिये ही भगवान् अपने अजन्मा, अविनाशी और महेश्वर-स्वभाव तथा सामर्थ्यके सहित ही नाना रूपोंमें प्रकट होते हैं और अपनी अलौकिक लीलाओंसे जगत्‌के प्राणियोंको परमानन्दके महासागरमें निमग्न कर देते हैं।

जब सत्त्वगुणसम्पन्न जीव साधनामें उन्नति करते-करते इस दशापर पहुँच जाते हैं कि भगवद्दर्शनके बिना उन्हें चैन नहीं मिलता तब श्रीभगवान् अपने दिव्य धामसे अवतीर्ण होकर उन्हें कृतार्थ करते हैं। जीवोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करना ही श्रीभगवान्‌के अवतारका मुख्य हेतु है। इसी अनुग्रहप्रदर्शनको गीतामें 'साधु-परित्राण' कहा गया है। संतोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करते समय श्रीभगवान् कभी-कभी संतोंके विरोधी और विपक्षियोंका निग्रह भी करते हैं। जैसे कि गजेन्द्रके उद्धारके साथ ही उन्होंने ग्राहका निग्रह भी किया। गीतामें इस निग्रहको 'दुष्कृतोंका विनाश' कहा गया है।

भगवान् तो सर्वशक्तिमान् हैं, वे बिना अवतार लिये भी सब काम कर सकते हैं लेकिन लोगोंपर विशेष दया करके अपने दर्शन और स्पर्श तथा भाषणादिके द्वारा सुगमतासे उन्हें उद्धारका शुभ अवसर देनेके लिये तथा अपने प्रेमी भक्तोंको अपनी लीलादिका आस्वादन करानेके लिये साकाररूपसे प्रकट होते हैं, क्योंकि यह काम बिना अवतारके नहीं हो सकता। भगवान् सृष्टि-रचना और अवतारलीलादि जितने भी कर्म करते हैं, उनमें उनका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं है केवल लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही वे मनुष्यादि अवतारोंमें नाना प्रकारके कर्म करते हैं। जीवमात्रका परम हित-साधन ही परमात्माका स्वार्थ है।

भगवान्‌के अवतारका कोई निश्चित समय नहीं होता कि अमुक युगमें, अमुक वर्षमें, अमुक महीनेमें और अमुक दिन ही भगवान् प्रकट होंगे। जिस समय भगवान् प्रकट होना आवश्यक समझते हैं, उसी समय प्रकट हो जाते हैं। जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे असंख्य छोटे-छोटे जलप्रवाह निकलकर चारों ओर प्रवाहित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंका प्राकट्य होता है। अवतारके पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, युगावतार पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार आदि अनेक भेद हैं। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याणविग्रह प्रभुके मुख्य दस तथा चौबीस अवतारोंका विशेष वर्णन है। जिस प्रकार परतत्त्व भगवान् विष्णु समय-समयपर अवतार लिया करते हैं, उसी प्रकार उनकी लीला-सहचरी भगवती लक्ष्मीजी भी अवतार लिया करती हैं। यों तो श्री और विष्णु एक ही हैं तथापि भक्तोंके अनुग्रहार्थ वे दो रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। उदाहरणके लिये श्रीमन्नारायण जब रघुकुलमें श्रीरामजीके रूपमें अवतीर्ण हुए तब लक्ष्मीजी भी जनकनन्दिनी श्रीसीताके रूपमें आयीं।

चौबीस अवतारोंका हेतु—पहला अवतार सनत्कुमारोंका है, वह ब्रह्मचर्यका प्रतीक है। सब धर्मोंमें ब्रह्मचर्य पहले आता है। इससे मन, बुद्धि चित्त, अहंकार पवित्र होते हैं। दूसरा अवतार वराहका है, वह संतोषका प्रतीक है। तीसरा अवतार नारदजीका है, ये भक्तिके अवतार हैं, नाम-संकीर्तनके अवतार हैं। जो ब्रह्मचर्यपालन करे और प्राप्तस्थितिमें संतोष माने, उसे नारद अर्थात् भक्ति मिलेगी। चौथा अवतार नर-नारायणका है, भक्ति मिले तो उससे भगवान्‌का साक्षात्कार होता है। भक्तिद्वारा भगवान् मिलते हैं। भगवान् नर-नारायणका अवतार तपस्यारूप धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये हुआ। पाँचवाँ अवतार कपिलदेवजीका है, जो ज्ञान-वैराग्यस्वरूप है। ज्ञान और वैराग्यके साथ भक्ति आयगी तो भक्ति सदाके लिये दृढ़ रहेगी। छठा अवतार दत्तात्रेयजीका है, जो सद्गुरुस्वरूपकी प्रतिष्ठाके लिये हुआ।

ऊपर बताये गये पाँच गुण—ब्रह्मचर्य संतोष भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आयेंगे तो आप गुणातीत होंगे भगवान्

आपके यहाँ आयगे। सातवाँ अवतार यज्ञका है। यज्ञके माध्यमसे धर्मका प्रचार करनेके लिये आदिपुरुष भगवान् यज्ञके रूपमें अवतरित हुए। भगवान्का आठवाँ अवतार ऋषभदेवके रूपमें हुआ। यह अवतार रजोगुणसे भरे हुए लोगोंको मोक्षमार्गकी शिक्षा देनेके लिये ही हुआ था। नवाँ अवतार पृथुमहाराजका है, ये धर्मपरायण थे तथा इन्हींके नामसे भूमिका नाम 'पृथ्वी' पड़ा। दसवाँ अवतार मत्स्य-नारायणका है, इस अवतारमें भगवान्ने वैवस्वत मनु तथा सप्तर्षियोंको अत्यन्त दिव्य तथा लोककल्याणकारी उपदेश दिया। ग्यारहवाँ अवतार कूर्मका है, जो अमृतप्राप्तिके लिये हुआ। बारहवाँ अवतार धन्वन्तरिका है इन्होंने लोककल्याणार्थ अवतार ग्रहण किया। आरोग्यदेवके रूपमें इनकी पूजा की जाती है। तेरहवाँ अवतार मोहिनीका है, भगवान्ने इस अवतारमें सिद्ध किया कि सम्पूर्ण सृष्टि मायापति भगवान्की माया है, कामके वशीभूत सभी प्रभुके उस मायारूपपर आकृष्ट हैं। इस अवतारसे प्रभुने यह संदेश दिया है कि आसुरभावसे अमरता प्रदान करनेवाला अमृत प्राप्त होना सम्भव नहीं वह तो करुणामय प्रभुकी चरणसेवासे ही सम्भव है। चौदहवाँ अवतार नरसिंह स्वामीका है। नरसिंह अवतार पुष्टि-अवतार है, यह अवतार भक्त प्रह्लादपर कृपा करनेके लिये हुआ है, सच्चे भक्तके विश्वासकी रक्षा करनेके लिये हुआ है। प्रह्लादजीने अपनी आस्थाके बलसे खम्भेसे भगवान्को प्रकट कर दिया। ईश्वर सर्वत्र है, सर्वव्यापक है—ऐसा बोलो नहीं उसका अनुभव करो, यह शिक्षा इस अवतारसे प्राप्त होती है। पंद्रहवाँ अवतार भगवान् वामनका है, जो पूर्ण निष्काम है। उसके ऊपर भक्तिका, नीतिका छत्र है, जिसने धर्मका कवच पहना, उसे भगवान् भी नहीं मार सकेंगे, राजा बलिकी तरह। यह वामन-चरित्रका रहस्य है, परमात्मा बड़े हैं, तब भी बलिके आगे वामन अर्थात् छोटे बनते हैं। भगवान् भक्तको अपनेसे बड़ा मानते हैं, यह इस अवतारकी शिक्षा है। सोलहवाँ अवतार हयग्रीवका है इसमें भगवान्ने दैत्योंसे वेदोंकी पुनः प्राप्ति की। भगवान् विष्णु शास्त्र भक्त एवं धर्मके त्राण तथा अधर्मका नाश करनेके लिये हयग्रीवरूपमें प्रकट हुए। शास्त्रकी रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं। इसीलिये उन्होंने शास्त्रप्रमाणको सर्वोपरि बताते हुए कर्मोंका नियामक बताया है। भगवद्वाणी है—**'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥'** (गीता १६।२४) सत्रहवाँ अवतार हरिका हुआ। इस अवतारमें भगवान्ने गजेन्द्रका उद्धार कर उसे अपना पार्षद बनाया। इससे यह ज्ञात होता है कि भगवान् भक्तको अपने धाममें बुला लेते हैं। अठारहवाँ अवतार श्रीपरशुरामजीका हुआ। ये श्रीविष्णुके आवेशावतार माने गये हैं। इन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया। उन्नीसवाँ अवतार श्रीव्यासभगवान्का हुआ। ये भगवान् नारायणके कलावतार थे। महर्षि व्यास मूर्तिमान् धर्म थे। वे दया, धर्म, ज्ञान एवं तपकी परमोज्ज्वल मूर्ति थे। ये ज्ञानके अवतार थे। बीसवाँ अवतार भगवान् हंसका हुआ। इसमें भगवान् हरिने हंसरूप धारणकर सनत्कुमारादि मुनियोंको ज्ञानमार्ग तथा आत्मतत्त्वका रहस्यमय सूक्ष्म उपदेश दिया। इक्कीसवाँ अवतार श्रीरामजीका हुआ। यह अवतार मर्यादापुरुषोत्तमका है। बाईसवाँ अवतार श्रीकृष्णका हुआ, जो लीलापुरुषोत्तम कहलाते हैं—ये दोनों अवतार पूर्ण अवतार हैं। तेईसवाँ अवतार बुद्ध अवतार है, भगवान् बुद्धने अहिंसाको परम धर्म माना था। कलियुगके अन्तमें भगवान् कल्किरूपमें अवतार लेंगे—ऐसी बात श्रीमद्भागवतमें कही गयी है। यह भगवान्का चौबीसवाँ अवतार होगा।

जिस प्रकार कोई राजा अपने राज्यमें सज्जनोंको पुरस्कारद्वारा प्रोत्साहित करके, दुर्जनोंको तिरस्कारद्वारा निरुत्साहित करके प्रजामें अभ्युदयशील सामञ्जस्य स्थापित करता है, उसी प्रकार भगवान् भी यथासमय अवतीर्ण होकर यथायोग्य निग्रहानुग्रह प्रदर्शित करते हुए सृष्टिमें धर्मकी स्थापना किया करते हैं। समस्त धर्मोंका पर्यवसान श्रीभगवत्साक्षात्कारमें ही है। भगवत्साक्षात्कार तभी हो सकता है जब भगवान्में निष्ठा हो निष्ठा तभी होती है जब अनुराग हो अनुराग उसीमें होता है जिसकी ओर आकर्षण होता है। अतएव जीवमात्रको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये ही श्रीभगवान् अवताररूपमें ऐसी-ऐसी मोहिनी क्रीडाएँ करते हैं जिनका आस्वादन कर भक्तोंका मन उनमें हठात् आसक्त हो जाता है। यही ईश्वरकी असीम अनुकम्पा है।

भक्तकी अतीव प्रियता—अवतारका प्रमुख कारण

(श्रीरघुराजसिंहजी बुन्देला 'व्रजभान')

व्यक्ति जिससे प्रेम करता है, उसका सामीप्य चाहता है, अपने प्रेमीके वियोगमें वह नहीं रह सकता। प्रेमी-प्रेमास्पदका यह रिश्ता सनातन है।

भक्त और भगवान् सनातन प्रेमी हैं। भक्त भगवान्के बिना नहीं रह सकता और भगवान् भक्तके बिना नहीं रह सकते। भक्त और भगवान्के बीच एकमात्र प्रेमका रिश्ता होता है। प्रेमके सिवाय किसी अन्य उपायसे भगवान्को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यद्यपि कृपा और करुणाके कारण भी भगवान् प्रकट होते हैं तथापि कृपा और करुणा प्रेमकी ही कनिष्ठ विभूतियाँ हैं। पुरुषोत्तम भगवान् केवल प्रेमसे ही प्रकट होते हैं—*'प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥'* प्रेम सदा निष्काम होता है, जिसे गोपीभाव अर्थात् गुप्त महाभाव भी कहा जाता है।

भगवान् सबके प्रेमास्पद होते हैं। उनके पास इस प्रकारके रूप, गुण, स्वभाव और लीलाकर्तृत्व होते हैं, जो सबको आकर्षित करते हैं। सबको आकर्षित करना उनका सहज स्वभाव है। इसी कारण उन्हें 'कृष्ण' कहा जाता है।

किंतु भगवान्को आकर्षित करनेका स्वभाव भक्तके पास सहज नहीं होता। उसे इस स्वभावका अर्जन करना होता है। वह स्वभाव क्या है जिससे भक्त भगवान्को आकर्षित करे तथा जिसके कारण भगवान् भक्तको खोजते फिरें, उसका पता पूछते फिरें और उससे मिलनेको रोते फिरें।

वह स्वभाव, जिसके कारण भक्त भगवान्को अतिशय प्रिय लगने लगता है, स्वयं भगवान्ने ही श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनको इस विषयमें बताया है। उन्होंने भक्तकी अतीव प्रियताके लक्षण इस प्रकार कहे हैं—

(१) अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्—जो सम्पूर्ण भूत प्राणियोंसे द्वेष नहीं करता अर्थात् जो द्वेषभावसे रहित है।

(२) मैत्र—जो सबका मित्र होता है जिसका कोई भी शत्रु नहीं होता जो अजातशत्रु और विश्वमित्र होता है।

(३) करुण एव च—जो अपनेसे दीन-हीन व्यक्तियोंसे पशु-पक्षियोंसे, वनस्पतियोंसे तथा दरिद्रों अज्ञानियों, रोगियों और अश्रद्धालुओंके प्रति द्वेष-रोष न करके करुणासे व्यवहार करता हुआ उनकी पारमार्थिक सेवा करता रहता है।

(४) निर्मम—जो निर्मम है अर्थात् जो ममतासे रहित है, जो 'न मम' भाववाला है। जो परतासे मुक्त है अर्थात् जिसके लिये पराया कोई नहीं है, जो अपने परायेकी ममता-परतावाली भेद-बुद्धिसे ऊपर उठ गया है।

(५) निरहङ्कार—जिसका अहंभाव सदाके लिये समाप्त हो गया है अर्थात् जो अहंकार और कर्तृत्वाभिमानसे रहित है और दूसरोंके साथ आत्मवत् व्यवहार करता है।

(६) समदुःखसुख—जो सुख-दुःखमें सम है। अर्थात् दुःखोंसे दुःखी नहीं होता और सुखोंसे सुखी नहीं होता। जो दुःखोंसे डरकर भागता नहीं है और सुखोंसे आकर्षित नहीं होता। सुख आये चाहे दुःख आये, दोनों परिस्थितियोंमें जो एकसमान रहता है।

(७) क्षमी—जो क्षमाशील है अर्थात् अपराध करनेवालेको दण्ड-सक्षम होते हुए भी क्षमा कर देता है।

(८) सन्तुष्ट—जो सन्तुष्ट है अर्थात् जो प्रारब्धप्रदत्त प्रत्येक परिस्थितिमें सन्तुष्ट रहता है। जो घोर विपत्तिकालको भी अपनी साधना बना लेता है। विपरीत परिस्थितियोंको जो अपने परिष्कारका हेतु मानता है और संतोषपूर्ण जीवन व्यतीत करता है।

(९) सततं योगी—जो सतत योगी है। इस संसारके मरणधर्मी और पतनधर्मी स्वभावमें रहता हुआ जो निरन्तर योगाभ्यास, ध्यान-स्मरण और निष्काम कर्तव्यके द्वारा सतत रूपसे भगवान्से जुड़ा रहता है, जिसका योग एक बार उपलब्ध होकर फिर अस्त नहीं होता, जो संसारकी उपेक्षा कर भगवान्से सतत-योगके द्वारा सतत रूपसे जुड़ा रहता है।

(१०) यतात्मा—जो यतात्मा है अर्थात् जो एक बार भगवान्से युक्त हो जाता है और फिर वियुक्त न होनेके लिये अपना शमन करता रहता है। जो एक बार भगवद्भावभावित होकर अपने आत्मोद्धारके प्रति सावधान रहता है। जो परमस्मृतिको प्राप्त करके पुनर्विस्मृतिके प्रति सतर्क रहता हुआ निरन्तर आत्मनियन्त्रण, अन्तर्विनियमन और भगवत्स्मरण नामक योगयत्न करता रहता है।

(११) दृढनिश्चय—जो दृढनिश्चयी है अर्थात् जिसने अपना परम गन्तव्य अर्थात् मेरी प्राप्तिका दृढतापूर्वक निश्चय कर लिया है। जो निर्विकल्प रूपसे मेरा और केवल

दिया है।

(१२) मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्त स मे प्रिय — जिसने अपने मन और बुद्धिको मेरे अर्पण कर दिया है, जिसकी बुद्धि मेरे अतिरिक्त अन्यका निर्णय नहीं करती, जिसकी बुद्धि मेरा निश्चय करके अन्तिमरूपसे निर्विकल्प हो गयी है—ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय होता है।

(१३) यस्मान्नोद्विजते लोक —जिससे लोक उद्विग्न नहीं होता अर्थात् जिससे सम्पूर्ण जगत् अनुद्विग्न रहता है, जो ससारके किसी भी प्राणीके सहज जीवनमे हस्तक्षेप नहीं करता।

(१४) लोकान्नोद्विजते च य —और न ही जो ससारसे उद्विग्न होता है अर्थात् ससारके किसी भी व्यक्ति, प्राणी अथवा परिस्थितिसे जो प्रभावित नहीं होता। जो हर परिस्थितिमे अपनी सहज शान्ति भङ्ग नहीं करता है।

(१५) हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो य स च मे प्रिय — जो हर्षमुक्त है अर्थात् जो उपलब्धियोमे प्रसन्न नहीं होता, जो अमर्षमुक्त हे अर्थात् जो अनुपलब्धियासे, असफलताआसे अप्रसन्न नहीं होता, जिसे अन्यकी सफलतापर ईर्ष्या नहीं होती। जो भयमुक्त हे अर्थात् जिसे मुझपर अटल विश्वास है और जो उद्वेगमुक्त है अर्थात् जो मानसिक रूपसे तनावमुक्त है, जिसमे स्वीकारभाव निर्विकल्प हो गया है, जो सहज, सरल और प्रशान्त हो गया है—ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।

(१६) अनपेक्ष —जो सम्पूर्ण अपेक्षाओस रहित है, जो एकदम सबसे निरपेक्ष हो गया हे, जो किसीकी आशा नहीं करता।

(१७) शुचिर्दक्ष —जो शुचिर्दक्ष है अर्थात् जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि ओर हृदयकी पवित्रता बनाय रखता है, जिसका शरीर निरोग इन्द्रियाँ स्वस्थ, मन निर्मल, बुद्धि स्थिर और हृदय मद्भावसे परिपूर्ण तथा विशुद्ध हे ओर जा सब प्रकारसे कुशल है।

(१८) उदासीन —जो उदासीन हे अर्थात् जो किसी भी प्रकारक आग्रह और अनाग्रहसे रहित है, जो एकदम आत्मस्थ है आर निर्विशेष स्वभावका प्राप्त हो चुका है।

(१९) गतव्यथ —जो सम्पूर्ण व्यथाआसे ऊपर उठ गया हे। जो ससारके सम्पूर्ण द्वैत-द्वन्द्व अर्थात् परस्परविरोधी द्वन्द्वात्मकताम तथा उनसे प्राप्त हर्ष-शोक आर सुख-दु ख आदि समस्त व्यथाआसे परे हो गया हे।

(२०) सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्त स मे प्रिय — जो सर्वारम्भपरित्यागी है अर्थात् जिसने अपनी ओरसे सम्पूर्ण कर्मारम्भाका पूरी तरह त्याग कर दिया है, जो यथाप्राप्त परिस्थितियासे अनुपस्थितकी भाँति वर्तता है। वर्तनेवाले ससारका जो मात्र अनुवर्तन करता है तथा अहङ्कार और कर्तृत्वाभिमानजनक कोई भी कर्म नहीं करता है, वह मुझे अतीव प्रिय है।

(२१) यो न हृष्यति न द्वेष्टि—प्रारब्धप्रदत्त अनुकूल परिस्थितियाँ आनेपर जिसे हर्ष उत्पन्न नहीं होता और प्रतिकूल परिस्थितियाँ आनेपर जो उनसे द्वेष नहीं करता अर्थात् विपरीत परिस्थितियासे जो भागनेका प्रयत्न नहीं करता।

(२२) न शोचति न काङ्क्षति—प्रारब्धप्रदत्त विपत्तियाँ भोगते रहनेपर भी अथवा कर्तव्यगत विपत्तियाँ भोगते रहनेपर भी जो उनके लिये शोक नहीं करता और न ही किसी प्रकारकी आकाङ्क्षा करता है अर्थात् जो अनुकूलताकी भी कामना नहीं करता।

(२३) शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्य स मे प्रिय — जो शुभाशुभपरित्यागी है अर्थात् जो शुभम शुभबुद्धि नहीं रखता और अशुभमे अशुभबुद्धि नहीं रखता, जो शुभ कर्म शुभबुद्धिसे नहीं करता और अशुभ कर्म अशुभबुद्धिसे नहीं छोडता, जिसकी शुभमे गुणबुद्धि और अशुभम दोपबुद्धि समाप्त हो गयी है—इस प्रकार जो शुभाशुभके द्वैतभावसे सर्वथा मुक्त हो गया है—ऐसा भक्तिमान् मुझे प्रिय है।

(२४) सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो — जो व्यक्ति शत्रुके सामीप्यमे और हितैपी मित्रके सामीप्यमे रोष-रागादि मनोविकारासे असमान मन स्थिति नहीं बनाता। जो शत्रुके द्वारा अपमानित और शुभचिन्तकोद्वारा सम्मानित होनेपर अपने चिन्तनमे प्रतिकार या सत्कार-भावनाको जन्म नहीं देता। अर्थात् जो मान और अपमानमे एकसमान रहता है।

(२५) *शीतोष्णसुखदु खेषु सम* —जो शीत और उष्णमे तथा सुख आर दु खम सम रहता है। प्रारब्धप्रदत्त देश-काल और परिस्थितियामे जो क्षोभरहित होता है, जिसम स्वाकार-तिरस्कारकी हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती, जो समस्त परिस्थितियाम समबुद्धि हे।

(२६) सङ्गविवर्जित —जो सङ्गवर्जित है अर्थात्

जो सङ्कभावनासे रहित है, जिसका वर्तन, मनन, चयन और चिन्तन संसार और संसारके विषयोंके कामजनक सङ्गसे रहित है, जो सततरूपसे संसारसङ्गको दृढतापूर्वक असङ्गशस्त्रसे काटता रहता है अर्थात् जो शम, दम और यम-नियमका स्वाभाविक रूपसे पालन करता हुआ परमचिन्तन और परमवर्तन करता रहता है।

(२७) तुल्यनिन्दास्तुति —जो अपनी निन्दा-स्तुतिको एकसमान समझता है जो यह जानता है कि निन्दासे अपने चित्तमें जिस प्रकार प्रतिकारभाव बढ जाता है, उसी प्रकार स्तुतिसे सत्कारभाव बढ जाता है। दोनों ही अवस्थाओंमें केवल अहङ्कारकी ही वृद्धि होती है। ऐसा जानकर जो निन्दा और स्तुतिके प्रभावसे मुक्त हो जाता है वह इन दोनों ही परिस्थितियोंमें अपने समत्वमें रहता है।

(२८) मौनी—जो मौनी है अर्थात् जिसके सम्पूर्ण प्रश्न समाप्त हो गये हैं, जो परम उत्तरको प्राप्त हो गया है, जिसके विचार समाप्त हो चुके हैं जिसका चिन्तन अचिन्त्य हो गया है, जिसकी बहिर्वाणी और अन्तर्वाणी प्रशान्त हो गयी है, जो चरम-परम-निस्तब्ध हो गया है, जो शब्दसे अतीत हो गया है। जिसकी वाणी नादब्रह्मसे एकात्म हो गयी है।

(२९) सन्तुष्टो येन केनचित्—जो किसी भी परिस्थितिमें सदा परितृप्त ही रहता है, जैसे-तैसे भी खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते और पहनते-ओढते हुए सदैव तृप्त और संतुष्ट रहता है।

(३०) अनिकेत स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः—जो अनिकेत और स्थिरमति है अर्थात् जो शरीरसे तो भ्रमणशील है, किंतु मतिसे स्थिर रहता है, जो किसी एक देशका नहीं होता। जो सार्वभौम हो जाता है, जो वैश्विक हो जाता है जो सबका हो जाता है, जो निरन्तर विचरणशील रहता है किंतु जिसकी मति कहीं नहीं विचरती। जिसके मन, बुद्धि और चित्त निस्पन्द हो जाते हैं, जिसकी चेतना विकल्परहित, विषयरहित और द्वन्द्वरहित हो जाती है, ऐसा विचरणशील और स्थिरमतिवाला भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है।

यथोक्त धर्ममय अमृतकी पर्युपासना करनेवाले मुझमें श्रद्धा रखनेवाले और मेरे परायण रहनेवाले भक्त मुझे अतीव प्रिय होते हैं। इस प्रकार भक्तके ये गुण भगवान्‌को अतिप्रिय होते हैं, ऐसे ही विशेष प्रिय भक्तोंको दर्शन देने तथा उनपर विशेष कृपा करनेके लिये भगवान् अवतरित होते रहते हैं।

शक्तितत्त्व और अवतारवाद

(डॉ० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी एम्०ए० एम्०एड्०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०)

अवतार और उसका उद्देश्य

जब भगवान् किसी विश्वव्यापी एवं दुर्निवार्य आपदासे मानवजातिको मुक्त करनेके लिये साकार विग्रह ग्रहण करते हैं तो उस विग्रहको ही अवतार कहते हैं। यथा—मत्स्यावतार कच्छपावतार (कूर्मावतार), नृसिंहावतार, वराहावतार रामावतार, कृष्णावतार आदि।

अवतारके उद्देश्यपर प्रकाश डालते हुए भगवान् श्रीकृष्ण (गीता ४।७-८)-में कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इस प्रकार सामान्य रूपसे अवतारके चार उद्देश्य होते हैं। यथा—१-धर्मह्रासकी स्थितिमें उसका अभ्युत्थान, २-सज्जनों एवं पुण्यात्माओंकी आपदाओंसे रक्षा, ३-दुष्टों एवं अत्याचारियोंका संहार ४-धर्मकी संस्थापना।

रूपातीत शक्तिका रूपात्मक विश्वावतार

रूपातीत पराशक्ति ही सिसृक्षाके वशीभूत होकर विश्वके रूपमें आकार ग्रहण कर लेती है। 'सैव क्रियाविमर्शस्वस्था क्षुभिता च विश्वविस्तारः' (महार्थमञ्जरी गाथा-११) आत्मशक्तिके विषयमें भी यही कहा गया है। आत्मा खलु विश्वमूलं तत्र प्रमाणं न कोऽप्यर्थयते। (महार्थमञ्जरी) सारी सृष्टि कुण्डलिनीशक्तिकी ही अभिव्यक्ति है—'सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।'

'देवी ह्येकाग्र आसीत् सैव जगदण्डमसृजत्। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।' (बह्वृचोपनिषद्)

एकमात्र देवी ही सृष्टिसे पूर्व थीं, उन्होंने ब्रह्माण्डकी सृष्टि की। वे कामकलाके नामसे विख्यात हैं, व ही शृङ्गारकला कहलाती हैं।

एकका बहुत हो जाना ही ता जगत् है—'**एकोऽह बहु स्याम्।**'

जगत् भगवान्का आदि अवतार ह—'**आद्योऽवतार पुरुष परस्य।**'

'**स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमून्मीलयति।**'

(प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र २)

चिद्रूपा भगवती स्वतन्त्ररूपसे, निर्विकाररूपसे अनन्त विश्वाके रूपम स्फुरित हाती हैं—

'**चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्त-जगदात्मना स्फुरति।**' (प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र २)।

चिदात्मा स्वय ही 'अहम्' हाकर भी 'इदम्' रूपसे प्रकट हो जाती हैं।

शक्तितत्त्वकी परात्परता—

शक्तितत्त्वसे बढकर कोई भी नहीं हे। शक्तिमान् भी तभीतक शक्तिसम्पन्न हैं, जबतक शक्तिसे सम्बद्ध हैं। शिव शब्दके 'श' म 'इकार'की मात्रा ही शक्ति है, यदि इकार निकाल दिया जाय तो शिव शवमात्र रह जायँगे। शक्तिके विना शिव हिल भी नहीं सकते—

शिव शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त प्रभवितु
न चेदेव देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि।

(*सौन्दर्यलहरी*)

परमात्मा भी शक्तिसे रहित होनेपर सृष्टि, स्थिति तथा लय आदिमे अशक्त रहता है, किंतु जब वह शक्तिसे युक्त हो जाता है तब शक्त—समर्थ हो जाता है—

परोऽपि शक्तिरहित शक्त्या युक्ता भवेद्यदि।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्त शक्त एव हि॥

(वामकेश्वरतन्त्र)

शिवसूत्रकारकी दृष्टि—त्रिकदर्शनके मूल प्रवर्तक आचार्य वसुगुप्त कहते हैं कि शक्ति (क्रियाशक्ति)-का स्फुरणरूप विकास ही विश्व है—

स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्।

(शिवसूत्र ३।३०)

शिवका विश्व उनकी अपनी शक्तिसे निर्मित है। सविदात्मा शिवकी शक्तिका जो प्रचय या क्रियाशक्तिरूप स्फुरण या विकास है, वही विश्व है—

'**शिवस्य विश्व स्वशक्तिमय तथा अस्यापि स्वस्या सविदात्मन शक्ते प्रचय क्रियाशक्तिस्फुरणरूपो विकासो विश्वम्।**' (शिवसूत्रविमर्शिनी ३।३०)

आचार्य भास्कररायकी दृष्टि—आचार्य भास्करराय कहत हैं कि शिवम विश्वकी सृष्टि, पालन एव सहारकी क्षमता केवल शक्तिके कारण हे। उसी शक्तिका ही परिणाम चारा सृष्टियाँ—अर्थमया, शब्दमयी, चक्रमया एव दहमयी हैं।

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्ति ।
तद्योगादव शिवो जगदुत्पादयति पाति सहरति॥

(वरिवस्यारहस्यम्)

'**सावश्य विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा। अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी दहमय्यपि च सृष्टि ॥**' (वरिवस्यारहस्यम् ५)

भगवती सीताका स्वस्वरूप

भगवती सीता जनककी पुत्री एक मानवी सततिमात्र नहीं थीं, प्रत्युत शक्तिका अवतार थीं।

१-मूल प्रकृति होनके कारण वे प्रकृति कहलाती हैं—'**मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृति स्मृता।**'

(सीतोपनिषद्)

२-प्रणवकी प्रकृति होनेके कारण भी भगवती सीता प्रकृति हैं—'***प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते॥***'

३-भगवती सीता महामाया हैं, योगमाया हैं—'**सीता इति *त्रिवर्णात्मा साक्षान्मायामयी भवेत्।***'

४-'**ई**'—सीता शब्दमे स्थित ईकार प्रपञ्चका बीज माया है। उनके नाममे 'ई' स्वर इसीको सकेतित करता है कि वे प्रपञ्चनिर्मात्री 'ईकार' या माया हैं—'**विष्णु प्रपञ्चबीज च माया ईकार उच्यते।**'

५-'**स**'—सीता शब्दमे स्थित सकार=सत्य एव अमृतकी प्राप्ति और सोम हे—'**सकार सत्यममृत प्राप्ति सोमश्च कीर्त्यते।**'

६-'**त**'—सीता शब्दम स्थित तकार महालक्ष्मीरूप है। प्रकाशमय विस्तार करनेवाली महालक्ष्मी ही तकार हैं—'**तकारस्तारलक्ष्म्या च वैराज प्रस्तर स्मृत ।**'

७-सीता समस्त प्राणियाकी जन्मदात्री पालिका एव सहारिका शक्ति हैं—'**उत्पत्तिस्थितिसहारकारिणीं सर्व-देहिनाम्।**'

८-सीता ब्रह्म हैं—'अथाता ब्रह्मजिज्ञासेति च।'

९-सीताजी सर्वरूपा हैं—सीताजी सर्ववदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वाधारा, कार्य-कारणमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, चेतनाचतनात्मिका, ब्रह्मस्थावरात्मा, देवर्षि-मनुष्य-गन्धर्वरूपा, असुरराक्षसभूत-प्रत-पिशाच-भूत-शरीररूपा, भूतेन्द्रियमन प्राणरूपा भी हैं।

१०-सीताजी मुख्यत तीन शक्तियाक रूपम स्थित हे—क-इच्छाशक्ति, ख-क्रियाशक्ति ग-साक्षात् शक्ति—

क-इच्छाशक्तिस्वरूपा भगवती सीता श्रीदेवी (चन्द्र), भूदेवी (सूर्य), नीलादेवी (अग्निरूपा), योगशक्ति, भोगशक्ति तथा वीरशक्ति हैं।

ख-क्रियाशक्तिस्वरूपा भगवती सीता श्रीहरिका मुख हैं और नादरूपम व्यक्त हैं।

साक्षात् शक्तिस्वरूपा सीता नाद-बिन्दु और आकाररूप हे।

ग-साक्षात् शक्ति ही ज्ञानशक्ति है।

महालक्ष्मीरूपा भगवती सीता अष्टदलकमलपर स्थित दिव्य सिंहासनपर आसीन हैं।

मूल प्रकृति और उनका महाविद्यात्मक अवतार

मूल प्रकृति और सती—साक्षात् परब्रह्म, शुद्धा, सनातनी, जगदम्बा, त्रिदेवोकी आराध्या देवी भगवती मूल प्रकृति ही पूर्णा प्रकृति एव सती हैं।[1] उन्हींका अवतार १-लक्ष्मी, २-सावित्री, ३-सरस्वती, ४-काली, ५-पार्वती, ६-माया, ७-परम शक्ति, ८-पराविद्या, ९-गङ्गा, १०-दुर्गा ११-दस महाविद्या[2]—काली, तारा, लाकश्वरी कमला, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, षाडशो, त्रिपुरसुन्दरी, बगलामुखी, धूमावती एव मातङ्गी हैं।

अपने पिता दक्षक यज्ञम जानकी इच्छापर अटल सतीके हठपर भगवान् शिवन कहा—

'यथारुचि कुरु त्व च ममाज्ञा किं प्रतीक्षसे।'

(महाभागवतपुराण ८।४४)

इसे सुनते ही दाक्षायणी सतान कालीका स्वरूप धारण कर लिया। उनके भयानक स्वरूपस भयभात होकर शिव भाग चले। सतीने शिवको भागनस रोकनक लिय दसों दिशाआम अपने पृथक्-पृथक् स्वरूपाको (दस महाविद्याओंके रूपम) खडा कर दिया। अन्तत शिव (दसा दिशाआका अवरुद्ध देखकर) आँख बन्द करके मार्गम ही रुक गये और जब उन्हाने आँख खाली ता उन्ह पुन दसा दिशाआमें महाविद्याआके रूपम दस दवियाँ दृष्टिगत हुईं। ये सभी दस देवियाँ (दस महाविद्याएँ) भगवती सतीके ही दस स्वरूप या अवतार हैं। मूल प्रकृति सतीक अवतार ही दस महाविद्याएँ कही गयी हैं।

~~०~~

भक्ति-मुक्ति-शक्ति-प्रदायिनी अवतार-कथा

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

ऋषियो, महर्षियो, देवर्षियो और ब्रह्मर्षियोने अपनी ऋतम्भरा-प्रज्ञाद्वारा उस जगन्नियन्ता, जगदाधार, सर्वाधिष्ठान, सर्वशक्तिमान्, स्वयप्रकाशमान् भगवान्के अवतारा एव उनकी अवतार-कथाओके अति महत्त्वपूर्ण गूढ रहस्याको—**'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** के इस वैदिक सिद्धान्तको—**'अध्यारोपापवादाभ्या निष्प्रपञ्च प्रपञ्च्यते'** की प्रक्रियाद्वारा विस्तृतरूपसे विवेचन विश्लेषण और गवेषण करके समझाया है।

वेदाकी ऋचाओ, दर्शनशास्त्रकी भिन्न-भिन्न शाखाआ, उपनिषदाके मन्त्रा, वेदान्तके सूत्रों, इतिहास-पुराणोंके आख्याना और काव्यग्रन्थोक सुमधुर व्याख्यानाके द्वारा अवतार और अवतार-कथाआकी गरिमा-महिमा, सत्ता-महत्ता, उपयोगिता और आवश्यकतापर बड रोचक और आकर्षक ढगसे प्रकाश डाला गया है। यह कि—

'द्विरूप हि ब्रह्म अवगम्यते। प्रथम निराकार-निर्विकार-अखण्ड-अनन्त-सच्चिदानन्दरूप स्वरूपलक्षण ब्रह्म तथा अपर 'जन्माद्यस्य यत ' अर्थात् जीवान् प्रति करुणावशात् विविधरूपधारक सगुण-साकाररूप

---

१ या मूलप्रकृति शुद्धा जगदम्बा सनातनी। सैव साक्षात्पर ब्रह्म सास्माक देवतापि च॥ (महाभागवतपुराण ३।१)

२ काली तारा च लोकेशी कमला भुवनेश्वरी॥
छिन्नमस्ता षोडशी च सुन्दरी बगलामुखी। धूमावती च मातङ्गी नामान्यासामिमानि वै॥ (महाभागवतपुराण ८।६२-६३)

मानी जाती हैं।

जो स्थान बोद्धामे और जैनामे अहिसाका, ईसाइयामे दयाका और इस्लामम नमाजका है, उससे भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान हिन्दुआम अवतार-कथाआम वर्णित रीति-नीति, धर्म-कर्म, ज्ञान-ध्यान, आचार-विचार तथा साधना और उपासनाका हे।

हमारे भारतदशम हिन्दूधर्मम अवतार-कथाआका महत्त्व अनादिकालसे आजतक वेसा ही अविच्छिन्न बना हुआ है जैसा कि सुरनदी भगवती गङ्गाका स्रोत अविच्छिन्नरूपमे विराज रहा है।

इसीलिये वेदान्तसूत्राम भगवान्‌की उपासनाम गति, प्रगति और उन्नति लानेके लिये तथा भक्ति-मुक्ति-शक्ति और शान्ति-अर्जनके लिये इन अवतार-कथाआकी आवृत्ति करत रहनेका उपदश दिया गया हे। यथा—

'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्।'

(वेदान्तदर्शन ४।१।१)

इसके आग '**आ प्रायणात्०**' (४।१।१२) कहकर भगवान् वेदव्यासने इन अवतार-कथाआको आजीवन पढते-सुनते रहनका परामर्श दिया हे।

परिणामस्वरूप इन अवतार-कथाआक वक्ता-श्रोताके लिये '**अनावृत्ति शब्दात्**' (४।४।२२) कहकर परमात्माकी प्राप्ति तथा भक्ति-मुक्तिरूप इच्छित वस्तुकी उपलब्धिका दृढताके साथ समर्थन किया गया हे, जिससे सदा-सदाके लिये वह आवागमनसे रहित हो जाता है।

भगवान्‌के अवतारकी ये कथाएँ नास्तिकको आस्तिक एव अनीश्वरवादीको ईश्वरवादी बना देती हैं, साथ ही भक्तका भगवान्‌की ओर, आत्माको परमात्माकी ओर, जीवको ब्रह्मकी ओर ओर नरको नारायणकी ओर अग्रसारित और उत्साहित करती हैं।

इन अवतार-कथाआका इतना अधिक महत्त्व है कि एकान्तप्रदश, वनप्रदेश, निर्जनप्रदेशम धारणा, ध्यान, समाधिमें रत योगीन्द्र-मुनीन्द्र, वीतरागी, विरागी, त्यागी, सनकादिक, शुकादिक तथा नारदादिक भी इनके श्रवणसे रसाप्लावित, भावाप्लावित, करुणाप्लावित होकर जनकल्याण एव लाक-कल्याणहेतु स्वयमव सबको अवतार-कथा-सुधाका पान कराने लगते हें।

जाति-पाँति, बल-पोरुष, आयु-अवस्था, स्त्री-पुरुषका भी कोई विशप प्रतिबन्ध इन अवतार-कथाआके श्रवणमे नहीं है।

इन अवतार-कथाआको जानसे, अनजानसे, इच्छासे, अनिच्छासे, स्वेच्छासे, परेच्छासे, वैरसे अथवा प्रेमसे—किसी भी प्रकार पढने-सुननेसे कल्याण ही होता है। तभी तो अपने पुत्र नारायणका नाम लेकर अजामिलको और तोतेको रामनाम पढानेसे वेश्याकी सद्गति हुई।

इसीलिये सत्पुरुषो, साधुपुरुषा, महापुरुषा, आचार्यों और शास्त्रोंने '*सब कर मत खगनायक एहा*' कहकर अवतार कथाआके श्रवण-मननको सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णका लीलावतार

(प्राचार्य श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय निम्बार्कभूषण)

अनन्त तीर्थों, वन-उपवना पर्वतमालाओ पुण्यसलिला सरिताआसे सुशोभित देववृन्दवन्दित भारतवर्षीय वसुधा श्रीहरिकी अवतारभूमि एव लीलास्थली हे। इस भूमिपर जन्म लनवाले मनुष्याकी प्रशसा करते हुए देवगण कहते हें—'**मुकुन्दसेवौपयिक स्पृहा हि न ॥**' अर्थात् जिन्हाने भारतम भगवान् श्रीमुकुन्दकी सेवाक याग्य उपयागी जन्म पाया हे वैसा जन्म प्राप्त करनकी हमारी भी स्पृहा हे।

वेद उपनिषद, पुराण इतिहास स्मृति, तन्त्रादि शास्त्राम परब्रह्म परमात्माकी असख्य लालाआ अवतार-कथाआका वर्णन है। प्रत्यक युगम जब-जब आसुरी शक्तियाका प्राबल्य हाता है, दैवी शक्तियाँ ह्रासोन्मुख हो जाती हैं, तब-तब प्रभु स्वय पूर्णरूपस अथवा अश-कलादि रूपसे भूतलम अवतीर्ण होकर असुराका सहार करते हैं ओर धर्मकी स्थापना करते हैं। अत गास्वामी श्रीतुलसीदासजी कहत हें—

'बिप्र धेनु सुर सत हित लान्ह मनुज अवतार।

त्रताम जहाँ भगवान् श्रारामका अवतार मर्यादापुरुषात्तमक रूपम हुआ वहाँ द्वापरम भगवान् श्राकृष्णका अवतार लीलापुरुषात्तमक रूपम हुआ। अवतारकी परिभाषा करते हुए शास्त्रकार कहत हैं—

'अवतारो नाम स्वेच्छया धर्मसंस्थापनार्थमधर्मोपशमनार्थं स्वीयाना वाञ्छापूर्त्यर्थं च विविधविग्रहैराविर्भावविशेष ।'

(वेदान्तरत्नमञ्जूषा)

अर्थात् सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिका अपनी इच्छासे धर्मसस्थापन, अधर्मोपशमन एव स्वकीय भक्तजनाकी इच्छापूर्तिहेतु विविध विग्रहा, स्वरूपासे आविर्भूत हाना अवतार कहलाता हे।

अवताराके तीन भेद बताये गये हे—गुणावतार, पुरुषावतार तथा लीलावतार। यहाँ इनका सक्षेपम वर्णन प्रस्तुत है—

१-गुणावतार

सत्त्व रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
र्युक्त पर पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति सज्ञा
श्रेयासि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणा स्यु ॥

(श्रीमद्भा० १।२।२३)

भाव यह है कि सत्त्व रज तथा तम—ये तीन गुण प्रकृतिके हे, इन्हीं गुणाका आश्रय लेकर अथवा इनसे युक्त होकर एक ही परब्रह्म परमात्मा इस जगत्प्रपञ्चको त्रिविधरूपम—स्थिति, सृष्टि तथा सहाररूपमे—श्रीविष्णु, विरञ्चि तथा हर—इन तीन सज्ञाआस धारण करते हैं।

सत्त्व गुणके स्वामी भगवान् श्रीविष्णुका कार्य है—सत्त्व गुणके आश्रयसे सृष्टिम आये हुए समस्त प्राणियाकी रक्षा एव उनका सम्पोषण करना, रजोगुणके स्वामी लोकपितामह श्रीब्रह्मदेवका कार्य है—रजोगुणके आश्रयसे चराचर जगत्की सृष्टि करना और तमोगुणके स्वामी भगवान् श्रीरुद्रदेवका कार्य है—तमोगुणके आश्रयसे युगान्त किवा कल्पान्तम सृष्टिका सहार करना। अत ब्रह्मा, विष्णु तथा महश—ये त्रिदेव गुणावतार कहलाते हं। उनम मनुष्याका सर्वविध मङ्गल सत्त्वतनु भगवान् श्रीनारायणके सर्वताभावन समाश्रयण और आराधनसे होता है।

२-पुरुषावतार

प्रथम महत सृष्टिर्द्वितीय त्वण्डसस्थितम्।
तृतीय सर्वभूतस्थ तानि ज्ञात्वा विमुच्यते॥

अर्थात् महत्तत्त्वके स्रष्टा कारणार्णवशायी प्रकृतिनियन्ता पुरुष ही प्रथम रूपम पुरुषावतार कहे जाते ह। समष्टि जगत्के उत्पादक अन्तर्यामी पुरुष ही द्वितीय रूपमे पुरुषावतार कहे गय ह एव व्यष्टि जगत्क अन्तर्यामी सर्वनियन्ता क्षीरोदशायी पुरुष ही तृतीय रूपम पुरुषावतार कहे गये हे—इस प्रकार पुरुषावतारके भी तीन भद हुए।

३-लीलावतार

आवेशावतार और स्वरूपावतारक भेदसे लीलावतार दो प्रकारके ह। आवेशके भी स्वाशावश और शक्त्यशावेशसे दो भेद ह। जा जावक आवरणके विना साक्षात् निज अशसे प्राकृत विग्रहम प्रवेश करे, उसे स्वाशावेश कहते हैं। जसे—नर और नारायणका अवतार। जो शक्ति-अशमात्रसे जीवम प्रविष्ट हाकर कार्य कर उसे शक्त्यशावेश कहते हैं। इसम तारतम्यके भेदस एक '**प्रभव**' और दूसरा '**विभव**' कहलाता है। धन्वन्तरि, परशुराम प्रभृति प्रभवावतार हे तथा कपिल, ऋषभ, चतु सन, नारद तथा व्यास आदि विभवावतार हं—इस प्रकार ये आवेशावतारक स्वरूपभेद ह।

अब स्वरूपावतारका वर्णन किया जाता है। स्वरूपसे अर्थात् सच्चिदानन्दात्मकरूपसे आविर्भूत होना स्वरूपावतार कहलाता है। यह अवतार एक दीपकसे दूसर दीपकमे प्रविष्ट ज्योतिकी भाँति अभिन्न स्वरूप गुण एव शक्तिवाला हाता ह। यह भी अश एव पूर्ण इस भेदसे दो प्रकारका बताया गया ह। पूर्ण ब्रह्म परमात्मा भी अपने अल्पगुण शक्तिके आविष्करणसे अशरूप कहा जाता है। इनम मत्स्य, कूर्म, वराह वामन, हयग्रीव, हस इत्यादि आते हैं। अपने पूर्ण गुण-शक्त्यादिको व्यक्त करनेसे श्रीनृसिहदेव, श्रीदाशरथी राम और श्रीकृष्ण—ये पूर्ण स्वरूपावतार हैं।

इनम मर्यादापुरुषात्तम श्राराम एव लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णका अवतारविधाआका शास्त्राम परम उदात्त भावस वर्णन किया ग ग़ा ह। अथर्ववदीय 'कृष्णापनिषद्' म निम्न वर्णन* आया है।

त्रतायुगम मर्यादापुरुषात्तम भगवान् श्रीराम वनवासके समय जगज्जननी भगवती श्रीसाता एव लक्ष्मणसहित जव दण्डकारण्य पहुँचे, वहाँ दाघकालसे तपश्चयाम निरत महर्षियाने

---

* 'श्रीमहाविष्णु सच्चिदानन्दलक्षण रामचन्द्र दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दर मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवु । त हाचुर्नोऽवद्यमवतारान् वै गण्यन्त आलिङ्गामो भवन्तमिति। भवान्तरे कृष्णावतारे यूय गापिका भूत्वा मामालिङ्गथ॥ अन्ये येऽवतारास्ते हि गापान स्त्राश्च ना कुरु। अन्यान्यविग्रह धार्यं तवाङ्गस्पर्शनादिह। शश्वत् स्पर्शयिताऽस्माक गृह्णीमाऽवतारान् वयम् ॥ १॥

सर्वाङ्गसुन्दर सच्चिदानन्दरूप महाविष्णु नारायणके पूर्णावतार श्रीरामचन्द्रजीको अपनी अनपायिनी ऐश्वर्य-माधुर्ययुक्त आह्लादिनीशक्ति जानकीजीके साथ देखा तो वे अत्यन्त मुग्ध हो गये और प्रार्थना करने लगे—भगवन्! आपका यह अवतार अन्य अवतारोंसे श्रेष्ठ एवं दोषरहित है। अतः हम भगवती सीताकी तरह आपके साथ रहकर आपकी अङ्ग-सङ्गपूर्वक उपासना करना चाहते हैं। परम दयालु भगवान् श्रीराम उन समस्त मुनिजनोंको सान्त्वना देते हुए कहते हैं—हे मुनीश्वरो! द्वापरान्तमें आप सब अपने आपको गोप-गोपियोंका रूप बनाकर व्रजभूमिमें रहेंगे। मैं जब लीलापुरुषोत्तम रूपमें कृष्णावतार धारण कर नानाविध लीलाविहार करूँगा, तब आप सब समस्त प्राणियोंके प्रियतम मेरा आलिङ्गनपूर्वक अङ्ग-सङ्ग करेंगे। अन्य अवतारोंमें जो-जो कार्य अवशिष्ट रहे हैं, उन सबकी पूर्ति कृष्णावतारमें ही हो सकेगी। अवतारकी पूर्णता होनेपर भी मेरा यह रामरूप मर्यादामें आबद्ध है। कृष्णरूप तो लीलामय होनेसे सकल भक्तोंकी सर्वविध मनोरथसिद्धिके लिये स्वतन्त्र है। अतः अन्य मत्स्य, कूर्म नृसिंह आदि अवतार अंश-कला-पूर्ण होनेपर भी भक्तोंकी सकल भावनाओंको पूर्ण नहीं करते, किंतु कृष्णावतार तो सर्वसमर्थ है, क्योंकि यह पूर्णतम अवतार है। मुनिजन कहने लगे—प्रभो! इस परमपावन दण्डकारण्य प्रदेशमें आपके श्रीविग्रहका दर्शन और स्पर्श पाकर हमारे जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरके कल्मष दूर हो गये हैं। अतः हमें परस्पर गोप-गोपियोंका शरीर धारण करना चाहिये। उस समय आप श्रीकृष्णरूपमें हम सब ऋषिरूपा गोपियोंका निरन्तर अङ्गस्पर्श करेंगे। एतदर्थ हम सभी वनवासी मुनिजन श्रीकृष्णस्वरूप आपकी सर्वतोभावेन सेवाके लिये अपने-अपने अंशरूपसे गोप-गोपी बनकर व्रजमें अवतीर्ण होंगे।

इन्हीं साधनसिद्ध गोपियोंका एक मण्डल जो ऋषिरूपा गोपियाँ कहलाती हैं उन्हें प्रभुका सांनिध्य प्राप्त है। कात्यायनी-व्रत करनेवाली गोपियाँ इनसे भिन्न हैं—ऐसा संतोंका कथन है।

अनन्तस्वरूप गुण एवं शक्तिके अधिष्ठान लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी सविशेष निर्विशेषता व्यूहाङ्गिता और परब्रह्मरूपताका वर्णन करते हुए सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य कहते हैं—

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोष-
मशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥
(दशश्लोकी ४)

जिनमें स्वभावसे ही समस्त दोषोंका अभाव है तथा जो समस्त कल्याणमय गुणोंके एकमात्र समुदाय हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चारों व्यूह जिनके अङ्गभूत हैं तथा जो सर्वश्रेष्ठ परब्रह्मस्वरूप हैं, उन पापहारी कमलनयन सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णका हम चिन्तन करें।

शास्त्रोंमें प्रभुका निर्गुण आदि पदोंसे जो निर्वचन किया है, वह तो प्राकृत गुणोंका राहित्यमात्र है। कृष्णस्तवराजमें आचार्यप्रवर कहते हैं—

शान्तिकान्तिगुणमन्दिरं हरिं
स्थेमसृष्टिलयमोक्षकारणम्।
व्यापिनं परमसत्यमंशिनं
नौमि नन्दगृहचन्दिनं प्रभुम्॥

जो प्रभु शान्तिप्रभृति स्वरूपगुणों तथा कान्त्यादि विग्रह गुणोंके निवासस्थान हैं, उत्पत्ति, पालन, संहार तथा मोक्षके कारण हैं, चराचर जगत्‌में व्यापक, परमस्वतन्त्र तथा अंशी हैं (जीव अंश है, भगवान् अंशी हैं) और नन्दगोपके गृहप्राङ्गणमें विचरण करते हुए अपनोंको आह्लादित करनेवाले हैं, उन सर्वसमर्थ श्रीहरिकी मैं स्तुति करता हूँ—वन्दन करता हूँ।

आचार्यका कहना है कि हे हरे! ब्रह्म निर्गुण है, यह वेदका वचन भी आपमें विरुद्ध नहीं है, किंतु समञ्जस है, क्योंकि आप समस्त अविद्या और तत्सम्बन्धी हेयगुण-धर्मसे रहित हैं, अतः निर्गुण (निर्विशेष) हैं। वास्तवमें तो आप समस्त सद्‌गुणोंके सागर हैं, इस कारण सविशेष हैं। अतः पूर्वोक्त प्राकृत गुणरहित और सद्‌गुणसागर आपके स्वरूपका आविर्भाव औपनिषद सिद्धान्तके अनुगामी मेरे-जैसेके लिये सदा बना रहे—ऐसी मेरी प्रार्थना है। श्रीभगवान्‌की गुणावलीका यत्किञ्चित् निर्देश इस प्रकार है—ज्ञान शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज वीर्य, सौशील्य, वात्सल्य, आर्जव सौहार्द सर्वशरण्यत्व, सौम्यत्व, करुणा, स्थिरत्व, धैर्य दया माधुर्य तथा मार्दव आदि—

'गुणाश्च ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्यसौशील्यवात्सल्यार्जवसौहार्दसर्वशरण्यत्वसौम्यकरुणास्थिरत्वधैर्यदयामाधुर्यमार्दवादयः।' (वेदान्तरत्नमञ्जूषा)

इन गुणोंकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है—श्रीकृष्णके

उन स्वाभाविक गुणोंमे सर्वदेशकालवस्तुविषयक प्रत्यक्षानुभवको 'ज्ञान' कहते हैं। अघटनघटनापटीयसी-स्वरूप-सामर्थ्यको 'शक्ति' कहा गया है, विश्वधारणादि शक्ति 'बल' है। सर्वनियन्तृत्व शक्तिको 'ऐश्वर्य' कहते हैं। श्रमके अपरिमित कारण होनेपर भी श्रमशून्यत्व 'तेज' है। दूसरासे अभिभूत न होते हुए उनको अभिभूत करना 'वीर्य' है—ये छ प्रकारके गुण जगत्की सृष्टि, स्थिति और सहारके उपकारक और भगवच्छब्दके वाच्य हैं।

अपनी महत्ताकी अपेक्षा न रखते हुए सरलतापूर्वक अतिमन्द प्राणियोको भी हृदयसे लगाना 'सौशील्य' है। सेवकाके दोषा तथा त्रुटियोकी उपेक्षा करना 'वात्सल्य' है। मन, वाणी, शरीरसे समत्व रखना 'आर्जव' है। अपने सामर्थ्यसे भी अधिक रूपमे दूसराकी रक्षा करनेका स्वभाव 'करुणा' है। युद्धादिमे अविचल रहना 'स्थिरत्व' है। प्रतिज्ञापालनको 'धैर्य' कहा गया है। दूसरोक दु ख देखकर दु खित होते हुए उसे दूर करनेकी चेष्टा करना 'दया' ह। अमृतपानके समान दर्शनमे अतृप्ति होना 'माधुर्य' है। आश्रितजनोके दु ख, सतापादिको सहन न करना मार्दव कहा गया है। इसी प्रकार सौकुमार्यादि विग्रहगुणाको भी समझना चाहिये। उपर्युक्त सौशाल्यादिगुण भगवदाश्रयण ओर आश्रितके रक्षणम परमापयोगी हैं। इन्हीं भगवद्गुणाका सकेत भगवान् श्रीबादरायणने 'विवक्षितगुणोपपत्तश्च' इस सूत्रद्वारा किया है।

'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥'

इत्यादि श्रुतियाद्वारा नित्य-विभूति और लीला-विभूतिम दीपसे दीपकी तरह अजहद-गुणशक्तिका प्रतिपादन किया है।

लीलावपुर्धारी सर्वेश्वर श्रीहरिकी अनन्त लीलाओम एश्वर्य-माधुर्ययुक्त ऊखलबन्धन-लीला अत्यन्त शिक्षाप्रद हे। 'कश्यपोलूखल ख्यातो रज्जुर्माताऽदितिस्तथा।' इस कृष्णोपनिपद्के वचनानुसार जिस प्रकार नित्य-विभूतिम भूषण-वसन, आयुध आदि सभी दिव्य चिन्मय हैं उसी प्रकार लीलाविभूतिमे भी ऊखल, रस्सी वत, वशी तथा शृङ्गार आदि सब वस्तुएँ देवरूप बतायी गयी हैं। इसी भावको दर्शानेके लिये ऊखल, रस्सी आदिका स्वरूप बताते हैं। जो मरीचिपुत्र प्रजापति कश्यप हैं, वे नन्दगृहमे ऊखल बन गये। उसी प्रकार जितनी भी रस्सियाँ ह, वे सब देवमाता अदितिके स्वरूप हैं। जब श्यामसुन्दर बालकृष्ण स्तनपानकी इच्छासे दधिगृहम गये, जहाँ माता यशादा दधिमन्थन कर रही थीं तो बालकको देखते ही दधिमन्थनका कार्य छोडकर उन्हे स्तनपान कराने लगीं। इतनेम दुग्धगृहमे दूध उफननेकी सूचना मिली, तब कन्हेयाको अतृप्त अवस्थामे छोडकर वे भीतर चली गयीं। इधर बालकृष्ण कुपित हो गये। उन्होने दूध-दहीके पात्र फोड दिये, वहाँपर दूध-दही फैलनेसे समुद्र-सा हो गया। जैसे आदिदेव नारायण क्षीरसागरमे विहार करते हैं, उसी प्रकार कन्हैया भी विहार करने लगे। इस भूलके कारण वे भयभीत होकर वहाँसे भागे, किंतु बादमे यशोदाजीने पकडकर प्रभुको ऊखलमे रस्सियासे बाँध दिया और प्रभुका नाम 'दामोदर' पडा। भगवान् अपनी इच्छासे पितृरूप ऊखलमे मातृरूप रस्सियासे माता यशोदाके वात्सल्यवश बन्धनम आ गये—यह उनकी कृपा थी। ('कृपयासीत् स्वबन्धन') यह हे माधुर्यस्वरूप। ऐश्वर्यभाव है कि बन्धनके समय रस्सीका दो अगुल छोटा पडना। भगवान्की ऐश्वर्यशक्ति यह नहीं चाहती कि उसके स्वामी प्राकृत रज्जुस बँध जायँ।

किंतु प्रभुने सकेत कर दिया कि मैं मधुरमयी बाललीलाके लिये व्रजम आया हूँ। यहाँ वात्सल्यका प्रभाव अधिक है, इसम तुम बाधक मत बनो। ऐश्वर्यशक्ति हट गयी, श्रीहरि बँध गये। इस लीलासे प्रभुने जगत्को शिक्षा प्रदान की है कि वासना या इच्छाकी पूर्ति न होनेपर व्यक्तिको क्रोध आता है, क्रोधसे अपराध करता है और उस अपराधका उसे जेल, हथकडी, बन्धन आदि दण्ड मिलता है। अत वासना या कामनाको मत फैलाओ, सयमसे ही सुख और भगवत्-प्राप्ति सम्भव है।

इस प्रकार द्वापरान्तमे अनन्त भक्तोकी सदिच्छाको पूर्ण करनेके लिये श्रीहरिने लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णके रूपमे अवतार धारण किया, इसीका सकेत आचार्यप्रवर श्रीनिम्बार्काचार्यजी करते हैं—

'नान्या गति कृष्णपदारविन्दात्
सदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात् ॥

ब्रह्मा तथा शिव आदि देवेश्वर भी जिनकी वन्दना करते हैं, जो भक्ताकी इच्छाक अनुसार परम सुन्दर एव चिन्तन करनेयोग्य लीलाशरीर धारण करते हैं, जिनकी शक्ति अचिन्त्य ह तथा जिनके अभिप्रायको उनकी कृपाके बिना काई नहीं जान सकता, उन श्रीकृष्णचरणारविन्दाके सिवा जीवकी दूसरी कोई गति नहीं दिखायी दती।

अवतार-तत्त्व-विमर्श

(आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)

जिसकी सत्ता पूर्वतः सिद्ध है, उसीका अवतरण होता है—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)-से यह बात प्रमाणित है। अवतार जन्म नहीं है। अतएव श्रीमद्भागवतके मङ्गलाचरणमें '**जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्**' कहा गया है।

उक्त श्लोककी संस्कृत टीकाओं विशेषतः श्रीधरी व्याख्यामें भी अनेक अर्थ प्राप्त हैं, किंतु महामना ब्रह्मचारीने बँगलामें ८७ प्रकारके अर्थ किये हैं। पण्डित गिरिराजशास्त्रीका कथन है कि ८७ अर्थोंमें समस्त श्रीमद्भागवत-कथाओंका सारभाग निहित है। उपर्युक्त अर्थोंके आलोकमें भगवान् श्रीकृष्णके आविर्भावसे तिरोभावपर्यन्त सभी अलौकिक लीलाओंके रहस्योंको समझनेके लिये '**विद्यावतां भागवते परीक्षा**' यह सूक्ति सर्वथा तथ्यपूर्ण है।

यद्यपि भारतीय पुराणोंमें अनेकानेक अवतारोंकी कथाएँ हैं किंतु मुख्यतः श्रीरामावतार तथा श्रीकृष्णावतार—ये दो ऐसे हैं, जिनके विवरण-विश्लेषणसे अनेक ग्रन्थ परिपूर्ण हैं, निरन्तर आज भी हो रहे हैं और आगे होते रहेंगे।

श्रीरामावतारकी कथाएँ जहाँ सर्वथा लौकिक मर्यादासे परिपूर्ण हैं, वहीं श्रीरामने अपनी भगवत्ताकी गोपनीयताका प्रयास किया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें आत्मा-परमात्माके प्रसंगोंका गहनतम विश्लेषण हुआ है, जिसकी व्याख्या भगवान् आद्य शंकराचार्यसे लेकर अधुनातन मनीषियों—भक्तोंने की है और अन्तमें 'नेति-नेति' कहकर सभीने अपनेको मुक्त कर लिया है।

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतमें प्रतिपदोक्त रूपमें राधा नामकी चर्चा नहीं है जबकि समग्र भागवती-कथा राधापर आधारित है। कहीं-कहीं आराधनादि पदसे राधा शब्द निकालनेका प्रयास किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णके अलौकिक कृत्योंकी चरम परिणति है—महारास। उसमें रासेश्वरी शब्द है न कि राधा। ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्डके १७वें अध्यायमें राधाके १६ नाम मिलते हैं, यथा—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामाङ्गसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता और शरच्चन्द्रप्रभानना।

एक प्रमाण यह भी मिलता है—'**सर्वचतोहरः कृष्णः तस्य चित्तं हरत्यसौ, वैदग्ध्यभावसंयुक्ताऽतो राधा हरा स्मृता**'

'राधा' शब्दकी व्याख्या—व्युत्पत्ति ब्रह्मवैवर्तपुराणमें निम्नाङ्कितरूपमें उपलब्ध है—

> राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता।
> नारायणस्तामुवाच ब्रह्माणं नाभिपङ्कजम्॥
> यथा—
> रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्।
> आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्।
> धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम्॥
> श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः।
> रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे॥
> सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम्।
> धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च॥
> ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः समम्।
> आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिं हरौ यथा॥
>
> (श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३। १०५—१०९)

सामवेदमें 'राधा' शब्दकी व्युत्पत्ति बतायी गयी है। नारायणदेवने अपने नाभिकमलपर बैठे हुए ब्रह्माजीको वह व्युत्पत्ति बतायी—

राधाका 'रेफ' करोड़ों जन्मोंके पाप तथा शुभाशुभ कर्मभोगसे छुटकारा दिलाता है। 'आकार' गर्भवास मृत्यु तथा रोगको दूर करता है। 'धकार' आयुकी हानिका और 'आकार' भवबन्धनका निवारण करता है। राधा नामके श्रवण स्मरण और कीर्तनसे उक्त सारे दोषोंका नाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। राधा नामका 'रेफ' श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें निश्चला भक्ति तथा दास्य प्रदान करता है। 'आकार' सर्ववाञ्छित, सदानन्दस्वरूप, सम्पूर्ण सिद्ध-समुदायरूप एवं ईश्वरकी प्राप्ति कराता है। 'धकार' श्रीहरिके साथ उन्हींकी भाँति अनन्त कालतक सहवासका सुख, समान ऐश्वर्य, सारूप्य तथा तत्त्वज्ञान

प्रदान करता है। 'आकार' श्रीहरिकी भाँति तेजोराशि, दानशक्ति, योगशक्ति, योगमति तथा सर्वदा श्रीहरिकी स्मृतिका अवसर देता है।

उपर्युक्त प्रमाणासे सिद्ध है कि सामवेदसे लेकर ब्रह्मवैवर्तपुराणादिमे राधा नामकी महिमा-गरिमा श्रेयसी-प्रेयसी है।

१६वीं शताब्दामे रूपगोस्वामीके 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक भक्तिरसप्रधान ग्रन्थमे 'अथ राधाप्रकरणम्' (श्लोक ५-६)-मे निम्न कथन है—

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्या कुण्ड प्रिय तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥
ह्लादिनी या महाशक्ति सर्वशक्तिवरीयसी।

उक्त कथन वृहद् गौतमीयतन्त्र, पद्मपुराण आदिके आधारपर है।

श्रीकृष्णकी अलौकिक लीलाआमे महारास ही चरमोत्कर्षपर हे, जो राधाके बिना सम्भव ही नहीं है।

पूर्णावतार परब्रह्मस्वरूप लीलापुरुषके महारासकी भावना करनेसे आनन्दित होना सन्ताका अनुभवसिद्ध है।

अवतारतत्त्व-मीमांसा

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, व्याकरण-साहित्याचार्य, पूर्व कुलपति)

भक्तानुग्रहकाम्ययैव धरतेऽद्वैतेऽपि यो द्वैतता
राधामाधवरूपता मधुरतामाधाय धत्ते पुमान्।
आत्मारामविहारतो निजजनानाराधयन्त विभु
कृष्ण भक्तजनप्रिय प्रभुवर ध्याये पर चिन्मयम्॥

(महामानवचम्पू १।१।४)

श्लोकका भाव है कि क्षराक्षरातीत, सच्चिदानन्दघन, परमपुरुषोत्तम, सौन्दर्य-माधुर्य-निधान, वसुदेव-देवकीनन्दन आत्माराम भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण परमार्थत अद्वैतरूप होते हुए भी भक्तोपर अनुग्रह करनेकी भावनासे राधामाधव—इस द्वैतरूपमे धरातलपर अवतीर्ण होते हे और भक्तजनोको परितुष्ट करते हैं।

अवतार, अवतरण आदि शब्दोका तात्पर्य है ऊपरसे नीचे उतरना। अपने गोलोकधाम[1], वैकुण्ठधाम आदि नामासे व्यपदिष्ट परमधामसे धर्मका रक्षा साधु-सताके परित्राण और अधर्मादि दुराचाराके विनाशके लिये भगवान्का भूतलपर अवतार होता है। स्वय भगवान् वासुदव श्रीकृष्णचन्द्रने इस तथ्यका प्रतिपादन गीताम किया है।[2]

इस तथ्यको और पल्लवित करते हुए श्रीमद्भागवतमे कहा गया है कि पृथ्वीका बोझ हलका करने साधु-सज्जनाकी रक्षा करने और दुष्ट-दुर्जनाका सहार करनहेतु समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढते हुए अधर्मको रोकनेके लिये और भी अनेको शरीर ग्रहण कर भगवान् धरातलपर अवतीर्ण हात हैं—

एतदर्थोऽवतारोऽय भूभारहरणाय मे।
सरक्षणाय साधूना कृतोऽन्येषा वधाय च॥
अन्योऽपि धर्मरक्षायै देह सभ्रियत मया।
विरामायाप्यधर्मस्य काल प्रभवत क्वचित्॥

(श्रीमद्भा० १०।५०।९-१०)

पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च तन्मात्राओसे बना हुआ लिङ्गशरीर जब चेतनासे युक्त होता है तो जीव कहलाता है।[3] परमात्माका अश यह जीव परमेश्वरका ही अवतार है—**'ममैवाशो जीवलोके जीवभूत सनातन ।'**[4] सनातन परमात्माका अश यह जीव भी सनातन है। ध्यातव्य है कि जीवात्मा आर परमात्मामे अशाशिभाव औपाधिक है। जैसे घटस आवेष्टित होनेके कारण घटाकाश महाकाशका अश-सा प्रतीत होता है वैसे ही उपर्युक्त लिङ्गशरीरसे आवेष्टित होनेके कारण जीवात्मा परमात्माक अशरूपम भासित होता है। वस्तुत दोनाम तात्त्विक अन्तर नहीं है। जैसे नभामण्डलस्थित चन्द्र और जलमे प्रतिबिम्बित होनेवाला चन्द्र वस्तुत एक ही है वेसे ही क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम परमात्मा और लिङ्गशरीरस्थ जीवात्मा दोना एक हें, अभिन्न हैं।

अपने गोलोकधामम नित्य रमण करनेवाले आत्माराम

१ 'गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य' (ब्रह्मसहिता ५।१५)
२ 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।' 'धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (गीता ४।७-८)
३ एव पञ्चविध लिङ्ग त्रिवृत् षोडशविस्तृतम्। एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते॥ (श्रीमद्भा० ४।२९।७४)
४ गीता (१५।७)

गोविन्द दो प्रयोजनासे इस धराधामपर यदा-कदा अवतीर्ण हाते हैं। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष आदि दैत्य, रावण कुम्भकर्ण आदि राक्षस ओर शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि गर्वोन्मत्त राजागण अपनी शक्तिका दुरुपयोग करते हुए जब देव, गन्धर्व, ऋषि, मुनि, साधु-सज्जनाको अत्यन्त पीडित करन लगते हैं ता नरसिह, राम आदि रूपाम आवश्यकतानुसार अपनी कलाको प्रकट करते हुए परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण[१] समय-समयपर पृथ्वीलोकम अवतीर्ण होते रहते हैं ओर उन दुर्दान्ताका निग्रह करते हैं। साधु-सज्जनाकी रक्षा ओर दुष्ट-दुर्जनाका सहार—इस प्रयोजनके साथ-साथ भक्तप्रिय भगवान् अपने अवतारके द्वारा अपने आत्मीय भक्तजनाको आह्लादित भी करते हैं। इसीसे अवताराके दोना प्रयोजन—दुष्टाका सहार और भक्तजनाका हृदयाह्लाद सिद्ध होते हैं।

परमेश्वरकी यह अवतार-लीला है। निखिल ब्रह्माण्डाके आधार भगवान् वासुदव ही हैं।[२] वे सत्, असत् ओर सदसत्से परे भी ह। ऐसी स्थितिम उनका अवतरण ऊपरसे नीचे आना लीलामात्र है, जो भक्तापर अनुग्रहकी भावनासे ही किया करते हैं। लिङ्गशरीरावेष्टित जीवाका अवतरण 'जन्म' ओर विशुद्ध आत्मस्वरूप आत्माराम भगवान्का अवतरण 'अवतार' माना जाता है।

जीवात्मा कर्म-बन्धनसे आवद्ध है और परमात्मा जन्म-कर्म-बन्धनसे विनिर्मुक्त है।[३]

स्वय भगवान्‌ने अपने अवतारके रहस्य और प्रयोजनोंको गीता, भागवतादि पुराणाम सूचित किया है, जिन्ह उनक ही अनुग्रहसे समझा जा सकता है।

वस्तुत परमेश्वरक अनन्त, अपरिमेय, अप्रमेय और दिव्य गुणा तथा क्रिया-कलापाको गिनने, समष्टिरूपम जाननका प्रयास जो करता है, उस प्रवृत्तिमे उसकी बालबुद्धि (मूर्खता) ही कारण है, क्याकि भगवान् अनन्त हैं। उनके गुण भी अनन्त हैं। जो यह सोचता है कि वह उनके गुणाको गिन लेगा, वह बालक है। यह ता सम्भव है कि कोई किसी प्रकार पृथ्वीके धूलिकणाको गिन ले, परतु समस्त शक्तियाके आश्रय भगवान्‌के अनन्त गुणोका कोई कभी किसी प्रकार पार नहीं पा सकता।[४]

अत सामान्य दृष्टिसे यह कहा जाता है कि भगवान् दुर्जनाके सहार, साधु-सज्जनाक सरक्षण और भक्तजनोके हृदयाह्लादके लिये अपने गोलोकधामसे इस धराधामपर अवतार लिया करते हैं। उनक अवताराके विशेष कारण जो शास्त्र-पुराणामे इङ्गित हैं, उन्हे मनीषी मतिमान् सूक्ष्मेक्षिकासे ज्ञानचक्षुद्वारा और पुण्यशाली महात्मा प्रभुकी ही कृपासे प्राप्त दिव्यदृष्टिसे देख पाते हैं।

~~~ ० ~~~

अवतारोको नमन

(श्रीरामलखनसिहजी मयक)

परमरूप छविमय भक्तोक हेतु नाथ धरते अवतार।
जीवाके सब क्लेश मिटाने आते जगम विविध प्रकार॥
अत्याचार दुर्जनाका जब घोर जगत्मे छा जाता।
अन्यायासे त्रस्त हुआ सज्जन समूह अकुला जाता॥
धरती माँके साथ सभी सुर मुनिजन करते आर्त पुकार।
सुनकर द्रवित विवश होते प्रभु हरनेको तत्क्षण भूभार॥
मत्स्य, कूर्म, शूकर, नृसिह, वामन, श्रीपरशुराम श्रीराम।
हलधर, गौतम बुद्ध कल्कि हैं, नैमित्तिक अवतार तमाम॥
सतश्रेष्ठ जो आत्मसिद्ध भगवत्स्वरूप ह नित अवतार।
करते हम सबको सन्मनसे नमन, सभी ह करुणागार॥

~~~ ० ~~~

१ रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु।
कृष्ण स्वय समभवत् परम पुमान् यो गोविन्दमादिपुरुष तमह भजामि॥ (ब्रह्मसहिता ५। ११)

२ मत्त परतर नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय। (गीता ७। ७)

३ जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्वत । (गीता ४। ९)

४ यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धि । रजासि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित् कालन नैवाखिलशक्तिधाम्न ॥
(श्रीमद्भा० ११। ४। २)

अवतार—प्रयोग और प्रयोजन

(डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया, बी०एस्-सी०, एल्-एल्०बी०, एम्०ए० (संस्कृत), पी-एच्०डी०)

सृष्टिका अस्तित्व ईश्वरपर आधृत है। अस्तु सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लय अर्थात् सृष्टिके जो शाश्वत धर्म हैं, उनमे ईश्वरकी भूमिका सारभूत है। ईश्वर तो एक ही है, किंतु ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये ईश्वरके तीन शाश्वत रूप हैं, जिसमे ब्रह्मा सृष्टिके सर्जक, विष्णु सृष्टिके पालक तथा महेश सृष्टिके सहारकके रूपमे लोकमे समादृत हैं।

ईश्वरके इन तीनो रूपोमे विष्णु अधिक लोकप्रिय हैं, क्योकि वे सृष्टिके पालनकर्ता होनेके कारण समग्र ससारको सद्धर्मसे सुसज्जित एव सुव्यवस्थित किये रहते हैं। ससारमे सद्वृत्तियोका जब लोप होने लगता है और असत् अथवा राक्षसी प्रवृत्तियाँ प्रभावी होने लगती हैं तो भगवान् विष्णु अवतारके रूपमे इस धरतीपर उतरकर ससारको असत्से सत्की ओर ले जाते हैं। अवतारका अर्थ है—**'अवतरणमवतार ।'** अर्थात् ऊपरसे नीचे उतरना। भगवान्का समय-समयपर भिन्न-भिन्न रूपोमे लौकिक शरीर धारणकर इस धरतीपर उतरना या जन्म धारण करना अवतार कहलाता है।

ईश्वर सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान्, सार्वभौम एव सार्वकालिक है। उसमे वह अपरिमित शक्ति व्याप्त है, जिससे वह अप्राकृत शरीर धारणकर लोकमे अवतरित होता है। अवतारके रूपमे ईश्वर या भगवान् समस्त ससारको अपने वशमे किये हुए हैं। ससारी प्राणी भगवान्की अहैतुकी कृपासे या उसकी शरणमे जानेसे चाकपर रखे मिट्टीके पिण्डकी भाँति निरन्तर गतिशील है, ससारका परिभ्रमण करता हुआ वह सुख-दुःखका अनुभव कर रहा है। जिस प्रकार कुम्भकार चाकपर रखे मिट्टीके पिण्डको घुमाता है उसी प्रकार ईश्वर या भगवान् अवतारके रूपमे सारे जगत्को घुमा रहा है। जैसा कि भगवद्गीता (अ० १८ श्लोक ६१)-मे कहा गया है कि **'भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।'** मनुष्य तो उस सर्वशक्तिमान्की मात्र कठपुतली है, क्योकि मनुष्य अल्पज्ञ तथा अल्पशक्तिमान् है। वह भक्ति तथा उपासना आदिके माध्यमसे भगवान्का सान्निध्य तो प्राप्त कर सकता है उसे भगवान्की पावन सन्निधि तो मिल सकती है किंतु स्वयं भगवान् कभी नहीं बन सकता। उसमे भगवान् बननेकी शक्ति-सामर्थ्य कदापि नहीं आ सकती। जबकि भगवान् अवतारके रूपमे मनुष्य बन सकते हैं। इस धरतीपर जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब ईश्वरके प्रतिनिधिरूप हैं, अवतारी हैं, कोई साधारण मनुष्य नहीं। इस प्रकार ईश्वर या भगवान्का अवतार लेनेका मुख्य प्रयोजन है—मानव-धर्म-सस्कृतिकी रक्षा, दुष्टोका दलन और भक्तोका रञ्जन।

इस धरापर आसुरी शक्तियोको मिटानेके लिये तथा दिव्य शक्तियोके सचरणहेतु त्रेतायुगमे भगवान् श्रीरामने और द्वापरयुगमे भगवान् श्रीकृष्णने अवतारके रूपमे ही जन्म लेकर अपनी लीलाओके माध्यमसे ससारी प्राणियोका कल्याण किया। वे कोई साधारण मानव नहीं हैं, अपितु भगवान् विष्णुके अवतार हैं। इसलिये वे जन-जनके आराध्य हैं, उपास्य हैं। भगवान् विष्णु नारायण हैं। वे भागवतधर्मके मूल प्रवर्तक हैं।

वैकुण्ठधाममें निवास करनेवाले भगवान् विष्णु भूलोकपर देवकी-वसुदेवके यहाँ श्रीकृष्णके रूपमे तथा राजा दशरथ और कौसल्याके यहाँ श्रीरामके रूपमे शरीर धारण कर जीवनपर्यन्त लीलादिके निमित्त व्यापक लोकमङ्गलके लक्ष्यकी पूर्ति ही करते रहते हैं। भागवतधर्मको लोक-जीवनके अधिक निकट लानेके लिये नारायणने अवतारका आश्रय लिया, ताकि धर्मके यथार्थ स्वरूपको सरलरूपमे जन-जनतक पहुँचाया जा सके। ब्रह्मके निराकार रूपको समझनेमे सामान्य जनता प्रायः असमर्थ रहती है अतः ब्रह्मके इस निराकार रूपको आकार—रूप देना आवश्यक प्रतीत हुआ।

धर्मशास्त्रोमे विशेषकर पुराणोमें अवतारकी विशेष चर्चा हुई है, किंतु इसका मूल वैदिक साहित्यमे प्राप्त होता है। ऋग्वेद (१।१५४।२)-मे भगवान् विष्णुके वामनावताद्वारा तीन पग मे सम्पूर्ण सृष्टिके नापनेकी कथा व्यञ्जित है शतपथब्राह्मणमे मत्स्यावतार (१।८।१।१), कूर्मावतार (७।५।१।५) तथा वामनावतार (१।२।५।१०) और

ऐतरेय ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद् (३।१७।६) एव तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१।६)-मे देवकीपुत्र श्रीकृष्ण या वासुदेव श्रीकृष्णकी कथाओका उल्लेख भी अवतारके प्रसगको दर्शाता है। पुराणामे भगवान्‌के चौबीस अवताराका उल्लेख हुआ है, किंतु उनमे दस अवतार प्रसिद्ध हैं। यथा १-मत्स्यावतार, २-कूर्मावतार, ३-वराहावतार, ४-वामनावतार, ५-नृसिहावतार, ६-परशुरामावतार, ७-रामावतार, ८-कृष्णावतार, ९-बुद्धावतार तथा १०-कल्कि अवतार। ये समस्त अवतार लीलावतारके नामसे प्रसिद्ध हैं। श्रीमद्भागवतमे सत्त्वावतारकी भी चर्चा हुई है। सत्त्वावतारके रूपमे काल, स्वभाव, काय, करण, मन, पञ्चभूत, अहङ्कार, रज-तम-सत्—त्रिगुण, इन्द्रियाँ स्थावर ओर जङ्गम जीवाकी गणना की गयी है।

इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर सृष्टि एक प्रकारसे भगवान्‌की ही व्यक्त ओर अव्यक्त मङ्गलमयी लीलाका एक उदात्त रूप है। इस पृथ्वीपर अशावतार या कलावतार आदिके रूपमे प्रकट हाकर भगवान् अपनी अहैतुकी कृपा करते हुए मानवीय वृत्तियाको समाजमे सस्थापित करके जगत्‌के समस्त प्राणियाको यह प्रेरणा प्रदान करते हैं कि जो नि स्पृह होकर भगवान्‌की शरणमे चला जाता है, वह निश्चय ही परम गतिको प्राप्त होता है।

भगवदवतारापर आस्था, निष्ठा तथा उनकी शरण ग्रहण करनेवाले भक्त यह अनुभूत करने लगते हैं कि भगवान् सृष्टिके कण-कणमे व्याप्त हैं। सृष्टिमें जो कुछ भी शुभ-अशुभ घटित हो रहा है, उसमे भगवान्‌की ही लीला है। भगवान् पृथ्वीपर अनेक नाम-रूपामे अवतरित होकर नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहते हैं, उनके अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लीला-कृत्य प्राकृत नहीं हैं अपितु दिव्यता एव अलौकिकतासे सवष्टित हैं। भक्तकी इस प्रकारकी निश्चयात्मिका बुद्धि उसके कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर देती है।

भगवान् स्वय कहते हैं कि जो मुझ ब्रह्मको अपनेमे तथा सर्वभूत प्राणियामे स्थित देखता है, उसके लिये मैं कभी भी न अदृश्य होता हूँ और न वह मुझसे ही कभी अदृश्य होता है।

~~~०~~~

'स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमज विभुम्'

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री रामायणी)

अनन्तगुणगणाधिष्ठान, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ सर्वेश्वर करुणावरुणालय भगवान्‌का विश्रामालय तो साकेतधाम, वैकुण्ठधाम, गोलोकधाम है, किंतु प्रभुकी लीलास्थली रगमञ्च (नाट्यमञ्च) मृत्युलोक ही है। जब उनको विश्रामालयमे रहते-रहते कभी लीला (नाटक) करनेका विचार होता है तो वे मृत्युलोकरूपी विश्वरगमञ्चपर ही कच्छप, मत्स्य, वामन नृसिह, परशुराम बुद्ध आदि रूप धारणकर आते हैं और लीलाके उद्देश्यको पूर्ण करते हैं फिर जब कभी मानवाको उपदेश करनेके लिये आदर्श स्थापित करने आते हैं तो अपने समस्त परिकरमण्डल ही क्या अन्यान्य देवाके साथ सृष्टिके कर्ता, धर्ता तथा सहर्तातकको भी साथ लेकर पूरी तैयारी कर-कराके इस विश्वरगमञ्चकी गरिमाको बढाने एव अपने अनेक उद्देश्याकी पूर्ति करनेके लिये फिर नटवरवपु धारण कर नट-नागर बनकर समस्त पात्राके साथ विश्वभरको लीला दिखाकर आदर्श स्थापित करते हैं। उस समय विश्वरगमञ्चकी शोभा अनुपम, मनोरम आनन्ददायिनी, सर्वलोकमोहनी हो जाती है। इस लीलामे समस्त देव ही क्यो, बिधि, हरि और शम्भु भी शामिल रहते हैं—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि सभु नचावनि हारे॥

(रा०च०मा० २।१२७।१)

श्रीरामावतारमे देवादि वानर तथा श्रीकृष्णावतारमे गोप-ग्वाल-गोपी गौ वृक्ष लता, वीरुध, गुल्म तृण, अकुर आदि भी बनकर उस नटनागर प्रभुके मञ्चपर मचन कर पूरा-पूरा सहयोग देकर फिर प्रभुके साथ ही निज धाम चले जाते हैं—

'प्रजा सहित रघुबसमनि किमि गवने निज धाम।'

(रा०च०मा० १।११०)

इस विश्वरगमञ्चपर प्रभु स्वय सूत्रधार बनते हैं, मचन करनेवाले जीवाको अभिनेता बनाते हैं और मायाको नटी—नाचने या नचानेवाली पात्र बनाते हैं। चौरासी लाख योनियामे भ्रमण ही इस नाट्यशालाके अनेक द्वार हैं चौदह भुवन ही रगभूमि है, इसमे सूर्य, चन्द्र-जैसा परम प्रकाशक
~~~

ज्योतियाँ तथा मोहभ्रमकी यवनिका (परदा) है। प्रभु स्वय सूत्रधार—निर्देशक बनकर जिसे जैसा आदेश देते हैं, वैसा ही उसे करना पडता है।

किंतु क्या यह नाटकमात्र ही नाट्य-उद्देश्य होता है? नहीं-नहीं, इस नाटकका मुख्य उद्देश्य निम्न है—

परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥
(गीता ४।८)

अर्थात् अवतरणसे साधुपरित्राण, दुष्टविनाश, वेदिक धर्मस्थापन—इन तीनो कार्योंकी तो प्रमुखता है ही, इसके साथ ही मर्त्यशिक्षण तथा मानवादर्श-स्थापन भी है—

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षण
रक्षोवधायैव न केवल विभो।'
(श्रीमद्भा० ५।१९।५)

वेसे सर्वोपाधिविनिर्मुक्त परमात्मा, जिनके भ्रूविक्षेपमात्रमे जगत्की सृष्टि, पालन, लय सनिविष्ट है, अपने समस्त उपर्युक्त कार्य अपने सकल्पमात्रसे भी कर सकते हैं तथापि इतने नाटकका मूल उद्देश्य है—

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥

इसी कारण कहा गया—

'स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमज विभुम्॥'
(रामरक्षास्तोत्र ३)

अपनी लीला (नाटक)-से प्रभु जगत्की रक्षाके लिये अज एव समर्थ होते हुए भी धनुष-बाण लेकर अवतरित होते हैं। कभी धनुष-बाण, कभी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म और कभी वशी लेकर अवतरित होनेका मूल उद्देश्य इस प्रकार है—

'बिप्र धेनु सुर सत हित लीन्ह मनुज अवतार।'
(रा०च०मा० १।१९२)

क्योंकि उस ससारके परम व्यवस्थापककी सुव्यवस्था इन्हीं चारो (विप्र, धेनु, सुर तथा सत)-से पूर्ण रूपमे आश्रित होकर चलती है। इन्हीं चारोके भरोसे वे निश्चिन्त रहते हैं, किंतु जब इन चारोकी व्यवस्था बिगडने लगती है तो प्रभुको स्वय इसे सुव्यवस्थित करनेके लिये अवतार लेना पडता है। यहाँ इसपर सक्षेपमे विचार प्रस्तुत है—

१-विप्र—ब्राह्मणकी उत्पत्ति प्रभुके मुखसे है—'**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्**।' जैसे केवल मुखको भोजन देनेसे सभी अङ्गोकी सतुष्टि तथा सम्पुष्टि हो जाती है, वेसे ही—

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्व वस्ते स्व ददाति च।
तस्यैवानुग्रहेणान्न भुञ्जते क्षत्रियादय ॥
(श्रीमद्भा० ४।२२।४६)

महाराज पृथुने सनत्कुमारजीसे कहा कि ब्राह्मण स्वय भोजन करता तथा क्षत्रियादिक सभीको अपने अनुग्रहसे खिलाता एव देता है। परशुरामजीने तो मिथ्याभिमानी क्षत्रियोकी उद्दण्डताको नष्ट करके सारा राज्य ब्राह्मणोको ही दे दिया था। इसी प्रकार श्रीरामने यज्ञ करके सर्वस्व दान विप्रोको दिया। विप्रोने सब लेकर वापस क्षत्रियोको ही राज्य-रक्षत्व-भावसे दे दिया। भगवान् वामनने बलिसे विप्र बनकर सर्वस्व लेकर फिर देवोको दे दिया, स्वय बलिके द्वारपाल बनकर अबतकका विप्र-सर्वस्व-दानका आदर्श स्थापित किया।

वसिष्ठ शतानन्द, विश्वामित्र, धौम्य, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य चाणक्य आदि विप्रोके हाथो एव आज्ञापालक बनकर शासन क्षत्रियोके ही द्वारा चलता रहा।

२-धेनु—एक ही कुलके दो भेद हैं—गौ और ब्राह्मण। ब्राह्मणमे यज्ञके सभी वेदमन्त्र हैं। गौमे यज्ञका सम्पूर्ण हविद्रव्य है। यज्ञसे ही सम्पूर्ण ससारका पालन-पोषण होता है। गौसे गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत—पञ्चगव्य तथा पञ्चामृतकी सामग्री प्राप्त होती है।

३-सुर—देवोके द्वारा ही हमारा शरीर सुरक्षित है, समस्त इन्द्रियद्वारोपर देवगणोका अधिष्ठान है—***'तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।'*** (रा०च०मा० ७।११८।११) साथ ही वे हमारे सर्वार्थसाधक हैं।

४-सत—सतोका यज्ञ-यागादिक विप्र, धेनु, सुरके द्वारा ही सम्पन्न होता है एव इन्हींकी उपासना इनके जीवनका सार है। सत देवोपासक होते हैं।

इस प्रकार परमात्माके ससारकी सुव्यवस्थाके आधार विप्र, धेनु, सुर तथा सत हैं। इन चारोपर जब सकट आ पडता है, तब भगवान्का अवतार किसी लीलाके माध्यमसे होता है। '**अजायमानो बहुधा वि जायते**' (यजु० ३१।१९) का मूलाधार है—

'स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमज विभुम्॥'

अवतार

[कहानी]

(श्री 'चक्र')

'ससारके प्राणी अत्यन्त दु खी हैं दयाधाम।' देवर्षि नारद गोलोकेश्वरका सत्कार स्वीकार करके आसनपर आसीन हो गये थे और कुशल-प्रश्नका अवकाश दिय बिना ही उन्हाने स्वत प्रार्थना प्रारम्भ कर दी—'आपकी अहैतुकी कृपाके अतिरिक्त उनका और कोई आश्रय नहीं ह।'

'मैं कृपा-कृपण नहीं हुआ हूँ देवर्षि!' तनिक मुस्कराये मयूरमुकुटी। 'जीवाके परम कल्याणक लिये श्रुतिकी शाश्वत वाणी मैंने पूर्वसे उन्ह प्रदान की। सृष्टिके प्रारम्भमे ही मैं स्रष्टाको वेद-ज्ञान दे देता हूँ, जिससे जीवाको अज्ञानके अन्धकारमे भटकना न पडे।'

'वे अब भी भटक रहे हैं।' कृपाकी अतिशयताके कारण नारदजीके नेत्र टपकन लगे—'जप-तप, याग-यज्ञ आदिम प्रथम तो उनकी प्रवृत्ति नहीं हाती और कदाचित् हो भी गयी तो आपकी लोकविमोहिनी मायाके प्रलोभन कहाँ कम हैं। भाग, यश, स्वर्ग और कुछ न हो तो अहकार—इन पाशोसे परित्राण कैसे पाये वे दुर्बल?'

'अन्तत आप चाहते क्या हैं?' सीधा प्रश्न किया गया। श्रीनारदजीका क्या ठिकाना कि कब उठ खड हा। उनको कहीं स्थिर बैठना आता नहीं। उनकी खडाऊँ हिलने लगी है। दूसरे, ये लम्बी चुटियावाले वीणाधारी विचित्र स्वभावके हैं। इधरकी उधर लगानेम, पहेली बुझानेमे इन्हे आनन्द आता है। क्या पता कब कह दे कि आगेकी बात अपने-आप समझो। अभी सानुकूल हैं। अतएव अभी सीधे ही पूछ लेना अधिक उपयुक्त था।

'मेरे चाहनेका कोई महत्त्व नहीं।' देवर्षिने उलाहना नहीं दिया। वे प्रार्थनाके स्वरमे ही बोल रहे थ—'आप सर्वज्ञ हैं, किंतु जीव इसे समझ नहीं पाते। उनके मध्य आप पधारो और स्वय अपने व्यक्त दृगोसे उन्हे देखा। वे आपके परम मङ्गलायतन स्वरूपका दर्शन कर। आपके व्यक्त सगुण-साकार श्रीविग्रहके रुचिर क्रीडा-विहाराका आधार मिले उनके चञ्चल चित्तका। तव कहीं माया भगवती भी कुछ सकुचित हागी कुछ कृपा करना आवेगा उन्हे।'

पीताम्बरधारीने तनिक देखा निकुञ्जश्वरीकी ओर। तात्पर्य स्पष्ट था—'इनकी छाया-शक्ति ही माया है। आप इनसे क्यो नहीं कहत?'

'य नित्य प्रेमस्वरूपा—इन्ह ता स्नेह ही देना आता है।' देवर्षिने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'आपकी क्रीडा-प्रियताम बाधा न पडती, इन्हाने कहाँ कब उपेक्षा सीखी है किसीकी। इनके स्मरणसे मायाका अन्धकार तिरोहित होता है, किंतु जीवाका अभाग्य—वे स्मरण ही कहाँ कर पाते हैं। उनके लिये स्मरणका स्पष्ट, व्यक्त, सुरम्य, आधार प्रदान करने आप स्वय धरापर पधारे देव!'

'आपकी इच्छा पूर्ण हो।' दवर्षिने वीणा तब उठायी, जब सर्वेश्वरके श्रीमुखसे यह सुन लिया।

× × ×

'मैं बार-बार धरापर गया और मैंने जीवाके कल्याणक साधन उन्ह प्रदान किये।' युगाके पश्चात् देवर्षि फिर गोलोक पधार थे और इस बार श्यामसुन्दर स्वत बता रहे थे—'मानव कर्ममे नित्य स्वतन्त्र है और वह उन्हीं कर्मोको प्रिय मानता ह, जो उसके बन्धनको और दृढ करते हैं। वह अपने क्लेशको बढानेम लगा है। मेरी ओर देखनेका तो जैसे उसके पास समय ही नहीं।'

'आपने महामत्स्यरूप धारण किया और मानवके एक आदिपुरुषको स्वत श्रीमुखसे धर्मका उपदेश किया।' देवर्षिकी वाणीमे इस बार व्यग था—'मानवका अभाग्य कि वह उस धर्मकी ओर ध्यान नहीं देता और ध्यान नहीं देता प्रलयाब्धिविहारी महामत्स्यकी ओर।'

'देवर्षि! मैं मत्स्यावतार, वाराहावतार या वामन अथवा नृसिहावतारकी चर्चा नहीं कर रहा हूँ।' श्रीकृष्णचन्द्र खुलकर हँसे—'ये अवतार मनुष्योके मध्य नहीं हुए और मानव इनमे आकर्षण न पाये तो उसे दोष देनेका कारण नहीं है।'

'मनुष्यके कल्याणके लिये आप गृहत्यागी बने और नर-नारायणरूपसे आपने दीर्घकालीन तपस्या की। कपिलरूपमें आपने तत्त्वका प्रसख्यान किया और तपका आदर्श स्वत उपस्थित किया।' देवर्षिका स्वर परिवर्तित नहीं हुआ—'कूर्म, यज्ञ हयशीर्ष मोहिनी अवतारकी चर्चा आप करगे

नहीं, क्योकि व भी मनुष्योके मध्य नहीं हुए। यही अवस्था हस, धन्वन्तरि-जैसे अवताराकी है और प्रभु! ऋषभरूपसे भी वही तपका आदर्श दिया आपने। मानव तप कर नहीं पाता। थोडेसे ऋषियोके वशका है तप। जहाँ वह अपनेको समर्थ नहीं पाता, वहाँसे उदासीन तो होगा ही।'

'आप अपनेको और अपने अग्रज सनकादि कुमाराको गणनाम लेनेवाले नहीं हैं। परशुरामका अवतार साधन प्रदान करनेके लिय हुआ नहीं। आगे भी बुद्ध तथा कल्कि-अवतार प्रयोजनविशेषसे होने है तथा गजेन्द्रक उद्धार या ध्रुवके लिये अवतारकी बात भी मैं नहीं करता।' इस बार श्रीभगवान्का स्वर गम्भीर हो गया—'आप चाह तो कह सकते हैं कि पृथुके रूपमे भी मैं सत्ययुगम धरापर गया और यज्ञका ही विशेषरूपसे मैंने प्रतिपादन किया, किंतु मैने त्रेतामे मानवको सम्यक् आदर्श देनेम कहाँ त्रुटि की देवर्षि? मैंने सम्पूर्ण मानव-चरितको क्या उचितरूपमे अयोध्यामे उपस्थित नहीं किया?'

'मन्दप्रज्ञ ही मर्यादापुरुषोत्तमके मङ्गल चरितम त्रुटि देखते हैं।' देवर्षिके स्वर श्रद्धाभरित हुए—'आप अनन्त कृपा-पयोधि हैं, इसीलिय तो यह जन इन श्रीचरणोम पुन जीवापर कृपा-याचना करने उपस्थित हुआ है।'

'तब आप चाहते हैं ।' श्यामसुन्दरकी बात पूरी नहीं हुई। दवर्षिने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया।

'कलि-कलुष मानवको मर्यादामे रहने नहीं दता देव। आपके भुवन-पावन चरित उसे निर्मल करते है और आपका वह पावन 'राम' नाम निखिल पाप-तापका विनाशक है। आपने मानवके समस्त वर्गोके लिय सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान एव साधन-प्रणाली अपने कृष्ण-द्वैपायनरूपसे सुगम कर दी है, किंतु ।' दो क्षण रुककर पुन बोले देवर्षि—'यदि आप अपने इस त्रिभुवनमोहनरूपसे पधारते। यदि अपने इन दिव्य चरिताको प्रकाशित करते धरापर, जो श्रवणमात्रसे चित्तको अपनी ओर आकर्षित कर लते हैं।'

'प्रेम मानवको श्रीचरणाकी ओर अधिक आकर्षित करता है मर्यादाकी अपेक्षा और भक्तिदेवीपर आपका सर्वाधिक अनुग्रह भी है।' देवर्षिने इस वार श्रीनिकुञ्जेश्वरीके पाद-पकजोकी ओर मस्तक झुकाया—'महाभावका आलोक यदि एक बार धराको धन्य कर जाता।'

'इसका अर्थ है कि अश और कलाका अवतरण देवर्षिको सतुष्ट नहीं कर सका है। आदर्शकी मर्यादासे भी ये नित्य अवधूत कुछ अधिक चाहते ह, किंतु महाभाव ' मयूरमुकुट उन महाभावकी नित्यमूर्ति अपनी अभिन्न सहचरीकी ओर झुका—'वह तो अन्यत्र व्यक्त नहीं होता। उसका आलोक धरापर यदि व्यक्त होता है तो वह दूसरेम व्यक्त हो, यह कैसे हो सकता है? आप धरापर पधारेगी?'

'अस्वीकृति मने कभी सुनी नहीं।' देवर्षि बीचम ही बोले—'अनन्त स्नेह, अनन्त कृपा और अनन्त वात्सल्य जहाँसे शिशु पाता है, वहाँ उसकी याचना पूर्ण-स्वीकृत ही रहती है।'

'एवमस्तु' सुननेकी भी अपेक्षा देवर्षिने नहीं की। वे वीणा कराम उठा चुके थे और उठ चुक थे आसनसे। उनकी अँगुलियाँ वीणाके तारासे उल्लासपूर्ण झकृति गुंजित करने लगी थीं। भला कहीं किसीकी आकाङ्क्षा इन चारु चरणोतक पहुँचकर भी कभी अपूर्ण रही है?

'माई री! अचरज की यह बात'

(प० श्रीकृष्णगोपालाचार्यजी)

माई री! अचरजकी यह बात।
निर्गुण ब्रह्म सगुन ह्वै आयौ, बृजम ताहि नचात॥ १॥
पूरन ब्रह्म अखिल भुवनेश्वर, गति जाकी अज्ञात।
ते बृज गोप-ग्वाल सग खेलत बन-बन धेनु चरात॥ २॥
जाकूँ बेद नेति कहि गाव, भेद न जान्यौ जात।
सो बृज गोप-बधुन्ह गृह नित ही, चोरी कर दधि खात॥ ३॥
शिव-ब्रह्मादि, देव, मुनि नारद, जाकौ ध्यान लगात।
ताकूँ बाँधि जसोदा मैया, लै कर छरी डरात॥ ४॥
जाकी भृकुटि-बिलास सृष्टि-लय हावै तिहुँ पुर त्रास।
कृष्णगुपाल' ग्वाल डरपावत, हाऊ त भय खात॥ ५॥

भगवान् श्रीकृष्णको चुनौती दी थी, नकली अवतार पौण्ड्रकने

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

हमारे धर्मशास्त्रा तथा पुराणाम जहाँ भगवान्‌क अवताराका वर्णन मिलता है, वहीं वर्तमानकालकी तरह भगवान् श्रीकृष्णके कालम भी एक नकली अवतारका वर्णन श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धम मिलता ह।

करूप देशके राजा पौण्ड्रकने एक बार भगवान् श्रीकृष्णक पास अपना दूत भेजकर कहलवाया—'असली भगवान् वासुदेव में हूँ।'

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाम सभासदाके साथ बैठे हुए थे। दूतने उपस्थित होकर अपने राजा पोण्ड्रकका सदेश सुनाया—'एकमात्र में ही वासुदेव हूँ, दूसरा कोई नहीं हे। प्राणियापर कृपा करनेके लिये मैंने ही अवतार ग्रहण किया है। तुमने झूठ-मूठ अपना नाम वासुदव रख लिया है, अब उसे छोड दो। यदुवशी वीर! तुमने मूर्खतावश मरे चिह्न धारण कर रखे हैं। उन्ह छोडकर मेरी शरणमे आओ और यदि मेरी बात स्वीकार न हो ता मुझसे युद्ध करो।'

अपनेको असली कृष्ण होनेका दावा करनेवाले राजा पौण्ड्रकका सदेश सुनकर उग्रसेनसहित सभी सभासद् हँसने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णने दूतसे कहा—'अपने राजासे जाकर कह दो कि यह युद्धम निर्णय हो जायगा कि असली वासुदेव कौन हे? उससे कहना कि रे मूढ! मैं अपने चक्र आदि चिह्न या नहीं छोड़ूँगा, इन्ह मैं तुझपर छोड़ूँगा और केवल तुझपर ही नहीं, तेरे उन सभी साथियापर भी, जिनक वहकानेसे तू इस प्रकार बहक रहा हे।'

राजा पौण्ड्रक काशीम अपने मित्र काशिराजके पास रह रहा था। दोना आरकी सेनाएँ मैदानमे आ डटीं, काशीका राजा अपनी सेनासहित पौण्ड्रककी सेनाके पीछे-पीछे था।

उस समय पोण्ड्रकने शख, चक्र, गदा तलवार शार्ङ्गधनुप और श्रीवत्स आदि चिह्न धारण कर रखे थे। वक्ष स्थलपर बनावटी कौस्तुभमणि और वनमाला भी लटक रही थी। उसने रेशमी पीले वस्त्र पहन रखे थे और रथकी ध्वजापर गरुडचिह्न भी लगा रखा था। उसने सिरपर अमूल्य मुकुट धारण किया हुआ था और उसक कानाम मकराकृत कुण्डल जगमगा रह थे, उस नकली कृष्णने अपना वेष पूरी तरह बनावटी बना रखा था। वह एसा लग रहा था मानो कोई अभिनेता रगमचपर अभिनय करनक लिये आया हा।
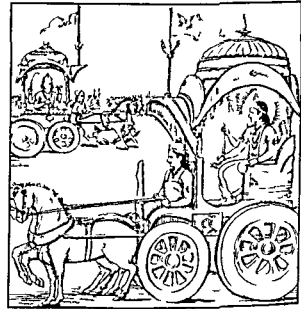
भगवान् श्रीकृष्ण अपनेको चुनौती देकर श्रीकृष्ण बतानेवाले उस नकली अवतारको देखकर खिल-खिलाकर हँस पडे। देखते-ही-देखते पौण्ड्रकने भगवान् श्रीकृष्णपर त्रिशूल गदा तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रासे प्रहार किया। भगवान् श्रीकृष्णने देखते-ही-देखते क्षण भरम पौण्ड्रक तथा काशिराजकी सेनाके हाथी, रथा तथा घोडाको तहस-नहस कर डाला। भगवान्‌ने अपने सुदर्शन चक्रके प्रहारसे उस पाखण्डी अवतारका सिर धडसे अलग कर डाला।

इसी प्रकार हिरण्यकशिपुने भी स्वयको ही परमेश्वर वताकर अपने पुत्र प्रह्लादसे किन्हीं अन्यको भगवान् न माननेका दुराग्रह किया था। उसने भगवान्‌की भक्ति करनेक आरापम अपन ही पुत्र भक्तराज प्रह्लादको अनेक प्रकारसे अमानवीय यातनाएँ देनेके प्रयास किये। अन्तम भगवान् नरसिहने खम्भेसे प्रकट होकर उस स्वयम्भू भगवान् हिरण्यकशिपुका पेट फाडकर उसके अहकारको

नष्ट कर डाला।

भारत अवतारोकी पावन लीलाभूमि है। भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीराम आदि अनेक अवतारोने गो-ब्राह्मणो, सतजनाके रक्षार्थ तथा धर्मकी पुन स्थापनाके लिये मानवरूपमे अवतरित होकर लीलाएँ कीं, किंतु यह अत्यन्त दुर्भाग्यकी बात है कि पोण्ड्रक तथा हिरण्यकशिपुका तरह समय-समयपर अनक ऐसे व्यक्ति पेदा हात रहत हे, जो अपनेको साक्षात् अवतार होनेका दावा कर भोले-भाले श्रद्धालुजनोका धार्मिक शोषण करते रहते हैं।

कुछ दशकपूर्व एक तथाकथित सतने अपनको भगवान् श्रीकृष्णका अवतार घाषित कर दिया। वे स्वय सिरपर मोरमुकुट पहनकर हाथमे बाँसुरी रखा करते थे। अपने चार पुत्राको वालभगवान् बताया करते थे। देखते-ही-देखते लाखो अधविश्वासी लोग उनके भक्त-शिष्य बन गये और उन्हे भगवान् श्रीकृष्णका अवतार बताकर पूजने लगे। बादमे जब उनका एक पुत्र तथाकथित बालभगवान् एक विदेशी बालासे विवाह कर उसे लेकर विदश चला गया, तब लोगाका भ्रम टूटा।

किसी जमानेम सिधके सक्खर क्षेत्रम एक कथित सतने अपनेको साक्षात् भगवान् शिव घोषित कर दिया। उनका कथन था कि पुराणाम भगवान्की गलत ढगसे कल्पना की गयी है, असली शिव तो मैं हूँ।

पजाबम किसी समय सर आगाखाँके अनुयायियोने आगाखानी मत चलाया था। हिन्दुआको अपने मायाजालमे फँसानेके लिये उनके अनुयायियोने घापित किया था कि सर आगाखाँ कल्कि भगवान्के अवतार हैं, उनके ऐसे चित्र छपवाकर वितरित किये जाते थे। एक बार शास्त्रार्थमहारथी प० माधवाचार्यशास्त्रीजी आदि सनातनधर्मी विद्वानाने लाहारमे आगाखानी मतके नेताआको चुनौती दी कि वे अपनेको अवतार सिद्ध कर। तब जाकर उन्हे यह प्रचार बद करनेको बाध्य होना पडा था।

भारत सदैवसे धर्मपरायण देश रहा है। असख्य सत-महात्माओ धर्माचार्यों, भक्ताने जन्म लेकर भक्ति-भागीरथी प्रवाहित की। किसीने भी अपनेका सर्वशक्तिमान् अवतार नहीं बताया। तमाम सत-महात्मा आचार्यगण पुराणा तथा धर्मशास्त्रोंम वर्णित अवताराकी पूजा-उपासना कर मानवजीवन सार्थक बनानेका उपदेश और प्रेरणा देते रहे। किसीने भी भगवान्की उपासनाकी जगह अपनी पूजा-उपासना नहीं बतायी। भगवान्के विग्रह (मूर्ति)-की जगह अपनी मूर्तिका पूजन करनको नहीं कहा। अब अनेक कलियुगी कथित सत तथा गुरु भगवान्के अवताराकी जगह अपनी पूजा-अर्चना करान लग हैं। उनक अधविश्वासी भक्त प्रचार करत दखे जात ह कि गुरुजीका नाम-स्मरण करते ही सकट टल गया। उनके चित्रका पूजन करनेस बीमारी भाग गयी। अब तो अनेक तथाकथित गुरुआके अधविश्वासी चेलाने गुरुको अवतार सिद्ध करनेके लिय कुछ तथाकथित पडितास उनकी महत्तापर, जीवनपर पदाका तुकबदी कराकर हनुमानचालीसा जैसे दिव्य पदाकी जगह गुरुचालीसा प्रकाशित कराकर उनका पाठ शुरू कर दिया हे। उनपर लिखे काव्यग्रथका रामचरितमानसकी तरह पाठ किया जाने लगा है। गुरुओकी मूर्तिके समक्ष आरती की जाने लगी है। कई अधविश्वासी चेलाने ता अपने गुरुआके मदिर बनाने शुरू कर दिये हैं। उन्हाने मदिरम भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीराम, महादेव शकर, हनुमान्जी आदिकी मूर्तियाके स्थानपर गुरुआकी मूर्तियाको स्थापित करना शुरू कर दिया है।

ब्रह्मनिष्ठ सत उडियाबाबाजी महाराज, महान् विरक्त सत स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज, धर्मसम्राट् स्वामी करपात्रीजी महाराज जैसे तपोनिष्ठ सत प्राय प्रवचनमे कहा करते थे कि श्रद्धालुजनाको उन तथाकथित कलियुगी सतासे सतर्क रहना चाहिये जो अपनेको सर्वशक्तिमान्, साक्षात् अवतार घाषित कर चेले-चली बनाकर उनका धार्मिक शोषण करते हैं। ये सभी ब्रह्मनिष्ठ सत धर्मगुरुआ या सत-महात्माआकी मूर्तियाँ स्थापित कर उनका पूजन किये जानेको शास्त्रविरुद्ध मानते थे। वे विशेषकर महिलाआको तो ऐसे मायावी कलियुगी नकली अवतारासे दूर ही रहनकी प्रेरणा दिया करते थे।

अत हम शास्त्रोम वर्णित अपने महान् अवताराके प्रति पूर्ण श्रद्धावान् रहते हुए उनकी उपासनाके माध्यमसे मानवजीवनको सफल बनाते हुए कलियुगी नकला अवतारास पूर्ण सावधान रहना चाहिये, अन्यथा हम अपन मानवजीवनको कलकित ही कर लगे।

जहाँतक पोण्ड्रककी बात हे वह भगवान्क रूपका

चाहे जिस भावसे हो, सदा चिन्तन किया करता था, बनावटी वेश धारण करनेमे भी वह उन्हींका बार-बार स्मरण करता था, अत उसके तो सभी बन्धन कट गये, भगवान्‌के हाथा उसकी मृत्यु हुई और वह सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हुआ, परतु इन कलियुगी भगवानाका ध्येय तो सिर्फ स्वार्थ और शापण ही है। भगवान्‌के रूपका स्मरण-चिन्तन ता दूर, परोक्षम ये लोग सार कार्य उनके सिद्धान्ताक विपरीत ही करते हैं, अत एसे वचकाको तो दूरसे ही प्रणाम करना चाहिये। गोस्वामीजीन इनक विपयम लिखा है—

बचक भगत कहाइ राम के। किकर कचन कोह काम के॥

(रा०च०मा० १।१२।३)

[प्रेपक—श्रीशिवकुमारजी गायल]

~~०~~

'राम जनम के हेतु अनेका'

(डॉ० स्वामी श्रीजयेन्द्रानन्दजी 'मानसमराल)

श्रीरामचरितमानसमे भगवती पार्वतीने भगवान् श्रीरामके अवतारके कारणके सम्बन्धमे भगवान् शकरसे पूछते हुए कहा—जो चिन्मय ब्रह्म सर्वव्यापक, अविनाशी और घट-घटवासी ह, उसे नरशरीर धारण करनेकी क्या आवश्यकता हुई—

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥
नाथ धरेउ नरतनु कहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू॥

(रा०च०मा० १।१२०।६-७)

प्रत्युत्तरम भगवान् शकरने कहा कि भगवान् रामके अवतार-ग्रहणका एकमात्र यही कारण है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई॥

(रा०च०मा० १।१२१।२)

फिर भी सता और वेद-पुराणाने भगवान्‌के अवतारके विषयम जेसा अनुमान किया है, वेसा मैं तुम्हारे समक्ष कहूँगा। जब-जब धर्मकी मर्यादा ध्वस्त होती है, अधर्म और अभिमानकी वृद्धि होती है, गाय, ब्राह्मण, देवता और पृथ्वीपर अत्याचार बढता है, तब-तब विविध शरीर धारणकर परमात्मा असुराका सहार करते हैं तथा धर्मको पुन स्थापित करते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहि असुर अधम अभिमानी॥
करहि अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहि बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहि निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहि बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

(रा०च०मा० १।१२१।६—८ दो० १२१)

भगवान् शकर पुन कहते हैं—इन सामान्य कारणाके अतिरिक्त भगवान् श्रीरामक अवतारके परम विचित्र अनक कारण हैं, जिनमस कुछका उल्लख में करूँगा—

राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक त एका॥
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥

(रा०च०मा० १।१२२।२-३)

प्रथम कारण—वैकुण्ठम भगवान् विष्णुके जय आर विजय—दो द्वारपाल रहते हैं। एक बार उनके मनमे एसा विचार आया कि सभी विष्णुकी ही पूजा-आरती करते ह, हमारी काई करता ही नहीं। आज जो पहले हमारी पूजा-आरती करेगा, उसे ही भीतर जान दगे। उस दिन सयोगसे सनकादिक आ गये। जय-विजयने उन्ह भीतर जानेसे राक दिया तो उन्हाने शाप दे दिया कि तुम दोना निशिचर हो जाओ। फलत दोना हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दैत्य हुए। उनको मुक्त करनेके लिये भगवान्‌को अवतार लेना पडा—

द्वारपाल हरि के प्रिय दाऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥
बिप्र श्राप त दूनउ भाई। तामस असुर दह तिन्ह पाई॥
कनककसिपु अरु हाटक लोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥
बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥

(रा०च०मा० १।१२२।४—८)

तीन जन्मतक जय और विजय निशाचर बने तथा अवतार लेकर भगवान्‌ने उन्ह मुक्त किया।

दूसरा कारण—जलन्धरके लिये भगवान्‌को अवतार ग्रहण करना पडा। जलन्धरकी पत्नी वृन्दा परम सती थी।

उसके सतीत्वके प्रतापसे जलन्धरको कोई मार नहीं पाता था। भगवान् शकर भी उसे नहीं मार पाये। तब भगवान् विष्णुने जलन्धरका शरीर धारण कर वृन्दाका सतीत्वहरण किया और जलन्धरको मारा। जलन्धर रावण बना, जिसको मारनेके लिये रामको अवतार लेना पडा—

छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥
तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा॥
(रा०च०मा० १।१२३ १२४।१, ३)

तीसरा कारण—एक बार नारदमुनिके शापके कारण भगवान्को नरशरीर ग्रहण करना पडा। जब भगवान् शकरने नारदद्वारा भगवान्को शाप देनेकी बात कही तो गिरिजा चकित हो गयीं। उन्होने कहा कि नारदजी भगवान्के परम भक्त और ज्ञानी हैं। अत उनके द्वारा शाप दिया जाना असम्भव प्रतीत होता है—

नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥
बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥
(रा०च०मा० १।१२४।५—८ दो० १२४ क)

इस प्रसगमे भगवान् शकरने एक अटल सिद्धान्तका प्रतिपादन किया। वे बोले ससारमे न कोई ज्ञानी है, न मूढ। यह तो भगवान्की लीला है जब जिसे चाह ज्ञानी बना दे या ज्ञानीको मूढ बना दे। पुन विस्तारपूर्वक भगवान् शकर 'नारदमोह' की कथा पार्वतीको सुनाते हैं।

चौथा कारण—मनु-शतरूपाको दर्शन देनेके लिये भगवान्ने नरशरीर ग्रहण किया। भगवान् शकर अवतारके हेतुकी कथा सुनाते हुए आगे कहते हैं—

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥
(रा०च०मा० १।१४१।१-२)

मानवी सृष्टिके आदिपिता मनुने हजारो वर्षतक राज्य किया किंतु उनक मनमे अभी ससारसे वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ। अपने भोगमय जीवनपर उन्ह ग्लानि हुई। अत एक दिन बडे पुत्रको राज्य दकर वे वनमे तपस्या करने चल दिये। महारानी शतरूपा भी उनके साथ नैमिषारण्य पहुँचीं। मनुकी मानसिक स्थितिका वर्णन गोस्वामीजी इस प्रकार करते हैं—

होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥
बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥
(रा०च०मा० १।१४२ १४३।१-२)

मनु-शतरूपाने कठोर तपस्या की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर विधि, हरि, हर अनेक बार मनुको वरदान देने आये, किंतु मनुने आँखे नहीं खालीं।

अतमे जब भगवान् श्रीराम उनके समक्ष प्रकट हुए तो मनुने वरदान माँगा कि मुझे आप-जैसा ही एक पुत्र चाहिये—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥
देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बाले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मै आई॥
(रा०च०मा० १।१४९ १५०।१-२)

इस प्रकार राजा मनुके वरदानको पूर्ण करनेके लिये भगवान्को नरशरीर धारण करना पडा।

पाँचवाँ कारण—राजा सत्यकेतुके पुत्र चक्रवर्ती राजा भानुप्रतापका उद्धार करनेके लिये भगवान्को नरशरीर धारण करना पडा। भानुप्रताप अत्यन्त प्रतापी और धार्मिक राजा थे। निष्काम भावसे उन्होने अनेक यज्ञ किये। उनके प्रतापसे पृथ्वी धन-धान्यसे परिपूर्ण हो गयी।

एक दिन शिकार खेलते हुए भानुप्रताप जगलमे भटक गये। रात्रिमे उन्ह बाहर आनेका मार्ग नहीं मिला। इसी बीच उन्ह एक कपटी मुनि मिला, जिसके चक्रमे पडकर भानुप्रतापका बहुत अहित हो गया। ब्राह्मणाके शापसे उन्हे रावण बनना पडा है, जिनको मुक्त करनेके लिये भगवान्को रामका शरीर धारण करना पडा है।

रावणशरीर धारण कर भानुप्रतापने नाना प्रकारके अत्याचारासे गाय ब्राह्मण देवता और पृथ्वीको त्रस्त कर दिया। रावणके अत्याचारका वर्णन विस्तारसहित श्रीरामचरित-

मानसमे किया गया है। एक झाँकी प्रस्तुत है—

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहि जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥

(रा०च०मा० १।१८३।५—७ सो० १८३)

रावणके अत्याचारसे सत्रस्त देवताओने पृथ्वीसमेत ब्रह्माजीसे अपनी मुक्तिके लिये प्रार्थना की। शिवजीके आदेशानुसार ब्रह्मा आदि सभी देवोने भगवान्‌की स्तुति की। स्तुतिके प्रभावसे भगवान्‌ने आकाशवाणी की—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥
तिन्ह के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥

(रा०च०मा० १।१८७।१—५)

इस प्रकार अपनी वाणीको निभानेके लिये भगवान्‌ने भाइयोंके साथ अयोध्यामे अवतार लिया। भगवान्‌के अवतारकी घोषणा करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

(रा०च०मा० १।१९२)

इस प्रकार भक्तोके प्रेमके वशीभूत होकर समष्टिको व्यष्टि, निर्गुणको सगुण और निराकारको साकार बनना पड़ा तथा बालक बनकर माता कौसल्याकी गोदका आश्रय लेना पड़ा—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद॥

(रा०च०मा० १।१९८)

इन कारणोंके अतिरिक्त भगवान्‌ने अपने भक्त विभीषणको बतलाया कि मैं केवल तुम्हारे-जैसे संतोंके लिये ही अवतार ग्रहण करता हूँ, मेरे अवतारका अन्य कोई प्रयोजन नहीं है—

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥

(रा०च०मा० ५।४८।८)

श्रीरामावतार करुणावतार ही है

(प० श्रीरामनारायणजी शुक्ल)

श्रीभगवान्‌के परम कृपापात्र गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज विनय-पत्रिका (१७०)-मे कहते है—

सकल अंग पद-बिमुख नाथ मुख नामकी ओट लई है।
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है॥

हे प्रभो! मेरे सभी अङ्ग आपके चरणोंसे विमुख हैं। केवल इस मुखसे आपके नामकी ओट ले रखी है (और यह इसलिये कि) तुलसीको एक यही निश्चय है कि आपकी मूर्ति कृपामयी है (अर्थात् आप कृपासागर होनेके कारण, नामके प्रभावसे मुझे अवश्य अपना लेंगे)।

जैसे मिट्टी, लोहा, चाँदी, सोना, हीरा आदि जिस किसी भी पदार्थकी मूर्ति बनी हो उसमे तत्तद् वस्तुएँ ही प्रधान रहती हैं उसी प्रकार श्रीरामजीमे कृपा एवं करुणा तत्त्व ही प्रधान हैं। उनके अवतरणका उद्देश्य भी जीवोपर करुणा तथा कृपा करके उनका उद्धार करना है। इस प्रकार श्रीरामावतार करुणावतार एवं कृपावतार ही है तथापि मुख्य और अवान्तरभेदसे श्रीरामावतारके अनेक उद्देश्य हैं, जो परम विचित्र हैं। गोस्वामीजी कहते हैं—

राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥

गोस्वामीजीने रामावतारका कारण श्रीरामचरितमानसमे इस प्रकार प्रकट किया है—धर्मकी हानि, अधर्मरूपी अभिमानी असुरोंकी वृद्धि अनीतिका आचरण तथा ब्राह्मण गौ देवता तथा पृथ्वीका दुःखी होना—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥

(रा०च०मा० १।१२१।६-७)

धर्म अर्थ तथा काममे सामञ्जस्य रखनेवाली प्रणाली ही नीति कहलाती है पर ये अधम असुर धर्मनीतिके विपरीत चलते हैं। तब कृपानिधि विविध अवतार धारण

कर सज्जनोकी पीडाका हरण करते हैं—

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।

जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥

अवतरित होकर कृपासिन्धु परम आनन्दका विस्तार करते हैं। श्रीभगवान्के प्रिय पार्षद जय-विजय सनकादि मुनियोके शापसे जब हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष हुए, तब नृसिंह तथा वाराहरूप धारण कर प्रभुने उनका वध किया, रावण, कुम्भकर्णको श्रीरामरूपमे मारा, शिशुपाल दन्तवक्त्रका उद्धार श्रीकृष्णरूपमे किया।

दूसरी बार जलन्धरकी स्त्रीने शाप दिया तब रामावतार हुआ।

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रनामा। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥

यहाँ भी भगवान्का विशेषण कृपालु ही रहा है।

तीसरी बार नारदजीने शाप दिया, पर जब श्रीभगवान्ने मायाका आवरण दूर कर दिया, तब मायाका प्रभाव मिट गया—नारदजी पछताने लगे।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥

यहाँ भी भगवत्कृपा ही झलकती है।

चौथी बार न भक्तको शाप है न भगवान्को। केवल श्रीभगवत्कृपाका ही साम्राज्य झलकता दीखता है। श्रीस्वायम्भुव मनु एव माता शतरूपाजीने तीर्थोत्तम नैमिषारण्यमे जाकर आराधना, तपस्या, भजनद्वारा श्रीभगवान् सीतारामजीका शुभदर्शन किया। इस प्रसगमे कृपा-ही-कृपा भरी है। महाराज मनुने अपनी सतान मानव-जातिके लिये अक्षय सम्पत्ति श्रीभगवान्को ही वररूपमे माँग लिया। इस स्थलपर कृपाकी सर्वोत्तम झलक उजागर है। मनु-शतरूपा एक साथ बोल रहे हैं—

देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

श्रीसीतारामजीकी झाँकी अतीव बाँकी है, जो मानव-जातिको नित्यप्राप्त अक्षय सम्पत्तिके रूपमे है। भगवान्ने मनुजीसे वर माँगनेके लिये कहा—

बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।

मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥

भगवान्ने इतना कह दिया कि जो कुछ आप माँगेगे, सब हम दे देगे, यदि आप हमको माँगेगे, तो हम अपनेआपको भी देनेको तैयार हैं—

सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥

इसपर मनु महाराज बोले—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।

चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥

मनुजीकी परम प्रीति देखकर करुणानिधिने 'एवमस्तु' कहा और बताया कि मैं अपने समान दूसरा खोजने कहाँ जाऊँ (क्योकि मेरे समान कोई दूसरा है ही नहीं), इसलिये हे राजन्! मैं स्वय ही तुम्हारा पुत्र बनकर आऊँगा—

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥

श्रीभगवान्ने शतरूपाजीसे कहा—माताजी! जो वर आपको रुचे आप हमसे माँग ले। वे बोलीं—

जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।

सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना॥

कृपाका सागर उमड पडा, सुखद आनन्ददायिनी लहरे आने लगीं। श्रीभगवान्ने कहा—अभी आप जो वरदान माँग रही हैं मैं दे रहा हूँ। मेरे अन्तर्धान होनेके बाद कहीं आप प्रकृतिस्थ हो सोचने लगे कि अरे भूल हो गयी। मैं तो कृपा और प्रेमके समुद्रमे गोते लगा रही थी।

मै मेरेकी जेवड़ी गल बँध्यो ससार।
दास कबीरा क्या बँधे जाके राम अधार॥
बँध्यो विषय सनेह सूँ ताते कहिये जीव।
अलख निरजन आप ह हरिया न्यौरा पीव॥

मनुष्य इस सृष्टिमे शरीर तथा ससार (कुटुम्बीजन, धन-सम्पत्ति आदि)-को अपना तथा अपने लिय मानकर इससे मदा सुखी रहना चाहता है, यह उसकी भूल ह, परतु कामनाका त्याग किये बिना स्वप्नमे भी सुख नहीं मिल सकता—*'काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।'* (रा०च०मा० ७।९०।१) शरीरके लिये कामना करना ही मूर्खता है, क्योकि शरीर और ससार नाशवान् हैं। इनकी सत्ता ही नहीं है—**'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत '** (गीता २।१६)। असत्का तो भाव (सत्ता) विद्यमान नहीं है और सत्का अभाव विद्यमान नहीं है। शरीर और ससारसे सुख चाहनेकी इच्छा करना मनुष्यकी भूल है। इस अपनी भूलका सुधार मनुष्यको स्वय ही करना पडेगा तथा इसमे मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र है। शरीर और ससार तथा कुटुम्बीजन, धन सम्पत्ति आदि अपने तथा अपने लिये नहीं हैं। अत शरीर और ससारसे सुखकी इच्छाका त्याग कर देना चाहिये। इच्छा (कामना)-के त्यागसे मुक्ति (शान्ति)-की प्राप्ति होती है। इसीको ब्राह्मी स्थिति कहते हैं—**'विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान्। तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते'** (श्रीमद्भा० ७।१०।९)। जिस समय मनुष्य अपने मनमे रहनेवाली कामनाओका परित्याग कर देता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेता है—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

(गीता २।५५)

जिस कालमे साधक मनमे आयी सम्पूर्ण कामनाओका भलीभाँति त्याग कर देता है और अपने-आपसे अपने-आपमे ही सतुष्ट रहता है, उस कालमे वह स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

विहाय कामान्य सर्वान्पुमाश्चरति नि स्पृह ।
निर्ममो निरहङ्कार स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २।७१)

जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओका त्याग करके स्पृहारहित, ममतारहित और अहतारहित होकर आचरण करता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है। **'एषा ब्राह्मी स्थिति '** (गीता २।७२)। ब्राह्मी स्थितिमे स्थित हो जानेपर निर्वाण (शान्त) ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है।

मनुष्य इस शरीर तथा नाशवान् पदार्थों (ससार)-को अपना और अपने लिये न मानकर, कामनाका त्याग कर निष्काम भावसे सेवा करके, भगवान्‌को अपना मानकर सदाके लिये मुक्त हो सकता है। शरीर और ससारके पदार्थोंमे राग (आसक्ति) करके इनकी कामना होनेके कारण ही मनुष्यकी दृष्टिमे जगत् है। भक्त और भगवान्‌की दृष्टिमे केवल भगवान् ही हैं, जगत् है ही नहीं। गीतामें स्वय भगवान् कहते हैं—

मत्त परतर नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिद प्रोत सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७।७)

हे धनञ्जय! मेरे सिवाय दूसरा कोई किञ्चिन्मात्र भी नहीं है अर्थात् सब कुछ मैं ही हूँ। जैसे मणियाँ सूतमे पिरोयी हुई होती हैं, ऐसे ही यह सम्पूर्ण जगत् मेरेमे ही ओतप्रोत है। **'सदसच्चाहमर्जुन'** (गीता ९।१९) सत् और असत् मैं ही हूँ। अर्जुन भी कह रहे हैं—**'सदसत्तत्पर यत्'** (गीता ११।३७) सत् भी आप हैं, असत् भी आप हैं और सत् असत्से पर भी जो कुछ है, वह भी आप ही हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—**'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्। पश्चादह यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥'** (२।९।३२) सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमे जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं हूँ और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ। **'मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियै । अहमेव न मत्तोऽन्यत्"॥'** (श्रीमद्भा० ११।१३।२४) मन, वाणी, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियोसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है।

श्रीरामचरितमानसमे आया है—*'जड़ चेतन जग*

जीव जत सकल राममय जानि' (रा०च०मा० १।७ (ग)) *'सीय राममय सब जग जानी।'* (रा०च०मा० १।८।२)

जैसे स्वर्णके बने सब गहने स्वर्ण हैं, मिट्टीके बने सब खिलौने मिट्टी हैं, जल, वाष्प, बर्फ आदि सब जल ही हैं—ये सब प्रकार-भेदसे भिन्न दीखते हैं, वैसे ही यह सृष्टि भगवान्‌से बनी है, अतः भगवत्स्वरूप है। जगत् (सृष्टि)-की सत्ता ही नहीं है, केवल भगवान् ही हैं। अतः अपनी भावनासे जगत्‌को हटाकर भगवद्भाव करके भगवान्‌की अनुभूति करके दुःखोंसे सदा निवृत्त होकर, सदाके लिये मुक्त होकर भगवान्‌के परम प्रेमको प्राप्त कर मानव-जीवन सफल बनाना चाहिये।
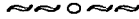
~~~o~~~

'बिप्र धेनु सुर संत हित'''

(पं० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय 'किशन महाराज')

अकारणकरुणावरुणालय, सर्वथाकर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ, सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमपिता परमात्मा पूर्णावतार, कृपासिन्धु, दयासिन्धु, दानबन्धु, दीनानाथ, विश्वनाथ अयोध्यानाथ, द्वारकानाथ, वैकुण्ठनाथादिपदवाच्य श्रीहरिका अवतारप्रयोजन सहेतुक है।

भगवदवतारका हेतु—'मर्त्यशिक्षण'—असार संसारमें *आकण्ठनिमग्न लोगोंको स्वधर्मपथपर आरूढ करनेके सदुद्देश्यसे* ही श्रीहरि कच्छप, मत्स्य, वराह, नृसिंह, राम-कृष्णादि विविध अवतार धारण करते हैं।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी श्रीरामचरितमानस (१। १९२)-में हरिके अवतारका प्रयोजन लिखते हैं—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'

पुनः गोस्वामीजी भगवदवतारके हेतुका खुलासा करते हुए लिखते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहि बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

(रा०च०मा० १।१२१।६—८)

इन वचनोंसे यह निश्चय हो जाता है कि श्रीहरि एवं उनके आयुधोंका अवतार धर्मरक्षणार्थ, धर्मसंस्थापनार्थ एवं धर्मोदयके हेतु ही होता है।

श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्यजी महाराजने 'कृष्णाष्टक' में भगवदवतारके सम्बन्धमें बड़ा ही सुन्दर और रोचक वर्णन किया है—

यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृगजः।
सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपतिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

अर्थात् जब संसारको क्षुब्ध कर देनेवाला धर्मका ह्रास होता है, उस समय जो लोक-मर्यादाकी रक्षा करनेवाले लोकेश्वर, सत-प्रतिपालक वेदवर्णित शुद्ध एवं अजन्मा भगवान् उनकी रक्षाके लिये शरीर धारण करते हैं, वे ही *शरणागतवत्सल निखिल भुवनेश्वर व्रजराज श्रीकृष्णचन्द्र* मेरे नेत्रोंके विषय हों।

'राधामाधवरसविलास' महाकाव्यके दशम सर्गके पाँचवें दोहेमें जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीश्रीजीमहाराजने लिखा है—

उत्तम जनरक्षार्थ हित अधमों का परिहार।
इसी हेतु हरि अवतरण 'शरण' नराकृति धार॥

भगवदवतारके मुख्य उद्देश्योंका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

(रा०च०मा० १।१२१)

भगवदवतारका मुख्य प्रयोजन धर्ममय सत्कर्मानुष्ठानरत समाजकी स्थापना करना अथवा भूल-भटकते लोगोंको पुनः संस्कारित करके धर्मार्जनहेतु प्रयुक्त करना है। वेदशास्त्रप्रतिपादित *आचार एवं व्यवहारका स्वयं पालन* करके जगत्‌के शिक्षणार्थ श्रीहरिकी जन्म, अवतार, विवाहादि क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। श्रीराघवेन्द्र रामकी दिनचर्या धर्ममय है—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

वे नित्य-नैमित्तिक सद्धर्मानुष्ठान करते हैं। ब्राह्मणोंके
~~~

श्रीमुखसे पुराणादिका श्रवण करते हैं। किंबहुना, परिजन-पुरजन—सभीको सद्धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त रखते हैं। इसका सुप्रभाव है कि आज भी लोग रामराज्यका स्मरण करते हैं, किंतु आज राम-कृष्णके देशमें अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, जनक, भरद्वाज, व्यास, सान्दीपनि एवं परशुराम आदि महर्षियोंके देशमें प्रातःस्मरण मङ्गलस्मरणका प्रसारण, जागरण एवं उद्बोधन तो दूर रहा, पूरे देशमें धडल्लेसे सूर्योदयसे पहले अरुणोदयवेलामें ही करोडों गौ माताओंका निर्दयतापूर्वक कत्ल कर दिया जाता है। जिस देशकी सभ्यता-संस्कृतिमें—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

-की उदात्त, पवित्र एवं आदरणीय परम्परा रही है, उस धराधामपर गौमाताकी यह दुर्दशा मानवीय सभ्यताके नाशका कारण बन जायगी। ऐसा न हो सके, इसके लिये कृपासिन्धु भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये।

भगवान्का शासनकालचक्र अहर्निश चलता रहता है। वे सबकी चेष्टाएँ देखते हैं और तत्तत् कृत्योंका यथेष्ट फलाफल देते हैं। अतः सदा श्रीहरिकी शरण ग्रहण करनी चाहिये।

भगवदवतार ही संतजनरक्षणार्थ है। खलनिग्रहार्थ तो लीला है। जिनके भ्रूविलाससे अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंका निर्माण होता है, उन्हें तुच्छ रावणादिके वधार्थ अवतार ग्रहण करनेकी क्या आवश्यकता है? वस्तुतः 'मर्त्यशिक्षणके लिये' ही हरिका अवतार होता है।

~~~o~~~

वेदोंमें अवतार-कथाएँ

(श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी शास्त्री, धर्माधिकारी)

वैदिकोंके मतानुसार वेद अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान्के निःश्वाससे उद्भूत हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

'जाकी सहज स्वास श्रुति चारी।'
(रा०च०मा० १।२०४।५)

राजर्षि मनुके '**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥**'—इस वचनसे स्पष्ट है कि भूत, भविष्य एवं वर्तमानकालिक सब कुछ वेदोंद्वारा ही सिद्ध होता है।

मीमांसकोंकी दृष्टिसे यद्यपि वेदोंमें देहधारी प्राणियोंके ऐतिहासिक वर्णनोंका सर्वथा अभाव है तथापि उनके मतसे वसिष्ठ-विश्वामित्रादि वेददृष्ट शब्दसमूह तन्नामधारी किसी महर्षिविशेषके सूचक नहीं, अपितु वे प्रसंगानुसार यौगिक स्वार्थोंके परिचायक हैं, लेकिन '**परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्**'—इस न्यायके अनुसार श्रवणमात्रमें ही ऐतिहासिक व्यक्तियोंके नामों-जैसे जान पडते हैं।

इन नामोंके निर्वचनमें प्राणविद्याके प्रसंगमें ऐतरेय आरण्यकमें लिखा है—'**सर्वं पाप्मनोऽजायत इति अत्रिः, विश्वं मित्रं यस्य असौ विश्वामित्रः**' आदि-आदि।

मीमांसकोंके मतमें न केवल वैदिक तात्पर्यार्थसत्ता ही अनादिनिधन नित्य है, अपितु मन्त्रनिष्ठ वाक्यनिष्ठ और पदनिष्ठ आक्षरिक आनुपूर्वी भी अनादिनिधन नित्य है। अतः वेदोंमें उत्पत्ति-विनाशशील एककालिक व्यक्तियोंसे सम्बद्ध इतिवृत्तकी कल्पनाको स्थान नहीं है '**सर्वाण्यपि नामान्याख्यातजानि**' अर्थात् वेदोंमें प्रयुक्त होनेवाले सभी नाम तत्तद् धातुओंद्वारा ही निष्पन्न हैं, रूढ नहीं हैं। अतः वे सभी यौगिक अर्थोंके द्योतक हैं, डित्थ-डवित्थकी भाँति निरर्थक नहीं हैं। इस मान्यताके अनुसार उन्होंने वेद-मन्त्रकी आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—त्रिविध व्याख्या की है, परंतु इसके साथ ही आचार्य यास्कने ऐतिहासिक पक्षका भी समर्थन किया है—

'**तत्को वृत्रो? मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः॥**'
(निरुक्त २१।१६२)

यहीं सायणाचार्य भी '**अत्रेतिहासमाचक्षते**' कहते हुए अनेक इतिहासोंको उद्धृत करते हैं।

इस प्रकार गम्भीर विचारकोंको पढनेसे यह विदित होता है कि वेदोंमें इतिहास तो है परंतु वह मानव-कोटिके ऊपर त्रिकालाबाधित नित्य इतिहास है और हमारी दृष्टिसे मीमांसकोंके इस कथन कि वेदोंमें इतिहास नहीं, इसका भी
~~~

यही तात्पर्य है कि उनमे मानव-कोटिके व्यक्तियोका इतिहास नहीं है।

फिर यह प्रश्न उपस्थित होता हे कि यदि वेदाम नित्य इतिहास है तो सायण उब्बट, महीधर आदि प्राचान वदभाष्यकाराने अपन भाष्योम उसका उल्लेख क्यो नहीं किया?

परतु सायणादिके भाष्याका गहन अध्ययन करनेपर हमको उक्त प्रश्नका समुचित उत्तर प्राप्त हा जाता है—

सायणने ऋग्वदके १।२२।१७ के '**इद विष्णुर्वि चक्रमे०**', अथर्ववदके १२।१।४८ के '**वराहेण पृथिवी सविदाना**', नृसिहपूर्वतापिन्युपनिषद् ४।३ के '**नृसिहाय विद्महे वज्रनखाय धीमहि**' तथा '**प्रोवाच रामो भार्गवेय** ' (ऐतरेय ७।५।३४)-की व्याख्यामे क्रमश वामन, वराह, नृसिह और परशुराम अवतारोका उल्लेख किया गया है। अत सुस्पष्ट है कि वेदाम अवतार-कथाएँ हैं। इसी सदर्भम प्रस्तुत लेखम कुछ उद्धरण उपस्थित हैं। महाभारत आदि अनेक ग्रन्थाकी सस्कृतमे टीका करनेवाले पण्डित श्रीनीलकण्ठ आचार्यने अपने मन्त्ररामायणम तथा धर्मसम्राट् स्वामी श्रीहरिहरानन्द सरस्वती (करपात्रीजी) महाराजके ग्रन्थोमे अवतारवादकी मान्यता प्राप्त है।

विष्णुका रामरूपम अवतारका सकेत वेदम प्राप्त होता है—'**विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम्।**' (ऋक्० १०।१।३)

अर्थात् परमपुरुष सर्वज्ञ भगवान् विष्णु ही इस प्रकार रामरूपमे अवतरित हुए, जो ब्रह्म होते हुए भी देहधारी बन गये।

यही नहीं तीन माताआ तथा तीन प्रकारके पिता (पालक, उपनता तथा शिक्षक)-के वर्णनपरक मन्त्रम रामकथाका वाज मिलता है '**तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् विभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति**' (ऋक्० १।१६४।१०)।

कौसल्या, सुमित्रा और केकेयी—तीन माताएँ एव जन्मदाता दशरथ (पालक), विद्यागुरु विश्वामित्र तथा उपनता वसिष्ठ—तीन ही जिनके पालक थे वह अद्वितीय रामावतार सर्वोपरि विराजमान था, उससे किसी भी व्यक्तिको तनिक भी विक्षोभ नहीं था।

श्रीराधा-कृष्णके अवतारकी कथाका भी मूल निम्नलिखित मन्त्रम प्राप्त होता है—

स्तोत्र राधाना पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता॥ (ऋक्० १।३०।५)

अर्थात् हे राधापते (परमेश्वर—घनश्याम)! जिसके मुखम आपकी स्तुतिमयी वाणी है, उसकी स्तुतियास प्राप्त होनेवाले तुम उसके घरमे ऐश्वर्य भर दो, उसकी वाणी मधुर और सत्य हो।

यजुर्वेद (५।१८)-म वामनावतारकी कथा प्राप्त होती है—

विष्णोर्नुक वीर्याणि प्र वोच
य पार्थिवानि विममे रजाꣳसि।
यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थ
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥

अर्थात् मैं विष्णुके पराक्रमका वर्णन करता हूँ, उन्होने तीन पैराम लाकोको नाप लिया ओर आकाशको स्थिर किया।

सामवदम सीताकी अग्निपरीक्षाकी कथा प्राप्त होती है—

'सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि रामभस्थात्॥'
(सामवद, उत्तरार्चिक १५४८)

अर्थात् दिव्य तेजसे उपलक्षित सीताको लेकर जाज्वल्यमान अग्निदेव भगवान् रामके समक्ष उपस्थित हुए।

अथर्ववेद (१०।१०।१)-म मत्स्यावतारका बीज इस प्रकार है—

नमस्ते जायमानायै जाताया उत त नम।
बालेभ्य शफभ्यो रूपायाघ्न्ये त नम॥

अर्थात् तुम प्रकट हाती हुईको नमस्कार और तुम प्रकट हा चुकीको नमस्कार ह। हे न मारनेवाली बाल मछली! तर स्वरूप-फेलावका नमस्कार है।

इस प्रकार उपयुक्त प्रमाणास स्पष्ट हे कि वेदाम अवताराकी कथाएँ विद्यमान हैं।

भारतीय सिक्कोपर अवतार

(डॉ० मेजर श्रीमहेशकुमारजी गुप्त)

भारतीय सिक्कोंका प्रचलन करीब ६०० ईसापूर्वसे शुरू हुआ और तभीसे भारतीय सिक्कोंपर अवतारों और पंचदेवोंका अंकन शुरू हो गया। सिन्धुघाटीकी खुदाईमें मिली मुद्राओंपर आदिदेव शिवका अंकन मिलता है। सर्वप्रथम सूर्यको पंचमार्क सिक्केपर स्थान मिला। विदेशी शासकों—यूनानी, कुषाणसे लेकर मुहम्मद गोरीतकने हिन्दू देवी-देवताओंको अपने भारतीय सिक्कोंपर स्थान दिया और भारतीय सिक्कोंपर मुख्यतः शिव, लक्ष्मी, लक्ष्मीनारायण, शिव-पार्वती विष्णु, वराह, राम-लक्ष्मण-सीता कार्तिकेय व्यंकटेश्वर, बालकृष्ण एवं गणेशको अंकित किया। लक्ष्मीको कई शासकोंने अपने सिक्कोंपर अंकित किया। मुद्राको लक्ष्मीका ही रूप माना जाता है शायद इसलिये भारतीय मुद्राओंपर लक्ष्मीको राजा और प्रजा दोनोंने स्वीकार किया। लक्ष्मीके दो रूप—१-बैठी लक्ष्मी, २-गजद्वारा अभिषेक कराती लक्ष्मी—दोनोंका अंकन मिलता है। किन अवतारोंको किन सिक्कों या किन राजाओंने अपनाया यह निम्न तालिकामें दर्शाया गया है—

सूर्य—पंचमार्क, इन्दौर रियासत **शिव**—कुषाण, शशांक, अहिल्याबाई इन्दौर रियासत, **शिव-पार्वती**—विजयनगर, हैदरअली, **लक्ष्मी**—अयोध्या, मथुरा, एजलीज, सातवाहन उज्जयिनी, गुप्तकाल, परमार, चोलवंश, मुहम्मद गोरी।

लक्ष्मी-नारायण—विजयनगर, **बालकृष्ण**—विजयनगर, **वराह**—गुर्जर प्रतिहार, **कार्तिकेय**—यौधेय, गुप्तकाल, **बुद्ध**—कुषाण, **गणपति**—नायक, **राम-लक्ष्मण-सीता**—विजयनगर, मुगलशासक अकबर।

आज सिक्कोंपर पूज्य सन्तोंका अंकन भी देखनेको मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं—संत तुकाराम ज्ञानेश्वर, तिरुवल्लुवर, श्रीअरविन्द आदि।

१-पंचमार्क (६०० ई०पूर्व)—धातु—चाँदी, वजन ३ ३ ग्राम, साइज १ ८ से०मी०, गोल। अग्रभागमें पाँच चिह्न हैं—सूर्य नन्दी, मछली पहाडी, हिरण तथा पृष्ठभागमें कोई चिह्न नहीं है।

२-कुषाण—(वासुदेव १४०—८० ई०) धातु—सोना, वजन ८ ० ग्राम, साइज २ ३ से०मी०, गोल। अग्रभागमें नन्दीके सामने खडे शिव हैं तथा पृष्ठभागमें खडा हुआ राजा तथा खरोष्ठीमें लेख है।

३-कुषाण—(वासुदेव १४०—८० ई०) धातु—सोना, वजन ८ ० ग्राम, साइज २ १ से०मी०, गोल। अग्रभागमें नन्दीके सामने खडे शिव हैं और पृष्ठभागमें खडा हुआ राजा तथा खरोष्ठीमें लेख है।

४-कुषाण—(कनिष्क ७८—१०२ ई०) धातु—सोना, वजन ८ ० ग्राम साइज २ १ से०मी० गोल। अग्रभागमें खडे हुए बुद्ध हैं तथा बाँयीं ओर बुद्ध लिखा है। पृष्ठभागमें खडा हुआ राजा और खरोष्ठीमें लेख है।

५-योधेय—(३०० ई०) धातु—ताँबा, वजन १२ ० ग्राम, साइज २ ५ से०मी०, गोल। अग्रभागमें दायें हाथमें भाला लिये कार्तिकेय, बगलमें मोर और ब्राह्मीमें लेख है तथा पृष्ठभागपर खडी हुई देवी हैं।

६-उज्जयिनी—(२०० ई०पू०) धातु—ताँबा वजन ५ ४ ग्राम, साइज १ ८×१ ७ से०मी० गोल। अग्रभागमें कमलके फूलपर शिव, साथमें नन्दी, वृक्ष एवं नदी हैं। पृष्ठभागपर उज्जयिनीका चिह्न है।

७-गुप्तकाल—(चन्द्रगुप्त द्वितीय ३७६—४१४ ई०) धातु—सोना, वजन ७ ० ग्राम, साइज १ ८ से०मी०, गोल। अग्रभागपर कमलके फूलपर बैठी लक्ष्मी हैं तथा पृष्ठभागपर धनुर्धारी खडा राजा और ब्राह्मीमें चन्द्र लिखा है।

८-गौड राजा शशांक—(६००—६२५ ई०) धातु—चाँदी, वजन ७ ० ग्राम, साइज १ ८ से०मी०, गोल। अग्रभागपर नन्दीपर बैठे शिव तथा पृष्ठभागपर कमलपर बैठी लक्ष्मी हैं, जिनका गज अभिषेक कर रहे हैं।

९-गुर्जर प्रतिहार राजा भोज—(८६३—८८२ ई०) धातु—चाँदी, वजन ४ २ ग्राम साइज १ ७ से०मी०, गोल। अग्रभागपर वराहावतार उत्कीर्ण है और पृष्ठभागपर श्रीमद्वराह अंकित है।

१०-परमार (नरवरमन)—धातु—सोना वजन ४ ०

ग्राम, साइज २० सें०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठी हुई लक्ष्मी हैं और पृष्ठभागपर राजाका नाम वर्मन लिखा है।

११-विजयनगर—(हरिहर १४०६ ई०)— धातु—सोना, वजन १७ ग्राम, साइज १० सें०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए लक्ष्मी-नारायण। पृष्ठभागपर श्रीप्रताप हरिहर हैं।

१२-विजयनगर—(हरिहर १४०६ ई०) धातु—सोना, वजन १७ ग्राम, साइज ११ सें०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए शिव-पार्वती हैं और पृष्ठभागपर श्रीप्रताप हरिहर हैं।

१३-विजयनगर—(१४५० ई०) धातु—सोना, वजन ३४ ग्राम, साइज १२ सें०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए सीता-राम और खड़े हुए लक्ष्मण हैं। पृष्ठभागपर देवनागरीमें लेख है।

१४-विजयनगर—(हरिहर) धातु—सोना, वजन १६ ग्राम, साइज ११ सें०मी०, गोल। अग्रभागपर वैंकटराय (विष्णु) हैं और पृष्ठभागपर लेख है।

१५-विजयनगर—(कृष्णदेव राय १५००—१५२९ ई०) धातु—सोना, वजन १७ ग्राम, साइज ११ सें०मी०, गोल। अग्रभागपर वेंकटराय (विष्णु) और पृष्ठभागपर लेख है।

१६-विजयनगर—(कृष्णदेव राय १५००—१५२९ ई०) धातु—सोना, वजन ३३ ग्राम, साइज १३ सें०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए बालकृष्ण हैं तथा पृष्ठभागपर श्रीप्रताप कृष्णराय हैं।

१७-अहिल्याबाई होलकर—(इन्दौर रियासत १७६५—१७९५ ई०) धातु—चाँदी, वजन ११४ ग्राम, साइज २१ सें०मी०, गोल। अग्रभागपर शिवलिंग बेलपत्र है तथा पृष्ठभागपर १२७१ हिजरी, शाह आलम बादशाह लिखा है।

१८-इन्दौर रियासत—(शिवाजीराव होलकर १८८६—१९०३ ई०) धातु—चाँदी, वजन ११३ ग्राम, साइज २० सें०मी०, गोल। अग्रभागपर सूर्य हैं और हिन्दीमें श्रीमहाराज शिवाजीराव होलकर लिखा है। पृष्ठभागपर उर्दूमें शाह आलम, इन्दूर लिखा है।

[डॉ० श्रीमती श्यामला गुप्ताके निजी-संग्रहसे।]

~~०~~

भगवान् विष्णुके रामावतार एवं कृष्णावतारका वैशिष्ट्य

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(श्रीमद्भा० १।३।२६)

अर्थात् जैसे अगाध सरोवरसे सहस्रों नहरें निकलती हैं, वैसे ही सत्त्वगुणके भण्डार भगवान् श्रीहरिके असंख्य अवतार हुआ करते हैं।

भगवान् विष्णुके अवतारोंकी गणना करनेमें कौन समर्थ हो सकता है, फिर उनकी महिमाकी कौन कहे, उसे या तो स्वयं भगवान् जानते हैं अथवा वह, जिसे वे स्वरूप बनाकर जना देते हैं। फिर भी उनके असंख्य अवतारोंमेंसे चौबीस अवतार विशेष मान्य हैं तथा उनमें भी दस अवतारोंकी प्रसिद्धि सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। सर्वमान्य दशावतार इस प्रकार हैं—१-मत्स्य, २-कूर्म, ३-वराह, ४-नृसिंह, ५-वामन ६-परशुराम ७-राम ८-कृष्ण, ९-बुद्ध एवं १०-कल्कि।

भगवान् विष्णुके दशावतारोंमें भी श्रीरामावतार तथा श्रीकृष्णावतारकी महिमा अवर्णनीय है। जहाँ अन्य कई अवतारोंकी उपासना-परम्परा कालके प्रवाहमें हरिकी इच्छानुसार या तो शिथिल पड़ गयी अथवा लुप्तप्राय-सी प्रतीत होती है, वहीं श्रीराम एवं श्रीकृष्ण-अवतारोंकी भक्ति और उपासनाकी परम्परा अविच्छिन्न रूपसे आज भी विद्यमान है, विद्यमान ही नहीं बल्कि सजीव, पुष्ट एवं गतिशील भी है। प्राचीन कालसे अर्वाचीन कालतक भगवान् विष्णुके उक्त दोनों अवतारोंकी महिमाका प्रतिपादन एवं मण्डन करनेवाले अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। उनकी प्रतिमाएँ तथा मन्दिर आदि भूगर्भसे प्राप्त होकर ही हमें परम्पराकी प्राचीनताकी साक्षीमात्र नहीं देते, बल्कि आज भी प्रत्येक प्रान्तके प्रत्येक नगर, कस्बे तथा गाँव-गाँवमें युगों-युगोंसे

सहस्रो मन्दिर एव अर्चाविग्रह विद्यमान हैं, जिनके पूजन तथा भक्तिकी परम्परा आज भी सोत्साह फल-फूल रही है।

भगवान्ने अपने राम तथा कृष्ण-अवताराके रूपमे इस धराधामपर दिव्य रसानुभूतिका आस्वादन करानेवाली अद्भुत लीलाएँ करके भक्तिका जो अजस्र स्रोत बहाया, वह अनन्तकालतक भक्ताको अभय-आश्वासनसहित दिव्य प्रेमयुक्त परमानन्दकी अनुभूति कराता रहेगा।

भगवान्के अन्यान्य मुख्य अवतार किसी एक उद्देश्यविशेपकी पूर्तिहेतु ही हुए, यथा—मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, नृसिहावतार, वामनावतार इत्यादि। उक्त अवतारोके प्राकट्यके प्रधानहेतुके अतिरिक्त अन्य कृत्याका उल्लेख प्राय नहीं मिलता अथवा कुछ गोण प्रसग ही मिलते हैं। अनेक अवतार तो अल्प अवधिके लिये ही हुए तथा प्रयोजन सिद्ध करके अदृश्य हो गये। उनमे भी अधिकाश अवताराम भगवान्की मात्र ९ कलाओ तथा कहीं अधिक-से-अधिक ११ कलाआकी ही अभिव्यक्ति हुई अर्थात् अन्य अवताराम कार्यविशेपहेतु भगवान् आवश्यकतानुसार सीमित कलाआसे युक्त होकर अवतरित हुए फिर कार्यसिद्ध करके अल्पकालमे ही उन्हाने अपने रूपका सवरण कर लिया, अत उनका शृखलाबद्ध विस्तृत लीलाचरित्र नहीं मिलता।

इस दृष्टिसे भगवान्के 'राम' तथा 'कृष्ण' अवतार उपर्युक्त सभी कसौटियापर बहुत बढे-चढे थे। उन्हाने न केवल विस्तृत लीलामय दिव्य-जीवन ही जिया, अपितु अनेकानेक प्रयोजनोको भी जीवनपर्यन्त क्रमश सिद्ध किया अर्थात् उन्होने एक ही नहीं बल्कि अनेक लक्ष्याकी पूर्तिहेतु अवतार लिया था। यथा—

(१) उन्हाने ऐसी-ऐसी दिव्य लीलाएँ कीं, जिनके श्रवण तथा स्मरणमात्रसे प्रेम तथा भक्तिका हृदयम सचार होने लगता है।

(२) उन्हाने अपनी अन्तरग लीलामे ऐसे गूढ एव सर्वकल्याणप्रद ज्ञानको अपने वचनामृतके रूपमे ससारमे प्रकट किया, जो सम्पूर्ण मानव-जातिके लिये चिरस्थाई वरदान बन गया।

(३) उन्हाने अपने दिव्य आचरणोसे सत्य, वीरता, ओजस्विता, ज्ञान, त्याग तितिक्षा वैराग्य, मर्यादा तथा अनासक्तिके जिन शिखरोको छूकर दिखाया, वह सदैव-सदैवके लिये हमारे आदर्शके शिखर बन गये तथा वे सभीको वैसा बननेको प्रेरित करते हैं।

(४) उन्हाने तत्कालीन सभी दुष्ट एव आसुरी शक्तियाका समूल उच्छेद कर शान्तिका साम्राज्य स्थापित किया तथा ससारको धर्म-स्थापनाहेतु अन्यायसे सघर्ष करनेकी प्रेरणा दी।

सम्पूर्ण रामकथा तथा कृष्णकथासे कौन परिचित नहीं है, इसीलिये ऊपर सकेतरूपमे वे सभी विशेषताएँ बतायी गयीं, जो भगवान् विष्णुके मात्र रामावतार तथा कृष्णावतारम ही पूणरीत्या दृष्टिगोचर होती हैं, अत 'राम' तथा 'कृष्ण'-अवतार भगवान्के सभी अवताराम परम विशिष्ट है, साथ ही दोना अवताराकी लीलाएँ तथा चरित्र हम भक्तियोग तथा निष्कामकर्मयोगके पथपर साथ-साथ आगे बढनेकी प्रेरणा एव शक्ति प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त समस्त विवेचनका यह आशय कदापि नहीं समझना चाहिये कि अवताराम भेद-बुद्धिका प्रतिपादन किया जा रहा है। वस्तुत तो सभी अवताराके रूपमे स्वय भगवान् विष्णु ही सदैव भिन्न-भिन्न कलेवराम अवतीर्ण हुए, उनम न कोई छोटा हे न कोई बडा। सच्चे भक्तामे तो भेद-बुद्धिका लेशमात्र भी आवेश नहीं होता। महान् कृष्ण भक्त श्रीचैतन्य महाप्रभुको भक्तिभावकी अवस्थामे भगवान् नृसिह तथा भगवान् वराहका आवेश समय-समयपर हुआ था, जिसे उनके अन्तरग भक्ताने दिव्य लक्षणोसहित प्रत्यक्ष देखा था। यहाँ तो मात्र रामावतार तथा कृष्णावतारके विस्तृत लीलामय-जीवन तथा उनकी सर्वाधिक लोकप्रियताके कारणाका ही विवेचन किया गया है, जो उनके वैशिष्ट्यको प्रदर्शित करते हैं।

भगवान् विष्णुके रामावतार एव कृष्णावतार दोनो ही परम विलक्षणताओसे युक्त एव सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। दोनो ही अवतारोमे बहुत-सी समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिनके आधारपर उनकी विशिष्टताका प्रतिपादन किया गया है। दोनो अवताराके देश-काल-परिस्थिति इत्यादि भिन्न होनेके कारण उनकी अनेक लीलाओम भी बाह्यत भिन्नता दृष्टिगाचर होना स्वाभाविक है, परतु उन दोनामे भी कोई छोटा बडा नहीं है, अज्ञान क कारण अथवा भ्रमवश ही व्यक्तिकी कनिष्ठ-वरिष्ठ जैसी धारणा बन जाती है। वस्तुत तो भगवान् विष्णु ही अपनी ससाररूपी नाट्यशालामे दो

अलग-अलग नाटकोंमें नायक बनकर कभी राम, कभी कृष्णके रूपमें प्रकट हुए, उन्होंने स्वयं ही लीला अथवा नाट्यकी पटकथा लिखी, स्वयं ही अभिनेता बने तथा सूत्रधार भी स्वयं वे ही थे।

भगवान्‌ने यह अवतरण, यह लीला-विस्तार अथवा कहें कि नाट्य क्यों किया? इसके कारणोंकी ऋषियों, भक्तों तथा विद्वानोंने अपने-अपने ढंगसे व्याख्या की है। जिन भगवान्‌के भृकुटि-विलाससे ही सृष्टिकी रचना और संहार हो जाते हैं, उन्होंने अवतार क्यों लिये? क्या यह मात्र उनका मनोरंजन है अथवा कुछ और यह तो वे ही ठीक-ठीक जानते हैं। अस्तु

भगवान्‌के अवतारोंकी तुलना मनोरञ्जक बुद्धि-विलास ही सही, पर उसमें दोष नहीं, हाँ भेद-बुद्धि नहीं होनी चाहिये। भगवान्‌की लीलाओं तथा गुणोंका स्मरण तो किसी भी रूपमें सदैव कल्याणकारी है, यह अकाट्य सत्य है।

भगवान् रामने अपने जीवनमें मर्यादाओंका कभी उल्लंघन नहीं किया। घोर दुःखमें भी विचलित हुए बिना मर्यादाओंके लिये वे सर्वस्व त्याग करनेको प्रस्तुत हो गये। उन्होंने मर्यादा-पालनका अद्वितीय आदर्श प्रस्तुत किया। चाहे पुत्रके नातेसे, चाहे भाईके नातेसे, चाहे पतिके नातेसे, चाहे स्वामीके नातेसे, चाहे राजाके नातेसे, चाहे हम किसी भी नातेसे विचारें, उन्होंने अपनी मर्यादाका सदैव पालन किया। इसीलिये वे जन-जनके हृदयमें सदैवके लिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें बस गये। भगवान् रामके चरित्रमें हमें दो मर्यादाओंके साथ-साथ पालन करनेके धर्मसंकटकी स्थितिमें क्या करना चाहिये इसका इतिहासदुर्लभ उदाहरण भी मिलता है, जहाँ उन्होंने अद्वितीय त्याग किया। समाजके हितको ही प्रधानता दी तथा व्यक्तिगत क्षति और लाँछन दोनों सह लिये। मर्यादापुरुषोत्तम होनेके कारण उनकी सभी लीलाएँ अनुकरणीय हैं, जो जितना ही अधिक अनुकरणका प्रयास करेगा, वह उतना ही महान् बनता जायगा। दूसरी ओर भगवान् कृष्णने अनासक्त भावसे अपने जीवनमें सभी प्रकारके रसोंसे युक्त ऐसी दिव्य लीलाएँ कीं, जिनके स्मरणमात्रसे ही प्रेमका सहज संचार होने लगता है चाहे वात्सल्य, सख्य आदि किसी भी भावमें रुचि हो हृदय शीघ्र पुलकित हो उठता है। उन्होंने प्रेमका अद्वितीय उच्चादर्श उपस्थित किया। मधुर प्रेमसे ओतप्रोत विलक्षण लीलाओंके कारण वे जन-जनके हृदयमें सदैवके लिये लीलापुरुषोत्तमके रूपमें बस गये। भगवान् कृष्णकी शृंगारिक लीलाएँ पवित्र हैं उनमें सांसारिक नहीं, बल्कि दिव्य प्रेमकी अभिव्यक्ति है। दिव्य प्रेममयी वह लीला भक्तिको बढ़ानेवाली होनेके कारण परम स्मरणीय एवं चिन्तनीय है।

भगवान् राम विष्णुकी बारह कलाओंके तथा भगवान् कृष्ण सोलह कलाओंके अवतार थे। इस कारण उन्हें तुलनात्मकरूपसे छोटा-बड़ा सिद्ध करना नितान्त अज्ञानताका सूचक है। वस्तुतः भगवान्‌के किसी भी अवतारमें चेतनाके उतने ही अंश (कलाएँ) प्रकट होते हैं, जितनेकी आवश्यकता होती है। स्थितियाँ जितनी अधिक विषम होती हैं, उतनी अधिक कलाओंसहित भगवान्‌का अवतार होता है ऐसा मात्र अभिव्यक्तिमें होता है, अवतारकी सामर्थ्य समान होती है। त्रेतामें धर्मरूप वृषभके तीन पैर पवित्रता, दया तथा सत्य थे जबकि द्वापरमें उसके दया तथा सत्य नामके दो ही पैर थे। त्रेतायुगकी अपेक्षा द्वापरयुगमें समाज किस-किस रूपमें पतित हो चुका था, यह वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारतमें स्पष्ट देखा जा सकता है, इसीलिये भगवान् कृष्णको अधिक कलाएँ अभिव्यक्त करनी पड़ीं।

आगे भगवान् राम तथा भगवान् कृष्णसम्बन्धी कुछ विषयोंको सारणीके रूपमें दिया जा रहा है—

विषय	राम	कृष्ण
१ वंश	सूर्यवंश	चन्द्रवंश
२ कुल	इक्ष्वाकु	वृष्णि
३ पिता	दशरथ	वसुदेव
४ माता	कौसल्या	देवकी
५ कुलगुरु	महर्षि वसिष्ठ	महर्षि गर्ग
६ विद्यागुरु	महर्षि वसिष्ठ	सांदीपनि
७ प्रधान शक्ति	सीता	राधा रुक्मिणी आदि
८ पुत्र	लव, कुश	प्रद्युम्न, साम्ब आदि
९ प्रधान उपदेश-पात्र	लक्ष्मण, हनुमान्	अर्जुन उद्धव
१० आदि चरित्र लेखक	वाल्मीकि	व्यास
११ प्रमुख उद्देश्य	रावण-वध	कंस-वध
१२ उपाधि	मर्यादापुरुषोत्तम	लीलापुरुषोत्तम
१३ कलाएँ	बारह	सोलह

विषय	राम	कृष्ण
१४ युग	त्रेता	द्वापर
१५ उपस्थितिकाल	युगान्त	युगान्त
१६ जन्मतिथि	चेत्र शुक्ल ९	भाद्र कृष्ण ८
१७ जन्मवार	सोमवार	बुधवार
१८ जन्म-नक्षत्र	पुनर्वसु ४	रोहिणी ३
१९ जन्म-लग्न	कर्क	वृप
२० जन्म-राशि	कर्क	वृप
२१ जन्म-समय	मध्याह्न १२ वजे	रात्रि १२ बजे

विपय	राम	कृष्ण
२२ जन्मस्थान	राजभवन	कारागृह
२३ जन्मभूमि	अयोध्या (सरयूतट)	मथुरा (यमुनातट)
२४ रग	नील श्यामल	नील श्यामल
२५ वण	क्षत्रिय	क्षत्रिय
२६ शासन	अयोध्या	द्वारका
२७ लीला-सवरण	अयोध्यामे सरयूतटपर	प्रभासक्षेत्रम पीपलवृक्षके नीचे

भगवान् राम तथा भगवान् कृष्ण—दोनो अवतारोको परस्पर देखनेपर उनमे प्राय समानताएँ ही प्राप्त हाती हे दोनो भगवान् विष्णुके ही स्वरूप जो ठहरे, सो आश्चर्य भी नहीं होना चाहिये। दोना ही अवतारामे भगवान् श्रीहरिने परम शरणागतवत्सलता सिद्ध की है। भगवान् रामका वचन हे—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभय सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रत मम॥

(वाल्मीकीय रामायण ६।१८।३३)

अर्थात् जो एक बार भी शरणमे आकर 'में तुम्हारा हूँ'—इस प्रकार कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियासे अभय कर देता हूँ, यह मेरा स्वाभाविक व्रत है।

इसी प्रकार भगवान् कृष्णका वचन है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥

(गीता १८।६६)

अर्थात् सम्पूर्ण धर्मोके आश्रय (अर्थात् क्या करना है, क्या नहीं करना है, इस विचार)-का त्याग करके एक मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोसे मुक्त कर दूँगा, शाक मत कर।

भगवान् दानो रूपामे सदैव अपना वचन निभाते हैं, फिर भेदबुद्धिको स्थान ही कहाँ रहता है। सच्चे भक्तके हृदयमे प्रथम तो भेदभाव आता ही नहीं और यदि आ भी जाता है तो प्रभु कृपापूर्वक तत्काल उसका भ्रम-निवारण कर देते हैं, जेसे गोस्वामी तुलसीदासजीके समक्ष किया था। एक वार गोस्वामी तुलसीदासजीने मथुरामे भगवान् कृष्णकी शृगारयुक्त एक परम मनोहर मूर्तिके दर्शनके किये आर वे गद्गद हो गये, परतु भगवान् रामके एकनिष्ठ भक्त होनके कारण वे कहने लगे—

कहा कहौं छवि आजकी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बान लो हाथ॥

भक्तकी इच्छा सुनते ही भगवान्की भक्तवत्सलता देखिये, प्रभु कृष्णने तत्काल अपनी प्रतिमाको धनुष-बाण हाथामे पकडे भगवान् श्रीरामकी प्रतिमामे परिवर्तित कर दिया। गोस्वामी तुलसीदासजी सरीखे भक्त दुर्लभ होते हें जो एकनिष्ठ भी हा, साथ-ही-साथ ही अन्य भगवत्-स्वरूपांके प्रति पूर्ण सम्मानभाव भी रखते हा उनके इस विशिष्ट गुणके परिचयहेतु उनकी विनय-पत्रिकाका अवलोकन करना चाहिये। ऐसे भक्ताकी इच्छा भगवान् सदैव पूरी करते हैं। साराश यह है कि भगवान्‌के राम और कृष्ण—दोना अवतार समान ह काई भी छोटा-बडा नहीं है। हम अपने भावके अनुसार चाहे जिसकी भक्ति करे, वे भगवान् विष्णु ही हैं।

'कीर्तनीय सदा हरि '

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदन कीर्तनीय सदा हरि ॥

'अपनको तृणसे भी अत्यन्त तुच्छ समझकर वृक्षकी तरह सहनशाल हाकर, स्वय अमानी रहकर और दूसरका मान देते हुए सदा श्रीहरिका कीर्तन करना चाहिये।' (महाप्रभु चैतन्य—शिक्षाष्टक)

[श्रीमद्भगवद्गीतामे भगवान्का वचन है—'यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोऽशसम्भवम्॥' *अर्थात् जो-जो भी ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ है, उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग) अर्थात् सामर्थ्यके अशसे उत्पन्न हुआ समझो।*

इसी बातको भगवान्ने श्रीउद्धवजीसे भी कहा है—हे उद्धव! ऐसा समझो कि जिसमे भी तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण हो, वह मेरा ही अश है—

तेज श्री कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्याग सौभग भग । वीर्यं तितिक्षा विज्ञान यत्र यत्र स मेऽशक ॥

(श्रीमद्भा० ११।१६।४०)

उपर्युक्त भगवद्वचनासे यह सिद्ध है कि भगवान् जब-जैसी आवश्यकता होती है—कभी स्वय पूर्णरूपसे, कभी अशरूपसे और कभी भावरूपसे तथा कभी वस्तु एव पदार्थरूपसे स्वय अवतरित होते है। इसके साथ ही अपने तेज, शक्ति, बुद्धि, बल आदिको किसी विशिष्ट पुरुषमे प्रतिष्ठित कर लोककल्याणार्थ जगत्मे प्रकट हो जाते है, यह ठाकुरजीकी लीला ही है। कब, किसे, कहाँ निमित्त बनाकर जगत्का कार्य करना है, इसे वे ही जान सकते है। भगवत्प्राप्तिका माध्यम होनेसे भगवद्विभूतिसे प्रतिष्ठित सत-महापुरुष भी लोकहितका कार्य करते है और भगवान्के निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण करते है। ऐसा समझना चाहिये कि विभूतिरूपसे ये भी भगवद्रूप ही है।

यह विशेष बात है कि इन विभूतियामे जो महत्ता है, वह केवल भगवान्की है। अत भगवत्तत्त्वके ज्ञानके लिये इन विभूतियोमे केवल भगवान्का ही चिन्तन करना चाहिये। भगवान्ने गीता, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण आदि अनेक ग्रन्थामे अपनी विभूतियोका नाम-निर्देश किया है और अन्तमे वे कहते है—मेरी विभूतियोका अन्त नहीं है—'नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥' *(गीता १०।१९)* 'नान्तोऽस्ति मम दिव्याना विभूतीना परन्तप।' *(गीता १०।४०)। सत्त्वकी पूर्णप्रतिष्ठा भगवान्मे ही है, वही सत्त्व भगवदिच्छासे महापुरुषोमे भी सोद्देश्य प्रतिष्ठित रहता है। सत, महात्मा, योगी, भक्त, आचार्य, सद्गुरु आदिमे परमात्माकी ही मर्यादा स्थित रहती है। ऐसे ही जगत्के भौतिक प्रतीत होनेवाले कुछ पदार्थोमे भी विशिष्ट देवत्व स्थित रहता है। यहाँ विभूतिके रूपमे भगवान्की विशिष्ट अवतरण-लीलाओमेसे कुछका निदर्शन सक्षेपमे प्रस्तुत है—सम्पादक]*

अवतार-विभूति-लीला

(श्रीमहेशप्रसादजी पाठक एम्०एस्० सी० (मा०शा०))

अवतारका अर्थ सामान्य जन्मसे नहीं है। अवतारीकी तो जन्म-कर्म-जैसी समस्त लौकिक क्रियाएँ दिव्य होती है। गीताम श्रीभगवान्ने अवतारके सम्बन्धम समस्त जिज्ञासाआका समाधान बडी स्पष्टतासे किया है एव कहा है—यद्यपि मैं अजन्मा—जन्मरहित, अव्ययात्मा—अक्षीण ज्ञानशक्ति-स्वभाववाला और ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण भूताका नियमन करनेवाला ईश्वर हूँ, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको जिसके वशमे सम्पूर्ण जगत् बसता है और जिससे मोहित हुआ मनुष्य वासुदेवरूप स्वयको नहीं जान पाता उस अपनी प्रकृतिको अपने वशमे रखकर केवल अपनी लीलासे ही शरीरवाला-सा—जन्म लिया हुआ-सा हो जाता हूँ, साधारण मनुष्याकी भाँति वास्तवमे जन्म नहीं लेता। (शाङ्करभाष्य, गीता ४।६)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

अवतारके प्रयोजनको पुन स्पष्ट करते हुए भगवान् कृष्ण स्वय कहते हैं कि जब-जब धर्मकी हानि एव अधर्मका अभ्युत्थान होता है तब-तब मैं अपनी मायासे अपना स्वरूप रचता हूँ। **'यदा यदा हि धर्मस्य'** (गीता ४।७)। अत सत-त्राण धर्मरक्षा, नीति एव ज्ञानका आलोक फैलानेके निमित्त एव दुष्टजनो तथा पापकर्मियोके नाशके लिये ही भगवान् प्रत्येक युगमे प्रकट होते हैं।

सामान्यरूपसे अवतारका अर्थ उतरना उदय, आरम्भ रूपका प्रकट होना जन्म लेना आदि है। 'अवतार' शब्दकी

व्युत्पत्ति 'अव' उपसर्गपूर्वक 'तृ' धातुसे 'घञ्' प्रत्ययद्वारा होता है। आचार्य पाणिनिके अष्टाध्यायीके ३।३।२० म **'अवेतृस्त्रोर्धस्त्र'** सूत्रम **'अवतृ'** उच्च स्थानस नीचे उतरनेकी क्रिया या उतरनेके अर्थम ही प्रयुक्त है। अवतार मात्र दुष्टदलन एव सत-त्राणक लिये ही नहीं होते, बल्कि लाक-शिक्षणके निमित्त भी हाते हैं—**'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।'**

ईश्वरीय सत्ता कण-कणम व्याप्त है। इसका स्पन्दन शुद्ध हृदयद्वारा ही ग्राह्य है। समस्त जीव-जन्तुआ जैसे उद्भिज्ज, स्वेदज अण्डज एव जरायुजम ईश्वरका अश विद्यमान है। इसलिये ससारके प्रत्येक प्राणीमे समत्व-दृष्टि रखनी चाहिये। यही पाठ विश्वबन्धुत्वकी आधारशिला भी है। उद्भिज्ज—वनस्पतियो आदिम एक अश, स्वेदजोमे दो अश, अण्डजाम तीन अश एव जरायुजाम चार अशतक ईश्वरीय चित्-सत्ता विद्यमान रहती है। अपनी साधना एव सयमके बलपर मनुष्य पाँचस आठ अशातक ईश्वरीय चित्-कला धारण कर सकता है। इन आठ अशासे अधिक ईश्वरीय चित्-कलाश किन्हीं शरीराम विद्यमान हो तो वे शरीर दिव्य उपादानासे सम्पन्न एव आवेष्टित कहे जायँगे। ये ही विभूतिसम्पन्न अवतारी पुरुष कहे जाते हैं। आठसे पद्रह कलाआसे सम्पन्न जिन शरीराम चिदशकी स्थिति होता है, वे अशावतार, पूर्णावतारकी श्रणीम आते हैं। सालह कलाआसे सम्पन्न परिपूर्णावतार कहे जाते हैं। परिपूर्णावतार सर्वज्ञ माने जाते हैं। इनके शरीर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वगुणसम्पन्न एव दिव्य होते हैं। अत इन्ह जीव नहीं कहा जा सकता, क्यांकि ये ब्रह्मरूप होते हैं। इन्हीं अशाके क्षीण हानपर मनुष्य अल्पज्ञ जीव कहलाता है। पूर्णावतार एव परिपूणावतारमे आध्यात्मिक-दार्शनिक दृष्टिकोणसे अभेद भी माना गया है।

इन्हीं ईश्वरीय विभूतियोम कला, अश, आवेश आदि किञ्चित् विभेद भी माना गया है।

अशावतार

मानवको भी ईश्वरका अश माना गया है। किन्हीं मानवाके कार्यम यत्-किञ्चित् विशिष्टता दिखायी पडती है ता वे उत्कृष्ट माने जाते हैं। इन्हीं विशिष्ट एव सञ्चित गुणाको हम ईश्वरीय अश कह सकते हैं। विभिन्न देवी-देवताआके दिव्य गुणाम सञ्चित ईश्वरीय अश विद्यमान रहते हैं। जैसे—इन्द्र अग्नि, वरुण, सोम वायु, सूर्य आदिको भी अशावतार कहा गया है। घरामे होनेवाले अतिथि-यज्ञको सम्पादित करनेवाले 'होता' आदिम ईश्वरीय अशका होना परिकल्पित है। लक्ष्मीको भी अशावतार कहा गया है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणक ३५वे अध्यायके प्रकृतिखण्डम कहा गया है कि राधाके बाय अशसे लक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ ओर श्रीकृष्णके वामाशसे चतुर्भुज विष्णु हुए। अध्यात्मरामायण (१।२।२७)-म भगवान्‌के अपने पृथक्-पृथक् अशामे प्रकट होकर गर्भवास करनेका भी वर्णन मिलता है—

तस्याह पुत्रतामेत्य कौसल्याया शुभे दिने।
चतुर्धात्मानमेवाह सृजामीतरयो पृथक्॥

वहीं योगमायाका सीतारूपमे एव समस्त देवगणाका महाबलवान् वानराके अशरूपम जन्म लेकर लीला-विस्तारका प्रकरण द्रष्टव्य है।

विष्णुपुराण (४।११।२०)-म कार्तवीर्यार्जुनका वध करनेवाले परशुरामको अशावतार माना गया है। महाभारत (१।६७।११६, १५०)-मे अर्जुनको इन्द्र एव कर्णको सूर्यका अश कहा गया है। मनुस्मृति (७।४)-म कहा गया ह—

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती॥

अर्थात् इन्द्र, पवन, यम सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र एव कुबेर—इन आठोके नित्य अशसे राजाकी रचना हुई। अत इससे यह निष्कर्ष निकलता हे कि राजा दवप्रतिनिधि माने गये हैं। कनापनिषद् (२।१)-म अत्यन्त ही गूढरूपम परम ब्रह्मका अशरूप जीवात्मा जो मन बुद्धि, प्राणरूप है—उसमे भी ब्रह्मका ही अश है, ऐसा कहा गया है।

कलावतार

कोशकारोके अनुसार कलाके विभिन्न अर्थ बताये गये हैं। जैसे—समयकी कलाएँ, राशिकी कलाएँ, प्रयोगात्मक कलाएँ, सगीत-नृत्यकी कलाएँ, चन्द्रमाकी कलाएँ आदि। परतु कलाका अर्थ अवतारके सदर्भम भिन्न है। ब्रह्मवैवर्तपुराणके प्रकृतिखण्डके ३५वे अध्यायमे वर्णन है कि इन्द्र-सम्पत्तिस्वरूपा लक्ष्मी अपनी कलासे समुद्र-कन्या हुईं। प्रश्नोपनिषद् (६।२)-म सोलह कलाआवाले पुरुपका वर्णन मिलता है—

'स पुरुषो यस्मिन्नेता षोडशकला प्रभवन्तीति।'

सोलहा कलाआस पूर्ण जगत्-रूप विराट् शरीर उत्पन्न हुआ वे ही पुरुष कहलाये। य पुरुष ही हमार

अन्त करणमे विराजमान हैं। अत इन्हे अपने अदर ही खोजनेकी अभिलाषा रखनी चाहिये। छान्दोग्योपनिषद् (६।७।१)-मे भी पुरुषको सोलह कलाओवाला कहा गया है— 'षोडशकल सोम्य पुरुष ।'

बृहदारण्यकोपनिषद् (१।५।१४)-मे भी सवत्सररूपी प्रजापतिको सोलह कलाओसे युक्त कहा गया है। प्रश्नोपनिषद् (६।६)-मे बतलाया गया है कि जिस प्रकार रथके पहियेमे लगे रहनेवाले सभी अरे उस पहियेके केन्द्रमे प्रविष्ट रहते हैं, जिसे नाभि कहते हैं, उस नाभिके बिना ये टिक नहीं सकते, उसी प्रकार प्राण आदि सोलह कलाएँ जिनके आश्रित हैं, जिनसे उत्पन्न होती हैं और जिनमे विलीन हो जाती हैं, उन्हे ही परमेश्वर जानना-समझना चाहिये।

इस प्रकार षोडश कलाओसे युक्त जिन पुरुषको व्यक्त किया गया है, वे और कोई नहीं बल्कि षोडश कलाओकी प्रतिमूर्ति ब्रह्मरूप विष्णु हैं।

विभूति

विभूतिका सामान्य अर्थ अतिमानव एव दिव्य शक्तियोसे है, जिनमे अष्ट सिद्धियोका भी समावेश है। वैसे शक्ति, प्रतिष्ठा, कीर्ति आदि—ये विभूतियोमे ही गिनी जाती हैं। गीता (१०।७)-मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मेरी विभूति (विस्तार) और योग (विस्तार करनेकी युक्ति)-के तत्त्वको जानता है, वह नि सदेह स्थिर कर्मयोगको प्राप्त होता है। भगवत्-विभूतियोकी माहात्म्यचर्चा करनेमे कोई भी सासारिक मानव सक्षम नहीं। इस ससारमे जो भी पदार्थ विभूतिमान् हैं तथा श्री और लक्ष्मीसे युक्त हैं, उनमे ईश्वरके तेजोमय अशकी स्थितिको ही मानना चाहिये। गीताके १०वे अध्यायमे भगवत्-विभूतियोका बडा ही रोचक वर्णन है, जिनमे विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा इन्द्र सामवेदादि-जैसे समस्त श्रेष्ठ विभूतिया एव पदार्थोमे दिव्य सत्ताकी उपस्थिति दिखायी गयी है।

आवेशावतार

आवेशावतार भी हुए हैं। आवेशका अर्थ प्रविष्ट होना अथवा किसी एक शक्तिसम्पन्नके अधिकारक्षेत्रमे रहना है। आवेशावतारमे दिव्य सत्ता अपनी शक्तियोको किसी व्यक्ति या वस्तुविशेषमे आरोपित करती है। गर्गसहिता (१।२१)-मे श्रीनारदद्वारा आवेशावतारके बारेमे कहा गया है कि भगवान् विष्णु स्वय जिनके अन्त करणमे आविष्ट हो एव अभीष्ट कार्यका सम्पादन करके फिर अलग हो जाते हो—ऐसे अवतारको आवेशावतार समझना चाहिये।

भक्त भी कभी-कभी अपनी अप्रतिम भक्तिके कारण आवेशित हो जाते हैं, उस समय इन्हे न तो भूख सताती है और न प्यास। शारीरिक कष्ट होते हुए भी इसका आभास नहीं होता। इस समय इनके द्वारा असाधारण कार्य भी सम्पन्न होने लगते हैं। चैतन्य महाप्रभुके जीवन-चरितपर दृष्टि डाले तो ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।

अवतारोमे अशाश, अश, कला, पूर्ण एव परिपूर्णतम प्रकार भी बतलाये गये हैं। परशुराम आदिको भी किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थोने आवेशावतारकी श्रेणीमे रखा है। इनके अतिरिक्त दत्तात्रेय, कपिल, व्यास आदि भी इसी आवेशावतारके रूपमे वर्णित हैं।

पूर्णावतार

गर्गसहिताका स्पष्ट कथन है कि जहाँ चतुर्व्यूह एक साथ प्रकट हो वहाँ पूर्णावतारका प्रभाव परिलक्षित होता है, जैसे—राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न एव अनिरुद्ध। इन्होने अपनी दिव्य शक्तियो, बल, पराक्रम, तेज आदिके माध्यमसे दानवदलन कर सताको आश्रय देकर धर्मराज्यकी स्थापना की। वैष्णव साहित्यमे राम एव कृष्णकी महत्ता विशेषरूपसे उल्लिखित है। पूर्णावतारके परिप्रेक्ष्यमे विष्णु ही मुख्य लीलानायक हैं तो भी राम एव कृष्णके व्यूहमे भी अशावतारके समान ही इन्होने अनेक कार्य सम्पादित किये हैं। इस प्रकार अशावतारका पूर्णावतारसे अनन्य सम्बन्ध है। वैष्णव साहित्यके शीर्ष ग्रन्थ अहिर्बुध्न्यसहिता (२।५६)-मे बताया गया है कि परब्रह्म ही प्राकृत गुणोसे रहित होकर निर्गुण बन जाते हैं और जब ये षड्गुणो (ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य तेज)-से सम्पन्न होते हैं तो सगुणरूपमे होते हैं। इन षड्गुणोमे ज्ञान ही वासुदेवरूप हैं, शेष शक्ति आदि अन्य गुण तो ज्ञान (वासुदेव)-के सहचर हैं। सकर्षणमे ज्ञान और बल प्रद्युम्नमे ऐश्वर्य और वीर्य एव अनिरुद्धमे शक्ति और तेज-जैसे गुणोका प्राधान्य है। सकर्षणका कार्य है—जगत्की सृष्टि करना, प्रद्युम्नका कार्य है—मार्गके अनुसार क्रियाकी शिक्षा देना एव अनिरुद्धका कार्य है—क्रियाका फल देना अर्थात् मोक्षरहस्यका शिक्षण देना। इस प्रकार वासुदेवको मिलाकर उपर्युक्त व्यूह चतुर्व्यूह कहलाता

है। चतुर्व्यूह वासुदव ही इनकी उत्पत्तिके मुख्य स्रोत हैं, इनसे ही सकषण अर्थात् जीवकी, सकर्षणसे प्रद्युम्न अर्थात् मनकी एव मनसे अनिरुद्ध अर्थात् अहङ्कारकी उत्पत्ति होती है।

व्यूहोके बारेमे हमारे सत्साहित्यम यत्र-तत्र अनेक दृष्टान्तके साथ प्रकरण भी मिलते हैं। श्रीरामके व्यूहमे लक्ष्मणको सकर्षण, शत्रुघ्नको प्रद्युम्न एव भरतको अनिरुद्धके रूपमे माना गया है एव राम स्वय वासुदेवके रूपम स्थित हैं। गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद्म भगवान्ने स्वय कहा हे कि उत्तम बुद्धिसे सम्पन्न भक्तजन चारा रूपो (चतुर्व्यूह)-म मेरी उपासना करते हैं।

अवतार-भेदोमे व्यूहवाद निश्चित ही अवतारवादसे पृथक् नहीं, किंतु अवतारके रूपो एव प्रयोजनामे भिन्नता अवश्य ही परिलक्षित होती है। व्यूहके केन्द्रम वासुदेव हैं, जहाँ इन्हींसे नि सृत शक्ति ही अनिरुद्धादिकी विशिष्टता प्रकट करती है। पाञ्चरात्रसाहित्यमे व्यूहवादकी विशेष चर्चा है एव इसमे कहा गया है कि ब्रह्मकी समस्त शक्तियाँ ब्राह्मरूपम ही दृश्य हाती हैं, अत इन्ह अलग-अलग दखना निरर्थक है। नारदपाञ्चरात्रम तो उपव्यूहका भी सिद्धान्त प्रतिपादित है। दृष्टान्तरूपम वासुदेवसे केशव, नारायण, माधव, सकर्षणसे गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, प्रद्युम्नसे त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर एव अनिरुद्धसे हृषीकश, पद्मनाभ और दामोदर प्रकट होते हैं।

परिपूर्णावतार

श्रीकृष्णकी भगवान्के परिपूर्णतम अवतारके रूपम मान्यता है। वासुदेव कृष्णको महाभारत (१।६७।१५१)-मे नारायण अथवा विष्णुका अवतार कहा गया है—

यस्तु नारायणो नाम दवदेव सनातन।
तस्यांशो मानुषष्वासीद् वासुदेव प्रतापवान्॥

पुन श्रीमद्भागवत (१।३।२८)-में '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' कहा गया है। अवतारोम चाहे वे दस अवतार हा अथवा चौबीस अवतार—यह सर्वमान्य सिद्धान्त हे कि श्रीविष्णु अपने कला, अश, अशाश, आवेश, पूर्ण आदि रूपाम अवस्थित होकर अवतार लेते हैं। ये सभी अखिल ब्रह्माण्डके अधिपति भगवान्की दिव्य शक्तियाँ हें, जो ससारके कल्याणार्थ लीलाहेतु अवतरित होती हैं।

~~~o~~~

ईश्वरका कृपावतार

(डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग)

परब्रह्म परमेश्वर परम कृपालु हैं। उनका सहज स्वभाव है जीवपर कृपा करना क्योकि जीव उन्हींका अश है, अत जीवपर उनका सहज स्नेह है। लेकिन यह जीव बार-बार मायाके बन्धनमे बँधकर दु खाके गर्तम गिरता रहता है और परमात्मा बार-बार उसपर कृपा करक उसके दु खाका निवारण करते रहते हैं। जीव जब-जब सासारिक माया-मोहम फँसकर सङ्कटासे घिरकर अति दु खी हा जाता है, तब-तब अपने अशी परमात्माको याद करता है और उसक परित्राणके लिये परमात्मा स्वय अनेक रूपाम अवतरित हाते हैं। विशेषकर भक्तकी रक्षाके लिये ता व काई भी रूप धारण कर लेते हैं।

भक्त प्रह्लादकी रक्षाके लिये भगवान् सगुणरूपम 'नृसिह'-अवतार धारणकर प्रकट हो गये इसी प्रकार हिरण्याक्षके वधके लिये उन्हाने 'वराह'-अवतार धारण कर लिया। सागर-मन्थनके लिये 'कच्छप'-रूपम अवतरित हा गये तो दवताआको अमृतपान करानेके लिय वे 'माहिनी नारी' के रूपमे प्रकट हा गये। बलिके यज्ञम वे 'वामन'-रूपम प्रकट हो गये ओर उससे तीन पग पृथ्वीकी भिक्षा माँग ली।

वस्तुत यह भगवान्के स्वभावकी सहज कृपालुता ही है, जा उन्ह किसी भी रूपम प्रकट कर दती है। जीवपर उनकी कृपा अनन्त रूपम बरसती है। इसीलिय गास्वामी तुलसीदासजीन ता यहाँतक कह दिया कि उनकी कृपा भी कृपा करक सतुष्ट नहीं हाती—*'जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥'*। जैसे माता अपनी सतानके प्रति सदव वात्सल्य-भावसे भरी रहती है और प्रतिक्षण उसका चिन्तन करती हुई उसकी रक्षा करनेको तत्पर रहती है, वैसा ही स्वभाव भगवान्का है। भगवान् अपने अशभूत जीवपर कृपा किये बिना रह ही नहीं सकते। आखिर यह सम्पूर्ण जीवजगत् उनका ही ता रचा हुआ है और व स्वय ही अपनी इच्छासे
~~~

जगत्के रूपमे अभिव्यक्त हुए हैं। ईश्वरने सोचा कि मैं एक अकेला हूँ, तो उन्होने इच्छा की कि मैं अनेकरूप हो जाऊँ—'*एकोऽहं बहु स्याम्*।' इस प्रकार इस ससारकी सृष्टि हुई।

ईश्वर आत्मारूपमे सभी प्राणियामे विद्यमान है। भगवान् श्रीकृष्णजी श्रीमद्भगवद्गीता (१८।६१)-मे स्वय कहते हैं—'**ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**।' भगवान् श्रीराम भी कहते हैं—'*सब मम प्रिय सब मम उपजाए*।' इस प्रकार सारा जगत् उनका—निजका ही विस्तार है और सबपर कृपा करना उनका सहज स्वभाव है।

भगवान् श्रीरामकी स्तुति श्रीतुलसीदासजी यह कहकर करते हैं—'*श्रीरामचद्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुण*।' अरे मन! तू कृपालु प्रभु श्रीरामका भज, जो दारुण भवभयका हरण करनेवाले हैं। श्रीतुलसीदासजी अपने इष्ट प्रभुका कृपासिन्धु, करुणानिधान, दीनबन्धु आदि नामासे स्मरण करते हैं।

भगवान्ने अपने कृपालु स्वभावके कारण अनेक बार सगुण अवतार धारण किये हैं। विशेषकर त्रेतायुग और द्वापरयुगमे तो माताके गर्भसे श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमे मनुज अवतार धारणकर भगवान्ने सामान्य मनुष्याकी तरह सुख-दु ख सहते हुए जीवन भी बिताया और विभिन्न लीलाएँ कीं। भगवान् श्रीकृष्णकी बाललीलाओं—सखाओके साथ खेलना, हँसना-हँसाना, रूठना-मनाना, झगडना प्रेमवश उनकी जूठन स्वीकार करना आदिको देखकर ब्रह्मा-जैसे ज्ञानीको भी मोह हो गया कि यह कैसा ईश्वरावतार है? इसी प्रकार श्रीरामावतारमे सीताहरणके पश्चात् श्रीरामकी विरहलीला देखकर स्वय शिवप्रिया सतीतक मोहित हो गयीं। लेकिन भगवान् तो भक्तोके वशमे हैं। वे भक्तोके लिये अवतरित होते हैं और वैसी ही लीला करते हैं।

कृपालु भगवान् बार-बार भक्तोके लिये अवतार धारण करते हैं, फिर यह कैसे सम्भव है कि वे कलियुगमे अवतार धारण न करे? भगवान् श्रीकृष्णने तो द्वापरके अन्तमे देह-लीलाका सवरण कर लिया। लेकिन उनका कृपालु स्वभाव कैसे बदल सकता है, जबकि कलियुगमे तो जीव और अधिक दु खी एव सत्रस्त हैं। ऐसेमे वे इस युगमे कृपावताररूपमे प्रकट हुए। उनका यह कृपावतार, धरतीपर विचरनेवाले सतोके रूपमे है। सतोके रूपमे ईश्वरकी प्रेममयी करुणा ही जीवोपर कृपा करनेके लिये प्रकट हुई है। मानवताका कल्याण करनेके लिये, जीवोके दु खकी निवृत्ति करनेके लिये कितने-कितने सत इस धराधामपर अवतीर्ण होते रहे हैं। भगवान् बुद्ध, महावीर, आचार्य शकर, चैतन्यमहाप्रभु, श्रीमद्वल्लभाचार्य, स्वामी रामकृष्ण परमहस-जैसे सत, जिन्हे भक्तलोग ईश्वरका अवतार ही मानते हैं, इन्होने मानवताको प्रेमरूपी अनमोल पूँजीसे समृद्ध किया, उसके दु ख-दारिद्र्यको मिटाकर उसे परम आनन्द प्रदान किया। इन सतोके कृपालु स्वभावके लिये सत श्रीतुलसीदासजीने बडी महत्त्वपूर्ण बात कही है कि वे तो नवनीतसे भी अधिक कोमल स्वभाववाले होते हैं। नवनीत तो स्वय अपनेपर ताप लगनेसे पिघलता है, लेकिन कृपालु सत तो दूसरोके दु ख देखकर ही द्रवित हो जाते हैं—

निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहि सत सुपुनीता॥

ऐसे सतोकी कृपालुताके विषयमे कितने-कितने आख्यान प्रसिद्ध हैं। भगवान् बुद्धने कितने ही दीन-दु खी मनुष्योका कल्याण किया, यहाँतक कि उनके दर्शनमात्रसे अङ्गुलिमाल-जैसे दुर्दान्त दस्युका हृदय-परिवर्तन हो गया और वह उनकी अहैतुकी कृपा प्राप्तकर सज्जन बन गया। महाप्रभु चैतन्यदेवका सामीप्य मिलनेसे जगाई-मधाई-जैसे दुर्जनोका भी उद्धार हो गया। निश्चय ही यह ईश्वरकी अहेतुकी कृपा ही है, जो सतोके रूपमे मानवका कल्याण करती है। उसके दुष्कर्मोंका अन्त कर उसे सन्मार्गपर लाती है। आजके समयमे भी ऐसे कितने ही कृपामूर्ति सत मनुष्योका दु ख दूर कर रहे हैं। इन सतोके हृदयमे सर्वदा प्रेमका सागर लहराता रहता है और कभी भी, कहीं भी किसी प्राणीको कष्टमे देखकर उनके हृदयमें स्थित कृपारूप परमेश्वरका प्राकट्य हो जाता है। इसीलिये श्रीतुलसीदासजीने स्पष्ट कहा है—

'सत मिलन सम सुख जग नाहीं॥'

महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि ईश्वरके कृपावताररूप इन सतोके माध्यमसे ईश्वरका एक और कृपावतार प्रकट हुआ है, वह है 'नामावतार'। इन सतोने आजके इस कलिकालमे ईश्वरसे अधिक उनके नामकी महिमाका वर्णन किया है। सगुण अवतारमे ईश्वरकी तत्कालीन व्याप्ति अपने तत्कालीन सगुण स्वरूपतक सीमित रहती है, लेकिन नामकी व्याप्ति अनन्त है। इसके अतिरिक्त

नामीको नामका अनुगमन करना पडता है। जब हम किसी व्यक्तिका नाम पुकारते हें और यदि वह उसे सुन लेता है तो तुरत चलकर सामने आता है फिर ईश्वर तो सृष्टिके अणु-अणुमे व्याप्त है, इसलिये वह तो किञ्चित् भी दूर नहीं है, बस उसे भीतरकी आवाजसे पुकारनेकी देर है, उसके प्रकट होनेमे देर नहीं है। प्रभुका नाम पुकारना हर किसीके लिये शक्य है।

ईश्वरका ऐसा एक नामावतार है 'राम'-नाम, जिसके लिये परदु खकातर देवर्षि नारदजीने स्वय दशरथपुत्र श्रीरामसे यह वर माँगा था—

राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

और श्रीरामने मुनि नारदजीकी इस प्रार्थनापर 'एवमस्तु' कहकर मोहर लगा दी थी। सत श्रीतुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया कि रामका नाम स्वय ब्रह्म रामसे भी अधिक बडा, वरदायक एव हितकारी है—

'ब्रह्म राम ते नामु बड़ बर दायक बर दानि।'

श्रीरामने तो एक गौतमनारीका ही उद्धार किया, लेकिन उनके नामने अगणित पापियाका उद्धार कर दिया—

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

ऐसे नामावताररूप भगवान् हर किसीके लिये सहज सुलभ हैं। जो इस नामरूप ईश्वरको हृदयम धारण कर लेता है, उसके काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि सहज ही नष्ट हो जाते हैं। इस 'राम' नामको भाव-कुभाव, कैसे भी स्मरण किया जाय, वह कल्याण ही करता है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मगल दिसि दसहूँ॥

श्रीरामका अवतार तो त्रेताम हुआ, किंतु कलिकालके प्राणियोको रामकी कृपा कैसे मिले? इसके लिये सत श्रीतुलसीदासजीने यह व्यवस्था दी कि सतत रामनामका स्मरण करो, रामनामका गान करो, रामका गुणगान सुनो, क्याकि इस कलिकालमे योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजा आदि करना अति कठिन है—

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। सतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

इसी बीसवीं शताब्दीके सत परम भागवत श्रीसीतारामदास ओकारनाथने स्पष्ट घोषणा की कि नाम स्वय भगवान् है। नामी नामसे विच्छिन्न नहीं है, वह नाम-रूपम स्वय प्रकट रहता है। उन्होने सम्पूर्ण भारतम घूम-घूमकर नामका प्रचार किया और बताया कि कलियुगमे हरिनामके अतिरिक्त और कोई आश्रय नहीं है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

निश्चय ही आजके इस दु ख, सत्रास, हताशा, कुण्ठाके समयमे ईश्वरका नाम बहुत बडा आश्रय है। इस नामरूपी कृपावतारका आश्रय लेनेवाला व्यक्ति बडी-से-बडी विपत्तिमे भी आश्वस्त रहता है कि भगवान् हर पल उसके साथ हें और उसकी रक्षा कर रहे हैं। जिसने जीभरूपी देहरीपर राम-नामका दीप जला रखा है, उसके तो भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाश होना ही है। यह नाम राम भी हो सकता है या कृष्ण, गोविन्द, गोपाल, हरि, नारायण या ईश्वरके जिस नामम रुचि हो, वह हो सकता है।

अनेक व्यक्तियाके नाम राम, कृष्ण, नारायण, हरि, गोविन्द, शिव आदि ईश्वरके नामोपर रखे गये हैं। इसके पीछे मुख्य ध्येय भगवान्का नाम-स्मरण करना ही है। यह व्यवस्था भी ईश्वरके कृपावतार सताकी दी हुई है। जब अजामिल नामका ब्राह्मण एक वेश्याके सगके कारण अपने कर्तव्यपथसे विमुख हो गया था, तब उसके घर पधारे कृपालु सताने उसका कल्याण करनेके उद्देश्यसे उससे यह वचन ले लिया था कि वह अपने यहाँ जन्म लेनेवाले बालकका नाम 'नारायण' रखेगा। कौन नहीं जानता कि बिना प्रेम-भक्ति एव आस्थाके केवल पुत्रभावसे वह बार-बार 'नारायण' नामका उच्चारण करता रहा। प्राणान्तके समय भी उसने अपने पुत्रके लिये 'नारायण' नाम पुकारा, जिससे अन्तिम शब्द 'नारायण' नामके कारण उसे सद्गति प्राप्त हुई। नामके प्रभावके ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं। इसीलिये आज भी अधिकाश घराम माता-पिता अपनी सतानका नाम ईश्वरके विभिन्न नामोपर रखते हैं, ताकि इसी बहाने वे हर समय ईश्वरका नाम उच्चारते रह।

नामरूपी इस कृपावतारको भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने ऐसा पकड रखा था कि वे घरसे बाहर कदम रखते समय 'नारायण' नाम बोलकर निकलते थ तथा औराको भी यह निर्देश देते थे कि वे 'नारायण' बालकर घरसे निकल तो उनकी यात्रा सफल हागी और अभीष्ट कार्य सिद्ध होगा।

सच तो यह है कि सगुण-साकाररूपमे ईश्वर एक ही स्थानपर प्रकट होता है, नामावताररूपम वह अगणित रूपाम प्रकट होता है। नामस्मरण करते ही वह अक्षर ध्वनियामे प्रकट होकर भक्तकी अभीष्ट सिद्धि करता है।

अन्तमं एक बात आर उल्लखनीय है कि ईश्वरका यह कृपावतार कभी-कभी इस प्रकार सहसा प्रकट होता है कि कोई उसे समझ भी नहीं पाता। आवश्यक नहीं कि वह सत ही हो। कभी-कभी कोइ अनजान व्यक्ति किसी अनजानेपर ऐसी कृपा कर बैठता है, जिसका भान उसे स्वय भी नहीं होता। वह अनजानेम यन्त्रकी भाँति ऐसा कर बेठता है। इसी प्रकार जब किसी विपद्ग्रस्त व्यक्तिका सकट सहसा दूर हो जाता है, तो बादम उसे अहसास होता है कि इस प्रकारसे उसपर कृपा करनवाले करुणावरुणालय उसके प्रभु ही थे। भले ही वे मनुष्य-रूपम आये हो या किसी मनुष्यतर प्राणीक रूपमे। यह भगवान्का 'निमित्तावतार' है।

प्रभुका नामावतार

(डॉ० श्रीविश्वामित्रजी)

सत्ययुगम भगवान् नृसिहका अवतार हुआ था, त्रेतामे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अवतरित हुए, द्वापरम भगवान् श्रीकृष्णमुरारीका अवतार हुआ और कलियुगम नाम-भगवान्का अवतार है। वास्तवम नामावतार तो पुरातन, सनातन एव शाश्वत है। यह ता सभी युगोमे हुए अवताराके साथ विद्यमान रहता ही हे। भगवान् नृसिह, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र, भगवान् श्रीकृष्ण अपनी-अपनी लीला पूर्ण करके अपने-अपन लोकाम लौट गये परतु नाम-भगवान् तो अभी भी विराजमान हैं। सत्ययुगमे ध्यानकी प्रधानता थी, त्रेता यज्ञप्रधान था ओर द्वापर पूजा-प्रधान, कितु अन्य युगाम जो गति पूजा, यज्ञ तथा योगक द्वारा प्राप्त होती है वही गति इस कलियुगमे भगवान्के नामसे प्राप्त हो जाती है। श्रीकाकभुशुण्डिजी ऐसी घोषणा करते हैं—

कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥
(रा०च०मा० ७।१०२ ख)

करुणावरुणालय भगवान्ने अपने भक्ताक कल्याणकी भावनासे प्रेरित एव द्रवित होकर नामावतारद्वारा अपनी कृपाशक्तिको प्रकाशित किया है। जिन-जिन हेतुआक लिय परब्रह्म परमात्मा साकाररूपम अवतरित हुए, वे ही हेतु इस युगम 'नामावतार' द्वारा भी सम्पादित किये जा रहे हैं। श्रीतुलसीदासजी कहत हैं—

राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥
(रा०च०मा० १।२७)

अर्थात् भगवान् श्रीरामका नाम साक्षात् नृसिहभगवान् है। कलिकाल मूर्तिमान् हिरण्यकशिपु है और राम-नामका जप करनवाला जापक प्रह्लाद है। जिस प्रकार सत्ययुगम हिरण्यकशिपुक अत्याचारासे सत्रस्त प्रह्लादके सकटका निवारण नृसिहके रूपम प्रकट होकर भगवान् करते हैं उसी प्रकार आज भी कलियुगमे नाम-भगवान्द्वारा हमारी समस्याआ—हमारे सकटासे हम छुटकारा मिलता है। प्रह्लादको अपने ही पिता राक्षसराज हिरण्यकशिपुद्वारा यातनाएँ दी जाती हैं, उन्हे अग्निमें जलाया जाता है, सर्पसे डँसाया जाता है, पर्वतसे गिराया जाता हे तथा भूखसे सताया जाता है। विचार करके देखे तो साधकके साथ भा यही कुछ होता है, चाहे वह बाहरका साँप न हो, बाहरका पहाड न हो तथा बाहरकी आग न हो, पर क्या ईर्ष्या, द्वेष एव क्रोधाग्निसे साधक सत्रस्त नहीं होता? क्या चिन्ताकी आगमे सभी लाग नहीं जल रहे हैं?

चिन्ता की लगी आगि है, जरे सकल ससार।
पलटू बचते सत जिन, लिया नाम आधार॥

दुर्गुणाके साँप साधकको डँसनेके लिय तैयार रहते हैं। विषयाका विष उतरता ही नहीं। चिन्ताकी अग्नि सदैव जलाती रहती है। अहकारका पर्वत गिरानेके लिये सर्वदा तत्पर रहता है।

अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षित्के राज्यकालकी घटना है। राजा परीक्षित्को मालूम हुआ कि उनके राज्यम कलियुगका प्रवश हो गया है, ता वे सना लेकर दिग्विजयक लिय निकल पडे। एक स्थानपर उन्हाने दखा कि धर्म बैलका रूप धारण करक एक पैरसे घूम रहा हे। एक स्थानपर उन्ह गायरूपी पृथ्वी मिली, उसके नेत्रोंसे आँसू

झर रहे थे। धर्मने पृथ्वीसे पूछा—तुम दु खी क्या हो? पृथ्वीने बताया—धर्म! भगवान् श्रीकृष्णने इस समय इस लोकसे अपनी लीलाका सवरण कर लिया है और यह ससार पापमय कलियुगकी कुदृष्टिका शिकार हो गया है, यही देखकर मुझे बडा शोक हो रहा है। राजा परीक्षित्ने पुन देखा कि एक राजवेषधारी शूद्र हाथम डडा लिये हुए है ओर गाय-बेलक उस जोडेको पीट रहा है। राजाने पूछा—अरे दुष्ट! तुम कौन हो? इन्ह क्यो पीट रहे हो? उसने उत्तर दिया—राजन्! मैं कलि हूँ, मैं अपना काम कर रहा हूँ। राजाने क्रुद्ध होकर कहा—मैं तुम्ह यहाँ नहीं रहने दूँगा। कलिने कहा—राजन्! पहले मरे गुण-दोष तो सुन लो, तब निर्णय लेना। मरे युगमे धन-सम्पत्तिहेतु भाई-भाई लडगे। स्त्री-पुरुष मर्यादाका उल्लघन करनेवाले हागे। कोई-कोई नारी मर्यादाम रहनेवाली होगी। हिसाका प्राधान्य रहेगा। मानव अल्पायु एव अल्प-बुद्धि हागे। लाग मद्य-मासका ही सेवन करगे। कलिकी घोषणा सुन राजा तिलमिला कर बोले—बस-बस, हद हो गयी, तुम्हारे प्रभावसे तो मानवता ही लुप्त हो जायगी, अत मैं तुम्ह मार डालूँगा। कलिने आगे कहा—महाराज! मुझम

एक बडा भारी गुण भी है, सुन ले—सत्ययुगमे दीर्घकालीन जप-तप, उपवास, व्रत, ध्यानादि करनेसे त्रेतामे बडे-बडे यज्ञाके करनेसे, द्वापरम भगवत्सेवा-पूजासे जितना पुण्य मिलता है, उतना पुण्य मरे कालमे प्रेमपूर्वक राम-नामके जपनेसे मिलेगा। इसी बातको श्रीशुकदेवजी परीक्षित्को बताते हैं कि राजन्! यो तो कलियुग दोषोका खजाना है, परतु इसमे एक बहुत बडा गुण है। वह गुण यही है कि कलियुगम केवल भगवान्का नाम-सकीर्तन करनेमात्रसे सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुण ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्ग पर व्रजेत्॥
(श्रीमद्भा० १२।३।५१)

तात्पर्य यह है कि कलियुगम भगवान् नामावतारके रूपम जीवाका कल्याण करते ह। अत जो साधक भगवन्नामका आश्रय लेते हे, उनकी रक्षाके लिये अन्ततोगत्वा एक दिन भगवान् अपनी पूर्ण शक्तिके साथ प्रकट या अप्रकट रूपम हिरण्यकशिपुरूपी कलियुगका सहार अवश्य करते हैं। इस प्रकार साधककी साधना सफल होती है।

कलियुगकी बुराइया, विघ्न-बाधाआके मध्य रहते हुए भी नामोपासनाका आश्रय लेना—यह भगवान्की कृपाका प्रत्यक्ष प्रमाण है। जीवन्त उदाहरण हैं—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी एव भक्तशिरामणि श्रीसूरदासजी। इन्होने नामकी आराधना की। भगवान्ने कृपा करके उनके चित्तका शुद्धीकरण करके उन्ह वन्दनीय बना दिया और उनकी रचनाआको अमर। नामोपासना भक्तिप्रधान है। भक्तिका मार्ग उनका है, जिनके पास अपना बल नहीं हे। इस पथका पथिक यदि किसी भी प्रकार अपने बलका स्वय अनुभव करे अथवा उसे अपने पुरुषार्थका तनिक भी अभिमान हो तो वह भक्तिमार्गका सच्चा यात्री नहीं, उसके परम बल तो परमात्मा हैं। भक्तका निर्बलत्व ही उसका बल है, जो भगवान्को आकर्षित करता है। यह मार्ग उनका है जो अपने अहका हनन कर चुके हैं। वे जानते हैं—

नाम मान, मन एक मे एक समय न समाय।
तेज तम तो एक स्थल, कहीं न देखा जाय॥
(भक्तिप्रकाश)

सत कनकदासको जो कोई भी पूछता 'क्या में स्वर्ग जाऊँगा?' तो कहते—'नहीं, जब मैं नहीं जायगा, तो तू नहीं जायगा।' किसीको उत्तर देते—'जब मैं जायगा, तो तू जायगा।' पूछनेवाले इन वचनाको अहकारीके वचन समझते। उनसे फिर पूछा गया—क्या आप स्वर्ग जायँगे? 'हाँ! जब 'मैं' जायगा, तो मैं जाऊँगा।' अब सही समझ आयी कि सत किस 'मैं' की बात समझा रहे हैं। मानको उलटा करे

तो नाम बनता है। ये दोनों एक साथ नहीं रह सकते—अतः 'नाम' मानको, अहंको मारनेकी अचूक दवा है। 'नाम' उसे कहते हैं जो 'नम' कर दे अर्थात् झुका दे। नाम एक ओर जीवको झुकना सिखा देता है, दूसरी ओर भगवान्‌को झुका देता है। दोनोंके झुकनेपर जीवात्मा और परमात्माका मिलन हो जाता है। नाम श्रीनामावतारको भी झुका देता है। प्रभुसे प्रेम जन्म-जन्मान्तरोंका मोह मिटा देता है। नाम भगवान् श्रीरामको हर समय अङ्ग-सङ्ग माननेका अर्थात् दिव्य प्रेममें हर समय डुबकी लगाये रखनेका एवं श्रीराम-कृपाको सर्वदा याद रखनेका सामर्थ्य प्रदान करता है। ऐसा जापक झुकनेकी, विनम्र रहनेकी कला सीखकर परमात्माके परम-प्रेमका पात्र बन जाता है तथा प्रत्येक परिस्थितिको प्रभु-प्रसाद मानकर सम रहता है।

एक संतके पास ब्राह्मणवेशमें कलियुग पधारे, परिचय दिया तथा आदेश दिया—'सत्सङ्गमें आत्मा-परमात्माकी चर्चा एवं श्रीरामनामोपासनापर बल मत दिया करो। इससे लोगोंका मनोबल, बुद्धिबल बढ़ता है, विश्वासमें वृद्धि होती है। तब उनपर मेरी दाल नहीं गलती, वे मेरे प्रभावसे बाहर हो जाते हैं।' संतने विनयपूर्वक कहा—'भाई! भीड़ इकट्ठी करना मेरा उद्देश्य नहीं, लोगोंमें भक्तिभाव जगे, उन्हें सत्स्वरूपका बोध हो, यही सत्सङ्गका लक्ष्य है।' कलियुगने कहा—'इस समय मेरा शासन है, जिसका राज्य हो उसके पक्षमें रहना बुद्धिमत्ता है।' 'भाई! मैं तेरे राज्यमें नहीं, रामराज्यमें हूँ, मेरे राजा राम हैं, तू नहीं, युग तो आते-जाते रहते हैं।' 'आपको मेरी अवज्ञा महँगी पड़ेगी।' यह धमकी देकर कलि चला गया। अगले ही दिन एक व्यक्ति आया, कहा—'महाराज! आपने मदिरा मँगवायी थी उसके पैसे अभीतक नहीं पहुँचे।' संत समझ गये, 'कलिका खेल है।' उनके जो सत्सङ्गी थे निन्दक हो गये, आश्रम खाली हो गया। कलि प्रकट हुए, पूछा—'कैसा है आश्रम? कैसी है भक्ति? सुना है, भगवान् माननेवाले शैतान मानने लगे हैं। पुनः कहूँगा, मेरे राज्यमें नामोपासना सिखाकर मेरे विरुद्ध न चलो। यदि मान जाओ तो कलसे ही दुगने भक्त पधारने लगेंगे।' संतने पूछा—'कैसे?' कलिने कहा—'कल ही दिखा दूँगा।'

'एक कोढ़ी मार्गमें पड़ा चिल्ला रहा था—अरे कोई मुझे संतके पास ले जाओ, यदि वह कृपा करके मुझपर पानी छिड़केगा तो मेरा कोढ़ दूर हो जायगा—ऐसा भगवान्‌ने मुझे स्वप्नमें बताया है। लोग कहें नहीं, वह तो शराबी है, संत नहीं। अरे, नहीं वह उच्च कोटिका महात्मा है। लोग उसे संतके पास ले गये। संतने जल छिड़का, कोढ़ ठीक हो गया, वह वृद्धसे सुन्दर युवक हो गया। सभी सत्संगी शर्मिन्दा होकर क्षमा माँगने लगे। सत्संगमें खूब भीड़ हो गयी।'

कलि फिर पधारे, कहा—देख लिया, मेरा प्रताप! अतएव मुझसे मिलकर रहो। संतने तत्काल कहा—नहीं, हम तो प्रभु श्रीरामसे ही मिलकर रहेंगे, सत्संग जारी रहेगा ताकि लोग विषय-दास धन-मनके दास न बनें, राम-दास बनें। कलिने धमकाया—'आपको भारी पड़ेगा, देख लिया न मेरा प्रभाव।' हाँ देख लिया, निन्दा-स्तुति दोनों करवा ली, तूने भी देख लिया रामराज्यका प्रभाव? मैं दोनोंमें सम रहा। मैं प्रत्येक परिस्थितिसे अप्रभावित अर्थात् सम एवं शान्त रहता हूँ, यह प्रभुकी भव्य अनुकूलताका प्रताप है। नाम-भक्ति भगवान्‌को भक्तके अनुकूल बना देती है और समता है परमोच्च अवस्था जो राम-कृपासे भक्तको उपलब्ध होती है।

उपनिषद् भगवन्नामको सब सारोंका सार घोषित करता है और नाम-भगवान्‌की उपासनाको परमोपासना बताता है। वाचिक, उपांशु तथा मानसिक—ये तीनों प्रकारकी उपासनाएँ सर्वसुखकारी एवं कल्याणकारी हैं। यद्यपि चारों युगोंमें नामका प्रभाव प्रत्यक्ष है, परंतु कलियुगमें तो इसका विशेष महत्त्व कहा गया है। अनादि कालसे इसे सर्वोच्च स्थान दिया जा रहा है। इस साधनाको कल्पतरु अर्थात् समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली एवं सकल भव-व्याधियोंको दूर करनेवाली बताया गया है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई एवं यहूदी सभी किसी-न-किसी रूपमें नामोपासनाका महत्त्व स्वीकार करते हैं। इसके मुख्य अङ्ग हैं—नाम-स्मरण, ध्यान एवं कीर्तन।

१-नाम-स्मरण—परमेश्वरके पतित-पावन नामको वाणी अथवा मनसे जपना सिमरन (सुमिरन) कहा गया है। नाम-उच्चारण करते-करते उसके गुणोंका स्मरण प्रीतिपूर्वक अथवा भावसहित जप सिमरन कहलाता है। संत सिमरनकी महिमा गाते हुए अघाते नहीं—

सिमरनमें सब सुख बसे, सिमरनमें हरि आप।
वहाँ नामी निवास है जहाँ नामका जाप॥
(भक्तिप्रकाश)

परमात्माको सर्वत्र-सर्वदा अपने अङ्ग-सङ्ग अनुभव कर उससे मन-ही-मन वार्तालाप करते रहना मधुर स्मरण-याग कहा जाता है—

स्मरण योग कहा सुगम, कठिन अन्य है योग।
हरि दर्शन हरि धाम दे, सिमरन हरता रोग॥
(भक्तिप्रकाश)

राम-नाम जपनेका सबको समान अधिकार है, चाहे निपट निरक्षर है या साक्षर, निर्धन है या धनवान्, उच्च जातिका है या निम्नका, महिला है या पुरुष, पवित्र है या अपवित्र, पापी है या पुण्यात्मा, मासाहारी है या निरामिष एव दु खी है या सुखी। इसे जेलम, शौचालयम, श्मशानभूमिमे, खेत, अस्पताल अर्थात् प्रत्येक स्थानमे जपा जा सकता है, हर समय जपा जा सकता है। नाम-भगवान् नरेश हैं, जापकके चोकीदार बनकर उसकी पवित्रता तथा उसके सद्गुणाकी रक्षा करते हैं, उसे दुर्गुणासे बचा कर रखते हैं। दुर्गुणरूपी नागाके लिये नामकी गूँज गरुडकी गूँजका कार्य करती है—

काया चन्दन तरु कहा लिपटे अवगुण नाग।
नाम गरुड़ की गूज सुन जाव सब ही भाग॥
(भक्तिप्रकाश)

राम राम धुन गूज से भव भय जाते भाग।'
(भक्तिप्रकाश)

पशु-पक्षीको भी नाम-पुकारनेसे प्रभुका सरक्षण मिला है।

नाहन गुनु नाहन कछु विद्या, धर्म कौन गज कीना।
नानक विरद राम का देखो, अभय दान तिहि दीना॥

'राम' परब्रह्म परमात्माका सर्वाधिक प्रिय मधुरतम नाम भी है तथा द्वि-अक्षर मन्त्र भी है। इस शब्दके उच्चारणसे नाम एव मन्त्रजप दोनाका फल मिलता है। ऐसा सुना गया है कि एक बार धर्मराज युधिष्ठिरने भीष्म पितामहसे पूछा—'मन्त्र-जप करनेवालेको कौन लोक प्राप्त होता है?' भीष्मजी एक दृष्टान्तके माध्यमसे उत्तर देते हैं—हिमालयके निकट एक तपस्वी ब्राह्मणने अनेक वर्षोतक राम-नामका जप किया। प्रभु प्रकट हुए और उन्होने कहा—ब्रह्मर्षि! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, वर माँगो। ब्राह्मणने कहा—हे प्रभो! अधिक मन्त्र-जपकी इच्छामे निरन्तर वृद्धि हो तथा मनकी एकाग्रतामे बराबर उन्नति हो। तथास्तु। अब तुम प्रेमपूर्वक नाम जपो।

ब्राह्मणने वर्षों जप किया, मन, इन्द्रियापर पूरा वशीकरण किया, काम, क्रोध, लोभ, मोहपर विजय प्राप्त की। वे दूसराके दोष कभी नहीं देखते थे। अब धर्मराज पधारे—कहा—महाराज! मैं आपके दर्शन करने आया हूँ। नाम-मन्त्र-जपके फलस्वरूप आप देवलोकको लाँघकर जहाँ इच्छा हो, ऊपरके लोकोमे प्रवेश पा सकते हैं। ऐसी है राम-नाम एव मन्त्र-आराधनाकी महिमा।

नाम-भगवान्ने किस निन्दनीयको वन्दनीय नहीं बना दिया, यह तो सामान्य जनको भी राम-कृपाका पुण्यपात्र बना देता है। एक बारकी बात है, किसी राजाका एक दास (सेवक) राम-दास बननेके लिये हिमालयकी गोदमे साधनारत हो गया। राम-नामकी दीक्षा देते समय गुरुजीने उसे समझाया था—वत्स! राम-मन्त्र चलते-फिरते, सैर करते, उठते-बैठते, खाते-पीते, खेलते-कूदते, नहाते-धोते, काम-काज करते, सोते-जागते, श्वास लेते-छोडते तथा यात्रा करते—हर समय जपा जा सकता है, हर जगह जपा जा सकता है। भोजन बनाते, लकडी काटते भी राम-राम जपते रहना। ललक लग गयी, उसने अविराम नाम जपा। एकान्त था, समयका सदुपयोग किया। गप-शप निन्दा-चुगली, झूठ, छल-कपट—सब छूट गया। वह सेवक नाम-रगमे रँग गया। नाम-भगवान्ने कृपा की, मनका पवित्रीकरण हुआ, आचरण-व्यवहार सुधरा, स्वभाव बदला। भूख-नींद बहुत कम हो गयी, राम-मिलनकी तडप जगी। चित्त शान्त हुआ, परम-शान्ति एव परमानन्दका अनुभव हुआ। चेहरेपर अद्भुत तेज प्रकट हुआ। नामकी कृपासे वह सत बन गया। सतने एक बार भण्डारेका आयोजन किया। धनवानोने तथा राजाने आर्थिक सहायता की। बादमे उस सतने सबको नामकी महिमा समझायी, भजन-कीर्तन हुआ। विदा लेते समय सबने सतको प्रणाम किया। राजा भी पहुँचे, कहा—महात्मन्! कोई चमत्कार नहीं दिखाया। सतने मुसकराकर विनयपूर्वक उत्तर दिया—राजन्! चमत्कार तो हो गया। मैं वही आपका सेवक, जो कुछ वर्ष पूर्व आपको ही नहीं आपके अधिकारियाको भी प्रणाम किया करता था, आज आपसहित सब मुझे दण्डवत् प्रणाम कर रहे हैं। इससे बडा चमत्कार और क्या हो सकता है? यह सुनकर सबको बडा आश्चर्य हुआ। कितनी सुगमतासे

नाम-भगवान् रीझकर अपनी महिमाको चमत्कारी ढगसे भक्तमे प्रकट कर देते हैं।

२-नाम-ध्यान—ध्यानपूर्वक नाम-जप चाहे वाचिक ही हो आत्मशक्तिको जगा देता है। यदि मानसिक हो अथवा श्वासके साथ जपा जाय तथा प्रीतिपूर्वक नामकी ध्वनिपर मन एकाग्र किया जाय तो शब्दब्रह्म (अजपा-जप) एव नादब्रह्म (अनाहत नाद) आप-ही-आप प्रकट हो जाते हैं। नाम-ध्यान मनकी सारी मैल धोने, कुसस्कारोको जलाने तथा आत्मस्वरूपको जान लेनेका एक सहज एव उत्कृष्ट साधन है। अनन्तके मिलापका यह परम उपाय है—

सब साधन का सार है, सब योगो का सार।
सर्व कर्म का सार है, नाम ध्यान सुखकार॥
(भक्तिप्रकाश)

जीवनके दिव्यीकरणका अर्थात् श्रीरामके सद्गुणोको अपने भीतर खींचनेका अति शक्तिशाली साधन है नाम-ध्यान।

'राम नाम धुन ध्यान से सब शुभ जाते जाग।'
(अमृतवाणी)

३-नाम-सकीर्तन—काम-वासना (कामिनी), कञ्चन और कीर्ति मनुष्यको कुपुरुष बना देते हैं, इनकी चिकित्सा होती है चौथे ककारमे अर्थात् कीर्तनसे। सभी प्रकारके कीर्तनोमे नाम-कीर्तन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। नाम-सकीर्तनके विषयमे कहा गया है—यह पापरूपी पर्वतोको चूर्ण-विचूर्ण करनेमे वज्रके समान है। सुख-दु ख, मान-अपमान आदि द्वन्द्वोके उभारको दूर करनेवाली सिद्धौषधि है और अज्ञानरूपी रात्रिके प्रगाढ अन्धकारको नष्ट करनेके लिये सूर्यके उदयके समान है। अतिशय सुन्दर भक्तिभावपूर्ण स्तोत्रो, भजन-गीतोद्वारा तन्मय होकर प्रभुचरणोमे अपने-आपको समर्पित करना सकीर्तनका सदृश्य स्वरूप है। श्रीराम ऐसे स्थानपर जहाँ उनके भक्त एकत्र होकर प्रभुका गुणगान करते हैं स्वय विराजमान रहते हैं। जिस कीर्तनमे रोमाञ्च हो जाय, प्रेमाश्रु बहने लगे तथा आवेश आ जाय, ऐसा कीर्तन सारे तनको मनको स्नायुको और सारे मज्जाजालको प्रभावित कर देता है। आत्माको इससे सहज ही शान्ति प्राप्त हो जाती है। सतोने सत्य ही कहा है कि नामका आराधन अति सुगम है और भगवत्प्रेमप्राप्तिका सर्वोच्च उपाय है। जिस प्रकार ताली बजानेपर पेडपर बैठे पक्षी उड जाते हैं उसी प्रकार सकीर्तनमे ताली बजानेसे पाप-पक्षी उड जाते हैं। श्रीरामगुण-गानकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥
(रा०च०मा० ७।१०३।४-५)

वे आगे कहते हैं—श्रीरामजीकी अपेक्षा जिसे राम-नाम अधिक प्रिय है, उसका इस घोर कलियुगमे कल्याण निश्चित है। किसीके पूछनेपर गोस्वामीजी नामोपासनाकी विधि बताते हैं—

'राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।'
(विनय-पत्रिका ६५)

मनकी तीन दशाएँ होती हैं। कभी शान्त होता है, कभी दु खी और कभी सुखी होता है। श्रीतुलसीदासजी सुझाते हैं—'जब मन शान्त हो तो राम-राम ऐसे जपो कि ध्यानस्थ हो जाओ। यदि मन दु खी हो तो राम-राम रटो—रट मेरी रसना राम राम राम। बीमारी अथवा सकटमे मन नहीं लगता तो भी राम-राम जपते रहे। जब मन आनन्दित हो तो राम-रामसे खेलो।' श्रीतुलसीदासजी समझाते हैं जब हम वाद्ययन्त्रो तथा सगीतके साथ सकीर्तन करते हैं, ताली बजती है हाथ उठते हैं तथा नृत्य होता है, यही नाम-भगवान्से खेलना है, रमना है। अतएव श्रीतुलसीदासजी भी नामावतारकी उपासनाके उक्त वर्णित तीन ही अङ्ग वर्णन करते एव स्वीकारते हैं। स्वामी श्रीसत्यानन्दजी दृढतापूर्वक एव विश्वासपूर्वक आश्वस्त करते हैं—

तारक मन्त्र राम है, जिसका सुफल अपार।
इस मन्त्रके जापसे, निश्चय बने निस्तार॥
(अमृतवाणी)

गुरुनानक भी ऐसी ही वाणी बोलते हैं—

कहु नानक सोइ नर सुखिया राम नाम गुण गावै।
और सकल जग माया मोहिया, निर्भय पद नहिं पावै॥

एक बार किसी सज्जनने स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीसे पूछा—'महाराज! कोई ऐसा साधन बताये जो सरल सक्षिप्त सामग्री-विहीन सबको सुलभ हो और शीघ्र फलित होनेवाला हो।'

महाराजजी बोले—'भगवन्नामोपासना।'

दूसरेने पूछा—'विषय-वासना कैसे दूर हो?'

महाराजजीने कहा—

राम नाम जब सुमिरन लागा। कहे कबीर विषय सब भागा॥

इतिहास साक्षी है—

राम नाम ने ये भी तारे। जो थे अधर्मी अधम हत्यारे।
कपटी-कुटिल-कुकर्मी अनेक। तर गये राम-नाम ले एक॥
तर गये धृति-धारणा हीन। धर्म-कर्म मे जन अति दीन।
राम-राम श्रीराम-जप जाप, हुए अतुल विमल अपाप॥

(अमृतवाणी)

अन्य अवतार तो किसी एक या कुछेकके लिये, गिने-चुने प्रयोजन सिद्ध करनहेतु हुए, परतु नामावतार तो सबके लिये, सर्वप्रयोजन सम्पूर्ण करनेके लिये सर्वत्र सर्वदा प्राप्त ही है। ऐसे श्रीनामभगवान्को बारम्बार प्रणाम है।

~~o~~

भारतीय वाङ्मयमें नित्यावतार

(श्री१०८ स्वामी श्रीनारायणदासजी पी० उदासीन)

ज्यो-ज्यो समय आगे बढता है, त्यो-त्यो पल-प्रहर, दिन-रात, माह-वर्ष, युग-कल्प आदि बदलते रहते हैं।

सब बदलनेके बाद भी ईश्वर वही रहता है। जो कृतयुग, त्रेता और द्वापरमे था, वही आज कलियुगमे भी विद्यमान है। वह तीनो कालमे सत्य है तथा उसकी प्रकृति भी। उस प्रकृतिमे सूर्य हो या चन्द्र, वायु हो या अग्नि, जल हो या पृथ्वी, आकाश हो या पाताल, बादल हो या बरसात, सर्दी हो या गर्मी—सभीका सन्निवेश है। इन सभी तत्त्वोको कोई भी नहीं बदल सकता।

युग बीते ससारमे पाँचो तत्त्व समान।
कभी न बदले प्रकृति और न श्रीभगवान्॥

यद्यपि शास्त्रोमे श्रीपरमात्माके चौबीस अवतार वर्णित हैं, फिर भी उन्हे कई बार भक्तोके लिये अनेक रूप धारण कर इस ससारमे आना पडता है। कहते हैं कि महाराष्ट्रके भक्त नामदेव, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, एकनाथ एव समर्थ गुरु रामदास आदिने श्रीपरमात्माके कई बार दर्शन किये थे। एक लोकोक्तिके अनुसार मात्र नामदेवजीको ही बहत्तर बार दर्शन प्राप्त हुआ था। यदि इस तथ्यको सही मानकर चले तो इस धरापर ऐसे भक्तोकी कमी नहीं है, जिनके लिये वे स्वय किसी-न-किसी रूपमे आकर उनका कार्य सम्पन्न कर उन्हे दर्शन दिया करते हैं। इसलिये कहा गया है—

आत्मरूप परमात्मा रहे सभीमे व्याप्त।
फूल सुवास लाली बसे मेहदीके हर पात॥

किसी भक्तने एक सतसे पूछा—महाराज! क्या परमात्माको इन आँखोसे देख पाना सम्भव है? इसपर वे सत शान्त रहे। उसने फिर वही प्रश्न किया, सत फिर भी चुपचाप सुनते रहे। जब जिज्ञासुने उनसे तीसरी बार पूछा तो सत मुसकराकर कहने लगे—वत्स! क्या तुम देखना चाहते हो या सिर्फ सुननेकी इच्छा है? यह सुनते ही वह कुछ असमजसमे पड गया, लेकिन फिर सोच-समझकर कहने लगा—महाराज! यदि दिखा सको तो सबसे अच्छा, अन्यथा बता दो तो भी ठीक है। श्रीसतजीने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? उसने झटसे उत्तर दिया—'रामू'। सतने उसका हाथ पकडकर पूछा—यह क्या है? तो उसने कहा—हाथ। पाँव पकडकर पूछा—यह क्या है, उसने कहा—पाँव। इस प्रकार वे शरीरके सभी अङ्गोको छूकर पूछते रहे और वह भक्त उन्हे बताता रहा। अन्तत उस जिज्ञासुने पूछा—महाराज! आप यह सब क्या पूछ रहे हैं? तब सतने कहा—प्यारे! मैं तो तुम्हारे शरीरमे रामूको ढूँढ रहा था, लेकिन उसका तो कहींपर भी अता-पता नहीं मिला। यह सुनकर उस जिज्ञासुने कहा—महाराज! आप यह कैसी बात कर रहे हैं? यह सुनकर सतने कहा—मित्र! अभी तो तुमने कहा कि मैं रामू हूँ, तो फिर वह कहाँ गया?

अटपट लीला रामकी समझ न आवै बात।
जैसे जलमे बुदबुदे लहरे सभी समात॥

श्रीसतने कहा—रामू! जिस प्रकार तुम्हारा नाम इस शरीरमे कहीं भी नहीं दिखता है, वैसे ही श्रीपरमात्माको भी इन आँखोसे नहीं देखा जा सकता, यद्यपि वह सबमे समाया हुआ है। भगवान् श्रीकृष्णने गीताके पद्रहवे अध्यायके सातवे श्लोकमे कहा है—

ममैवाशो जीवलोके जीवभूत सनातन ।
मन षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

अर्थात् इस देहमे यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अश है और वही इन प्रकृतिमे स्थित मन और पाँचा इन्द्रियोका आकर्षण करता है।

वत्स! यह श्लोक उन्हाने ऐसे ही थोडे कहा होगा? श्रीपरमात्माका हर वाक्य सार्थक और सत्य हुआ करता है, लेकिन हमारी समझमे नहीं आता तो कोई क्या कर सकता है?

सतने आगे कहा—यदि तुम चाहो कि इन आँखासे देख सकूँ, तो उसके लिये तुम्हे बहुत ही परिश्रम कर अभ्यास करना होगा।

श्रीपरमात्मा तो नित्य प्रतिपल अवतार धारण किया करते हैं, लेकिन उन्हे देखनेके लिये हम ज्ञाननेत्रकी आवश्यकता पडती है। जैसे विज्ञानके अनुसार जलकी हर एक बूँदम कई छोटे-छोटे प्राणी रहते हैं, जिन्हे देखनेके लिये हमे वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शीकी जरूरत पडती है, वैसे ही सृष्टिकर्ताको देखनेके लिये हमे ज्ञाननेत्राकी आवश्यकता होती है। ज्ञानरूप नत्रावाले ज्ञानीजन ही उसे तत्त्वसे जानते हैं—'**पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष** ।' (श्रीमद्भगवद्गीता १५।१०)

सतकी बात सुनकर शिष्यको प्रबोध हो गया और वह भगवान्के शरणागत हो गया।

उक्त आख्यानसे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं, उनके दर्शनके लिये उनकी कृपाका अवलम्बन लेनेकी आवश्यकता है।

आधुनिक युगम प्रत्येक प्राणी श्रीपरमात्मासे विमुख होता जा रहा है और उनकी मायाके सम्मुख होकर उसके पीछे दौडा-दौडा फिर रहा है। यद्यपि हर एक मनुष्य यह समझता है कि अन्तमे कुछ भी काम नहीं आता, लेकिन न जाने फिर भी वह ऐसा क्या करता है। इसलिये हमेशा यह स्मरण रखना चाहिये कि न तो साथम कुछ आया है और न कुछ जायगा ही—

याद रख मन म सदा क्या ले आया साथ।
जेब न होती कफन को कछू न आवै हाथ॥

इस सृष्टिमे परमात्माने प्रत्येक मानवको अपना रूप देकर उसे मानो अपनी सतान बना दिया है, क्याकि प्रकृतिमे चौरासी लाख यानियाम जो प्राणी जैसी आकृतिका हुआ करता है, उसके बच्चे भी वैसा ही रूप धारण किया करते हैं, यथा—कौऐसे कौआ तो कोयलसे कोयल, हससे हस तो बकसे बक, बैलसे बैल तो बकरीसे बकरी इत्यादि। इस बातसे यह साफ हो जाता है कि हम सभी ईश्वरके रूपवाले उसीकी सतान हैं और उन्ह ही अपना पिता-माता आदि मानकर ससारम रह तो फिर दु खी होनेका कोई हेतु नहीं है। परमात्मारूपी पिता तो सबको सुख ही पहुँचाता है—

ईश्वरकी सतान तू फिर क्यो दुखी होय।
सुखदाता परमात्मा सुखी करे सब कोय॥

यदि इस तथ्यको हम सत्य मान ल तो विचार करनेकी बात है कि इस मानवजगत्म प्रतिदिन तो क्या प्रतिपल कोई-न-कोई मनुष्य अवश्य ही जन्म लेकर इस धरापर आता है अर्थात् या कह प्रतिपल मानो स्वय जीवात्मारूप परमात्मा ही अवतरित हुआ करते हैं। अत सबकी सेवा-पूजाको नारायणकी सेवा-पूजा ही मानना चाहिये।

इस ससारमे जिस प्रकार परमात्माकी पूजा-अर्चना होती है या भोग-प्रसादका आयोजन हुआ करता है, वैसे ही भारतीय सस्कृतिमे महापुरुषो, आचार्यों अथवा सताकी भी पूजा-अर्चना हुआ करती है अर्थात् श्रीपरमात्माका विभूति-पद उनके भक्तोको भी प्राप्त हुआ करता है। इसीलिये भगवान्ने स्वय अपने मुखसे भक्तोकी महिमा बताते हुए कहा है—

मेरी बांधी भक्त छुड़ावै भक्तकी बाधी छुटे न मोहिं।
अपने मनकी बात मैं कहता सुन अर्जुन समझाऊं तोहिं॥

प्रकृतिम श्रीपरमात्माके अवतरणका यह नियम आदिकालसे अटल चलता आ रहा है और आगे भी चलता रहेगा। यही कारण है कि भारतीय वाङ्मयम श्रीपरमात्माको नित्यावतार माना गया है।

नियम अटल और अमर है प्राकृतिक सब जान।
कभी बदलते है नहीं जानै सभी जहाँन॥

~~~ o ~~~
~~~

भगवान्‌का यज्ञावतार

(आचार्य डॉ० श्रीनरेन्द्रनाथजी ठाकुर एम्०ए० (गोल्ड मडलिस्ट), पी-एच्०डी० (सस्कृत))

नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चैतन्यस्वरूप, रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादिकासे परे, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म सच्चिदानन्दघन परमात्मा ब्रह्माण्डमण्डलस्थ प्राणियाके मध्य पापाधिक्यवशात् उसकी निवृत्तिके लिये लीलावतार धारण कर अपनी त्रिगुणात्मिका शक्तिके स्फुरणमात्रसे निखिल ब्रह्माण्डका कल्याण करते रहते हैं। भगवान्‌का अवतरण उनकी लीला एव सत्ताको अभिद्योतित करता है। इस बातकी सम्पुष्टि करते हुए ब्रह्मसूत्रम कहा गया है—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' (ब्रह्मसूत्र २।१।३३)

अर्थात् ब्रह्मका कर्मम प्रवृत्त होना तो लोकम आप्तकाम पुरुषाकी भाँति केवल लीलामात्र है। जिस प्रकार आप्तकाम और वीतराग ज्ञानीजन बिना किसी प्रयोजन एव स्वार्थसिद्धिके निष्काम कर्म करते रहते हैं, उनकी कोई प्रयोजनसिद्धि होती नहीं, वैसे ही ब्रह्म बिना किसी प्रयोजनके ससारकी रचना लीलावश करते हैं। लोगाको मोक्ष प्रदान करना ही परमात्माका परम प्रयोजन होता है, जैसा कि श्रीमद्भागवत (१०।२९।१४)-मे कहा गया है—

'नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।'

भगवती श्रुति भी स्पष्ट करती हैं कि वह अजन्मा होकर भी जन्म ग्रहण करनेवाला है—**'अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।'** (यजुर्वेद ३१।१९) अर्थात् परमात्मा अजन्मा होकर भी अनेक रूपोम अवतरित होते हैं।

नाम, रूप, लीला एव धामका सकीर्तन ही प्राय ग्रन्थाका सार-सिद्धान्त है। उसी तत्त्वको किसीने सगुण एव साकारभावसे भजा तो किसीने निर्गुण एव निराकार-भावसे। पूर्वमीमासाने कर्मसिद्धान्तद्वारा उसे प्राप्त करना चाहा, न्यायने प्रमाण-प्रमेयादि षोडश पदार्थोंद्वारा उस सत्ताको परिपुष्ट किया, वैशेषिकने द्रव्य-गुण-कर्मादि सात पदार्थोंके द्वारा उस परमात्मतत्त्वको प्राप्त करानेका मार्ग प्रशस्त किया तो साख्यने प्रकृति एव पुरुषके विवेक-ज्ञानद्वारा ही उसे प्राप्त कराना चाहा, योगने यम-नियमासन-प्राणायामादि अष्टाङ्गयोग-मार्गके द्वारा तथा वेदान्त-दर्शनने उपादान तत्त्वाके अवगमद्वारा उस सच्चिदानन्दत्वके साक्षात्कार करनेकी बात कही।

नाम, रूप, लीला एव धाम—ये चारा मनुष्याके कल्याणार्थ ही होते हैं। उस अचिन्त्य, अनन्त, अग्राह्य, अलक्षण, पञ्चतन्मात्राआसे रहित ब्रह्मतत्त्वके सगुण एव निर्गुण, साकार एव निराकार तत्त्वको परस्पर पृथक् नहीं माना जा सकता, क्याकि प्रत्येक वस्तु अपनी मूल अवस्थाम निराकार ही हुआ करती है एव कालान्तरमे वह साकाररूपाम भी प्रतिभासित होती है। जैसे—घटमे स्थित जलम प्रतिविम्बित आकाश घटाकाश है और वह महाकाशसे पृथक् नहीं माना जा सकता, क्याकि घटके ध्वस होनेके बाद अशरूप घटाकाश अपने अशीरूप महाकाशमे विलीन हो जाता है, उसी प्रकार भगवान्‌का साकार-विग्रह निराकारका एक अशमात्र है।

जिस प्रकार मनुष्य अपने जन्मके पूर्व कभी-न-कभी निराकार अवस्थामे रहता है एव मध्यम वह साकार हुआ करता है एव समाप्तिकालम पुन निराकार हो जाता है वैसे ही भगवान् भी साकार-अवस्थाम मनुष्योको अपनी लीलाके माध्यमसे कलावतार, अशावतार, पूर्णावताररूप लीलाका विस्तार करके अपनी लीलाका सवरण कर पुन निराकाररूपमे लीन हो जाते है।

अचिन्त्य दिव्य लीला शक्तिक योगसे निराकार भगवान् साकाररूपसे ठीक उसी प्रकार अवतरित होते हैं जिस प्रकार शैत्यके योगसे निर्मल जल बर्फरूपमे व्यक्त होता है अथवा सघर्षविशेषसे व्यक्त अग्नि या विद्युत् दाहक एव प्रकाशक रूपमे व्यक्त होती है। निराकार ब्रह्मकी अपक्षा भगवान् या भगवतीकी माधुर्यमयी मूर्तिमे वैसे ही चमत्कार भासित होता है, जैसे इक्षुदण्ड और चन्दनवृक्ष मधुर और सुगन्धित होते हैं। यदि कदाचित् इक्षुमे फल एव चन्दन वृक्षमे सुगन्धित पुष्प प्रकट हो तो उसके माधुर्य और सौगन्ध्यकी जितनी बडाई की जाय, उतनी ही कम है। इसी तरह अनन्त ब्रह्माण्डान्तर्गत आनन्द-विन्दुका उद्गम-स्थान अचिन्त्य अनन्त परमानन्दघन ब्रह्म अद्भुत रसमय है। फिर उसके फलस्वरूप माधुर्यसार मङ्गलस्वरूपमे कितना चमत्कार हो सकता है, यह तथ्य तो सहृदय ही जान सकता है। इक्षुरसका सार शर्करा सिता आदिका आकार जैसे कन्द होता है, वैसे ही औपनिषदिक परब्रह्म रससारसर्वस्व भगवान्‌का मधुर मनोहर सगुणस्वरूप है।

सगुण अवतारोमे भी भगवान्‌ने कभी रुद्रके रूपम

एकादश रुद्रोको प्रकट किया तो कभी सूर्यके रूपम द्वादश आदित्याका अवतरण हुआ। कभी राम, कृष्ण, मत्स्य, कूर्म, वराह, बुद्ध, नृसिह एव कल्किरूपसे भगवान्का प्राकट्य हुआ। यज्ञ भी भगवान्के श्रीविग्रहसे ही उद्भूत हुआ हे, अत श्रीभगवान् यज्ञपुरुष भी कहलाते हैं।

'यज्ञ' शब्द '**यज**' धातुसे '**यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्**' (अष्टाध्यायी ३।३।९०)—इस पाणिनीय सूत्रसे 'नङ्' प्रत्यय करनेपर बनता है '**नडन्त** ' इस पाणिनीय लिङ्गानुशासनसे 'यज्ञ' शब्द पुल्लिङ्ग भी होता है। ध्यातव्य हो कि '**नङ्**' प्रत्यय भाव अर्थम होता हे, किंतु '**कृत्यल्युटो बहुलम्**' (अष्टाध्यायी ३।३।११३) इस सूत्रपर '**बहुलग्रहण कृन्मात्रस्यार्थव्यभिचारार्थम्**' इस सिद्धान्तसे कृदन्तके सभी प्रत्ययाका अर्थ आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा सकता है। यही भाष्यकारादिसम्मत मार्ग है।

'**धातव अनेकार्था** '—इस वैयाकरणसिद्धान्तके अनुसार कतिपय आचार्योंने '**यज देवपूजासङ्गति-करणदानेषु**' इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार '**यज**' धातुका देवपूजा, सङ्गतिकरण ओर दान—इन तीन अर्थोंमे प्रयोग किया है। यथा—

(१) '**यजन इन्द्रादिदेवाना पूजन सत्कारभावन यज्ञ ।**'

(२) '**इज्यन्ते सङ्गतीक्रियन्ते विश्वकल्याणाय परिभ्रमण कृत्वा महान्तो विद्वांस वैदिकशिरोमणय व्याख्यानरत्नाकरा निमन्त्र्यन्ते अस्मिन्निति यज्ञ ।**'

(३) '**यजन यथाशक्ति देशकालपात्रादिविचारपुरस्सर-द्रव्यादित्याग ।**'

यज्ञकी उपर्युक्त तीन व्याख्याएँ क्रमश देवपूजा, सङ्गतिकरण एव दानसे सम्बद्ध हैं।

आचार्य यास्ककृत 'निरुक्त' (३।४।१९)-म इसका निर्वचन इस प्रकार बतलाया गया है—

'**यज्ञ कस्मात्? प्रख्यात यजतिकर्मेति नैरुक्ता ॥ याच्यो भवतीति वा। यजुर्भिरुन्नो भवतीति वा॥ यहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यव ॥ यजूष्येन नयन्तीति वा॥**'

अर्थात् 'यज्ञ' क्या कहलाता है? 'यज' धातुका अर्थ दवपूजा आदि लाक और वेदम प्रसिद्ध ही है एसा निरुक्तक विद्वान् कहते हैं अथवा जिस कर्मम लाग यजमानसे अन्नादिकका याचना करत हैं या यजमान ही दवताआस वर्षा आदिकी प्राथना करता है, दवता हा यजमानसे हविकी याचना करते हैं, उस कर्मको 'यज्ञ' कहते हैं अथवा जिसमे कृष्णयजुर्वेदके मन्त्राकी प्रधानता हा, उसे यज्ञ कहते हैं।

जिस कर्मविशेषम देवता, हवनीय द्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विज् और दक्षिणा—इन पाँचोका सयोग हो, उसे यज्ञ कहते हैं। पूर्वमीमासामे ता यज्ञादिको ही धर्मकी श्रेणीमे रखा गया हे—'**यागादिरेव धर्म** ' (अर्थसग्रह)।

यज्ञ एव महायज्ञके रूपम यज्ञके दो भेदाको बताया गया है एव पुन यह दा भागाम बाँटा गया है—श्रौत एव स्मार्त। श्रुतिप्रतिपादित यज्ञाको श्रौत यज्ञ ओर स्मृतिप्रतिपादित यज्ञाको स्मार्त यज्ञ कहते हैं। श्रौत यज्ञम कवल श्रुतिप्रतिपादित मन्त्राका प्रयोग होता है और स्मार्त यज्ञम वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक मन्त्राका प्रयोग होता है।

एतरयब्राह्मणादि ग्रन्थाने यज्ञोके पाँच प्रकार माने हैं—**स एष यज्ञ पञ्चविध —अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशु , सोम इति।**

अर्थात् अग्निहोत्र दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम—ये पाँच प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं। य वैदिक यज्ञ हैं, किंतु 'गौतमधर्मसूत्रादि' ग्रन्थाम यज्ञके निम्न भेद बताये गये हैं—

'**औपासनहोम , वैश्वदवम्, पार्वणम्, अष्टका, मासिकश्राद्धम्, श्रवणा, शूलगव इति सप्त पाकयज्ञसस्था । अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, आग्रयणम्, चातुर्मास्यानि, निरूढपशुबन्ध , सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादयो दर्विहोमा इति सप्त हविर्यज्ञसस्था । अग्निष्टोम , अत्यग्निष्टोम , उक्थ्य , षोडशी, वाजपेय , अतिरात्र , आप्तोर्याम इति सप्त सोमसस्था ।**'

(गौतमधर्मसूत्र ८।१८)

गौतमधर्मसूत्रकारने पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ और सामयज्ञ-भेदसे तीन प्रकारके यज्ञाका भेद दिखाकर प्रत्येकके सात-सात भेद दिखा करके इक्कीस प्रकारके यज्ञाका उल्लेख किया है। इसम सात स्मार्त पाक यज्ञ-सस्थाआका उल्लेख गृह्यसूत्रा और धर्मसूत्राम मिलता है। अग्निहोत्रस लकर साम-सस्थान्त चौदह यज्ञाका उल्लख कात्यायनादि श्रौतसूत्रमें मिलता है। ये सभी यज्ञ सात्त्विक, राजसिक एव तामसिक भेदस तान प्रकारके हात हैं—

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमवेति मन समाधाय स सात्त्विक ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७।११)

अर्थात् जो यज्ञ निष्कामभावसे किया जाता है, वह सात्त्विक यज्ञ कहलाता है।

जो यज्ञ सकाम अर्थात् किसी फलविशेषकी इच्छासे किया जाता है, उस राजसिक यज्ञ कहते हे—

अभिसन्धाय तु फल दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यत भरतश्रेष्ठ त यज्ञ विद्धि राजसम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७। १२)

जो यज्ञ शास्त्रविरुद्ध किया जाता है उस तामसिक यज्ञकी श्रेणामे रखते हैं—

विधिहीनमसृष्टान्न मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहित यज्ञ तामस परिचक्षते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७। १३)

यज्ञाका प्रादुर्भाव एव प्रमाण वदसे लेकर वेदान्ततक सर्वत्र पाया जाता है। भारतीय सनातन सस्कृतिके आद्य ग्रन्थ ऋग्वेदके प्रथम मण्डलम यज्ञकी चचा प्राप्त होती है।

'अग्निमीळे पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतार रत्नधातमम्॥' (ऋक्० १। १। १)

श्रीमद्भगवद्गीताम समस्त प्राणियाको अन्नसे ही उत्पन्न बताया गया हे और अन्नकी उत्पत्ति वर्षासे होती है तथा वह यज्ञकर्मसे होता है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भव ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्मसमुद्भव ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३। १४)

ब्रह्मपुराण (१। ४९)-म महर्षि वेदव्यासने तो यहाँतक कह दिया है कि यज्ञकी सिद्धिके लिय ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका निर्माण हुआ है—**'ऋचो यजूंसि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये।'**

कालिकापुराण (३१। ७-८)-म कहा गया है—

यज्ञेषु देवास्तुष्यन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यज्ञेन ध्रियते पृथ्वी यज्ञस्तारयति प्रजा ॥
अन्नेन भूता जीवन्ति पर्जन्यादन्नसम्भव ।
पर्जन्यो जायते यज्ञात्सर्व यज्ञमय तत ॥

ऋग्वेद एव यजुर्वेदम यज्ञको भुवनाकी नाभिरूपम चित्रित किया गया है—**'अय यज्ञो भुवनस्य नाभि ।'** (ऋग्वद १। १६४। ३५, शु०यजु० २३। ६२) शतपथ-ब्राह्मणादि ग्रन्थाम यज्ञको ब्रह्मस्वरूप वतलाया गया है—**'ब्रह्म हि यज्ञ '** (शतपथब्राह्मण)।

'यज्ञो वै विष्णु ' इस मन्त्रका उद्घोष तो तैत्तिरीयब्राह्मण, एतरेयब्राह्मण, शनपथब्राह्मण, शाङ्खायनब्राह्मण, तैत्तिरीय-सहिता आदि ग्रन्थामे दिया हुआ है।

भगवान् वराहके श्रीविग्रहसे अनेक यज्ञाका प्रादुर्भाव हुआ है। इसका विशद वर्णन कालिकापुराण (३१। १३—१७)-म पाया जाता है। वहाँ महर्षि मार्कण्डेयजी कहते हैं—

भ्रूनासासन्धितो जातो ज्योतिष्टोमो महाध्वर ।
हनुश्रवणसन्ध्योस्तु वह्निष्टोमो व्यजायत॥
चक्षुर्भ्रुवो सन्धिना तु व्रात्यष्टोमो व्यजायत।
जात पोनर्भवष्टोमस्तस्य पात्रौष्ठसन्धित ॥
वृद्धष्टोमवृहत्स्टोमौ जिह्वामूलादजायताम्।
अतिरात्र सवैराजमधोजिह्वान्तरादभूत्॥
अध्यापन ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
हामो दैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥
स्नान तर्पणपर्यन्त नित्ययज्ञाश्च सर्वश ।
कण्ठसन्धे समुत्पन्ना जिह्वातो विधयस्तथा॥

अर्थात् भगवान् वराहके दाना भ्रू और नासिकादशके सन्धिभागसे ज्यातिष्टोम यज्ञ, कपोलदेशके उच्च स्थानसे लेकर कर्णमूलक मध्य स्थित सन्धिभागसे वह्निष्टोम (अग्निष्टोम) यज्ञ, चक्षु और दाना भ्रूके सन्धिभागसे व्रात्यष्टोम यज्ञ, मुखके अग्रभागसे और ओष्ठके सन्धिभागसे पौनर्भवष्टोम यज्ञ, जिह्वामूलीय सन्धिभागसे वृद्धष्टोम और वृहत्स्टोम यज्ञ, जिह्वा-देशके अधोदेशसे अतिरात्र तथा वेराज यज्ञ प्रकट हुआ। ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञ, दवयज्ञ, भूतयज्ञ, अतिथियज्ञ, स्नान-तर्पणादि नित्ययज्ञ तथा उनकी विधियाकी उत्पत्ति कण्ठसन्धि तथा जिह्वासे हुई।

इस प्रकार भगवान् वराहके शरीरसे अन्य यज्ञाकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकरणक अन्तम वताया गया है कि भगवान्‌के विग्रहसे एक हजार आठ यज्ञाकी उत्पत्ति हुई—

एवमष्टाधिक जात सहस्र द्विजसत्तमा ।

(कालिकापुराण ३१। २७)

कालिकापुराणके प्रमाणाद्वारा **'यज्ञा वै विष्णु '** यह श्रुतिवाक्य प्रमाणित है श्रीमद्भागवत-महापुराणक तासर स्कन्धक तेरहव अध्यायम भी यह विषय निरूपित हे।

भगवान्‌का विषावतार

(डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या)

भगवान् जन्म क्या लेते हैं? इसके उत्तरमें स्वयं जनार्दन सहज ही उत्तर देते हैं—'अनुग्रहाय भूतानाम्' कितना औदार्य है प्रभुके इस कथनमें—प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये। यही ईश्वरत्व है।

वस्तुतः यही अवतारमीमांसा है। जीव ईश्वरका अपना अंश है और यही अंश जब अपने मूलमें लौटना चाहता है तो ईश्वर इसके स्वागतमें, इससे मिलनेको उद्यत रहते हैं। यह तत्परता ही प्रेम है, जो भगवान् और भक्तमें समानरूपसे व्याप्त है। प्रेमके इसी स्वभाववश भगवान् भक्तके आर्तिहरणका बहाना ढूँढते रहते हैं और जैसे ही हृदयकी पुकार सुनायी दी, तुरंत वे प्रकट हो जाते हैं। काल, पात्र-कुपात्र, स्त्री पुरुष, बालक, जड, चेतन—इसका वे कुछ भी विचार नहीं करते। भगवान्‌का यह स्वभाव ही प्रेमसूत्र है और यह सूत्र ही अवतारवादका मूल हेतु है।

भगवान् लीलाधर हैं। प्रेमके साथ-साथ वैचित्र्य भी उनका स्वभाव है। साथ ही वे सर्वशक्तिमान् हैं। अतः जड-चेतन, किसी भी रूपमें आनेसे उन्हें कौन रोक सकता है? बस, संकल्पमात्रकी आवश्यकता है। वे किसी भी रूपमें कहीं भी अवतरित हो सकते हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष, नदी, पर्वत और यहाँतक कि जडरूपमें भी उन्हें अवतरित होना पडता है। अपनी प्रिय सखी कृष्णा (द्रौपदी)-के लिये उन्होंने वस्त्रके रूपमें जन्म लिया तो कभी अपनी भावपरिणीता प्यारी मीराके लिये जहरके रूपमें—विषके रूपमें। विषके रूपमें अवतरण ही विषावतार है। आइये, इस अवतरण-लीलाका रसास्वादन करें—

मरु-मन्दाकिनी मीरा भगवान् श्रीकृष्णकी दीवानगीमें आकण्ठ डूबी हुई थीं। उनके आचरण और व्यवहारसे भक्ति जैसे रिस-रिस जाती थी, टपक पडती थी। उनका भावजगत् इतना समृद्ध था कि उनके एक-एक पदमें कृष्ण साकार हो उठते थे। जब वे तल्लीन होकर गाती थीं तो लगता था, हर एक शब्द गिरिधर है और हर भाव मीरा। शब्द, भाव और ध्वनि (करताल) सब मिलकर भक्त और भगवान्‌को एक कर देते थे। परमानन्दका यह ऐक्य ही प्रेमोत्सव है, जिसमें भक्त और भगवान् अनादि कालसे एक होनेकी पुष्टि करते हैं।

मीरा इसी पुष्टिका प्रसन्न पुष्प है, जिसकी सुरभिके लिये भक्तवत्सल जनार्दन श्रीकृष्णको विष—जहरके रूपमें अवतरित होना पड़ा।

आर्यावर्त भारतकी शौर्यधरा राजस्थान! सूर्यनगरी जोधपुरको बसानेवाले सुप्रसिद्ध राठोड-वीर राव जोधाके पुत्र राव दूदाजी हुए, जो मेडताके स्वामी थे। भक्तके रूपमें उनकी ख्याति भी खूब थी। उन्हींकी पौत्री मेडतानरेश राव रतनसिंहकी पुत्री राजकुमारी मीरा थी। बाल्यावस्थासे ही दादा दूदाजी एवं भाई जयमल (ताऊजी विरमदेवके पुत्र)-के संगने बालिका मीराको कृष्णभक्तिमें रचा-पचा दिया।

मीराकी आस्था कृष्णमें इतनी बढ़ गयी कि आराधना करते-करते अपने आराध्यके प्रति सख्यभाव और तदनन्तर कान्तभाव कब आ गया, पता ही नहीं चला—वह बाला कृष्णकी भाव-परिणीता बन गयी, कृष्णको अपना पति मान बैठी और इसी भावसे वह बावरी आगे बढ़ती ही गयी तथा इस प्रसिद्ध पदमें उसने अपनी भावनाको उजागर कर दिया—

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई॥
जाके सिर मोर मुगट मेरो पति सोई।'

मीरा श्रीकृष्णके इस रंगमें ऐसी रँग गयी कि बाल्यावस्था और कैशोर्यका कुछ भी ध्यान नहीं रहा—न खेलनेकी चाह, न बन्धनकी चाह। बस भक्तिपन्थ, पद-पखावज और मिलनकी आस—*'गोबिंद कबहुँ मिलै पिया मेरा॥'*

मीराका विवाह हो गया। राजकुमारी मीरा महाराणा साँगाके पुत्र युवराज भोजराजकी रानी बन चित्तौड-राजमहलकी चौखट चढ़ीं। सुसंयोगसे पति भोजराज भी पत्नीके भक्तिमार्गमें बाधक नहीं बने, किंतु दुर्भाग्यवश भोजका देहान्त जल्दी ही हो गया। रानी मीरा विधवा हो गयीं, लेकिन भक्त मीरा और दृढ़—

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे नाथ'
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकडूँगा जोरोंके साथ॥

क्या भावना है भक्तकी! क्या दृढ़ता है!! भक्त दुःखको भी अपने आराध्यका ही एक रूप मानता है और

इस तरह मीरा अपने निर्धारित पथपर आगे-ही-आगे बढती गयीं। भक्तके रूपमे उनकी शीघ्र ही प्रसिद्धि हो गयी और अनेक साधु-सत उनके पास सत-समागमहेतु आने लगे।

दुर्भाग्यके इसी दौरमे पिता रतनसिह और श्वशुर महाराणा सागाका प्राणोत्सर्ग हुआ। मीराका पृष्ठबल शून्य हो गया। राजवशकी एक रानीके साथ साधु-सतोका मिलना और नृत्य-कीर्तन राजपरिवारको अच्छा नहीं लगा। मीराको इससे विरत करनेके अनेक प्रयत्न किये गये, किंतु मीरा तो जैसे दु खमे भी अपने गिरिधरकी छवि निहारती थी और दु खोका स्वागत करती थी। यह भक्तिकी पराकाष्ठा है।

भक्तका यह स्वभाव है कि वह ईश्वरसे दु खकी नित्य कामना करता है—

सुख के माथे शिल पड़ी जो नाम हरिका जाय।
बलिहारी वो दु खकी जो पल पल नाम जपाय॥

माता कुन्तीने भी तो भगवान्‌से यही माँगा था—

विपद सन्तु न शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शन यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भा० १। ८। २५)

अर्थात् हे जगद्गुरो! हमारे जीवनमे हर पगपर विपत्तियाँ आती रहे, क्योकि विपत्तिमे ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन होते रहते हैं और आपके दर्शनके बाद जन्म-मृत्युके चक्करमे आना नहीं पडता। तभी तो मीराजी कहती हैं—

भज मन चरणकँवल अबिनासी।
अरज करूँ अबला कर जोड़, स्याम तुम्हारी दासी।
मीराके प्रभु गिरधर नागर काटो जमकी फाँसी॥

और सचमुच मीराके प्रभु गिरिधर हर बार उनके दु ख दूर करते गये।

राणाजीने एक पिटारीमे साँप रखवाकर ले जानेवालेको आदेश दिया कि इसे मीराके हाथमे ही देना। ऐसा ही हुआ। लेकिन नहा-धोकर मीराने टोकरी खोली तो निहाल हो गयी—कण्डियेमे शालग्राम विराज रहे थे। वाह प्रभु! धन्य हैं आप और आपकी माया भक्तके लिये क्या-क्या नहीं करते आप! विषरूप उस विषधरको ही आपने अपनेमे मिला लिया और अपने शालग्रामरूपका भक्तके दर्शनके लिये पिटारीमे बद कर दिया। वाह रे मुक्तिदाता! तू खुद बन्धनमें बँध गया। जय हो प्रभु! तेरी जय हो। जहरका क्या सानिध्य किया है। ये विशेषावतार ही भगवान्‌के कलावतार, अशावतार और आवेशावतारको पुष्ट करते हैं, क्योकि इन्हींमे भक्तका कल्याण निहित है—

'नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।'

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

अर्थात् जीवोका कल्याण करनेके लिये ही भगवान् अवतार लेते हैं।

और आज तो हद हो गयी, जब राणाजीने अपनी भाभी और महारानी मीराके लिये जहरका प्याला ही भेज दिया।

मीरा अपने पूजाकक्षमे नित्यानुसार गिरिधरकी आराधनामे लीन हैं। इधर, राणाने हलाहल जहर मँगवाया और उसे एक प्यालेमे भरकर पुजारीजीके हाथ षड्यन्त्रपूर्वक मीराजीके लिये भिजवाया—यह कहकर कि 'यह भगवान्‌का चरणामृत है।'

पुजारीजी प्रवेशाज्ञा चाहते हैं। भक्त निश्छल होते हैं अत मीराने भी अनुमति दे दी। पुजारीजी आदरसहित वह कटोरा अर्पित करके कहते हैं—चरणामृत है, राणाजीने भिजवाया है। मीरा प्रसन्न हो गयीं। वाह प्रभु! आज कृतार्थ हो गयी। चरणामृत और वह भी राणाजीने। विस्मयमिश्रित सतोष व्यक्त किया। बडे आदरके साथ रानी स्वीकार करती हैं और शीश नवाकर कृतकृत्य होती है। गिरिधरका चरणामृत जानकर उनके रोम-रोममे पुलक जग जाता है। बडी बावली हो जाती हैं, भक्त जो ठहरीं।

उनकी ननद मालती और एक दासी यह षड्यन्त्र जानती हैं, वे दौडी हुई पहुँचीं अपनी भक्त भावजके पास यथार्थ-बोध कराने। वे इसे नहीं पीनेका अनुनय करती हैं। लेकिन मीरा अचल भावसे कहती हैं—मेरे गिरिधरका चरणामृत है, अवश्य ग्रहण करूँगी। उसके नामसे आया है न! यह परम प्रसाद है। वाह रे भक्ति! आस्था और विश्वासका अभेद्य दुर्ग। भाभी! अनर्थ हो जायगा। यह चरणामृत नहीं विष—जहर है। यह सुननेपर मीरा कहती हैं—देखूँ तो और प्यालेमे झाँकती हैं तो प्यालेमे अपने गिरधरकी छवि निहार निहाल हो जाती हैं। आनन्दका पारावार नहीं रहा। मीरा मगन हो जाती हैं और हरिगुन गुनगुनाने लगती हैं—*'मीरा हो गयी मगन।'*

क्या मस्ती है यह हस्ती मिटाने मे।
मीरा देखती है गिरधर जहर के प्याले मे॥

मीराने प्याला मस्तकसे लगाया, कान्हाका रूप निहारा, आँखोंको सुख मिला और गटक गयी वह बावरी

उस हलाहलको कृष्णके नामपर। सब स्तब्ध! अहा! क्या स्वाद था! यह तो मीरा ही जाने। आज भक्तके कारण भगवान् विषका रूप लेनेमें भी नहीं हिचकिचाये और विष विष न रहकर अमृत हो गया। होता भी क्या नहीं, कृष्ण जो उसमें घुल गया। आज दीनबन्धु दीनानाथने विषावतार जो धारण किया था!

वाह कन्हैया, तेरा पार कहाँ? तू क्या नहीं करता! धन्य हो गयी मीरा और धन्य हो गये हम भगवान्‌के इस विषावतारके रूपसे, जहाँ जड और चेतनमें भी कोई फर्क नहीं। तभी तो शास्त्रोंने आगाह किया है—'सुहृदं सर्वभूतानाम्।'

भगवान् और विषका यह पहला सम्बन्ध नहीं है। कृष्णको तो जन्म लेते ही इसका स्वाद लग गया था। कंसके कहनेपर पूतना अपने स्तनपर कालकूट (हलाहल) जहर लेपकर कृष्णको स्तनपान कराने आयी थी। बड़ी चतुराईसे वह छलरूपिणी बालकृष्णतक पहुँची और उन्हें अपना दूध पिलाने लगी। लेकिन कृष्ण तो कृष्ण ठहरे, चाहे शिशु ही क्या न हों। जहरके साथ पूतनाका जीवनरस तक पी गये और यह उनका ईश्वरत्व ही था कि पूतनाको भी सद्‌गति प्रदान की—

अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥
(श्रीमद्भा० ३।२।२३)

अर्थात् पापिनी पूतनाने अपने स्तनोंमें हलाहल विष लगाकर श्रीकृष्णको मार डालनेकी नियतसे उन्हें दूध पिलाया था, उसको भी भगवान्‌ने वह परम गति दी जो धायको मिलनी चाहिये। उन भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कौन दयालु है, जिसकी शरण ग्रहण करें।

कालिय-मर्दन, अघासुर-उद्धार आदि प्रसंग भी भगवान्‌के विषवरणके ही विविध कथानक हैं, तभी तो गोपियाँ गोपी-गीतमें श्रीकृष्णके उपकारोंका स्मरण करती हुई कहती हैं—

'विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।'
(श्रीमद्भा० १०।३१।३)

अर्थात् यमुनाजीमें विषमय जलसे होनेवाली मृत्यु, अजगरके रूपमें खा जानेवाले अघासुर, इन्द्रकी वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल आदिसे आपने हमारा रक्षण किया है।

माता कुन्तीजी भगवान्‌के उपकारका स्मरण करती हुई स्तुति करती हैं—आपने मेरे भीमको दुर्योधनद्वारा जहरके लड्डू खिलानेपर बचाया था।

इस तरह भगवान् श्रीकृष्णके और विष—जहरके विविध वृत्तान्त हमारे शास्त्रोंमें सुवर्णित हैं, परंतु विषमें श्रीकृष्णकी छवि अङ्कित होनेकी एकमात्र घटना मीराके विषपानकी ही है—

जहर भी काला श्याम भी काला,
श्याम रंग में रँग गई बाला।
मीरा ने जो उठाया प्याला,
छाये गिरधर गरल अवतारा॥

तदनन्तर मीराने मेवाड छोड वृन्दावन पदार्पण किया। वहाँसे वे द्वारका गयीं। वहाँ भगवान् द्वारकाधीशमें सदेह समा गयीं और उन्होंने इन पंक्तियोंको सार्थक कर दिया—

करावलम्बं मम देहि विष्णो
गोविन्द दामोदर माधवेति॥

हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! हे विष्णो! आप मुझे अपने करकमलोंका आश्रय प्रदान कीजिये।

भगवान्‌का कालस्वरूप अवतार

(श्रीशिवनारायणजी रावत, बी०ए०, एल्-एल्०बी०)

भगवान् समस्त प्राणियाके नियामक हैं। उनकी लीला एव उनके सङ्कल्पाका रहस्य जीव किसी साधनसे नहीं जान सकता। भगवत्कृपासे ही जीव उनके सम्बन्धम यत्किञ्चित् जान पाता है। भगवान् अप्रमेय हैं। कालाके भी महाकाल हैं। उनकी प्रत्येक लीला अलोकिक होती है। भगवान् मन, वाणीके विषय नहीं हैं, फिर भी यथाशक्ति कविया, भक्तो एव प्रेमियाने उनका गुणानुवाद किया है। वदोन 'नेति-नेति' कहकर भगवान्‌के गुणा एव लीलाओका वर्णन किया है।

भगवान् ब्रह्मारूपसे ससारकी सृष्टि करते हैं, विष्णुरूपसे पालन करते हैं एव रुद्ररूपसे सहार करते हैं। यहाँपर उनक इसी सहारकारी रूपका—कालस्वरूपका किञ्चित् दिग्दर्शन कराया जाता है। भगवान्‌म सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश श्री, ज्ञान और वैराग्य आदि अनेकानेक गुण हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रिय ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा॥

(विष्णुपुराण ६।५।७४)

सभी गुणोके निवासस्थान भगवान् ही हैं। भगवान्‌ने अपनी लीलाहेतु ही सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की है। उनके लिये सृष्टि, पालन एव सहार—तीनो ही प्रकारकी लीलाएँ समान हैं। जिस प्रकार बालक मिट्टीका खिलौना बनाते हैं, उससे खेलते हैं और अन्तमे उसे नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार भगवान्‌की ये तीना लीलाएँ हैं। मङ्गलमय होनेसे उनकी हर लीला मङ्गलमयी है। उनकी सहारकारी लीलाम भी गुप्तरूपसे मङ्गल भरा हुआ है।

श्रीमद्भगवद्गीताम भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय सखा अर्जुनको अपने विराट् काल-स्वरूपका दर्शन कराया है—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्त ।
ऋतेऽपि त्वा न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिता प्रत्यनीकेषु योधा ॥

(११।३२)

श्रीभगवान् बोले—मैं लोकाका नाश करनेवाला बढा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकोको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियाकी सेनामे स्थित योद्धा लोग हैं। ये सब तेरे बिना भी नहीं रहगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेपर भी इन सबका नाश हो जायगा।

गीताके दसव अध्यायम भगवान्‌ने अपनी विभूतियाका वर्णन करते हुए बतलाया है कि गणना करनेवालामे मैं काल हूँ, अक्षरामे अकार, समासोम द्वन्द्व तथा अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल मैं ही हूँ।

कालस्वरूप होकर ही भगवान् पृथ्वीका भार उतारा करते है। भगवान् सत्यसङ्कल्प ह। जीवके सङ्कल्पकी सफलता भगवदिच्छापर ही है।

महाभारतके युद्धके पश्चात् पृथ्वीका भार हलका हो गया था ओर सभी लोग यही सोचते भी थे, परतु भगवान्‌ने सोचा कि यद्यपि लोगाकी दृष्टिम भू-भार उतर गया है लेकिन मेरे विचारसे अभी पूर्णतया पृथ्वीका भार हल्का नहीं हुआ है, क्योकि अभी ये यदुवशी बचे हुए हैं। ये मेरे आश्रित हैं। अत इनको कोई पराजित भी नहीं कर सकता। अब मुझे ही किसी प्रकारसे इन्ह नष्ट करना है। ऐसा विचार कर भगवान्‌ने ब्राह्मणाके शापक बहाने यदुवशियामे ही फूट डालकर उन्ह कालको समर्पित कर दिया। भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतमे कहा है—

अह गतिर्गतिमता काल कलयतामहम्।
गुणाना चाप्यह साम्य गुणिन्यौत्पत्तिको गुण ॥

(११।१६।१०)

गतिशील पदार्थोमे मैं गति हूँ, अपन अधीन करनेवालाम मैं काल हूँ, गुणाम उनकी मूलस्वरूपा साम्यावस्था हूँ और जितने भी गुणवान् पदार्थ हैं, उनम उनका स्वाभाविक गुण हूँ।

भगवान् कालके भी आधार—महाकाल हैं। भगवान्‌के समान तो कोई है ही नहीं फिर उनसे वढकर कौन हो सकता ह? भगवान् स्वय ही प्रकृति, पुरुष और दानाके सयोग-वियोगके हेतु काल हैं। श्रीरामचरितमानसम माल्यवन्त राक्षसराज रावणको सचेत करते हुए उसे भगवान्‌क कालस्वरूपका वोध कराता है—

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहि तासा कवन बिरोध॥

(रा०च०मा० ६।४८ ख)

इसी प्रकार भगवान्क अन्य स्वरूपाके साथ-साथ उनके कालस्वरूपका वर्णन सभी शास्त्रा, पुराणा, महाभारत एव रामचरितमानसक अनेकानेक स्थलापर आता है। यदि मनुष्य भगवान्के कालस्वरूपका स्मरण करता रहे तो वह वहुत-सी बुराइयासे बच सकता हे तथा उसका निश्चित ही कल्याण हो सकता है।

कसने भगवान्क इसी स्वरूपका स्मरण करते हुए भगवत्प्राप्ति की। वह उठत-बैठते, खाते-पीते, सोते एव काम करते, विचार करत समय—चोबीसा घटे उन्हीं भगवान्का चिन्तन करता था। उसने भगवान्का स्मरण प्रेमसे नहीं, वैरसे ही किया, तब भी उसका कल्याण हो गया।

नारायणने कहा है—

दा वातन को भूल मत, जो चाहै कल्यान।
नारायन एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

कालकी गति गहन है। जीव कालको नहीं जानता है। काल अजन्मा ओर अमर है। काल ही सबकी अवधि है। कालकी अवधिमे ही सब मृत्युको प्राप्त होते हैं। काल ही सबकी मृत्युको सिद्ध करता है। सदेव ही कालरूपी सर्पसे डरत रहना चाहिये, क्योकि कालरूपी सर्प कभी भी डँस सकता है। उसके दश लगनेसे हमारी मृत्यु भी हो सकती है। मृत्यु होनेके पश्चात् कोई उपचार सम्भव नहीं हो सकेगा। इसलिये हम चैतन्य-अवस्थाम ही भगवान्का स्मरण करना चाहिय ताकि कालरूपी सर्पसे छुटकारा प्राप्त हो सके।

परमात्माका नादावतार—प्रणव

(श्रीचैतन्यकुमारजी, बी०एस्-सी० (ऑनर्स), एम्०बी०ए० तथा श्रीप्रसूनकुमारजी एम्०एस्-सी०, एम्०सी०ए०)

इन्द्र मित्र वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान्।
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यम मातरिश्वानमाहु ॥

(ऋक्० १।१६४।४६)

एक ही सत् (ब्रह्म)-को ज्ञानीजन इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण गरुत्मान्, यम और मातरिश्वाके नामसे पुकारते हैं।

नाम दो प्रकारका है—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। जो नाम अक्षराके मेलसे बनते हैं उनको वर्णात्मक कहते हैं, जैसे राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, गणेश आदि। ध्वन्यात्मक नामका अनुभव योगियाको हाता है। जब योगीका प्राण सुषुम्णा नाडीमे प्रवेश कर मूलाधारसे ऊपर जाता है तो उसे कई प्रकारकी अनुभूतियाँ होती हैं। इसके अतिरिक्त नादकी भी अनुभूति होती है। इस प्राणका गमन मूलाधारसे सहस्रारतक होता है। मार्गम कई ठहराव हैं, जिन्ह चक्र कहते हैं। प्रत्येक चक्रम नादका एक विशेष रूप होता है, किंतु सभीको अनाहत कहा जाता है।

सहस्रारम पहुँचकर नादके अति सूक्ष्मरूपका अनुभव होता है, जिसका नाम प्रणव है। इस स्थलपर ही सम्प्रज्ञात समाधिकी अस्मितानुगत समाधि हाती है और इसक उपरान्त ही योगी ईश्वरका साक्षात्कार कर सकता है। इससे ऊपर जहाँ अस्मिताका लय होता है और असम्प्रज्ञात समाधिका उदय होता हे, वहाँ जीवात्मा और परमात्माका भेद समाप्त हो जाता है। जिस भूमिकामे ईश्वरका साक्षात्कार होता है, उससे सम्बन्ध होनेके कारण ही प्रणवको 'ईश्वरका वाचक' माना जाता है। योगदर्शन (१।२७)-मे महर्षि पतञ्जलिने इसे ही '**तस्य वाचक प्रणव**' कहा है।

प्रणवका अर्थ ॐकार है, जो अ, उ, म्—इन अक्षरासे बना है। ये तीन अक्षर ब्रह्मा, विष्णु और महेशके अर्थम व्यवहृत होते हैं—

अकार ब्रह्मणो रूपमुकार विष्णुरूपवत्।
मकार रुद्ररूप स्यादर्धमात्र परात्मकम्॥

(बृ०ना० पुराण)

प्रणव वर्णात्मक नहीं होकर ध्वन्यात्मक है, अत वर्णनातीत है। ब्रह्माद्वारा देवीकी स्तुतिमे यह वर्णन आया है कि—

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषत ॥

(मार्कण्डेयपुराण देवीमाहात्म्य १।७४)

ह दवि! आप ही जीवनदायिनी सुधा हैं। नित्य अक्षर 'प्रणव'म अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राआक

रूपमे आप ही स्थित हैं तथा इन तीन मात्राओके अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी आप ही हैं।

महायोगी दत्तात्रेयजी बताते हैं कि विश्वरूपी परमात्माका दर्शन करके उनकी प्राप्तिके लिये परम पुण्यमय 'ॐ' इस एकाक्षर-मन्त्रका जप करे—

'तत्प्राप्तये महत् पुण्यमोमित्येकाक्षर जपत्।'

(मार्क०पु० ४२।३)

आगे प्रणवके स्वरूप तथा माहात्म्यके विषयमे वे कहते हैं—

अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम्।
एता एव त्रयो मात्रा सात्त्वराजसतामसा॥
निर्गुणा योगिगम्यान्या चार्द्धमात्रोर्ध्वसस्थिता।

× × ×

प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म वेध्यमनुत्तमम्।
अप्रमत्तेन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत्॥
ओमित्येतत् त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नय ।
विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूषि च॥
मात्रा सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेया परमार्थत ।

× × ×

व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाव्यक्तसज्ञिता।
मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा पर पदम्॥
अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमय ।
ओमित्युच्चारणात् सर्वं गृहीत सदसद्भवेत्॥
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसयुता।
तृतीया च प्लुतार्द्धाख्या वचस सा न गोचरा॥
इत्येतदक्षर ब्रह्म परमोङ्कारसज्ञितम्।
यस्तु वेद नर सम्यक् तथा ध्यायति वा पुन ॥
ससारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धन ।
प्राप्नोति ब्रह्मणि लय परमे परमात्मनि॥

(मार्कण्डेयपुराण ४२।४—१५)

अकार, उकार और मकार—ये जो तीन अक्षर हैं। ये ही तीन मात्राएँ हैं, ये क्रमश सात्त्विक, राजस और तामस हैं। इनके अतिरिक्त एक अर्धमात्रा भी है, जो अनुस्वार या बिन्दुके रूपमे इन सबके ऊपर स्थित है, वह अर्धमात्रा निर्गुण है, योगी पुरुषोको ही उसका ज्ञान हो पाता है। प्रणव ॐकार धनुष है, आत्मा तीर है और ब्रह्म बेधनेयोग्य लक्ष्य है। उस लक्ष्यको सावधानीसे बेधना चाहिये और बाणकी ही भाँति लक्ष्यमे प्रवेश करके तन्मय हो जाना चाहिये। ॐकार ही तीनो वेद (ऋक्, साम और यजु), तीनो लोक (भू , भुव , स्व), तीनो अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि), त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) है। इस प्रणवमे साढे तीन मात्राएँ जाननी चाहिये। पहली मात्रा व्यक्त, दूसरी अव्यक्त तीसरी चिच्छक्ति तथा चौथी अर्धमात्रा परमपद कहलाती है। इसी क्रमसे इन मात्राओको योगकी भूमिका समझना चाहिये। ॐकारके उच्चारणसे सम्पूर्ण सत् और असत्का ग्रहण हो जाता हे। पहली मात्रा ह्रस्व, दूसरी दीर्घ और तीसरी प्लुत हे, कितु अर्धमात्रा वाणीका विषय नहीं है। इस प्रकार यह ॐकार परब्रह्मस्वरूप है, जो मनुष्य इसे भलीभाँति जानता है और इसका ध्यान करता है, वह ससार-चक्रका त्याग करके त्रिविध बन्धनासे मुक्त होकर परमात्मामे लीन हो जाता है।

प्रणवके जपसे सभी अभीष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, इस बातको श्रुतिने स्पष्ट शब्दामे इस प्रकार कहा है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाꣳसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳ सग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(कठोपनिषद् १।२।१५)

सभी वेद जिस परम पदका बारम्बार प्रतिपादन करते हैं, सभी तप जिस पदका लक्ष्य कराते हैं, जिसकी इच्छासे ब्रह्मचर्यका पालन होता है—उस पदको सक्षेपमे कहा जा रहा है—वह ॐकार ही है।

श्रुति आगे कहती है—

एतद्ध्येवाक्षर ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षर परम्।
एतद्ध्येवाक्षर ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बन परम्।
एतदालम्बन ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

(कठो० १।२।१६-१७)

यह अविनाशी ॐकार (प्रणव) ही तो ब्रह्म एव परब्रह्म है। इस तत्त्वका जानकर साधक दोनामसे किसीका भी प्राप्त कर सकता हे। ॐकार (प्रणव) ही परब्रह्म-प्राप्तिका श्रेष्ठ आलम्बन है। परमात्माके श्रेष्ठ नामकी शरण लना ही उनकी प्राप्तिका अमोघ साधन है। इस रहस्यको

जानकर जो साधक श्रद्धा एव विश्वासके साथ परमात्मापर निर्भर हो जाता है, वह उनकी प्राप्ति कर लेता है।

इस तथ्यको भगवान् श्रीकृष्ण गीताम कहते हैं—

यदक्षर वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागा ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पद सग्रहेण प्रवक्ष्ये॥
ओमित्येकाक्षर ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
य प्रयाति त्यजन्देह स याति परमा गतिम्॥

(८।११ १३)

भाव यह है कि वेदके ज्ञाता जिस अक्षररूप ब्रह्म ॐकारका उच्चारण करते हे वीतराग यति जिसम प्रवेश करते हैं जिसकी प्राप्तिहेतु ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको सक्षेपम कहता हूँ। यह एकाक्षर ब्रह्म ॐकार है। इस ॐकारका उच्चारण करते हुए जो अपने शरीरका त्याग करता ह, वह मेरा परम पद प्राप्त करता ह।

छान्दोग्योपनिषद् (१।१।१)-के शाङ्करभाष्यके अनुसार—

'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। ओमित्येतदक्षर परमात्मनोऽभिधान नेदिष्ठम्।'

उद्गीथशब्दवाच्य 'ॐकार' की उपासना कर। 'ॐ' यह अक्षर परमात्माका सबसे प्रिय नाम है।

पुन छान्दोग्यापनिषद्क अनुसार जो उद्गीथ है, वही प्रणव ह, वही उद्गीथ है—

'अथ खलु य उद्गीथ स प्रणवो य प्रणव स उद्गीथ ।' (छा०उ० १।५।५)

इसा श्रुतिमे यह वर्णन आया है कि प्रजापतिके पुत्र देवता और दानव किसी कारणवश परस्पर युद्ध करने लगे। उसम देवताआने प्रणवका अनुष्ठान कर विजय प्राप्त कर ली।

महर्षि पतञ्जलिने इस प्रणव (ॐकार)-के जपका विधान इस प्रकार किया है—

'तज्जपस्तदर्थभावनम्॥' (यो०द० १।२८)

इस ॐकारका जप उसके अर्थस्वरूप परमात्माका चिन्तन करते हुए करना चाहिये।

प्रश्नोपनिषद् (५।२)-क अनुसार **'पर चापर च ब्रह्म यदाङ्कार ।'** परब्रह्म और अपरब्रह्म भी ॐकार ही है। पुन यह श्रुति आगे कहती है—

'तमाङ्कारेणवायतनेनान्वेति विद्वान्
यत्तच्छान्तमजरममृतमभय पर चेति॥'

(५।७)

बुद्धिमान् मनुष्य बाह्य जगत्म आसक्त न हाकर ॐकारकी उपासनाद्वारा समस्त जगत्के आत्मरूप उन परब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं, जो परम शान्त—सब प्रकारके विकारासे रहित, जहाँ न बुढापा है, न मृत्यु है, न भय है, जो अजर-अमर निर्भय परमात्मा है।

तैत्तिरीयापनिषद् भी इसी भावको अभिव्यक्त करता है। ॐकारक कीर्तनसे परमात्माकी प्राप्ति होती ह। **'एतत्साम गायन्नास्ते'** से मन्त्रके गानका ही विधान है।

माण्डूक्योपनिषद्म तो केवल ॐकारकी ही महत्ताका प्रतिपादन हुआ हे। ॐकार यह अक्षर अविनाशी परमात्मा है। यह जगत् उसीका विस्तार है। तीना काल (भूत, वर्तमान और भविष्यत्) ॐकार ही है, जो त्रिकालातीत है, वह परब्रह्म ॐकार ही ह।

महर्षि पतञ्जलि योगदर्शनम कहते हैं—

'यथाभिमतध्यानाद्वा॥' (यो०द० १।३९)

अपनी रुचिके अनुसार अपने इष्टका ध्यान करनेसे मन स्थिर हो जाता है।

जेसे भगवान् **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ '** हैं, वैसे ही भगवन्नाम-जप भी ऐसा करनेमे समर्थ है। नाम और नामीमे कोई भेद नहीं हे।

प्रणवको 'वेदसार' भी कहा जाता है। सर्वप्रथम ॐ का उच्चारण करके ही वेदारम्भ, पाठारम्भ, मन्त्रारम्भ करनेका विधान ह **'ॐकार पूर्वमुच्चार्यस्ततो वेदमधीयते।'** वेदपाठ बन्द करनेके पूर्व भी ॐ का उच्चारण करनेका नियम है। इस प्रकार प्रणव (ॐकार) साक्षात् परमात्माका नामावतार हे, नादावतार है। इसके जपसे भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। यज्ञोपवीती द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य) ही इस जपके अधिकारी हैं। अनुपवीती तथा स्त्री और शूद्रको 'राम' 'शिव' आदि नामोका जप करना चाहिय।*

* केवल प्रणव (ॐ)-का जप साधु, सन्यासी तथा विरक्तको करना चाहिये। गृहस्थके लिये प्रणव (ॐ)-स युक्त मन्त्रका जप करना श्रेयस्कर है।

भगवान्‌के व्यूहावतार—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एव अनिरुद्ध

(श्रीरामबाबूजी शर्मा)

परब्रह्म परमात्मा प्रकृतिसे परे हैं और प्रकृतिमय भी हैं। इस प्रकार उनकी दो विभूतियाँ हे—एक त्रिपाद्विभूति और दूसरी एकपाद्विभूति। त्रिपाद्विभूतिको नित्यविभूति और एकपाद्विभूतिको लीलाविभूति भी कहा गया हे। एकपाद्विभूतिमे श्रीभगवान् जगत्‌के उदय, विभव आर लयकी लीला करते हैं। उनका प्रकृतिके साथ विहार चिरन्तन, अनादि, अनन्त है। प्रकृतिके असख्य ब्रह्माण्डभाण्डाको अहर्निश बनाने-विगाडनेके अनवरत कार्यको समग्ररूपम जाननेकी शक्ति किसी व्यक्तिम नहीं। मनुष्य यह भी नहीं जान सकता कि प्रकृतिके साथ भगवान्‌का यह विहार कब प्रारम्भ हुआ ओर कबतक चलगा ? वह तो यह कहकर सतोप कर लेता है कि यह विहार अनादि कालसे चल रहा है और सदा चलता रहेगा।

जब प्रकृतिम परमात्माके ईक्षणसे—सकल्पस विकासोन्मुख परिणाम होता है, तो उसे सृष्टि कहते हैं और जब विनाशोन्मुख परिणाम होता हे, तो उसे प्रलय कहते हैं। सृष्टि और प्रलयके मध्यकी दशाका नाम स्थिति है। इस तरह जगत्‌की तीन अवस्थाएँ हैं—सृष्टि स्थिति एव प्रलय। सृष्टि करते समय परमात्मा प्रद्युम्न, पालन करते समय अनिरुद्ध और सहार करते समय सकर्षण कहलात हैं।

सकर्षण—परतत्त्व भगवान्‌के अनन्त कल्याणगुणगण हैं, उनम छ प्रमुख हें। इन्हीं छ गुणासे जब वे ज्ञान और बलका प्रकाशन करते हैं, तब 'सकर्षण' कहलाते हैं। सकर्षणम वीर्य, ऐश्वर्य, शक्ति और तेजका अभाव नहीं। इनका वर्ण पद्मरागके समान हे। ये नीलाम्बरधारी हैं। चार करकमलाम क्रमश हल, मूसल, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। ताल इनकी ध्वजाका लक्षण है। ये जीवके अधिष्ठाता बनते हुए ज्ञान नामक गुणसे शास्त्रका प्रवर्तन करते हैं और बल नामक गुणसे जगत्‌का सहार करते हैं।

प्रद्युम्न—भगवान् वीर्य और ऐश्वर्यका प्रकाशन करत समय 'प्रद्युम्न' कहलाते ह। इनमे ज्ञान, बल, शक्ति और तेजका केवल निगूहन होता है अभाव नहीं। इनका वर्ण रविकिरणके समान है ये रक्ताम्बरधारी हैं। चार करकमलाम क्रमश धनुप, बाण, शङ्ख और अभयमुद्रा धारण करते हैं। मकर इनकी ध्वजाका चिह्न है। मनस्तत्त्वके अधिष्ठाता होते हुए भी ये वीर्य नामक गुणसे धर्मका प्रवर्तन करते हैं और ऐश्वर्य नामक गुणसे जगत्‌की सृष्टि करते हैं।

अनिरुद्ध—जब परमात्मा शक्ति और तेजका प्रकाशन करते हैं, तब 'अनिरुद्ध' कहलाते हैं। इनमे ज्ञान, बल, वीर्य और ऐश्वर्यका निगूहन हाता है, अभाव नहीं। इनका वर्ण नील है एव ये शुक्लाम्बरधारी हैं। इनके चार करकमलोमे खड्ग, खेट, शङ्ख और अभयमुद्रा सुशोभित रहती है। मृग इनकी ध्वजाका चिह्न है। अहङ्कारके अधिष्ठाता ये तेज नामक गुणसे आत्मतत्त्वका प्रवर्तन करते हैं और शक्ति नामक गुणसे जगत्‌का भरण-पोषण करते हैं।

वासुदेव—जब परतत्त्व भगवान् त्रिव्यूहम सम्मिलित होते हैं तब व्यूह-वासुदेव कहे जाते हैं। ये चन्द्रमाके समान गोर और पीताम्बरधारी हैं। य अपने चार करकमलामे शङ्ख, चक्र, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। गरुड इनकी ध्वजाका चिह्न है।

इन चार व्यूहोके अन्य रूपान्तर भी हैं। केशव, नारायण ओर माधव—ये तीन वासुदेवके विलास हैं। केशव स्वर्णिम हैं और चार करकमलामे चार चक्र धारण करते हैं। नारायण श्यामवर्ण हैं आर चार करकमलोमे चार शङ्ख धारण करते हैं। माधव इन्द्रनीलके समान हैं और चार करकमलाम चार गदा धारण करते हैं।

गाविन्द, विष्णु और मधुसूदन—ये सकर्षणके विलास हैं। गोविन्द चन्द्रगौर हैं और चार करकमलाम चार शार्ङ्ग धनुप धारण करते हैं। विष्णु पद्म-किजलवर्ण हैं और चार करकमलाम चार हल धारण करते हैं। मधुसूदन अब्जके समान वर्णवाले हैं और चार करकमलामे चार मूसल धारण करते हैं।

त्रिविक्रम वामन आर श्रीधर—ये तीन प्रद्युम्नके विलास हैं। त्रिविक्रम अग्निके समान वर्णवाले हैं और चार करकमलाम चार शङ्ख धारण करते हैं। वामन बालसूर्यके समान आभावाले हें तथा चार करकमलाम चार वज्र धारण करत हें। श्रीधर पुण्डरीकके समान वर्णवाले हैं और चार

आपको हारे या मुझे। यदि वे पहले स्वयको ही दाँवपर लगाकर हार चुके थे तो क्या उन्हे उसके पश्चात् मुझे दाँवपर लगानेका अधिकार था? इस आधारपर क्या मैं जूएमे जीती गयी? द्रौपदी बार-बार यह प्रश्न किये जा रही थी। धर्मके अनुसार मैं जीती गयी या नहीं? **'जिता वाप्यजिता वा मा मन्यध्वे सर्वभूमिपा ।'**

कुछ भी हो कुलकी लाजको ऐसी अवस्थामे घसीटकर सभामे लाना, वह भी केश पकडकर, अपशब्दोका प्रयोग, अभद्र सकेत करना, भरी सभामे चीरहरणका कुत्सित प्रयास—क्या यह सब धर्म, मर्यादा आदर्श, बल्कि गरिमामय परम्परा—**'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'**-की पोषक भारतीय सस्कृतिके आगे प्रश्नचिह्न नहीं था?

इसस पूर्वकी स्थिति देखे। युधिष्ठिर धर्मज्ञ हैं धर्माचरणके प्रति सजग और पूर्ण निष्ठावान् हैं, यद्यपि कहीं-कहीं धर्मके प्रति उनकी दृढ निष्ठा धर्मभीरुताकी स्थितिमे भी आ जाती है। उसीका अनुचित लाभ उठाया जाता है। दुर्योधन धृतराष्ट्रसे कहता है—आप युधिष्ठिरको द्यूतक्रीडाके लिये आमन्त्रित करे। आपकी आज्ञा वह कभी भी टालेगा नहीं। मनमे पहलेसे कपट था। धृतराष्ट्र दृष्टिहीन (बाह्य और विवेक दोनो स्थितियोमे) हैं ही। दुर्योधनके कपटको जानते हुए और समझते हुए भी उन्होने युधिष्ठिरको आमन्त्रित कर लिया। शकुनिने कपट-चालें चलीं। छलसे काम लिया। क्या यह सब कहीं किसी भी प्रकारसे धर्म था?

सब कुछ जानते-समझते देखते हुए भी पूरी कौरवसभा मौन। कोई नहीं बोला। बोले तो केवल धृतराष्ट्रपुत्र विकर्ण और विदुर, लेकिन कौन सुनता उनकी बात। आचार्य द्रोण, कृपाचार्य नीचे देखते रह गये। धृतराष्ट्र तो देखते ही कहाँ और क्या? पितामह भीष्म धर्मकी सूक्ष्मता और बारीकियोकी दुहाई देने लगे। द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर भी उस समय यद्यपि महत्त्वपूर्ण था, क्योकि युधिष्ठिर दाँवमे पहले भाइयोको और फिर स्वयको हार चुके थे तत्पश्चात् द्रौपदीको दाँवपर लगाया गया। लेकिन बात केवल प्रश्नके उत्तरतककी नहीं थी। सामने जो हो रहा था—सब देख रहे थे। कुलवधू और उसके साथ भारतीय अस्मिताको नग्न करनेका कुकृत्य वस्तुत अधर्मके साथ-साथ घोर अपराध भी था। उस समयका धर्म यही था—इस अधर्मको रोकना, अबलाकी लाज बचाना।

द्रौपदीने इसी हेतुसे सबकी ओर देखा, कोई साथ देनेकी स्थितिमे नहीं। पाँचो पति भी नीचे मुँह किये रहे। अपना प्रयास किया—वह भी विफल होता दिखा। *'निर्बल के बल राम'* का भाव स्मृति-पटलपर आशाकी किरण बनकर आया। विश्वास जागा। जहाँ ससारसे आशा टूटती है, कोई आस-विश्वासकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता (जैसा ससारका स्वभाव है), वहीं मन एकनिष्ठ परमात्माकी ओर आगे बढता है। इसी अवस्थामे 'विषादसे योग' की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सब ओरसे निराश द्रौपदीने पुकारा—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥
कौरवै परिभूता मा किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्ना मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्ना पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

(महा० सभा० ६८।४१—४३)

हे गोविन्द! हे द्वारकावासी श्रीकृष्ण! हे गोपाङ्गनाओके प्राणवल्लभ केशव! कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, क्या आप नहीं जानते? हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे सकटनाशन जनार्दन! मैं कौरवरूपी समुद्रमे डूबी जा रही हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।

सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! महायोगिन्! विश्वात्मन्! विश्वभावन! गोविन्द! कौरवोंके मध्य कष्ट पाती मुझ शरणागत अबलाकी रक्षा कीजिये। पुकार अन्तर्मनकी गहराईसे हो और वह भी भाव सच्चा तथा विश्वास पक्का हो तो ऐसी स्थितिमें पुकार न सुनी जाय, ऐसा हो नहीं सकता। '**परित्राणाय साधूनाम्**' (सज्जनोंकी रक्षा) तो श्रीभगवान्‌के अवतारका स्पष्ट उद्घोष ही है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(गीता ४।७)

हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं साकाररूपमें प्रकट होता हूँ।

धर्मके विषयमें भले ही सब मौन थे, लेकिन ऐसी विकट स्थितिमें धर्मरक्षक परमात्मा कैसे मौन रह सकते थे? एक अबलापर अत्याचार, आर्त पुकार, अनीति-अधर्मका साम्राज्य, एक ओर दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाला दुःशासन, उसका दुस्साहसपूर्ण अहंकार और दूसरी ओर अबला द्रौपदीका विश्वास। विश्वास *श्रीभगवान्‌के वस्त्रावताररूपमें* विजयी हुआ। प्रह्लादके लिये नृसिंहावतार लेनेवाले, कुएँमें गिरने जा रहे सूरदासके लिये अकस्मात् गोपालरूपमें प्रकट होकर हाथ थामनेवाले, नरसीके लिये सावलशाह बनकर भात भरनेवाले, मीराके लिये विषमेंसे भी अमृत बनकर प्रकट होनेवाले आज एक नये रूपमें पूरी कुरुसभाको अचम्भित कर रहे थे। द्रौपदीकी लाजकी रक्षाके लिये भगवान् वस्त्रावतार लेकर प्रकट हुए। ढेर लग गया वस्त्रोंका। पूरी सभा ढक गयी। द्रौपदीके लाजकी रक्षा हुई। दुःशासनका अहंकार पछाड़ खाकर गिरा। सब देखते रह गये, भौचक्के अचम्भित, कुछ-कुछ लज्जित। '**धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे**' के उद्घोषकने स्पष्ट दिखा दिया कि उनकी घोषणा केवल घोषणा नहीं, भक्तकी लाजकी रक्षा अथवा भावरक्षाके लिये, धर्म-मर्यादाओंकी रक्षाके लिये वे कहीं भी, कभी और किसी भी रूपमें प्रकट हो सकते हैं।

~~~ ० ~~~

'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्'

(डॉ० श्रीमती पुष्पाजी मिश्रा, एम्०ए० (द्वय) पी-एच्०डी०)

'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।'

(गीता १०।२६)

'वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः॥'

(श्रीमद्भा० ११।१६।२१)

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं कि वे समस्त वृक्षोंमें पीपलके वृक्ष हैं और देवर्षियोंमें नारद हैं। पुनः श्रीमद्भागवतमें वे कहते हैं—वनस्पतियोंमें मैं पीपल और धान्योंमें यव (जौ) हूँ।

ऋग्वेदमें जिज्ञासा की गयी है—

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु
तद् यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्॥

(१०।८१।४)

वह कौन-सा वन था और कौन-सा वृक्ष था जिसको गढ़-छीलकर यह द्युलोक और पृथ्वी बनायी गयी है? हे मनीषियो! अपने मनमें उस तत्त्वका विचार करो जिसने भुवनोंको धारण कर रखा है और जो सबका अधिष्ठाता है।

इस प्रश्नका उत्तर तैत्तिरीयब्राह्मणमें इस प्रकार मिलता है—

ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत्
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वो
ब्रह्माध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्॥

(२।८।९)

ब्रह्म ही वह वन है, ब्रह्म ही वह वृक्ष है, जिसको गढ़-छीलकर द्युलोक और पृथ्वीको बनाया गया है। हे मनीषियो! मैं अपने मनमें विचार कर कहता हूँ कि ब्रह्म ही लोकोंको धारण करते हुए इसका अधिष्ठाता है।

ब्रह्म ही संसारका उपादान और निमित्तकारण है। अतः ब्रह्मको कभी वन तो कभी वृक्षके नामसे सम्बोधित किया जाता है।

अध्यात्मरामायणमें ऐसा वर्णन मिलता है—
~~~

असदेव हि तत्सर्वं यथा स्वप्नमनोरथौ।
देह एव हि ससारवृक्षमूल दृढ स्मृतम्॥
(अरण्यकाण्ड ४।२६)

मनुष्य जो कुछ सदा देखता और स्मरण करता है, वह सब स्वप्न और मनोरथोके समान असत्य है। शरीर ही ससारवृक्षका दृढ मूल है।

ससारवृक्षकी जड ऊपरकी ओर है और शाखाएँ नीचेकी ओर हैं। पृथ्वीम छिपी हुई इसकी जड अव्यक्तमूल प्रकृति है, जो अप्रत्यक्ष होनेसे सिर्फ आगम और अनुमानगम्य है।

श्रुति कहती है—

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थ सनातन ।
तदेव शुक्र तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लाका श्रिता सर्वे तदु नात्येति कश्चन॥
(कठो० २।३।१)

ब्रह्म ही शाश्वत है, जो ऊपरकी ओर स्थित है। वृक्षकी प्रधान शाखा ब्रह्मा तथा अवान्तर शाखाएँ देवता, पितर, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि क्रमसे नीचे हैं। व्यक्त एव अव्यक्त रूपसे यह वृक्ष अपने कारणरूप ब्रह्मम‍े स्थित है तथा नित्य एव सनातन है। इसका मूल कारण ही विशुद्ध तत्त्व ब्रह्म है। वही अमृत है तथा सभी लोक उसीम स्थित तथा उसीके आश्रित हैं, कोई भी इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता है।

अविद्याके कारण मनुष्य सदा सुख-दु खसे युक्त हाकर इस ससारमे फँसा हुआ है। ज्ञानी पुरुष इस ससारवृक्षको उच्छेद कर मुक्त हो जाते हैं। अज्ञानी मनुष्य इस वृक्षका उच्छेद नहीं कर पाते हें। ज्ञानरूपी खड्गसे ही ससारवृक्षको छिन्न-भिन्न किया जा सकता है।

नरसिहपुराणमें इस वृक्षका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

अव्यक्तमूलप्रभवस्तस्मादग्रे तथोत्थित ।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटर ॥
महाभूतविशाखश्च विशेषै पत्रशाखवान्।
धर्माधर्मसुपुष्पश्च सुखदु खफलोदय ॥
(श्रीनरसिहपुराण १५।५-६)

यह ससारवृक्ष अव्यक्त ब्रह्मरूपी मूलसे प्रकट हुआ है। उन्हींसे प्रकट होकर हमारे सामने इस रूपमे खडा है। बुद्धि (महत्तत्व) उसका तना है, इन्द्रियाँ ही उसके अङ्कुर और कोटर हैं। पञ्चमहाभूत उसकी बडी-बडी डालियाँ हैं। धर्म-अधर्म उसके फूल हैं। उस वृक्षका फल सुख-दु ख है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामे इस ससारवृक्षके सम्बन्धमे इस प्रकार उपदेश देते हैं—

ऊर्ध्वमूलमध शाखमश्वत्थ प्राहुरव्ययम्।
छन्दासि यस्य पर्णानि यस्त वेद स वेदवित्॥
अधश्चोर्ध्व प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवाला ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलाके॥
(१५।१-२)

एक शाश्वत अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष है, जिसकी जडे ऊपरकी ओर हैं और शाखाएँ नीचेकी ओर हैं, पत्तियाँ वैदिक स्तोत्र हैं, जो इस वृक्षको जानता है वह वेदोका ज्ञाता है। इस वृक्षकी शाखाएँ ऊपर तथा नीचेकी ओर फैली हुई हैं तथा प्रकृतिके तीन गुणोद्वारा पोपित हैं। इसकी शाखाएँ इन्द्रियाके विपय हैं। इस वृक्षकी जडे नीचेकी ओर भी जाती हैं, जो सकाम कर्मोसे बँधी हुई हैं।

जैसे जलाशयके किनारेके वृक्षका प्रतिबिम्ब जलाशयमे दिखता है, वैसे ही यह ससारवृक्ष पारलौकिक जगत्रूपी वृक्षका प्रतिबिम्बमात्र है। जो मनुष्य इस ससारवृक्षसे निकलना चाहता है, उसे ज्ञानके माध्यमसे इस वृक्षको जानना चाहिये। तदुपरान्त इस वृक्षसे सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहिये। इस वृक्षकी शाखाएँ चतुर्दिक् फैली हुई हैं। निचला भाग जीवोकी विभिन्न योनियाँ हैं। ऊपरी भाग जीवोकी उच्च योनियाँ हैं, यथा—देव, गन्धर्व आदि। जिस प्रकार वृक्षका पोपण जलसे होता है, उसी प्रकार इस वृक्षका पोपण प्रकृतिके तीना गुणो (सत्त्व रज और तम)-से होता है। वृक्षकी टहनियाँ इन्द्रियविपय हैं और विभिन्न गुणाके विकाससे हम विभिन्न प्रकारके इन्द्रियविपयाका भोग करते हैं। इसकी सहायक जडे आसक्तियाँ तथा विरक्तियाँ हैं, जो विभिन्न प्रकारके कष्ट तथा इन्द्रियभोगके विभिन्न रूप हैं। वास्तविक जड (मूल) तो ब्रह्मलोकमे है, किंतु अन्य जडें मर्त्यलोकम स्थित हैं। जब मनुष्य पुण्यकर्मोका फल भाग चुका होता है तो वह पुन इस धरापर आता है और फिर कर्म करता है। भगवान् श्रीकृष्ण

पुन आगे कहते हैं—

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥
(गीता १५।३-४)

इस अश्वत्थ वृक्षका स्वरूप अनुभवसे परे है। इसका आदि भी समझसे परे है तथा आधार और अन्त कहाँ है, यह भी नहीं समझा जा सकता है। परंतु मनुष्यको चाहिये कि इसके दृढ मूलको विरक्तिके कुठार (कुदाल)-से काट गिराये। इसके उपरान्त ऐसे स्थानकी खोज करनी चाहिये जहाँ जाकर लौटना नहीं पड़े तथा भगवत्प्राप्ति हो जाय। इस प्रसंगमें 'असङ्ग' शब्द महत्त्वपूर्ण है। विषयभोगकी आसक्ति प्रबल होती है। इसलिये विवेकद्वारा वैराग्यको प्राप्त करना चाहिये। भगवान् ही उस वृक्षके आदिमूल हैं, जहाँसे सब कुछ निकला है। अतः भगवान्का अनुग्रह प्राप्त करनेके लिये केवल उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिये। भगवान्का कथन है—

'अहं सर्वस्य प्रभवः०' (गीता १०।८)।

मैं प्रत्येक वस्तुका उद्गम हूँ। इस भौतिक अश्वत्थ वृक्षके बन्धनमें छूटनेके लिये भगवान्की शरण ग्रहण करनी चाहिये।

~~~ ० ~~~

भगवान्का वाङ्मय-अवतार—श्रीमद्भागवत

(वैद्य श्रीसत्यनारायणजी शर्मा, भिषगाचार्य)

अवतारसे तात्पर्य है—**'अवति भक्तांस्तारयति पतितांश्चेति अवतारः।'** अर्थात् भक्तोंकी रक्षा करना और पापियोंका उद्धार करना अवतारका प्रयोजन है। भगवान्के असंख्य अवतार हैं—**'अवतारा ह्यसंख्येया'** (श्रीमद्भा० १।३।२६)।

ब्रह्माजीने भगवान्की स्तुतिमें कहा है—

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।२०)

प्रभो! आप सारे जगत्के स्वामी और विधाता हैं। अजन्मा होनेपर भी आप देवता, ऋषि, मनुष्य पशु-पक्षी और जलचर आदि योनियोंमें अवतार ग्रहण करते हैं—इसलिये कि इन रूपोंके द्वारा दुष्ट पुरुषोंका घमंड तोड़ दें और सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करें।

श्रीमद्भागवत (१।५।२०)-में **'इदं हि विश्वं भगवान्'** अर्थात् यह समस्त विश्व भगवान्का ही स्वरूप है—ऐसा बताया गया है। परमात्माका प्रथम अवतार विराट् पुरुष है। काल, स्वभाव कार्य, कारण मन, पञ्चमहाभूत अहङ्कार, तीनों गुण इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी, स्थावर और जङ्गम जीव—सब-के-सब उन अनन्त भगवान्के ही रूप हैं।

यह विराट् पुरुष ही प्रथम जीव होनेके कारण समस्त जीवोंका आत्मा जीवरूप होनेसे परमात्माका अंश और प्रथम अभिव्यक्त होनेके कारण भगवान्का आदि अवतार है। यह समस्त भूतसमुदाय इसीमें प्रकाशित होता है। भूतसमुदायके साथ ही भगवान् अपनी महिमासे व्याप्त वाङ्मयमें भी प्रतिष्ठित होते हैं। श्रीमद्भागवत भगवान्का वाङ्मय अवतार ही है।

प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीने श्रीभगवान्से निवेदन किया कि भगवन्! आप अपने भक्तोंका कार्य पूर्ण करके निज धाम पधार रहे हैं तथा कलियुगका समय भी आ रहा है। ऐसी स्थितिमें भक्तजन आपके वियोगमें पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे? तब श्रीभगवान्ने अपनी सारी सत्ता श्रीमद्भागवतमें रख दी और वे अन्तर्धान होकर भागवतसमुद्रमें प्रवेश कर गये। इसलिये यह भगवान्की साक्षात् वाङ्मयी—शब्दमयी मूर्ति है। इसके सेवन श्रवण पठन अथवा दर्शनसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं—

स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात्।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्॥
तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी॥
(श्रीमद्भा०माहा० ३।६१-६२)
~~~

कौशिकसहिताके श्रीमद्भागवत-माहात्म्य (६।५६—६०)-मे भी श्रीमद्भागवतको भगवान्की शब्दमयी मूर्ति बताया गया है तथा भगवान्के अङ्ग-प्रत्यङ्गाके रूपम सुन्दर चित्रण किया गया है। यथा—

कृष्णस्य वाङ्मयी मूर्ति श्रीमद्भागवत मुने।
उपदिश्योद्धव कृष्ण प्रविष्टोऽस्मिन्न सशय ॥
पादादिजानुपर्यन्त प्रथमस्कन्ध ईरित ।
तदूर्ध्वं कटिपर्यन्त द्वितीयस्कन्धमुच्यते॥
तृतीयो नाभिरित्युक्तश्चतुर्थ उदर मतम्।
पञ्चमो हृदय प्रोक्त षष्ठ कण्ठ सबाहुकम्॥
सर्वलक्षणसयुक्त सप्तमो मुखमुच्यते।
अष्टमश्चक्षुषी विष्णो कपोलौ भृकुटि पर ॥
दशमो ब्रह्मरन्ध्रञ्च मन एकादश स्मृत ।
आत्मा तु द्वादशस्कन्ध श्रीकृष्णस्य प्रकीर्तिता ॥

अर्थात् श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीकृष्णकी वाङ्मयी मूर्ति है। भगवान् इसका उद्धवजीको उपदेश करके स्वय भी इसीमे प्रवेश कर गये। श्रीभगवान्का पादारविन्दसे जानुपर्यन्त भाग प्रथम स्कन्ध है। जानुसे ऊपर कटिपर्यन्त द्वितीय स्कन्ध है। तृतीय स्कन्ध नाभि है। चतुर्थ स्कन्ध उदर है। पञ्चम स्कन्ध हृदय है। षष्ठ स्कन्ध बाहुओसहित कण्ठभाग है। सप्तम स्कन्धको भगवान्का सर्वलक्षण-सयुक्त मुख बताया गया है। अष्टम स्कन्ध आँखे, नवम स्कन्ध कपोल और भृकुटि हैं। दशम स्कन्ध ब्रह्मरन्ध्र है, एकादश स्कन्ध भगवान्का मन है और द्वादश स्कन्धको भगवान्का आत्मा बताया गया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतके रूपम भगवान्के स्वरूपका वर्णन किया गया है। यह भगवान्का सगुण-साकार दिव्य विग्रह ही है। कतिपय विद्वानोकी मान्यता है कि श्रीमद्भागवतके प्रत्येक श्लोक श्रीकृष्ण हैं और उनका अर्थ श्रीराधाजी हैं। अत श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीराधाकृष्णका अवतार है।

~~~ ० ~~~

श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति राधाजीका प्राकट्य

(श्रीगोपालदास वल्लभदासजी नीमा बी०एस्-सी० एल्-एल्०बी०)

'अनया राधितो नून भगवान् हरिरीश्वर'—इस वचनके द्वारा श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमे परोक्ष रूपसे श्रीराधिकाके दिव्य स्वरूपका दर्शन कराया है। जहाँ कृष्णकी सत्ता है, वहाँ श्रीराधिकाकी भी है। श्रीवृषभानुजा राधिका विधाताकी सृष्टिकी रचना नहीं, अपितु ब्रह्मसृष्टिबहिर्भूता हैं। सतत भगवद्ध्यानपरायण जगत्में यदि कोई है तो वे श्रीस्वामिनीजी ही हैं, जो सयोगकी अवस्थामें अविरल भगवद्रसका आस्वादन करती हैं और विप्रयोगकी अवस्थाम निरन्तर चिन्तनमे तल्लीन रहकर शृङ्गाररसके द्वितीय दलका अनुभव अधिगत करती हैं—*'श्यामा श्याम श्याम रटत पूछत सखियन सो श्यामा कहाँ गई री।'*

श्रीव्यासदास वर्णन करते हैं—

परम धन राधा नाम आधार।
जाहि पिया मुरली मे टेरत सुमरत बारबार॥
वेद मत्र और जत्र तत्र में ये ही कियो निरधार।
श्रीशुक प्रगट कियो नहीं ताते जान सार को सार॥
कोटिन रूप धरे नदनदन तोऊ न पायो पार।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत डार भार में भार॥

'धन' कृष्ण हैं, जैसा कि श्रीवल्लभाचार्यके शिष्य एव अष्टछापके कवि परमानन्ददासने गाया है—*'यह धन धर्म ही ते पायो सो धन बार-बार उर अन्तर परमानद विचारे॥'* धन (कृष्ण)-के जीवन (प्राण)-का आधार परम धन राधा हैं। जिस प्रकार मकानका रक्षक आधार (नींव) होता है, ऐसे ही कृष्णका आधार—प्राणाका स्तम्भ राधा-नाम है, जिसे वे मुरलीमे स्मरण करते हैं। राधा श्रीशुकदेवजीकी इष्ट हैं, यदि वे राधाका नाम प्रकटरूपसे लेते तो उन्हे समाधि लग जाती, फिर राजा परीक्षित्को भागवतरसका दान कैसे होता? अत शुकदेवमुनिने भागवतमे प्रकट रूपमे राधा नाम नहीं लिया। रासलीलामे श्रीकृष्णने अनत रूप धारण किये लेकिन राधाकी सत्ताका पार कृष्ण नहीं पाते हैं। कृष्ण स्वय राधाका चिन्तन करते हैं। जैसा कि अष्टछापक कवि गोविन्दस्वामीने गाया है—
~~~

स्मर बेग आवे स्वरूप तव सुधि न कछू तन की विहारी।
रसना रटन तुव नाम राधे राधे 'गोविन्द' प्रभु पिय ध्यान सो भरत अँकवारी॥

इस प्रकार राधाके चिन्तनद्वारा ही कृष्णका चिन्तन किया जा सकता है, क्योंकि वे स्वय श्रीराधिकाके हृदयसरोजमे विराजमान और तद्भावरूप हैं।

राधा जू के प्राण श्रीगोवर्धन धारी।
तरु तमाल ढिग कनक लता-सी हरि जू के प्राण राधिका प्यारी॥
मरकत मणी नदलाल लाडिला कचन तन वृषभान दुलारी।
'सूरदास' प्रभु प्रीति निरन्तर जोरी युगल बने बनवारी॥

श्रीश्रीनाथजीका स्वरूप बाह्य रूपसे कृष्ण है एव उनके हृदयसरोजम श्रीराधिका ही हैं। यह स्वरूप कृष्ण-राधाकी प्रीतिका घनीभूत स्वरूप है। राधा पूर्ण शक्ति हैं—कृष्ण पूर्ण शक्तिमान् हैं। राधा मृगमदगध हैं, कृष्ण मृगमद हैं, राधा दाहिका शक्ति हैं, कृष्ण साक्षात् अग्नि हैं, राधा प्रकाश हैं, कृष्ण तेज हैं, राधा व्याप्ति हैं, कृष्ण आकाश हैं, राधा ज्योत्स्ना हैं, कृष्ण पूर्णचन्द्र हैं, राधा किरण हैं, कृष्ण सूर्य हैं, राधा तरग हैं, कृष्ण जलनिधि हैं। इस प्रकार वे दोनों नित्य एकस्वरूप हैं, पर लीलारसके आस्वादनके लिये नित्य ही उनके दो रूप हैं। कृष्ण-राधा एक प्राण किंतु दो वपु हैं।

श्रीनारायणप्रोक्त राधाके सोलह नाम निम्न हैं—

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी।
कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया कृष्णस्वरूपिणी॥
कृष्णावामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी।
कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी॥
चन्द्रावली चन्द्रकान्ता शरच्चन्द्रप्रभानना।

~~ ० ~~

भगवान् विष्णुका गदाधर-अवतार

(डॉ० श्रीराकेशकुमारजी सिन्हा रवि)

अन्त सलिला फल्गुनदीके रमणीय तटपर श्रीविष्णु-पादालय एव माता मङ्गलागौरीजीके दिव्य स्थानसे सुशोभित पितरोद्धारक तीर्थश्रेष्ठ गयाको भारतीय तीर्थोंम उत्तमोत्तम स्थान प्राप्त है। गयामे भगवान् विष्णुके कितने ही रूपोके मन्दिर प्राचीन कालसे प्रतिष्ठित हैं, उनमे प्रमुख है—श्रीगदाधरदेवका स्थान। भगवान् विष्णुक गदाधररूपके अवतरण-स्थल गयाको श्राद्ध एव पिण्डदानका प्रशस्त-स्थल कहा गया है। यहाँ एक विशाल मन्दिर भी विराजमान है, जो गदाधर-मन्दिर कहलाता है।

जगन्नियन्ता देव श्रीविष्णुके दशावतारो एव चौबीस अवतारोके अतिरिक्त एक अन्य अवतारकी चर्चा प्राय धर्मसाहित्यम आती है वह है—जगत्के पालनहार विष्णुजीका गदाधररूप। भक्तोकी आस्था है कि सभी अवतारोके बाद भी इहलोकमे अपने शेष कार्योंको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे कलियुग प्रारम्भ होनेके ठीक पूर्वकालम भगवान्ने अपने जिस नामसे जगत्का उद्धार किया वह 'गदाधर' कहलाता है और उनकी अवतारस्थलीको 'गया' कहा गया है।

इस सम्बन्धम एक *महिमामयी रोचक कथा* पुराणोमे प्राप्त होती है जिसमे बताया गया है कि प्राचीनकालम गय नामका एक असुर था जो केवल तपस्यामे ही प्रीति रखता था। वह दीर्घकालतक निष्कामभावसे तप करता रहा। भगवान् नारायणने उसे वरदान दिया कि उसकी देह समस्त तीर्थसे भी अधिक पवित्र हो जाय। इस वरदानके पश्चात् भी असुर तपस्या करता ही रहा। उस तपसे त्रिलोकी सतप्त होने लगी। देवता सत्रस्त हो उठे। अन्तमे भगवान् विष्णुके आदेशसे ब्रह्माजीने गयके पास जाकर यज्ञ करनेके लिये उसकी देह माँगी। गय सो गया और उसके शरीरपर यज्ञ किया गया किंतु यज्ञ पूरा होनेपर असुर फिर उठने लगा। उस समय देवताओने धर्मव्रती शिला गयासुरके ऊपर रख दी। इतनेपर भी असुर उठने लगा तो स्वय भगवान् विष्णु गदाधरके रूपमे उसके ऊपर स्थित हो गये। अन्य देवता भी वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। श्रीगदाधरकी कृपासे यह अवतरणस्थली 'गया' नामक पुण्यक्षेत्र हो गयी।

वायुपुराणसे स्पष्ट होता है कि गयातीर्थ गयागय गयादित्य गायत्री गदाधर, गया एव गयासुर—इन छ रूपोमे मुक्तिदायक है—

गयागयो गयादित्यो गायत्री च गदाधर ॥
गया गयासुरश्चैव षड्गया मुक्तिदायका ।
(१११।७२-७३)

मोक्षभूमि गयाके छ मुक्तिदायी स्थलोमे गदाधर भी एक है। जहाँतक गदाधर नामके आशयकी बात है तो वायुपुराण (१०५।६०)-से स्पष्ट होता है कि 'हरिको आदिगदाधर इसीलिये कहा जाता है कि उन्होने सर्वप्रथम गदाको धारण किया, जिसके आश्रयसे विष्णुभक्त गयासुरके चलायमान शरीरको स्थिर किया गया।' ऐसा भी कहा गया है कि गदा नामक असुरकी अस्थियोसे बने अस्त्रको सर्वप्रथम धारण करनेके कारण विष्णुजीका नाम 'गदाधर' है। गयातीर्थकी पुण्यतोया फल्गुको भी जलधाराके रूपमे आदिगदाधर कहा गया है।

विद्वज्जनाकी मान्यता है कि गयाकी भूमि ज्ञानभूमि है और यह आदिविद्याका क्षेत्र है तथा पितृकर्मके लिये सर्वोत्तम स्थल है। भगवान्‌ने यहाँ गदाधरके रूपमें अवतार धारण किया।

गयामें श्रीविष्णुपद-मन्दिरके निचले ढलानमें फल्गुजीके पार्श्वमे गदाधरदेव-मन्दिर है, जिसे आदिगदाधर अथवा गयागजाधर भी कहा जाता है। यहाँ गर्भगृहमे विष्णुभगवान्‌के गदाधररूपका एक प्रभावोत्पादक विग्रह है। मन्दिर-क्षेत्रसे प्राप्त शिलालेख स्पष्ट करते हैं कि पालनरेश गोविन्दपाल (११६१-११७५ ई०)-ने यहाँ गदाधर विष्णुमन्दिरका निर्माण कराया। आज भी यह मन्दिर-क्षेत्र गयाका एक प्रख्यात तीर्थ है। गयामे फल्गुजीके अनेक घाटोमे एकका नाम 'गदाधर-घाट' होना इस बातका सूचक है कि यहाँ प्राचीनकालसे गदाधरजी पूजनीय रहे हैं।

भगवान् गदाधरकी इस अवतरणस्थलीके विषयमे कहा गया है कि गयामे ऐसा कोई स्थान नहीं है, जो तीर्थ न हो। यहाँ सभी तीर्थोंका सानिध्य है, अत गयातीर्थ सर्वश्रेष्ठ है। ब्रह्मज्ञान, कुरुक्षेत्रके वास तथा गोशालामे मरनेसे क्या लेना है, यदि पुत्र गया चला जाय और वहाँ पिण्डदान कर दे—

गयाया न हि तत् स्थान यत्र तीर्थं न विद्यते।
सानिध्य सर्वतीर्थाना गयातीर्थं ततो वरम्॥
ब्रह्मज्ञानेन कि कार्यं गोगृहे मरणेन किम्।
वासेन कि कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गया व्रजेत्॥

(वायुपुराण १०४।४३ ९५)

माता-पिता एव अपने पूर्वज पितरोकी सद्गतिके लिये पुत्रद्वारा गयामे पिण्डदान करनेका विशेष महत्त्व है तथा सत्-पुत्रके लिये यह अनिवार्य भी है। इसीलिये कहा गया है—

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयाया पिण्डदानाच्च त्रिभिर्पुत्रस्य पुत्रता॥

(श्रीमद्देवीभागवत ६।४।१५)

भगवान् गदाधर ही गयाके अधिष्ठातृ देवता हैं।

~~o~~

भगवान्‌का गरुडावतार

[सुपर्णोऽह पतत्रिणाम्]

(श्रीमनीन्द्रनाथजी मिश्र 'श्रीकृष्णदास')

भगवान् श्रीहरिके वाहन और उनके रथकी ध्वजामे स्थित विनतानन्दन गरुड भगवान्‌की विभूति हैं। वे नित्यमुक्त और अखण्ड ज्ञानसम्पन्न हैं। उनका विग्रह सर्ववेदमय है, बृहत् और रथन्तर उनके पख हैं, उडते समय जिनसे सामवेदकी ध्वनि निकलती रहती है। वे भगवान्‌के नित्य परिकर और भगवान्‌के लीलास्वरूप हैं। देवगण उनके परमात्मरूपकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

खगेश्वर शरणमुपागता वय
महौजस ज्वलनसमानवर्चसम्।
तडित्प्रभ वितिमिरमभ्रगोचर
महाबल गरुडमुपेत्य खेचरम्॥

(महाभारत आदिपर्व २३।२२)

अर्थात् आप ही सभी पक्षियों एव जीवोके ईश्वर हैं। आपका तेज महान् है तथा आप अग्निके समान तेजस्वी हैं। आप बिजलीके सदृश चमकते हैं। आपके द्वारा अविद्याका नाश होता है। आप बादलोकी भाँति आकाशमे स्वच्छन्द विचरण करनेवाले महापराक्रमी गरुड हैं। हम सभी आपके शरणागत हैं।

श्रीमद्भागवतमे भगवान्‌का कथन है—**'सुपर्णोऽह पतत्रिणाम्'** (श्रीमद्भा० ११।१६।१५) पक्षियोमे मैं गरुड हूँ। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् कहते हैं—**'वैनतेयश्च पक्षिणाम्'** (गीता १०।३०) अर्थात् पक्षियोमे मैं विनताका पुत्र गरुड हूँ।

गरुडजीका आविर्भाव—सत्ययुगकी बात है, दक्ष प्रजापतिकी दो कन्याएँ थीं—कद्रू और विनता। इन दोनोका

विवाह महर्षि कश्यपसे हुआ। महर्षि कश्यपने दोनों धर्मपत्नियोंको प्रसन्नतापूर्वक वर देते हुए कहा—तुममें जिसकी जो इच्छा हो, वर माँग लो। कद्रूने तेजस्वी एक हजार नागोंको पुत्ररूपमें पानेका वर माँगा जबकि विनताने बल, तेज, पराक्रममें कद्रूके पुत्रोंसे श्रेष्ठ केवल दो ही पुत्र माँगे। 'तुम दोनों यत्नपूर्वक अपने-अपने गर्भकी रक्षा करना'—कहकर महर्षि कश्यप वनमें चले गये। कद्रूने एक हजार तथा विनताने मात्र दो अण्डे दिये। कद्रूके पुत्र अण्डोंसे निकल गये, परंतु विनताके दोनों अण्डोंसे कोई बच्चा बाहर नहीं निकला। विनताने उत्सुकतावश एक अण्डेको तोड़ दिया और देखा कि उसके पुत्रके शरीरका ऊपरी भाग तो विकसित हुआ है, परंतु निचला भाग अविकसित है। उस बालक अरुणने क्रोधमें आकर शाप दिया कि चूँकि उसने उसके शरीरके विकासमें बाधा पहुँचायी है अतः वह कद्रूकी दासी बनेगी। परंतु यह भी कहा कि दूसरे अण्डेसे जो बच्चा निकलेगा वह उसे शापमुक्त करेगा। शर्त यह है कि वह धैर्यपूर्वक अण्डेसे बालकके निकलनेकी प्रतीक्षा करे। यह कहकर अरुण आकाशमें उड़ गये। अरुण ही सूर्यदेवके रथके सारथी बन गये।

तदनन्तर समय पूरा होनेपर सर्पसंहारक गरुडजीका जन्म हुआ।

गरुडजीकी तेजोमयी कान्ति—गरुडजी जन्मसे ही महान् साहस और पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके तेजसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं। उनमें अपनी इच्छासे नाना रूप धारण करनेकी क्षमता भी थी। उनका प्राकट्य आकाशचारी पक्षीके रूपमें ही हुआ। वे जलती हुई अग्निके समान उद्भासित होकर प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित एवं प्रकाशित हो रहे थे। उनका शरीर थोड़ी ही देरमें विशाल हो गया तथा भयंकर आवाजके साथ वे आकाशमें उड़ गये। सभी देवतागण भगवान्‌के रूपमें उनकी स्तुति करने लगे—

त्वं प्रभुस्तपनः सूर्यः परमेष्ठी प्रजापतिः।
त्वमिन्द्रस्त्वं हयमुखस्त्वं शर्वस्त्वं जगत्पतिः॥
त्वं मुखं पद्मजो विप्रस्त्वमग्निः पवनस्तथा।
त्वं हि धाता विधाता च त्वं विष्णुः सुरसत्तम॥

(महा० आदिपर्व २३। १६—१७)

आप ही प्रभु, तपन सूर्य, परमेष्ठी और प्रजापति हैं। आप ही इन्द्र, हयग्रीव, शिव तथा जगत्पति हैं। आप ही भगवान्‌के मुखस्वरूप ब्राह्मण, पद्मयोनि ब्रह्मा तथा विज्ञानवान् विप्र हैं। आप ही अग्नि, वायु, धाता, विधाता तथा देवश्रेष्ठ श्रीविष्णु हैं।

खगश्रेष्ठ! आप अग्निके समान तेजस्वी इस रूपको शान्त कीजिये। क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान आपकी कान्ति देखकर हमारा मन चञ्चल हो रहा है। आप अपना तेज समेटकर हमारे लिये सुखदायक हो जाइये। देवताओंकी स्तुति सुनकर गरुडजीने अपने तेजको समेट लिया।

माताकी दासत्वमुक्तिहेतु अमृत लाना—गरुडकी माता विनता सर्पोंकी माता कद्रूकी दासी थीं। इससे गरुडको बहुत दुःख था, उन्होंने सर्पोंसे अपनी माताको दास्य भावसे छुड़ानेके लिये शर्त जाननी चाही। इसपर सर्पोंने कहा कि यदि तुम हमें अमृत लाकर दे दो तो तुम्हारी माँ दास्य भावसे मुक्त हो जायगी। अतः गरुडने अमृतकलश लानेका निश्चय किया। अमृतकलश इन्द्रद्वारा रक्षित था, जिसकी देवगण रक्षा कर रहे थे। देवगुरु बृहस्पतिजीने सभी देवताओंको यह कहकर सतर्क किया कि पक्षिराज गरुड महान् शक्तिशाली हैं, वे अमृतका हरण करने आ रहे हैं। देवगुरु बृहस्पतिजीकी बात सुनकर सभी देवता युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये, किंतु पक्षिराज गरुडको देखकर वे काँप उठे। विश्वकर्मा अमृतकी रक्षा कर रहे थे, परंतु गरुडजीसे युद्धमें वे पराजित हो गये। पक्षिराज गरुडने अपने पंखोंसे धूल उड़ाकर समस्त लोकोंमें अन्धकार कर दिया। देवगणोंको अपनी चोंचसे बेधकर घायल कर दिया। इसके उपरान्त गरुडजीने अपना लघु रूप बनाकर अमृतका हरण कर लिया। पक्षिराज गरुडको अमृतका अपहरण कर ले जाते देख इन्द्रने रोषमें भरकर वज्रसे उनपर प्रहार किया। विहगप्रवर गरुडने वज्रसे आहत होकर भी हँसते हुए कहा—देवराज! जिनकी हड्डीसे यह वज्र बना है, उन महर्षिका मैं सम्मान करता हूँ। शतक्रतो! उन महर्षिके साथ-ही-साथ आपका भी सम्मान करता हूँ, इसलिये अपना एक पंख, जिसका आप अन्त नहीं पा सकेंगे को मैं त्याग देता हूँ। आपके वज्रसे मैं आहत नहीं हुआ हूँ। उस गिरे हुए पंखको देखकर लोगोंने कहा—

सुरूपं पत्रमालक्ष्य सुपर्णोऽयं भवत्विति।
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सहस्राक्षः पुरन्दरः।
खगो महदिदं भूतमिति मत्वाभ्यभाषत॥

(महा० आदिपर्व ३३। २४)

जिसका यह सुन्दर पंख है, वह पक्षी सुपर्ण नामसे

विख्यात हो। वज्रकी असफलता देख सहस्रनेत्रवाले इन्द्रने मन-ही-मन विचार किया—अहो, यह पक्षिरूपमें कोई महान् प्राणी है। यह सोचकर इन्द्रने कहा—

बलं विज्ञातुमिच्छामि यत्ते परमनुत्तमम्।
सख्यं चानन्तमिच्छामि त्वया सह खगोत्तम॥

(महा०आदिपर्व ३३। २५)

विहगप्रवर! मैं आपके बलको जानना चाहता हूँ और आपके साथ ऐसी मैत्री स्थापित करना चाहता हूँ, जिसका कभी अन्त न हो।

गरुडजीने कहा—

कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम्।
गुणसंकीर्तनं चापि स्वयमेव शतक्रतो॥

(महा०आदिपर्व ३४। २)

शतक्रतो! साधु पुरुष स्वेच्छासे अपने बलकी प्रशंसा तथा अपने ही मुखसे अपने गुणोंका बखान अच्छा नहीं मानते किंतु सखे! तुमने मित्र मानकर पूछा है, इसलिये मैं बता रहा हूँ—

सपर्वतवनामुर्वीं ससागरजलामिमाम्।
वहे पक्षेण वै शक्र त्वामप्यत्रावलम्बिनम्॥
सर्वान् सम्पिण्डितान् वापि लोकान् सस्थाणुजङ्गमान्।
वहेयमपरिश्रान्तो विद्धीदं मे महद् बलम्॥

(महा०आदिपर्व ३४। ४-५)

अर्थात् हे इन्द्र! पर्वत, वन और समुद्रके जलसहित सारी पृथ्वीको तथा इसके ऊपर रहनेवाले आपको भी अपने एक पंखपर उठाकर मैं बिना परिश्रमके उड़ सकता हूँ अथवा सम्पूर्ण चराचर लोकोंको एकत्र करके यदि मेरे ऊपर रख दिया जाय तो मैं सबको बिना परिश्रमके ढो सकता हूँ। इससे तुम मेरे महान् बलको समझ लो।

अमृत लेकर लौटते समय भगवान्‌से वरप्राप्ति— भगवान् विष्णुने गरुडजीके पराक्रमसे संतुष्ट होकर उन्हें वर माँगनेके लिये कहा। गरुडजीने वर माँगा—हे प्रभो!

मैं आपके ध्वजमें स्थित हो जाऊँ। हे भगवन्! मैं बिना अमृतपानके ही अजर-अमर हो जाऊँ। भगवान्‌ने एवमस्तु कहकर वर प्रदान किया। उसके उपरान्त गरुडजीने भगवान् विष्णुजीको वर माँगनेको कहा—

भगवान् विष्णुने वर माँगा—

तं वव्रे वाहनं विष्णुर्गरुत्मन्तं महाबलम्॥

(महा०आदिपर्व ३३। १६)

महाबली गरुत्मन्! आप मेरे वाहन हो जायँ।

इस प्रकार भगवान् विष्णुने गरुडको अपना वाहन बनाया और अपने ध्वजके ऊपर स्थान भी दिया।

अमृत प्राप्तकर गरुडजीने नागोंके सामने अमृत रखकर अपनी माता विनताको दासत्वमुक्त करा लिया।

अर्चावतार

विश्व-चराचरमें जो छाये, अखिल विश्वके जो आधार।
सदा सर्वगत, चलता जिनमें अखिल विश्वका सब व्यापार॥
कण-कणमें जो व्याप्त नित्य, है अणु-महान् जिनका विस्तार।
जिनसे कभी न खाली कुछ भी—सर्वरूप जो सर्वाकार॥
व्यक्ताव्यक्त सभी कुछ वे ही, वे ही निराकार-साकार।
लेते काष्ठ-धातु-पाषाण प्रतीकोंमें अर्चा-अवतार॥
उन प्रभुको भज सकते सब ही निज-निज भाव-सुरुचि अनुसार।

भगवती मूलप्रकृतिका तुलसीरूपमें अवतरण

(प० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दुबे)

नवनीरद-श्याम, कोटिकन्दर्पलावण्य-लीलाधाम वनमालाविभूषित, पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं। प्रलयके समय सर्वबीजस्वरूपा प्रकृति इनमे ही लीन रहती है और सृष्टिके समय प्रकट होकर क्रियाशीला हो जाती है। सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा स्वय दो रूपाम प्रकट हुए—प्रकृति और पुरुष। परब्रह्म परमात्माके सभी गुण उनकी प्रकृतिमे निहित होते हैं। इन प्रकृतिदेवीके अश कला, कलाश और कलाशाश-भेदसे अनेक रूप हैं। भगवती तुलसीको प्रकृतिदेवीका प्रधान अश माना जाता है। ये विष्णुप्रिया हैं और विष्णुको विभूषित किये रहना इनका स्वाभाविक गुण है। भारतवर्षम वृक्षरूपसे पधारनेवाली ये देवी कल्पवृक्षस्वरूपा हैं। भगवान् श्रीकृष्णके नित्यधाम गोलोकसे मृत्युलोकम इनका आगमन मनुष्योके कल्याणके लिये हुआ है। ब्रह्मवैवर्तपुराण और श्रीमद्देवीभागवतके अनुसार इनके अवतरणकी दिव्य लीला-कथा इस प्रकार है—

भगवती तुलसी भगवान् श्रीकृष्णके नित्यधाम गोलोकमे तुलसी नामकी ही गोपी थीं। वे भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया अनुचरी, अर्धाङ्गिनी और प्रेयसी सखी थीं। एक दिन वे भगवान् श्रीकृष्णके साथ रासमण्डलम हास-विलासमे रत थीं कि रासकी अधिष्ठात्री देवी भगवती राधा वहाँ पहुँच गयीं और उन्हाने क्रोधपूर्वक इन्ह मानवयोनिमे उत्पन्न होनेका शाप दे दिया। गोलोकमे ही भगवान् श्रीकृष्णके प्रधान पार्षदोमे एक सुदामा नामक गोप भी था। एक दिन उससे श्रीराधाजीकी सखियाका कुछ तिरस्कार हा गया अत श्रीराधाजीने उसे दानवयोनिम उत्पन्न होनेका शाप दे दिया।

कालान्तरम भगवता तुलसीने भारतवर्षम राजा धर्मध्वजकी पुत्रीक रूपम जन्म लिया। अतुलनीय रूपराशिकी स्वामिनी हानके कारण यहाँ भी उनका नाम 'तुलसी' ही पडा। उधर श्रीकृष्णका ही अशरूप पार्षद सुदामा परम वैष्णव दानव दम्भके पुत्रके रूपमे उत्पन्न हुआ और उसका नाम शङ्खचूड हुआ। उसे भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे पूर्वजन्मकी स्मृति थी। साथ ही वह दानवेन्द्र श्रीकृष्ण-मन्त्र और उन्हींके सर्वमङ्गलमय कवचसे सम्पन्न होनेक कारण त्रैलोक्यविजयी था।

भगवती तुलसीने भगवान् नारायणको पतिरूपम प्राप्त करनेके लिये बदरीवनम अत्यन्त कठार तपस्या की।
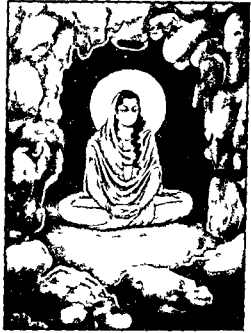
तुलसीकी घोर तपस्याको देखकर लाकपितामह ब्रह्माजीने उसे वर देते हुए कहा—तुलसी! भगवान् श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट सुदामा नामक गोप जो उनका साक्षात् अश ही है, राधाके शापसे शङ्खचूड नामसे दनुकुलमे उत्पन्न हुआ है। इस जन्मम वह श्रीकृष्ण-अश तुम्हारा पति होगा। इसके बाद वे शान्तस्वरूप नारायण तुम्हे पतिरूपसे प्राप्त होंगे। यही बात ब्रह्माजाने शङ्खचूडसे भी कहीं और उन दोनाका गान्धर्व-विवाह करा दिया।

परम सुन्दरी तुलसीके साथ आनन्दमय जीवन बिताते हुए प्रतापी राजाधिराज शङ्खचूडने दीर्घकालतक राज्य किया। देवता दानव असुर, गन्धर्व किन्नर और राक्षस—सभी उसके वशवर्ती थे। अधिकार छिन जानेके कारण देवताआकी स्थिति भिक्षुकों-जैसी हो गयी थी। वे ब्रह्माजाके पास जाकर अत्यन्त विलाप करने लग। उनकी दयनीय दशा देखकर ब्रह्माजी उन सबका लेकर भगवान् शङ्करके पास गये। शिवजी उनकी बाते सुनकर ब्रह्माजी-सहित वैकुण्ठम श्रीहरिक पास गय। वहाँ पहुँचकर ब्रह्माजीने बडी विनम्रतासे सम्पूर्ण परिस्थिति स्पष्ट की

जिसे सुनकर भगवान् श्रीहरिने कहा—'हे ब्रह्मन्! शङ्खचूड पूर्वजन्मम सुदामा नामक गोप था, वह मेरा प्रधान पार्षद था, श्रीराधाजीके शापसे उसे दानवयोनिकी प्राप्ति हुई है। वह अपने कण्ठम मेरा सर्वमङ्गल नामक कवच धारण किये हुए है, उसके प्रभावसे वह त्रैलोक्यविजयी है। उसकी पत्नी तुलसी भी पूर्वजन्मम गोलोकम गोपी थी और राधाजीके शापसे मृत्युलोकमे अवतरित हुई है। वह परम पतिव्रता है, अत उसके पातिव्रतके प्रभावसे भी शङ्खचूडको कोई मार नहीं सकता। परतु तुलसी मेरी नित्यप्रिया है, अत सर्वात्मरूप मैं उसके लौकिक सतीत्वको भग करूँगा और ब्राह्मणवेशसे शङ्खचूडसे कवच माँग लूँगा तब भगवान् शङ्कर मरे दिये शूलके प्रहारसे उसका वध कर सकेगे। तदनन्तर वह शङ्खचूड भी अपनी दानवयानिको छोडकर मर गोलोकधाममे पुन चला जायगा। तुलसी भी शरीर त्यागकर पुन गोलोकम मरी नित्य-प्रियाके रूपम प्रतिष्ठित होगी।'

श्रीहरिका यह कथन सुनकर भगवान् शङ्कर शूल लेकर ब्रह्माजी और देवताओसहित श्रीहरिको प्रणाम कर वापस चले आये। तव दवताआने शङ्खचूडको युद्धके लिये ललकारा। श्रीहरिने अपने कथनानुसार वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण कर शङ्खचूडसे अपना सर्वमङ्गलकारी 'कृष्णकवच' माँग लिया और शङ्खचूडका स्वरूप धारण कर तुलसीसे हास-विलास किया, जिससे उसका सतीत्व भग हो गया। उसी समय शङ्करजीने श्रीहरिके दिये त्रिशूलका प्रहार कर शङ्खचूडका वध कर दिया।

इधर जब तुलसीको श्रीहरिद्वारा अपने सतीत्व-भग और शङ्खचूडके निधनकी जानकारी हुई तो उसने श्रीहरिको शाप देते हुए कहा—हे नाथ! शङ्खचूड आपका भक्त था, आपन अपने भक्तको मरवा डाला। आप अत्यन्त पाषाणहृदय हैं, अत आप पाषाण हो जायँ। भगवान् श्रीहरिने उसके शापको स्वीकार करते हुए कहा—हे देवि! शङ्खचूड मरे नित्यधाम गोलोकमे गया है, अब तुम भी यह शरीर त्यागकर गोलोकको जाओ। तुम्हारा यह शरीर नदीरूपमे परिणत होकर 'गण्डकी' के नामसे प्रसिद्ध होगा। मैं तुम्हार शापको सत्य करनेके लिये भारतवर्षम पाषाण (शालग्राम) बनकर तुम्हार (गण्डकी नदीके) तटपर ही वास करूँगा। गण्डकी अत्यन्त पुण्यमयी नदी होगी और मेरे शालग्रामस्वरूपके जलका पान करनेवाला समस्त पापासे निर्मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जायगा। हे देवि! तुम्हारे केशकलाप तुलसी नामक पवित्र वृक्ष होगे। त्रैलोक्यम देवपूजामे काम आनेवाल जितने भी पत्र-पुष्प हैं, उनमे तुलसी प्रधान मानी जायगी।

इस प्रकार लीलामय प्रभु भक्तोक हितक लिये पाषाण (शालग्राम) और उनकी नित्यप्रिया तुलसी तुलसीवृक्षके रूपम भारतवर्षमे अवतरित हुईं।

तुलसीक पत्तेसे टपकता हुआ जल जो अपने सिरपर धारण करता है, उसे गङ्गास्नान और दस गोदानका फल प्राप्त होता है। जिसने तुलसीदलके द्वारा सम्पूर्ण श्रद्धाके साथ प्रतिदिन भगवान् विष्णुका पूजन किया है उसने दान, होम यज्ञ और व्रत आदि सब पूर्ण कर लिय। तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा कर लेनेपर कान्ति, सुख भोग-सामग्री यश लक्ष्मी, श्रेष्ठ कुल सुशीला पत्नी, पुत्र कन्या, धन, आरोग्य, ज्ञान, विज्ञान, वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र, पुराण, तन्त्र और सहिता—सब करतलगत हा जाता है। तुलसीके मूलकी मृत्तिका जिसके अङ्गमे लगी हो, सैकडो पापोसे युक्त होनेपर भी उसे यमराज देखनेम समर्थ नहीं होते।

जैसे पुण्यसलिला गङ्गा मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं उसी प्रकार ये तुलसी भी कल्याण करनेवाली हैं। यदि मञ्जरीयुक्त तुलसीपत्रोके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की जाय तो उसके पुण्यफलका वर्णन करना असम्भव है। जहाँ तुलसीका वन है, वहीं भगवान् श्रीकृष्णकी समीपता है तथा वहीं ब्रह्मा और लक्ष्मीजी सम्पूर्ण देवताआके साथ विराजमान हैं। इसलिये अपने निकटवर्ती स्थानमे तुलसीदेवीको रोपकर उनकी पूजा करनी चाहिये। तुलसीके निकट जा स्तोत्र-मन्त्र आदिका जप किया जाता है वह सब अनन्तगुना फल देनेवाला होता है। जो तुलसीकी मञ्जरीसे विष्णु तथा शिवका पूजन करते हैं, वे नि सन्देह मुक्ति पाते हैं जो लोग तुलसी काष्ठका चन्दन धारण करते हैं, उनकी देहको पाप स्पर्श नहीं करते।

प्रेत पिशाच कूष्माण्ड ब्रह्मराक्षस भूत और दैत्य आदि सब तुलसीवृक्षसे दूर भागते हैं। ब्रह्महत्यादि पाप और खोटे विचारसे उत्पन्न हानेवाले रोग—य सब तुलसी-

वृक्षके समीप नष्ट हो जाते हैं। जिसने भगवान्‌की पूजाके लिये पृथ्वीपर तुलसीका बगीचा लगा रखा है, उसने सौ यज्ञाका अनुष्ठान पूर्ण कर लिया। जो भी भगवान्‌की प्रतिमाओ तथा शालग्राम शिलाओपर चढे हुए तुलसीदलको प्रसादके रूपमे ग्रहण करता है, वह विष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। जो श्रीहरिकी पूजा करके उन्हे निवेदन किये हुए तुलसीदलको अपने मस्तकपर धारण करता है, वह पापसे शुद्ध होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। कलियुगम तुलसीका पूजन कीर्तन, ध्यान रोपण और धारण करनेसे वे पापको जला देती हैं तथा स्वर्ग ओर माक्ष प्रदान करती हैं। श्राद्ध और यज्ञ आदि कार्योमे तुलसीका एक पत्ता भी महान् पुण्य प्रदान करनेवाला है। जिसने तुलसीकी शाखा तथा कोमल पत्तियासे भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। कामल तुलसीदलाके द्वारा प्रतिदिन श्रीहरिकी पूजा करके मनुष्य अपनी सैकडो और हजारो पीढियोको पवित्र कर सकता है। जो तुलसीके पूजन आदिका दूसराको उपदेश देता है और स्वय भी आचरण करता है, वह भगवान् श्रीलक्ष्मी-पतिके परमधामको प्राप्त होता है। जिसने तुलसीकी सेवा की है, उसने गुरु, ब्राह्मण, तीर्थ और देवता—सबकी भलीभाँति सेवा कर ली है। तुलसीका नामोच्चारण करनेपर भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। जिसके दर्शनमात्रसे करोडा गोदानका फल प्राप्त होता है, उस तुलसीका पूजन और वन्दन लोगाको अवश्य करना चाहिये। भगवान् विष्णुके नैवेद्यमे तुलसीपत्र अवश्य होना चाहिये। भगवान् विष्णु, एकादशीव्रत, गङ्गा, तुलसी, ब्राह्मण और गौएँ—ये मुक्तिप्रद हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण (प्रकृ० २२। ३३-३४)-मे बताया गया है कि तुलसी-पूजनोपरान्त निमलिखित नामाष्टकका पाठ करनेसे अश्वमेधयज्ञके फलकी प्राप्ति होती है—

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी।
एतन्नामाष्टक चैव स्तोत्र नामार्थसयुतम्।
य पठेत्ता च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफल लभेत्॥

तुलसी! तुम अमृतसे उत्पन्न हो और केशवको सदा ही प्रिय हो। कल्याणि! मैं भगवान्‌की पूजाके लिये तुम्हारे पत्तोको चुनता हूँ। तुम मेरे लिये वरदायिनी बनो। तुम्हारे अङ्गासे उत्पन्न होनेवाले पत्रो और मञ्जरियाद्वारा मैं सदा ही जिस प्रकार श्रीहरिका पूजन कर सकूँ, वैसा उपाय करो। पवित्राङ्गी तुलसी! तुम कलिमलका नाश करनेवाली हो—इस भावके मन्त्रोसे जो तुलसीदलको चुनकर उनसे भगवान् वासुदेवका पूजन करता है, उसकी पूजाका करोड गुना फल होता है।

~~ 0 ~~

मुक्तिदायिनी श्रीगङ्गाजीका भूलोकपर अवतरण

(आचार्य डॉ० श्रीवागीशजी शास्त्री वाग्योगाचार्य)

श्रीगङ्गाके प्रादुर्भावमे मूल कारण तपस्या है। भारतीय सस्कृतिमे तपके महत्त्वको सर्वोच्च माना गया है। तपद्वारा अनिर्वचनीय ऊर्जाका आविर्भाव होता है। राजा भगीरथने हजारो वर्षोतक तपस्या कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया कि वे कमण्डलुके उस पवित्र जलको कुछ बिन्दुआका विसर्जन करें, जिन्हे उन्हाने वामनावतारके समय त्रिविक्रम वामनके ब्रह्माण्ड नापनेके लिय उठे चरणक अङ्गुष्ठनखस विदीर्ण दो भागाम विभक्त हुए ब्रह्माण्डसे फूट पडी जलधाराक रूपम कमण्डलुम सञ्चित कर लिया था।

ब्रह्माजी राजा भगीरथकी दीर्घकालव्यापिनी तपस्यासे प्रसन्न हुए, किंतु उन्हाने भगीरथसे कहा कि कमण्डलुस विसर्जित यह जलधारा पृथ्वीलोकतक जाते-जाते प्रबल जल-प्रवाहका रूप धारण कर लेगी। यदि इस प्रबल जल-प्रवाहको किसीने न रोका तो यह जलधारा पृथिवीका भेदन कर पातालम प्रवेश कर जायगी। इसे पृथ्वीपर ले जानेका आपका प्रयत्न विफल होगा। इसलिये पहले एक ऐसे शक्तिशाली पुरुषको प्रस्तुत करे, जा इसके प्रबल वेगको रोक सकता हो। फिर उन्होने बताया कि कैलासवासी शिवम ही ऐसा सामर्थ्य है अत इसके लिये उन्हे आप प्रसन्न करे।

महादेव शिवको प्रसन्न करनेके लिये राजा भगीरथने तपस्या प्रारम्भ कर दी। सैकडा वर्षोंकी तपस्यासे शिव द्रवित हा गये। उन्हाने राजा भगीरथसे वर माँगनेके लिये कहा। राजा भगीरथने ब्रह्माजीद्वारा कमण्डलुस विसर्जित विष्णुपदी (जलबिन्दुआ)-के प्रवाहको राकनेकी प्रार्थ

की। महादेवजीकी स्वीकृति मिलनेपर राजा भगीरथ पुन ब्रह्माजीकी शरणमे पहुँचे और उनसे प्रार्थना की कि वे कमण्डलुसे विष्णुपदी (जलबिन्दुओ)-को छोड। उनके द्वारा कमण्डलुसे जलबिन्दुओके छोडनेपर ध्रुवचक्र और शिशुमारचक्रसे नीचे आते-आते बिन्दुओने भीषण जलप्रवाहका रूप धारण कर लिया। इधर शिव उस प्रबल जलप्रवाहको रोकनेके लिये अपनी जटाएँ बिखेरकर खडे हो गये। प्रबल प्रवाहमे परिणत विष्णुके उस चरणोदकने सोचा कि वह शिवको लपेटकर पाताललोकमे प्रविष्ट हो जाय, किंतु महादेव शिवकी जटाओने विशाल विपिनरूपी कटाहका रूप धारण कर लिया कि जलका वह प्रबल प्रवाह एक वर्षतक शिवकी जटाआके भीषण काननम ही चक्कर काटता रहा।

महादेव शकरको प्रसन्न करनेके लिये राजा भगीरथने पुन तप करना प्रारम्भ किया। शिवने प्रसन्न होकर जटाओंकी एक लट खोल दी। उस अलक (जटा)-से निकलनेके कारण उस जलसमूहका नामकरण 'अलकनन्दा' हुआ। वह जलधारा हिमालयसे मथर गतिपूर्वक पृथ्वीकी ओर प्रवाहित होने लगी, तब उसका नामकरण हुआ 'मन्दाकिनी'। मन्दाकिनीके मार्गमे जह्नुका यज्ञसम्भार पडा। वे उसे बहाकर ले जाने लगीं तो जह्नुने मन्दाकिनीका पान कर लिया। राजा भगीरथने उन्हे भी तपसे प्रसन्न किया। सुहोत्रसुत जह्नुने मन्दाकिनीको अपने दाहिने कानसे बाहर निकाल दिया।[1] हिमालयमे जह्नु-कन्दरासे होकर मन्दाकिनी प्रवाहित होती हैं। तब मन्दाकिनीका नामकरण 'जाह्नवी' हुआ। हिमालयसे पृथिवीपर आते ही जाह्नवीका नामकरण 'गङ्गा' हुआ—'**गाम्—पृथिवीम्, गा—गता—गङ्गा।**' तप प्रसूत गङ्गाका यह इतिवृत्त किसे श्रद्धाभिभूत नहीं करता।

कपिलमुनिकी क्रोधाग्निसे सगरके साठ हजार पुत्र दग्ध हो गये थे। अपने उन पूर्वजोको मुक्ति प्रदान करनेके लिये राजा भगीरथ अपने रथके पीछे-पीछे गङ्गाजीको लेकर गङ्गासागर पहुँचे। भस्मावशेष उनके पूर्वज गङ्गाके पवित्र जलका सस्पर्श पाकर मुक्त हो गये। भगीरथके रथका अनुवर्तन करनेवाली गङ्गाकी प्रसिद्धि 'भागीरथी'के नामसे हुई। गङ्गाके पृथिवीपर अवतरणकी तिथि उस समय मानी गयी है, जब सूर्यकी तिग्म किरणोसे जीव-जन्तु त्रस्त हो रहे थे। ज्येष्ठमासमे सूर्य-किरणोकी प्रखरता सर्वविदित है। इस मासके शुक्लपक्षकी हस्तनक्षत्रयुक्त दशमी गङ्गावतरणकी तिथि ठहरती है। इस तिथिपर गङ्गाजीमे स्नान, दान और सङ्कल्प आदि करनेसे दशविध पापोका नाश होता है।[2] इस कारण इस पावन पर्वकी प्रसिद्धि 'गङ्गादशहरा'—दशविध पापोको हरण करनेवाली गङ्गाके रूपमे है। यदि इस दिन गङ्गामे स्नान करनेवाला व्यक्ति दस प्रकारके दोषोको त्याग करनेका सङ्कल्प ले ले तो न केवल वह स्वय मुक्त होगा अपितु अन्य जनोको भी दोषोसे मुक्ति प्रदान करनेमे समर्थ हो सकेगा। वे दस प्रकारके दोष इस प्रकार हैं—

शारीरिक—कायिक दोष—(१) बिना दी हुई, अननुमित वस्तुओको हडप लेना (२) अविहित हिंसा करना तथा (३) परस्त्रियोसे अवैध सम्बन्ध बनाना।

वाचिक दोष—(१) कठोर वाणी बोलना, (२) असत्य भाषण करना (३) चुगलखोरी करना तथा (४) अनर्गल बकझक करना।

मानसिक दोष—(१) पराये धनपर लालचका आना, (२) मन-ही-मन किसीके विरुद्ध अनिष्ट चिन्तन करना तथा (३) नास्तिक बुद्धि रखना—

अदत्तानामुपादान हिंसा चैवाविधानत ।
परदारोपसेवा च शारीर त्रिविध स्मृतम्॥
पारुष्यमनृत चैव पैशुन्य चापि सर्वश ।
असम्बद्धप्रलापश्च वाड्मय स्याच्चतुर्विधम्॥
परद्रव्येष्वभिध्यान मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविध कर्म मानसम्॥

(मनु० १२।७ ६ ५)

पापविनाशिनी श्रीगङ्गाकी शरणमे आया प्रत्येक व्यक्ति सङ्कल्प लेकर कहे—हे गङ्गे! पूर्वजन्म या इस जन्ममे हुए मेरे इन दस प्रकारके पापोका शमन हो ऐसा सङ्कल्प लेनेपर स्वयका और लोकका उद्धार हो सकता है।

~~~०~~~

---

१ कई पुराणोमे जह्नुऋषिकी जघासे गगाजीके प्राकट्यका वर्णन मिलता है—'ततो गङ्गातिवेगेन मुनिजह्वाद्बहिर्गता। (महाभागवतपुराण ७०।३३)

२ ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसयुता। हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता॥ (ब्रह्मपुराण)
~~~

नर्मदा-अवतार

(श्रीमती मधुलताजी गौतम एम०ए० (हिन्दी))

इस ब्रह्मसृष्टिमे पृथ्वीपर नर्मदाका अवतरण तीन बार हुआ है। प्रथम बार पाद्मकल्पके प्रथम सतयुगमे, द्वितीय बार दक्षसावर्णि मन्वन्तरके प्रथम सतयुगमे और तृतीय बार वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके प्रथम सतयुगमे। तीनो बारकी नर्मदा-अवतरणकी कथाएँ इस प्रकार हैं—

प्रथम कथा—इस सृष्टिसे पूर्वकी सृष्टिमे समुद्रके अधिदेवतापर ब्रह्माजी किसी कारण रुष्ट हो गये और उन्होने समुद्रको मानवजन्म-धारणका शाप दिया फलत पाद्मकल्पमे समुद्रके अधिदेवता राजा पुरुकुत्सके रूपमे पृथ्वीपर उत्पन्न हुए।

एक बार पुरुकुत्सने ऋषियो तथा देवताओसे पूछा—'भूलोक तथा दिव्य लोकमे सर्वश्रेष्ठ तीर्थ कौन-सा है?'

देवताओने बताया—'रेवा ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हैं। वे परम पावनी तथा शिवको प्रिय हैं। उनकी अन्य किसीसे तुलना नहीं है।'

राजा बोले—तब उन तीर्थोत्तमा रेवाको भूतलपर अवतीर्ण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। ऋषियो तथा देवताओने अपनी असमर्थता प्रकट की। उन्होने कहा—वे नित्य शिव-सान्निध्यमे ही रहती हैं। शकरजी भी उन्हे अपनी पुत्री मानते हैं वे उन्हे त्याग नहीं सकते।

लेकिन राजा पुरुकुत्स निराश होनेवाले नहीं थे। उनका सकल्प अटल था। विन्ध्यके शिखरपर जाकर उन्होने तपस्या प्रारम्भ की। पुरुकुत्सकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट हुए और उन्होने राजासे वरदान माँगनेको कहा। पुरुकुत्स बोले—'परम तीर्थभूता नर्मदाको भूतलपर आप अवतरण कराये। उन रेवाके पृथ्वीपर अवतरणके सिवाय मुझे आपसे और कुछ नहीं चाहिये।'

भगवान् शिवने पहले राजाको यह कार्य असम्भव बतलाया, किंतु जब शकरजीने देखा कि ये कोई दूसरा वर नहीं चाहते तो उनकी निस्पृहता एव लोकमङ्गलकी कामनासे भगवान् भोलेनाथ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने नर्मदाको पृथ्वीपर उतरनेका आदेश दिया।

नर्मदाजी बोलीं—'पृथ्वीपर मुझे कोई धारण करनेवाला हो और आप भी मेरे समीप रहेगे तो मैं उतर सकती हूँ।' शिवजीने स्वीकार किया कि 'वे सर्वत्र नर्मदाकी सन्निधिमे रहेगे'। आज भी नर्मदाका हर पत्थर शिवजीकी प्रतिमाका द्योतक है तथा नर्मदाका पावन तट शिवक्षेत्र कहलाता है। जब भगवान् शिवने पर्वतोको आज्ञा दी कि आप नर्मदाको धारण करे, तब विन्ध्याचलके पुत्र पर्यङ्कपर्वतने नर्मदाको धारण करना स्वीकार किया। पर्यङ्कपर्वतके मकल नामकी चोटीसे बाँसके पेडके अदरसे माँ नर्मदा प्रकट हुईं। इसी कारण इनका एक नाम 'मकलसुता' हो गया। देवताओने आकर प्रार्थना की कि यदि आप हमारा स्पर्श करेगी तो हमलोग भी पवित्र हो जायँगे। नर्मदाने उत्तर दिया—मैं अभीतक कुमारी हूँ, अत किसी पुरुषका स्पर्श नहीं करूँगी, पर यदि कोई हठपूर्वक मेरा स्पर्श करेगा तो वह भस्म हो जायगा। अत आपलोग पहले मेरे लिये उपयुक्त पुरुषका विधान करे। देवताओने बताया कि राजा पुरुकुत्स आपके सर्वथा योग्य हैं वे समुद्रके अवतार हैं तथा नदियोके नित्यपति समुद्र ही हैं। वे तो साक्षात् नारायणके अङ्गसे उत्पन्न उन्हींके अश हैं अत आप उन्हींका वरण करे। नर्मदाने राजा पुरुकुत्सको पतिरूपमे वरण कर लिया फिर राजाकी आज्ञासे नर्मदाने अपने जलसे देवताओको पवित्र किया।

द्वितीय कथा—दक्षसावर्णि मन्वन्तरमे महाराज हिरण्यतेजाने नर्मदाके अवतरणके लिये १४ हजार वर्षतक तपस्या की। तपस्यासे सतुष्ट होकर भगवान् शिवने दर्शन दिया तब हिरण्यतेजाने भगवान् शकरसे नर्मदा-अवतरणके लिये प्रार्थना की। नर्मदाजीने इस मन्वन्तरमे अवतार लेते समय अत्यन्त विशाल रूप धारण कर लिया। ऐसा लगा कि वे द्युलोक तथा पृथ्वीका भी प्रलय कर देगी। ऐसी स्थितिमे पर्यङ्कपर्वतके शिखरपर भगवान् शकरके दिव्य लिङ्गका प्राकट्य हुआ। उस लिङ्गसे हुंकारपूर्वक एक ध्वनि निकली कि रेवा! तुम्हे अपनी मर्यादामे रहना चाहिये। उस ध्वनिको सुनकर नर्मदाजी शान्त हो गयीं और अत्यन्त छोटे रूपमे उस आविर्भूत लिङ्गको स्नान कराती हुई पृथ्वीपर प्रकट हो गयीं। इस कल्पमे जब वे अवतीर्ण हुईं तो उनके विवाहकी बात नहीं उठी क्योंकि उनका विवाह तो प्रथम कल्पमे ही हो चुका था।

तृतीय कथा—इस वैवस्वत मन्वन्तरमें राजा पुरूरवाने नर्मदाको भूतलपर लानेके लिये तपस्या की। यह ध्यान देने योग्य है कि पुरूरवाने प्रथम बार अरणि-मन्थन करके अग्निदेवको प्रकट किया था आर उन्हे अपना पुत्र माना था। वैदिक यज्ञ इस मन्वन्तरमे पुरूरवासे ही प्रारम्भ हुए। उससे पहले लोग ध्यान तथा तप करते थे।

पुरूरवाने तपस्या करके शकरजीको प्रसन्न किया और नर्मदाके पृथ्वीपर उतरनेका वरदान माँगा। इस कल्पमे विन्ध्यके पुत्र पर्यङ्कपर्वतका नाम अमरकण्टक पड गया था, क्याकि देवताओको जा असुर कष्ट पहुँचाते थे, इसी पर्वतके वनोम रहने लगे थे। जब भगवान् शकरके बाणसे जलकर त्रिपुर इस पर्वतपर गिरा तो उसकी ज्वालासे जलकर असुर भस्म हो गये।

नर्मदाके अवतरणकी यह कथा द्वितीय कल्पके ही समान है। इस बार भी नर्मदाने भूतलपर उतरते समय प्रलयङ्कारी रूप धारण किया था, किंतु भगवान् भोलेनाथने उन्हे अपनी मर्यादामे रहनेका आदेश दे दिया था जिससे वे अत्यन्त सकुचित होकर पृथ्वीपर प्रकट हुईं।

~~o~~
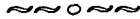
व्रजमें गिरिराज गोवर्धनका अवतरण

(डॉ० श्रीताराचन्द्रजी शर्मा, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, साहित्यरत्न धर्मरत्न)

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जन्मभूमि, केलि-क्रीडा एव लीलास्थली होनेका गौरव प्राप्त होनेसे व्रजभूमि भारतवर्षम अति पावन है। इस व्रजभूमिम गोपालकृष्णकी गौचारण-स्थली एव गोचरभूमि गोवर्धनका अपना विशिष्ट महत्त्व है, जहाँ सात कास (इक्कीस कि०मी०)-की परिक्रमावाला गिरिराज गोवर्धन स्वय श्यामसुन्दरक स्वरूपमे विराजमान है। मथुरासे पश्चिम दिशाम लगभग अट्ठारह कि०मी०की दूरीपर अवस्थित यह गिरिराज गावर्धनपर्वतके नामसे प्रसिद्ध है। श्रीगिरिराज महाराज कलियुगके प्रथम देव हैं और व्रजवासियोके परम आराध्य हैं। यह मान्यता है कि गिरिराजजीकी शरणमे मनसे माँगी मनौती अवश्य पूर्ण होती है और शरणागतकी इच्छापूर्तिमे गिरिराजजी क्षणिक भी दर नहीं करते। अस्तु यह आज भी असख्य जनताकी श्रद्धाके पात्र हैं। देशके विभिन्न भागासे करोडा नर-नारी गिरिराजजीकी परिक्रमाकर इनकी पावन रजको सिरपर धारण करके अपने जीवनको धन्य मानते हैं। यहाँ दिन-रात 'गिरिराज महाराजकी जय' के उद्घोषासे परिक्रमामार्ग गुँजित रहता है।

पूर्वकालम यह पर्वत बहुत ऊँचा था, किंतु अब भूमिमे शनै -शनै अदृश्य होता जा रहा है। शास्त्रोम इनका तीन योजन ऊँचा होनेका प्रमाण प्राप्त होता है। इनकी ऊँचाई एव विस्तारमे भौगोलिक क्षरण तथा अपक्षरणकी प्रक्रियाके कारण निरन्तर कमी होना स्वाभाविक है। श्रीकृष्ण-कालमे श्यामल गिरिकन्दराआसे आच्छादित, मनमोहक हरित लताआ सघन कुंज-निकुंजो, वन-उपवना, श्वेत ताल-तलैयाँ तथा स्वच्छ झरनोसे परिवेष्टित आनन्दकन्द योगिराज श्रीकृष्णकी रासक्रीडा-स्थली गिरिराजको भगवान् श्रीकृष्णने सात वर्षकी आयुमे इन्द्रके प्रकोपसे व्रजवासियाकी रक्षाहेतु अपनी उँगलीपर उठाया और सप्ताहपर्यन्त धारण करके इन्द्रदेवका मान-मर्दन किया।

धार्मिक दृष्टिसे गिरिराजजीका प्राचीनकालसे ही व्रजमें सर्वाधिक गौरवपूर्ण स्थान और महत्त्व रहा है। व्रजमे मान्यता है कि इनकी पूजन-परिक्रमाके मन्त्र—**'गोवर्धनगिरे तुभ्य गोपाना सर्वरक्षकम्। नमस्ते देवरूपाय देवाना सुखदायिने॥'**-का दो सहस्र बार जप करके चार बार प्रदक्षिणा करनेपर सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है। श्रीगिरिराजजीकी तलहटी एव कन्दराओंम भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाजीके विहार-स्थल रहे हैं। अतएव इस भूमिका विशेष महत्त्व है।

गिरिराज गोवर्धनके अवतरणके सम्बन्धमें गर्गसहितामें उल्लेख है कि भारतके पश्चिमी भागम स्थित शाल्मलि द्वीपम पर्वतराज श्रीद्रोणाचलके घरम उनकी पत्नीके गर्भसे श्रीगोवर्धननाथजीका जन्म हुआ। देवताआने पुष्पवर्षा करके श्रीगोवर्धनजीकी वन्दना की। एक समय पुलस्त्य ऋषि

भ्रमण करते हुए वहाँ गये। वहाँ नाना प्रकारके हरे-भरे वृक्ष-लताओंसे परिपूरित सुन्दर श्यामल गोवर्धनको देखकर उन्हें अपने स्थलपर स्थापित करनेकी प्रबल इच्छा जाग्रत् हो गयी क्योंकि काशीके निकट कोई ऐसा पर्वत नहीं था, जहाँ शान्तिसे बैठकर वे भजन कर सकें। अतः आपने द्रोणाचलजीसे गोवर्धनजीको देनेका अनुरोध किया। पर्वतराज बाध्य होनेसे इन्कार नहीं कर सके। गोवर्धनजीने दुःखी होकर ऋषिसे यह तय कर लिया कि मैं आपके हाथमें रहकर ही चलूँगा और आप मुझे कहीं भी नीचे नहीं रख सकेंगे। यदि किसी प्रकार नीचे रख देंगे तो वहीं रह जाऊँगा और तिलभर भी आगे नहीं चलूँगा। पुलस्त्यऋषिने इस शर्तको स्वीकारकर अपने हाथमें गोवर्धनजीको रख काशीको प्रस्थान किया। मथुरा पहुँचनेतक तो गिरिराजजी हल्के रहे, किन्तु फिर इतने भारी हो गये कि ऋषि हाथमें रखनेमें असमर्थ हो गये और उन्हें भूमिपर रख दिया। सन्ध्या-वन्दन, स्नान तथा भोजनके उपरान्त ऋषि चेष्टापूर्वक गिरिराजजीको उठाने लगे तो गिरिराजजीने जानेसे इन्कार कर दिया। तब ऋषिने क्रुद्ध होकर यह शाप दे दिया कि तुम नित्य प्रति एक तिलके समान घटते जाओगे। गिरिराजजीने ऋषिके शापको ग्रहण किया, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण भगवान् व्रजमें अवतरित होकर विविध लीलाएँ करेंगे, जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

वाराहपुराणमें वर्णन आता है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे श्रीहनुमान्‌जी उत्तराचलसे गोवर्धनजीको कन्धेपर रखकर ला रहे थे तो देववाणी हुई कि समुद्रमें सेतु बन गया है। देववाणी सुन हनुमान्‌जीने इन्हें यहीं पृथ्वीपर रख दिया। तब हरिभक्त गिरिराजजीने हनुमान्‌जीसे कहा—'आपने मुझे भगवान्‌के चरणचिह्नोंसे वंचित किया है, अतः मैं आपको शाप दे दूँगा।' इसपर हनुमान्‌जी बोले—'हे गिरिवर! क्षमा करें। जब इन्द्रकी पूजाका खण्डन करके भगवान् श्रीकृष्ण आपकी पूजा करवायेंगे तो इन्द्र कुपित होकर व्रजमें उत्पात करने लगेगा। उस समय आप व्रजवासियोंके रक्षक होंगे। द्वापरके अन्त समयमें श्रीकृष्णजीका अवतार होगा वे ही आपकी इच्छाकी पूर्ति करेंगे।' ऐसा कहकर हनुमान्‌जी आकाशमार्गसे श्रीरामजीके पास गये और उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया। इसपर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'सेतुबन्धहेतु लाये गये ये सब पर्वत मेरे चरणस्पर्शसे विमुक्त हो गये, परंतु गोवर्धनको अपने हस्तकरतल तथा सर्वाङ्गस्पर्शसे पवित्र करूँगा। मैं वसुदेवके कुलमें जन्म लेकर व्रजमें विविध लीला करूँगा तथा गोवर्धनके ऊपर गौचारण गोपियोंके संग अद्भुत विलासादिसे उसे हरिदासश्रेष्ठ बना दूँगा। व्रजमें गोवर्धन मेरी लीलाओंके परम सहायकरूपसे प्रसिद्ध होगा।'

गोवर्धनकी उत्पत्तिके बारेमें गर्गसंहितामें इस प्रकारसे भी कहा गया है कि कंससंतापके कारण जब देवताओंने प्रार्थना की तो श्रीकृष्णने व्रजके उद्धारहेतु अवतार धारण करनेकी इच्छा जब श्रीराधिकाजीको सुनायी तो वे बोलीं कि मैं आपका वियोग एक पल भी नहीं सह सकती। इसपर श्रीकृष्णने कहा कि आपको संग लेकर ही व्रजमें अवतार धारण करूँगा। इसपर श्रीराधिकाजीने कहा—प्राणनाथ! जहाँ वृन्दावन नहीं है, जहाँ यह यमुनानदी नहीं है तथा जहाँ गोवर्धनपर्वत नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिल सकता—

> यत्र वृन्दावनं नास्ति न यत्र यमुना नदी।
> यत्र गोवर्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम्॥

यह सुनकर श्रीकृष्णने अपने धाम गोलोकसे चौरासी कोस विस्तृत भूमि और गिरिराज गोवर्धन और यमुनानदीको भूतलपर भेज दिया।

भगवान् श्रीकृष्णके बाल्यकालतक समस्त व्रजवासी गोपी-ग्वाल गौ-बछड़े लेकर कार्तिक अमावस्याकी लक्ष्मीपूजाके पश्चात् प्रतिपदाको सायंकाल विभिन्न पक्वान्नोंके साथ विधि-विधानसे मेघोंके राजा इन्द्रदेवका पूजन किया करते थे। यशोदामैया भी एक बार इस पूजाके लिये पक्वान्न बना रही थीं तो कृष्णकन्हैया खेलनेके उपरान्त आकर कलेऊ माँगने लगे। इसपर माँने कहा कि आज तो इन्द्रदेवताकी पूजा करके ही खानेको मिलेगा। यह सुनकर कन्हैया बोले—'मैया व्रज-गौओंका रखवाला तो गोवर्धन-बाबा है और यही देवता साँचो है, इन्द्र तो इनको चेरो है—

> बाबा गोवर्धन साँचो देव हमारो।
> गैया-बछड़ा, गोपी-ग्वाल सब व्रज कौ रखवारो॥

अस्तु गोप-ग्वालोंने अपने गौ-बछड़ोंको सजाकर और विविध पक्वान्नोंको लेकर गोवर्धनकी पूजा की। कृष्ण-कन्हैयाने गिरधारीरूप धारण कर सभी पक्वान्न खा लिये।

'स्वय एक रूपते पुजे, एक सो ठाडौ गोवर्धन पुजवाये।'

इस बातसे इन्द्र बडा कुपित हुआ और अपने बादलोसे इतना जल बरसानेको कहा, जिससे व्रज बह जाय। थोडी देरम ही घनघार वर्षा होन लगी। इसपर श्रीकृष्णने खेल-खेलमे ही गिरिराजपर्वतको अपनी उँगलीपर उठा लिया, जिससे समस्त गोप-गोपी ग्वाल-बाल अपने गौ-बछडासहित इसके नीचे आ गये। सात दिन-रात निरन्तर मूसलाधार घनघोर बारिश होती रही, किंतु व्रजका कुछ भी नहीं बिगडा। इससे इन्द्र भगवान्‌को पहचान गया और ऐरावत हाथी तथा सुरभि गाय लेकर श्रीकृष्णके चरणोमे आ पडा। सात दिनकी निरन्तर-भयानक वर्षाके प्रहारसे व्यथित व्रजवासियोकी रक्षा नन्दक सुकुमार कृष्णने बाय हाथकी कनिष्ठा उँगलीपर गोवर्धनपर्वतको उठा करके ही की—

सात दिन-रात वर्षा बरसाई इन्द्र
छप्पन पहर गिरि रख्यौ नख कोर पै।

इन्द्रके मान-भग ओर विपत्तिविमोचनके पश्चात् श्रीकृष्णके समझानेपर सभी व्रजवासी उमगपूर्वक गिरिराज-पूजाकी घर-घर तैयारी करने लगे। व्रजके लोककवि बलवीरकी निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं, जहाँ जन-जनकी लाज रखनेवाले इस गिरिराजके सन्दर्भम कहा गया है—

लाल बलवीर हसि कही नदजू सौ जाय,
जनम भगोरा याकी सेवा कौन काज की।
राखे जन लाज, पूजै सदा शुभ काज
ऐसो है न जग दूजौ पूजा कीजै गिरिराज की॥

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाके दिन जतीपुरामे अनेकानेक उत्सवाके सग गोवर्धनपूजा अनूठे ढगसे गाजे-बाजेस होती है। यहाँ प्रात कालसे ही गिरिराजजीके मुखारविन्दपर कुन्तला दूध-दही चढाया जाता है। इस समय भजन-कीर्तन-गान एव बाजे बजनेसे अनुपम समाँ बँध जाता है। इस दिन छप्पन भोग अन्नकूटके दर्शन होते हैं। भक्तजन गिरिराजजीको दुग्धाभिषेक कराकर प्रसाद ग्रहण करके स्वयको धन्य मानते हैं। गोवर्धनके दानघाटी मन्दिरमे भी नित्य गिरिराजजीपर दूध-दही चढता है और बहुधा अन्नकूटके भव्य दर्शन होते रहते हैं। इन्द्र द्वारा श्रीकृष्णसे क्षमा माँगनेपर सुरभि गायद्वारा श्रीकृष्णके किये गये दुग्धाभिषेकके प्रतीकके रूपमे दूध चढाया जाता है। जन-मानसम यह विश्वास है कि गिरिराजके ध्यानसे मनवाछित फल प्राप्त होता है और सभी सकट कट जाते हैं। यह व्रजमे प्रचलित रसिया लोकगीतकी प्रस्तुत टेकसे परिलक्षित है—

अरी तेरे सब सकट कटि जाये,
पूजा गोवरधन की करिलै।

आज भी व्रज्मण्डलम कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा दीपावलीके अगले दिन गोवर्धनपूजाकी परम्परा है। इस दिन गोबरके गोवर्धनमय परकोटा, गाय बछडे ग्वालिया आदि बनाकर मोर-पखो, घुँघरुओ तथा रगासे उन्हे सजाकर रात्रिमे परिवारके सभी जन एकत्रित हो पक्वान्नो, मिठाइयो, खिलौनो तथा दूध आदिसे पूजा करते हैं और सभी इसकी सात परिक्रमा करते हैं। व्रजमे इस दिन घर-घर अन्नकूट बनता है तथा अतिथियोको बडे प्रेमसे इस प्रसादको खिलाते हैं। गोवर्धनपूजाका यह महापर्व श्रद्धा-भक्तिके वातावरणमे नाना प्रकारसे गोवर्धन महाराजकी जय-जयकारके सग सम्पन्न होता है। इस समय गोवर्धन-महिमाके गीत गाये जाते हैं यथा—

गोवरधन रे तू बड़ौ औरू तोते बड़ौ न रे कोय।
ऊँचौरे खैरो ररकनौ औरू ररकत आवे रे गाय॥
श्रीगोवर्धन महाराज तेरे माथे मुकुट विराजि रह्यौ
तौपे पान चढ़े तौपे फूल चढे औरू चढ़ै दूधकी धार हाँ धार तेरे माथे

इस गिरिराज पहाडीपर सवत् १५५० मे एक भगवत्-स्वरूपका प्राकट्य हुआ, जिसे व्रजवासी देवदमनके नामसे पूजते हैं। सवत् १५५६ म श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यके व्रजम पुन पदार्पण करनेपर व्रजवासियाने उन्हे इस स्वरूपके दर्शन कराये। श्रीवल्लभाचार्यने इसका नाम

श्रीनाथ (श्रीगोवर्धननाथ) रखा। वल्लभकुल सम्प्रदायके जनक श्रीवल्लभाचार्यकी सात गद्दियाममे एक यह है।

व्रजकाव्यम गिरिगोवर्धन-महिमाका अनुपम वर्णन करते हुए लोककवियोने गिरिराजजीपर श्रद्धासुमन अर्पित किये। नाना प्रकारके शिखरासे सुशोभित यह गोवर्धनगिरि सभी कार्योंको सिद्ध कर लोगाकी रक्षा करते हैं। गिरिराजकी विभिन्न रगमयी शिखराकी आभाके लोकरजक एव लोकरक्षक दोना ही रूप कविवर होतीरामके इस छन्दम द्रष्टव्य हैं—

कोई शिखर नीली, कोई शिखर पीली,
कोई शिखर श्वेत श्याम, कोई शिखर लाल है।
कोई शिखर रगम और कोई शिखर जगम,
और कोई शिखर बैरिन की हननेको काल है॥
कोई शिखर हरी खरी कोई शिखर बैजनीऊ
और कोई शिखर परिचवै देत तत्काल है।
पडत होती राम सबकै सिद्धिकर देत करम,
धन्य गिरिराज राखे व्रजवासिन ग्वाल है॥

समस्त तीर्थोंका मुख्य धाम और सभी देवाका महान् टीका है यह गिरिराज, जहाँकी कन्दराआम श्यामाश्याम विराजते हैं और सखियासहित श्रीकृष्ण-बलराम खेलते हैं। प्रस्तुत छदकी पक्तियोमें ऐसी ही छटा वर्णित है—

सृष्टि के अभीष्ट फल देवे कूँ तैसा तहाँ
इष्ट गिरजि सब देवन को टीकौ है।
राजै गिरि कन्दरा विराजै जहाँ श्यामाश्याम,
गोवरधन धाम परम धाम हूँ सौ नीकौ है।

गिरिगोवर्धनके अन्तर्गत श्रीकृष्णकी अनूठी लीलाओके अनेक स्थल हैं, उदाहरणार्थ—बिछुआकुण्ड, जान-अजानवृक्ष, मेंहदीकुण्ड गोरोचनकुण्ड, ऋणमोचनकुण्ड इत्यादि। सब देवोंके देव श्रीगिरिराजकी पावन कन्दराओका उपभोग वृजराजनन्दनन्दन करते हैं, जैसा कि इस छदकी पक्तिसे दृष्टिगत होता है—

सुर सिरताज सेवे, नद महाराज सेवे,
सेवे व्रजराज गिरिवर की कदला॥

इस गिरिवरपर श्रीकृष्ण-लीलाओका एक प्रमुख स्थल दानघाटी है, जहाँ गोपाल कृष्णने ग्वालाके सग गोपियासे मक्खन, दूध-दहीका दान लिया। *'जहाँ लैमत दान प्रसिद्ध वहाँ गिरिराज आजहूँ दान की घाटी।'* वर्तमानम यहाँ गिरिवर दानघाटीका मनमोहक मन्दिर है। मानसी गगाके भीतर श्रीमुकुटगिरिराजजीके मुखारविन्दका मन्दिर है, जिसके तीन ओर मानसी गगाका जल है, जो सायकाल ऐसा प्रतीत होता है माना श्रीगिरिराज स्वय स्वरूप धारणकर किसी सुन्दर नौकाम बैठकर जल-विहार कर रहे हो। हरगोकुलसे आगे श्रीगिरिराजकी एक ऐसी शिला है जो तीर्थयात्रियोंके आकर्षणका मुख्य केन्द्र है। इस शिलाको दूरसे देखनेपर ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण भगवान् अपनी एक टाँगको टेढी करके अपनी बाँकी अदाम वशी बजा रहे हो।

व्रजकी मुकुटध्वजा श्रीगिरिगोवर्धन कोई सामान्य पर्वत नहीं, अपितु गिरिराज है भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् स्वरूप है तथा कलिकालम प्रत्यक्ष देवता हैं। यही गिरिराज महाराज श्रीकृष्णके रूपको धारण कर लेते हैं और भुजा पसारकर डटके भोजन करते हैं। इस श्याम छविके स्वरूपको ललिता सखी राधिकाजीसे बतलाती हैं। गिरिराजजीका यही रूप भक्तिकालके सम्राट् महाकवि सूरदासके पदको इन पक्तियाम वर्णित है—

गिरिवर श्याम की अनुहारि।
करत भोजन अति अधिकाई सहज भुजा पसारि॥
नन्द के कर गहै ठाड़ौ यह गिरि को रूप।
सखि ललिता राधिका सौं कहत यहै स्वरूप॥
यहै यहै माता यहै है पीत की छोर।
शिखर शोभा श्याम की छवि श्याम छवि गिरिमौर॥

'ललित व्रज देश गिरिराज राजे।' ऐसे पावनधाम गोवर्धनगिरिके दर्शनार्थ और परिक्रमाके लिये प्रत्येक माह पूर्णिमासे पूर्व ही नर-नारियाके झुण्ड-के-झुण्ड उमडते चले आते हैं तथा दूध-भोग चढाते हुए कह उठते हैं *'तन मन धन सब कुछ अर्पन, चलो रे चल सब गोवर्धन।'* मुडिया पूनौ (गुरु पूर्णिमा)-के पर्वपर प्रतिवर्ष लाखा भक्तजन भारी भीडमे भी देशके कोने-कोनेसे नगे पैर परिक्रमा करने आते हैं, जिससे जन-सैलाब उमड पडनेसे यहाँ लक्खी-मेला एव कुम्भ-मेलेका-सा रूप दृष्टिगोचर होता है। लोंदके महीने (अधिकमास)-मे प्रतिदिन अहर्निश चौबीसों घटे परिक्रमा लगती है। देखिये ये भाव इन पक्तियाम—

गोवर्धन धाम परम धाम हूँ सो स्वच्छ बन्यौ,
दर्शन के हेतु आते लाखो नर-नारी हैं।
परिक्रमा लगावैं दूध गिरि पर चढ़ावे भोग,
सामग्री लगावै भीर होत भारी है॥

अपने जीवनको सफल बनाने और पाप-विनाशके लिये कुछेक डडोती (पेटक बल लेटकर)-परिक्रमा लगाते हैं तो अनेक भक्तजन दूधकी धार-धूपके साथ परिक्रमा नगे पैर पूर्ण करते हैं। यहाँ गिरिराजजीके इस रसियाकी टेक उल्लिखित करना प्रासगिक होगा—

तेरौ जन्म सफल है जाइ, लगाइलै रज ब्रजधामकी।
काट दें पाप तेरे ब्रजराज, लगाइलै परिक्रमा गिरिराज की॥

'पूजि गोवरधन गिरधारी करी परिकम्मा की त्यारी' के अनुसार ग्रामवासी हँसते-कूदते, नाचते-गाते, भजन-कीर्तन करते हुए गिरिराजकी परिक्रमा करते हैं, मनमे *'गिरराज धरन प्रभु तेरी शरन'* का ध्यान रखकर इन ग्रामवासियो विशेषकर महिलाआके परिक्रमामार्गमे गाये गीत बड ही मनमोहक तथा श्रद्धाभावसे परिपूर्ण होते हैं। ग्रामीण महिलाआम परिक्रमा लगानेकी प्रबल उत्कण्ठा होती है, जैसा कि इस व्रज लोकगीतसे सुस्पष्ट है—

मै तो गोवरधन कूँ जाऊँ मेरी बीर, नाँय माने मैरो मनुआ।
सात सेर की करूँ कढैया, अरी पूरी पुआ बनाऊँ मेरी बीर,
नाँय माने मेरौ मनुआ॥ मैं तो गोवरधन कूँ......

निस्सदेह व्रज-जनजीवनमे गिरिराज गोवर्धनके अवतरणका अत्यधिक महत्त्व है और इनका अनूठा स्थान है। गिरिराज व्रजवासियोके जीवन-मरणसे सम्बन्धित हैं। इन्हींके माध्यमसे व्रजवासियाके जीवनकी रक्षा हुई एव इन्हींसे व्रजसाहित्य, सस्कृति एव कला विकसित हो सकी और इन्हींके कारण व्रजकी महिमा अक्षुण्ण रूपसे जन-जनके हृदयमे स्थापित हो गयी—

लग रही आस करूँ ब्रजवास, तरहटी गोवरधनकी मे।
भजन करूँ और ध्यान धरूँ छैया कदमन की मे॥

~~o~~

पुरुषोत्तम भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी अवतार-कथा

(श्रीगगाधरजी गुरु)

उत्कल प्रदेश पुरुषोत्तमावतार प्रभु जगन्नाथजीकी पुण्यलीलाभूमि है। नित्य लीलालय उत्कल प्रदेश अपनी विश्ववन्द्य पुरुषोत्तम-सस्कृतिके निमित्त विश्वम विख्यात है। पार्वतीवल्लभ श्रीशङ्कर, गगनविलासी श्रीसूर्यनारायण एव वैकुण्ठनिवासी श्रीविष्णु आदि अवतार जगत्की सुरक्षाके लिये ही भुवनेश्वर कोणार्क (अर्कक्षेत्र) एव श्रीनीलाचल (श्रीपुरीधाम) इत्यादि स्थानोम आविर्भूत हुए हैं। उत्कलके परमाराध्य श्रीजगन्नाथ-अवतारकी महिमाकथा अनन्त और अनिर्वचनीय है। प्रभु श्रीजगन्नाथ सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ तथा सर्वान्तर्यामी भगवदवतारश्रेष्ठ हैं। श्रीजगन्नाथजी अपनी सृष्टिकी सुरक्षाके लिये अधर्मनाशके लिये भिन्न-भिन्न अवतारोम बहुत कुछ कर चुके, किंतु अपाणिपाद जगन्नाथ-अवतारम वे बडी-बडी आँखास देख रहे हैं कि हम मानव उनकी प्रदत्त शिक्षाका कैसा उपयोग कर रहे हैं? अत कर्मेन्द्रियविहीन दारुभूत जगन्नाथ-अवतार अब कुछ करना नहीं चाहते हैं। वे केवल नीरवद्रष्टा हैं, अपनी बडी-बडी आँखासे हमें देख रहे हैं—अपने कार्योके लिये (स्वधर्मपालनम) हम सक्षम हैं अथवा अक्षम (अनुपयुक्त) हैं।

श्रीजगन्नाथजीने काष्ठका विग्रहावतार क्यों धारण किया? इस विषयमे ऐसी कथा सुनी जाती है कि एक बार भक्ताके अधीन होकर और भक्तोकी श्रेष्ठता दिखाते हुए भगवान्ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं चित्ररथ गन्धर्वको न मार डालूँ तो मेरा कलियुगमे काष्ठका विग्रह हो। उस ऋषिके अपराध करनेवाले गन्धर्वको अर्जुन और सुभद्राने अभयदान दिया। भगवान्ने भक्तोके सामने हार मानी और वे श्रीक्षेत्र जगन्नाथमे काष्ठविग्रहके रूपम प्रतिष्ठित हुए। इस सम्बन्धम और भी कई कथाएँ हैं।

भगवान् जगन्नाथ अजन्मा और सर्वव्यापक होनेपर भी दारुविग्रहावतारके रूपमे अपनी अद्भुत लीला दर्शाते आ रहे हैं। भगवान् ब्रह्मदारुकी दिव्यावतारकथा यहाँ सक्षेपमें प्रस्तुत है—

(क) ब्रह्मपुराणकी कथा

सत्ययुगकी बात है। इन्द्रद्युम्न नामक इन्द्रसदृश पराक्रमी अर्थशास्त्रनिपुण, ब्राह्मणभक्त सत्यवादी सर्वसद्गुणसम्पन्न एक राजा थे। मालवा देशकी अवन्ती नगरी उनकी राजधानी थी। वे प्रजाओका पुत्रवत् पालन करते थे। एक दिन उनके मनमे यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं किस प्रकार भोगमोक्षदाता योगेश्वर श्रीहरिकी आराधना करूँ?

आराधनाके लिये मैं किस क्षेत्र, किस तीर्थ अथवा किस आश्रमपर जाऊँ? बहुत कालतक विचारकर राजा इन्द्रद्युम्नने सर्वोत्तम तीर्थ पुरुषोत्तम क्षेत्रमे जानेका निश्चय किया।

राजा सैन्य-सामन्त-पुरोहितादिक सहित ध्वजा-पताकाओसे सुसज्जित रथापर आरूढ हो दक्षिण समुद्रकी ओर चल पडे। उस अनन्ततरङ्गाकुलरमणीय समुद्रका दर्शनकर वे विस्मयाभिभूत हो गये और वहीं समुद्रतटपर एक मनोज्ञ दिव्य पवित्र स्थानम राजाने विश्राम किया। त्रिभुवनप्रख्यात श्रीक्षेत्रमे महाराज इन्द्रद्युमने विविध सुरम्य स्थानाके दर्शन किय। अवतारश्रेष्ठ जगन्नाथके उस मानसतीर्थक्षेत्रमे पहले इन्द्रनीलमणिसे निर्मित प्रतिमा विराजित थी जिसे स्वय भगवान्ने छिपा दिया था।

भगवान्ने इन्द्रनीलमणिसे बनी उस प्रतिमाको इसलिये तिरोहित कर दिया था कि उस प्रतिमाका दर्शन कर पृथ्वीके सब मनुष्य भगवद्धाममे चले जाते थे। सब लोगाको वैकुण्ठधाममे जाते देख धर्मराज यमराजने भगवान्के पास आकर उनकी स्तुति की और कहा—प्रभो! इस विख्यात पुरुषोत्तमतीर्थम इन्द्रनीलमणिसे बनी आपकी जो श्रेष्ठ प्रतिमा है, वह सब कामनाआको देनेवाली है, उसका दर्शन कर सभी मनुष्य कामनारहित हो आपके श्वेतधाममे चले जाते हैं। अत मेरी धर्ममर्यादा जो आपने नियत की है वह नष्ट हो गयी है। भगवन्! कृपा करके आप अपनी प्रतिमाको तिरोहित कर ले। तब भगवान्ने चारा ओरसे बालुकासे उस प्रतिमाको आवृत कर लिया।

राजा इन्द्रद्युम्नने दृढ सकल्प किया कि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे सत्यपराक्रमी विष्णु मुझे साक्षात् दर्शन देंगे। अनन्यभावसे श्रीजगदीश्वरके पदारविन्दाम सर्वस्वसमर्पणपूर्वक यज्ञ, दान, तपस्या उपासना और उपवासादि करनेके लिये एव अवतारकथाप्रसारार्थ भगवन्मन्दिरनिर्माण करनेके लिये दृढसकल्प होकर राजा अपने कर्तव्यम लग गये। मन्दिर-निर्माणकार्य समारम्भ हुआ। अश्वमेधयज्ञ तथा दान-पुण्यादि कर्म कर लिये गये। पुरुषोत्तमप्रासादनिर्माणकार्य विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। अब राजाको अहर्निश भगवत्प्रतिमाके लिय चिन्ता सताने लगी। वे सोचने लगे—सृष्टिस्थितिप्रलयकारी लोकपावन पुरुषोत्तमावतारका मैं कैसे दर्शन कर सकूँगा? कैसे विष्णुप्रतिमाका निर्माण किया जा सकेगा? पाञ्चरात्रकी विधिसे उन्होने पुरुषोत्तमावतार-पूजन-कथाकीर्तन करके अनेक भावमयी प्रार्थनाएँ कीं।

स्तुतिप्रार्थनाके उपरान्त राजाने सर्वकामप्रदाता सनातनपुरुष अवतारश्रेष्ठ जगन्नाथ वासुदेवको प्रणाम किया एव वहाँ धरतीपर कुश और वस्त्र बिछाकर चिन्तामग्न हो सो गये। अवतारकथाचिन्तन ही राजाका जीवनव्रत था। देवाधिदेव भगवान्ने राजाको स्वप्नजगत्मे अपने शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मस्वरूपका दर्शन कराया एव कहा—'राजन्! तुम धन्य

हो, तुम्हारे दिव्य यज्ञ, भक्ति और श्रद्धा-विश्वाससे मैं सतुष्ट हूँ। तुम चिन्तित न होओ, यहाँ जो सनातनी प्रतिमा छिपी है उसकी प्राप्तिका उपाय बताता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो—आजकी रात बीतनेपर सूर्योदयके समय समुद्रतटपर जाना। वहाँ समुद्रप्रान्तमे एक विशाल वृक्ष सुशोभित है, जिसका कुछ अश तो जलम और कुछ अश स्थलपर है। समुद्रकी लहरोसे आहत होनेपर भी वह वृक्ष कम्पित नहीं होता। तुम हाथमे तीक्ष्ण अस्त्र लेकर अकले ही वहाँ जाना और उस वृक्षको काट डालना। वहाँ तुम्हे कुछ अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। विचार-विमर्शकर उसीस दिव्य प्रतिमाका निर्माण करना। अब मोहप्रद चिन्ता त्याग दो।'

तत्पश्चात् श्रीहरि अदृश्य हो गये। राजा विस्मित हुए। प्रात उठकर वे समुद्रतटपर पहुँचे एव स्वप्नानुसार तेजस्वी वृक्षराजको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने उस वृक्षको काट गिराया और दो टुकडे करनेका विचार किया। फिर उन्होंने जब काष्ठका भलीभाँति निरीक्षण किया तो उन्हे एक अद्भुत

बात दिखायी दी। उन्हे सहसा दो ब्राह्मणवेशधारी दिव्य पुरुष दिखायी दिये। ब्राह्मणाने राजाके पास आकर पूछा—आपने किसलिय वनस्पतिको काट गिराया है? राजाने कहा—'आद्यन्तहीन अवतारकी आराधनाके लिये मैं विष्णुकी प्रतिमाका निर्माण करना चाहता हूँ। तदर्थ स्वप्नम भगवान्ने मुझे प्रेरित किया है।' यह सुनते ही विप्ररूपधारी भगवान् जगन्नाथने सहर्ष कहा—राजन्! आपका विचार अत्युत्तम है तथा मेरे ये साथी श्रेष्ठ शिल्पी विश्वकर्मा हैं, जो मेरे निर्देशानुसार प्रतिमानिर्माण करेगे। तब विश्वकर्माने भगवदीय आज्ञाके अनुसार प्रतिमाआका निर्माण कर दिया। जिनमे पहली मूर्ति बलरामकी, दूसरी श्रीजगन्नाथकी एव तीसरी भगवान् वासुदेवकी बहन सुभद्राजीकी थी। यह देखकर आश्चर्यचकित हो इन्द्रद्युम्नने पूछा—गुप्तरूपसे आप कौन हैं? तब भगवान्ने कहा—मैं देवता, यक्ष, दैत्य इन्द्र, रुद्र ब्रह्मादिमे कोई भी नहीं हूँ। मुझे पुरुषोत्तम-अवतार समझो। अनन्त बलशाली, सर्वपीडाहारी मैं सभीका आराध्य हूँ। वेदोमे तथा धर्मशास्त्राम जिसका उल्लेख हुआ है, वही मैं हूँ। ससारम जो कुछ वाणीद्वारा वर्णनीय है, वह मेरा ही स्वरूप है। इस चराचर विश्वमे मेरे सिवा कुछ भी नहीं है।

भगवान्की वाणी सुनकर राजाके शरीरम रोमाञ्च हो आया। वे स्तुतिपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले—जो निर्गुण-निर्मल शान्त एव परमपद है, उसे मैं आपके प्रसादसे पाना चाहता हूँ। तब भगवान् राजाको 'तथास्तु' कहकर वर देते हुए विश्वकर्मासहित अन्तर्धान हो गये।

भगवत्साक्षात्कारसे कृतकृत्य हो बुद्धिमान् नरेशन श्रीबलराम, जगद्गुरु जगन्नाथ एव वरदात्री देवी सुभद्राको मणिकाञ्चनजटित विमानाकार कल्याणयानमे बिठाकर बडी धूमधामसे मन्त्रियासहित पुण्यस्थानमे प्रवेश कराया और यथासमय शुभ-मुहूर्तमे प्रतिष्ठा करायी। सर्वोत्तम प्रासादपर राजाने वेदोक्त विधिसे प्रतिष्ठित कर सब विग्रहाको स्थापित किया एव नियमित अवतारकथा-श्रवणपूर्वक सर्वस्व-त्यागी होकर अन्तत परमपदको प्राप्त किया।

(ख) स्कन्दपुराणकी कथा

स्कन्दपुराणके अनुसार सत्यवादी तथा धर्मात्मा राजा इन्द्रद्युम्नने एक बार अपने पुरोहितसे कहा—आप उस उत्तम क्षेत्रका सधान कर, जहाँ हमे साक्षात् जगन्नाथ-अवतारके दर्शन मिल। तब एक तीर्थयात्रीके मुखसे श्रीक्षेत्रका माहात्म्य सुनकर पुरोहितने अपने भाई विद्यापतिको पुरुषोत्तम भगवान्का दर्शन करने और उनके निवासस्थलका निर्णय करके लौट आनेके लिये भेजा। भगवान्की मङ्गलमय लीलाका चिन्तन करते हुए विद्यापति एक आम्रकाननम जा पहुँचे। गगनचुम्बी नीलाचलशिखर देखकर साक्षात् विग्रहवान् भगवान् नारायणका वासस्थान खोजते हुए वे नीलाचलकी उपत्यकाम पहुँच गये। जब वहाँसे अग्रसर होनेका मार्ग नहीं मिला, तब भूमिपर कुश बिछाकर वे मौनभावस भगवत्-शरणाश्रित हुए। वहाँ उन्हे मार्गदर्शनहेतु कुछ भक्तोकी लोकोत्तर वाणी सुनायी दी। प्रसन्न हो उसीका अनुसरण करते वे आगे बढे। शबरदीपकाश्रमपर पहुँचकर वहाँ उन्हे शबर विश्वावसु मिले। विश्वावसुने पूछा—ब्रह्मन्! आप कहाँ पधारे हैं? यह वनका मार्ग दुर्गम है। आप अत्यन्त क्लान्त-श्रान्त हो गये होगे यहाँ विश्राम कीजिये। ऐसा कहते हुए विश्वावसु नामक शबरने पाद्य, आसनार्घ्य देते हुए फिर पूछा—फलाहार करेगे या तैयार की हुई भोजनसामग्री? आज मेरा जीवन सफल हुआ, चूँकि दूसरे विष्णुकी भाँति आप मेरे घर पधारे हैं। विद्यापतिने कहा—मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ उसे सफल करनकी कृपा कर। भोजनकी चिन्ता न करे। अवन्तीश्वर इन्द्रद्युम्नके आज्ञानुसार मै अवतारदर्शनार्थ यहाँ आया हूँ। नीलमाधव-अवतारका दर्शन कर उक्त समाचार राजाको जबतक नहीं दिया जायगा, तबतक वे निराहार ही रहेगे। अत मुझे शीघ्र ही प्रभुसे मिलानेकी कृपा कर।

इसके उपरान्त दोना गहन काननम पहुँचे। आगे चलते-चलते वे रौहिणकुण्डके पास पहुँचे। शबरने कुण्डकी महिमा बतायी तथा कल्पवटका दर्शन कराया। शबरने बताया कि रौहिणकुण्ड तथा कल्पवटके बीचमे कुञ्जमे भगवान् जगन्नाथ विराजमान हैं, इनके दर्शन कीजिये। विद्यापतिने कुण्डम स्नान किया और नियमपूर्वक भगवान्की स्तुति की और फिर वे भगवद्दर्शनसे कृतार्थ हो गये। विश्वावसु शबर उन्हे आश्रममे पुन वापस लाया और उनका सविधि सत्कार किया। शबरने जो अलौकिक वस्तुएँ समर्पित कीं, उन्हे देखकर विद्यापतिने विस्मित होकर कहा—तुम्हारे घरम ऐसी दिव्य वस्तुआका सग्रह आश्चर्यका विषय है। शबरने कहा—द्विजश्रेष्ठ! इन्द्रादि देवता नित्य ही अवतार पुरुष श्रीजगन्नाथकी उपासना करनके लिये अनेक दिव्य उपचार लेकर यहाँ आते हैं और भक्तिपूर्वक पूजा-स्तुति करके तथा दिव्य वस्तुएँ समर्पित कर लौट जाते हैं। ये सब वस्तुएँ भगवान्की प्रसादरूपा हैं। जो मैंने आपका समर्पित की हैं। भगवान्के इस प्रसादक भक्षणस हमलागाके

रोग और बुढापेका नाश हो गया है। भगवान्‌के प्रसादमे आश्चर्य नहीं करना चाहिये। यह सुनकर विद्यापतिका शरीर पुलकित हो गया। आनन्दाश्रु बह निकले उन्हाने कहा—आप धन्य हैं।

तत्पश्चात् विद्यापति ब्राह्मणने कहा—मुझपर यदि आपकी कृपा हो जाय तो मुझे हमेशा-हमेशाके लिये अपना ही बना ले। आपके साथ मैत्री-स्थापन करनेका मेरा दृढ निश्चय है। सखे! आपका महान् सौभाग्य है। मेरे लौट जानेपर राजा इन्द्रद्युम्र यहाँ आयगे एव वे एक विशाल मन्दिरका निर्माण करक सहस्र-उपचारोसे नित्य ही जगन्नाथजीकी उपासना करगे। यह सुनकर शबरने कहा—य सब बाते तो ठीक ही हैं, किंतु राजा यहाँ नीलमाधवका दर्शन नहीं कर सकगे, चूँकि भगवान् स्वर्णमयी बालुकामे अदृश्य हा जायँगे। आप परम सौभाग्यशाली होनेसे जगन्नाथ-अवतारस्वरूपका साक्षात् दर्शन पा सके हैं। हाँ, जब राजा यहाँ आकर भगवान्‌का न देख सकनेके कारण प्राणत्यागतकको तैयार हो जायँगे, तब भगवान् गदाधर स्वप्नम उन्हे अवश्य ही दर्शन दगे। उस समय राजा उन्हींके आदेशानुसार भगवान्‌की काष्ठमयी चतुर्मूर्तियाका ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित कराकर पूजा करगे।

शबरश्रेष्ठ विश्वावसुसे इतना सब अवगत होनेके उपरान्त विद्यापति श्रीक्षेत्रकी प्रदक्षिणा करक अवन्तीपुरी चले आये और उन्हाने उन सभी बातोको राजासे निवेदित कर दिया तथा प्रसादरूपमे दिव्य माला राजाको भट की।

सब बाते जानकर राजा समयानुसार श्रीक्षेत्र पहुँचे तथा उन्हाने वहाँ सहस्र अश्वमेधयज्ञानुष्ठान किया और अनेक तीर्थोके दर्शन किये। देवर्षि नारद भी उनके साथ आये हुए थे। वे आनन्दपूर्वक बोले—राजन्! पूर्णाहुतिके बाद यज्ञ सफल होगा। तुम्हारे भाग्योदयका समय समीप आ गया है। तुमने स्वप्नम श्वेतद्वीपम बलभद्र तथा सुभद्रासहित जिन पुरुषोत्तम भगवान्‌का दर्शन किया है, उनके शरीरका रोम गिरते ही वह वृक्षभावको प्राप्त हो जायगा। इस धरतीपर स्थावररूपम वह भगवान्‌का अशावतार होगा। भक्तवत्सल विभु अभी उसी रूपम अवतार धारण करगे। यज्ञान्त-स्नान शेष करके वृक्षरूपमे प्रकटित यज्ञेश्वरका तुम इस महावेदीपर स्थापित करो।

इसके उपरान्त नारदजी और राजा इन्द्रद्युम दोना ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गय। वृक्षका दर्शनकर राजाने अपने परिश्रमको सफल माना और नीलमणिमाधवके विरहजन्य शाकका परिहार करके बार-बार उस वृक्षको प्रणाम किया। राजाने आनन्दाश्रुपरिपूर्ण लोचनोस ब्राह्मणाके द्वारा उस वृक्षको मँगवाया। ब्राह्मणलोग चन्दन और मालाआसे विभूषित अवतारश्रेष्ठ जगन्नाथके दिव्य वृक्षको महावेदीपर ले आये। देवर्षि नारदजीके कथनानुसार उक्त वृक्षकी उपासना करके राजाने प्रश्न किया—देवर्षि नारद! भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ कैसे बनगी और उनका निर्माण कौन करेगा? देवर्षि नारदजीने कहा—भगवान्‌की लीलाकथा अलौकिक है, उसे कौन जान सकता है? उसी समय आकाशवाणी सुनायी दी—'अत्यन्त गुप्त रखी हुई महावेदीपर भगवान् स्वय अवतार ग्रहण करगे। पद्रह दिनातक उक्त स्थानको आवृत रखा जाय। हाथम हथियार लेकर जो वृद्धशिल्पी समुपस्थित है, उसको भीतर प्रवेश कराकर यत्नसे दरवाजा बन्द करना चाहिये। मूर्तिरचनातक बाहर वाद्य बजते रह, अदर जानेकी कोई भी चेष्टा न करे शिल्पकारको छोडकर अन्य कोई दखेगा तो वह दोना नेत्रासे अन्धा हो जायगा।'

आकाशवाणीके अनुमार राजाने समस्त व्यवस्थाएँ की। पद्रहवाँ दिन आते ही भगवान् चार विग्रहा—बलदवजी, सुभद्रा और सुदर्शन चक्रके साथ स्वय अवतीर्ण हुए। राजाने

भक्तिपूर्वक उनका स्तवन किया और आकाशवाणीमे बताये गय विधानके अनुसार पूजा-उपासना की। तबसे उत्कलमें विधिपूर्वक दारुविग्रहावतारकी उपासना होती आ रही है। चतुर्धामाम श्रीपुरीधाम श्रेष्ठ है। सत्ययुगका धाम बद्रीनाथ त्रेताका रामेश्वर एव द्वापरका द्वारका है और इस कलियुगका पवित्रधाम है—श्रीजगन्नाथपुरी। इस स्थानपर सर्वप्रथम नीलाचल-सज्ञक पर्वत ही था तथा सर्वदवाराधनाय भगवान्

नीलमाधवजीका श्रीविग्रह उक्त पर्वतपर ही था, कालक्रमसे वह पर्वत पातालमे चला गया। देवतासङ्घ भगवद्विग्रहको स्वर्गलोकमे ले गय। इस क्षेत्रको उन्हींकी पावन स्मृतिमे आज भी सश्रद्ध 'नीलाचल' कहा जाता है। श्रीजगन्नाथमन्दिर-शिखरपर सलग्नचक्र 'नीलच्छत्र' के दर्शन जहाँतक होते रहते हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र ही श्रीजगन्नाथपुरी है। सिद्धान्तदर्पणमे उनकी स्तुति इस प्रकार की गयी है—

योऽसौ सर्वत्र पूर्णोऽप्यसितगिरिदरी केशरी योऽप्यरूप
पद्मप्रद्युम्नरूपोऽप्यणुरतनुतनूसम्भृताऽशेपलोक ।
निस्त्रैगुण्योऽप्यगण्यामलगुणनिलयो वाङ्मनोऽतीतधामा
मादृक्चर्माक्षिलक्ष्य स्फुरतु मनसि न चित्रसिन्धुर्मुकुन्द ॥

इसका भाव यह है कि जो सर्वत्र परिपूर्ण होते हुए भी नीलगिरिदरी केशरी रूपमे स्थित हैं एव अरूप होते हुए भी जो पद्मप्रद्युम्नस्वरूप हैं, अणु होनेपर भी विशाल विश्वके रूपमे नि शेप लोकाको धारणकर उनका पोपण करते हैं, गुणातीत होनेपर भी अगणनीय सद्गुणाके आकर हैं, वे आश्चर्यसिन्धुमुकुन्द मादृक्-चर्मचक्षुका भी लक्ष्य होकर हमारे मनमे स्फुरित हो।

अत्यन्त प्राचीन कालसे अबतक दार्शनिक, कवि और भक्त लेखकवृन्द जगन्नाथ-अवतारकी अवर्ण्य लीलाकथाएँ अपने दृष्टिकोणसे वर्णन कर चुके हैं, किंतु उस अवतारकी लीलाकथाओका अन्त न प्राप्त कर सके। जगन्नाथ-अवतार अवाङ्मानसगोचर, अनन्य, असाधारण तथा रहस्यशाली हैं और प्रभुकी माया तो दुरत्यया ही है।

श्रीक्षेत्रम जगन्मैत्रीकी परमश्रेष्ठ भावना निहित है। श्रीजगदीशरथयात्रा ही जिसका प्रमाण है। जगन्नाथकी यह अवतार-कथा विश्वब्रह्माण्डका सच्चा मङ्गलविस्तार करे, जिसके चिन्तन, मनन एव निदिध्यासनसे भगवान्‌की ध्रुवास्मृति तथा भगवत्सनिधिकी प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत (१०।३१।९)-म महाभाग्यवती गोपियाँ कह रही हैं—

'तव कथामृत तप्तजीवन कविभिरीडित कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गल श्रीमदाततम् ॥'

अर्थात् आपकी अवतार-कथासुधा ससारके तापसे तप्त प्राणियोके लिये सञ्जीवन-बूटी है तथा कवि-ज्ञानी-महात्मा उनका गान करते हैं। आपकी अवतार-कथा सारे पाप-तापको मिटा देती है। इतना ही नहीं, वह केवल श्रवणमात्रसे शुभ मङ्गल प्रदान करती है और सुरम्य, मधुर तथा विस्तृत है। [प्रेषक—श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु]

~~o~~

शकरावतार भगवत्पाद आद्य शकराचार्य और उनका अवतार-दर्शन

(श्री डी० आजनेयजी)

ईसाके पूर्व सातवीं शताब्दीम, दक्षिणके केरल प्रान्तमे पूर्णानदीके तटपर कलादि नामक गाँवम एक विद्वान् एव धर्मनिष्ठ ब्राह्मण श्रीशिवगुरु एव उनकी पतिव्रता पत्नी सुभद्रा देवी रहते थे। यह दम्पती वृद्धावस्थाके निकट आनेके कारण चिन्तित रहता था, क्योकि यह नि सतान था। ऐसेमे श्रीशिवगुरुने पुत्रप्राप्तिहेतु बडी श्रद्धा एव भक्तिसे भगवान् शकरकी आराधना प्रारम्भ की। उनकी श्रद्धापूर्ण आराधनासे सतुष्ट होकर देवाधिदेव भगवान् आशुतोष प्रकट हुए एव अपने अशसे पुत्र प्राप्त होनेका वर दिया, जिसकी आयु मात्र सोलह वर्षकी होनी थी। इस वरके परिणामस्वरूप माता सुभद्राके गर्भस वैशाख शुक्ल पचमीके दिन भगवान् शकर बालरूपमे प्रकट हुए। इनका नाम भी शकर ही रखा गया।

बालक शकरके तीन वर्ष पूर्ण होनेपर उनके पिताने उनका चूडाकर्म-सस्कार किया किंतु तभी श्रीशिवगुरु

काल-कवलित हो गये। श्रीशंकर जब पाँच वर्षके हुए तब यज्ञोपवीत कराकर इन्हें विद्याध्ययनहेतु गुरुके घर भेजा गया। वहाँ दो वर्षके अंदर ही ये षडंगसहित वेदका अध्ययन पूर्णकर घर वापस आ गये। इनकी अलौकिक प्रतिभा देखकर सभी अचम्भित रह गये।

विद्याध्ययनके अनन्तर श्रीशंकरने माताके समक्ष संन्यास लेनेकी इच्छा प्रकट की, किंतु माताने आज्ञा नहीं दी। श्रीशंकर मातृभक्त थे, वे उनकी इच्छाके बिना संन्यास नहीं लेना चाहते थे। एक दिन श्रीशंकर माताके साथ नदीतटपर गये, वहाँ स्नान करते समय एक ग्राहने उनका पैर पकड़ लिया तब पुत्रके प्राण संकटमें देखकर माता सहायताके लिये चिल्लाने लगीं। तभी शंकरने मातासे कहा—यदि आप संन्यास लेनेकी आज्ञा दें तो यह ग्राह मुझे छोड़ देगा। माताने तुरंत 'हाँ' कर दी। हाँ कहते ही ग्राहने शंकरका पैर छोड़ दिया। इस प्रकार लगभग आठ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने गृह त्याग दिया। जाते समय माताने उनसे यह वचन लिया कि उनके अन्तिम समयमें वे अवश्य उपस्थित होंगे। ऐसा कहा जाता है कि ग्राहके रूपमें स्वयं भगवान् शंकर ही आये थे।

घर छोड़नेके बाद श्रीशंकर नर्मदातटपर स्थित स्वामी गोविन्दभगवत्पादके आश्रममें आये एवं उनसे दीक्षा ग्रहण की। यहाँ गुरुने इनका नाम भगवत्पूज्यपादाचार्य रखा। अल्प कालमें ही शंकरने गुरुके निर्देशनमें योग सिद्ध कर लिया। इनकी योग्यतासे प्रसन्न होकर गुरुने इन्हें काशी जाने एवं वेदान्त-सूत्रपर भाष्य लिखनेकी आज्ञा दी। काशी आनेपर श्रीशंकरकी ख्याति सर्वत्र फैलने लगी। लोग इनका शिष्यत्व ग्रहण करने लगे। इनके सर्वप्रथम शिष्य सनन्दन हुए, जो पद्मपादाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। काशीमें श्रीशंकर शिष्योंको पढ़ानेके साथ भाष्य भी लिख रहे थे। कहते हैं एक दिन भगवान् विश्वनाथने चाण्डालके रूपमें दर्शन देकर इन्हें ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखने एवं सनातनधर्मके प्रचारका आदेश दिया। एक दिन गङ्गातटपर एक ब्राह्मणके साथ वेदान्त-सूत्रपर शास्त्रार्थ हो गया। यह शास्त्रार्थ आठ दिनतक चला। तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि ये ब्राह्मण स्वयं वेदव्यास हैं तो श्रीशंकरने उनसे क्षमा माँगी। श्रीवेदव्यासजीने प्रसन्न होकर इनकी आयु बत्तीस वर्षकी कर दी। इसके बाद उन्होंने भारतके विभिन्न क्षेत्रोंकी यात्रा की एवं वर्णाश्रमके विरोधी मतवादियोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य एवं अन्य कई ग्रन्थोंका लेखन किया। तदनन्तर उन्होंने प्रयाग आकर कुमारिलभट्टसे भेंट की तथा शास्त्रार्थ करनेका प्रस्ताव रखा। उस समय कुमारिलभट्ट अपने बौद्ध गुरुसे द्रोह करनेके कारण आत्मदाह कर रहे थे। उन्होंने श्रीशंकरको माहिष्मतीपुरी जाकर मण्डनमिश्रके साथ शास्त्रार्थ करनेका आदेश दिया। मण्डनमिश्र एवं श्रीशंकरके शास्त्रार्थकी मध्यस्थ मण्डनमिश्रकी पत्नी भारती थीं। श्रीशंकरने उन्हें शास्त्रार्थमें पराजित किया तभी श्रीमती भारतीमिश्रने उनसे कामशास्त्रसे सम्बधित प्रश्न किया। उसके उत्तरके लिये श्रीशंकरने कुछ समयका अवकाश लेकर योगबलसे एक मृत व्यक्तिके शरीरमें प्रवेश किया एवं कामशास्त्रका अध्ययन किया। तदनन्तर भारतीमिश्रको उनके प्रश्नका उत्तर दिया। अन्तमें मण्डनमिश्रने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। उनका नाम सुरेश्वराचार्य रखा गया। श्रीशंकरने कई मठों एवं मंदिरोंकी स्थापना की जिनके माध्यमसे उनके शिष्य औपनिषद-सिद्धान्तकी शिक्षा देने लगे।

भगवत्पाद आद्य शङ्कराचार्य जहाँ निर्गुण निराकार ब्रह्म और ज्ञानस्वरूपके निरूपणमें स्वयं अद्वितीय ज्ञानके रूपमें प्रतिभासित होते दीखते हैं, वहीं सगुण-साकार देवतत्त्वकी प्रतिष्ठामें उनकी भक्तिविषयक आस्था ही सर्वोपरि दीखती है। आपका सर्ववेदान्तसिद्धान्तसंग्रह सभी ग्रन्थोंसे बड़ा है, वह समस्त सूक्ष्मतत्त्वोंके विवेचनसहित देवता, आत्मा और परमात्मा आदिके निरूपणमें पर्यवसित है। इसी प्रकार विवेकचूडामणि, प्रमाणपञ्चक, शतश्लोकी, उपदेशसाहस्री, आत्मबोध, तत्त्वबोध, ब्रह्मसूत्रभाष्य (शारीरकभाष्य), उपनिषदोंके भाष्य आदि ग्रन्थ अद्वैतकी प्रतिष्ठाके प्रमापक ग्रन्थ हैं।

आचार्यचरण ब्रह्मसूत्रके देवताधिकरणमें भगवान् वेदव्यासके सूत्रोंकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि प्रत्यक्ष अनुमान और श्रुति-स्मृति आदि शब्दप्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि परब्रह्मकी सगुण-साकार सत्ता भी है। देवावतारोंमें एक ही साथ अनेक रूप-प्रतिपत्तिकी सामर्थ्य होती है—**'विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्'** (ब्रह्मसूत्र, देवता० सू० २७)। आचार्य बताते हैं कि देवताओंमें एक ही समयमें अनेक रूप धारणकर सर्वत्र व्याप्त रहने और प्रकट होकर भक्तका इष्ट साधन करनेकी सामर्थ्य रहती है। यह सिद्धि तो प्रायः योगियोंमें भी देखी जाती है फिर आजानज (जन्मजात) देवताओंकी क्या बात है? **'किमु वक्तव्यमाजानसिद्धानां देवानाम्।'** देवताओंके अस्तित्व और अवतरणसिद्धान्तको

सिद्ध करनेके लिये आचार्यने श्रीमद्भगवद्गीताके '**नाभावो विद्यते सत**' (२।१६) इस श्लोकके भाष्यसे इस दृश्य ससारकी अपेक्षा अदृष्ट परमात्मतत्त्व और देवतत्त्वको अधिक बलवान् और नित्य सिद्ध किया है। आचार्यने एक महत्त्वपूर्ण बात बताते हुए कहा है कि इतिहास-पुराण सर्वथा प्रामाणिक और सत्य हैं तथा उनमे बतायी गयी भगवदवतार-सम्बन्धी सभी बाते समूल और यथार्थ हैं। यह बात उन्होने इस सदर्भमे कही है— '**तस्मात्समूलमितिहासपुराणम्**' (ब्रह्मसूत्र देवता० सू० ३३ का शाङ्करभाष्य)।

आचार्यचरणका यह मानना है कि ऐसा कहना भी ठीक नहीं कि आजके हमलोगोको भगवद्दर्शन नहीं होते तो प्राचीन कालमे भी लोगोका दर्शन नहीं होता होगा। आचार्य बताते हैं कि व्यास, वाल्मीकि, वसिष्ठ आदि महर्षियोकी प्रतिभा और तप शक्ति तथा मान्धाता, नल, युधिष्ठिर अर्जुन आदि नृपश्रेष्ठोकी शक्तियोसे आजके अल्पायु-अल्पशक्तिमान् व्यक्तियोके सामर्थ्यकी तुलना कथमपि नहीं की जा सकती। अत जो हमलोगोके सामने देवता, गन्धर्व आदि प्रत्यक्ष नहीं हैं, चिरन्तनोकी सामर्थ्यकी अधिकताके कारण निश्चय ही उनके सामने वे सभी वस्तुएँ प्रत्यक्ष हो सकती थीं— '**भवति ह्यस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरन्तनाना प्रत्यक्षम्। तथा च व्यासादयो देवादिभि प्रत्यक्ष व्यवहरन्तीति स्मर्यते।**' (ब्रह्मसूत्र, देवता० सू० ३३ का शाङ्करभाष्य)

इस प्रकार अनेक युक्तियो, तर्कों तथा प्रमाणोके आधारपर आचार्यने देवतत्त्व तथा अवतरणसिद्धान्तको सिद्ध किया है और सगुण-साकार अवतार-विग्रहोके प्रति श्रद्धा भक्ति स्तुति, पूजा-उपासनासे उन्हे प्रसन्न कर भक्तके सर्वविध कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। आचार्यने स्वय इतने विस्तारसे सगुणो-पासनाके स्तोत्र-साहित्यका निर्माण किया है, जिसे देखकर यह लगता है कि आचार्यने अद्वैतकी प्रतिष्ठा की है या द्वैतकी? उन्होंने अपने स्तुति-साहित्यके द्वारा भक्तिकी जो अजस्त्र धारा प्रवाहित की उसीमें उनका अद्वैततत्त्व भी समा गया।

इस प्रकार भगवत्पादने अदृष्ट देवतत्त्व तथा अवतरण-सिद्धान्तकी स्थापना कर उसकी प्राप्तिपूर्वक कैवल्यतककी प्राप्ति करानेमे अद्भुत योग प्रदान किया है। उनके इस कृपाप्रसादके लिये मानवसमाज सर्वदा उनका ऋणी रहेगा।

आचार्यका कहना है कि अन्त करण शुद्ध होनेपर ही वास्तविकताका बोध हो सकता है। अशुद्ध बुद्धि और मनके निश्चय एव सकल्प भ्रमात्मक ही होते हैं। अत सच्चा ज्ञान प्राप्त करना ही परम कल्याण है और उसके लिये अपने धर्मानुसार कर्म, योग भक्ति अथवा और भी किसी मार्गसे अन्त करणको शुद्ध बनाते हुए वहाँतक पहुँचना चाहिये।

भगवान् शङ्करने भक्तिको ज्ञानप्राप्तिका प्रधान साधन माना है तथापि वे स्वय बडे भक्त थे और ज्ञानसिद्धान्तके अन्तरालमे छिपे 'महान् भक्त' थे। प्रबोधसुधाकरके नीचे उद्धृत श्लोकोसे तो यह सिद्ध होता है कि आचार्यपाद भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे और उनकी वनभोजन-लीलाकी झाँकी किया करते थे और उनसे प्रार्थना करते थे। नीचे उस झाँकी तथा प्रार्थनाको देखिये—

यमुनातटनिकटस्थितवृन्दावनकानने महारम्ये।
कल्पद्रुमतलभूमौ चरण चरणोपरि स्थाप्य॥
तिष्ठन्त घननील स्वतेजसा भासयन्तमिह विश्वम्।
पीताम्बरपरिधान चन्दनकर्पूरलिप्तसर्वाङ्गम्॥
आकर्णपूर्णनेत्र कुण्डलयुगमण्डितश्रवणम्।
मन्दस्मितमुखकमल सुकौस्तुभोदारमणिहारम्॥
वलयाङ्गुलीयकाद्यानुज्ज्वलयन्त स्वलङ्कारान्।
गलविलुलितवनमाल स्वतेजसापास्तकलिकालम्॥
गुञ्जारवालिकलित गुञ्जापुञ्जान्वित शिरसि।
भुञ्जान सह गोपै कुञ्जान्तरवर्तिन हरि स्मरत॥

'श्रीयमुनाजीके तटपर स्थित वृन्दावनके किसी महामनोहर बगीचेमे जो कल्पवृक्षके नीचेकी भूमिमे चरणपर चरण रखे बैठे हैं, जो मेघके समान श्यामवर्ण हैं और अपने तेजसे इस निखिल ब्रह्माण्डको प्रकाशित कर रहे हैं, जो सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए हैं तथा समस्त शरीरमे कर्पूरमिश्रित चन्दनका लेप लगाये हुए हैं, जिनके कर्णपर्यन्त विशाल नेत्र हैं जिनके कान कुण्डलके जोडेसे सुशोभित हैं, जिनका मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त है, जिनके वक्ष स्थलपर कौस्तुभमणियुक्त सुन्दर हार है, जो अपनी कान्तिसे कङ्कण और अँगूठी आदि सुन्दर आभूषणोकी भी शोभा बढा रहे हैं, जिनके गलेमे वनमाला लटक रही है अपने तेजसे जिन्होने कलिकालको परास्त कर दिया है तथा जिनका गुञ्जावलिविभूषित मस्तक गूँजते हुए भ्रमरसमूहसे सुशोभित है, किसी कुञ्जके भीतर बैठकर ग्वालबालोके साथ भोजन करते हुए उन श्रीहरिका स्मरण करो।'

मन्दारपुष्पवासितमन्दानिलसेवित परानन्दम्।
मन्दाकिनीयुतपद नमत महानन्दद महापुरुषम्॥

'जो कल्पवृक्षके पुष्पाकी गन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायुसे सेवित हैं, परमानन्दस्वरूप हैं तथा जिनके चरणकमलाम श्रीगङ्गाजी विराजमान हैं उन महानन्ददायक महापुरुपको नमस्कार करो।'

सुरभीकृतदिग्वलय सुरभितैरावृत सदा परित ।
सुरभीतिक्षपणमहासुरभीम यादव नमत॥

'जिन्होने समस्त दिशाआको सुगन्धित कर रखा है, जो चारो ओरसे सैकडा कामधेनु गौआसे घिरे हुए हैं तथा देवताआके भयको दूर करनेवाले और बडे-बड राक्षसाक लिये भयङ्कर हैं, उन यदुनन्दनको नमस्कार करा।'

कन्दर्पकोटिसुभग वाञ्छितफलद दयार्णव कृष्णम्।
त्यक्त्वा कमन्यविषय नेत्रयुग द्रष्टुमुत्सहते॥

'जो करोडा कामदेवासे भी सुन्दर हैं वाञ्छित फलको देनेवाले हैं दयाके समुद्र हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रको छोडकर ये नेत्रयुगल और किस विषयका दखनेके लिये उत्सुक होते हैं ?'

सुतरामनन्यशरणा क्षीराद्याहारमन्तरा यद्वत्।
केवलया स्नेहदृशा कल्पतनया प्रजीवन्ति॥

'जिनका कोई अन्य आश्रय नहीं है ऐसे कछुईके बच्चे जिस प्रकार दूध आदि आहारके विना ही केवल माताकी स्नेहदृष्टिस पलते हैं, उसी प्रकार अनन्य भक्त भी भगवान्की दयादृष्टिक सहारे ही जीवन-निर्वाह करते हैं।'

इतना ही नहीं आचार्यचरणने भगवान् श्रीराम देवी दुर्गा, सूर्य गणेश गङ्गा आदि सभी विग्रहोकी इतनी सुन्दर ललित स्तुतियाँ हम दी हैं, जिनके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठसे चित्तम अत्यन्त प्रसनता होती है और भगवान्का साक्षात् विग्रह नेत्रोके समक्ष उपस्थित हो जाता है। उन्होने शक्तिकी उपासनापर सौन्दर्यलहरी, ललितापञ्चक, देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र नृसिह-उपासनापर लक्ष्मीनृसिहस्तोत्रकी रचना की। इसक प्रत्येक श्लोकमें पठित **'लक्ष्मीनृसिह मम देहि करावलम्बम्'** पद बहुत ही भावभक्तिपूर्ण है। शिवकी आराधना-सम्बन्धी उनके स्तोत्र शिवापराधक्षमापनस्तोत्र, वेदसारशिवस्तव शिवाष्टक शिवपञ्चाक्षरस्तोत्र आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। भगवान् श्रीरामकी स्तुतियोम 'श्रीरामभुजगप्रयात' वडा ही प्रसिद्ध है। इसके २९ श्लोकाम ही उन्हाने भगवान् श्रीरामके प्रति जो भक्ति दिखायी है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस स्तात्रके प्राय अनेक श्लोकाक अन्तमे एक पक्ति इस प्रकार आती है—**'अरा-माभिधेयैरल दैवतैर्न।'** इसका तात्पर्य है कि परम दैवत भगवान् श्रीरामका छोडकर मेरा किसी अन्य दूसरे देवतासे कोई प्रयोजन नहीं है। आद्य शङ्कराचार्यजी विरचित एक दशावतारस्तोत्र भी प्राप्त होता है जिसम उन्हाने भगवान् विष्णुके मत्स्य, कूर्म आदि दस अवताराकी वन्दना की है।

सनातनधर्मकी प्रतिष्ठा और रक्षा हो सके—इसी आशयस आचायचरणन भारतवर्षक चारा कोनाम चार मठ स्थापित किये और जगह-जगह देवमन्दिरा तथा अर्चा-विग्रहोकी इसीलिये प्रतिष्ठा करायी कि लाग भक्त बन भगवान्के सगुण-साकार रूपकी आराधना कर और उनक मतानुसार भक्तिके बिना भगवत्साक्षात्कार असम्भव है। विवेकचूडामणिमें व कहत हैं—**'माक्षकारणसामग्र्या भक्तिरेव गरीयसी।'** अर्थात् मोक्षप्राप्तिके साधनाम भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ है। वे प्रवोधसुधाकरमें कहते हैं—

शुद्ध्यति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजभक्तिमृते।
वसनमिव क्षारोदैर्भक्त्या प्रक्षाल्यते चेत ॥

'अर्थात् श्रीकृष्णक चरणकमलाकी भक्ति किय बिना अन्त करण शुद्ध नहीं होता। जैसे गन्दा कपडा क्षारके जलसे स्वच्छ किया जाता है, उसी प्रकार चित्तके मलको धोनेके लिये भक्ति ही साधन है।'

श्रीशङ्कराचार्यकी दृष्टिम विश्वमे केवल एक ही सत्य वस्तु है और वह है ब्रह्म। समस्त अवतार उन्हींकी अभिव्यक्तियाँ हैं। उन्हाने प्राय सभी देवस्वरूपाका ध्यान और उनकी प्रार्थना की है। यहाँतक कि गङ्गा, यमुना नर्मदा आदि नदियोम दवत्वकी प्रतिष्ठा कर भक्तिभावसे उनका स्तवन किया है। यहाँ यह विशेष बात है कि उन्हाने जिस भी देवताका स्तवन किया है, उसे परम पुरुष परमात्माकी ही अभिव्यक्ति माना है। भगवान्से अपना दैन्य निवेदन करते हुए पट्पदीमे वे कहते हैं—

अविनयमपनय विष्णो दमय मन शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदया विस्तारय तारय ससारसागरत ॥

हे विष्णुभगवान्! मेरी उद्दण्डता दूर कीजिये। मेरे मनका दमन कीजिये और विषयाकी मृगतृष्णाको शान्त कर दीजिये प्राणियोक प्रति मेरा दयाभाव बढाइये और इस ससार-समुद्रसे मुझे पार कीजिये।

श्रीरामानुजाचार्य और अवतार-तत्त्व

श्रीरामानुजाचार्य बडे ही विद्वान्, सदाचारी, धैर्यवान्, सरल एव उदार थे। ये आचार्य आळवन्दार (यामुनाचार्य)-की परम्पराम थे। इनके पिताका नाम केशवभट्ट था। ये दक्षिणके तिरुकुदूर नामक क्षेत्रम रहते थ। जब इनकी अवस्था बहुत छोटी थी तभी इनके पिताका देहान्त हो गया और इन्होने काञ्चीम जाकर यादवप्रकाश नामक गुरुसे वेदाध्ययन किया। इनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि ये अपने गुरुकी व्याख्यामे भी दोष निकाल दिया करते थे। इसीलिये गुरुजी इनसे बडी ईर्ष्या करने लगे, यहाँतक कि वे इनके प्राण लेनेतकको उतारू हो गये। उन्हान रामानुजके सहाध्यायी एव उनके चचेरे भाई गोविन्दभट्टसे मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि गोविन्दभट्ट रामानुजको काशीयात्राके बहाने किसी घने जगलम ले जाकर वहीं मार डाले। गोविन्दभट्टने ऐसा ही करना चाहा परतु भगवान्‌की कृपासे एक व्याध और उसकी स्त्रीने इनके प्राणोकी रक्षा की।

विद्या, चरित्रबल और भक्तिमे रामानुज अद्वितीय थ। इन्ह कुछ योगसिद्धियाँ भी प्राप्त थीं, जिनके बलसे इन्होने काञ्चीनगरीकी राजकुमारीको प्रेतबाधासे मुक्त कर दिया। जब महात्मा आळवन्दार मृत्युकी घडियाँ गिन रहे थे उस समय उन्हाने अपने शिष्यके द्वारा रामानुजाचार्यको अपने पास बुलवा भेजा। परतु रामानुजके श्रीरङ्गम् पहुँचनेके पहले ही आळवन्दार (यामुनाचार्य) भगवान् नारायणके धाममे पहुँच चुके थे। रामानुजने देखा कि श्रीयामुनाचार्यके हाथकी तीन अँगुलियाँ मुडी हुई हैं। इसका कारण कोई नहीं समझ सका। रामानुज तुरत ताड गये कि यह सकेत मेरे लिये है। उन्हाने यह जान लिया कि श्रीयामुनाचार्य मेरे द्वारा ब्रह्मसूत्र विष्णुसहस्रनाम और आळवन्दारके 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका करवाना चाहते हैं। उन्हाने आळवन्दारके मृत शरीरको प्रणाम किया ओर कहा—'भगवन्! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं इन तीना ग्रन्थाकी टीका अवश्य लिखूँगा अथवा लिखवाऊँगा।' रामानुजके यह कहते ही आळवन्दारकी तीनो अँगुलियाँ सीधी हा गयीं। इसके बाद श्रीरामानुजने आळवन्दारके प्रधान शिष्य पेरियनाम्बिसे विधिपूर्वक वैष्णव दीक्षा ली और वे भक्तिमार्गमे प्रवृत्त हो गये।

रामानुज गृहस्थ थे, परतु जब उन्हाने देखा कि गृहस्थीम रहकर अपने उद्देश्यको पूरा करना कठिन है तब उन्हाने गृहस्थीका परित्याग कर दिया और श्रीरङ्गम् जाकर यतिराज नामक सन्यासीसे सन्यासकी दीक्षा ले ली। इधर इनके गुरु यादवप्रकाशको अपनी करनीपर बडा पश्चात्ताप हुआ और वे भी सन्यास लेकर श्रीरामानुजकी सवा करनेके लिये श्रीरङ्गम् चले आये। उन्होने सन्यास-आश्रमका अपना नाम गोविन्दयोगी रखा।

आचार्य रामानुज दयाम भगवान् बुद्धके समान, प्रेम और सहिष्णुताम ईसामसीहके प्रतियोगी शरणागतिमें आळवारोंके अनुयायी और प्रचारकार्यमे सेन्ट जॉनके समान उत्साही थे। इन्हाने तिरुकोट्टियूरके महात्मा नाम्बिसे अष्टाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो नारायणाय**)-की दीक्षा ली थी। नाम्बिन मन्त्र देते समय इनसे कहा था 'तुम इस मन्त्रको गुप्त रखना।' परतु रामानुजने सभी वर्णके लागाको एकत्रकर मन्दिरके शिखरपर खडे होकर सब लोगाका वह मन्त्र सुना दिया। गुरुने जब रामानुजकी इस धृष्टताका हाल सुना, तब व इनपर बड रुष्ट हुए और कहने लग—'तुम्हे इस अपराधके बदल नरक भोगना पडेगा।' श्रीरामानुजने इसपर बड विनयपूर्वक कहा कि 'भगवन्! यदि इस महामन्त्रका उच्चारण करक हजारा आदमी नरककी यन्त्रणासे बच सकते हैं ता मुझ नरक भागनेमें आनन्द ही मिलेगा।' रामानुजक इस उत्तरस गुरका क्रोध जाता रहा। उन्हाने बडे प्रेमसे इन्हें गल लगाया और

आशीर्वाद दिया। इस प्रकार रामानुजने अपनी समदर्शिता और उदारताका परिचय दिया।

रामानुजने आळवन्दारकी आज्ञाके अनुसार आळवाराके 'दिव्यप्रबन्धम्' का कई बार अनुशीलन किया और उसे कण्ठ कर डाला। उनके कई शिष्य हो गये और उन्हाने इन्हे *आळवन्दारकी गद्दीपर बिठाया,* परतु इनके *कई शत्रु भी* हो गये, जिन्हाने कई बार इन्हे मरवा डालनेकी चेष्टा की। एक दिन इनके किसी शत्रुने इन्हे भिक्षामे विष मिला हुआ भोजन दे दिया, परतु एक स्त्रीने इन्हे सावधान कर दिया और इस प्रकार रामानुजके प्राण बच गये। रामानुजने आळवाराके भक्तिमार्गका प्रचार करनेके लिये सारे भारतकी यात्राकी और गीता तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखे। वेदान्तसूत्रोपर इनका भाष्य 'श्रीभाष्य' के नामसे प्रसिद्ध हे और इनका सम्प्रदाय भी 'श्रीसम्प्रदाय' कहलाता है, क्याकि इस सम्प्रदायकी आद्य प्रवर्तिका श्रीमहालक्ष्मीजी मानी जाती हैं। यह ग्रन्थ पहले-पहल काश्मीरके विद्वानाको सुनाया गया था। इनके प्रधान शिष्यका नाम कूरत्ताळवार (कूरेश) था। कूरत्ताळवारके पराशर और पिल्लन् नामके दो पुत्र थे। *रामानुजने पराशरके द्वारा विष्णुसहस्रनामकी और पिल्लन्से* 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका लिखवायी। इस प्रकार उन्होने आळवन्दारकी तीनो इच्छाआको पूर्ण किया।

उन दिना श्रीरङ्गम्पर चोळदेशके राजा कुळोत्तुङ्गका अधिकार था। ये बडे कट्टर शैव थे। इन्होने श्रीरङ्गजीके मन्दिरपर एक ध्वजा टँगवा दी थी, जिसपर लिखा था— **'शिवात्पर नास्ति'** (शिवसे बढकर कोई नहीं है)। जो कोई इसका विरोध करता उसके प्राणोपर आ बनती थी। कुळोत्तुङ्गने रामानुजके शिष्य कूरत्ताळवारको बहुत पीडा दी।

इस समय आचार्य *रामानुज मैसूरराज्यके शालग्राम* नामक स्थानमे रहने लगे थे। वहाँके राजा भिट्टिदेव वैष्णव धर्मके सबसे बडे पक्षपाती थे। आचार्य रामानुजने वहाँ बारह वर्षतक रहकर वैष्णव धर्मकी बडी सेवा की। सन् १०९९ म उन्हं नम्मले नामक स्थानमे एक प्राचीन मन्दिर मिला और राजाने उसका जीर्णोद्धार करवाकर पुन नये ढगसे निर्माण करवाया। वह मन्दिर आज भी तिरुनारायणपुरके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँपर भगवान् श्रीरामका जो प्राचीन विग्रह है, वह पहले दिल्लीके बादशाहके अधिकारम था। बादशाहकी लडकी उसे प्राणासे *भी बढकर मानती थी।* रामानुज अपनी योगशक्तिके द्वारा बादशाहकी स्वीकृति प्राप्तकर उस विग्रहको वहाँसे ले आये और उन्हाने पुन तिरुनारायणपुरम उसकी स्थापना की।

राजा कुळोत्तुङ्गका देहान्त हो जानेपर आचार्य रामानुज श्रीरङ्गम् चले आये। वहाँ उन्हाने एक मन्दिर बनवाया, *जिसम नम्माळवार और दूसरे आळवार सताकी प्रतिमाएँ* स्थापित की गयीं और उनके नामसे कई उत्सव भी जारी किये। उन्होने तिरुपतिके मन्दिरम भगवान् गोविन्दराज-पेरुमलकी पुन स्थापना करवायी और मन्दिरका पुन निर्माण करवाया। उन्होने देशभरमे भ्रमण करके हजारो नर-नारियाको भक्तिमार्गम लगाया। आचार्य रामानुजक चौहत्तर शिष्य थे, जो सब-के-सब सत हुए। इन्होने कूरत्ताळवारके पुत्र महात्मा पिल्ललाकाचार्यको अपना उत्तराधिकारी बनाकर एक सौ बीस वर्षकी अवस्थामे इस असार ससारको त्याग दिया।

रामानुजके सिद्धान्तके अनुसार भगवान् ही पुरुषोत्तम हैं। वे ही प्रत्येक शरीरमे साक्षीरूपम विद्यमान हैं। वे जगत्के नियन्ता शेषी (अवयवी) एव स्वामी हैं और जीव उनका नियम्य, शेष तथा सेवक है। अपने व्यष्टि अहङ्कारको *सर्वथा मिटाकर भगवान्की सर्वतोभावेन शरण ग्रहण* करना ही जीवका परम पुरुषार्थ है। भगवान् नारायण ही सत् हैं, उनकी शक्ति महालक्ष्मी चित् हैं और यह जगत् उनके आनन्दका विलास है, रज्जुम सर्पकी भाँति असत् नहीं है। भगवान् लक्ष्मीनारायण जगत्के माता-पिता और जीव उनकी सतान हैं। माता-पिताका प्रेम और उनकी कृपा प्राप्त करना ही सतानका धर्म है। वाणीसे भगवान् नारायणके नामका ही उच्चारण करना चाहिये और मन, वाणी, शरीरसे उनकी सेवा करनी चाहिये।

श्रीरामानुजाचार्यजीके सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्म सगुण और सविशेष है। ब्रह्मकी शक्ति माया है। ब्रह्म अशेष कल्याणकारी गुणोके आलय हैं। जीव और जगत् उनका शरीर है। भगवान् ही आत्मा हैं। उनके गुणोकी सख्या नहीं है। वे गुणाम अद्वितीय हैं। ईश्वर सृष्टिकर्ता, कर्मफलदाता नियन्ता तथा सर्वान्तर्यामी हैं। नारायण विष्णु ही सबके अधीश्वर हैं। व पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार भेदसे पाँच प्रकारके हैं। वे शङ्ख चक्र, गदा पद्मधारी चतुर्भुज हैं। श्री, भू और लीलासहित हैं किरीटादि भूषणासे *अलकृत हैं। अवतार दस प्रकारके हैं—मत्स्य*

कूर्म, नृसिह, वराह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलभद्र, श्रीकृष्ण और कलि। इनमे मुख्य, गौण, पूर्ण और अशभेदसे और भी अनेक भेद हैं। अवतारहेतु इच्छा है, कर्मप्रयोजन हेतु नहीं है। दुष्कृताके विनाश तथा साधुआके परित्राणके लिये अवतार होता है।

श्रीरामानुजाचार्यने 'प्रपत्ति' पर बहुत जोर दिया है। न्यासविद्या ही वह प्रपत्ति है। आनुकूल्यका सङ्कल्प और प्रातिकूल्यका वर्जन ही प्रपत्ति है। भगवान्मे आत्मसमर्पण करना प्रपत्ति है। सब प्रकारसे भगवान्के शरण हो जाना प्रपत्तिका लक्षण है। नारायण विभु हैं, भूमा हैं, उनके चरणोमे आत्मसमर्पण करनेसे जीवको शान्ति मिलती है। उनके प्रसन्न होनेपर मुक्ति मिल सकती है। उन्हे सर्वस्व निवेदन करना होगा। सब विषयोको त्यागकर उनकी शरण लेनी होगी।

पितर मातर दारान् पुत्रान् बन्धून् सखीन् गुरून्।
रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥
सर्वधर्मांश्च सन्त्यज्य सर्वकामाश्च साक्षरान्।
लोकविक्रान्तचरणौ शरण तेऽव्रज विभो॥

'हे प्रभो! मैं पिता, माता, स्त्री, पुत्र, बन्धु, मित्र, गुरु, सब रत्न, धन-धान्य, खेत, घर, सारे धर्म और अक्षरसहित सम्पूर्ण कामनाओका त्यागकर समस्त ब्रह्माण्डको आक्रान्त करनेवाले आपके दोना चरणोकी शरणमे आया हूँ।'

~~~o~~~

सूर्यावतार श्रीनिम्बार्काचार्यजी

सूर्यावतार आचार्य निम्बार्कके कालके विषयमे बडा मतभेद है। इनके भक्त इन्हे द्वापरमे हुआ बताते हैं। इनके कोई-कोई मतानुयायी ईसाकी पाँचवीं शताब्दीको इनका जन्मकाल बताते हें। वर्तमान अन्वेषकोने बडे प्रमाणसे इन्हे ग्यारहवीं शताब्दीका सिद्ध किया है।

कहा जाता है कि दक्षिण देशमे गोदावरीतटपर स्थित वैदूर्यपत्तनक निकट अरुणाश्रममे श्रीअरुणमुनिकी पत्नी जयन्तीदेवीके गर्भसे आचार्यचरण अवतीर्ण हुए थे। कोई-कोई इनके पिताका नाम जगन्नाथ मानते हैं और सूर्यके स्थानपर इन्हे भगवान्के प्रिय आयुध सुदर्शनचक्रका अवतार बताते हैं। इनके उपनयन-सस्कारके समय स्वय देवर्षि नारदने उपस्थित होकर इन्हे श्रीगोपाल-मन्त्रकी दीक्षा दी एव 'श्री-भू-लीला' सहित श्रीकृष्णोपासनाका उपदेश दिया। इनके गुरु नारद और नारदके गुरु सनकादि, इस प्रकार इनका सम्प्रदाय सनकादिसम्प्रदायके नामसे ही प्रसिद्ध है।

इनका मत द्वैताद्वैतवादके नामसे प्रसिद्ध है। यह कोई नया मत नहीं है बल्कि बहुत प्राचीन कालसे चला आ रहा है। श्रीनिम्बार्कने अपने भाष्यमे नारद और सनत्कुमारका नामोल्लेख किया है। चाहे जो हो, आचार्यचरणने जिस मतकी दीक्षा प्राप्त की थी, अपनी प्रतिभा, आचरण और अनुभवके द्वारा उसे उज्ज्वल बनाया।

कहते हें कि इनका नाम पहले नियमानन्द था। देवचार्यने इसी नामसे इन्हे नमस्कार किया है। एक दिन जब ये मथुराके पास यमुनातटवर्ती ध्रुवक्षेत्रमे जहाँ इनके सम्प्रदायकी गद्दी है, निवास करते थे तब एक दण्डी अथवा किसी-किसीके मतसे एक जैन-साधु इनके आश्रमपर आये। दोनोंमें आध्यात्मिक विचार चलने लगा। उसमे ये दोना इतने तल्लीन हो गये कि शाम हो गयी और इन्हे पता ही न चला। सूर्यास्त होनेपर जब आचार्यने अपने अतिथिको भोजन कराना चाहा तब उन्होंने सूर्यास्तकी बात कहकर आतिथ्य ग्रहण करनेमे असमर्थता
~~~

प्रकट की, क्योकि दण्डी या जैन लोगाके लिये सन्ध्या या रात्रिमे भोजन करना निषिद्ध है। उस समय अतिथिसत्कारसे अत्यन्त प्रेम रखनेवाले आचार्यचरणको बडी चिन्ता हुई कि अथितिको बिना भोजन कराये कैसे जाने द। जब उनके हृदयमें बडी वेदना हुई तब भक्तभयहारी भगवान्‌न एक बडी सुन्दर लीला रची। सबने दखा, उन अतिथि साधुने भी दखा और स्वय आचार्य निम्बार्कने देखा कि उनके आश्रमके पास ही एक नीमके वृक्षके ऊपर सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं। सभीको बडा आश्चर्य हुआ। भगवान्‌की इस अपार करुणाका दर्शन करके आचार्यका हृदय गद्‌गद हो गया। शरीर पुलकित हो गया। उनके सामने तो उनक आराध्यदेव स्वय भगवान् श्रीकृष्ण ही सूर्यरूपसे उपस्थित थे। उन्हाने निहाल होकर अतिथिको भोजन कराया और इसके पश्चात् वे सूर्यभगवान् अस्त हो गये। लोगाने भगवान्‌की इस कृपाको आचार्यकी योगसिद्धिके रूपमे ग्रहण किया और तभीसे इनका नाम निम्बादित्य या निम्बार्क पड गया। इन्हाने न जाने कितन ग्रन्थाकी रचना की होगी। परतु अब तो एकमात्र वेदान्तसूत्रांके भाष्य, वेदान्त-पारिजातसौरभके अतिरिक्त इनका और कोई प्रधान ग्रन्थ नहीं मिलता।

इनक विरक्त शिष्य केशवभट्टके अनुयायी विरक्त होत हैं और गृहस्थ शिष्य हरिव्यासक अनुयायी गृहस्थ होते हैं। इनके सम्प्रदायमे श्रीराधा-कृष्णकी पूजा होती है और लोग गोपीचन्दनका तिलक लगाते हैं।

इनके सम्प्रदायम श्रीमद्भागवतको प्रधान ग्रन्थ माना जाता है। इनके मतमे ब्रह्मसे जीव और जगत् पृथक् भी हैं और एक भी हैं। इसी सिद्धान्तके आधारपर इनका मत स्थापित हुआ है। गौडीय मतसे मिलता-जुलता होनेपर भी इनका सिद्धान्त कई बातोमे उनसे अत्यन्त भिन्न है।

वायुदेवके अवतार श्रीमध्वाचार्यजी

श्रीभगवान् नारायणकी आज्ञासे स्वय वायुदेवने ही भक्तिसिद्धान्तकी रक्षाके लिय मद्रास-प्रान्तके मगलूर जिलेके अन्तर्गत उडूपाक्षेत्रसे दा-तीन मील दूर वेललि ग्राममें भार्गवगोत्रीय नारायणभट्टक अशसे तथा माता वेदवतीके गर्भसे विक्रम सवत् १२९५ की माघ शुक्ला सप्तमाके दिन आचार्य मध्वके रूपम अवतार ग्रहण किया था। कई लागान आश्विन शुक्ला दशमीको इनका जन्म-दिन माना है। परतु वह इनके वेदान्तसाम्राज्यके अभिषेकका दिन है, जन्मका नहीं। इनके जन्मके पूर्व पुत्रप्राप्तिके लिये माता-पिताको बडी तपस्या करनी पडी थी। बचपनसे ही इनम अलौकिक शक्ति दीखती थी। इनका मन पढने-लिखनेम नहीं लगता था अत यज्ञोपवीत होनेपर भी ये दौडने कूदने-फाँदने, तैरने और कुश्ती लडनेमें ही लगे रहते थे। इस कारण बहुत-से लोग इनके पितृदत्त नाम वासुदेवके स्थानपर इन्ह 'भीम' नामसे पुकारत थे। ये वायुदेवके अवतार थे, इसलिये यह नाम भी सार्थक ही था। परतु इनका अवतार-उद्देश्य खेलना-कूदना तो था नहीं अत जब वेद-शास्त्राकी ओर इनकी रुचि हुई तब थोडे ही दिनाम इन्हाने सम्पूर्ण विद्या अनायास ही प्राप्त कर ली। जब इन्हाने सन्यास लेनेकी इच्छा प्रकट की तब मोहवश माता-पिताने बडी अडचने डालीं परतु इन्होंने उनकी इच्छाके अनुसार उन्ह कई चमत्कार दिखाकर जा अबतक एक सरोवर और वृक्षके रूपम इनकी जन्म-भूमिमे विद्यमान हैं और एक छोट भाईके जन्मकी बात कहकर ग्यारह वर्षकी अवस्थाम अद्वैतमतके सन्यासी अच्युतपक्षाचार्यजीसे सन्यास ग्रहण किया। यहाँपर

इनका सन्यासी नाम 'पूर्णप्रज्ञ' हुआ। सन्यासके पश्चात् इन्होने वेदान्तका अध्ययन आरम्भ किया। इनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि अध्ययन करते समय ये कई बार गुरुजीको ही समझाने लगते और उनकी व्याख्याका प्रतिवाद कर देते। सारे दक्षिण देशमे इनकी विद्वत्ताकी धूम मच गयी।

एक दिन इन्होने अपने गुरुसे गङ्गास्नान और दिग्विजय करनेके लिये आज्ञा माँगी। ऐसे सुयोग्य शिष्यके विरहकी सम्भावनासे गुरुदेव व्याकुल हो गये। उनकी व्याकुलता देखकर अनन्तेश्वरजीने कहा कि भक्तकि उद्धारार्थ गङ्गाजी स्वय सामनेवाले सरोवरमे परसो आयेगी, अत वे यात्रा न कर सकेगे। सचमुच तीसरे दिन उस तालाबमे हरे पानीके स्थानपर सफद पानी हो गया और उसम तरङ्गे दीखने लगीं। अतएव आचार्यकी यात्रा नहीं हो सकी। अब भी हर बारहवे वर्ष एक बार वहाँ गङ्गाजीका प्रादुर्भाव होता है। वहाँ एक मन्दिर भी है।

कुछ दिनाके बाद आचार्यने यात्रा की और स्थान-स्थानपर विद्वानोके साथ शास्त्रार्थ किया। इनके शास्त्रार्थका उद्देश्य होता—भगवद्भक्तिका प्रचार, वेदोकी प्रामाणिकताका स्थापन, मायावादका खण्डन और मर्यादाका सरक्षण। एक जगह तो इन्होने वेद महाभारत और विष्णुसहस्रनामके क्रमश तान, दस और सौ अर्थ हैं—ऐसी प्रतिज्ञा करके और व्याख्या करके पण्डितमण्डलीको आश्चर्यचकित कर दिया। गीताभाष्यका निर्माण करनेके पश्चात् इन्होने बदरीनारायणकी यात्रा की और वहाँ महर्षि वेदव्यासको अपना भाष्य दिखाया। कहते हैं कि दु खी जनताका उद्धार करनेके लिये उपदेश और ग्रन्थनिर्माण आदिकी इन्ह आज्ञा प्राप्त हुई। बहुत-से नृपतिगण इनके शिष्य हुए। अनेक विद्वानोने पराजित होकर इनका मत स्वीकार किया। इन्हाने अनेक प्रकारकी योगसिद्धियाँ प्राप्त की थीं और इनके जीवनमे समय-समयपर वे सिद्धियाँ प्रकट भी हुईं। इन्होने अनेक मूर्तियाकी स्थापना की और इनके द्वारा प्रतिष्ठित विग्रह आज भी विद्यमान हैं। श्रीबदरीनारायणमे व्यासजीने इन्ह शालग्रामकी तीन मूर्तियाँ भी दी थीं, जिन्ह इन्हाने सुब्रह्मण्य उडूपि और मध्यतलम स्थापित किया। एक बार किसी व्यापारीका जहाज द्वारकासे मलाबार जा रहा था। तुलुबके पास वह डूब गया। उसम गोपीचन्दनसे ढकी हुई भगवान् श्रीकृष्णकी एक सुन्दर मूर्ति थी। मध्वाचार्यको भगवान्की आज्ञा प्राप्त हुई और उन्होने मूर्तिको जलसे निकालकर उडूपिमे उसकी स्थापना की। तभीसे वह रजतपीठपुर अथवा उडूपि मध्वमतानुयायियोका तीर्थ हो गया। एक बार एक व्यापारीके डूबते हुए जहाजको इन्होने बचा दिया। इससे प्रभावित होकर वह अपनी आधी सम्पत्ति इन्ह दने लगा। परतु इनके रोम-रोममे भगवान्का अनुराग और ससारके प्रति विरक्ति भरी हुई थी। ये भला उसे क्या लेने लगे। इनके जीवनम इस प्रकारके असामान्य त्यागके बहुत-से उदाहरण हैं। कई बार लोगोने इनका अनिष्ट करना चाहा और इनके लिखे हुए ग्रन्थ भी चुरा लिये, परतु आचार्य इससे तनिक भी विचलित या क्षुब्ध नहीं हुए, बल्कि उनके पकडे जानेपर उन्हे क्षमा कर दिया और उनसे बडे प्रेमका व्यवहार किया। ये निरन्तर भगवच्चिन्तनमे सलग्न रहते थे। बाहरी काम-काज भी केवल भगवत्-सम्बन्धसे ही करते थे। इन्होने उडूपिमे ओर भी आठ मन्दिर स्थापित किये, जिनमे श्रीसीताराम द्विभुज कालियदमन, चतुर्भुज कालियदमन, विट्ठल आदि आठ मूर्तियाँ हैं। आज भी लोग उनका दर्शन करके अपने जीवनका लाभ लेते हैं। ये अपने अन्तिम समयम सरिदन्तर नामक स्थानमे रहते थे। यहींपर उन्होंने परम धामकी यात्रा की। देहत्यागके अवसरपर पूर्वाश्रमके सोहनभट्टको—अब जिनका नाम पद्मनाभतीर्थ हो गया था—श्रीरामजीकी मूर्ति और व्यासजीकी दी हुई शालग्रामशिला देकर अपने मतके प्रचारकी आज्ञा दे गये। इनके शिष्याके द्वारा अनक मठ स्थापित किये गये तथा इनके द्वारा रचित अनेक ग्रन्थोका प्रचार होता रहा।

श्रीमन्मध्वाचार्यके उपदेश

१-श्रीभगवान्का नित्य-निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये जिससे अन्तकालमे उनकी विस्मृति न हो, क्योकि सैकडो बिच्छुओके एक साथ डक मारनेसे शरीरम जैसी पीडा होती है वैसी ही पीडा मरणकालमे मनुष्यको होती है, वात पित्त, कफसे कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और नाना प्रकारके सासारिक पाशोसे जकडे रहनेके कारण मनुष्यको बडी घबराहट हो जाती है। ऐसे समयमे भगवान्की स्मृतिको बनाये रखना बडा कठिन हो जाता है। (द्वा० स्तो० १।१२)

२-सुख-दु खोंकी स्थिति कर्मानुसार होनेसे उनका अनुभव सभीके लिये अनिवार्य है। इसीलिये सुखका अनुभव करते समय भी भगवान्को न भूलो तथा दु खकालम भी उनकी निन्दा न करो। वेद-शास्त्रसम्मत कर्ममार्गपर अटल रहो। कोई

भी कर्म करते समय बडे दीनभावसे भगवान्‌का स्मरण करो। भगवान् ही सबसे बडे, सबके गुरु तथा जगत्‌के माता-पिता हैं। इसीलिये अपने सारे कर्म उन्हींके अर्पण करने चाहिये। (द्वा०स्तो० ३।१)

३-व्यर्थके सासारिक झझटोके चिन्तनमे अपना अमूल्य समय नष्ट न करो। भगवान्‌मे ही अपने अन्त करणको लीन करो। विचार, श्रवण, ध्यान तथा स्तवनसे बढकर ससारमे अन्य कोई पदार्थ नहीं है। (द्वा० स्तो० ३।२)

४-भगवान्‌के चरणकमलाका स्मरण करनेकी चेष्टामात्रसे ही तुम्हारे पापोका पर्वत-सा ढेर नष्ट हो जायगा। फिर स्मरणसे तो मोक्ष होगा ही, यह स्पष्ट है। ऐसे स्मरणका परित्याग क्यो करते हो। (द्वा० स्तो० ३।३)

५-सज्जनो! हमारी निर्मल वाणी सुनो। दोनों हाथ उठाकर शपथपूर्वक हम कहते हैं कि भगवान्‌की बराबरी करनेवाला भी इस चराचर जगत्‌मे कोई नहीं है, फिर उनसे श्रेष्ठ तो कोई हो ही कैसे सकता है। वे ही सबसे श्रेष्ठ हैं। (द्वा० स्तो० ३।४)

६-यदि भगवान् सबसे श्रेष्ठ न होते तो समस्त ससार उनके अधीन किस प्रकार रहता, और यदि समस्त ससार उनके अधीन न होता तो ससारके सभी प्राणियाको सदा-सर्वदा सुखकी ही अनुभूति होनी चाहिये थी। (द्वा० स्तो० ३।५)

प्रभु श्रीनाथजीके वदनावतार—महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी

(श्रीप्रभुदासजी वैरागी एम्०ए०, बी०एड्०, साहित्यालङ्कार)

श्रीमद्वल्लभाचार्यजीका प्रादुर्भाव इस देवभूमि भारतवर्षपर उस समय हुआ था जब यहाँ भारतीय सस्कृतिपर म्लेच्छोके अनवरत चतुर्दिक् आक्रमण हो रहे थे और मायावादके प्रचारके कारण समाजमे बडी निराशा छायी हुई थी। दूसरी ओर सघर्ष अविश्वास, प्रभुके प्रति अनास्था और अशान्ति फैली हुई थी। मनुष्य भौतिक सुख-सुविधाओपर गौरव कर रहा था लेकिन उसके जीवनमे आनन्द तो कोसो दूर रहा, कहीं भी न तो सुख था और न शान्ति थी। ऐसे सक्रान्तिकालमे साक्षात् भगवदवतार श्रीमन्महाप्रभुजी श्रीमद्वल्लभाचार्यजी अवतरित होकर इस धराधामपर पधारे और उन्होने अपने बताये भगवत्सेवा-स्मरण तथा ज्ञानोपदेशसे दिग्भ्रमित भारतवासियाके जीवनको रसमय और आनन्दमय बना दिया। उन्होंने अपने 'चतु श्लोकी' मे कहा है कि सच्चिदानन्द प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रको सर्वात्मना-सर्वभावेन समर्पण करके उनकी ही शरणमें रहनेसे मानवमात्रका कल्याण हो सकता है। अपना (जीवमात्रका) यही धर्म है। कभी कहीं भी इसके सिवा दूसरा धर्म नहीं है—

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिप ।
स्वस्यायमव धर्मो हि नान्य क्वापि कदाचन॥

आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने किकर्तव्यविमूढ मानवको श्रीकृष्णसेवाका परम मङ्गलमय मार्ग दिखलाया, उस भगवत्सेवा-रससुरभित अत्यन्त आह्लादकारी सुरम्य मार्गपर चलकर आज भी असख्य वैष्णव अपने जीवनको सार्थक तथा रससिक्त बनाते चले जा रहे हैं।

अवतारका अभिप्राय होता है अवतरण। आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी साक्षात् भगवदवतार थे। भगवान् श्रीकृष्णकी सरस भक्तिका प्रचार-प्रसार करनेके लिये ही वे भूतलपर पधारे थे। प्रत्येक अवतारम अलौकिकता विद्यमान रहती है। उसमे प्रादुर्भाव भी आश्चर्यजनक होता है और गमन भी आश्चर्यजनक। पिता श्रीलक्ष्मणभट्ट उपद्रव होनेपर काशी छोडकर अपने यात्रादलके साथ मध्यप्रदेशके चम्पारण्य नामक स्थानपर पहुँचे। वहाँ इनकी माता श्रीइल्लमागारुजीको

प्रसववेदना हुई तो वे वहीं अरण्यमे रुक गये। वहाँ वि०स० १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशी रविवारके दिन सात माहका बालक प्रकट हुआ। बालकको चेष्टाविहीन समझकर पिताजीने उसे शमीवृक्षके कोटरमे ले जाकर रख दिया। माताने नवजात बालकको मृत मानकर सतोष कर लिया। कुछ दिन बाद उपद्रव शान्त होनेपर पुन काशी लौटते समय माता श्रीइल्लमागारुजी अपने पतिको साथ लेकर शमीवृक्षके पास पहुँचीं तो देखा कि एक सुन्दर बालक सकुशल अग्निके घेरेम खेल रहा है। बालककी सुन्दरता मनको मोह रही थी। माता उसे लेने आगे बढीं तो अग्निदेवने उन्हे रास्ता दे दिया—तत्क्षण माँने उस सुन्दर शिशुको गोदमे उठा लिया। वही बालक बडा होनेपर श्रीमद्वल्लभाचार्यजी श्रीमहाप्रभु महाराजके नामसे सुप्रसिद्ध हुआ। उसी प्रकार मध्यवय पार करनेपर वि०स० १५८७ आषाढ शुक्ल तृतीयाके दिन मध्याह्नमे श्रीमहाप्रभुजीने गङ्गाजीमे प्रवेश किया और जहाँ प्रवेश किया वहाँसे एक अग्निका प्रतिबिम्ब उठा, वह देखते-ही-देखते आकाशकी ओर जाकर भुवनभास्करके तेजमे विलीन हो गया। गङ्गातटपर असख्य नर-नारी इस अद्भुत दृश्यको देखकर भौचक्के रह गये। इस प्रकार श्रीमहाप्रभुजीकी अवतार-लीला सम्पन्न हुई।

श्रीवल्लभाचार्यजीकी मेधाशक्ति अनुपम और असाधारण थी। उनकी स्मरणशक्ति भी बडी अद्भुत थी। उन्होने अल्प समयमें ही साख्य, योग, वैशेषिक, पूर्वमीमासा उत्तरमीमासाका अध्ययन कर लिया। साथ ही शकर, रामानुज, विष्णुस्वामी, मध्वप्रभृति आचार्योंके वेदान्त-भाष्योका भी अध्ययन किया। बालककी अद्भुत तेजस्विता देखकर सब हतप्रभ रह जाते। स्वय अग्निदेवने प्रकट होकर श्रीलक्ष्मणभट्टसे कहा कि मैं ही तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट हुआ हूँ, इसीलिये श्रीमद्वल्लभाचार्यजी पुष्टिसम्प्रदायमे वैश्वानरावतार माने गये हैं।

अपने प्रवासके प्रसङ्गम आप पुरी पधारे उस समय वहाँ विद्वत्सभा हो रही थी। राजा स्वय उस सभामे उपस्थित थे। सभामे चार प्रश्नोपर वैचारिक मन्थन चल रहा था—

१-मुख्य शास्त्र कौन-सा है ?

२-मुख्य देव कौन है ?

३-मुख्य मन्त्र क्या है ?

४-मुख्य कर्म क्या है ?

किंतु सर्वमान्य समाधान नहीं हो पा रहा था। वहाँ श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके मुखकमलसे भगवद्वाणी ही प्रस्फुटित हुई, लेकिन कतिपय हठी पण्डितोने उसे नहीं माना। तब श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकी प्रार्थनापर साक्षात् प्रभु श्रीजगन्नाथजीने अपने हस्ताक्षरसहित प्रमाणीकरण दे दिया कि—

१-भगवान् देवकीपुत्र श्रीकृष्णद्वारा गायी गयी श्रीमद्भगवद्गीता ही एकमात्र शास्त्र है।

२-देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ही एकमात्र देव हैं।

३-भगवान् श्रीकृष्णका नाम ही मन्त्र है।

४-भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा ही एकमात्र कर्म है।

अब तो सभीने नतमस्तक होकर इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया। अपने असाधारण ज्ञानके कारण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी बालसरस्वती कहे जाने लगे।

आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने पुष्टिमार्ग और पूर्णपुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिका प्रचार करनेके लिये आसेतुहिमालय भारतवर्षकी तीन परिक्रमाएँ कीं। प्रत्येक परिक्रमामे भगवान् श्रीकृष्णके अलग-अलग स्वरूप उनके साथ थे। तप्त मरुभूमि, उत्तुग पर्वतप्रदेश और सघन काननमें कटकाकीर्ण मार्गपर चलते हुए श्रीमद्वल्लभाचार्यजीको बडी कठिनाइयाँ होतीं। इस प्रकार भ्रमण करते हुए श्रीमद्भागवतको जन-जनके घटमें उतारकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रकी कालजयी महिमाकी पुन-पुन स्मृति और प्रतिष्ठापना करनेके लिये ही आप यत्र-तत्र-सर्वत्र नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका कलिकलुषनाशक कीर्तिगान तथा उनके सर्वसिद्धिदायक पादपद्मोंका जयघोष करने लगे। विद्वत्समाजमें आपने यह विश्वास जगा दिया कि श्रीकृष्ण सनातन ब्रह्म ही हैं—'**कृष्णो ब्रह्मैव शाश्वतम्।**' आगे आप ओरछाकी राजधानी गढकुडार पधारे। वहाँ आपने घटसरस्वतीके साथ हुए शास्त्रार्थमे उन्हे निरुत्तर कर दिया, फिर प्रयाग होते हुए आप काशी पधारे वहाँ मणिकर्णिका घाटपर विद्वत्समाजसे गम्भीर शास्त्रचर्चा हुई। यहींपर काशीके नगरसेठ श्रीपुरुषोतमदास क्षत्रिय आपसे प्रभावित हो गये और सश्रद्धया आपको अपने घर पधराया। श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने उनकी भक्तिपर रीझकर उन्हं श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अन्तर्गत श्रीकृष्णजन्म-महोत्सवकी कथा सुनायी। श्रीमहाप्रभुजी तो जहाँ भी पधारते थे श्रीमद्भागवतका सुधावर्षण ही करते थे।

काशीमें उस समय शैव और वेदान्ती विद्वानोंका बाहुल्य था। वे वैष्णवसिद्धान्तोंके प्रतिकूल थे। यदि कोई ब्रह्मवादकी बात करता तो वे संघर्ष खड़ा कर देते थे। इसपर आपने 'पत्रावलम्बन' नामक ग्रन्थकी रचना की। इसमें वेदके पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसाके मध्य समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इसीमें आपने मायावादका निवारण किया और ब्रह्मवाद सिद्ध कर दिखाया। उसके बाद श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीमें भगवत्प्रसादकी महिमा बतलाते हुए विजयनगरमें प्रवेश कर गये। वहाँ राजा कृष्णदेवने विराट् धर्मसभाका आयोजन कर रखा था। अनुनय-विनय होनेपर श्रीमद्वल्लभाचार्यजी उस धर्मसभामें पहुँचे। वहाँ श्रीमद्भागवतको श्रीवेदव्यासजीकी समाधिभाषा प्रमाणित करनेके लिये आपने अनेक दृष्टान्त दिये। शास्त्रार्थमें विभिन्न पण्डितोंके तर्कसम्मत प्रश्नोंका आपने सतर्क प्रत्युत्तर देकर सभीको सन्तुष्ट कर दिया और वहाँ ब्रह्मवादकी विजयपताका फहरा दी। सभी पण्डितोंने मिलकर आपका कनकाभिषेक किया तथा आपको 'वाचस्पति' स्वीकार कर लिया। यहींपर राजा कृष्णदेवने और अन्य आचार्यों तथा विद्वानोंने सर्वसम्मतिसे आपको 'अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीमदाचार्य श्रीमहाप्रभु' की उपाधिसे विभूषित कर महामहिमा-मण्डित कर दिया। भारतभ्रमण करते हुए आपने चौरासी बैठक स्थापित कीं और चौरासी वैष्णव बनाये।

बालसरस्वती, वाचस्पति दिग्विजयी अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य श्रीमहाप्रभु, अदेयदानदक्ष तथा धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप-जैसी महाविरुदावलियोंसे विभूषित होते हुए भी आपका परम संत-सा रहन-सहन था। भारतवर्षमें आप लोकप्रियताके शिखरपर पहुँच चुके थे। सर्वत्र जय-जयकार हो रही थी। जिस पथसे श्रीमहाप्रभुजी पधारते थे, उस पथपर अंकित श्रीमहाप्रभुजीके चरणचिह्नकी रेणुको श्रद्धालु अपने सिरपर चढ़ाते थे। राजासे लेकर रंकतक आपकी सरस वाणी, मोहक व्यक्तित्व, असाधारण पाण्डित्य, चूडान्तज्ञान, स्पष्ट विचारधारा और अनूठी भगवत्सेवाप्रणालीसे प्रभावित थे तथा अनेक विद्वान् सम्भ्रान्तजन आपके शिष्य बनते चले जा रहे थे। भगवदाज्ञा होते ही श्रीमद्वल्लभाचार्यजी श्रीगोवर्धनपर देवदमन श्रीनाथजीके दर्शन करने चल पड़े। बीचमें आप व्रजमें गोकुलके श्रीगोविन्दघाटपर पधारे। वहाँ वि०सं० १५६३ श्रावणमासके शुक्लपक्षकी एकादशी गुरुवारको साक्षात् प्रभु श्रीनाथजीसे आपने ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा ग्रहण की। यह भी कम विस्मयकी बात नहीं है कि जब चम्पारण्यमें माँ श्रीइल्लमागारुजीकी कोखमें श्रीवल्लभाचार्यजीका प्रादुर्भाव हुआ, ठीक उसी दिन उसी समय श्रीगोवर्धनगिरिपर प्रभु श्रीनाथजीके मुखारविन्दका प्राकट्य हुआ। इसीलिये श्रीहरिराय महाप्रभुने श्रीवल्लभाचार्यजीको प्रभु श्रीनाथजीका 'वदनावतार' कहा है। भक्त श्रीसगुणदासने भी *'प्रगटे जान पूरन पुरुषोत्तम'* कहकर आपके अवतारकी पुष्टि की है। आपने श्रीगोवर्धनमें ही रहकर श्रीगिरिराजजीपर मन्दिर बनवाया, उसमें आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु श्रीनाथजीकी स्थापना की। अनेक भक्तोंका आत्मनिवेदन कराते हुए प्रभुके समक्ष ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षाएँ दीं। वहाँ विराजते हुए आपने पुष्टिसम्प्रदायकी परमानन्ददायक वल्लरीको पल्लवित, पुष्पित और सुगन्धित किया, जिसके अन्तर्गत प्रवहमान श्रीकृष्ण-चरणानुरक्ति एवं भगवत्सेवानुरागके सुखद सुवाससे समग्र भारतवर्ष सुरभित हो उठा। प्रभु श्रीनाथजीकी सेवा-व्यवस्था व्यवस्थित की तथा प्रभुकी कीर्तन-सेवाके लिये उस समयके चार प्रमुख गायकों—भक्तकवि कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदासको सेवामें नियुक्त किया। प्रभुकी कीर्तनसेवाका शुभारम्भ आपसे प्रारम्भ हुआ। बादमें आपके यशस्वी सुपुत्र श्रीगुसाँईजी महाराजने चार और गायक—भक्त कवि नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामीको रखकर 'अष्टछाप' की स्थापना करके भारतवर्षमें भक्ति-साहित्य-संगीतकी कलिमलहारिणी कलिन्दजा प्रवाहित कर दी। उन्होंने प्रभुकी दुग्धसेवाके लिये गौमाता रखी तथा अपने अनेक भगवदीय कार्योंसे जन-जनको चमत्कृत करते हुए व्रजमें रहकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके अनेक लीलास्थलोंकी खोज की तथा उनका पुनरुद्धार कराया। अब तो श्रीमहाप्रभुजीकी कृपासे कलियुगमें भी द्वापरयुगकी श्रीकृष्णचन्द्रकी मधुरातिमधुर बाललीलाओंके प्रत्यक्ष दर्शन व्रजभक्तोंको होने लगे। सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें ब्रह्मानन्दका साम्राज्य हो गया।

इसके पश्चात् आप पंढरपुर पधारे। पंढरपुरमें श्रीहरिविट्ठलने एक सुलक्षणा कन्यासे विवाह कर गृहस्थीमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी। आप काशी आ गये और प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य कर श्रीमहालक्ष्मी नामक सुशील कन्यासे विवाह किया तथा अपनी गृहस्थी बसायी। तदनन्तर श्रीसुबोधिनीजीके लेखनका कार्य हाथमें ले लिया। श्रीसुबोधिनीजीको सुनने तो भगवदवतार

श्रीकृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासजी स्वय श्रीमहाप्रभुजीके सामने प्रकट हो गये और सम्पूर्ण श्रीसुबोधिनीजीका श्रवण किया। उसके बाद तो आपकी सरस्वती प्रवहमान होती ही गयी। गायत्रीभाष्य, तत्त्वार्थदीपनिबन्ध, शास्त्रार्थप्रकरण, श्रीपुरुषोत्तम-सहस्रनाम एव अणुभाष्यकी रचना हुई। 'अन्त करणप्रबोध' मे श्रीमहाप्रभुजी लिखते हैं—

अन्त करण मद्वाक्य सावधानतया शृणु।
कृष्णात् पर नास्ति देव वस्तुतो दोषवर्जितम्॥

हे अन्त करण! मेरे वचनको सावधान होकर सुनो, वस्तुत श्रीकृष्णके अतिरिक्त दूसरा दोषरहित कोई देवता नहीं है।

इसी प्रकार 'नवरत्न' मे भी आप कहते हैं—

तस्मात् सर्वात्मना नित्य श्रीकृष्ण शरण मम।
वदद्भिरेव सतत स्थेयमित्येव मे मति ॥

इसलिये सर्वात्मभावसे नित्य-निरन्तर '**श्रीकृष्ण शरण मम**' बोलते हुए जीवन व्यतीत करे—यह मेरी सम्मति है।

स्वय श्रीमहाप्रभुजीने अपने जीवनमे प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके नामका कभी भी विस्मरण नहीं किया। पूर्वजोसे चली आ रही परम्पराम तीन सोमयागाकी पूर्ति की।

अत्यधिक व्यस्तता होते हुए भी आप बारम्बार श्रीगिरिराजगोवर्धन पधारते और प्रभु श्रीनाथजीकी सेवा-व्यवस्था सँभालते। इस प्रकार श्रीमहाप्रभुजी समग्र भारत राष्ट्रको श्रीकृष्णभक्तिरसमे सराबोर करके जन-जनको श्रीकृष्णमय बनाकर काशी पधार गये। वहाँ हनुमानघाटपर रहते हुए आपने मौनव्रत ले लिया और सन्यास ग्रहण करके अपनी अन्तिम लीलाका सवरण किया।

अनेक कवियान श्रीमहाप्रभुजी श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके अवतारवादकी अपनी-अपनी कविताओमे वन्दना की है—

प्रगट कृष्णानन द्विज रूप।
माधव मास कृष्ण एकादशी आये अग्नि सरूप।
दैवी जीव उद्धारण कारण आनन्दमय रस रूप।
वल्लभ प्रभु गिरिधर प्रभु दोऊ तेई एई एक स्वरूप॥

कवि रसिक लिखते हैं—

प्रगट ह्वै मारग रीति दिखाई।
परमानन्दस्वरूप कृपानिधि श्रीवल्लभ सुखदाई।

कवि हरिजीवन भी इस प्रकार लिखते हैं—

आज जगती पर जय जयकार।
अधम उधारन करुणासागर प्रगटे अग्नि-अवतार॥

एक कविने ऐसा भी लिखा है—

सब मिल गावो गीत बधाई।
श्रीलक्ष्मण गृह प्रगट भये श्रीवल्लभ सुखदाई।
उघरे भाग सकल भक्तनके पुष्टि भक्ति प्रगटाई।
यशोमति सुत निज सुख देबेको मुख मूरति प्रगटाई॥

इसी प्रकार एक अन्य कविने ऐसा भी लिखा है—

श्रीवल्लभपुरुषोत्तम रूप।
सुन्दर वदन विशाल कमल रग मुख मृदु बोलत वचन अनूप।
कोटि मदन वारी अग अग पर भुज मृणाल अति सरस सरूप।
दैवी जीव उद्धारन प्रकटे दास शरण लक्ष्मण कुलभूप॥

आगे देखिये—

माधव मास एकादशी शुभ दिन श्रीलछमन कुल आये हो।
नन्दनन्दन जासो कहियत सो द्विजवर रूप कहाये हो।

श्रीहरिराय महाप्रभुकी काव्यस्तुति भी देखिये—

प्रगटे पुष्टिमहारस देन।
श्रीवल्लभ हरिभाव अग्नि मुख रूप समर्पित लेन।
नित्य सम्बन्ध कराय दयानिधि विरह अलौकिक चेन।
यह प्राकट्य रहत हृदयमे तीन लोक भेदनको ऐन।
रहिये ध्यान सदा इनके पद पातक कोऊ न लगेन।
रसिक कहे निरधार निगम गति साधन और न हेन॥

पुष्टिसम्प्रदायमे श्रीमद्वल्लभाचार्यजी श्रीमहाप्रभुजीको साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूप प्रभु श्रीनाथजीका मुखावतार माना गया है। इसी कारण उनकी पवित्र पादुकाएँ, जिन्हे धारण कर उन्होने सम्पूर्ण भारतकी परिक्रमाएँ की थीं और श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार-प्रसार किया था अद्यावधिपर्यन्त श्रीवल्लभसम्प्रदायके मन्दिरोमे विराजमान हैं और उन्हे भगवत्स्वरूप मानकर उनकी नित्य सेवा की जाती है।
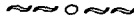
हे जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये।
नारायणाख्यपीयूष पिब जिह्वे निरन्तरम्॥

'सर्वदा मधुर रसको चाहनेवाली हे मधुरप्रिये जिह्वे! तू निरन्तर 'नारायण' नामक अमृतका पान कर।'

प्रेमावतार—श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी

(स्वामी श्रीअजस्रानन्दजी महाराज)

शास्त्रामे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंका सम्यक् रूपसे वर्णन हुआ है, परतु भगवद्विमुख मानव-जीवनम भगवान्के प्रति प्रेमका उदय एव सवर्द्धन हो कैसे—ऐसे दिव्य सर्वसाधन-सार 'प्रेम' नामके 'पञ्चम-पुरुषार्थ' का चैतन्य महाप्रभुजीने स्वय जीवनम आचरण कर प्रकाश किया है, तभी भक्तजन गान करते हैं—

यस्यैव पादाम्बुजभक्तिलभ्य
प्रेमाभिधान परम पुमर्थ ।
तस्मै जगन्मङ्गलमङ्गलाय
चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते ॥

भाव यह है कि जिनके चरणकमलाकी भक्तिसे 'प्रेम' नामक परम पुरुषार्थ प्राप्त होता है, उन जगत्के लिये मङ्गलोके भी मङ्गल चैतन्यचन्द्रको बार-बार नमस्कार है।

सर्वप्रथम सक्षेपमे 'प्रेम' किसे कहते हैं ? प्रेमावतार किसे कहते हैं, इसे जान लेनेकी आवश्यकता है। देवर्षि नारद प्रेमके प्रीतिके तथा भक्तिके आचार्य हैं। आपने लोकपर अनुग्रह करते हुए भक्तिसम्बन्धी चौरासी सूत्राका प्रणयन किया है जिन्हे 'नारद-भक्तिसूत्र' के नामसे जाना जाता है। प्रेमतत्त्वको परिभाषित करते हुए श्रीनारदजी प्रेमका स्वरूप इस प्रकार बताते हैं—

'अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपम् ॥' (ना०भ०सू० ५१)

अर्थात् प्रेम, प्रेमके अनुभव प्रेमके भाव तथा आन्तरिक लीलाएँ अनिर्वचनीय हैं। उन्हे कोई केवल अनुभव ही कर सकता है, क्योकि प्रेमके विषयको अनुभव करनमे स्थूल इन्द्रियाँ अक्षम हैं। प्रेमानन्द तो हृदयका विषय है। हृदयके इन्द्रियाँ नहीं होतीं कि वह उस प्रेमानन्दको बाहर व्यक्त कर सके। अनायास हृदयम उठनेवाले प्रेमके भावोको वाणीसे व्यक्त नहीं किया जा सकता है। अत वे कहते हैं—

'मूकास्वादनवत् ॥' (ना०भ०सू० ५२)

जिस प्रकार कोई गूँगा व्यक्ति तरह-तरहके व्यञ्जनोका आस्वादन करता है, परतु स्वादका वर्णन नहीं कर पाता, उसी प्रकार प्रेमी भी प्रमम ऐसा डूबा रँगा खाया रहता है कि उसका समग्र ज्ञान सारी चेतना लुप्तप्राय रहती है। जो कुछ चेतना शेष रहती है, उससे वह उस प्रेमानुभवको व्यक्त करनेमे असमर्थ रहता है। इसीलिये कहा है—

'प्रकाशते क्वापि पात्रे ॥' (ना०भ०सू० ५३)

किसी योग्य पात्रम कभी-कभी कुछ छटा प्रकाशित होती है। उस आन्तरिक स्थितिका पूर्णतया शब्दोम निरूपण तो नहीं हो सकता किंतु बाह्य लक्षणासे अनुमान लगाया जा सकता है। नारदजीने क्वचित् शब्दका प्रयोग कर व्यक्त किया है कि ऐसे भक्त विरल होते हैं।

प्रमतत्त्वके रहस्यको बताते हुए श्रीनारदजी कहते हैं—

'गुणरहित कामनारहित प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्न सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥' (ना०भ०सू ५४)

भाव यह है कि प्रेम जगत्के सत्त्व, रज तम—तीनो गुणोसे अतीत होता है। प्रेममे मायाके तीनो गुणोका सर्वथा अभाव रहता है। वह प्रेमतत्त्व प्रेमीके लिये सर्वथा एकतान रहता है। प्रेमी सदा प्रेमास्पदको ही देखा करता है। उसे अन्त और बाह्य जगत्म अपने प्रेमीसे भिन्न कुछ दिखायी नहीं देता। कामनाआका सम्बन्ध जगदासक्तिसे है। राग-द्वेष होनेसे मनुष्य किसी वस्तु, व्यक्ति, व्यवस्थाको प्राप्त करना चाहता है या अपनेसे हटाना चाहता है परतु प्रेमतत्त्वके उपासकके मनम गुणाका प्रभाव ही नहीं रहता। इसलिये

वह कभी किसीसे प्रभावित नहीं होता। कामनाके रहते ही काम्यकी प्राप्तिपर प्रसन्नता और अप्राप्तिपर अप्रसन्नता रहती है। प्रेमतत्त्वके लिये अलौकिक क्रियाशीलताम कभी ऊबन या थकावट देखनेमे नहीं आती है। वह क्रियाशीलता कभी क्षीण नहीं होती, सदैव नवयौवना बनी रहती है तथा वह प्रेमीको नवनवानन्द प्रदान करती है। धीरे-धीरे क्रियाओमें सूक्ष्मता आती रहती है, किंतु यह सूक्ष्मता क्षीणताका नहीं उन्नतिका ही लक्षण है। ज्यो-ज्या प्रेमी स्थूल स्तरसे ऊपर उठता रहता है, क्रिया अधिकाधिक सूक्ष्म, किंतु अधिकाधिक आनन्ददायिनी होती जाती है। उसम कभी व्यवधान नहीं होता। व्यवहारके समय भी खाते-पीत, बैठते, बोलते, चलते, परम प्रेमरूपा आह्लादिनी क्रियाशीलता बनी रहती है। शुभाशुभ समय अथवा स्थान हो, उसम अजस्र आनन्द प्रवाहित होता रहता है, वह अजस्र आनन्द सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतरसे सूक्ष्मतम स्तरापर रमण करता रहता है। उसकी अलौकिक क्रियाको स्थूल इन्द्रियाँ अनुभव नहीं कर पातीं। यदि कभी उसकी ऐसी क्रियाशीलता स्थूल इन्द्रियोको आधार बनाकर प्रकट होती भी है तो उसका आस्वादन प्रेमी भक्तका अन्तर्हृदय ही उठा पानेमे समर्थ हाता है—

'यथा व्रजगोपिकानाम्॥' (ना०भ०सू० २१)

गोपीप्रेम परमप्रेमरूपा भक्तिका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। गोपियाका स्मरण कर नारदजीने अपने-आपको धन्य कर लिया। नारदजी-जैसे परम प्रेममर्मज्ञ यदि गोपियोको परमप्रेमके आदर्शके रूपमे प्रस्तुत करते हैं तो इसमे अवश्य ही कुछ महत्त्वपूर्ण बात होगी। गोपियाँ कृष्णकी दीवानी थीं, वे कानोसे कृष्णकी बात सुनतीं, आँखोसे उनके रूप-माधुर्यका पान करती थीं। वे जगद्विषयोसे पूर्ण वैराग्यवती थीं—**'त्यक्त्वा च सर्वविषयास्तव-पादमूलम्'** अर्थात् सब कुछ त्यागकर वे श्रीकृष्ण-शरणापन्न थीं। गोपियोंमें अग्रणी श्रीराधाजू तो श्रीकृष्णाकर्षिणी आह्लादिनी आत्मस्वरूपा ही थीं।

तप्तकाञ्चनगौराङ्ग राधाकान्तिकलेवर श्रीचैतन्यमहाप्रभु राधाभावसे भावित रहकर नित्य-निरन्तर कृष्णरसका पान करते थे। तभी माध्वगौडीय सम्प्रदायके रसिकजन गाते हैं—

भाव राधिका माधुरी, आस्वादन सुख काज।
जयति कृष्ण चैतन्य जय कलि प्रकटे ब्रजराज॥

जगज्जीवोके उद्धारहेतु प्रेमतत्त्वका वितरण करनेके लिये ही शक सवत् १४०७ की फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन नवद्वीप (नदिया नगर, प० बगाल)-म महाप्रभु चैतन्यदेवका श्रीजगन्नाथमिश्रके पुत्ररूपम माता शचीके गर्भसे प्राकट्य हुआ। सयोगवश उसी रात्रि पूर्ण चन्द्रग्रहण होनेसे सभी भावुक भक्त 'हरि बोल, हरि बोल'—भगवन्नामका उच्चारण सहज ही कर रह थे, तभी कलिदोषाच्छन्नकालम नाम-सकीर्तन-प्रवर्तनार्थ प्रेमावतार कलिपावनावतार श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका भक्तवेशमे इस धराधामपर अवतार हुआ। वसुन्धरा कृतार्थ हुई। नीमके पेडके तले जन्म होनेसे माता उन्हे निमाई कहती थी। चन्द्रग्रहणवश चन्द्रमा काला पड गया था। ये पाञ्चभौतिक विग्रहम तप्तकाञ्चनगौराङ्ग थे, अत गौरचन्द्र कहे गये। **'अन्त कृष्ण बहिर्गौर '** होनेसे गौराङ्ग कहे गये। षडैश्वर्य-सम्पन्नताके प्रतीकार्थमे माता-पिताने विश्वम्भर नाम दिया। पश्चात् विष्णुप्रियाप्राणधन, नदिया बिहारी श्रीकृष्ण-चैतन्य, भक्तवत्सल, प्रेमावतार, कलिपावनावतार, प्रेमपुरुषोत्तम, रसावतार आदि नामासे इन्हें जाना गया।

श्रीकृष्णद्वैपायन महर्षि वेदव्यासने श्रीमद्भागवत-महापुराणके पूर्णता-प्रतिपादनार्थ द्वापरके अन्तम कलियुगके प्रारम्भमे (युगसन्धिदिवसम) समग्र भावोन्मेषके साथ वन्दना करते हुए समाधि-भाषामे सूत्ररूपमे युगधर्म इस प्रकार सकेतित किया है—

नामसङ्कीर्तन यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दु खशमनस्त नमामि हरि परम्॥

(श्रीमद्भा० १२। १३। २३)

भाव यह कि जिन भगवान्के नामोका सङ्कीर्तन सारे पापोको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्के चरणोमे आत्मसमर्पण उनके चरणोम प्रणति सर्वदाके लिये सब प्रकारके दु खोंको शान्त कर देती है उन्हीं परमतत्त्वस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

इससे पूर्व भी वेदव्यासजीने कहा कि कलियुगमें भगवान् प्रकट नहीं अपितु वेष बदलकर प्रच्छन्न-अवतार लेते हैं—

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्॥
(श्रीमद्भा० ७।९।३८)

अर्थात् हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर लोकोंका पालन तथा विश्वके द्रोहियोंका सहार करते हैं। इन अवतारोंके द्वारा आप प्रत्येक युगमे उसके धर्मोकी रक्षा करते हैं। कलियुगमे आप छिपकर गुप्तरूपसे ही रहते हैं इसलिये आपका एक नाम 'त्रियुग' भी है।

द्वापरमे लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णका अवतार हुआ था—

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥
(श्रीमद्भा० १०।८।१३)

अर्थात् यह जो साँवला-साँवला है, यह प्रत्येक युगमे शरीर ग्रहण करता है। पिछले युगोंमे इसने क्रमशः श्वेत, रक्त और पीत—ये तीन विभिन्न रंग स्वीकार किये थे। अबकी यह कृष्णवर्ण हुआ है, इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' होगा।

आगे चतुर्युग-धर्मनिरूपणमे युगावतारके स्वरूप-लक्षण एव आयुधके निरूपणमे व्यासजी कहते हैं—

हे राजन्! द्वापरयुगमे इस प्रकार लोग जगदीश्वर भगवान्‌की स्तुति करते हैं अब कलियुगमे अनेक तन्त्रोके विधि-विधानसे भगवान्‌की जैसी पूजा की जाती है, उसका वर्णन सुनो—कलियुगमे भगवान्‌का श्रीविग्रह होता है कृष्णवर्ण—काले रंगका। जैसे नीलम मणिमेसे उज्ज्वल कान्तिधारा निकलती रहती है, वैसे ही उनके अङ्गकी छटा भी उज्ज्वल होती है। वे हृदय आदि अङ्ग, कौस्तुभ आदि उपाङ्ग, सुदर्शन आदि अस्त्र और सुनन्दप्रभृति पार्षदोसे सयुक्त रहते हैं। कलियुगमे श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न पुरुष ऐसे यज्ञोके द्वारा उनकी आराधना करते हैं जिनमे नाम गुण, लीला आदिके कीर्तनकी प्रधानता रहती है—

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम्।
नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु॥
कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥
(श्रीमद्भा० ११।५।३१-३२)

तात्पर्य यह है कि 'कृष्ण' इस वर्णद्वयीका सतत उच्चारण करते हुए अपनी कान्तिसे अकृष्ण अर्थात् गौर रूप सनातन आदि पार्षदोसे युक्त—ऐसे युगावतारका सुमेधासम्पन्न व्यक्ति सकीर्तनरूप यज्ञके द्वारा यजन अर्चन, वन्दन तथा आराधन करते हैं। प्रेमावतार चैतन्य महाप्रभुने राधाकान्तिकलेवर धारणकर श्रीराधाभावसे भावित रहकर तथा अपने पार्षदोमे आवृत रहकर अपनी समस्त लीलाएँ की हैं—'**राधादेहरुचाद्भुत सखिवृत कृष्णोऽपि गौरोऽभूत्।**'

श्रीराधाकी जिन विरह-भावदशाओंका वर्णन गीतगोविन्दकार श्रीजयदेवजीने किया है, वे महाप्रभु चैतन्यके जीवनमे प्रतिक्षण घटित होती रहीं। जिस भाग्यवान्‌के अन्तस्मे भगवान्‌का प्रेम हिलोर लेता है उसके कदम-कदमपर रोम-रोममे बातचीतमे, प्रत्येक इन्द्रियमे, हाव-भावमे प्रेम छलक कर बाहर बिखरता रहता है। प्रेमकी मात्रा हृदयमे बढ जाती है तब सँभाले नहीं सँभलती। नित्य-निरन्तर महाप्रभुजी कृष्णविरहमे इस प्रकार करुण क्रन्दन रुदन करते रहते थे—

काहा मोर प्राणधन व्रजेन्द्रनन्दन
महाभागवत देखे स्थावर जंगम ताहा ताहा हयतार श्रीकृष्णस्फुरण।

विरहके रोमाञ्च कम्प अश्रु, वैवर्ण्य उन्माद रुदन प्रपीडन आदि सात्त्विकभावोके उद्रकमें रहते हुए जगज्जीवोंको भगवत्प्रेम कैसे करना चाहिये—ऐसी शिक्षा उन्होने दी। मानवोकी तो बात ही क्या! श्रीवृन्दावनधामके प्रकाशनार्थ झाडीखण्डके रास्तेमे जाते हुए महाप्रभुको वनके भयकर सिंह बाघ रीछ आदि हिंसक जीव भी उन्हींकी महाविरह-भावदशामे *'काहा जाऊ काहा पाऊ मोर प्राणधन, काहा व्रजेन्द्रनन्दन'*—इस प्रकार अश्रुप्रपात करते हुए, भुजाएँ उठाकर नृत्य करते हुए देखकर दो पिछले पैरोपर खडे होकर जैसे मदारी नचाता है, वैसे नृत्य करने लगे। ऐसे प्रेमाविष्ट महाप्रभु ही विश्वमे प्रेमपुरुषोत्तम कहलाये।

महाप्रभु चैतन्यदेवने तत्कालीन क्रूरकर्मा भगवद्विमुख

जगायी-मधाई, चादकाजी आदि अनेक यवनाको भी प्रेमधन लुटाया, उन्हे गले लगाया, वे वैष्णव बन गये, श्रीहरिदास आदि यवन उनके पार्षद थे, उनका हृदय परिवर्तित हो गया। तत्कालीन विद्वत्परिषद्मे वे अग्रणी थे। नव्यन्यायके मूर्धन्य अधिकारी विद्वान् थे। उन्हाने वर्ग, सम्प्रदाय, कुल, विद्या धनाभिमान सम्मानादिके आग्रहसे मुक्त रहकर सबको कीर्तनका उपदेश दिया—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि ॥

(श्रीशिक्षाष्टक)

तिनकेसे भी अपने-आपको नीचा समझकर, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु बनकर, अपमान करनेवालेको भी मान प्रदान करते हुए नित्य-निरन्तर हरिनाम-सकीर्तन करते रहनेकी महाप्रभुजीने शिक्षा दी और सर्वत्र प्रेमाभक्तिका प्रचार किया। तभी श्रीनाभादासजीने भक्तमालमे लिखा—

'गौड़ देस पाखड मेटि कियो भजन परायन।'

× × × ×

'श्रीनित्यानन्दकृष्णचैतन्यकी भक्ति दसा दिसि बिस्तरी।'

चैतन्यदेवजीने जीवमात्रपर दया करना, भगवन्नामसे सतत रुचि रखना और जगत्-हितकारी सदाचारसम्पन्न विनीत व्यक्तित्ववालो (वैष्णवो)-का सग करना—यही धर्मका सार अपने परम अनुयायी पार्षद सनातनगोस्वामीके समक्ष विश्वको अवदानके रूपमे निरूपित किया—

जीवे दया नामे रुचि वैष्णव सेवन, इहा हइते धर्म सुनो सनातन।

~~~ 0 ~~~

श्रीरामानन्दाचार्यजी एवं द्वादश महाभागवतोंका अवतार

(श्रीहरिशकरदासजी वेदान्ती)

परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

उपर्युक्त भगवद्वचनाके अनुसार अधर्मकी अभिवृद्धिके कारण जगत्रूपी भगवदीय बगीचा जब समयसे पूर्व ही उजडने लगता है तो करुणावरुणालय प्रभु श्रीराम कभी अदितिनन्दन, कभी देवहूतिनन्दन, कभी कौसल्यानन्दन तो कभी यशोदानन्दनके रूपमे अवतरित होकर अपने बगीचेको उजाडनेवालेको दण्डित करते हैं तथा जो जन इसको सदाचार आदि सद्गुणोसे सींचकर पल्लवित एव पुष्पित करते हैं, उनको अपने दिव्य मङ्गलमय नाम, रूप, लीला एव धामका अनुभव कराकर शाश्वत शान्ति प्रदान करते हैं।

जो प्रभु चौबीस अवतारोके रूपम अवतरित होकर अपनी लीलाओद्वारा जगत्का कल्याण करते हैं, वे ही प्रभु जब शस्त्रकी अपेक्षा शास्त्रकी आवश्यकता देखते हैं तो आचार्यके रूपम अवतरित होते हैं। शास्त्रके माध्यमसे ससारको उपदेशकर जगत्के उच्छृङ्खल प्राणियोको सन्मार्गपर प्रतिष्ठित कर ससार-सागरसे उद्धारके सरलतम मार्ग—शक्ति-प्रपत्तिका दिग्दर्शन कराते हैं।

ऐसी ही घटना श्रीरामोपासनापरायण अनादि वैदिक श्रीसम्प्रदायम घटी जिसके मध्यमवर्ती आचार्यके रूपम भगवान् श्रीराम ही हिन्दूधर्मोद्धारक जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यके रूपमे अपने परम प्रिय द्वादश महाभागवताके साथ अवतरित हुए। यथा—
~~~

(श्री)सीतानाथसमारम्भा (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्ता वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥

किसी समय जगद्गुरुकी गुरुतर उपाधिस विभूषित भारत देशका मध्यकालिक इतिहास तात्कालिक जनताकी भ्रान्त मान्यताआके कारण दुर्दिनताको प्राप्त हुआ। उस समय ऊँच-नीचकी भावनाएँ इतनी गहरी हो गयी थीं कि अधिकाश लोगोके बीचसे सद्गुण-सदाचार पलायित हो चुक थे, जिसक परिणामस्वरूप विदशी आक्रान्ताआन हिन्दूजनता एव राजाओकी पारस्परिक फूट तथा सघाभावका लाभ लत हुए, इस सनातन धम तथा सस्कृतिका समूलोच्छेदन करनेका दुष्प्रयास किया। इन लोगोके द्वारा सनातन धर्मके ध्वजास्वरूप विविध मन्दिराको विध्वसित किया गया।

ऐसी विषम परिस्थितिमे भक्तोकी करुण पुकारस द्रवित हो घनघोर अन्धकारमय वातावरणमे त्रिवेणीसङ्गमके पावन तटपर स्थित नगर प्रयागराजकी शरणम निवास करनेवाले मनु-शतरूपाके समान भक्तिभावनास पूरित अन्त करणवाले ब्राह्मणदम्पती श्रीपुण्यसदन एव श्रीसुशीला-देवीजीके पुण्यपुञ्जस्वरूप उनके पुण्यसदनम श्रीरामजी माघकृष्ण सप्तमी विक्रम सवत् १३५६ ई०मे सूर्यके समान श्रीरामानन्दके रूपम अवतरित हुए।*

अध्ययनादिके कार्यको पूरा कर आपने पञ्चगङ्गाघाटस्थित श्रीमठके आचार्य श्रीवसिष्ठावतार श्रीराघवानन्दाचार्यजीस विरक्त-दीक्षा ग्रहण कर श्रीबोधायनाचार्यप्रभृति पूर्वाचार्योके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीरामभक्ति एव षडक्षर श्रीराममन्त्रकी परम्पराका विशेषरूपसे सवर्धन किया। जैसा कि श्रीभक्तमालकार श्रीनाभागोस्वामीजी लिखते हैं। यथा—

अनँतानद कबीर सुखा (सुरसुरा) पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानँद रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि॥
औरौ सिष्य प्रसिष्य एक ते एक उजागर।
बिस्वमँगल आधार सर्बानँद दसधा आगर॥
बहुत काल बपु धारि कै प्रनत जनन कौ पार दियो।
(श्री) रामानद रघुनाथ ज्यो दुतिय सेतु जग तरन कियो॥

श्रीरामानन्दाचार्यजीन अपन वैष्णवमताब्जभास्करमें बताया है कि जगत्प्रभुके पादपद्मोम समर्थ, असमर्थ सभी प्रपत्तिक अधिकारी हैं इसम न तो उत्तम कुलकी न पराक्रमकी, न कालविशषकी और न शुद्धताकी ही अपक्षा है—

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिण सदा
शक्ता अशक्ता अपि नित्यरङ्गिण ।
अपेक्ष्यते तत्र कुल बल च नो
न चापि कालो न हि शुद्धता च॥

इस प्रकार आपने भगवत्पादपद्माम शरणापन्न होनेके लिय समस्त जीवाको अर्हता प्रदान की।

भगवान् श्रीरामने जैसे अपने अवतारकालमे निषादराज गुह कवट, शबरी गीध एव वानराको गलेस लगाया, उसी प्रकार उन्हींके अवतार श्रीरामानन्दजीने घूम-घूम कर उपर्युक्त आदर्शोको कथाम नहीं बल्कि यथार्थम पल्लवित पुष्पित एव फलयुक्त किया। इसके लिये द्वादश महाभागवताने भी भगवदीय इच्छाका अनुसरण करनेक लिये विभिन्न नाम-रूपाम जन्म लकर श्रीरामानन्दजीका शिष्यत्व ग्रहण किया ओर श्रीरामानन्दाचार्यके मत—'प्रपत्ति' का प्रचार-प्रसार किया। भागवतधमवत्ता द्वादश महाभागवताका वर्णन श्रीमद्भागवतमहापुराण (६।३।२०-२१)-मे श्रीयमराजजीने अपने दूतासे इस प्रकार किया है। यथा—

स्वयम्भूर्नारद शम्भु कुमार कपिलो मनु ।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥
द्वादशेते विजानीमो धर्म भागवत भटा ।
गुह्य विशुद्ध दुर्बोध य ज्ञात्वामृतमश्नुते॥

अर्थात् भगवान्के द्वारा निर्मित भागवतधर्म परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है। उसे जानना बहुत ही कठिन है। जो उस जान लेता है, वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाता है, दूतो! भागवतधर्मका रहस्य हम बारह व्यक्ति ही जानते हैं—ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, भगवान् शङ्कर सनत्कुमार, कपिलदव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक भीष्मपितामह, बलि शुकदेवजी और मैं (धर्मराज)।

भागवतधर्मवेत्ता इन्हीं ब्रह्मादि द्वादश भागवतोने भी

* अगस्त्यसहिताके भविष्यखण्ड नामक १३२वें अध्यायके अनुसार जन्म-सवत्मे १०० वर्षका अन्तराल आता है किंतु सम्प्रदायके इतिहासम एव साम्प्रदायिक मान्यता तथा अन्य ग्रन्थाके अनुसार वि०स० १३५६ ही आचार्यश्रीका जन्मकाल माना गया है।

भगवान्‌की आज्ञाको सानन्द शिरोधार्य कर विविध देश-काल एव जातियामे अवतार लिया और फिर रामानन्दाचार्यसे दीक्षा ग्रहणकर भगवद्धर्मका प्रचार किया। इन द्वादश महाभागवतान किस-किस नाम-रूपम अवतार लिया, इसका यहाँ सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

१-अनन्तानन्दाचार्य—

आयुष्मन्कृत्तिकायुक्तपूर्णिमाया धने शनौ।
स्वयम्भू कार्तिकस्याद्धाऽनन्तानन्दो भविष्यति॥

(अगस्त्यसहिता)

श्रीब्रह्माजी ही योगनिष्ठ सदाचारपरायण श्रीअनन्तानन्दाचार्य जगदाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजीक शिष्य हुए। आपका जन्म कृत्तिका नक्षत्रयुक्त कार्तिक पूर्णिमा शनिवारके दिन धनु लग्नमे अयोध्याके निकट महशपुर ग्रामनिवासी श्रीविश्वनाथ मणि त्रिपाठीके घरमे वि०स० १३६३ म हुआ। आपके शिष्य-प्रशिष्याके द्वारा खूब भक्तिका प्रचार हुआ, जिसका विशद वर्णन भक्तमालम उपलब्ध है।

२-श्रीसुरसुरानन्दजी—

जात सुरसुरानन्दो नारदो मुनिसत्तम।
वैशाखासितपक्षस्य नवम्या स वृषे गुरौ॥

द्वितीय महाभागवत श्रीनारदमुनि भी श्रीसुरसुरानन्दके रूपम लखनऊके निकट परखम ग्रामनिवासी श्रीसुरेश्वरजी शर्माकी परमभक्तिमती श्रीदेवीजीके गर्भसे वैशाख कृष्ण नवमी गुरुवारके दिन वृष लग्नम अवतरित हुए। आप बडे नामानुरागी थे। भगवत्प्रसाद किस प्रकार गहण करना चाहिये इस बारेमें भक्तमालकारन श्रीसुरसुरानन्दजीकी बात इस प्रकार लिखी है—

'महिमा महा प्रसाद की सुरसुरानन्द साची करी।

आपके प्रश्नाके उत्तरस्वरूप 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर' नामक ग्रन्थरत्नका आविर्भाव हुआ, जो वैष्णवोका हृदयहार है।

३-श्रीसुखानन्दजी—

तस्यामेव तुलालग्ने तादृशीन्दुरिवाग्रधी।
शम्भुरेव सुखानन्द पूर्वाचार्यार्थनिष्ठक॥

ऐसे ही भगवान् शकर भी उज्जैन नगरके निकट किरीटपुर ग्रामके रहनेवाले श्रीत्रिपुरभट्टजीकी गृहिणी श्रीगादावरीबाईजीक गर्भस वैशाख शुक्ल नवमीको शतभिषा नक्षत्र शुक्रवारके दिन तुला लग्नम श्रीसुखानन्दके रूपमे अवतरित हुए। आप जन्मजात योगसिद्ध थे, आपने आचार्यजीसे दीक्षा ग्रहण कर भक्तिको प्रचारित किया। इसके साथ आपन सुखसागर जैसे दिव्य ग्रन्थका भी सृजन किया।

४-श्रीनरहरियानन्दजी—

व्यतीपातेऽनुराधाभे शुक्रे मेषे गुणाकरे।
वैशाखकृष्णपक्षस्य तृतीयाया महामति॥
कुमारो नरहरियानन्दो जातधीर उदारधी।
वर्णाश्रमकर्मनिष्ठ शुभकर्मरत सदा॥

(अगस्त्यसहिता उत्तरार्ध अ० ३२)

श्रीनरहरियानन्दजी श्रीसनत्कुमारजीके अवतार हैं। वैशाखमासकी कृष्ण तृतीया व्यतीपात योग अनुराधा नक्षत्र मेष लग्न, शुक्रवारको श्रीनरहरियानन्दजी अवतरित हुए। इनके पिताका नाम श्रीमहेश्वरमिश्रजी एव माताका नाम श्रीमती अम्बिकादवी था। आपको श्रीरामानन्दजीसे दीक्षा मिली, बादके सस्कार श्रीअनन्तानन्दाचार्यने किये। श्रीनरहरियानन्दाचार्यने अपनी दिव्य शक्तियासे ससारमे भक्तिका खूब प्रचार किया। आपके जीवनचरित्रका वर्णन भक्तमाल एव द्वादश महाभागवतम विस्तारपूर्वक किया गया है।

५-श्रीयोगानन्दजी—

वैशाखकृष्णसप्तम्या मूले परिघसयुते।
बुधे कर्केऽथ कपिलो योगानन्दो जनिष्यति॥

श्रीकपिलजीका अवतार श्रीयोगानन्दजीके रूपमे वैशाख कृष्ण सप्तमी, परिघयोगयुक्त मूलनक्षत्रीय कर्क लग्नमे बुधवारके दिन गुजरातप्रान्तीय सिद्धपुरक्षेत्रके निवासी मणिशकरशर्माके घर वि०स० १४५६ म हुआ। आपके बारेम लिखा है—

योगनिष्ठो महायोगी सत्सेवितपदाम्बुज।
सदा वैष्णवधर्माणामुपदेशपरायण॥

आप महान् योगी थे और हमशा योगमे निरत रहते थे। सज्जन लोग आपके चरणोकी पूजा किया करते थे। आपन हमेशा वैष्णव धर्मका उपदेश करते हुए वैष्णवताका खूब प्रचार किया। भक्तमालकार भी कहते हैं—

योग सुपथ उद्धार हित योगानन्द कपिल भये॥

६-श्रीपीपाजी—

मनु पीपाभिधो जात उत्तराफाल्गुनी युजी।
पूर्णिमाया ध्रुवे चैत्र्या धनवारे बुधस्य च॥

श्रीमनुजी महाराज कलियुगमें धर्मप्रचारके लिये राजस्थान प्रान्तके गागरोनगढके राजघरानेमे वि०स०१४१६ की चैत्रीय पूर्णिमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र, ध्रुवसज्ञक योगमे बुधवारके दिन श्रीपीपाजीके रूपमे अवतरित हुए। श्रीनाभाजी आपके बारेमे कहते हैं—

श्रीरामानन्द पद पाई भयो अति भक्तिकी सींवा॥

७-श्रीकबीरदासजी—

नक्षत्रे शशिदैवत्ये चैत्रकृष्णाष्टमीतिथौ।
प्रह्लादोऽपि कबीरस्तु कुजे सिहे च शोभने॥
जातो वेदान्तसनिष्ठ क्षेत्रवासरत सदा।

भक्तशिरोमणि श्रीप्रह्लादजीका अवतार श्रीकबीरदासजीके रूपमे चैत्र कृष्ण अष्टमी मगलवार शोभन योग सिह लग्नम हुआ। आपने अपनी वेदान्तनिष्ठाके साथ विशेपरूपस काशीक्षेत्रनिवासी होकर बहुत लोगाको सद्धर्मपरायण किया।

८-श्रीभावानन्दजी—

भावानन्दोऽथ जनको मूले परिघसयुते।
वैशाखकृष्णापष्ठ्या तु कर्के चन्द्रे जनिष्यति।
रामसेवापरो नित्य स महात्मा महामति ॥

महात्मा श्रीभावानन्दजीको जनकजीका अवतार कहा गया है। आपके पूर्वज मिथिलानिवासी थे, जो कालान्तरमे पण्ढरपुरके निकट आलिन्दी ग्रामनिवासी हो गये। वहींपर वैशाख कृष्ण षष्ठी, मूल नक्षत्र, परिघ योग कर्क लग्न सोमवारके दिन श्रीरघुनाथ मिश्रके घर आपका जन्म हुआ। आप सदा रामसेवापरायण रहे।

९-श्रीसेनजी—

भीष्म सेनाभिधो नाम तुलाया रविवासरे।
द्वादश्या माधवे कृष्णे पूर्वाभाद्रपदे शुभे।
तदीयाराधन सक्तो ब्रह्मयागे जनिष्यति॥

श्रीभीष्मजीका अवतार बघेलखण्ड मध्य प्रदेशके बाधवगढम सेनभक्तके रूपमे हुआ। आपका जन्म वैशाख कृष्ण द्वादशी पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र, तुला लग्न शुभ योग रविवारको हुआ। आपने स्वामीजीकी आज्ञासे भक्तोकी सवाको प्रधानता दी।

१०-श्रीधन्नाजी—

वैशाखस्यासिताष्टम्या वृश्चिके शनिवासर।
धनाभिधो बलि साक्षात्पूर्वाषाढयुते शिवे।
वरो भक्तिमता जातस्तदीयाराधने रत ॥

महाभागवत श्रीबलिजी महाराज साक्षात् धन्नाजाटके रूपमे वैशाख कृष्ण अष्टमी, पू०षा० नक्षत्र शिवयोग, वृश्चिक लग्न शनिवारक दिन अवतरित हुए। आप भक्तिसेवापरायण हुए। आपका जन्मस्थान राजस्थानके टाक इलाकेक धुवन गाँवमे हुआ था।

११-श्रीगालवानन्दजी—

वासवो गालवानन्दो जात एकादशीतिथौ।
चैत्रे वैयासकिश्चन्द्रे कृष्णे लग्ने वृषे शुभे॥
सर्वदा ज्ञाननिष्ठोऽयमुपदशपरायण ।
वदवदान्तनिरतो महायोगी महामति ॥

भगवत्स्वरूप श्रीव्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी श्रीगालवानन्दके रूपमे सिन्धुप्रान्तीय पवाया नामक ग्राममे श्रीसाम्बमूर्ति शर्माके घरम चैत्र कृष्ण एकादशी वृष लग्न शुभ योगम सोमवारके दिन वि०स० १३७५ को अवतरित हुए। आप परिपक्व ज्ञानकी अवस्थासे युक्त वदवदान्तनिरत भगवद्रतियुक्त महान् योगी थे।

१२-श्रीरमादास (रैदास)—

चैत्रशुक्लद्वितीयाया शुक्रे मेषेऽथ हर्षणे।
यम एव रमादासस्त्वाष्ट्रे प्रादुर्भविष्यति॥

काशीवासी रघुनायकक घरम श्रीयमराजजी ही रमादास (रैदास)-के रूपमे चैत्र शुक्ल द्वितीया, मेष लग्न हर्षण योग शुक्रवारके दिन अवतरित हुए।

इस प्रकार श्रीरामावतार श्रीरामानन्दाचार्यके समयमे उपर्युक्त महाभागवताने विभिन्न नामासे अवतरित होकर भगवान्‌की भक्तिका प्रचार किया, जिनका विस्तृत चरित्र सम्कृत एव हिन्दीसाहित्यम उपलब्ध ह। सस्कृत एव हिन्दी गद्य-पद्यात्मक महाकाव्य आचार्यश्रीक वैशिष्ट्यका प्रमाण है। गद्यमे श्रीहरिकृष्णशास्त्रीकृत 'श्रीआचार्यविजय' एव पद्यम स्वामी भगवताचार्यकृत 'श्रीरामानन्ददिग्विजय' आदि मुख्य हैं। आचार्यचरित्रके साथ-साथ द्वादश महाभागवतावताराका उज्ज्वल चरित्र प्रकाशित होता है।

करुणावतार श्रीरामदेवजी

(श्रीप्रदीपकुमारजी शर्मा)

प्राचीन कालमे राजस्थानके बाडमेर जिलेकी उण्डू एव काश्मीर रियासतमे राजा अजमल राज्य करत थे। उनके भाईका नाम धनरूप था। एक बारकी बात है कि धनरूपजी वैराग्य धारण कर घरसे निकल पडे। तीर्थाटन करते हुए अन्तत वे मेवाडमे मडी मियाला गाँवमे पहुँचे और वहीं जीवित-समाधि लेकर अन्तर्धान हो गये। इस घटनासे ठाकुर अजमल बहुत दु खी हुए। अब वे अपना अधिकाश समय द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिमे व्यतीत करने लगे। ठाकुर अजमल नि सतान थे। इस कारण वे दु खी रहा करते थे, साथ ही उन्हे यह भी कष्ट सताता था कि एक आतकवादी राक्षस भैरव पोकरण-क्षेत्रमे महान् उत्पात मचाया करता है। इस राक्षसने आस-पासके गाँव उजाड दिये थे। अत एक तो पुत्रप्राप्तिहेतु तथा दूसरे राक्षस भैरवके नाश करनेकी मन्नत माँगने वे बराबर द्वारकाधीशके दरबारमे जाते रहे।

एक बार उनके क्षेत्रमे अच्छी वर्षा हुई। किसान खेत जोतने घरासे निकल पडे पर अजमलजीको सम्मुख आते देखकर लौट पडे। अजमलजीका सम्मुख आना उन्होने अपशकुन समझा, क्याकि वे नि सतान थे। अजमलजीको जब इस बातका पता लगा तो उन्हे बडा ही दु ख हुआ। तुरत ही उन्हाने रानी मैनादेके साथ द्वारकाधीशकी यात्रा करनेका निश्चय किया। इसके पूर्व उन्होने काशी (वाराणसी) पहुँचकर भगवान् आशुतोष शिवका भक्तिभावसे पूजन किया। भगवान् शिवने प्रकट होकर उन्हे द्वारकाधीश श्रीकृष्णके पास जाकर अपनी मनोकामना पूर्ण करनेकी प्रार्थना करनेका आदेश दिया। भगवान् शिवके आदेशानुसार रानी मैनादे तथा भक्तजनोसहित अजमलजी द्वारका पहुँचे। द्वारकाधीशके मन्दिरमे उन्हाने भगवान्से साक्षात् दर्शनकी आर्तस्वरमे पुकार की। पर जब उन्हे प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुए तो उन्हाने रानीके हाथक पूजाक थालस चूरमेका लड्डू लेकर द्वारकाधीशके विग्रहपर क्रोधपूर्वक मारा और कहा—'मैंने ऐसे कौन-से पाप किये, जिसकी सजा आप मुझे दे रहे हैं ? मेरी पुकार यदि नहीं सुनी गयी, ता मैं प्राणोकी आहुति दे दूँगा।'

यह देखकर मन्दिरके पुजारीन कहा—'महाराज! यहाँ तो भगवान्का विग्रह है। आपका उनके साक्षात् दर्शनहेतु स्वर्णपुरी द्वारकाके सागरम जाकर उनस मिलनेका प्रयत्न करना चाहिये, वहाँ वे शेषनागकी शय्यापर लक्ष्मीसहित विराजते हैं।'

फिर क्या था, राजा अजमलजी सागरकिनारे जाकर द्वारकाधीशके ध्यानम मग्न हो बैठ गये। कुछ क्षणो बाद उन्हे आवाज सुनायी दी—'आ जाओ! आ जाआ!' अजमलजी सागरम कूद पडे। जलमे उन्ह स्वर्णपुरी द्वारका दीख पडी। वहाँ उन्हे श्रीकृष्णके साक्षात् दर्शन हुए। भक्तको देख श्रीद्वारकाधीशने उन्हे गले लगाया। अजमलजीने उनके माथेपर बँधी पट्टीके विषयम पूछा तो उन्हाने कहा—'मृत्युलोकमे एक भक्तने लड्डू मारकर मेरा माथा फोड दिया, अत यह पट्टी बाँधनी पडी।' अजमलजी उनके चरणाम गिरकर क्षमा-याचना करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा—तुम्हारे यहाँतक आनेका क्या कारण है ? राजा कहने लगे—हे अन्तर्यामी! आप तो सब जानते हैं। एक तो मेरे सतान नहीं है तथा दूसरा यह कि मेरे क्षेत्रमे एक असुरने आतक मचा रखा है, जिसे मारना मेरे वशमे नहीं है। इन्हीं दो कारणोसे मैं आपकी सेवामे आया हूँ—एक कारण स्वार्थका दूसरा कारण परमार्थका।

प्रभु बोले—राजन्! तुम्हारी दोना कामनाएँ पूरी होगी। तदनन्तर प्रभुन अपनी वैजयन्तीमालासे एक पुष्पमोती तोडकर अजमलजीको देते हुए कहा—'लो घर जाकर इसकी पूजा करना। इसे अपने होनेवाले पुत्रके साथ रखना, साथ ही पीताम्बर और आमल डाबली (मालाका श्याम पुष्प) भी दिया और बताया कि इन्हे पूजासामग्रीके साथ रखना। पुष्पको पालनेम झुलाना और पहले पुत्रका नाम वीरमदेव रखना तथा दूसरेका नाम रामदेव। जब घरमे पूर्णिमासदृश चाँदनी हो तो समझना मैं आ गया हूँ। अर्थात् मैं स्वय तुम्हारे पुत्ररूपमे जन्म लूँगा। उस समय तुम्हारे सम्पूर्ण गढमे एव गाँवमे तेज प्रकाश व्याप्त होगा। तुम्हारे घरके आँगनका पानी दूधके रूपम परिणत हो जायगा सभी स्थानोपर शङ्खध्वनि घण्टाध्वनि होने लगेगी। घरमे कुङ्कुमके नन्ह पैराके चिह्न बन जायँगे।'

ऐसा वरदान देकर अजमलजीको द्वारकाधीशने विदा किया और चलते समय पूजामे रखनेके लिये एक शङ्ख भी दिया। तदुपरान्त अजमलजीको सभी लोगोन समुद्रजलसे ऊपर आते देखा। रानी मैनादेको अजमलजीने सारा वृत्तान्त बताया।

भगवान्‌की महिमाको जानना बडा कठिन है। सब लोगोंने अजमलजीके माथेपर तिलक देखा तो उनके वचनपर सभीको विश्वास हो गया। अपने राज्यमें पहुँचनेपर सभी जनोंने राजा-रानीका स्वागत किया। भक्तजनोंको गढ़में ले जाकर राजाने यज्ञादि कराये, पूर्णाहुतियाँ दीं। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा देकर संतुष्ट किया तथा दीन-दुःखियोंको भी धन-सम्पत्ति देकर प्रसन्न किया।

भगवान्‌के वचनानुसार रानी मैनादेने माघ माहमें शुक्ल पञ्चमी संवत् १४०६ में एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम वीरमदेव हुआ। अजमलजी एवं रानी अपने पुत्रकी बाल-लीलाओंको देख प्रसन्न रहने लगे। तदुपरान्त भगवान् श्रीकृष्णने भादों सुदी पञ्चमी संवत् १४०९ में मैनादेकी कोखसे जन्म लिया। उनके वचनानुसार उण्डू-काश्मीर गाँवके सभी मन्दिरोंकी घंटियाँ बज उठीं, शङ्खध्वनि होने लगी। तेज प्रकाशसे सारा गाँव चमकने लगा। महलमें रखा सारा जल दूधमें परिवर्तित हो गया। महलके मुख्य द्वारसे रानीके पलंगतक कुङ्कुमके पदचिह्न बन गये। राजा एवं प्रजाने इस अवसरपर द्वारकाधीशकी जय-जयकार की। दीन-दुःखियों और ब्राह्मणोंको राजा अजमलजीने यथोचित दान दिया।

इस प्रकार अजमलजीके घर साक्षात् श्रीकृष्णने अवतार लिया। उनका नाम 'रामदेव' रखा गया—

भादुड़े की पंचमी को चन्द्रा करे प्रकाश।
रामदेव आ गये राखी कुल की लाज॥

यही 'रामदेव' अपनी अलौकिक लीलाओंद्वारा सारे राजस्थान एवं गुजरात प्रदेशमें श्रीकृष्णके कलियुगी अवतार कहलाते हैं। उनकी अनेकानेक चमत्कारपूर्ण अलौकिक लीलाओंसे उन्हें द्वारकाधीश श्रीकृष्णका ही अवतार माना जाता है। लोककल्याण करते हुए उन्होंने भाद्रशुक्ल नवमी संवत् १४४२ के दिन समाधि ले ली।

सारा ढूंढार-प्रदेश रामदेवजीको भगवान्‌के रूपमें पूज्य मानता है। उन्होंने आसुरी शक्तियोंका नाश कर, लोगोंमें हिन्दूधर्मके प्रति सच्ची आस्था जगानेका अनोखा कार्य किया, जब कि उस समय भारत देश यवनोंके अधिकारमें था। श्रीरामदेवजी सच्चे अर्थोंमें संत थे। उन्होंने समाजमें व्याप्त कुरीतियोंको मिटाकर सच्चे ज्ञानका प्रकाश किया। वे जाति-पाँति ऊँच-नीचमें विश्वास नहीं रखते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनके भक्त थे। उन्होंने भगवद्भक्ति और सत्संगपर विशेष जोर दिया। भगवान् शिवके जैसे ग्यारह रुद्रावतार हैं, भगवान् विष्णुके दस अवतार अथवा चौबीस अवतार हैं उसी प्रकार श्रीरामदेवजीको भगवान् विष्णुके अवतारके रूपमें प्रसिद्धि है। लोग अपनी मन्नत माँगने पोकरणके पास रामदेवरामें आते हैं। उनकी अद्भुत एवं अलौकिक लीलाओंके गीत राजस्थानमें भोपाओंद्वारा रतजगोंके रूपमें अभी भी गाये जाते हैं—

रामदेव अवतारी इनकी लीला न्यारी।
गल माला कर माला इनका वेष निराला॥
घोड़े पर असवारी, इनकी लीला न्यारी।
अजमलका है लाला, भक्तोंका रखवाला॥
इनसा देव न दूजा, घर-घर इनकी पूजा।
ध्याते सब नर नारी इनकी लीला न्यारी॥
बाबा बाबा नाम रटे, उसके सारे कष्ट कटे।
ये सुखके दातारी इनकी लीला न्यारी॥

'जय जय मीन बराह'

जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि-बावन।
परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जग पावन॥
बुद्ध कलक्की ब्यास पृथू हरि हंस मन्वतर।
जग्य रिषभ हयग्रीव ध्रुरुव बरदैन धन्वंतर॥
बद्रीपति दत कपिलदेव सनकादिक करुना करौ।
चौबीस रूप लीला रुचिर (श्री) अग्रदास उर पद धरौ॥
(भक्तमाल-श्रीनाभादासजी)

'निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी'

(श्रीबालकृष्णजी कुमावत एम्०कॉम० साहित्यरत्न)

जगज्जननी भवानी सतीका अगला जन्म पार्वतीके रूपमे हुआ और कठोर तपस्या करके उन्हाने भगवान् शङ्करको पतिरूपमे प्राप्त किया। एक बार भगवान् शङ्करको अत्यन्त प्रसन्नावस्थामे देखकर उन्हाने श्रीरघुनाथजीकी कथा सुननेकी जिज्ञासा प्रकट की। उनका पूर्वजन्मका सस्कार-जनित सदेह विद्यमान था अर्थात् परब्रह्म परमात्माके सगुण रूपम अवतरित होनेका सशय बना रहा। उनका सशय था कि जो देह धारण करता है, वह निर्गुण ब्रह्म नहीं हो सकता। ब्रह्म तो सर्वव्यापक, निर्मल, अजन्मा, निरवयव, चेष्टा-इच्छा और भेदरहित है। जिसे वेद भी नहीं जानते, भला वह देह धारणकर मनुष्य होगा? यदि राम राजपुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे? यदि ब्रह्म हैं तो स्त्री-वियोग-विरहम उनकी बुद्धि बावली कैसे? उनके चरित्र देखकर और महिमा सुनकर मेरी (पार्वतीकी) बुद्धि चकरा रही है अर्थात् बुद्धि यह निश्चय नहीं कर पाती कि दाशरथिराम ही ब्रह्म हैं—

जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

(रा०च०मा० १।१०८)

पार्वतीजीकी सोच है कि जो देह धारण करता है, वह निर्गुण ब्रह्म नहीं है। भगवान् शङ्कर उनकी शङ्काका समाधान करते हुए कहते हैं कि जो निर्गुण है वही सगुण है, दोना एक ही है। पार्वतीजी फिर पूछती हैं कि यदि श्रीरामजी ब्रह्म ज्ञानमय चैतन्यस्वरूप, अविनाशी, निर्लिप्त और सबके हृदयमे रहनेवाले हैं तो उन्होने नर-शरीर किस कारणसे धारण किया? इसका उत्तर देते हुए भगवान् शङ्कर कहते हैं—हे गिरिजे! सुनो, श्रीहरिके चरित सुन्दर हैं, अगणित हैं, अत्यन्त विशद हैं और वेदशास्त्राने गाये हैं। श्रीहरिका अवतार जिस कारणसे होता है—वह यह है ऐसा ही है, यह कहा नहीं जा सकता अर्थात् कहते नहीं बनता, क्योकि अवतारके हेतु अनेक हैं—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक ते एका॥

(रा०च०मा० १।१२१।२, १।१२२।२)

यही और ऐसा ही भगवदवतारका कारण है—यह इसलिये नहीं कहा जा सकता कि सामान्यत जो कुछ कारण अवतारका दिखायी पडता है, उससे कुछ विलक्षण ही कारण तब ज्ञात होने लगता है, जब अवतार लेकर भगवान् लीला करने लगते हैं। उस समय कहना तथा मानना पडता है कि अवतारका जो हेतु अवतारसे पहले कहा गया, वह गोण था और जो लीला देखनेसे ज्ञात हुआ, वह *अनुमानत* मुख्य है। यह प्रश्न सहज ही पूछा जा सकता है कि तब मुख्य कारण ही बतलाकर अवतार क्यो नहीं होता, गौण ही क्या विख्यात किया जाता है? इसका उत्तर श्रीमद्भागवतमहापुराण (११।२१।३५)-मे प्राप्त हो सकता है, जहाँ कहा गया है—

'परोक्षवादा ऋषय परोक्ष मम च प्रियम्।'

अर्थात् अपनी परोक्षप्रियताक कारण भगवान् अपने अवतारके मुख्य प्रयोजनाको छिपाते हैं। दूसरे यह कि अवतारके जिन कारणोमे तात्कालिक जगत्-हित या किसी एक प्रधान भक्तका हित समाया रहता है, उन्हे गौण कह सकते हैं तथा वही विख्यात भी किये जाते हैं। जिन कारणोसे अनन्त कालके लिये सर्वसाधारण—जगत्का हित होना रहता है, उन्हे मुख्य कह सकते हैं और उन मुख्य *कारणोकी गोपनीयता* कार्य-समाप्तितक इसलिये रहती है कि जितनी सुविधा और उत्तमता गोपनीयतामे रहती है, उतनी सर्वसाधारणम प्रकट कर देनेसे नहीं होती। श्रीमद्भागवतमहापुराण (१।३।२६)-मे कहा गया है कि हरिके अवताराका अन्त तो लग ही नहीं सकता—

'अवतारा ह्यसख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा।'

श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजीने मानसपीयूष (खण्ड दो)-

मुख्य एव गौण
मे परब्रह्म परमात्माके कुछ अवताराक
कारण निम्न प्रकार बतलाये हैं— कारण मनुद्वारा

(१) **मत्स्यावतार**—इसका मुख्य नकी रक्षा करके
सम्पूर्ण वनस्पति-बीजोका सग्रह कराकर मनुको प्रलयका
जगन्मात्रका हित करना था। गौण कारण कार्य सिद्ध करना
कौतुक दिखानामात्र अर्थात् एक भक्तका
था। कारण रहे हैं—

(२) **कूर्मावतार**—इसके तीन मुख्र श्रीरामनाम एव
(क) शङ्करजीको कालकूट पिलाक
रामभक्तिकी महिमा प्रकट करना। गुप्त हुई लक्ष्मीको

(ख) दुर्वासा मुनिके शापसे समुद्रमे
प्रकट करना। अभावका दु ख

(ग) यज्ञ करनेम ऋषि सामग्रियाके को उत्पन करना।
न उठाव, इस हतु कामधेनु तथा कल्पवृक्ष समुद्र-मन्थनद्वारा
गौण कारण था मन्दराचल धारण कर
अमृत निकालना। कारण रहे हैं—

(३) **वराहावतार**—इसके दा मुख पात्र किस आकार
(क) यज्ञके स्रुवा-चमसादि कौन श्चित करनेके लिये
और किस प्रमाणके हान चाहिये, यह सुनि को प्रकट करना।
अपने दिव्य चिन्मय विग्रहसे समस्त यज्ञाङ्गको इच्छा पूरी

(ख) भूदेवीकी अपने अङ्ग-सना जिसके द्वारा
करके नरकासुर नामक पुत्र उत्पन कग्रह कराना तथा
सोलह हजार एक सौ कुमारियाका र। गौण कारण था
कृष्णावतारमे उन्हे अपनी महिषी बनाना का वध।
पातालसे पृथ्वीका उद्धार तथा हिरण्याक्ष कारण था जगत्-

(४) **नृसिहावतार**—इसका मुख्य ना तथा भगवान्
हितार्थ अभिचारादि तन्त्रोको प्रकट करकारण था भक्त
शङ्करकी इच्छाकी पूर्ति करना। गौण ।
प्रह्लादकी रक्षा तथा हिरण्यकशिपुका वध कारण था ब्रह्माद्वारा

(५) **वामनावतार**—इसका मुख्य ती गङ्गाका उद्धार
तिरस्कृत एव ब्रह्मकटाहम रुकी हुई हैमवत्वादि अनेक गुण
कर उन्ह अपने पदरजक द्वारा पापनाशकपित करना जिन्हे
प्रदान करते हुए ब्रह्माके कमण्डलुमे स्था हित किया और
राजा भगीरथने अपन तपके प्रभावसे प्र पूरा हुआ। गौण
असख्य प्राणियाके कल्याणका लक्ष्य
कारण था बलिका निग्रह, जिसमे केवल इन्द्रादिका ही हित था (क्योकि मनुष्य आदि राजा बलिके धार्मिक राज्यसे पीडित नहीं थे)।

(६) **श्रीरामावतार**—मुख्य कारण था अपने दिव्य गुणाका प्रदर्शन तथा ज्ञान और धर्ममार्गोंको सुगम करना। गौण कारण था रावण-कुम्भकर्ण आदिका अत्याचार समाप्त करना।

(७) **श्रीकृष्णावतार**—मुख्य कारण था उलझनम पडी हुई धर्मकी अनेक ग्रन्थियोको सुलझाना और अपने प्रेम तथा भक्तपरवशत्वादि गुणाका प्रदर्शन करना। गौण कारण था शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि क्षत्रिय अधमो, राक्षसो आदिका विनाश करना।

इस प्रकार हरिके जन्म और कर्म सुन्दर, सुखदायक, विचित्र और अगणित हैं। कल्प-कल्पम प्रभु अवतार लेत हैं और अनेक प्रकारक सुन्दर चरित्र करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं—

'जन्म कर्म च मे दिव्यम्।' (गीता ४।९)

इसका आशय है कि मनुष्यका शरीर कर्तृत्व और वासनापूर्ण किये हुए कर्मका फल है, किंतु भगवान्‌का शरीर कर्तृत्वरहित वासनारहित तथा कर्मफलाशयसे विनिर्मुक्त भावात्मक अवतरण है।

मनु तथा शतरूपाको वरदान देते समय भगवान्‌ने कहा था कि मैं इच्छामय नररूप बनाये हुए तुम्हारे घरमे प्रकट होऊँगा। हे तात! अशासहित दहधारण कर मैं भक्तोको सुख देनेवाले चरित्र करूँगा। जिस आदिशक्तिने विश्वको उत्पन्न किया वह मेरी माया भी अवतार लेगी—

इच्छामय नरबेष सँवारे। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे॥
असन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥
(रा०च०मा० १।१५२।१-२ ४)

'इच्छामय नरबेष सँवारे' का तात्पर्य भगवान्‌ने यह बतलाया कि दूसरोके समान मुझे गर्भवास आदि नहीं है। मेरे उस शरीरका रूप यद्यपि दूसराक समान ही मालूम होगा और शैशव पौगण्ड तथा कौमार्य अवस्थाएँ भी दीखगी ता भी वह रूप, अवस्था आदि मेरी इच्छाका हा

होगा अर्थात् वह देहादि चिदानन्दमय हो रहेगा। मैं जन्म न लूँगा, तुम्हारे घरमें प्रकट होऊँगा। श्रीमद्भागवतमहापुराण (१०।१४।२)-मे ब्रह्माजीने गोपालकृष्णको ऐसा ही कहा है—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितु मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूते ॥

स्वयप्रकाश परमात्मन्! आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनोंकी लालसा-अभिलाषा पूर्ण करनेवाला है। यह आपकी चिन्मयी इच्छाका मूर्तिमान् स्वरूप मुझपर आपका साक्षात् कृपाप्रसाद है। मुझे अनुगृहीत करनेके लिये ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पञ्चभूतोकी रचना है? प्रभो! यह तो अप्राकृत शुद्ध सत्त्वमय है। मैं या और कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदानन्द-विग्रहकी महिमा नहीं जान सकता। फिर आत्मानन्दानुभव-स्वरूप साक्षात् आपकी महिमाको कोई एकाग्रमनसे भी कैसे जान सकता है?

श्रीरामचरितमानसके अयोध्याकाण्डमें महर्षि वाल्मीकिने इसी बातको रेखाङ्कित किया है कि 'यह जो आपका शरीर है यह भी सच्चिदानन्दघन ही है। इसमे भी किसी प्रकारके विकार नहीं हैं परन्तु इसे अधिकारी पुरुष ही जानता है। आपने सत और सुरोका काज बनानेके लिये मनुष्यका-सा शरीर धारण किया है। जैसे कोई प्राकृत राजा कहता है और करता है, वैसा ही आप कर रहे हैं। हे रामचन्द्र! आपके चरित्रको देखकर-सुनकर जो मूर्ख लोग हैं, उनको तो मोह होता है और जो बुध हैं, उनको सुख होता है'—

चिदानदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु सत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
(रा०च०मा० २।१२७।५—७)

गीताम भगवान्ने अपने अवतार लेनेके काल तथा हेतुकी बात अर्जुनको बतायी है कि हे अर्जुन! जब-जब धर्मका लोप होने लगता है तथा अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मैं शरीर धारण कर अवतीर्ण होता हूँ। साधुओके परित्राण (अधर्मसे रक्षा करके उन्हे मुक्तिलाभमे सहायता देनेके लिये), पापियोके विनाशके लिये और धर्मस्थापनके उद्देश्यसे मैं हर युगमे अवतीर्ण होता हूँ।

श्रीरामजीके अवतारकी चर्चा करते समय यही बात भगवान् शङ्करने पार्वतीजीको भी बतायी है।

कालके प्रभावसे जब ससार पापके भारसे आक्रान्त होता है, तब सर्वशक्तिमान् भगवान् माना अपने कर्तव्यपालनके उद्देश्यसे धर्मकी ग्लानि दूर करनेके लिये अवतीर्ण होते हैं। धर्मके प्रसारमे जो विघ्न आते हैं, उन्हे विविध प्रकारसे दूर करके धर्मके प्रवाहको बाधाहीन कर देते हैं। ऐसा नहीं कि धर्मसस्थापनकार्य प्रत्येक युगमे पापियोके वधके माध्यमसे ही होता आया है और ऐसा भी नहीं कि हर समय धर्मसस्थापनार्थ बडी मात्रामे ध्वसकी आवश्यकता होती हो। किस उपायसे धर्मका विस्तार करना होता है, यह भगवान् अच्छी तरह जानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक अवतारमे धर्मसस्थापनकी पद्धति विभिन्न प्रकारकी होती है। देश, काल तथा प्रयोजनके अनुसार कार्यकी प्रणाली बदल जाती है। वेद, वेदान्त, गीता भागवत, पुराण आदि शास्त्र-ग्रन्थ और साधु, सत, साधक, सिद्ध, महात्मा आदिके रहते हुए भी कालके प्रभावसे ससारमे धर्मकी ग्लानि होती है। इसे दूरकर ससारमे महद्धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये विपथगामी मनुष्योंको धर्ममार्गमें लाकर तथा धर्मात्माओंके धर्मानुशालनका मार्ग सुगम करके अपने द्वारा सृष्ट प्राणियोकी रक्षाके लिये परम कारुणिक भगवान् कृपादृष्ट होकर प्रत्येक युगमे मनुष्यदेह धारण कर ससारमे आते हैं। वे शुभ कर्म, विवेक-वैराग्य त्याग-तपस्या, ज्ञान-भक्ति, प्रेम और ईश्वरपरायणताके युगोपयोगी आदर्श-जीवनका प्रदर्शन कर धर्म-सस्थापन करते हैं। वे जिसे प्रमाणित करते हैं, लोग उसीका अनुसरण करते हैं—

'स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥'
(गीता ३।२१)

केवल धर्मग्रन्थसे काम नहीं चलता आदर्श-जीवनका भी प्रयोजन है। इस कारण भगवान् ससारमें आकर अपने जीवनमे आचरण करके शास्त्रकी मर्यादा देते हैं तथा युगधर्मका आदर्श दिखाते हैं ससारभरमे धर्मभावका प्रचार करते हैं। उनके जीवनके आदर्शोंसे शिक्षा पाकर लोग धर्म-

मार्गका अनुसरण करते हैं।

श्रीरामचरितमानसके (७।७२, ७।७३।१)-मे काकभुशुण्डिजी पक्षिराज गरुडजीको समझाते हुए कहते हैं—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
जथा अनक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥
असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥

भगवान् प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोके लिये नृप-शरीर धारण किया और साधारण मनुष्याके सदृश अनेक पावन चरित किये। जैसे कोई नट अनेक वेष धारण कर नाचता है और वही-वही (जैसे भिक्षुक, राजा, स्त्री, पशु इत्यादि जिसका रूप उसने धारण किया है, जो स्वाँग या वेष रचा है उसके अनुकूल) भाव दिखाता है, परतु स्वय वही नहीं हो जाता। इसी प्रकार भगवान्ने प्राकृत राजाका रूप धारण कर प्राकृत नरके अनुरूप चरित भी किये, पर इन चरिताके करनेसे एव प्राकृत नरवेष धारण करनेस व प्राकृत नर नहीं हो जाते। हे गरुड! ऐसा ही श्रीरघुनाथजाका नरनाट्य है, जो राक्षसाको विशेष रूपसे माहित करनेवाला और भक्तोको सुख देनेवाला है। खर-दूषणकी लडाईमे जब सब दैत्य देखते हैं—राम-ही-राम राम-ही-राम तब वे माहित हो जाते हैं। अयोध्यावासी एक क्षणमे अनेको रामसे मिल लेते हैं—उनको बडा सुख होता है। वस्तुत भगवान्मे कोई मोह नहीं है। जो मलिन बुद्धि विषयासक्त और कामी हैं वे ही प्रभुपर इस प्रकारके मोहका आरोपण करते हैं।

इस प्रकार हरिके जन्म और कर्म सुन्दर सुखदायक, विचित्र और अगणित हैं। प्रत्येक कल्पमे प्रभु अवतार लेते हैं और अनेक प्रकारके सुन्दर चरित्र करते हैं—

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
(रा०च०मा० १।१४०।१)
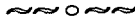
'सत्य' भी भगवान्का अवतार

(श्रीकामेश्वरजी)

अवतारा भगवतो भूता भाव्याश्च सन्ति ये।
कर्तुं न शक्यते तेषा सख्या साख्यविशारदै ॥
(स्कन्दपुराण वै०ख०)

भगवान्के जो अवतार हो चुके हैं या भविष्यमे होगे, बडे-बडे विद्वानोद्वारा भी उनकी गणना नहीं की जा सकती है।

भगवान्का रूप सत्य है, वह तीनो कालामे, सब देशामे, सब दशाओमे अबाधित रहता है। कार्य-कारण-सिद्धान्तके अन्तर्गत कारणको सत्य कहते हैं। भगवान् **'सर्वकारणकारण'** हैं—इसलिये भगवान् परम सत्य कहलाते हैं। जगत्मे नियति या वस्तुका गुण-धर्म ही सत्य है। जगत्का प्रत्येक पदार्थ एक नियमके अन्तर्गत अनुशासित है जैसे—अग्निका धर्म ऊपरकी ओर जाना है, जलका धर्म नीचेकी ओर प्रवाहित होना है वायु भी नियमानुसार चलती है, सूर्य भी नियमके अनुसार उदय और अस्त होता है समुद्र भी अपनी सीमा नहीं लाँघता है—इस प्रकार नियतिरूपसे परम-सत्ताका जगत्मे यह सत्यरूप अवतार ही है। प्रत्येक पदार्थका अपना अस्तित्व है उस आधारपर ही वह कार्य-सम्पादन करता है।

श्रुति एव पुराणोमे सत्यको ब्रह्म कहा गया है—

'सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म।' (तैत्ति०उ० २।१।२)

परब्रह्म परमात्मा सत्यस्वरूप हैं। उनकी नित्य सत्ता है, वे ज्ञानस्वरूप हैं तथा देश-कालकी सीमासे रहित हैं।

'एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति॥'
(छा०उप० ८।३।४)

उस परब्रह्मका नाम सत्य है।

'सत्यमेव पर ब्रह्म सत्यमेव पर तप ।'
(शिवपुराण उमासहिता १२।२३)

सत्य ही परब्रह्म है। सत्य ही परम तप है।

'मूलीभूत सदोक्त च सत्यज्ञानमनन्तकम्।'
(शिवपुराण रुद्रसहिता ९।४०)

यह सत्य ज्ञान एव अनन्त ब्रह्म ही है।

परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं—

सत्य पर धीमहि॥' (श्रीमद्भा० १।१।१)

शास्त्राम सत्, चित् और आनन्द परमात्माके रूप निश्चित किये गये हैं। प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञके रूपम उनका अवतार होता है। सत्ता और धृति—ये दोना प्रतिष्ठाके रूप हैं। चित्‌का रूप ज्योति है, जिसके तीन भेद हैं—नाम, रूप और कर्म। आनन्दका रूप यज्ञ है।

य सर्वज्ञ सर्वविद्यस्य ज्ञानमय तप ।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्न च जायते॥

(मुण्डकोपनिषद् १।१।९)

जो सर्वज्ञ तथा सबको जाननवाला है, जिसका ज्ञान ही एकमात्र तप है। यह विराट् रूप जगत् उसके सङ्कल्प-मात्रसे ही उत्पन्न हो जाता है। समस्त प्राणियो तथा लोकाके नाम-रूप और अन्न भी उत्पन्न हा जाते हैं।

श्रीमद्भागवत (१०।२।२६)-मे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति देवताओने इस प्रकार की है—

सत्यव्रत सत्यपर त्रिसत्य
सत्यस्य योनि निहित च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्र
सत्यात्मक त्वा शरण प्रपन्ना ॥

हे भगवन्! आप सत्यसङ्कल्प हैं, सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। सृष्टिके पूर्व, ससारकी स्थितिके समय तथा प्रलयमे इन असत्य अवस्थाआम भी आप सत्य हैं। पञ्च-महाभूतके आप आदि कारण हैं तथा उसके भीतर भी स्थित हैं। आप तो सत्यस्वरूप हैं। हम सभी आपकी शरणम आय हैं।

इस प्रकार नियति, प्रतिष्ठा, नाम-रूप आदिसे भगवान्‌का प्रथम अवतार स्वयम्भू ही परिलक्षित होता है। अत सत्यका प्रथम आविर्भाव स्वयम्भू ही है।

आद्योऽवतार पुरुष परस्य
काल स्वभाव सदसन्मनश्च।
द्रव्य विकारो गुण इन्द्रियाणि
विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्न ॥

(श्रीमद्भा० २।६।४१)

स्वरूप एव शक्तिम सर्वश्रेष्ठ भगवान्‌का प्रथम अवतार विराट् पुरुष (स्वयम्भू) है। काल स्वभाव, कार्य-कारणात्मिका प्रकृति मन (महत्तत्त्व) द्रव्य (महाभूत) विकार (अहङ्कार), गुण (सत्त्व, रज और तम), इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ ओर पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), विराट् (समष्टि शरीर ब्रह्माण्डरूप), स्वराट् (समष्टि जीव हिरण्यगर्भ), स्थावर-जङ्गम आदि सभी भगवान्‌की विभूतियाँ हैं।

अत सत्यका प्रथम आविर्भाव स्वयम्भू ही है। मनुष्याम जो विभिन्न शक्तियाँ हैं, वे भगवान्‌के अवतारासे प्राप्त हैं। सभी प्राणी भगवान्‌के विभूति-अवतार ही हैं। उद्भिज्ज, अण्डज, स्वेदज और जरायुज—ये चार प्रकारके प्राणी सभी चैतन्य हैं, पर चेतनाकी कलाओकी भिन्नताके कारण ही नाम-रूपम भिन्न हैं। उद्भिज्जमे चेतनाकी एक कला, स्वेदजमे दो कला, अण्डजमे तीन कला और जरायुजम चेतनाकी चार कलाएँ हैं। मनुष्य भी जरायुज हैं, परतु विवेकके कारण उनमे चेतनाकी पाँच कलाएँ हैं। महापुरुषोम चेतनाकी छ कलाएँ तथा जीवन्मुक्त महात्माआमे चेतनाकी सात कलाएँ विकसित रहती हैं। इससे अधिक कलाक विस्तारका अवतार कहते हैं।

मूलरूपमे सत्-तत्त्व परमात्मतत्त्व ही है, इसी सत्स्वरूप—सत्यस्वरूप परमात्माकी स्तुति करत हुए श्रीमद्भागवतमे कहा गया है—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञ स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरय ।
तेजोवारिमृदा यथा विनिमया यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वन सदा निरस्तकुहक सत्य पर धीमहि॥

(१।१।१)

जिससे इस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते है—क्योकि वह सभी सद्रूप पदार्थोम अनुगत है और असत् पदार्थोंसे पृथक् है जड नहीं चेतन है, परतन्त्र नहीं, स्वय-प्रकाश है, जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं प्रत्युत उन्हे अपने सङ्कल्पसे ही जिसने उस वेदज्ञानका दान किया है जिसके सम्बन्धमे बडे-बडे विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं, जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियाम जलका जलमे स्थलका और स्थलमे जलका भ्रम होता है वैस ही जिसम यह त्रिगुणमयी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होनेपर भी अधिष्ठान-सत्तासे सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयप्रकाश ज्योतिसे सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्यसे पूर्णत मुक्त रहनेवाले परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं।

भक्तोंकी उपासनाके लिये भगवान्‌का अर्चावतार-धारण

(श्रीरामपदारथसिंहजी)

वैष्णवागमोंमें भगवान्‌के पाँच रूप वर्णित हैं—पररूप, व्यूहरूप, विभवरूप, अन्तर्यामीरूप और अर्चावताररूप। पररूपके दर्शन श्रीवैकुण्ठमें नित्य एवं मुक्त जीवोंको होते हैं। व्यूहरूप देवताओंके अनुभवमें आनेवाले हैं। श्रीराम-कृष्णादि विभवरूपके दर्शन श्रीअयोध्या-मथुरादिमें त्रेता-द्वापरमें विद्यमान बड़भागी व्यक्तियोंको हुए। भगवान्‌के ये तीनों रूप देश-कालकी दूरीके कारण उपासकोंके लिये सुलभ नहीं हैं। अन्तर्यामीरूपसे भगवान् सबके हृदयमें सब समय रहते हैं। देश-कालकी कोई दूरी नहीं रहनेपर भी कितने लोग इस रूपके दर्शनका आनन्द प्राप्त करते हैं? गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका कथन है—

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

(रा०च०मा० १।२३।७)

अन्तर्यामीरूपके दर्शन तो सिद्ध योगी समाधिमें कर सकते हैं, पर भक्त प्रभुका दर्शन कैसे करें, इसलिये भगवान्‌ने अर्चावतार धारण किया जो अतिशय सुलभ रूप है। श्रीकृष्णपादसूरिकृत आचार्यहृदयमें सूत्र है—'**सौलभ्य-सीमाभूमिरर्चावतार**' अर्थात् भगवान्‌का अर्चावतार सुलभताकी सीमा है।

गृह-ग्राम-नगर, श्रीअयोध्या, मथुरादि प्रशस्त देशोंमें तथा वेंकटाद्रि और गोवर्धन आदि पर्वतोंपर प्रतिष्ठित भगवान्‌की मूर्तिविशेषको अर्चावतार कहते हैं—'**अर्चावतारो नाम**"" **गृहग्रामनगरप्रशस्तदेशशैलादिषु वर्तमानो मूर्ति-विशेष**' (यतीन्द्रमतदीपिका ९)। भगवती श्रुतिकी उक्ति है कि उपासकोंके अभीष्ट-कार्यकी सिद्धिके लिये भगवान् अपना रूप बना लेते हैं। यथा—

'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥'

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १।७)

सर्वसमर्थ भगवान् असम्भवको भी सम्भव करनेवाले हैं। मूर्तियोंमें भगवान्‌का होना असम्भव नहीं है। ईश्वर यदि सर्वत्र हैं तो मूर्तियोंमें क्यों नहीं? श्रीतुकारामजीका यह प्रश्न है—

'अवघें ब्रह्मरूप रिता नाहीं ठाव। प्रतिमा तो देव कसा नव्हे॥'

अर्थात् सब कुछ ब्रह्मरूप है, कोई स्थान उससे रिक्त नहीं, तब प्रतिमा भगवान् नहीं—यह कैसे हो सकता है? श्रीएकनाथजी महाराजके शब्दोंमें भगवान्‌के ही वचन हैं—

मी तेचि माझी प्रतिमा। तेथ नाहीं आन धर्मा॥

अर्थात् मैं जो हूँ, वही मेरी प्रतिमा है, प्रतिमामें कोई अन्य धर्म नहीं है।

परम प्रभु श्रीभगवान् परम कृपालु हैं। वे अर्चावतारमें देश-कालकी दूरीको दूर करके उपासकोंकी इच्छाके अनुकूल द्रव्यमय देह धारण कर लेते हैं और दर्शनार्चनहेतु सुलभ हो जाते हैं। जो जगन्नियन्ता हैं, वे स्वयं अर्चकके अधीन रहते हैं। जो सर्वाश्रय हैं, वे स्नान, भोजन, शयन आदिके लिये अर्चकपर आश्रित हो जाते हैं और प्रमादवश अर्चकद्वारा अपराध हो जानेपर सहन कर लेते हैं। ये सब उपासकपर उनकी असीम अनुकम्पाके सूचक हैं।

भगवान्‌की कुछ मूर्तियाँ स्वयं प्रकट हुई होती हैं, वे 'स्वयव्यक्त' कहलाती हैं, कुछ देवताओंद्वारा प्रतिष्ठित की गयी होती हैं, वे 'दैव' कहलाती हैं, कुछ सिद्धोंद्वारा स्थापित की हुई होती हैं, वे 'सैद्ध' कहलाती हैं। अधिकांश मूर्तियाँ भक्त मनुष्योंद्वारा प्रतिष्ठित की गयी होती हैं, वे 'मानुष' कहलाती हैं। इस प्रकार अर्चावतारके चार भेद हैं। सबमें ज्ञान-शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज आदि समस्त कल्याणगुण परिपूर्ण रहते हैं। इस बातका विश्वास और अनुभव प्रेमी भक्तोंको होता है। उन्हींके तप-योगसे तो अर्चामें अवतार होता है। हयशीर्षसंहितामें कहा गया है—

अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशायनात्।
आभिरूप्याच्च बिम्बानां देवः सांनिध्यमृच्छति॥

अर्थात् पूजकके तप-योगसे, पूजनकी अतिशयतासे, प्रतिमाकी अभिरूपतासे प्रतिमामें आराध्य देव उपस्थित हो जाते हैं।

श्रद्धावान् उपासकोंको तनिक भी संदेह नहीं होता कि धातु-पाषाणादि प्राकृतिक उपादानोंसे निर्मित मूर्तियाँ प्राकृतिक ही होंगी। उनकी अटल मान्यता होती है कि प्रतिष्ठाके पश्चात् प्रसादोन्मुख भगवान्‌के सत्यसंकल्पसे प्रतिमामें उनका

अप्राकृत शरीर आविर्भूत हो गया है। भगवान् श्रीराम-श्रीकृष्णके शरीर भी प्राकृत ही प्रतीत होते थे, किंतु वे वस्तुत चिदानन्दमय थे, इसे अधिकारी ही जानते थे। यथा—

चिदानदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
(रा०च०मा० २।१२७।५)

अर्चावताररूपकी अर्चना करते-करते उपासक क्रमश भगवान्‌के पररूपके अनुभवका अधिकारी होता है। अत उपासनाक्रमम अर्चावतारकी अर्चनाकी अनिवार्यता बतलायी गयी है। श्रीमद्भागवत-महापुराण (३।२९।२५)-म श्रीकपिल-भगवान्‌का उपदेश है—

अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वर मा स्वकर्मकृत्।
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतष्ववस्थितम्॥

अर्थात् मनुष्य अपने धर्मका अनुष्ठान करता हुआ तबतक मुझ ईश्वरकी प्रतिमा आदिम पूजा करता रहे जबतक उस अपने हृदयमे एव सम्पूर्ण प्राणियोमे स्थित परमात्माका अनुभव न हो जाय।

शास्त्रामे अर्चास्वरूपकी पूजाकी बडी महिमा कही गयी है। यमदूतोको यमराजका निर्देश है कि वे मूर्तिकी पूजा करनेवालाको नरक नहीं लाये—'**प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरक नरा ।**' (अग्निपुराण ३८।३६) भगवान्‌के अर्चास्वरूपकी उपासना सभी युगोम हाती रही है किंतु श्रीएकनाथजी महाराजकी सम्मतिम कलियुगम प्रतिमास बढकर और काई साधन नहीं, यथा—

कलियुगीं प्रतिमे परते। आन साधन नाहीं निरुते॥

भक्तगाथाआसे इस कथनकी पुष्टि हाती है। इस कलियुगमे उपासकाकी अभिलाषाके अनुकूल भगवन्मूर्तियाद्वारा आश्चर्यजनक कार्य किये जानेकी अनेक कथाएँ भक्तमालम मिलती हैं। भक्तमालके रचयिता श्रीनाभादासजीने एक छप्पयम लिखा है कि श्रीरूपचतुर्भुजस्वामीने अपने कश उजले बनाकर अपने पुजारी श्रीदेवापडाजीकी प्रतिज्ञा पूरी की—*'देवा हित सित केस प्रतिज्ञा राखी जनकी।'* इस पक्तिकी टीकाम भक्तमालक टीकाकार श्रीप्रियादासजीन तीन कवित्तोम पूरी कथा लिखी हैं जा पठनीय है। उसका साराश दिया जा रहा है—

उदयपुरके पास स्थित श्रारूपचतुर्भुजस्वामीके मन्दिरमें श्रीदेवापडा पुजारी थे। वहाँ रातम राजा दर्शनके लिये आते थे। पुजारीजी उन्हे भगवान्‌से उतारी हुई माला पहनाते थे। एक दिन राजाको जानेमे देर हुई। नियमनिष्ठ पुजारीजीने समयपर शयन-आरती करके भगवान्‌को शयन करा दिया। वे भगवान्‌की प्रसादमाला अपने सिरपर रखकर पट बद करनेको थे कि राजा पहुँच गये। उस दिन दूसरी माला नहीं थी, इसलिये पुजारीजीने जल्दीसे अपने सिरसे माला उतारकर राजाको पहना दी। उसम उनके एक-दो उजले केश चले गये। वे राजाका दिखायी पडे। राजाने व्यग्यसे पूछा—क्या ठाकुरजीके केश उजले हो गये हैं? घबराहटम पुजारीके मुँहसे निकल गया—'हाँ'। राजा उनके सीधेपनपर मनमे हँसे और कहकर चले गये कि मैं प्रात काल आकर देखूँगा। राजाकी बातसे पुजारीजी डर गये। वे सोचम पड गये कि प्रात काल राजा आयगे और जब ठाकुरजीके उजल केश नहीं देखगे तब न जाने क्या करगे? भय और चिन्तामे उनकी रात बीतन लगी। वे ठाकुरजीसे आर्तवाणीसे कहने लगे—'प्रभो हृषीकेश! मुझम तनिक भी भक्ति नहीं है। फिर भी मेरे लिये आप अपन केश उजले कर ले।' उनकी प्रेमपूर्ण प्रार्थनासे भगवान् पसीज गये। मन्दिरके गर्भगृहमे मधुर स्वर सुनायी पडा—'केश उजले कर लिय हैं, देखो सिरपर उजल केश छाये हैं।'

ठाकुरजीकी अमृतवाणी सुनकर देवाजीको जीवन मिल गया। उन्हाने झाँककर देखा तो भगवान्‌के कश दुग्ध-धवल दिखलायी पडे। वे प्रेमविभोर हा गये। उनके नेत्राम प्रेमाश्रु भर आये। उन्ह ठाकुरजीको कश उजले बना लनेके लिये कहनेका पश्चात्ताप होने लगा। व रो-रोकर कहने लगे—प्रभो! मैंन लशमात्र भी आपकी सेवा नहीं की। मैं तो कहनेका आपका भक्त हूँ। इसी सम्बन्धको मानकर मुझ अभक्तपर भी आपने अपार कृपा की और मेरे सुखका साज सजानेके लिय श्वत कशवाला यह वेश बनाकर अपनी सवसुलभता दिखा दी।

प्रात हाते ही राजा पहुँच गये। उन्हाने भगवान्‌के श्वेत केश दखे, लकिन विश्वास नहीं हुआ। वे समझे कि पुजारीजीने कहींसे उजल कश लकर भगवान्‌के सिरम चिपका दिय हैं। उन्हान जाँचनक लिये एक कश खींच

लिया। केश खींचते ही भगवन्मूर्तिने अपनी नाक सिकोडकर सकेतसे दर्द होना दर्शाया और सिरसे खूनके छींटे छूटकर राजाके अङ्गपर पडे। यह दृश्य देखकर राजा बेहोश होकर गिर पडे। एक प्रहरके बाद उन्हे होश हुआ। उन्होने श्रीदेवापडाजीके पाँवपर गिरकर क्षमा माँगी। देवाजीने उन्हे उठाया और कहा—महाराज, मैं तो आपकी चाकरी करके अपना पेट पालता रहा। ठाकुरजीने उसे अपनी सेवा मान ली और मुझ झूठे व्यक्तिको आपके सामने सच्चा बनानेके लिये मेरे कहनेपर अपने केश उजले बना लिये। झूठ बोलकर अपराध तो मैंने किया और ठाकुरजीको कष्ट दिया। आप निर्दोष हैं। ठाकुरजी क्षमा करें। अन्तर्गृहसे श्रीरूपचतुर्भुजस्वामीकी आज्ञा हुई कि इस राजकुलमे जो भी राजसिहासनपर बैठे, वह यहाँ दर्शनके लिये न आये। तबसे इस आज्ञाका पालन किया जाने लगा। पुजारी श्रीदेवापडाजी भगवान् श्रीरूपचतुर्भुजस्वामीके पक्के प्रेमी थे। राजा भी नियमसे दर्शनको आते थे इसलिये उन्हे भी अर्चास्वरूपकी दिव्यताका प्रत्यक्षीकरण हुआ और राजाके परिजन एव प्रजाकी भी अर्चावतारमे आस्था दृढ हुई।

~~o~~
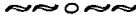
भगवान्‌का अन्तर्यामी रूपमें अवतार

(डॉ० श्रीकपिलदेवजी पाण्डेय)

मनुष्य एव ईश्वरका सम्बन्ध पूर्वकालसे ही एक ऐसी मानवीय भूमिपर प्रतिष्ठित है, जहाँ एकके उत्क्रमण और दूसरेके अवतरणके द्वारा परस्पर आकर्षण होता रहा है। अवतारवादका क्षेत्र काफी व्यापक होनेसे अन्तर्यामी रूपसे भगवान्‌का अवतार अन्तरोन्मुख भावाकी एक अभिव्यक्ति है। ईश्वर मनुष्यकी स्वानुभूतियासे ऊपर इच्छामय, प्रेममय और आनन्दमय है तथा योगी और परमात्मा, मनुष्य और देवता ज्ञानी और ब्रह्म, भक्त और भगवान्, सत और अन्तर्यामीके रूपमे यह व्यक्त होता रहता है। एक ही भावभूमिसे उद्भूत होनेके कारण भक्त और भगवान् दोनोके सम्बन्धाम एक विशेष प्रकारकी एकता लक्षित होती है।

साधनावस्थामे भाव-ग्रन्थियासे आपूरित सवेदनशील मानव अपने भावोका यथेष्ट आरोप अपने उपास्यपर करता है। जिसके फलस्वरूप साधनामे आत्मानुभूति या आत्मविह्वलता आदि किसी-न-किसी प्रकारसे वैविध्यकी सृष्टि होती है। उपासक और उपास्य दोनों तादात्म्यकी स्थिति प्राप्त कर अन्तरोन्मुखम वैविध्यकी अभिव्यक्तिका निर्माण करते हैं, जिसे अन्तर्यामी रूपम अवतार कहा जाता है।

योगी प्रारम्भसे लेकर सिद्धावस्थातक नाना अवस्थाओंमें परमात्माके अनेक रूप एव रगा या अलौकिक स्थितियाम उसी वैविध्यका अनुभव करता है। उसी प्रकारस ज्ञानी ब्रह्मकी अद्वैत-स्थितितक पहुँचनेसे पूर्व विवर्त या मायाके द्वारा वैविध्यका अनुभव करता है।

सत अपनी अन्तर्मुखी वृत्तियो एव आत्मानुभूतिके आधारपर अपने अन्तर्यामीके साथ भावनात्मक सम्बन्ध रखता है। इसम बुद्धिकी अपेक्षा हृदयतत्त्वकी अधिक प्रधानता रहती है।

सत किसी विशेष मत या सिद्धान्तका प्रतिपक्षी नहीं होता, उसम आत्माभिव्यञ्जनकी अजस्रधारा सर्वत्र प्रवाहित होती है। उसका अन्तयामी अलख, अविनाशी निर्गुण-निराकार निरूपित होते हुए भी मनुष्यके समान सवेदनशील, आदर्श और सहृदय व्यक्तित्ववाला होता है।

सताकी उपासनाका आधार नामोपासना है, परतु य किसी विशेष नामके पक्षपाती नहीं होते। उपास्य नाम—राम रहीम, केशव, करीम आदि कोई भी होते हैं। अपने उपास्य ईश्वरका उपर्युक्त नाम अन्तर्यामी रूपम होता है। उपासनाम भी उपास्य मुख्यरूपसे ब्रह्म ही होता है, जिसे उपनिषदाने आत्मब्रह्म सर्वभूतान्तरात्मा आत्मरूप षोडश-कलायुक्त पुरुष तथा अन्तयामी कहा है।

'अन्तर्यामी' शब्दस आत्मब्रह्मकी निरपेक्षता या उदासीनताका भाव न होकर मानवोचित सवदना, भावुकता और जिज्ञासासे होता है। वह आत्मतत्त्व सतके लिये पुत्र और धनसे भी अधिक प्रिय है, क्योकि आत्मा हृदयब्रह्म है।

आचार्य शकरके अनुसार वह सर्वरूप हृदयब्रह्म ही

उपास्य है। अन्य मन्त्रोमे उसे मनोमय पुरुष कहा गया है। वह प्रकाशमय है। हृदयके अदर स्थित वह धान या जौक परिमाण-स्वरूपवाला सभीका स्वामी और सभीका शासनकर्ता तथा सभीका अधिपति है।

बृहदारण्यकोपनिषद्‌मे अन्तर्यामी रूपकी चर्चा करत हुए कहा गया है कि अन्तर्यामीका अवतार सवेदना, जिज्ञासा और भावनाके आधारपर होता है। वह अन्तर्यामी जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, प्राणी, जीव, चन्द्रमा, सूर्य, दिशाएँ, आकाश आदिके अदर समस्त स्थानोमे सबके अदर है। सभी उसके शरीर हैं, वही सबका नियमन करता है।

पाञ्चरात्र आगमाम ब्रह्मके चार रूपाम एक अन्तर्यामी रूप भी माना गया है। अन्तर्यामी अवतार ईश्वरकी वह शक्ति या रूप है जो निर्मम ज्वालाके रूपम मनुष्यके हृदयकमलमे स्थित रहती है। यह जीवोके हृदयमे प्रविष्ट होकर उनकी सब प्रकारकी प्रवृत्तियाको नियन्त्रित करती है। अन्तर्यामी रूप दो प्रकारके होते हैं—एक रूपमे वे मङ्गलमय विग्रहके साथ जीवके सखारूपमे उसके हृदयकमलम वास करते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। उसके ध्येयरूपम उसके साथ-साथ अवस्थित रहते हैं और दूसरे रूपमे वे जीवकी सभी अवस्थाआमे उसकी रक्षा करते हैं। सताने हृदयमे स्थित इसी अन्तर्यामीको अपना सहज सौम्य व्यक्तित्व प्रदान किया है और अन्तर्यामी अवतारको आद्य कोटिमे माना है। कबीरदास तो अपने हृदयम नित्य प्रति उसके प्राकट्यका आनन्द लेते थे—

हरि सगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुख निध्य लह्या, जब अतरि प्रगट्या आप॥

इसमे जिस निर्गुण रामका उल्लेख है, वह हृदयस्थित ब्रह्मरूप है।

रामपूर्वतापिन्युपनिषद् (६)-मे कहा गया है कि योगीलोग जिस नित्यानन्दस्वरूप चिन्मय ब्रह्मम रमण करते हैं, वह परब्रह्म परमात्मा 'राम' ही है।

सगुणोपासक अपने इष्टदेवकी उपासना अष्टयाम पूजा और अर्चनाके द्वारा करते हैं, परतु सत केवल नामोपासना एव यौगिक पद्धतियोका उपयोग करते हैं। इनके अनुसार ब्रह्म सक्रिय एव अन्तर्यामी है और भक्तोका पालक तथा उनका अभीष्ट फलदाता है। सतोने ईश्वरके साथ सखा, भाई, गुरु, स्वामी, दास, माता, पिता, प्रियतम आदि अनेक व्यक्तिगत एव सामाजिक सम्बन्ध स्थापित किये हैं। सताकी साधना आन्तरिक होती है, बहिर्मुखी नहीं। वे अपने अन्तर्यामीके प्रति व्यक्तिगत सम्बन्ध रखते हैं। दादू ऐसे राजाकी सेवा करनेकी कामना करते थे जिनका तीना लोक घर है, चाँद और सूर्य दीपक हैं, पवन आँगन बुहारता है, शकर और ब्रह्मा भी जिसकी सेवा करते हैं, मुनि जिसका ध्यान करते हैं, नारद-शारदा आदि जिसका गुणगान करत हैं, जो चौदह भुवनोमे अवस्थित हैं, जो सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टिको धारण किये हैं।

यहाँ उनके अन्तर्यामी भगवान् राजाके रूपमे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सतामे अन्तर्यामी आत्मा ब्रह्मका रूप है।

कबीरदासने भी अन्तर्यामी श्रीरामको पूर्ण ब्रह्म कहा है। गुरु अर्जुनदेव ऐसे धनी गोविन्दका गुणगान करते हैं, जिन्होने विष्णुके रूपमे करोडो अवतार धारण किये हैं। करोडा ब्रह्माण्डमे जिनका विस्तार है। करोडो देवता जिनमे स्थित हैं। करोडा वैकुण्ठ जिनकी सृष्टिमे विद्यमान हैं।

सगुणोपासककी तरह सतोमे भी माधुर्य एव सखीभाव आदि दिखायी पडता है। कबीरदासजीका मानना है कि हरि उनका प्रीतम है और वे उस प्रियकी बहुरिया हैं। उसके बिना उनका अस्तित्व ही नहीं है। उनसे मिलनेके लिये ही वे शृगार करत हैं और उनसे मिलनेके लिये ही वे सदा बेचैन रहते हैं। दादूने भी सारी सृष्टिको नारी एव अपने अन्तर्यामी हरिको एकमात्र पुरुष कहा है। उनकी वाणी है—

हम सब नारी एक भरतार। सब कोई तन करै सिगार॥

सताम अन्तर्यामीके प्रति स्वकीयाजनित दास्यभावकी अभिव्यक्ति भी पायी जाती है, अपने अलख और अविनाशी पुरुषमे सगुण रूपकी अभिव्यक्ति देखनेको मिलती है। यह सम्बन्ध किसी सिद्धान्त, दर्शन या सम्प्रदायसे प्रभावित नहीं होता, अपितु उनम व्यक्तिगतरूपसे स्वानुभूतिपरक आत्मनिवेदन दैन्य आदि स्वाभाविक उद्गार प्रतिष्ठित रहते हैं। सतोको अपने अन्तर्यामीमे विराट् रूपका भी दर्शन होता है।

गीतामें कहा गया है कि जो मुझे सर्वत्र सबमे दखता है उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट होता है कि वह अन्तर्यामी ईश्वर समस्त भूतामे तथा आकाशसे लेकर पातालतक कण-कणका वासी है सबका अन्तरात्मा होनेके कारण वही ज्ञेय है। भाव-भक्तिरूपमे वह अन्तर्यामीरूपसे प्रकट होता है। वह नेति-नेतिके रूपमे निरूपित है। इस आत्ममूर्तिमे स्थूल रूपका अभाव होते हुए भी यह सगुण-साकारके गुणसे युक्त है। यह ईश्वरका एक विशिष्ट स्वरूप है। यह ध्येय ज्ञेय और पूज्य है।

[प्रेषक—श्रीअखिलेश्वरजी पाण्डेय]

~~~ ० ~~~

भगवान्‌का परिपूर्णतम अवतार

(डॉ० श्रीमती पुष्पामिश्रा, एम्०ए० (द्वय) पी-एच्०डी०)

परम ज्ञानी श्रीशुकदेवजीने अवतार-तत्त्वकी मीमासा करते हुए राजा परीक्षित्से कहा—

नृणा नि श्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मन ॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।१४)

हे राजन्! भगवान् प्रकृतिके विकास और विनाश, प्रमाण और प्रमेय आदि गुणोसे रहित हैं। वे अप्राकृत अनन्त गुणोंके आश्रय हैं और उन्होने अपनी लीलाको जीवके कल्याणके लिये ही प्रकट किया है।

वेदान्तदर्शनका उद्घोष है—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्॥' (ब्र०सू० २।१।३३)

इसका भाव यह है कि भगवान्‌का जगत्-रचना आदि कर्मोसे या मनुष्यादि अवतार धारण करके भाँति-भाँतिके लोकपावन चरित्र करनेमे कोई प्रयोजन नहीं है तथा इसमे कर्तापनका अभिमान भी नहीं है। अत भगवान्‌के कर्म लीलामात्र ही हैं।

जब भगवान् अपने अशसे पृथ्वीपर अवतीर्ण होते हैं तो अवतार कहे जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्णका परिपूर्णतम प्राकट्य हुआ है, वे स्वय भगवान् हैं।

भगवान्‌के परिपूर्णतम अवतारके विषयमे बताते हुए श्रीगर्गाचार्यजी कहते हैं कि जिसके अपने तेजमे अन्य सभी तेज विलीन हो जाते हैं भगवान्‌के उस अवतारको श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष 'परिपूर्णतम' अवतार बताते हैं—

यस्मिन् सर्वाणि तेजासि विलीयन्ते स्वतेजसि।
त वदन्ति परे साक्षात् परिपूर्णतम स्वयम्॥

(श्रीगर्गसहिता गोलोकखण्ड १।२४)

महर्षि वेदव्यास एव अन्य ऋषियोने अशाश अश आवेश, कला पूर्ण और परिपूर्णतम—ये छ प्रकारके अवतार बताये हैं। मरीचि आदि अशाशावतार, ब्रह्मा आदि अशावतार, कपिल आदि कलावतार, परशुराम आदि आवेशावतार कहे गये हैं।

पूर्णो नृसिहो रामश्च श्वेतद्वीपाधिपो हरि।
वैकुण्ठोऽपि तथा यज्ञो नरनारायण स्मृत ॥
परिपूर्णतम साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते॥

(श्रीगर्गसहिता, गोलोकखण्ड १।१८-१९)

अर्थात् श्रीनृसिह श्रीराम श्वेतद्वीपाधिपति हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ और नर-नारायण—ये पूर्णावतार हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही 'परिपूर्णतम' अवतार है। असख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति वे प्रभु गोलोकधाममे विराजते हैं।

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद् भुवनेषु किंतु।
कृष्ण स्वय समभवत्परम पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुष तमह भजामि॥

(श्रीब्रह्मसहिता ५।३९)

जिन्होने श्रीराम, नृसिह वामन आदि विग्रहोमे नियत कलाके रूपमे विभिन्न अवतार लिये परतु जो भगवान् श्रीकृष्णके रूपमे स्वय प्रकट हुए, उन आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

भगवान् श्रीहरि युग-युगमे धर्मरक्षणार्थ वामनादिके रूपमे शरीर धारण किया करते हैं। भगवान् श्रीहरिने त्रिविक्रमरूपमे वामनावतार लिया तथा द्वापरमें श्रीकृष्णरूपमे
~~~

अवतरित हुए।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर-
जायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरा-
स्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

(यजु० ३१।१९)

अर्थात् प्रजापालक परमेश्वर सभीके अदर विचरते हैं। वे अजन्मा होकर भी अनेक रूपोमे प्रकट हो जाते हैं। इनके मूल स्वरूपको ज्ञानीजन देखते हैं, जिससे सभी भुवन व्याप्त हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता (४।६)-मे कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

भगवान् अपने जन्मकी विलक्षणता बतलाते हुए कहते हैं कि वे अजन्मा और अविनाशी हैं, फिर भी सभी जीवाके स्वामी हैं। वे युग-युगमे अपने आदि दिव्य रूपमे प्रकट होते हैं। भगवान् कहते हैं कि वे अपने ही शरीरमे प्रकट होते हैं। वे सामान्य जीवकी भाँति शरीर-परिवर्तन नहीं करते। प्राकृत जगत्मे जीवका कोई स्थायी शरीर नहीं होता है। जीव हमेशा ही एक शरीरसे दूसरे शरीरमे देहान्तरण करता रहता है।

महाभारतमे एक कथा है कि जब अर्जुन और भगदत्तका युद्ध हो रहा था तो भगदत्तके द्वारा चलाये गये वैष्णवास्त्रसे अर्जुनकी रक्षा भगवान् श्रीकृष्णने की थी। भगदत्तद्वारा छोडा गया वह अस्त्र सबका विनाश करनेवाला था। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको अपने पीछे ओटमे करके स्वयं ही अपनी छातीपर उस अस्त्रकी चोट सह ली। भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर वह अस्त्र वैजयन्ती मालाके रूपमे परिणत हो गया। अर्जुनके मनमे बडा ही क्लेश हुआ और यह पूछनेपर कि आपने मुझे पीछे ओटमे क्या किया? भगवान्ने यह रहस्य अर्जुनसे व्यक्त किया—

चतुर्मूर्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमुद्यत ।
आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे॥
एका मूर्तिस्तपश्चर्यां कुरुते मे भुवि स्थिता।
अपरा पश्यति जगत् कुर्वाणं साध्वसाधुनी॥
अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता।
शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकम्॥
यासौ वर्षसहस्रान्ते मूर्तिरुत्तिष्ठते मम।
वरार्हेभ्यो वराञ् श्रेष्ठांस्तस्मिन् काले ददाति सा॥

(महा० द्रोणपर्व २९।२६—२९)

सम्पूर्ण लोकोकी रक्षा करने हेतु मैं चार रूप धारण करता हूँ। अपनेको यहाँ अनेक रूपोमे विभक्त कर देता हूँ। मेरी एक मूर्ति इस पृथ्वीपर स्थित हो तपश्चर्या करती है। दूसरी मूर्ति परमात्माके रूपमे शुभ-अशुभ कर्म करनेवालोको साक्षी रूपसे देखती है। तीसरी मूर्तिसे (मैं स्वयं) मनुष्यलोकका आश्रय लेकर नाना प्रकारके कर्म करता हूँ तथा चौथी मूर्ति सहस्र युगोतक एकार्णवके जलमे शयन करती है। सहस्र युगके उपरान्त मेरा यह चौथा रूप जब योगनिद्रासे जागता है, उस समय वर पानेके योग्य श्रेष्ठ भक्तोको उत्तम वर प्रदान करता है।

श्रीकृष्णदास कविराजकृत चैतन्यचरितामृतके निम्नलिखित श्लोकोसे अवतार-सिद्धान्तकी पुष्टि होती है—

सृष्टिहेतु एइ मूर्ति प्रपञ्चे अवतरे।
सेई ईश्वरमूर्ति अवतार नाम धरे॥
मायातीत परव्योमे सबार अवस्थान।
विश्वे अवतरि धरे अवतार नाम॥

(२०।२२७-२२८)

अवतार भगवद्धामसे भौतिक प्राकट्यहेतु होता है। ईश्वरका यह विशिष्ट रूप, जो इस प्रकार अवतरित होता है, अवतार कहलाता है। भगवान् भगवद्धाममे स्थित रहते हैं जब वे भौतिक जगत्मे उतरते हैं अवतार कहे जाते हैं।

अवतार कई प्रकारके होते हैं। जैसे गुणावतार, लीलावतार पुरुषावतार शक्त्यावेशावतार मन्वन्तर-अवतार तथा युगावतार आदि—इन सबका ब्रह्माण्डमे अवतरण होता है। परंतु भगवान् श्रीकृष्ण आदि भगवान् हैं तथा सभी अवताराके उद्गम हैं।

श्रीनरसिंहपुराण (५३।३४—३६)-मे ऐसा वर्णन मिलता है—

शिष्टानां पालनार्थाय दुष्टनिग्रहणाय च।
प्रमयामास ते शक्ती सितकृष्णे स्वके नृप॥
तयो सिता च रोहिण्या वसुदेवाद्बभूव ह।

तद्वत्कृष्णा च देवक्या वसुदेवाद्बभूव ह॥
रौहिणेयोऽथ पुण्यात्मा रामनामाश्रितो महान्।
देवकीनन्दन कृष्णस्तयो कर्म शृणुष्व मे॥

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णने सज्जनोकी रक्षा और दुष्टोका सहार करनेके लिये अपनी इन दो शक्तियो—गौर एव कृष्णको भेजा। उनमेसे गौरशक्ति वसुदेवद्वारा रोहिणीके गर्भसे प्रकट हुई तथा कृष्णशक्ति वसुदेव द्वारा देवकीके गर्भसे प्रकट हुई। रोहिणीनन्दनने 'राम' नाम धारण किया और देवकीनन्दनका नाम 'श्रीकृष्ण' रखा गया।

श्रीमद्भागवत (१०।२।८-९)-के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण योगमायासे कहते हैं—

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्य धाम मामकम्।
तत् सनिकृष्य रोहिण्या उदरे सनिवेशय॥
अथाहमशभागेन देवक्या पुत्रता शुभे।
प्राप्स्यामि त्व यशोदाया नन्दपत्न्या भविष्यसि॥

इस समय मेरा अश जिसे शेष कहते हैं, देवकीके उदरमें गर्भरूपमे स्थित है, उसे वहाँसे हटाकर रोहिणीके उदरम रख दो। कल्याणी! अब मैं अपने समस्त ज्ञान, बल आदि अशाके साथ देवकीका पुत्र बनूँगा और तुम नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म लेना।

भगवान् श्रीकृष्ण १६ कलाओ (छ ऐश्वर्य आठ सिद्धि कृपा—दया तथा लीला)-के साथ प्रकट हुए। सम्पूर्ण एश्वर्य धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छ का नाम भग है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रिय।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीरणा॥

(श्रीविष्णुपुराण ६।५।४७)

अणिमा लघिमा, महिमा, प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व वशित्व और कामावसायित्व—ये आठ सिद्धियाँ कही जाती हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ कृपा-निधान हैं वहीं वे लीलापुरुषात्तम हैं।

श्रीकृष्णको 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहा गया है—

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजस।
कला सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥
एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुल लोक मृडयन्ति युगे युग॥

(श्रीमद्भा० १।३।२७-२८)

अर्थात् ऋषिगण मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र तथा जितने भी महान् शक्तिशाली हैं, वे सभी भगवान्के अश हैं। य सभी भगवान्के अशावतार या कलावतार हैं, परतु *भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वय भगवान् ही हैं। जब लोग* अत्याचारसे व्याकुल हो जाते हैं तब युग-युगम प्रकट होकर भगवान् उन सबकी रक्षा करते हैं।

श्रीब्रह्मसहिता (५।१)-का उद्घोष है—

ईश्वर परम कृष्ण सच्चिदानन्दविग्रह।
अनादिरादिर्गोविन्द सर्वकारणकारणम्॥

गोविन्दक नामस विख्यात श्रीकृष्ण ही परमश्वर हैं। उनका विग्रह सच्चिदानन्द है तथा वे सभी कारणोके कारण हैं।

महर्षि गर्गाचार्यने श्रीगर्गसहितामे भगवान् श्रीकृष्णको परिपूर्णतम अवतार बताया है जो सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करते हैं।

अशाशकाशककलाभिरुताभिराम
वेशप्रपूर्णनिचयाभिरतीवयुक्त।
विश्व विभर्षि रसरासमलङ्करोषि
वृन्दावन च परिपूर्णतम स्वय त्वम्॥

(वृन्दावनखण्ड २५।२४)

हे गोविन्द! आप अशाश अश कला आवेश तथा पूर्ण—समस्त अवतारसमूहोसे सयुक्त हैं। आप परिपूर्णतम परमेश्वर सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करते हैं तथा वृन्दावनम सरस रासमण्डलको भी अलङ्कृत करते हैं।

अवतरणका उपक्रम—दानव दैत्य आसुर स्वभावक मनुष्य और दुष्ट राजाओके भारी भारसे अत्यन्त पीडित होकर पृथ्वी गौका रूप धारण करक अनाथकी भाँति रोती-बिलखती हुई अपनी आन्तरिक व्यथा निवेदन करनेके लिये ब्रह्माजीकी शरणमे गयी। ब्रह्माजीने व्यथा सुनकर पृथ्वीको धीरज बँधाया तथा तत्काल सभी देवताओ तथा शिवजीको साथ लकर व भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधामम गये। वहाँ जाकर ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको प्रणाम करके सारा अभिप्राय निवेदन किया। तब भगवान् लक्ष्मापति श्रीविष्णुने कहा—

कृष्णो स्वय विगणिताण्डपति परेश
साक्षादखण्डमतिदेवमतीवलीलम्।

कार्यं कदापि न भविष्यति य विना हि
गच्छाशु तस्य विशद पदमव्यय त्वम्॥
(श्रीगर्गसंहिता गोलोकखण्ड २।७)

हे ब्रह्माजी! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही अगणित ब्रह्माण्डोके स्वामी परमेश्वर अखण्डस्वरूप तथा देवातीत हैं। उनकी लीलाएँ अनन्त एव अनिर्वचनीय हैं। उनकी कृपाके बिना यह कार्य कदापि सिद्ध नहीं होगा। अत आप उन्हींके अविनाशी एव परम उज्ज्वल धामम शीघ्र जायँ।

ब्रह्माजी सभी देवताओके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमे उपस्थित हुए। वहाँ उन्हाने देखा कि भगवान् श्रीहरि उठे और भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहम लीन हो गय। भगवान् नृसिह भी पधारे और वे भी भगवान् श्रीकृष्णके तेजमे समा गये। इसके उपरान्त श्वेतद्वीपके स्वामी पधार, वे भी भगवान् श्रीकृष्णक विग्रहम प्रविष्ट हो गये। भगवान् श्रीराम भी पधारे तथा वे भी श्रीकृष्णविग्रहमे लीन हो गये। यज्ञनारायण हरि भगवान् नर-नारायण भी पधारे तथा वे भी श्रीकृष्णके विग्रहमे लीन हो गये। यह देखकर ब्रह्माजीके साथ सभी देवगण आश्चर्यचकित हो गय—

'दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं त सर्वे विस्मय ययु ॥'
(श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६१।४९)

तब सभी दवताआने उनकी इस प्रकार स्तुति की—

कृष्णाय पूर्णपुरुषाय परात्पराय
यज्ञेश्वराय परकारणकारणाय।
राधावराय परिपूर्णतमाय साक्षाद्
गोलोकधामधिषणाय नम परस्मै॥
योगेश्वरा किल वदन्ति मह पर त्व
तत्रैव सात्वतजना कृतविग्रह च।
अस्माभिरद्य विदित यददोऽद्वय ते
तस्मै नमोऽस्तु महता पतय परस्मै॥
(श्रीगर्गसंहिता गोलोकखण्ड ३।१५-१६)

जो भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुष परसे भी पर, यज्ञाके स्वामी, कारणाके भी परम कारण परिपूर्णतम परमात्मा और साक्षात् गोलोकधामके अधिवासी हैं, उन परम पुरुष राधावरको हम सादर नमस्कार करते हैं। योगेश्वर लोग कहते है कि आप परम तेज पुञ्ज हैं, शुद्ध अन्त करणवाले भक्तजन आपको लीलावतार मानते हैं, परतु हमलोगाने आज आपके जिस स्वरूपको जाना है, वह अद्वैत एव अद्वितीय है। अत आप महत्तम तत्त्वा एव महात्माआके भी अधिपति हैं, आप परब्रह्म परमेश्वरको हमारा नमस्कार है।

देवगणोद्वारा की गयी स्तुतिपर भगवान्‌ने अवतार धारणका वचन देकर उन्हे आश्वस्त किया।

परिपूर्णतम अवतारका प्रयोजन—जब भी अधर्मकी प्रधानता तथा धर्मका लोप होने लगता है, भगवान् स्वेच्छासे प्रकट होत हैं। भगवान् भक्तोका उद्धार तथा दुष्टोका सहार करनेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं। जीवन्मुक्त महात्मा जीवन्मुक्तावस्था प्राप्त हो जानेपर भी जगत्-कल्याणार्थ कार्य करते रहते हैं। उन्हींकी प्रार्थनापर भगवान्‌का अवतार होता है।

ऐसे भगवद्विभूतिसम्पन्न महापुरुषाके परोपकार-गुणका वर्णन श्रीशङ्कराचार्यने विवेकचूडामणि (३९-४०)-मे इस प्रकार किया है—

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो
वसन्तवल्लोकहित चरन्त ।
तीर्णा स्वय भीमभवार्णव जना-
नहेतुनान्यानपि तारयन्त ॥
अय स्वभाव स्वत एव यत्पर-
श्रमापनोदप्रवण महात्मनाम्।
सुधाशुरेप स्वयमर्ककर्कश-
प्रभाभितप्तामवति क्षिति किल॥

शान्त स्वभावके जीवन्मुक्त महात्मा वसन्त-ऋतुके समान ससारका हित करते हैं। वे स्वय भी ससार-सागरसे तरते हैं तथा दूसराको भी इस ससार-सागरसे तारते हैं। जैसे चन्द्रमा सूर्यकी प्रभासे सतप्त पृथ्वीको शीतलता प्रदान करता है वैसे ही दूसरेके दु खको नाश करना इन महात्माओका स्वभाव है।

भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोकी चिन्ताआको दूर करनेके विशिष्ट प्रयोजनस अवतार ग्रहण करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके परिपूर्णतम अवतारका प्रयोजन प्रेमी भक्तोको प्रसन्न करना है।

॥ श्रीहरि ॥

नम्र निवेदन एव क्षमा-प्रार्थना

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

श्रीमद्भगवद्गीता म भगवान्का स्पष्ट वचन है कि मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होत हुए भी तथा समस्त प्राणियाका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायास प्रकट होता हूँ। मेरा जन्म लेना—प्रकट होना—अवतरित हाना तथा लीला करना प्राकृत नहीं, अपितु दिव्य चिन्मय और अलौकिक है—**'जन्म कर्म च मे दिव्यम्।'**

भगवत्कृपामे इस वर्ष कल्याणका विशेपाङ्क **'अवतार-कथाङ्क'** पाठकाकी सेवाम प्रस्तुत किया जा रहा है। कल्याणकी परम्पराम प्रतिवर्ष प्रकाशित विशेपाङ्कोम यद्यपि भगवदवतारा और उनकी लीलाओकी चर्चा किसी-न-किसी रूपम अवश्य हाती रही है, परतु विभिन्न अवसरोके परमात्मप्रभुके विभिन्न अवतारोका एकत्र सकलन अबतक प्राप्त नहीं था अत इस वर्ष यह विचार आया कि भगवान्के अवतारोकी कथा और उनका परिचयात्मक सकलन विशेपाङ्कके रूपमे प्रकाशित किया जाय।

वास्तवम करुणावरुणालय परमात्मप्रभु जीवोके परम कल्याण-साधनके लिये ही अपनी अहैतुकी कृपा करते हुए विविध नाम-रूपामे अवतार धारण करते हैं, अन्यथा वे तो सर्वथा आप्तकाम हैं, पूर्णकाम हैं, उनको अपने लिये कौन-सी अभिलापा है—**'आप्तकामस्य का स्पृहा।'** व परमात्मा निरञ्जन, निर्विकार, निराकार हाते हुए भी भक्तजनाके प्रेमके वशीभूत हो उनकी पुकार सुनत हैं, आर्तजनोकी करुणासे उद्वलित हाते हैं और इसी कारण सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक और सर्वसमर्थ होकर भी सगुण-साकार रूपसे एक देशम अवतरित होते हैं—यह हिन्दू-सस्कृति और भारतभूमिकी अपनी विशेपता है। यहाँके भक्ता, उपासका सत-महात्माआ साधुजना तथा जीवमात्रको सगुण-साकार प्रभुकी सन्निधि प्राप्त होती है और उनक लीला-चरित्रके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता हे जो अन्य दशवासियाको इस रूपम प्राप्त नहीं होता। इसीलिय स्वर्गके दवता भी भारतवासियाक सौभाग्यकी सराहना करत हैं तथा यह गीत गात हैं—

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूय पुरुषा सुरत्वात्॥
(श्रीविष्णुपुराण २।३।२४)

अर्थात् देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि 'जिन्हाने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमे जन्म लिया है, वे पुरुप हम देवताआकी अपेक्षा भी अधिक धन्य (बडभागी) हैं।'

भगवान्क प्राकट्यके समय ये देवता भी भगवत्परिकरोक रूपमे इस मर्त्यलोकम प्रयासपूर्वक शरीर धारण करते हें। इसीलिय मर्यादापुरुपोत्तम भगवान् श्रीराम तथा लीलापुरुपोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रादुर्भावके समय कई दवताआने भी अपनी कुछ कलाआके साथ अवतार धारण किया।

वस्तुत यह जगत् परमात्माका लीला-विलास है, लीलारमणका आत्माभिरमण है, इसीलिये भगवान् अपनी लीलाका चिन्मय बनानेके लिये अपनी सरचनामें अन्तर्यामीरूपसे स्वय प्रविष्ट भी हो जाते हैं **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** ओर अजायमान होते हुए भी बहुत रूपाम लीला करते हैं **'अजायमानो बहुधा वि जायते।'** कुछ विज्ञजनोका यह मत है कि भगवान् यद्यपि आप्तकाम पूर्णकाम, परम निष्काम आत्माराम हैं, अतएव उनके भीतर किसी प्रकारकी कामना तो सम्भव ही नहीं फिर भी वे अपने आनन्द-विलासक लिये लाला करते हैं, जिसके फलस्वरूप भक्ताकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भगवल्लालास अभिव्यक्त उल्लसित आनन्द प्रेमी भक्ताको

परम प्रफुल्लित करता है। परमात्मप्रभु अपने आनन्दस्वरूपका विस्तार करनेके लिये अनेक स्वरूपोमे प्रकट होते हैं—**'एकोऽह बहु स्याम्।'** भगवान् अपनी अवतरण-लीलामे अपने परिकरोके साथ अपनी आह्लादिनीशक्तिके साथ अपने नित्य धामसे उतरकर जगत्को आनन्दित करते हैं। कल्पभेदसे भगवान्ने अनेक अवतार धारण किये हैं, अतएव उनके चरित भी अनन्त हैं—*'हरि अनत हरि कथा अनता।'* वस्तुत भगवान्के सभी लीलाचरित यथार्थ हैं, पूर्ण हैं, पूर्णतर हैं और परिपूर्णतम हैं—**'पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।'**

प्रस्तुत अङ्कमे आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुके विभिन्न स्वरूपाका, उनके लौकिक एव अलौकिक गुणाका, पञ्चदेवोके विभिन्न अवतारोकी परम मनोहर लाला-कथाओं—अवतार-रहस्यो तथा उन अवतार-रहस्यो और उन अवतारोक ऐकान्तिक भक्तो, सेवको, उपासको एव मित्रभावान्वित तथा शत्रुभावान्वित लीला-सहचरोके विभिन्न चरित्राका यथास्थान चित्रण करते हुए प्रभु-अवतरण-लीलाका दर्शन, साथ ही जन्म-रहस्योका उद्घाटन और अवतार-कथाके प्रत्येक पक्षपर पठनीय, विचार-प्रेरक एव अनुष्ठेय सामग्रीका समायोजन करनेका प्रयास किया गया है, जिससे सर्वसाधारणको परमात्मप्रभुकी अवतार-कथाआका सम्यक् दर्शन-चिन्तन एव मनन हो सके तथा ससारके लोगामे एकाग्रता, अनन्यता तन्मयता और सद् वृत्तियोका उदय भी हो।

'अवतार-कथाङ्क'के लिय लेखक महानुभावाने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, उमे हम कभी भूल नहीं सकते। इस वर्ष हमने लखक महानुभावोसे सामान्य लेख न भेजकर विशेप लेख भेजनेका अनुरोध किया था हम इस बातकी प्रसन्नता है कि इस बार कुछ विशिष्ट सामग्री भी प्राप्त हुई। यथासाध्य विशेपाङ्कम उनके प्रकाशनका भी प्रयास किया गया, परतु सम्पूर्ण लेखोका यथास्थितिम प्रकाशन करना कथमपि सम्भव नहीं था इसलिये कुछ लेखाको सक्षिप्त भी करना पडा तथा कुछ लेख प्रकाशित नहीं भी किये जा सके, जिसके लिये हम अत्यन्त खेद है। यद्यपि बच हुए लेखोमेसे कुछ लेखोको साधारण अङ्कामे यथासाध्य प्रकाशित करनेका प्रयास करगे, फिर भी जिनके लेख प्रकाशित नहीं हो सके, उन लेखक-महानुभावासे हम करबद्ध क्षमा-प्रार्थना करते हैं, कृपया हमारी विवशता समझकर अन्यथा न समझ तथा कल्याणपर अपनी कृपादृष्टि बनाये रख। उन लेखक महानुभावोके हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं, जिन्होने कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय लगाकर भगवान्की अवतार-कथाओसे सम्बन्धित सामग्री यहाँ प्रेपित की है। **'अवतार-कथाङ्क'**की सामग्रीकी अधिकताके कारण फरवरी मासका एक परिशिष्टाङ्क भी बादमे भेजनेका विचार है।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यो परम सम्मान्य पवित्रहृदय सत-महात्माआ, साधक भक्ता आदरणीय विद्वान् लेखक महानुभावोके चरणोम सादर भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, जिन्होन **'विशेपाङ्क'** की पूर्णतामे किञ्चित् भी योगदान किया है। भगवान्की अवतार-कथाओ एव भक्ति-भावनाके प्रचार-प्रसारमे वे ही निमित्त हैं क्योकि उन्हींके *भक्ति-भावपूर्ण* एव *उच्च विचारपूर्ण लेखोसे* **'कल्याण'**को सदा शक्ति-स्रोत प्राप्त होता रहता है।

हम अपने विभागके तथा प्रेसके उन सभी सम्मान्य साथी-सहयागियोको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहपूर्ण सहयोगस यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। त्रुटियां एव व्यवहार-दोपके लिये सबसे क्षमाप्रार्थी हैं।

'अवतार-कथाङ्क'के सम्पादन म जिन सतो तथा विद्वान् लेखकोस सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हे हम अपने मानस-पटलस विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम मैं वाराणसीके समादरणीय प० श्रीलालविहारीजी शास्त्री तथा प्रयागके प० श्रीरामकृष्णजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्हाने अपने लेख एव प्ररणाप्रद परामर्श प्रदान कर निष्काम भावसे अपनी सवाएँ परमात्मप्रभुके श्रीचरणाम समर्पित की हैं। 'गोधन'-

के सम्पादक तथा विशिष्ट पत्रकार श्रीशिवकुमारजी गोयलके प्रति भी हम आभार व्यक्त करते हैं, जो निरन्तर अपने पूज्य पिता भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआके सग्रहालयसे अनेक दुर्लभ सामिग्रयाँ हमे उपलब्ध कराते हैं।

मैं अपने कनिष्ठ भ्राता प्रेमप्रकाश लक्कडके प्रति भी आभारी हूँ, जिन्होने इस अङ्कके सम्पादनमे अपना अमूल्य समय देकर पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इसके सम्पादन, प्रूफ-सशोधन, चित्र-निर्माण तथा मुद्रण आदिमे जिन-जिन लोगास हम सहृदयता मिली, व सभी हमार अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमे **'कल्याण'** का कार्य भगवान्‌का कार्य है, अपना कार्य भगवान् स्वय करते हैं, हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार **'अवतार-कथाङ्क'** के सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत आनन्दकन्द परमात्मप्रभुकी मधुर मनोहर अवतार-कथाओका चिन्तन, मनन एव स्मरणका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा है, जिसके फलस्वरूप भगवत्कृपासे विशेष आनन्दकी अनुभूति प्राप्त हुई। हमे आशा है कि इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोको भी इस पवित्र अवतार-कथाके रसपानका अवसर प्राप्त होगा तथा वे भक्ति-भावसमन्वित आनन्दका अनुभव करगे।

अन्तमे हम अपनी त्रुटियाके लिय आप सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए श्रीमद्भागवतकी कुछ पक्तियाँ निवेदन करते हैं, जिन्हे महाभाग्यवती गोपियाँ कहती हैं—

तव कथामृत तप्तजीवन
कविभिरीडित कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गल श्रीमदातत
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना ॥

अर्थात् प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा भी अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगाके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। बडे-बडे ज्ञानी महात्माओ—भक्त कवियाने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल—परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवम भूलोकमे वे ही सबसे बडे दाता हैं।

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक

॥ श्रीहरि ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर–प्रकाशन

कोड	मूल्य
■1555 गीता माहात्म्य (वि०सं०)	३५
■ 18 भाषा टीका टिप्पणी प्रधान विषय मोटा टाइप [ओड़िआ गुजराती मराठीमें भी]	१३
■ 502 गीता (सजि०) [तेलुगु, ओड़िआ गुजराती कन्नड़ तमिलमें भी]	२०
■ 19 गीता—केवल भाषा (तेलुगु उर्दू, तमिलमें भी)	७
■ 750 गीता—भाषा पाकेट साइज	४
■ 20 —भाषा टीका पॉकिट साइज [अंग्रेजी मराठी बँगला असमिया ओड़िआ गुजराती कन्नड़ तेलुगुमें भी]	५
■1566 गीता—भाषा टीका पॉकेट साइज सजिल्द [गुजराती बँगला अंग्रेजी भी]	१
■ 21 श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता विष्णुसहस्रनाम भीष्मस्तवराज अनुस्मृति गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओड़िआमें भी]	१५
■1628 (नित्यस्तुति एवं गजल गीतासहित) पॉकेट साइज	५
■ 22 गीता—मूल मोटे अक्षरों वाली [तेलुगु, गुजरातीमें भी]	७
■ 23 गीता—मूल विष्णुसहस्रनामसहित [कन्नड़, तेलुगु, तमिल मलयालम ओड़िआमें भी]	३
■1556 गीता श्लोकार्थसहित—लघु आकार	५
■1602 सजिल्द (वि सं)— लघु आकार	८
■ 700 गीता—मूल लघु आकार (ओड़िआ बंगला तेलुगुमें भी)	२
■1392 गीता ताबीजी—(सजिल्द) (गुजराती बंगला तेलुगुमें भी)	४
■ 566 गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ)	२५
▲289 गीता चित्रावली	
▲297 गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप	१
▲388 गीता माधुर्य सरल प्रश्नोत्तर शैलीमें (हिन्दी) [तमिल मराठी गुजराती उर्दू, तेलुगु बँगला असमिया कन्नड़ ओड़िआ अंग्रेजी संस्कृतमें भी]	८

कोड	मूल्य
■1242 पाण्डव गीता एवं हंसगीता	३
■1431 गीता दैनन्दिनी (२००७) पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (बँगला तेलुगु ओड़िआमें भी)	४५
■ 503 गीता दैनन्दिनी (२००७) रोमन पुस्तकाकार प्लास्टिक जिल्द	३०
■ 506 गीता दैनन्दिनी (२००७)— पॉकेट साइज (वि स)	२
▲464 गीता ज्ञान प्रवेशिका स्वामी रामसुखदास	१५
■ 508 गीता सुधा तरंगिनी	

— रामायण —

कोड	मूल्य
■1389 श्रीरामचरितमानस बृहदाकार (विशिष्ट संस्करण)	३५०
■ 80 बृहदाकार	२५
■1095 ग्रन्थाकार (वि स) (गुजरातीमें भी)	१९
■ 81 ग्रन्थाकार सचित्र सटीक मोटा टाइप [ओड़िआ बँगला तेलुगु, मराठी गुजराती कन्नड़, अंग्रेजी नेपालीमें भी]	१३
■1402 सटीक ग्रन्थाकार (सामान्य)	१
■ 82 मझला साइज सटीक सजिल्द [गुजराती अंग्रेजी भी]	६५
■1563 मझला—सटीक विशिष्ट संस्करण	७५
■1318 रोमन एवं अंग्रेजी अनुवादसहित	२०
■ 456 अंग्रेजी अनुवादसहित	१२
■ 786 मझला	७०
■1436 मूलपाठ बृहदाकार	
■ 83 श्रीरामचरितमानस मूलपाठ, ग्रन्थाकार [गुजराती ओड़िआ भी]	६५
■ 84 मूल मझला साइज [गुजराती भी]	४
■1615 मूल (मझला) अजिल्द	३०
■ 85 मूल गुटका [गुजराती भी]	२५
■1544 श्रीरामचरितमानस मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण)	३
■ 790 केवल भाषा	८०
[श्रीरामचरितमानस—अलग-अलग काण्ड (सटीक)]	
■ 94 श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड	१८
■ 95 अयोध्याकाण्ड	१८
■ 98 सुन्दरकाण्ड [कन्नड़ तेलुगु, बँगला भी]	५

कोड	मूल्य
■1349 श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें (श्रीहनुमानचालीसासहित) [गुजरातीमें भी]	१५
■ 101 लंकाकाण्ड	१
■ 102 उत्तरकाण्ड	१
■ 141 „ अरण्य किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड	१
■ 830 सुन्दरकाण्ड मूल ग्रन्थाकार, मोटा (रंगीन)	१२
■1583 सुन्दरकाण्ड (मूल) मोटा (आड़ी) रंगीन	६
■ 99 सुन्दरकाण्ड मूल गुटका [गुजराती भी]	३
■ 100 सुन्दरकाण्ड मूल मोटा टाइप [गुजराती ओड़िआ भी]	५
■1378 सुन्दरकाण्ड मूल मोटा टाइप (लाल रंगमें)	६
■ 858 सुन्दरकाण्ड मूल लघु आकार [गुजराती भी]	२
■1376 मानस गूढार्थ चन्द्रिका (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार म प० प्रज्ञानानन्द सरस्वती (सातों खण्ड)	७६
(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)	
■ 86 मानसपीयूष (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक टीकाकार— श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड)	१२२५
(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)	
■1291 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण कथा सुधा सागर	
■ 75/76 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक दो खण्डोंमें सेट [तेलुगु भी]	३२
■1337/1338 रामायण भाषा (मोटा टाइप) दो खण्डोंमें सेट	
■ 77 केवल भाषा	१४०
■ 583 (मूलमात्रम्)	१००
■ 78 रामायण सुन्दरकाण्ड मूलमात्रम् [तमिल भी]	१५
■1549 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड सटीक [तमिल भी]	५
■ 452/453 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट)	३

पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशि —२ रुपया-प्रत्येक १० रु० या उसके अंशके मूल्यकी पुस्तकोंपर। पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त। [पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० २५०)] ० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिंग चार्ज अतिरिक्त।

...ककी पुस्तकोंपर ५% पैकिंग हैण्डलिंग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।

डाकदरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य / डाकदर देय होगा।

नियमोंकी पुस्तिका अलग है। विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।

...ककी पुस्तकें एक साथ लेनेपर १५% छूट (▲चिह्नवाली पुस्तकोंपर ३०%) छूट देय। (पैकिंग, रेल भाड़ा

...ओंकी पुस्तकोंका मूल्य एवं कोड पृष्ठ-४९७ से ५०० पर देखें तथा अप्रैल २००६ से प्रकाशित नवीन प्रकाशनोंको

सम्पर्क करें—व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर।

कोड	मूल्य
■1002 सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क	
■ 74 अध्यात्मरामायण—सटीक [तमिल तेलुगु, कन्नड मराठी भी]	६
■ 223 मूल रामायण [गुजराती मराठी भी]	२
▲1654 लवकुश चरित्र	२
▲ 401 मानसमें नाम वन्दना	८
■ 103 मानस रहस्य	३५
■ 104 मानस शंका समाधान	११
— अन्य तुलसीकृत साहित्य —	
■ 105 विनयपत्रिका— सरल भावार्थसहित	२५
■ 106 गीतावली—	२५
■ 107 दोहावली—	१२
■ 108 कवितावली—	१२
■ 109 रामाज्ञाप्रश्न—	७
■ 110 श्रीकृष्णगीतावली—	५
■ 111 जानकीमंगल—	४
■ 112 हनुमानबाहुक—	३
■ 113 पार्वतीमंगल—	३
■ 114 वैराग्य-सन्दीपनी एवं बरवै रामायण	३
— सूर-साहित्य —	
■ 555 श्रीकृष्णमाधुरी	
■ 61 सूर विनय पत्रिका	२
■ 62 श्रीकृष्ण बाल माधुरी	२
■ 735 सूर रामचरितावली	२
■ 547 विरह पदावली	१८
■ 864 अनुराग पदावली—	१५
	२
— पुराण उपनिषद् आदि —	
■ 28 श्रीमद्भागवत सुधासागर [गुजराती भी]	१३
■1490 (विशिष्ट संस्करण) (अंग्रेजी भी)	
■ 25 श्रीशुकसुधासागर— बृहदाकार बड़े टाइपमें	१८
■1535 / 1536 श्रीमद्भागवत महापुराण— सटीक दो खण्डोंमें सेट (विशिष्ट संस्करण)	२८
■ 26 / 27 श्रीमद्भागवत महापुराण— सटीक दो खण्डोंमें सेट (गुजराती मराठी प्रथम खण्ड भी)	३ / २२
■564,565 श्रीमद्भागवत महापुराण— अंग्रेजी सेट	
■ 29 मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी)	२५
■ 124 मूल मझला	९
■1092 भागवतस्तुति संग्रह	५५
■ 571 श्रीकृष्णलीलाचिन्तन	
■ 30 श्रीप्रेम सुधासागर	
■ 31 भागवत एकादश स्कन्ध— सचित्र सजिल्द [तमिल भी]	६ / २४
■ 728 महाभारत—हिन्दी टीकासहित सजिल्द, सचित्र [छ खण्डोंमें] सेट (अलग अलग खण्ड भी उपलब्ध)	१३५
■ 38 महाभारत खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक	१८
■1589 केवल हिन्दी	१५
■ 637 जैमिनीय अश्वमेध पर्व	५
■ 39 / 511 संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा सचित्र सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) [बँगला भी]	२२
■ 44 सं० पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्द	१४
■1468 सं० शिवपुराण (विशिष्ट संस्करण)	१४
■ 789 सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी]	११

कोड	मूल्य
■1133 सं० देवीभागवत [गुजराती भी]	१३
■ 48 श्रीविष्णुपुराण—सटीक सचित्र	८
■1364 श्रीविष्णुपुराण—(केवल हिन्दी)	५५
■1183 सं० नारदपुराण	
■ 279 सं० स्कन्दपुराणाङ्क— सचित्र सजिल्द	१
■ 539 सं० मार्कण्डेयपुराण	१५
■1111 सं० ब्रह्मपुराण	५५
■1113 नरसिंहपुराणम् —सटीक	७०
■1189 सं० गरुडपुराण	६
■1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी अनुवाद)	९
■1361 सं० श्रीवराहपुराण	१२०
■ 584 सं० भविष्यपुराण	६
■1131 कूर्मपुराण—सटीक	९
■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	८
■1432 वामन पुराण—सटीक	१२
■ 557 मत्स्यमहापुराण—	७५
■ 517 गर्गसंहिता	१५
■ 47 पातञ्जलयोग प्रदीप	८
■ 135 पातञ्जलयोगदर्शन—[बँगला भी]	१० / १
■ 582 छान्दोग्योपनिषद्— सानुवाद शांकरभाष्य	७०
■ 577 बृहदारण्यकोपनिषद्—	१
■ 1421 ईशादि नौ उपनिषद् एक ही जिल्दमें	१
■ 66 ईशादि नौ उपनिषद्— अन्वय हिन्दी व्याख्या [बँगला भी]	४५
■ 67 ईशावास्योपनिषद् सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड भी]	४
■ 68 केनोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य	१
■ 578 कठोपनिषद्—	१२
■ 69 माण्डूक्योपनिषद्—	२
■ 513 मुण्डकोपनिषद्—	८
■ 70 प्रश्नोपनिषद्—	१
■ 71 तैत्तिरीयोपनिषद्—	१६
■ 72 ऐतरेयोपनिषद्—	७
■ 73 श्वेताश्वतरोपनिषद्—	२
■ 65 वेदान्त दर्शन— हिन्दी व्याख्या सहित सजिल्द	३५
■ 639 श्रीनारायणीयम्—सानुवाद [तेलुगु तमिल भी]	३५
— भक्त-चरित्र —	
■ 40 भक्त चरिताङ्क सचित्र सजिल्द	१२
■ 51 श्रीतुकाराम चरित जीवनी और उपदेश	
■ 121 एकनाथ चरित्र	३५
■ 53 भागवतरत्न प्रह्लाद	१५
■ 123 चैतन्य चरितावली सम्पूर्ण एक साथ	१५
■ 751 देवर्षि नारद	१
■ 167 भक्त भारती	१२
■ 168 भक्त नरसिंह मेहता [मराठी गुजराती भी]	
■1564 महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	१२
■ 169 भक्त बालक गोविन्द, मोहन आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड मराठी भी]	८
■ 170 भक्त नारी—मीरा शबरी आदिकी गाथा	५
■ 171 भक्त पञ्चरत्न—रघुनाथ दामोदर आदिकी (तेलुगु भी)	५
■ 172 आदर्श भक्त—शिबि रन्तिदेव आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड गुजराती भी]	८ / ८

कोड	मूल्य
■ 173 भक्त सप्तरत्न दामा रघु आदिकी भक्तगाथा [गुजराती कन्नड भी]	६
■ 174 भक्त चन्द्रिका सखू, विट्ठल आदि छ भक्तगाथा [गुजराती कन्नड तेलुगु, मराठी ओडिआ भी]	६
■ 175 भक्त कुसुम जगन्नाथ आदि छ भक्तगाथा	६
■ 176 प्रेमी भक्त बिल्वमंगल जयदेव आदि [गुजराती भी]	५
■ 177 प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय, उत्तङ्क आदि	१
■ 178 भक्त सरोज—गङ्गाधरदास श्रीधर आदि (गुजराती भी)	७
■ 179 भक्त सुमन—नामदेव राका बाँका आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	६
■ 180 भक्त सौरभ—व्यासदास प्रयागदास आदि	७
■ 181 भक्त सुधाकर—रामचन्द्र लाखा आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	८
■ 182 भक्त महिलारत्न रानी रत्नावती हरदेवी आदि [गुजराती भी]	८
■ 183 भक्त दिवाकर—सुव्रत वैश्वानर आदिकी भक्तगाथा	६
■ 184 भक्त रत्नाकर—माधवदास विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	८
■ 185 भक्तराज हनुमान् हनुमान्‌जीका जीवनचरित्र [मराठी ओडिआ तमिल तेलुगु, कन्नड गुजराती भी]	५
■ 186 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र [ओडिआ भी]	४
■ 187 प्रेमी भक्त उद्धव [तमिल तेलुगु, गुजराती ओडिआ भी]	४
■ 188 महात्मा विदुर [गुजराती तमिल ओडिआ भी]	४
■ 136 विदुरनीति	१
■ 138 भीष्मपितामह [तेलुगु भी]	९
■ 189 भक्तराज ध्रुव [तेलुगु भी]	४
परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन	
■683 तत्त्वचिन्तामणि—(सभी खण्ड एक साथ) [गुजराती भी]	८
■814 साधन कल्पतरु (१३ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)	७०
▲1597 चिन्ता शोक कैसे मिटें?	८
▲1631 भगवान् कैसे मिलें?	६
▲1653 मनुष्य जीवनका उद्देश्य	६
▲1681 भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	६
▲1666 कल्याण कैसे हो?	८
▲ 527 प्रेमयोगका तत्त्व—[अंग्रेजी भी]	१५
▲ 242 महत्त्वपूर्ण शिक्षा—[तेलुगु भी]	१५
▲ 528 ज्ञानयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी]	१
▲ 266 कर्मयोगका तत्त्व— (भाग १) (गुजराती भी)	९
▲ 267 कर्मयोगका तत्त्व—(भाग २)	९
▲ 303 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय [तमिल गुजराती भी]	८
▲ 298 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य [तमिल गुजराती मराठी भी]	९
▲ 243 परम साधन—भाग १	९
▲ 244 —भाग २	८
▲ 245 आत्मोद्धारके साधन (भाग १)	१
▲ 335 अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति— (आत्मोद्धारके साधन भाग २) [गुजराती भी]	९
▲ 579 अमूल्य समयका सदुपयोग [तेलुगु, गुजराती मराठी कन्नड ओडिआ भी]	७
▲ 246 मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग १)	९

कोड	मूल्य
▲ 247 मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग २)	९
▲ 611 इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति [गुजराती भी]	८
▲ 588 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	९
▲1296 कर्णवासका सत्संग [तमिल भी]	७
▲1015 भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता [गुजराती भी]	८
▲ 248 कल्याणप्राप्तिके उपाय (त चि म भा १) [बँगला भी]	१३
▲ 249 शीघ्र कल्याणके सोपान भाग २ खण्ड १ [गुजराती भी]	१
▲ 250 ईश्वर और संसार भाग २ (खण्ड २)	१२
▲ 519 अमूल्य शिक्षा भाग ३ (खण्ड १)	९
▲ 253 धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि— भाग ३ (खण्ड २)	९
▲ 251 अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि भाग ४ (खण्ड १)	१
▲ 252 भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा भाग ४ (खण्ड २)	१
▲ 254 व्यवहारमें परमार्थकी कला त चि भाग-५, (खण्ड १) [गुजराती भी]	१
▲ 255 श्रद्धा विश्वास और प्रेम गुजराती भाग ५ (खण्ड २) [गुजराती भी]	१
▲ 258 तत्त्वचिन्तामणि भाग ६, (खण्ड १)	९
▲ 257 परमानन्दकी खेती भाग ६ (खण्ड २)	९
▲ 260 समता अमृत और विषमता विष भाग ७ (खण्ड १)	१
▲ 259 भक्ति भक्त भगवान् भाग ७ (खण्ड २)	१
▲ 256 आत्मोद्धारके सरल उपाय	८
▲ 261 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान [मराठी कन्नड तेलुगु, तमिल गुजराती ओडिआ अंग्रेजी भी]	३
▲ 262 रामायणके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी कन्नड गुजराती ओडिआ तमिल मराठी भी]	७
▲ 263 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी कन्नड गुजराती तमिल मराठी भी]	५
▲ 264 मनुष्य जीवनकी सफलता— भाग १	९
▲ 265 मनुष्य जीवनकी सफलता— भाग २	७
▲ 268 परमशान्तिका मार्ग— भाग १ (गुजराती भी)	९
▲ 269 भाग २	९
▲ 543 परमार्थ सूत्र संग्रह [ओडिआ भी]	८
▲1530 आनन्द कैसे मिले?	६
▲ 769 साधन नवनीत [गुजराती ओडिआ कन्नड भी]	८
▲ 599 हमारा आश्चर्य	८
▲ 681 रहस्यमय प्रवचन	८
▲1021 आध्यात्मिक प्रवचन [गुजराती भी]	८
▲1324 अमृत वचन [बँगला भी]	८
▲1409 भगवत्प्रेम प्राप्तिके उपाय	८
▲1433 साधना पथ	६
▲1483 भगवत्पथ दर्शन	८
▲1493 नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें	६
▲1435 आत्मकल्याणके विविध उपाय	६
▲1529 सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो?	६
▲1561 दुःखोंका नाश कैसे हो?	८

कोड मूल्य

▲1072 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ? [गुजराती ओडिआ भी] ४
▲ 515 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन [गुजराती अंग्रेजी तमिल तेलुगु भी] १
▲ 770 अमरताकी ओर [गुजराती भी] ५
▲ 438 दुर्गतिसे बचो [गुजराती बँगला (गुरुतत्त्व सहित) मराठी भी] २
▲ 439 महापापसे बचो [बँगला तेलुगु, कन्नड गुजराती तमिल भी] २
▲ 440 सच्चा गुरु कौन? [ओडिआ भी] २
▲ 444 नित्य स्तुति और प्रार्थना [कन्नड तेलुगु भी] २
▲ 729 सार संग्रह एवं सत्सगके अमृत कण [गुजराती भी] २
▲ 445 हम ईश्वरको क्यों मानें ? [बँगला भी] २
▲ 745 भगवत्तत्त्व [गुजराती भी] २
▲ 632 सब जग ईश्वररूप है [ओडिआ गुजराती भी] ५
▲ 447 मूर्तिपूजा नाम जपकी महिमा [ओडिआ बँगला तमिल तेलुगु, मराठी गुजराती भी] २

नित्यपाठ साधन भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु

■ 592 नित्यकर्म पूजाप्रकाश [गुजराती भी] ३५
■1593 अन्त्यकर्म श्राद्धप्रकाश ७५
■1416 गरुडपुराण सारोद्धार (सानुवाद) २
■1627 रुद्राष्टाध्यायी सानुवाद १८
■1417 शिवस्तोत्ररत्नाकर २
■1623 ललितासहस्रनामस्तोत्रम् [तेलुगु भी] ६
■ 610 व्रतपरिचय २८
■1162 एकादशी व्रतका माहात्म्य— मोटा टाइप [गुजराती भी] १२
■1136 वैशाख कार्तिक माघमास माहात्म्य
■1588 माघमासका माहात्म्य २
■1367 श्रीसत्यनारायण व्रतकथा ५
■ 052 स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी] ८
■1629 सजिल्द २
■1567 दुर्गासप्तशती— मूल मोटा (बेड़िया) २८
■117 मूल मोटा टाइप [तेलुगु, कन्नड़ भी] २२
■876 मूल गुटका १५
■1346 सानुवाद मोटा टाइप ७
■118 सानुवाद [गुजराती बँगला ओड़िआ भी] २
■ 489 दुर्गासप्तशती—सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी] १८
■1281 (विशिष्ट सं०) २४
■ 866 केवल हिन्दी ३
■1161 केवल हिन्दी मोटा टाइप सजिल्द १२
■ 819 श्रीविष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य ३
■ 206 श्रीविष्णुसहस्रनाम सटीक १५
■ 226 मूल [मलयालम तेलुगु, कन्नड़ तमिल गुजराती भी] ४
■ 509 सूक्ति सुधाकर २
■ 207 रामस्तवराज—(सटीक) ४
■ 211 आदित्यहृदयस्तोत्रम्— हिन्दी अंग्रेजी अनुवादसहित [ओड़िआ भी] ३
■1594 सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह २
६

■ 224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र [तेलुगु, ओडिआ भी] ४
■ 231 रामरक्षास्तोत्रम्— [तेलुगु, ओडिआ अंग्रेजी भी] २
■ 715 महामन्त्रराजस्तोत्रम् नामावलिसहितम् ४
■1599 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1600 श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1601 श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1663 श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1664 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■1665 श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम् ५
■ 704 श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 705 श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 706 श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 707 श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 708 श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 709 श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 710 श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 711 श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 712 श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 713 श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 810 श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम् ३
■ 495 दत्तात्रेय वज्रकवच— सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी] ३
■ 229 श्रीनारायणकवच एवं अमोघ शिवकवच [ओडिआ तेलुगु भी] ३
■ 563 शिवमहिम्नस्तोत्र [तेलुगु भी] ३
■ 054 भजन संग्रह २५
■ 140 श्रीरामकृष्णलीला भजनावली १४
■ 142 चेतावनी पद संग्रह (दोनों भाग) १६
■ 144 भजनामृत ६७ भजनोंका संग्रह ७
■1355 सचित्र स्तुति संग्रह ५
■1214 मानस स्तुति संग्रह १
■1344 सचित्र आरती संग्रह १
■1591 आरती संग्रह—मोटा टाइप १
■ 153 आरती संग्रह ५
■ 807 सचित्र आरतियाँ [गुजराती भी] १
■ 208 सीतारामभजन ३
▲ 385 नारद भक्ति सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति सूत्र सानुवाद [बँगला तमिल भी] २
■ 221 हरेरामभजन—दो माला (गुटका) ३
■ 222 हरेरामभजन—१४ माला १
■ 576 विनय पत्रिकाके पैंतीस पद
■ 225 गजेन्द्रमोक्ष सानुवाद हिन्दी पद्य भाषानुवाद [तेलुगु, कन्नड़ ओड़िआ भी] २
■1505 भीष्मस्तवराज
■ 699 गङ्गालहरी ३
■ 232 श्रीरामगीता २
■ 383 भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी... ३
■1094 हनुमानचालीसा हिन्दी भावार्थसहित १५
■1181 हनुमानचालीसा मूल (रंगीन) ४
■ 227 —(पॉकेट साइज) २
[गुजराती असमिया तमिल बँगला तेलुगु, कन्नड़ ओड़िआ भी] १५
■ 695 हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती अंग्रेजी ओड़िआ भी] १
■1524 हनुमानचालीसा— विशिष्ट सं० (लघु आकार) १
■1525 हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी] १

■ 228 शिवचालीसा—(असमिया भी) २
■1185 शिवचालीसा—लघु आकार १
■ 851 दुर्गाचालीसा विन्ध्येश्वरीचालीसा २
■1033 —लघु आकार १
■ 203 अपरोक्षानुभूति ३
■ 139 नित्यकर्म प्रयोग १
■ 524 ब्रह्मचर्य और सन्ध्या गायत्री ३
■1471 सन्ध्या संध्या गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य ४
■ 210 सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधि— मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी] ३
■ 236 साधकदैनन्दिनी २
■ 614 सन्ध्या २

बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें

■ 573 बालक अङ्क—(कल्याण वर्ष २७) ११
■1316 बालपोथी (शिशु) रंगीन
■ 461 भाग १ ३
■ 212 भाग २ ३
■ 684 भाग ३ ३
■ 764 भाग ४ ३
■ 765 भाग ५ ७
■ 125 रंगीन (भाग १) ७
■ 216 बालककी दिनचर्या ४
■ 214 बालकके गुण ४
■ 217 बालकोंके सीख ४
■ 219 बालकके आचरण ३
■ 218 बाल अमृत वचन ३
■ 696 बाल प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी] ३
■ 215 आओ बच्चो तुम्हें बतायें ३
■ 213 बालकोंकी बोल चाल ३
■ 145 बालकोंकी बातें ३
■ 146 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा [ओडिआ भी] ७
■ 150 पिताकी सीख [गुजराती भी] ७
■ 396 आदर्श ऋषिमुनि ८
■ 397 आदर्श देशभक्त ५
■ 398 आदर्श सम्राट [गुजराती भी] ५
■ 402 आदर्श सुधारक ५
■ 399 आदर्श सत ५
■ 516 आदर्श चरितावली ५
■ 116 लघुसिद्धान्तकौमुदी सजिल्द २५
■ 148 वीर बालक (गुजराती भी) ६
■1437 वीर बालक (रंगीन) ७
■ 149 गुरु और माता पिताके भक्त बालक (गुजराती अंग्रेजी भी) ६
■1451 गुरु और माता पिताके भक्त बालक (रंगीन) ७
■ 152 सच्चे ईमानदार बालक ५
■1450 सच्चे ईमानदार बालक (रंगीन) ६
■ 155 दयालु और परोपकारी बालक बालिकाएँ (गुजराती अंग्रेजी भी) ५
■1449 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन) ६
■ 156 वीर बालिकाएँ (गुजराती भी) ५
■1448 वीर बालिकाएँ (रंगीन) ६
■ 727 स्वास्थ्य सम्मान और सुख ३

सर्वोपयोगी प्रकाशन

■ 698 मार्क्सवाद और रामराज्य स्वामी करपात्रीजी ७५
■1673 सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ १४
■1595 साधकमें सद्गुण २
■ 202 मनोबोध ५
■1657 भलेका फल भला ३

■ 747 सप्त महाव्रत ३
■1300 महाकुम्भ पर्व ५
■ 542 ईश्वर ३
■ 196 मननमाला
■ 57 मानसिक दक्षता २
■ 59 जीवनमें नया प्रकाश ११
■ 60 आशाकी नयी किरणें १६
■ 119 अमृतके घूँट १५
■ 132 स्वर्णपथ १४
■ 55 महकते जीवनफूल
■1381 क्या करें? क्या न करें? [गुजराती भी] १८
■1461 हम कैसे रहें ? ८
■ 64 प्रेमयोग १८
■ 774 कल्याणकारी दोहा संग्रह गीताप्रेस परिचयसहित ५
■ 387 प्रेम सत्संग सुधामाला १२
■ 668 प्रश्नोत्तरी २
■ 501 उद्धव सन्देश १३
■ 191 भगवान् कृष्ण [तमिल तेलुगु, मराठी गुजराती भी] ३५
■ 193 भगवान् राम [गुजराती भी] ५
■ 195 भगवान्पर विश्वास ५
■ 120 आनन्दमय जीवन १३
■ 130 तत्त्वविचार ९
■ 133 विवेक चूड़ामणि [तेलुगु, बँगला भी] १२
■ 862 मुझे बचाओ मेरा क्या कसूर ? १५
▲ 701 गर्भपात उचित या [ओडिआ बँगला तमिल तेलुगु, मराठी अंग्रेजी गुजराती कन्नड भी] ३
■ 131 सुखी जीवन १
■ 122 एक लोटा पानी १२
■ 888 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला भी] १२
■1217 भवनभास्कर १
■ 134 सती द्रौपदी ९
■1624 पौराणिक कथाएँ १
■1669 पौराणिक कहानियाँ १
■ 137 उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल कन्नड गुजराती बँगला भी] ८
■ 159 आदर्श उपकार—(पढ़ो समझो और करो) १
■ 160 कलेजेके अक्षर १
■ 161 हृदयकी आदर्श विशालता १
■ 162 उपकारका बदला १
■ 163 आदर्श मानव हृदय १
■ 164 भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा १
■ 165 मानवताका पुजारी १
■ 166 परोपकार और सच्चाईका फल १
■ 510 असीम नीचता और असीम साधुता १
■ 157 सती सुकला ४
■ 147 चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल गुजराती मराठी भी] ५
■ 129 एक महात्माका प्रसाद [गुजराती भी] १८
■ 827 तेईस चुनचुनी कहानियाँ १
■ 151 सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला १
■1363 शरणागति रहस्य २

चित्रकथा

■1114 श्रीकृष्णलीला (राजस्थानी शैली १८वीं शताब्दी) १०
■1647 देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ १
■1646 महाभारतके प्रमुख पात्र १५
■ 190 बाल चित्रमय श्रीकृष्णलीला १२
■ 868 भगवान् सूर्य (प्रभाकर) १५

कोड	मूल्य
■1156 एकादश रुद्र (शिव)	५
■1032 बालचित्र रामायण पुस्तकाकार	४
■869 कन्हैया [बँगला तमिल गुजराती ओड़िआ तेलुगु भी]	१
■870 गोपाल [बँगला, तेलुगु, तमिल भी]	१०
■871 मोहन [बँगला तेलुगु, तमिल गुजराती ओड़िआ अंग्रेजी भी]	१०
■872 श्रीकृष्ण [बँगला तमिल, तेलुगु भी]	१
■1018 नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी]	१
■1016 रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी]	१५
■1116 राजा राम [तेलुगु भी]	१५
■1017 श्रीराम	१५
■1394 भगवान् श्रीराम (पुस्तकाकार)	१
■1418 श्रीकृष्णलीला दर्शन	१
■1278 दशमहाविद्या [बँगला भी]	१
■829 अष्टविनायक [ओड़िआ मराठी गुजराती भी]	१

कोड	मूल्य
■1343 हर हर महादेव	१५
■204 ॐ नमः शिवाय [बंगला ओड़िआ कन्नड भी]	१५
■787 जय हनुमान [तेलुगु, ओड़िआ भी]	१५
■779 दशावतार [बँगला भी]	१०
■1215 प्रमुख देवता	१
■1216 प्रमुख देवियाँ	१
■1442 प्रमुख ऋषि मुनि	१५
■1443 रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी]	१५
■1488 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी]	१५
■1537 श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ	१५
■1538 महाभारतकी प्रमुख कथाएँ	१५
■1420 पौराणिक देवियाँ	१०
■205 नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती असमिया कन्नड अंग्रेजी ओड़िआ, बँगला भी]	१

कोड	मूल्य
■1307 नवदुर्गा—पॉकेट साइज	४
■537 बाल चित्रमय बुद्धलीला	
■194 बाल चित्रमय चैतन्यलीला [ओड़िआ बँगला भी]	७
■693 श्रीकृष्णरेखा चित्रावली	
■656 गीता माहात्म्यकी कहानियाँ [तमिल तेलुगु भी]	८
■651 गोसेवाके चमत्कार [तमिल भी]	१

— रंगीन चित्र-प्रकाशन —

कोड	मूल्य
▲237 जय श्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५
▲546 जय श्रीकृष्ण—भगवान् कृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५
▲1582 चित्र भगवान् श्रीकृष्ण	८
▲1001 जगज्जननी श्रीराधा	८
▲1020 श्रीराधा कृष्ण—युगल छवि	८
▲491 हनुमान्‌जी—(भक्तराज हनुमान्)	८

कोड	मूल्य
▲492 भगवान् विष्णु	८
▲1568 भगवान् श्रीराम बालरूपमें	८
▲560 लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप)	८
▲1674 (प्लास्टिक कोटेड)	१५
▲1351 सुमधुर गोपाल	८
▲548 मुरलीमनोहर—(भगवान् मुरलीमनोहर)	८
▲776 सीताराम—युगल छवि	८
▲782 श्रीरामदरबारकी झाँकी	८
▲1290 नटराज शिव	८
▲630 सर्वदेवमयी गौ	८
▲531 श्रीबाँकेबिहारी	८
▲812 नवदुर्गा (माँ दुर्गाके नौ स्वरूपोंका चित्रण)	८
▲437 कल्याण चित्रावली—I	८
▲1320 कल्याण चित्रावली—II	८

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

कोड	मूल्य
■1184 श्रीकृष्णाङ्क	१०
■749 ईश्वराङ्क	९०
■635 शिवाङ्क	१००
■41 शक्ति अङ्क	१२०
■616 योगाङ्क	९
■627 संत अङ्क	१२५
■604 साधनाङ्क	१२
■1104 भागवताङ्क	
■1002 सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क	
■44 संक्षिप्त पद्मपुराण	१४
■539 संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	५५
■1111 संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	७०
■43 नारी अङ्क	१
■659 उपनिषद् अङ्क	११
■518 हिन्दू संस्कृति अङ्क	
■279 सं० स्कन्दपुराणाङ्क	१५

कोड	मूल्य
■40 भक्त चरिताङ्क	१२
■573 बालक अङ्क	११
■1183 सं० नारदपुराण	१
■667 संतवाणी अङ्क	११०
■587 सत्कथा अङ्क	१००
■636 तीर्थाङ्क	१०
■1133 सं० देवीभागवत मोटा टाइप	१३
■574 संक्षिप्त योगवासिष्ठ	९०
■789 सं० शिवपुराण (बड़ा टाइप)	११
■631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२
■1135 भगवन्नाम महिमा और प्रार्थना-अङ्क	९
■572 परलोक पुनर्जन्माङ्क	१
■517 गर्ग संहिता	८
■1113 नरसिंहपुराणम् सानुवाद	६०
■1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी अनुवाद)	१२

कोड	मूल्य
■1432 वामनपुराण	७५
■557 मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	१५
■657 श्रीगणेश अङ्क	७५
■42 हनुमान अङ्क	७५
■1361 सं० श्रीवाराहपुराण	६
■791 सूर्याङ्क	६०
■584 सं० भविष्यपुराण	९०
■586 शिवोपासनाङ्क	
■628 रामभक्ति अङ्क	
■653 गोसेवा अङ्क	७५
■1131 कूर्मपुराण	८
■448 भगवल्लीला अङ्क	६५
■1044 वेद कथाङ्क	८
■1189 सं० गरुडपुराण	९०
■1379 नीतिसार अङ्क (मासिक अङ्कोंके साथ)	१२
■1472 नीतिसार अङ्क	८

कोड	मूल्य
■1467 भगवत्प्रेम-अङ्क-सजि० (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१
■1542 भगवत्प्रेम अङ्क अजिल्द (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	८
■1548 व्रतपर्वोत्सव अङ्क सजिल्द	१००
■1610 देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क	८०
■1592 आरोग्य अङ्क (परिवर्धित सं०)	१२
■1667 संस्कार अङ्क	८५
■2100 कल्याण मासिक अङ्क (रियायती ग्राहकोंके)	४

Annual Issues of Kalyan Kalpataru

Code	Price
■1395 Woman No	40
■1396 Rāma No	40
■1397 Manusmrti No	40
■1398 Hindu Samskrti No	40
■602 Divine Love Number	60
■602A Humanity Number	60

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

संस्कृत

कोड	मूल्य
▲679 गीतामाधुर्य	६

बँगला

कोड	मूल्य
■1577 श्रीमद्भागवत पुराण सटीक भाग I	१२५
■1603 ईशादि नौ उपनिषद्	८
■954 श्रीरामचरितमानस ग्रन्थाकार	१३
■1574 संक्षिप्त महाभारत भाग I	१२
■1660 भाग II	१२
■763 गीता साधक संजीवनी—परिशिष्टसहित	११
■1118 गीता तत्त्व विवेचनी	७०
■556 गीता दर्पण—	४
■1489 गीता दैनन्दिनी (२० ७)	७५
■013 गीता पदच्छेद—	२५
■1444 गीता ताबीजी—सजिल्द	४
■1455 गीता लघु आकार	२
■1322 दुर्गासप्तशती—सटीक	१८
■1604 पातञ्जलयोगदर्शन	११
■1460 विवेक चूडामणि	१
■1075 ॐ नमः शिवाय (चित्रकथा)	१५
■1043 नवदुर्गा ( )	१

कोड	मूल्य
■1439 दश महाविद्या (चित्रकथा)	१
■1292 दशावतार ( )	१
■1096 कन्हैया ( )	१
■1097 गोपाल ( )	१
■1098 मोहन ( )	१
■1123 श्रीकृष्ण ( )	१
■1495 बालचित्रमय चैतन्यलीला	७
■1393 गीता भाषा टीका (पॉकेट साइज) सजि	१
■1454 स्तोत्ररत्नावली	१८
■1653 श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम	१
■496 गीता भाषा टीका (पॉकेट साइज)	६
▲1581 गीतार सारात्सार	६
■1496 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ	१
▲275 कल्याण प्राप्तिके उपाय	१३
▲1305 प्रश्नोत्तर मणिमाला	८
▲395 गीतामाधुर्य	५
▲1102 अमृत बिन्दु	६
■1356 सुन्दरकाण्ड—सटीक	५
▲816 कल्याणकारी प्रवचन	४
▲276 परमार्थ पत्रावली (भाग १)	५
▲1306 कर्तव्य साधनासे भगवत्प्राप्ति	४
▲1119 ईश्वर और धर्म क्यों?	९

कोड	मूल्य
▲1456 भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय	८
▲1580 अध्यात्मसाधनाय कर्महीनताय	६
▲1452 आदर्श कहानियाँ	६
▲1453 प्रेरक कहानियाँ	५
■1513 मूल्यवान् कहानियाँ	८
▲1469 सब साधनोंका सार	४
▲1478 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१
▲1359 जिन खोजा तिन पाइयाँ	५
▲1115 तत्त्वज्ञान कैसे हो?	५
▲1303 साधकोंके प्रति	४
▲1358 कर्म रहस्य	४
▲1122 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	३
▲625 देशकी वर्तमान दशा....	३
▲428 गृहस्थमें कैसे रहें?	४
▲933 सहज साधना	३
▲1368 साधना	३
▲1415 अमृतवाणी	७
▲312 आदर्श नारी सुशीला	३
▲1541 साधनके दो प्रधान सूत्र	४
▲955 तात्त्विक प्रवचन	४
■1103 मूल रामायण एवं रामरक्षास्तोत्र	३
■1652 नवग्रह (चित्रकथा)	१
▲449 दुर्गतिसे बचो सच्चा गुरु कौन?	३

कोड	मूल्य
▲956 साधन और साध्य	३
▲1579 साधनार मनोभूमि	६
▲330 नारद एवं शाण्डिल्य भक्ति सूत्र	२
▲762 गर्भपात उचित या अनुचित—	३
▲848 आनन्दकी लहरें	२
■626 हनुमानचालीसा	२
▲1319 कल्याणके तीन सुगम मार्ग	२
▲1651 हे महाजीवन! हे महामरण!	२
▲1293 शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता	२
▲450 हम ईश्वरको क्यों मानें?	२
▲849 मातृशक्तिका घोर अपमान	१
▲451 महापापसे बचो	२
▲469 मूर्तिपूजा	१
▲296 सत्सङ्गकी सार बातें	१
▲443 संतानका कर्तव्य	१
▲1140 भगवान्‌के दर्शन प्रत्यक्ष.....	२

मराठी

कोड	मूल्य
■1314 श्रीरामचरितमानस सटीक मोटा टाईप	१३
■1508 अध्यात्मरामायण	७०
■784 ज्ञानेश्वरी गूढार्थ दीपिका	१३०

कोड	मूल्य
■853 एकनाथी भागवत—मूल	१०
■1678 श्रीमद्भागवतमहापुराण (खण्ड १)	१२
■ 7 गीता साधक संजीवनी टीका	१०
■1304 गीता तत्त्व विवेचनी	७
■1474 श्री सकल संतवाणी (भाग १)	६०
■1475 (भाग २)	६५
■1071 श्रीनामदेवाची गाथा	६
■859 ज्ञानेश्वरी—मूल मझला	४
■ 15 गीता माहात्म्यसहित	३५
■504 गीता दर्पण	३५
■748 ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका	२
■ 14 गीता पदच्छेद	३
■1388 गीता श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप)	१०
■1257 गीता श्लोकार्थसहित	७
■1168 भक्त नरसिंह मेहता	१०
▲429 गृहस्थमें कैसे रहें ?	८
▲1387 प्रेममें विलक्षण एकता	८
■857 अष्टविनायक (चित्रकथा)	१
▲391 गीतामाधुर्य	७
▲1099 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲1335 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1155 उद्धार कैसे हो ?	४
▲1074 आध्यात्मिक पत्रावली	६
▲1275 नवधा भक्ति	५
▲1386 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲1340 अमृत बिन्दु	६
▲1382 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
▲1210 जित देखूँ तित तू	७
▲1330 मेरा अनुभव	८
■1277 भक्त बालक	५
■ 073 भक्त चन्द्रिका	५
■1383 भक्तराज हनुमान्	५
▲886 साधकोंके प्रति	५
▲885 तात्त्विक प्रवचन	४
■1607 रुक्मिणी स्वयंवर	१२
■1640 सार्थ मनाचे श्लोक	४
■1333 भगवान् श्रीकृष्ण	५
■1332 दत्तात्रेय वज्रकवच	३
■1670 मन रामायण पॉकेट साइज	३
■16 9 मनाचे श्लोक पॉकेट साइज	३
■1680 सार्थ श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष	२
■835 हरिपाठ	३
■1169 चोखी कहानियाँ	४
▲1385 नल दमयन्ती	३
▲1384 सती सावित्री-कथा	२
▲880 साधन और साध्य	४
▲1006 वासुदेव सर्वम्	४
▲1276 आदर्श नारी सुशीला	३
▲1334 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३
▲899 देशकी वर्तमान दशा	३
▲1 9 कल्याणके तीन सुगम मार्ग और सत्यकी शरणसे मुक्ति	४
▲14 8 आवश्यक शिक्षा	४
▲1341 सहज साधना	४
▲802 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 82 मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲883 मूर्तिपूजा	२
▲884 सन्तानका कर्तव्य	२
▲1279 सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1613 भगवान्के स्वभावका रहस्य	९
▲1642 प्रेमदर्शन	९
▲1641 साधनकी आवश्यकता	८
▲401 नाम जपकी महिमा	२

कोड	मूल्य
▲900 दुर्गतिसे बचो	२
▲1171 गीता पढ़नेके लाभ	२
▲902 आहार शुद्धि	
▲1170 हमारा कर्तव्य	२
▲881 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	६
▲898 भगवन्नाम	४
▲1578 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१२
गुजराती	
■1533 श्रीरामचरितमानस—बड़ी सटीक (वि सं)	१९०
■799 ग्रन्थाकार	१३
■1430 मूल मोटा	६०
■1552 भागवत सटीक (खण्ड १)	११०
■1553 भागवत सटीक (खण्ड २)	१२०
■1603 श्रीमद्भागवत सुधासागर	१८०
■ 326 सं० देवीभागवत	१३
■1286 संक्षिप्त शिवपुराण	११
■1650 तत्त्वचिन्तामणि ग्रन्थाकार	७५
■1630 साधन सुधा सिन्धु	९
■467 गीता साधक संजीवनी	१
■1313 गीता-तत्त्व विवेचनी	७०
■785 श्रीरामचरितमानस—मझला सटीक	६०
■468 गीता दर्पण	३५
■878 श्रीरामचरितमानस—मूल मझला	४
■879 —मूल गुटका	२५
■1637 सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप	१५
■1365 नित्यकर्म पूजाप्रकाश	३५
■1620 क्या करें ? क्या न करें ?	१८
■1565 गीता मोटे अक्षरवाली सजिल्द	२२
■1668 एकादशीव्रतका माहात्म्य	१२
■ 12 गीता पदच्छेद	२५
■1315 गीता—सटीक मोटा टाइप	१५
■1366 दुर्गासप्तशती—सटीक	१८
■1634 सजिल्द	२४
■1227 सचित्र आरतियाँ	१
■936 गीता छोटी—सटीक	७
■1034 गीता छोटी—सजिल्द	१
■1636 श्रीमद्भगवद्गीता—मूल मोटा टाइप	७
■1225 मोहन—(चित्रकथा)	१०
■1224 कन्हैया—( )	१०
■1228 नवदुर्गा—( )	१
■1656 गीता ताबीजी मूल सजिल्द	४
■948 सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५
■1085 भगवान् राम —	५
■950 सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका	३
■1199 सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार	२
■1226 अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१
■613 भक्त नरसिंह मेहता	१२
▲1518 भगवान्के स्वभावका रहस्य	
▲1496 मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये	१
▲1164 शीघ्र कल्याणके सोपान	१
▲1145 अद्भुत विश्वास और प्रेम	१
▲1144 व्यवहारमें परमार्थकी कला	८
▲1062 नारीशिक्षा	८
▲1129 अनन्यभावसे भगवत्प्राप्ति	८
■14 3 गीतोंकी माला	१
■1425 वीर बालिकाएँ	५
■1423 गुरु माता पिताके भक्त बालक	६
■1422 वीर बालक	६

कोड	मूल्य
■1424 दयालु और परोपकारी बालक बालिकाएँ	५
■1258 आदर्श सम्राट्	५
▲1128 दाम्पत्य जीवनका आदर्श	७
▲1061 साधन नवनीत	९
▲1520 कर्मयोगका तत्त्व भाग १	९
▲1264 मेरा अनुभव	८
▲1046 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा	७
■1143 भक्त सुमन	७
■1142 भक्त सरोज	७
▲1211 जीवनका कर्तव्य	८
▲404 कल्याणकारी प्रवचन	७
▲877 अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति	७
▲818 उपदेशप्रद कहानियाँ	८
▲1265 आध्यात्मिक प्रवचन	७
▲1516 परमशान्तिका मार्ग (भाग १)	८
▲1504 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१
■1212 एक महात्माका प्रसाद	२०
▲1539 सत्संगकी मार्मिक बातें	७
▲1655 प्रश्नोत्तर मणिमाला	८
▲15 3 भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	८
▲1325 सब जग ईश्वररूप है	५
▲1052 इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	६
■934 उपयोगी कहानियाँ	७
■1076 आदर्श भक्त	६
■1084 भक्त महिलारत्न	६
■875 भक्त सुधाकर	६
▲1067 दिव्य सुखकी सरिता	६
▲933 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	८
▲1290 जित देखूँ तित तू	७
▲943 गृहस्थमें कैसे रहें ?	६
▲1260 तत्त्वज्ञान कैसे हो ?	६
▲1263 साधन और साध्य	५
▲1294 भगवान् और उनकी भक्ति	५
▲932 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲392 गीतामाधुर्य	७
■1082 भक्त सप्तरत्न	५
■1087 प्रेमी भक्त	५
▲1077 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५
▲940 अमृत बिन्दु	६
▲931 उद्धार कैसे हो ?	५
▲894 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲413 तात्त्विक प्रवचन	५
■892 भक्त चन्द्रिका	४
■895 भगवान् श्रीकृष्ण	५
▲1126 साधन पथ	४
▲946 सत्संगका प्रसाद	४
▲942 जीवनका सत्य	५
▲1145 अमरताकी ओर	४
▲1066 भगवान्से अपनापन	४
■806 रामभक्त हनुमान्	५
▲1096 कल्याणकारी प्रवचन (भाग २)	५
▲1287 सत्यकी खोज	५
▲10 8 एकै साधे सब सधै	४
■1399 चोखी कहानियाँ	५
▲889 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1141 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	४
▲939 मातृशक्तिका घोर अपमान	३
■890 प्रेमी भक्त उद्धव	३
▲1 47 आदर्श नारी सुशीला	४
▲ 59 नल दमयन्ती	४
▲1045 नारीशिक्षा	४

कोड	मूल्य
▲1063 सत्संगकी विलक्षणता	३
▲1064 जीवनोपयोगी कल्याण मार्ग	४
▲1165 सहज साधना	४
▲1151 सत्संगमुक्ताहार	४
■1401 बालप्रश्नोत्तरी	३
■935 संक्षिप्त रामायण	२
▲893 सती सावित्री	२
▲941 देशकी वर्तमान दशा	२
▲1177 आवश्यक शिक्षा	३
▲804 गर्भपात उचित या अनुचित	२
▲1049 आनन्दकी लहरें	२
■947 महात्मा विदुर	३
■937 विष्णुसहस्रनाम	२
▲1058 मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण	२
▲1050 सच्चा सुख	२
▲1060 त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ	२
■828 हनुमानचालीसा	२
▲844 सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1055 हमारा कर्तव्य एवं व्यापार सुधारकी आवश्यकता	१५
▲1048 संत महिमा	२
▲1310 धर्मके नामपर पाप	२
▲1179 दुर्गतिसे बचो	१५
▲1178 सार संग्रह सत्संगके अमृत कण	२
▲1152 मुक्तिमें सबका अधिकार	१५
▲1207 मूर्तिपूजा नामजपकी महिमा	१५
▲1167 भगवतत्त्व	१५०
▲1206 धर्म क्या है ? भगवान् क्या है ?	२
▲1500 सन्ध्या गायत्रीका महत्त्व	२
▲1051 भगवान्की दया	१५०
■1198 हनुमानचालीसा—लघु आकार	१
■1648 —गुजराती रोमन	१
■1649 हनुमानचालीसा अति लघु आकार	१
■1229 पदामृत	
▲1054 प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति	१५०
▲938 सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन	१
▲1056 चेतावनी एवं सामयिक...	१
▲1053 अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी	१५
▲1127 ध्यान और मानसिक पूजा	१५
▲1148 महापापसे बचो	२
▲1153 अलौकिक प्रेम	१५
तमिल	
■1426 साधक संजीवनी (भाग १)	७५
■1427 साधक संजीवनी (भाग २)	७५
■800 गीता तत्त्व विवेचनी	८
■1534 वा० रा० सुन्दरकाण्ड	७०
■1256 अध्यात्मरामायण	६
■823 गीता पदच्छेद	४
■743 गीता मूलम्	१५
■795 गीता भाषा	६
■1606 श्रीमन्नारायणीयम् सटीक	६
■1605 भागवत एकादश स्कन्ध सटीक	५५
■16 8 वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड वचनम्	२
■1619 वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड मूलम्	२

कोड	मूल्य
■ 929 महाभक्तकुल	७
■ 919 रुचि कथन (उपयोगी कहानियाँ)	७
■ 1502 श्रीनामरामायणम् एवं हनुमान चालीसा (लघु आकार)	१
▲ 766 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	६
▲ 768 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	८
▲ 733 गृहस्थमें कैसे रहें ?	६
■ 908 नारायणीयम्—मूलम्	१५
■ 682 भक्त पञ्चरत्न	६
■ 687 आदर्श भक्त	६
■ 767 भक्तराज हनुमान्	६
■ 917 भक्त चन्द्रिका	७
■ 918 भक्त सप्तरत्न	८
■ 641 भगवान् श्रीकृष्ण	६
■ 663 गीता भाषा	६
■ 662 गीता मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	४
■ 753 सुन्दरकाण्ड—सटीक	५
■ 685 भक्त बालक	५
■ 692 चोखी कहानियाँ	५
▲ 920 परमार्थ पत्रावली	५

कोड	मूल्य
■ 930 दत्तात्रेयवज्रकवच	३
■ 846 ईशावास्योपनिषद्	३
■ 686 प्रेमी भक्त उद्धव	४
■ 1023 श्रीशिवमहिम्न स्तोत्रम् सटीक	३
■ 973 शिवस्तोत्रावली	३
■ 972 शतकत्रयम्	५
■ 1025 स्तोत्रकदम्बम्	३
■ 674 गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■ 675 सं रामायण, रामरक्षास्तोत्रम्	३
▲ 906 भगवान्के आत्मेयुण	३
■ 801 ललितासहस्रनाम	४
■ 974 (लघु आकार)	३
■ 1024 श्रीनारायणकवचम् तत्त्वार्थसहितम्	३
■ 1030 सन्ध्योपासनविधि	१२
■ 688 भक्तराज ध्रुव	३
■ 670 विष्णुसहस्रनाम मूल	२
■ 911 मूल (लघु आकार)	१
■ 1527 विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलीसहित	४
■ 1531 गीता विष्णुसहस्रनाम मोटा टाइप	८
■ 732 नित्यस्तुति आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२

कोड	मूल्य
■ 912 रामरक्षास्तोत्र सटीक	२
■ 677 गजेन्द्रमोक्षम्	२
▲ 913 भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनम् नाम स्मरणमें	१५
▲ 923 भगवान् दयालु न्यायमूर्ति	२
▲ 760 महत्त्वपूर्ण शिक्षा	५
▲ 761 एकै साधे सब सधै	५
▲ 922 सर्वोत्तम साधन	५
▲ 759 शरणागति एवं मुकुन्दमाला	४
▲ 752 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 734 आहारशुद्धि मूर्तिपूजा	२
▲ 664 सावित्री सत्यवान्	३
▲ 665 आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 921 नवधा भक्ति	४
▲ 666 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲ 672 सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 671 नामजपकी महिमा	१
▲ 678 सत्सगकी कुछ सार बातें	१
▲ 731 महापापसे बचो	२
▲ 925 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	१५

कोड	मूल्य
▲ 1547 किसान और गाय	२
▲ 758 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲ 916 नल दमयन्ती	५
▲ 689 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	४
▲ 690 बालशिक्षा	४
▲ 907 प्रेमभक्ति प्रकाशिका	१५
▲ 673 भगवान्का हेतुरहित सौहार्द	१५
▲ 926 सन्तानका कर्तव्य	२
मलयालम	
■ 739 गीता विष्णुसहस्रनाम मूल	४
■ 740 विष्णुसहस्रनाम—मूल	१५
पंजाबी	
▲ 1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?	७
नेपाली	
■ 1609 श्रीरामचरितमानस—सटीक मोटा टाइप	१४
▲ 1621 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१२

Our English Publications

■ 1318 Śrī Rāmacaritamanasa (With Hindi Text Transliteration & English Translation) 400
■ 1617 Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation 80
■ 456 Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation) 120
■ 786 „ Medium 70
■ 452/453 Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes 300
■ 564/565 Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set 250
■ 1159/1160 Śrīmad Bhāgavata Mahapurana only English Translation set of 2 volumes 150
■ 1080/1081 Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes 100
■ 457 Śrīmad Bhagavadgītā Tattva Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary 70
■ 455 Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size 5

■ 534 Bhagavadgita (Bound) 10
■ 1223 Bhagavadgītā (Roman Gītā) (With Sanskrit Text, Transliteration and English Translation) 10
■ 1658 Śrīmad Bhagavadgītā (Sanskrit text with Hindi and English Translation) 12
▲ 783 Abortion Right or Wrong You Decide 2
■ 824 Songs from Bhartṛhari 2
■ 1643 Ramaraksastotram (With Sanskrit Text, English Translation) 2
■ 494 The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya) 2
■ 1528 Hanumana Cālīsā (Roman) (Pocket Size) 3
■ 1638 Small size 2
■ 1491 Mohana (Picture Story) 10
■ 1492 Rāma Lalā (Picture Story) 15
■ 1445 Virtuous Children 13
■ 1545 Brave and Honest Children 13

By Jayadayal Goyandka

▲ 477 Gems of Truth [Vol I] 8
▲ 478 „ [Vol II] 6
▲ 479 Sure Steps to God Realization 12
▲ 481 Way to Divine Bliss 5
▲ 1185 Moral Stories 10

▲ 482 What is Dharma? What is God 1
▲ 480 Instructive Eleven Stories 4
▲ 1284 Some Ideal Characters of Rāmāyaṇa 8
▲ 1245 Some Exemplary Characters of the Mahābhārata 7
▲ 694 Dialogue with the Lord During Meditation 2
▲ 1125 Five Divine Abodes 3
▲ 520 Secret of Jñānayoga 12
▲ 521 „ „ Premayoga 9
▲ 522 „ Karmayoga 12
▲ 523 „ „ Bhaktiyoga 13
▲ 658 „ „ Gītā 6
▲ 1013 Gems of Satsaṅga 2
▲ 1501 Real Love 4

By Hanuman Prasad Poddar

▲ 484 Look Beyond the Veil 8
▲ 622 How to Attain Eternal Happiness? 8
▲ 483 Turn to God 8
▲ 485 Path to Divinity 7
▲ 847 Gopis Love for Śrī Kṛṣṇa 4
▲ 620 The Divine Name and Its Practice 3
▲ 486 Wavelets of Bliss & the Divine Message

By Swami Ramsukhdas

▲ 1470 For Salvation of Mankind 12
▲ 619 Ease in God Realization 4

▲ 471 Benedictory Discourses 6
▲ 473 Art of Living 4
▲ 487 Gītā Mādhurya 7
▲ 1101 The Drops of Nectar (Amṛta Bindu) 5
▲ 472 How to Lead A Household Life 5
▲ 570 Let Us Know the Truth 4
▲ 638 Sahaja Sādhanā 5
▲ 634 God is Everything 4
▲ 621 Invaluable Advice 3
▲ 474 Be Good 3
▲ 497 Truthfulness of Life 2
▲ 669 The Divine Name 2
▲ 476 How to be Self Reliant
▲ 552 Way to Attain the Supreme Bliss 1
▲ 562 Ancient Idealism for Modernday Living 1

Special Editions

■ 1411 Gītā Roman (Sanskrit text, Transliteration & English Translation) Book Size 20
■ 1584 (Pocket Size) 10
■ 1407 The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas) 10
■ 1406 Gītā Mādhurya ( ) 15
■ 1438 Discovery of Truth and Immortality (By Swami Ramsukhdas) 15
■ 1413 All is God ( ) 10
■ 1414 The Story of Mīrā Bāī (Bankey Behari) 15

अप्रैल २००६ से प्रकाशित नवीन प्रकाशन

कोड	मूल्य
▲ 1675 सागरके मोती	१
■ 1688 तीस रोचक कथाएँ	१
▲ 1695 चित्र—शिक्षाकी अधिष्ठात्री भगवती सरस्वती	८
■ 1692 बालककी दिनचर्या रंगीन ग्रन्थाकार	९
■ 1701 विनय पत्रिका सजिल्द	३५
■ 1706 विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (जन्मदिनपर्वहन्त)	५

कोड	मूल्य
■ 1710 श्रीरामचरितमानस चतुर्थ सोपान किष्किन्धाकाण्ड	२
English	
▲ 1523 Is Salvation Not Possible without a Guru	5
■ 1550 Sunder Kand (Roman)	12
मराठी	
■ 1671 महाराष्ट्रातील नियडक संतांची चरित्रे	८

कोड	मूल्य
■ 1682 सार्थ सं० देवीपाठ	५
■ 1683 सार्थ ज्ञानदेवी गीता	१
■ 1645 हरिपाठ (सार्थ सविवरण)	८
■ 1687 सुन्दरकाण्ड सटीक	५
ओड़िआ	
■ 1672 गीता प्रबोधनी	३
■ 1702 गीता ताबीजी	४
तेलुगु	
■ 1684 श्रीगणेशस्तोत्रावली	३

कोड	मूल्य
■ 1685 श्रीदेवीस्तोत्रावली	१
■ 966 भगवान् सूर्य	१५
■ 965 दशावतार पत्रिका	१०
■ 1698 श्रीमन्नारायणीयम् श्लोकार्थसहितम्	३५
■ 1699 श्रीमद्भागवतंपकल्पतरु	१५
■ 1686 अष्टविनायक पत्रिका	१
■ 1714 गीता दैनन्दिनी बड़ी विशिष्ट संस्करण	३५

॥ श्रीहरि ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखाद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग)-पर अग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एव कल्याण-मार्गमे सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखाके अतिरिक्त अन्य विपयोके लेख 'कल्याण' मे प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखाको घटाने-बढाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोमे प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

१-'कल्याण' का वर्तमान वार्षिक सदस्यता-शुल्क डाक-व्ययसहित नेपाल-भूटान तथा भारतवर्षम रु० १३० (सजिल्द विशेषाङ्कका रु० १५०) है। विदेशके लिये सजिल्द विशेषाङ्कका हवाई डाक (Air mail) से US$25 (रु० ११५०) तथा समुद्री डाक (Sea mail) से US$13 (रु० ६००) है। समुद्री डाकसे पहुँचनेमे बहुत समय लग सकता है, अत हवाई डाकसे ही अङ्क मँगवाना चाहिये। सदस्यता-शुल्कके साथ बैंक कलेक्शन चार्ज US$6 अतिरिक्त भेजना चाहिये।

२-'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अत ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते है। वर्षके मध्यमे बननेवाले ग्राहकोको जनवरीसे ही अङ्क दिये जाते हैं। एक वर्षसे कमके लिये ग्राहक नहीं बनाय जाते हैं।

३-ग्राहकोको वार्षिक शुल्क १५ दिसम्बरतक 'कल्याण'-कार्यालय, गोरखपुर अथवा गीताप्रेसकी पुस्तक-दूकानोपर अवश्य भेज देना चाहिये, जिससे उन्हे विशेषाङ्क रजिस्ट्रीसे भेजा जा सके। जिन ग्राहक-सज्जनोसे शुल्क-राशि अग्रिम प्राप्त नहीं होती उन्हे विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा भेजनेका नियम है। वी०पी०पी० द्वारा 'कल्याण'-विशेषाङ्क भेजनेमे यद्यपि वी०पी०पी० डाक-शुल्कके रूपमे रु० १० ग्राहकको अधिक दना पडता है, परतु अङ्क सुविधापूर्वक सुरक्षित मिल जाता है। **अत सभी ग्राहकोको वी०पी०पी० ठीक समयसे छुडा लेनी चाहिये।** पाँच वर्षके लिये भी ग्राहक बनाये जाते हैं, इससे आप प्रतिवर्ष शुल्क भेजने/ वी०पी० पी० छुडानेके अतिरिक्त खर्चसे बच सकते हैं।

४-जनवरीका विशेषाङ्क रजिस्ट्री / वी०पी०पी०से प्रेपित किया जाता है। फरवरीसे दिसम्बरतकके अङ्क प्रतिमास भली प्रकार जाँच करके मासके प्रथम सप्ताहतक साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। यदि किसी मासका अङ्क माहके अन्तिम तारीखतक न मिले तो डाक-विभागसे जाँच करनेके उपरान्त हमे सूचित करना चाहिये। खोये हुए मासिक अङ्कोके उपलब्ध होनेकी स्थितिमे पुन भेजनेका प्रयास किया जाता है।

५-पता बदलनेकी सूचना समयसे भेज देनी चाहिये, जिससे अङ्क-प्राप्तिमे असुविधा एव विलम्ब न हो। पत्रोमे **ग्राहक-सख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया—पूरा पता पढनेयोग्य सुस्पष्ट तथा सुन्दर अक्षरोम लिखना चाहिये।**

६-पत्र-व्यवहारम 'ग्राहक-सख्या' न लिखे जानेपर कार्यवाही होना कठिन है। अत 'ग्राहक-सख्या' प्रत्येक पत्रमे अवश्य लिखी जानी चाहिये।

७-जनवरीका विशेषाङ्क *ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। वर्षपर्यन्त मासिक अङ्क ग्राहकोको उसी शुल्क-राशिमे* भेजे जात हैं।

८-'कल्याण' मे व्यवसायियाके विज्ञापन किसी भी स्थितिमे प्रकाशित नहीं किये जाते।

'कल्याण' के पञ्चवर्षीय ग्राहक

पाँच वर्षके लिये सदस्यता-शुल्क (भारतमे) अजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ६५०, सजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ७५० है। फर्म, प्रतिष्ठान आदि भी ग्राहक बन सकते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण' का प्रकाशन बद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हो उतनेमे ही सतोप करना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

रजि० समाचारपत्र-रजि०नं० २३०८/५७
प्र० ति० १-१-२००७
पजीकृत-सख्या—NP/GR—13/07
LICENCE NO WPP/GR-03/2007 | LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

भगवदवतारोंसे रक्षाकी प्रार्थना

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षा न्यस्ताङ्घ्रिपद्म पतगेन्द्रपृष्ठे।
दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहु ॥
जलेषु मा रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात्।
स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात् त्रिविक्रम खेऽवतु विश्वरूप ॥
दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभु पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारि ।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहास दिशो विनेदुर्न्यपतश्च गर्भा ॥
रक्षत्वसौ माध्वनि यज्ञकल्प स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराह ।
रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽस्मान्॥
मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादान्नारायण पातु नरश्च हासात्।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथ पायाद् गुणेश कपिल कर्मबन्धात्॥
सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्धयशीर्षा मा पथि दवहेलनात्।
देवर्षिवर्य पुरुषार्चनान्तरात् कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात्॥
धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद् द्वन्द्वाद् भयादृषभो निर्जितात्मा।
यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद् बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्र ॥
द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात्।
कल्कि कले कालमलात् प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतार ॥

'भगवान् श्रीहरि गरुडजीकी पीठपर अपने चरणकमल रखे हुए हैं। अणिमादि आठो सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। आठ हाथाम शङ्ख, चक्र, ढाल, तलवार गदा, बाण, धनुष और पाश (फदा) धारण किये हुए हैं। वे ही ॐकारस्वरूप प्रभु सब प्रकारसे, सब ओरसे मेरी रक्षा कर। मत्स्यमूर्तिभगवान् जलके भीतर जलजन्तुआसे और वरुणके पाशसे मरी रक्षा करे। मायासे ब्रह्मचारीका रूप धारण करनेवाले वामनभगवान् स्थलपर और विश्वरूप श्रीत्रिविक्रमभगवान् आकाशमे मेरी रक्षा करे। जिनके घोर अट्टहाससे सब दिशाएँ गूँज उठी थीं और गर्भवती दैत्यपत्नियोके गर्भ गिर गये थे वे दैत्य-यूथपतियाके शत्रु भगवान् नृसिह किले, जगल रणभूमि आदि विकट स्थानामे मेरी रक्षा करे। अपनी दाढापर पृथ्वीको धारण करनेवाले यज्ञमूर्ति वराहभगवान् मार्गम परशुरामजी पर्वताके शिखरापर और लक्ष्मणजीके सहित भरतके बडे भाई भगवान् रामचन्द्र प्रवासके समय मेरी रक्षा करे। भगवान् नारायण मारण-मोहन आदि भयकर अभिचारा और सब प्रकारके प्रमादोसे मेरी रक्षा करे। ऋषिश्रेष्ठ नर गर्वसे, योगेश्वर भगवान् दत्तात्रेय योगके विघ्नोसे और त्रिगुणाधिपति भगवान् कपिल कर्मबन्धनोसे मेरी रक्षा कर। परमर्षि सनत्कुमार कामदेवसे हयग्रीवभगवान् मार्गमे चलते समय देवमूर्तियाको नमस्कार आदि न करनेके अपराधसे, देवर्षि नारद सेवापराधासे और भगवान् कच्छप सब प्रकारके नरकासे मेरी रक्षा करे। भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्यसे, जितेन्द्रिय भगवान् ऋषभदेव सुख-दु ख आदि भयदायक द्वन्द्वोसे यज्ञभगवान् लोकापवादसे बलरामजी मनुष्यकृत कष्टोसे और श्रीशेषजी क्रोधवश नामक सर्पोके गणसे मेरी रक्षा करे। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अज्ञानसे तथा बुद्धदेव पाखण्डियोसे और प्रमादसे मेरी रक्षा कर। धर्मरक्षाके लिये महान् अवतार धारण करनेवाले भगवान् कल्कि पापबहुल कलिकालके दोषोसे मेरी रक्षा करे।' (श्रीमद्भागवत)